महावीर : मेरी दृष्टि में

आचार्य रजनीश

सम्पादक
डॉ० दयानन्द भार्गव

मो ती ला ल ब ना र सी दा स
दिल्ली : : वाराणसी : : पटना

आचार्य रजनीश : एक परिचय

आचार्य रजनीश वर्तमान युग के एक युवा-द्रष्टा, क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी ऋषि और जीवन-सर्जक हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना मे ही उनका जीवन-प्रवाह है; लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि मे भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, करते हैं, वह सब जीवन की आत्यंतिक गहराइयो व अनुभूतियो से उद्भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओ की गहनतम जडों को स्पर्श करते हैं। **जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।**

जीवन की चरम ऊंचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबका दर्शन उनके व्यक्तित्व में संभव है।

११ दिसम्बर, १९३१ को मध्यप्रदेश के एक छोटे-से गाव मे इनका जन्म हुआ। दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी इनकी प्रतिभा विकसित होती रही। सन् १९५७ मे इन्होने सागर-विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र मे एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। वे अपने पूरे विद्यार्थी जीवन मे बड़े क्रांतिकारी व अद्वितीय जिज्ञासु तथा प्रतिभाशाली छात्र रहे। बाद मे क्रमश रायपुर व जबलपुर के दो महाविद्यालयो मे क्रमश १ और ८ वर्ष के लिए आचार्य (प्रोफेसर) के पद पर शिक्षण का कार्य करते रहे। इस बीच इनका पूरे देश मे घूम-घूमकर प्रवचन देने व साधना शिविर लेने का कार्य भी चलता रहा।

बाद मे अपना पूरा समय **प्रायोगिक साधना के विस्तार व धर्म के पुनरुत्थान में** लगाने के उद्देश्य से आप सन् १९६६ मे नौकरी छोड कर आचार्य पद से मुक्त हुए। तब से आप लगातार देश के कोने-कोने मे घूम रहे हैं। विराट् सख्या मे भारत की जनता की आत्मा का इनमे सम्पर्क हुआ है।

इनके प्रवचनो व साधना-शिविरो से प्रेरणा पाकर अनेक प्रमुख शहरो में उत्साही मित्रो व प्रेमियो ने जीवन जागृति केन्द्र के नाम से एक मित्रों व **साधकों का मिलन-स्थल** (सस्थान) निर्मित किया है। वे आचार्यश्री के प्रवचन

व शिविर आयोजित करते हैं तथा पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था करते हैं। **जीवन जागृति आन्दोलन** का प्रमुख कार्यालय बम्बई मे लगभग ८ वर्षों से कार्य कर रहा है। अब तो आचार्यश्री भी अपने जबलपुर के निवास-स्थान को छोड़ कर १ जुलाई, १९७० से स्थायी रूप मे बम्बई मे आ गये है, ताकि जीवन जागृति आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को सहयोग मिल सके।

जीवन जागृति आन्दोलन की ओर मे एक मासिक पत्रिका "युकान्द" (युवक क्रांति दल का मुख-पत्र) पिछले दो वर्षों से तथा एक त्रैमासिक पत्रिका "ज्योतिशिखा" पिछले पाच वर्षों से प्रकाशित हो रही है। आचार्यश्री के प्रवचनो के सकलन ही पुस्तकाकार मे प्रकाशित कर दिये जाते हैं। अब तक लगभग २६ बडी पुस्तके तथा २१ छोटी पुस्तिकाए मूल हिन्दी मे प्रकाशित हुई हैं। अधिकतर पुस्तको के गुजराती, अंग्रेजी व मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। १३ नयी अप्रकाशित पुस्तकें प्रेस के लिए तैयार पडी हैं। अब तक आचार्यश्री प्रवचनमालाओं मे तथा साधना-शिविरो मे लगभग २००० घटे जीवन, जगत व साधना के सूक्ष्मतम व गहनतम विषयो पर सविस्तार चर्चाए कर चुके हैं।

अब भारत के बाहर भी अनेक देशो मे इनकी पुस्तकें लोगो की प्रेरणा व आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही हैं। **हजारों की संख्या मे देशी व विदेशी साधक इनसे विविध गुह्यतम साधना-पद्धतियो एव प्रक्रियाओं के सम्बन्ध मे प्रेरणा पा रहे हैं।** योग व अध्यात्म के सदृश व प्रयोगात्मक जीवन-क्रान्ति के प्रसार हेतु विभिन्न देशों मे इनके लिए आमत्रण आने शुरू हो गये हैं। शीघ्र ही भारत ही नही वरन् अनेक पाश्चात्य देशवासी भी इनके व्यक्तित्व से प्रेरणा व सृजन की दिशा पा सकेंगे।

२५ सितम्बर १९७० मे मनाली मे आयोजित एक दस दिवसीय साधना-शिविर मे आचार्यश्री के जीवन का नया आयाम सामने आया। उन्होंने वहा कहा कि सन्यास जीवन की सर्वोच्च समृद्धि है, अत उसे पूर्णता मे सुरक्षित रखा जाना चाहिए। उन्हे वहा प्रेरणा हुई कि वे सन्यास-जीवन को एक नया मोड देने मे सहयोगी हो सकेंगे और **नाचते हुए, गीत गाते हुए, आनंदमग्न, समस्त जीवन को आलिंगन करने वाले, सशक्त व स्वावलम्बी संन्यासियों के वे साक्षी बन सकेंगे।** शिविर मे तथा उसके बाद भी अनेक व्यक्तियो ने सीधे परमात्मा मे सन्यास की दीक्षा ली। आचार्यश्री इस घटना के साक्षी व गवाह रहे।

इस "नव सन्यास अन्तर्राष्ट्रीय (Neo-Sannyas international)

आन्दोलन" में अब तक ४३२ व्यक्तियो ने संन्यास के जीवन मे प्रवेश किया है। कुछ ही वर्षों मे इनकी सख्या सैकड़ो व हजारो की होने वाली है। **ये संन्यासी जीवन की पूर्ण सघनता व व्यवहार में सक्रिय भाग लेने के साथ ही साथ विशिष्ट साधना-पद्धतियों में रत हैं।** इस दिशा मे सन्यासियो का एक 'कम्यून' "विश्वनीड" के नाम से पोस्ट आजोल, तालुका-बीजापुर, जिला-महेसाणा (गुजरात) मे कार्यरत हो चुका है। ये **संन्यासी आचार्यश्री** रजनीश की नयी जीवन-दृष्टि, जीवन-सृजन, **जीवन-शिक्षा एवं प्रायोगिक धर्म-साधना के बहु-आयामों में निपुण एवं सक्षम होकर भारत एवं विश्व के कोने-कोने में धर्म व संस्कृति के पुनरुत्थान** तथा **"धर्म-चक्र-प्रवर्तन" हेतु बाहर निकल** रहे हैं।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है। उनके सम्बन्ध में संकेत मात्र हो सकते हैं। जो व्यक्ति परम आनद, परम शाति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है उसके श्वास-श्वास से, रोयें-रोयें से, प्राणो के कण-कण से एक सगीत, एक गीत, एक नृत्य, एक आह्लाद, एक सुगध, एक आलोक, एक अमृत की प्रतिपल वर्षा होती रहती है और समस्त अस्तित्व उससे नहा उठता है। इस सगीत, इस गीत, इस नृत्य को कोई प्रेम कहता है, कोई आनद कहता है और कोई मुक्ति कहता है। लेकिन वे सब एक ही सत्य को दिये गये अलग अलग नाम हैं।

ऐसे ही एक व्यक्ति हैं—आचार्य रजनीश जो मिट गये है, शून्य हो गये हैं, जो अस्तित्व व अनस्तित्व के साथ एक हो गये हैं, जिनका श्वास-श्वास अतरिक्ष का श्वास हो गया है, जिनके हृदय की धडकने चाद-तारो की धड़कनो के साथ एक हो गयी है, जिनकी आखो में सूरज-चाद-सितारो की रोशनी देखी जा सकती है, जिनकी मुस्कराहटो मे समस्त पृथ्वी के फूलो की सुगध पायी जा सकती है, जिनकी वाणी मे पक्षियो के प्रात गीतो की निर्दोषता व ताजगी है और जिनका सारा व्यक्तित्व ही एक कविता, एक नृत्य व एक उत्सव हो गया है।

इस नृत्यमय, सगीतमय, सुगधमय, आलोकमय व्यक्तित्व से प्रतिपल निकलने वाली प्रेम की, करुणा की लहरो के साथ जब लोगो की जिज्ञासा व मुमुक्षा का सयोग होता है तब प्रवचनो के रूप मे उनसे ज्ञान-गंगा बह उठती है।

उनके प्रवचनों में जीवन के, जगत के, साधना के, उपासना के विविध

रूपों व रंगों का स्पर्श है। उनमे पाताल की गहराइया है और विराट् अंतरिक्ष की ऊंचाइया हैं। देश व काल की सीमाओ के अतिक्रमण के बाद जो महाशून्य और नि शब्द की अनुभूति शेष रह जाती है उसे शब्दो मे, इशारो मे, मुद्राओ मे व्यक्त करने का सफल-असफल प्रयास भी उनके प्रवचनो मे रहता है।

उनके प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे है, हृदय-स्पर्शी हैं, मीठे हैं, तीखे हैं और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने व जगाने वाले भी हैं। उनके प्रवचनों और ध्यान के प्रयोगो से व्यक्ति की निद्रा, प्रमाद व मूर्छा टूटती है और वह अन्त. व बाह्य रूपान्तरण, जागरण और क्राति मे सलग्न हो जाता है।

सम्पादकीय

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना के मूल प्रेरणा-स्रोत श्री सुन्दरलाल जैन, प्रोप्राइटर मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास हैं। वे धर्म मे बहुत रुचि रखते हैं। सत्य की खोज की लगन उनमे बहुत पुरानी है। महावीर और उनके सन्देश को जानने की उनमे उत्कट जिज्ञासा रही है। ससार के सम्मुख महावीर के संदेश को प्रस्तुत करने का उनका आन्तरिक सङ्कल्प रहा है। इस आशय से उन्होंने अनेक प्रयत्न किये किन्तु सफलता न मिली। किन्तु उनका सङ्कल्प सत्य था क्योंकि वह अन्तत फलवान् बना। महावीर का मार्ग, जिसे काल ने धूमिल कर दिया था पुन आलोकित हुआ रजनीश की उस रश्मि से जो इस ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित हो रही है।

सितम्बर का मास था। श्री सुन्दरलाल जी का आग्रह स्वीकार करके आचार्य रजनीश श्रीनगर मे डल झील के किनारे चश्मे-शाही पर उपस्थित थे। गिने चुने लोग उनके श्रोता थे। महावीर पर प्रवचन होते थे और प्रश्नोत्तर चलते थे। वही यहा प्रस्तुत हैं। जो आचार्य रजनीश के सम्पर्क मे आये हैं उन्हे ज्ञात है कि उनके अस्तित्व मे ही एक सुगन्ध है। उनका जीवन सहजता की मूर्ति है, उनके विचार निर्विचारता मे ले जाने का द्वार हैं। उनकी वाणी निरन्तर उस ओर इङ्गित करती है जो वाणी से परे है। उनका स्पर्श मानो अपना ही स्पर्श है।

आचार्य जी की दृष्टि मे महावीर को जानने का एक ही उपाय है—सीधा और सरल, जिसमे न शास्त्र की जरूरत है, न सिद्धान्त की, न गुरु की। इसमे न कोई साथी है, न कोई सगी है। अकेले की उडान है अकेले की तरफ। बीच मे कोई भी नही। जरा भी बीच मे ले लेते हैं किसी को तो भटकन शुरू हो जाती है।

यह प्रेम का मार्ग है। प्रेम में कोई शर्त नही होती, कोई पूर्वाग्रह नही होता अत हम प्रेम के मार्ग से महावीर को जान सकते हैं। जानना मुश्किल नही है क्योंकि उनके अनुभव की सूक्ष्म तरगे, सूक्ष्म आकाश में, अस्तित्व की

गहराइयो पर आज भी सुरक्षित हैं और अगर हम प्रेमभरे चित्त से महावीर का पूर्ण ध्यान लेकर इन गहराइयो पर उतरे तो हमारे लिए वे द्वार खुल जाते हैं जहां वे सूक्ष्म तरगे हमे उपलब्ध हो जाएं। उधर अशरीरी आत्माएं भी प्रेमवश, करुणावश हमारी आत्मा से सम्बन्ध खोजने को आतुर हैं, उत्सुक हैं। मन्दिरों मे महापुरुषो की जो अचेतन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं वे भी उनकी अशरीरी आत्माओ से हमारा संपर्क कराने का ही साधन हैं।

आचार्य जी व्यक्ति को किसी से नही बाधना चाहते। जीवन मे जो मूल्यवान् है वह स्वय उपलब्ध करना होता है, यही उसकी मूल्यवत्ता है। यदि वह दूसरे से प्राप्त किया जा सके तो वह मूल्यवान् नही रह जायेगा। सत्य स्वय मे निहित है जिसे उघाडना है, वह न किसी से लिया जा सकता है, न किसी को दिया जा सकता है। जो सत्य पाने की आशा मे किसी के आश्रित हो गये हैं उनकी मुक्ति कैसे सम्भव है?

यह कृति न तो इतिहास ग्रन्थ है न शोध ग्रन्थ। इतिहास अतीत की घटनाओ का सकलन है, शोध दिये गये तथ्यो का विश्लेषण है। इसमे ये दोनो नही हैं। इस ग्रथ मे आचार्य जी ने योग के बल पर अतीत की कुछ घटनाओ से अपना तादात्म्य स्थापित करके उन घटनाओ के तथ्यों मे निहित कुछ ऐसे सत्यो का उद्घाटन किया है जो त्रैकालिक हैं। वे अतीत की मृत घटनाओं के सम्बन्ध मे उत्सुक नही हैं, उनकी उत्सुकता उन घटनाओ मे छिपे उन रहस्यो का उद्घाटन करने मे है जिन रहस्यो के कारण वे घटनाए मानवमात्र के लिए मूल्यवान् हैं। महावीर के जीवन से सम्बद्ध ऐसी अनेक घटनाओ का रहस्य इस ग्रथ मे प्रथम बार उद्घाटित हुआ है जिनके कारण उन घटनाओं को नया अर्थ प्राप्त हो गया है। इन रहस्यो के बिना वे घटनाए आज के युग में अविश्वसनीय मिथ मात्र बन कर रह गई थी। आचार्य जी की व्याख्या से महावीर के जीवन की वे घटनाए मानो हमारे अपने ही जीवन की सम्भावित घटनाए बन गई हैं।

इस ग्रथ की अर्थवत्ता न तो इसमे है कि हम जो आचार्यजी ने कहा है उस पर विश्वास कर लें और न तर्क-वितर्क द्वारा इस ग्रंथ का खण्डन करने से ही किसी का कोई प्रयोजन सिद्ध होगा। यह ग्रथ शास्त्र नहीं है। इस पर एकेडेमिक चर्चा नितान्त व्यर्थ है। इस ग्रथ का एक मात्र प्रयोजन यह है कि पाठक स्वय साधना में उतर जायें।

आचार्य जी के दृष्टिकोण मे तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तो उनका दृष्टिकोण नैतिक नहीं, अतिनैतिक है। यह दृष्टि मूलतः जैन शास्त्रो की दृष्टि है। उनमे पाप और पुण्य दोनो को लोहे और सोने की शृखला माना गया है। दूसरे आचार्यजी ने दर्शन को ही महत्वपूर्ण माना है; चरित्र को दर्शन का सहज प्रतिफल माना है। यह दृष्टि भी जैन शास्त्रो की मूल दृष्टि है। जैन शास्त्रों मे सम्यग् दृष्टि के अभाव मे अच्छे से अच्छे कर्म को भी निरर्थक माना गया है। सम्यग् दृष्टि के बिना, आचरण ऊपर से ओढ़ा जासकता है किन्तु वह पाखड है। वास्तविक आचरण सम्यग् दर्शन में स्वतः प्रस्फुटित होता है। वस्तुतः सम्यग्-दृष्टि जो करता है वही सम्यक् चारित्र है, यह कहना सत्य नही होगा कि सम्यग्-दृष्टि सम्यक् चारित्र का पालन करता है। सूर्य पूर्व मे उदित नही होता बल्कि जिधर सूर्य उदित होता है उस दिशा को हम पूर्व दिशा कहते हैं। आचार्य जी के इस ग्रथ की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि महावीर के जीवन के सम्बन्ध मे जो साम्प्रदायिक मतभेद थे उनका इसमे निराकरण हो गया है। जिन्होंने तथ्य को देखा उन्होंने यह पाया कि महावीर विवाहित और पुत्रीवान् हैं। किन्तु जिनकी दृष्टि सत्य पर गई उन्होने पाया कि वे अविवाहित है। विवाह उनका हुआ, यह एक घटना है ; किन्तु साक्षिभाव के कारण वे विवाह करते हुए भी अविवाहित रहे, यह एक दार्शनिक सत्य है।

आचार्य जी ने तर्कसंगत होने का आग्रह नही किया है। तर्क विरोध को स्वीकार नही करता, किन्तु जीवन विरोधी तत्त्वो से ही बना है—इसलिए जीवन तर्क की पकड से चूक जाता है। अतः जीवन का सत्य तर्क मे नहीं, तर्क से परे है। आचार्य जी की यह दृष्टि भी जैन शास्त्रों से मेल खाती है जिनका कहना है कि सत्य वहां है जहा से सब शब्द लौट आते हैं जहा तर्क नहीं जा सकता और न जहां बुद्धि की पहुंच है—सव्वे सरा णियट्ट ति, तक्का जत्थ न विज्जति। मति तत्थ न गाहिता (आचाराङ्ग)।

आचार्यजी की दृष्टि में महावीर न परिग्रही हैं, न पलायनवादी है। उन्होंने घर छोड़ा जो घर नही था। एक सपना था जो टूट गया। भोग और त्याग दोनों सपने हैं जो द्रष्टा हो जाने पर बिदा हो जाते है। महावीर जब द्रष्टा हुए तब न भोग रहा, न त्याग रहा। राग-विराग, सुख-दुख न रहे। वह निर्द्वन्द्व हो गए। लेकिन अनुयायियों ने सोचा कि वह महात्यागी थे क्योंकि उन्होने जीवन के साथी त्यागे, घर त्यागा, सम्पत्ति त्यागी। मगर सही अर्थों में

उन्होंने कुछ भी नही त्यागा क्योंकि उन्होने कुछ भोगा ही नहीं। सिर्फ भोगी ही त्याग कर सकता है। भोग और त्याग, राग और विराग एक ही तराजू के दो पलडे हैं। दोनो पर तोल हो सकता है। पर महावीर तराजू से उतर गए, वीतराग हो गए। फिर उनके तोल का सवाल ही नही उठता।

महावीर निश्चित ही नग्न रहे, इसमे कोई विकल्प नही है। उनकी काया को देखकर लगता है कि ऐसी सुन्दर काया वाला कोई व्यक्ति नही हुआ। ऐसी सुन्दर काया न बुद्ध के पास थी, न जीसस के पास थी और लगता है कि इतना सुन्दर होने की वजह से ही वह नग्न खडे हो सके। असल मे नग्नता को छिपाना कुरूपता को छिपाना है। हम सिर्फ उन्ही अङ्गो को छिपाते हैं जो कुरूप हैं। महावीर इतने सुन्दर थे कि छिपाने को कुछ भी नही था।

उनकी नग्नता उनके ज्ञान का अंग थी, उनके चरित्र का अंग नही थी। अगर किसी व्यक्ति को विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड से, मूक जगत से सम्बन्धित होना है तो वस्त्र एक बाधा है। जितने ज्यादा वस्त्र पैदा होते जा रहे है उतनी ज्यादा बाधाएँ बढती जा रही हैं। नवीनतम वस्त्र चारो तरफ के वातावरण से शरीर को तोड देते हैं। जिस व्यक्ति को ब्रह्माण्ड से सयुक्त होना है, जड़ के साथ भी तादात्म्य स्थापित करना है, पशु जगत को भी सन्देश पहुचाना है, उसके लिए किसी तरह के भी वस्त्र बाधा बन जाएंगे।

साधारणतः यह धारणा है कि अणुव्रत से महाव्रत फलित होता है। मगर गहराइयो पर उतरने से लगता है कि महाव्रत हमारे भीतरी विस्फोट का परिणाम है। जब चेतना पूरी की पूरी विस्फोट होती है तब महाव्रत उपलब्ध होता है। वह अणुव्रतो से नही निकलता। साधारणत कायक्लेश सम्बन्धी धारणायें भी भ्रामक हैं। शरीर को सताना ही कायक्लेश तप माना जाता है। वह बिना नहाए-धोए, बिना खाए-पिए शरीर की दुश्मनी मे तप माना जाता है। यही मोक्ष का उपाय समझा जाता है। एक आदमी सुबह घटे भर व्यायाम करता है, पसीना बहाता है, अपने स्वास्थ्य के लिए। वह भी कायक्लेश कर रहा है लेकिन शरीर के हित में, शरीर के विरोध में नही। महावीर की सुन्दर काया को देखकर लगता है कि उन्होंने शरीर के हित मे ही कायक्लेश किया। शरीर को सवारने मे, शरीर के हित के लिए जो हम क्लेश उठाते हैं, सही अर्थों मे वही कायक्लेश है।

इसी प्रसग में 'उपवास' का अर्थ भी देखें। उपवास का अर्थ है आत्मा के निकट होना, अर्थात् व्यक्ति आत्मा में इतना लीन हो गया है कि शरीर

का पता नहीं चलता। लेकिन सामान्यतः इसे 'अनशन' का पर्याय समझ लिया गया है। इन भ्रान्त धारणाओं के कारण कायक्लेश और उपवास के सही अर्थों को नहीं समझा जा सका। उपवास अनशन से बिल्कुल उलटा है। उपवास का मतलब है कि चेतना एकदम भीतर आत्मा के निकट चली जाए कि उसको बाहर का ख्याल ही न रहे। अनशन में, उपवास के बिल्कुल विपरीत, आदमी चौबीस घंटे शरीर के पास रहता है जितना कि खाने वाला भी नहीं रहता। उसके मन में दिन भर खाना चलता रहता है। उपवास और अनशन बिल्कुल विरोधी प्रक्रियायें हैं।

आत्मदर्शन की प्रक्रिया मे ध्यान का गहरा स्थान है। वह आत्मानुभूति का एकमात्र उपाय है। ध्यान के दो चरण हैं : प्रतिक्रमण और सामायिक। प्रतिक्रमण का अर्थ है कि जहां-जहां चेतना गई है वहां-वहां से उसे वापिस पुकार लेना, मित्र के पास से, शत्रु के पास से, पत्नी के पास से, बेटे के पास से, मकान से, धन से, सब ओर से उसे वापिस बुला लेना। सामायिक का अर्थ है समय मे यानी आत्मा मे होना। प्रतिक्रमण प्रक्रिया है चेतना को भीतर लौटाने की। सामायिक प्रक्रिया है बाहर से लौटी हुई चेतना को आत्मा मे बैठाने की। प्रतिक्रमण और सामायिक मार्ग हैं, दर्शन उपलब्धि है। सामायिक मे स्थिर हो जाना आत्मा मे प्रवेश करना है।

मोक्ष यात्रा का अन्त है। प्रत्येक मृत्यु मे स्थूल देह मरती है, भीतर का सूक्ष्म शरीर नही मरता। सूक्ष्म शरीर एक जोड़ है जो आत्मा और शरीर को पृथक् नही दिखने देता। लेकिन जब व्यक्ति न कर्ता रहा है, न भोक्ता रहा है, न प्रतिक्रिया करता है, केवल साक्षी रह जाता है तब सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है, बिखरने लगता है। फिर आत्मा और शरीर पृथक् दिखते हैं और व्यक्ति समझ लेता है कि यह आखिरी यात्रा है।

मगर मोक्ष के द्वार से भी वह करुणावश लौट सकता है सत्य की अभिव्यक्ति के लिए। महावीर उन व्यक्तियों मे हैं जो मोक्ष के द्वार से लौट आए हैं। उनकी बारह वर्ष की जो साधना है वह सत्य की उपलब्धि के लिए नही क्योंकि सत्य की उपलब्धि तो उन्हे पिछले जन्म मे ही हो गई है। साधना इसलिए है कि वह जीवन के सब तलों तक, सब रूपों तक, पत्थर से लेकर देवता तक सत्य को अभिव्यक्त कर सकें। उनकी यह सतत चेष्टा रही है भूत, जड़, मूक जगत मे अनुभूति तरंगें पहुंचाने की और इस चेष्टा मे इतना गहरा तादात्म्य हो गया है मूक, जड़ जगत से कि कान मे कीलें भी ठुकें तो पता न

चले क्योंकि वह चट्टान हो गए हैं। महीनो बीत जाएं, भोजन की चिन्ता नहीं क्योंकि तादात्म्य हो जाने पर मूक जगत से उन्हें सूक्ष्म भोजन भी मिल सकता है। महावीर के सम्बन्ध मे यह धारणा आचार्य जी की बिल्कुल अपनी मौलिक है।

महावीर की यह देन बिल्कुल अनोखी है। इस ओर न जीसस ने, न बुद्ध ने, न जरदुस्त ने, न मुहम्मद ने, न किसी दूसरे महामानव ने कोई मार्ग बताया है। अनुभूति की पूर्णता को कई व्यक्ति प्राप्त हुए हैं मगर अभिव्यक्ति की पूर्णता महावीर को ही उपलब्ध हुई है।

महावीर की शाखा सूख गई है। शाखा सूख जाती है तो भी वृक्ष खड़ा रहता है। वह फिर से फूट सकता है यदि महावीर को ठीक से समझा जा सके। फिर नये अंकुर आ सकते हैं इसमे, और नये अकुर आने चाहिए। आचार्य जी का यह ग्रन्थ इस दिशा मे ही एक चरण है।

रामजस कालेज, दिल्ली। दयानन्द भार्गव

२२-७-७१

अन्तर्वस्तु

प्रथम प्रवचन
१७.६.६६ रात्रि

१

मैं महावीर का अनुयायी नही हू, प्रेमी हू, वैसेही जैसे क्राइस्ट का, कृष्ण का, बुद्ध का, लाओत्से का, और मेरी दृष्टि मे अनुयायी कभी भी नही समझ पाता।

और दुनिया मे दो ही तरह के लोग हैं। साधारणतया या तो कोई अनुयायी होता है या कोई विरोध मे होता है। न अनुयायी समझ पाता है न विरोधी समझ पाता है।

एक और रास्ता भी है 'प्रेम', जिसके अतिरिक्त हम और किसी रास्ते मे कभी किसी को समझ ही नही पाते। अनुयायी की एक कठिनाई है कि वह एक से बध जाता है और विरोधी की भी कठिनाई है कि वह विरोध में बध जाता है। सिर्फ प्रेमी को एक मुक्ति है। प्रेमी को बधने का कोई कारण नही है। और जो प्रेम बाधता है, वह प्रेम ही नही। तो महावीर से प्रेम करने मे महावीर से बधना नही होता। महावीर से प्रेम करते हुए ही बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को प्रेम किया जा सकता है क्योकि जिस चीज को हम महावीर मे प्रेम करते हैं वह हजार-हजार लोगो मे उसी तरह प्रकट हुई है। महावीर को थोडे ही प्रेम करते हैं। वह जो शरीर है वर्धमान का, वह जो जन्मतिथियो मे बधी हुई है एक इतिहास रेखा है, एक दिन पैदा होना, और एक दिन मर जाना—उसे तो प्रेम नही करते। प्रेम करते हैं उस ज्योति को जो उस मिट्टी के दिए मे प्रकट हुई। वह दिया कौन था, यह बहुत अर्थ की बात नही। बहुत दियो में वह ज्योति प्रकट हुई है, जो ज्योति को प्रेम करेगा वह दिए से नही बधेगा। और जो दिए से बधेगा, उसे ज्योति का कभी पता नहीं लगेगा। क्योकि दिए से जो बध रहा है, निश्चित है कि उसे ज्योति का पता नही चला। जिसे ज्योति का पता चल जाए उसे दिए की याद भी रहेगी? उसे दिया फिर दिखाई भी पडेगा? जिसे ज्योति दिख जाए, वह दिए को भूल जाएगा। इसलिए जो दिए को याद रखे है उन्हे ज्योति नही दिखी है और जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह इस ज्योति को या उस ज्योति को थोडे ही प्रेम करेगा, वह जो ज्योतिर्मय है उसे ही प्रेम करेगा। जब एक ज्योति मे बंध जाएगा उसे तो कही भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगी—सूरज मे भी,

घर मे जलने वाले छोटे से दिए मे भी, चाँद-तारे मे भी, आग में—जहां कही भी ज्योति है, वही दिख जाएगी। लेकिन अनुयायी व्यक्तियो से बधे हैं। विरोधी भी व्यक्तियो से बधे है। प्रेमी भर को व्यक्ति से बधने की कोई जरूरत नही। तो मैं प्रेमी हूँ। और इसलिए मेरा कोई बन्धन नही है महावीर से। और बन्धन न हो तो ही समझ हो सकती है—अण्डरस्टैंडिंग हो सकती है।

यह भी ध्यान मे रखना जरूरी है कि महावीर की चर्चा के लिए क्यो चुनें? बहाना है सिर्फ। जैसे खूटी होती है। कपडा टागना, प्रयोजन होता है। खूटी कोई भी काम दे सकती है। महावीर भी काम दे सकते हैं ज्योति के स्मरण मे, बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी। किसी भी खूटी मे काम लिया जा सकता है। स्मरण उस ज्योति का जो हमारे दिए मे भी जल सकती है। स्मरण प्रेम मागता है, अनुकरण नही। और वह स्मरण भी महावीर का जब हम करते है, तो भी महावीर का स्मरण नही है वह। स्मरण है उस तत्त्व का जो महावीर मे प्रकट हुआ। और उस तत्त्व का स्मरण आ जाए तो तत्काल आत्मस्मरण बन जाता है। और यही सार्थक है जो आत्म-स्मरण की तरफ ले जाए। लेकिन महावीर की पूजा से यह नही होता। पूजा मे आत्म-स्मरण नही आता। बडी मजे की बात है। पूजा आत्म-विस्मरण का उपाय है। जो अपने को भूलना चाहते है वे पूजा मे लग जाते हैं। उनके लिए भी महावीर खूटी का काम देते है बुद्ध, कृष्ण—सब खूटी का काम देते है। जिसे अपने को भूलना है वे अपने भूलने का वस्त्र खूटी पर टाग देते है। अनुयायी, भक्त, अन्धे अनुकरण करने वाले भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण की खूटियों का उपयोग कर रहे है, आत्मविस्मरण के लिए। पूजा, प्रार्थना, अर्चना सब विस्मरण है। स्मरण बहुत और बात है। स्मरण का अर्थ है कि हम महावीर मे उस सार को खोज पाए—किसी मे भी, कही से भी। वह सार हमे दिख जाए, उसकी एक झलक मिल जाए, उसका एक स्मरण हो जाए कि ऐसा भी हुआ है, ऐसा भी किसी व्यक्ति मे होता है। ऐसा भी सम्भव है। यह सम्भावनाओ का बोध तत्काल हमे अपने प्रति जगा देता है कि जो किसी एक मे सम्भव है, जो एक मनुष्य मे सम्भव है, वह फिर मेरी सम्भावना क्यो न बने? और तब हम पूजा मे न जायेंगे बल्कि एक अन्तर् पीडा, एक इनर सर्फरिंग मे उतर जायेंगे। जैसे जले हुए दिए को देख कर एक बुझा हुआ दिया एक आत्मपीडा मे उतर जाए और उसे लगे कि मैं व्यर्थ हू, मैं सिर्फ नाम मात्र का दिया हू क्योकि वह ज्योति कहा, वह

प्रकाश कहां ? मैं सिर्फ अवसर हूं जिसमें ज्योति प्रगट हो सकती है, लेकिन अभी हुई नही है। लेकिन बुझे हुए दियों के बीच बुझा हुआ दिया रखा रहे तो उसे ख्याल भी न आए, पता भी न चले। तो करोड़ बुझे हुये दियों के बीच मे भी जो स्मरण नही आ सकता वह एक जले हुए दिए के निकट आ सकता है। महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण का मेरे लिए इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नही कि वे जले हुए दिए हैं, और उनका ख्याल उनके जले हुए दिए की लपट एक बार भी हमारी आखो मे पहुच जाए तो हम फिर वही आदमी नही हो सकते जो हम कल तक थे, क्योंकि हमारी एक नई सम्भावना का द्वार खुल गया, जो हमे पता ही नही था कि हम हो सकते है उसकी प्यास जग गई। यह प्यास जग जाए तो कोई भी बहाना बनता हो, इससे कोई प्रयोजन नही। तो मै महावीर को भी, क्राइस्ट को भी, बहाना बनाऊगा, कृष्ण को भी, बुद्ध को भी, लाओत्से को भी। फिर हममे बहुत तरह के लोग है और कई बार ऐसा होता है कि जिसे लाओत्से मे ज्योति दिख सकती है, हो सकता है उसे बुद्ध मे ज्योति न दिखे। और यह भी हो सकता है कि जिसे महावीर मे ज्योति दिख सकती है उसे लाओत्से मे ज्योति न दिखे। एक बार अपनी ही ज्योति दिख जाए तब तो लाओत्से, बुद्ध का मामला ही नही, तब तो सडक पर चलते साधारण आदमी मे भी ज्योति दिखने लगती है। तब फिर ऐसा आदमी ही नही दिखता जिसमे ज्योति न हो। तब तो आदमी बहुत दूर की बात है पशु-पक्षी मे वही ज्योति दिखने लगती है। पशु-पक्षी भी बहुत दूर की बात है, पत्थर मे भी वह ज्योति दिखने लगती है। एक बार अपने मे दिख जाए तो सब मे दिखने लगती है। लेकिन, जब तक स्वय मे नही दिखी तब तक जरूरी नही कि सभी लोगों को महावीर मे ज्योति दिखे। उसके कारण है। व्यक्ति-व्यक्ति के देखने के ढग मे भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति की ग्राहकता मे भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति के रुझान और रुचि मे भेद है। एक सुन्दर युवति है, जरूरी नही सभी को सुन्दर मालूम पड़े।

मजनू को पकड लिया था उसके गाव के सम्राट ने। और मजनू की पीडा की खबरें उस तक पहुची थी। उसका रात देर तक वृक्षों के नीचे रोना और चिल्लाना, उसकी आखो से बहते हुए आसू; गाव भर मे उसकी चर्चा। तो सम्राट ने दया करके उसे बुला लिया, बोला तू पागल हो गया है। लैला को मैंने भी देखा है। ऐसा क्या है ? बहुत साधारण है। उससे सुन्दर

लडकिया तेरे लिए मै इन्तजाम कर दूगा । देख । लडकिया बुला ली थी उसने। कतार लगा दी दीवार के सामने और कहा कि देख ! नगर की सुन्दरतम लडकिया वहा पर उपस्थित थी, राजा का निमंत्रण था । लेकिन, मजनू ने देखा तक नही । और मजनू खूब हसने लगा । उसने कहा, आप समझे नही । लैला को देखने के लिए मजनू की आख चाहिए । वह आख आपके पास नही । तो हो सकता है लैला आपको साधारण दिखे । लैला मै ही देख सकता हू असाधारण । मैं मजनू हू । मजनू की आख लैला को पैदा करती है, आविष्कार करती है, उद्घाटन करती है—यानी लैला होने के लिए मजनू चाहिए । और एक-एक व्यक्ति मे बुनियादी भेद है । इसलिए दुनिया मे इतने तीर्थंकर, इतने अवतार, इतने गुरु है । और इसलिए ऐसा हो सकता है बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही जगह मे एक ही दिन ठहरे और गुजरे हो । एक ही इलाके मे वर्ष-वर्ष घूम हो । फिर भी, गाव मे किन्ही को बुद्ध दिखाई पडे हो किन्ही को महावीर दिखाई पडे हो, और किन्ही को दोनो न दिखाई पडे हो।

जब मै कुछ देखता हू तो जो है, दिखाई पड रहा है वही महत्त्वपूर्ण नही है। मेरे पास देखने की एक विशिष्ट दृष्टि है। और, दृष्टि प्रत्येक व्यक्ति की अलग है । किसी को महावीर मे वह ज्योति दिखाई पड सकती है । और, तब उस बेचारे की मजबूरी है । हो सकता है कि वह कहे कि बुद्ध मे कुछ भी नही है और वह कहे जीसस मे क्या है ? मुहम्मद मे क्या है ? लेकिन, उसकी नासमझी है । वह जरा जल्दी कर रहा है । वह सहानुभूतिपूर्ण नही मालूम हो रहा है । वह समझ नही रहा है । और जब कोई उससे कहेगा कि महावीर मे कुछ भी नही है तो वह क्रोध से भर जाएगा । अब भी वह नही समझ पा रहा है । जब मै कहता हू कि जीसस मे कुछ नही दिखाई पड रहा है तो हो सकता है कि किसी को महावीर मे कुछ भी न दिखाई पडे । महावीर मे जो है उसे देखने के लिए विशिष्ट आख चाहिए । हा, जमीन पर भिन्न-भिन्न तरह के लोग है । बहुत भिन्न-भिन्न तरह के लोग । कोई इनकी जातिया बनाना भी मुश्किल है । इतने भिन्न तरह के लोग है । लेकिन, एक बार दिख जाए साम्य तो सब भिन्नताए खो जाती है। सब भिन्नताए दिए की भिन्नताए है—ज्योति की भिन्नता नही है । दिए भिन्न-भिन्न है । बहुत-बहुत आकार के है । बहुत-बहुत रूप के है । बहुत-बहुत रगो के है । बहुत-बहुत कारीगरो ने उन्हे बनाया है । बहुत-बहुत उनके स्रष्टा है, उनके निर्माता है । तो हो सकता है कि जिसने एक ही तरह का दिया

देखा हो, दूसरे तरह के दिए को देखकर कहने लगे कि यह कैसा दिया है। ऐसा दिया होता भी नहीं। लेकिन, जिसने एक बार ज्योति को देख लिया चाहे कोई भी रूप हो, चाहे कोई भी आकार हो—जिसने एक बार ज्योति देख ली—दूसरी किसी आकार की ज्योति को देखकर वह यह न कह सकेगा कि यह कैसी ज्योति है? क्योंकि ज्योतिर्मय का जो अनुभव है, वह आकार का अनुभव नहीं। और दिए का जो अनुभव है, वह आकार का अनुभव है। दिया एक जड़ है, पदार्थ है, ठहरा हुआ, रुका हुआ। ज्योति एक चेतन है, एक सत्य है जीवन्त, भागी हुई। दिया रखा हुआ है। ज्योति जा रही है। और यह कभी ख्याल किया कि ज्योति सदा ऊपर की ओर जा रही है। कोई भी उपाय करो, दिए को कैसा भी रखो... आड़ा कि तिरछा, ऊँचा कि नीचा, छोटा कि बड़ा, इस आकार का कि उस आकार का, ज्योति है कि बस भागी जा रही है ऊपर को। कैसी भी ज्योति है, भागी जा रही है ऊपर को। निराकार का अनुभव है ज्योति में और ऊर्ध्व गमन की पहचान कि सिर्फ ऊपर ही ऊपर जाना। और, कितनी जल्दी ज्योति का आकार खो जाता है। देर नहीं लगती है, देख भी नहीं पाते कि आकार खो जाता है। पहचान भी नहीं पाते कि आकार खो जाता है। ज्योति कितनी जलती है। छोटा सा आकार लेती है, फिर निराकारमय हो जाती है। फिर खोजने चले जाओ, मिलेगी नहीं। थी कभी—अब थी, और अब नहीं, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता है कि जो था, वह अब न हो जाए। तो ज्योति एक मिलन है आकार-निराकार का। प्रतिपल आकार निराकार में जा रहा है। हम आकार तक देख पाए तो भी हम अभी ज्योति को नहीं देख पाए, क्योंकि जो आकार के पार संक्रमण हो रहा है निराकार में, वही ज्योति है। और इसलिए ऐसा हो जाता है कि दियों को पहचानने वाले ज्योतियों के सम्बन्ध में झगड़ा करते रहते हैं। और दियों को पकड़ने वाले ज्योतियों के नाम पर पंथ और सम्प्रदाय बना लेते हैं। और ज्योति से दिए का क्या सम्बन्ध! ज्योति से दिए का सम्बन्ध ही क्या है? दिया सिर्फ एक अवसर था जहां ज्योति घटी। और जो ज्योति का आकार दिखा था वह भी सिर्फ एक अवसर था, जहां से ज्योति निराकार में गई। वर्धमान तो दिया है, महावीर ज्योति, सिद्धार्थ तो दिया है, बुद्ध ज्योति है; जीसस तो दिया है—क्राइस्ट ज्योति है। लेकिन हम दिए को पकड़ लेते हैं। और महावीर के सम्बन्ध में सोचते-सोचते हम वर्धमान के सम्बन्ध में सोचने लगते हैं। भूल

हो गई। वर्धमान को जो पकड़ लेगा, महावीर को कभी नही जान सकेगा। सिद्धार्थ को जो पकड लेगा उसे बुद्ध की कभी पहचान ही नहीं होगी। और जीसस को, मरियम के बेटे को जिसने पहचाना, वह क्राइस्ट को, परमात्मा के बेटे को कभी नही पहचान पाएगा। इनमे क्या सम्बन्ध है? दोनो बात ही अलग हैं। लेकिन, हमने दोनो को इकट्ठा कर रखा है। जीसस क्राइस्ट, वर्धमान महावीर, गौतम बुद्ध, दिए और ज्योति, और ज्योति का हमें कोई पता नही है। दिए को हम पकडे हैं।

मेरा दिए से कोई सम्बन्ध नही। कोई अर्थ ही नही देखता हूं इनमे। तो फिर दिए तो हम है ही। इसकी चिन्ता हमे नही करनी चाहिए। दिए हम सब है ही। ज्योति हम हो सकते है, जो हम अभी नही हैं। ज्योति की चिन्ता करनी चाहिए। इधर महावीर को निमित्त बनाकर ज्योति पर विचार करना होगा। जिन्हे महावीर की तरफ से ज्योति पहचान मे आ सकती है अच्छा है वही से पहचान आ जाए। जिनको नही आ सकती उनके लिये किसी और को निमित्त बनाया जा सकता है। सब निमित्त काम मे आ सकते हैं। बहुत विशिष्ट है महावीर—इसलिए सोचना तो बहुत जरूरी है उन पर लेकिन विशिष्ट किसी दूसरे की तुलना मे नही। आम तौर से हम ऐसा ही सोचते है कि कोई व्यक्ति विशिष्ट है तो हम पूछते है—किस से? जब मैं कहता हू बहुत विशिष्ट है महावीर तो मै यह नही कहता हू कि बुद्ध से, कि मुहम्मद से। तुलना मैं नही कर रहा हू बल्कि विशिष्ट हैं—इस अर्थ मे—जो घटना घटी उनसे। वह जो घटना घटी, वह जो ज्योतिर्मय होने की घटना और निराकार मे विलीन हो जाने की घटना, उसमे विशिष्ट हैं। उस घटना से जीसस विशिष्ट है, मुहम्मद विशिष्ट है, कनफ्यूसियस विशिष्ट है। उस अर्थ मे वही विशिष्ट है जो आकार को खोकर निराकार मे चला गया है। यही है विशिष्टता। हम अविशिष्ट हैं। हम साधारण है। साधारण इस अर्थ मे कि वह घटना अभी नही घटी। दुनिया मे दो ही तरह के लोग है—साधारण और असाधारण। साधारण से मेरा मतलब है जो अभी सिर्फ दिया हैं, ज्योति बन सकते है। साधारण असाधारण का अवसर है, मौका है, बीज है। और असाधारण वह है जो ज्योति बन गया और गया वहा उस घर की तरफ जहा पहुच कर शांति है, जहा आनन्द है, जहा खोज का अन्त है और उपलब्धि। इसलिए जब मैं विशिष्ट कह रहा हूँ तो मेरा मतलब यह नहीं कि किसी से विशिष्ट। विशिष्ट जब मैं कह रहा हू तो मेरा मतलब है—साधारण

नहीं, असाधारण। हम सब साधारण हैं। हम सब असाधारण हो सकते थे। और जब तक हम साधारण हैं, तब तक हम साधारण और असाधारण के बीच जो भेद खड़े करते हैं, वह एकदम नासमझी के हैं। साधारण बस साधारण ही है। वह चपरासी है कि राष्ट्रपति, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह साधारण के ही दो रूप हैं। चपरासी पहली सीढ़ी पर और राष्ट्रपति आखिरी सीढ़ी पर। चपरासी भी चढ़ता जाए तो राष्ट्रपति हो जाए और राष्ट्रपति उतरता जाए तो चपरासी हो जाए। चपरासी चढ़ जाते है, राष्ट्रपति उतर आते हैं। दोनों काम चलते हैं। यह एक ही सीढ़ी पर सारा खेल है—साधारण की सीढ़ी पर। साधारण की सीढ़ी पर सभी साधारण हैं—चाहे वह किसी भी पायदान पर खड़े हों—नम्बर एक की कि नम्बर हजार की कि नम्बर शून्य की। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक सीढ़ी साधारण की है और इस साधारण की सीढ़ी से जो छलांग लगा जाते हैं, वे असाधारण में पहुंच जाते हैं। असाधारण की कोई सीढ़ी नहीं है। इसलिए असाधारण दो व्यक्तियों मे नीचे-ऊपर कोई नहीं होता। फिर कई लोग पूछते हैं कि बुद्ध ऊंचे कि महावीर, कृष्ण ऊँचे कि क्राइस्ट। तो वे अपनी साधारण की सीढ़ी के गणित से असाधारण लोगों को सोचने चल पड़े। और ऐसे पागल हुए हैं कि किताबें भी लिखते हैं कि कौन किससे ऊंचा। और उन्हे पता नहीं कि ऊंचे और नीचे का जो ख्याल है, साधारण दुनिया का ख्याल है। असाधारण ऊंचा और नीचा नहीं होता। असल में जो ऊंचे-नीचे की दुनिया से बाहर चला जाता है, वही असाधारण है। तो भला कैसे तोलें कि कबीर कहां कि नानक कहां; और ऐसी किताबें है, ऐसे नक्शे बनाए हैं लोगों ने कि कौन किसके ऊपर खड़ा है। वहां भी कौन आगे है, कौन पीछे है, कौन किस खण्ड में पहुंच गया है। वे साधारण लोगों की दुनिया और साधारण लोगों के ख्याल हैं। वे वहां भी वही सोच रहे हैं। वहां कोई ऊंचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है। असल मे ऊंचा और नीचा जहां तक है, वहां तक 'दिया' है। बड़ा और छोटा जहां तक है, वहां तक 'दिया' है। ज्योति बड़ी और छोटी होती नहीं। ज्योति या तो ज्योति होती है या नहीं होती। 'ज्योति' बड़ी और छोटी का क्या मतलब है? और निराकार मे खो जाने की क्षमता छोटी ज्योति की उतनी ही है, जितनी बड़ी से बड़ी ज्योति की। और निराकार मे खो जाना ही असाधारण हो जाना है। तो छोटी ज्योति कौन? और बड़ी ज्योति कौन? छोटी ज्योति

धीरे-धीरे खोती है, बड़ी ज्योति जल्दी खो जाती है यह वैसे ही भूल है, इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा।

हजारों साल तक ऐसा समझा जाता था कि अगर हम एक मकान की छत पर खड़े हो जाएं और एक बड़ा पत्थर गिराएं और एक छोटा पत्थर—एक साथ, तो बड़ा पत्थर जमीन पर पहले पहुंचेगा और छोटा पत्थर पीछे। हजारों साल तक यह ख्याल था किसी ने गिराकर देखा नहीं था, क्योंकि बात इतनी साफ-सीधी मालूम पड़ती थी और उचित तर्कयुक्त कि कोई यह कहता भी कि चलो जरा छत पर गिराकर देखो तो लोग कहते पागल हो। इसमें भी कोई सोचने की बात है। बड़ा पत्थर पहले गिरेगा, बड़ा है, ज्यादा वजन है। छोटा पीछे गिरेगा। बड़ा पत्थर? बड़ा पत्थर जल्दी आएगा। छोटा पत्थर धीरे आएगा। लेकिन, उन्हें पता नहीं था कि बड़ा पत्थर और छोटे पत्थर का सवाल नहीं है गिरने में—सवाल है ग्रेवीटेशन का, सवाल है जमीन की कशिश का। और वह कशिश दोनों पर बराबर काम कर रही है। छोटे और बड़े का उस कशिश के लिए भेद नहीं। तो जब पहली दफा एक आदमी ने चढ़कर 'पिसा' के टावर पर गिराकर देखा, वह अद्भुत आदमी रहा होगा। गिराकर देखे दो पत्थर छोटे और बड़े। और जब दोनों पत्थर साथ गिरे तो वह खुद ही चौंका। उसको भी विश्वास न आया होगा। बार-बार गिराकर देखा कि पक्का हो जाए, नहीं तो लोग कहेंगे पागल हो गया है—ऐसा नहीं हो सकता है। और जब दौड़कर उसने विश्वविद्यालय में खबर दी, जिसमें कि वह अध्यापक था, तो अध्यापकों ने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। छोटा और बड़ा पत्थर साथ-साथ कैसे गिर सकते हैं? छोटा पत्थर छोटा है, बड़ा पत्थर बड़ा। बड़ा पहले गिरेगा, छोटा पत्थर पीछे गिरेगा। और उन्होंने जाने से इन्कार किया। पण्डित सबसे ज्यादा जड़ होते हैं। अध्यापक थे, विश्वविद्यालय के पण्डित थे। उन्होंने कहा यह हो ही नहीं सकता। जाने की जरूरत नहीं। फिर भी, बमुश्किल प्रयास करके वह ले गया और पण्डितों ने देखा कि बराबर दोनों साथ गिरे, तो उन्होंने कहा कि इसमें जरूर कोई जालसाजी है। क्योंकि ऐसा हो कैसे सकता है? या शैतान का कोई हाथ है।

इस उदाहरण को मैं इसलिए कह रहा हूं कि जमीन के अतिरिक्त और एक ग्रेवीटेशन (गुरुत्वाकर्षण) है। एक कशिश, एक गुरुत्वाकर्षण नीचे खींचने

का। और परमात्मा मे भी, निराकार मे भी एक ग्रेवीटेशन है ऊपर खीचने का, एक कशिश। यह जो निराकार फैला हुआ है ऊपर, वह चीजो को ऊपर खीचता है। हम जमीन की कशिश को तो पहचान गए धीरे-धीरे, परन्तु ऊपर की कशिश को हम नही पहचान पा रहे हैं क्योकि जमीन पर हम सब हैं, उस ऊपर की कशिश को कभी कोई जाता है और जो जाता है वह लौटता नही तो कुछ खबर मिलती नही। वह जो ऊपर की कशिश है, उसी का नाम ग्रेस है। इसका ग्रेविटी उसका ग्रेस। इसका गुरुत्वाकर्षण उसका प्रभुप्रसाद। कोई और नाम भी दो तो उससे कोई फर्क नही पडता। वहा छोटी और बडी ज्योति का सवाल नही। वह ज्योति भर बन जाए बस। छोटी ज्योति उतनी ही गति मे चली जाती है जितनी बडी, वह ग्रेस खीच लेती है निराकार की। इसलिए वहा कोई छोटा-बडा नही, क्योकि वहा छोटे-बडे का कोई अर्थ नही। तो बुद्ध और महावीर मे कौन बडा, कौन छोटा—यह साधारण लोगो की गणित की दुनिया है जिसमे हम हिसाब लगाते हैं। और साधारण गणित की दुनिया मे असाधारण लोगो को नही तोला जा सकता। इसलिए वहा कोई बडा-छोटा नही। साधारण से बाहर जो हुआ, वह बडे और छोटे की गणना से बाहर हो जाता है। इसलिए इसमे बड़ी भ्रान्ति कोई नही हो सकती कि कोई कृष्ण मे, कोई क्राइस्ट मे, कोई बुद्ध मे, कोई महावीर मे तोल करने बैठे। कोई कबीर मे, नानक मे, रमण मे, कृष्णमूर्ति मे, कोई तोल करने बैठे कौन बड़ा कौन छोटा, कोई छोटा-बडा नही। लेकिन, हमारे मन को बडी तकलीफ होती है, अनुयायी के मन को बडी तकलीफ होती है कि हमने जिसे पकडा है वह बडा होना ही चाहिए। और इसीलिए मैंने कहा कि अनुयायी कभी नही समझ पाता, समझ ही नही सकता। अनुयायी कुछ थोपता है अपनी तरफ से। समझने के लिए बड़ा सरल चित्त चाहिए, अनुयायी के पास सरल चित्त नही। विरोधी भी नही समझ पाता क्योकि वह छोटा करने के आग्रह मे होता है, अनुयायी से उल्टी कोशिश में लगा होता है। प्रेम ही समझ पाता है। इसलिए जिसे समझना है, उसे प्रेम करना है और प्रेम सदा बेशर्त है। अगर कृष्ण को इसलिए प्रेम किया है कि तुम मुझे स्वर्ग ले चलना तो यह प्रेम शर्तपूर्ण होगा, उसमे कन्डीशन शुरू हो गई। अगर इसलिए महावीर से प्रेम किया है कि तुम ह सहारे हो, तुम्ही पार ले चलोगे भवसागर से, शर्त शुरू हो

गई, प्रेम खत्म हो गया। प्रेम है बेशर्त। कोई शर्त ही नही। प्रेम यह नही कहता कि तुम मुझे कुछ देना। प्रेम का माग से कोई सम्बन्ध ही नहीं। जहा तक माग है, वहा तक सौदा है, जहा तक सौदा है वहा तक प्रेम नही है। सब अनुयायी सौदा करते है। इसलिए कोई अनुयायी प्रेम नही कर पाता। और विरोधी किसी और से सौदा कर रहा है, इसलिए विरोधी हो गया है। और विरोधी भी इसीलिए हो गया है क्योकि उसे सौदे का आश्वासन नहीं दिखाई पड रहा है कि ये कृष्ण कैसे ले जाएगे ? तो कृष्ण को उसने छोड़ दिया है, इन्कार कर दिया है। प्रेम का मतलब है बेशर्त, प्रेम का मतलब है वह आख जो परिपूर्ण सहानुभूति से भरी है और समझना चाहती है। माग कुछ भी नही है।

महावीर को समझने के लिए पहली बात तो मैं यह कहना चाहूगा कि कोई माग नही, कोई सौदा नही, कोई अनुकरण नही, कोई अनुयायी का भाव नही। एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि मे कि व्यक्ति हुआ जिसमे कुछ घटा—हम देखे कि क्या घटा, पहचाने क्या घटा ? खोजे कि क्या घटा ? इसलिए जैन कभी महावीर को नही समझ पाएगा। उसकी शर्त बधी है। जैन महावीर को कभी नही समझ सकता। बौद्ध बुद्ध को कभी नही समझ सकता। इसलिए प्रत्येक ज्योति के आसपास अनुयायियो का जो समूह इकट्ठा होता है, वह ज्योति को बुझाने मे सहयोगी होता है, उस ज्योति को और जलाने मे नही। अनुयायियो मे बड़ा दुश्मन खोजना बहुत मुश्किल है। इन्हे पता ही नही कि ये दुश्मनी कर बैठते है। अब महावीर का जैन होने से क्या सम्बन्ध ? कोई भी नही। महावीर को पता ही न होगा कि वे जैन हैं। और पता होगा तो बड़े साधारण आदमी थे, फिर उस असाधारण दुनिया के आदमी नही थे जिसकी हम बात करते है। महावीर को पता भी नही हो सकता सपने मे भी कि मैं जैन हू। न क्राइस्ट को पता हो सकता है कि मैं ईसाई हूँ। और जिनको यह पता है वे समझ नही पाएँगे क्योकि जैसे हम समझने से पहले कुछ हो जाते है तो जो हम हो जाते है वह हमारी समझ मे बाधा डालता है, क्योकि हम हो पहले जाते हैं और फिर हम समझने जाते हैं। समझने जाना हो तो खाली मन जाइए। इसलिए जो जैन नहीं है, बौद्ध नही है, हिन्दू नही, मुसलमान नही, वह समझ सकता है, वह सहानुभूति से देख सकता है। उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि हो सकती है क्योंकि उसका

कोई आग्रह नहीं। उसका अपना होने का कोई आग्रह नहीं। और बड़े मजे की बात है कि हम जन्म से जैन हो जाते हैं, जन्म से ही बौद्ध हो जाते हैं। मतलब जन्म से हमारे धार्मिक होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। अगर कभी भी मनुष्य को धार्मिक बनाना हो तो जन्म से धर्म का सम्बन्ध बिल्कुल ही तोड देना जरूरी है। जन्म से कोई कैसे धार्मिक हो सकता है, और जो जन्म से ही पकड लिया किसी धर्म को तो वह समझेगा क्या? समझने का मौका क्या रहा? अब तो उसका आग्रह निर्मित हो गया—प्रैजूडिस—पक्षपात निर्मित हो गया। अब वह महावीर को समझ ही नहीं सकता क्योंकि महावीर को समझने के पहले महावीर तीर्थंकर हो गए, परम गुरु हो गए, सर्वज्ञ हो गए, परमात्मा हो गए। अब परमात्मा को पूजा जा सकता है, समझा तो नहीं जा सकता, तीर्थंकर का गुणगान किया जा सकता है, समझा तो नहीं जा सकता। समझने के लिए तो अत्यन्त सरल दृष्टि चाहिए जिसका कोई पक्षपात नहीं। यह मैं कह सकता हूं कि महावीर को समझ सका हूं क्योंकि मेरा कोई पक्षपात नहीं, कोई आग्रह नहीं। लेकिन हो सकता है कि जो मेरी समझ हो, वह शास्त्र मे न मिले। मिलेगी भी नहीं, न मिलने का कारण पक्का है। क्योंकि शास्त्र उन्होंने लिखे हैं जो बधे हैं, शास्त्र उनके लिखे हैं जो अनुयायी हैं, शास्त्र उन्होंने लिखे हैं जो जैनी है, शास्त्र उनके लिए लिखे है जिनके लिए महावीर तीर्थंकर हैं, सर्वज्ञ हैं, शास्त्र उनके लिखे हैं जिन्होंने महावीर को समझने के पहले कुछ मान लिया है। मेरी समझ शास्त्र से मेल न खाए...और यह मैं आपसे कहना चाहता हूं कि समझ कभी भी शास्त्र से मेल नहीं खाएगी। समझ और शास्त्र मे बुनियादी विरोध रहा है। शास्त्र नासमझ ही रखते हैं। नासमझ इन अर्थों मे कि वे पक्षपातपूर्ण हैं। नासमझ इन अर्थों में कि वे कुछ सिद्ध करने को आतुर हैं। नासमझ इन अर्थों मे कि उनमें समझने की उतनी उत्सुकता नहीं, जितनी कुछ सिद्ध करने की।

एक व्यक्ति हैं, वे आत्मा के पुनर्जन्म पर शोध करते हैं। मुझे किसी ने उनसे मिलाया तो उन्होंने मुझसे कहा. हिन्दुस्तान के बाहर न मालूम कितने विश्वविद्यालयो मे वह बोले हैं। यहा के एक विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं। एक उस विश्वविद्यालय मे विभाग भी बना रहे हैं जो पुनर्जन्म के सम्बन्ध मे खोज करता है। कुछ मित्र उन्हे लाए थे मेरे पास मिलाने। बीस-पचीस मित्र इकट्ठे हो गए थे। आते ही उनसे बात हुई तो मैंने उनसे पूछा आप

क्या कर रहे है ? तो उन्होंने कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि आत्मा का पुनर्जन्म है। मैंने कहा कि एक बात मैं निवेदन करूँ कि अगर वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहते है, तो ऐसा कहते ही आप अवैज्ञानिक हो गए। वैज्ञानिक होने की पहली शर्त है कि हम कुछ सिद्ध नही करना चाहते, जो है उसे जानना चाहते है। वैज्ञानिक होना है तो आपको कहना चाहिए हम जानना चाहते है कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है या नही होना है। आप कहते है कि यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है तो आपने पहले ही मान लिया है कि पुनर्जन्म होता है। अब सिर्फ सिद्ध करने की बात रह गई सो आप वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर सकते हैं। तो अवैज्ञानिक आप हो ही गए। तो मैंने कहा इसमे विज्ञान का नाम पीछे मत डालें, व्यर्थ है। वैज्ञानिक बुद्धि कुछ भी सिद्ध नही करना चाहती, जो है, उसे जानना चाहती है। और शास्त्रीय बुद्धि इसलिए अवैज्ञानिक हो गई कि वह कुछ सिद्ध करना चाहती है। जो है उसे जानना नही चाहती। जो है, हो सकता है हमारे मन मे समझने-सोचने से बिल्कुल भिन्न हो, विपरीत हो। इसलिए शास्त्रीय बुद्धि का आदमी परम्परा से बधा है, सम्प्रदाय से बधा है, भयभीत है, सत्य पता नही कैसा है ? और सत्य कोई हमारे अनुकूल ही होगा, यह जरूरी नही। और अनुकूल ही होता तो हम कभी का सत्य मे मिल गए होते। सम्भावना तो यही है कि वह प्रतिकूल होगा। हम असत्य हैं, वह प्रतिकूल होगा। लेकिन हम सत्य को अपने अनुकूल ढालना चाहते हैं, तब सत्य भी असत्य हो जाता है। सब शास्त्रीय बुद्धियाँ असत्य की तरफ ले जाती हैं। तो मेरी बात न मालूम कितने तलों पर मेल नही खाएगी ? मेल खा जाए कभी तो यही आश्चर्य है। खा जाए तो वह सयोग की बात है। न खाना बिल्कुल स्वाभाविक होगा। फिर शास्त्र से मेरी पकड नही है।

महावीर को खोजने का एक ढग तो यह है कि महावीर के सम्बन्ध मे जो परम्परा है, जो शास्त्र है, जो शब्द सग्रहीत है, हम उसमे जाएँ। और उस सारी परम्परा के गहरे पहाड को तोडें, खोजें और महावीर को पकडें कि कहाँ है महावीर। महावीर को हुए ढाई हजार साल हुए। ढाई हजार सालो मे जो भी लिखा गया महावीर के सम्बन्ध मे, हम उस सबसे गुजरें और महावीर तक जाएँ। यह शास्त्र के द्वारा जाने का रास्ता है जैसा कि आम तौर से जाया जाता है। लेकिन, मैं मानता हूँ कि इस मार्ग मे कभी जाया ही नही

जा सकता। कभी भी नहीं जाया जा सकता। आप जहां पहुंचेंगे उसका महावीर से कोई सम्बन्ध ही नहीं होगा। उसके कारण हैं। थोड़े हमें समझ लेने चाहिएं। महावीर ने जो अनुभव किया है, किसी ने भी जो अनुभव किया, उसे शब्द में कहना कठिन है। पहली बात है। जिसे भी कोई गहरा अनुभव हुआ है, वह शब्द की असमर्थता को एकदम तत्काल जान पाता है कि बहुत मुश्किल होगी। परमात्मा का, सत्य का, मोक्ष का अनुभव तो बहुत गहरा अनुभव है। साधारण सा प्रेम का अनुभव भी अगर किसी व्यक्ति को हुआ हो तो वह पाता है कि क्या कहूं? कैसे कहूं? नहीं, शब्द में नहीं कहा जा सकता। प्रेम के सम्बन्ध में अक्सर वे लोग बातें करते रहेंगे जिन्हें प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है। जो प्रेम के सम्बन्ध में बहुत आश्वासन से बातें करता हो, समझ ही लो कि उसे प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है क्योंकि प्रेम के अनुभव के बाद हैजीटेशन आएगा, आश्वासन नहीं रह जाएगा। बहुत डरेगा वह, चिन्तित होगा कि कैसे कहूं? क्या कहूं? कहता हूं तो गड़बड़ हो जाती है सब। जो कहना चाहता हूँ वह पीछे छूट जाती है। जो कभी सोचा भी नहीं था वह शब्द से निकल जाता है। जितनी गहरी अनुभूति, उतने ही थोथे और व्यर्थ हैं शब्द। क्योंकि शब्द है सतह पर निर्मित। और शब्द है उनके द्वारा निर्मित जो सतह पर जिए हैं। अब तक सन्तों की कोई भाषा विकसित नहीं हो सकी है। जो भाषा है वह साधारण जनों की है उस भाषा में असाधारण अनुभव को डालना ऐसा ही कठिन है जैसा कि हम संगीत सुने, जैसा कि हम संगीत सुने और कोई बहरा आदमी कहे कि संगीत को मैं सुन नहीं सकता तो तुम संगीत को पेन्ट कर दो, चित्र बना दो! तो मैं शायद थोड़ा समझ जाऊँ। क्या किया जाए संगीत को पेन्ट करने के लिए? कैसे पेन्ट करे, की है कोशिश लोगों ने, राग और रागनियों को भी चित्रित किया है। लेकिन, वे भी उनकी ही समझ में आ सकती हैं, जिन्होंने संगीत सुना है। बहरे आदमी के वे भी कुछ समझ नहीं पड़ती। मेघ घिर गए हैं, वर्षा की बूंदें आ गई हैं, और मोर नाचने लगे हैं और एक लड़की है। उसकी साड़ी उड़ी जाती है और वह घर की तरफ भागी चली जाती है। उसके पैर के घुंघरू बज रहे हैं। अब किसी राग को किसी ने चित्रित किया है। लेकिन बहरे आदमी ने कभी आकाश के बादलों का गर्जन नहीं सुना। इसलिए चित्र में भी बादल बिल्कुल शान्त मालूम पड़ते हैं। उनके गर्जने का सवाल ही नहीं उठता। बहरे

आदमी ने कभी पैरो मे बंधे घुंघरू की आवाज नहीं सुनी । तो घुंघरू दिख सकते है और उसे जो दिखता है घूघरू-घूंघरू ही नही । जो दिखता है, वह दिया है, घूघरू तो कुछ और ही है जो घटता है वह जो दिखता है वह और है। घूंघरू सुना जाता है। और जो जो दिखता है उसमे, और जो सुना जाता है उसमे बड़ा फर्क है। एक चीज दिखाई पड रही है घूंघरू पैर मे बधे। लेकिन, जिसने कभी घूंघरू नही सुने उसे क्या दिखाई पडता है ? उसे एक चीज दिखाई पड रही है जिसका घूघरू से कोई सम्बन्ध नही। वह चित्र बिल्कुल मृत है क्योंकि उस चित्र से ध्वनि का कोई अनुभव उस आदमी को नही हो सकता जिसने ध्वनि ही नही सुनी। मगर यह भी आसान है क्योकि कान और आख एक ही तन की इन्द्रिया हैं। यह इतना कठिन नही। है तो बिल्कुल कठिन फिर भी उतना कठिन नही है। जब कोई व्यक्ति अतीन्द्रिय सत्य को जानता है तो सभी इन्द्रिया एकदम व्यर्थ हो जाती हैं और जवाब देने मे असमर्थ हो जाती हैं। बोलना पडता है इन्द्रिय से और यह जाना गया है वह वहा जाना गया है, जहा कोई इन्द्रिय माध्यम नही है। एक इन्द्रिय माध्यम है जानने मे तो दूसरी इन्द्रिय अभिव्यक्ति मे माध्यम नही बन पाती। और अगर इन्द्रिय माध्यम ही न हो अनुभव की तो फिर इन्द्रिय कैसी रही ? इसलिए जो जानता है एकदम मुश्किल मे पड जाता है। बहुत बार तो वह मौन हो जाता है, 'मौन' भी बडी पीडा देता है क्योकि लगता है उसे कि कहू, लगता है कि कह दूं। चारो तरफ वह ऐसे लोगो को देखता है जिनको भी यह हो सकता है। और आसूओ से भरी हुई आखें देखता है, क्लान्त चेहरा देखता है, चिन्ता भरे हुए हृदय देखता है। चारो तरफ रुग्ण, विक्षुब्ध मनुष्यो को देखता है। और भीतर देखता है, जहा परम आनन्द घटित हो गया है और उसे लगता है कि उसे भी देख सकता है जो निकट खड़ा है। कोई कारण नहीं है, कोई बाधा नहीं है, कोई रुकावट नही है, तो उसे कह दू। और कहने मे शब्द एकदम असमर्थ हो जाता है।

तो महावीर जैसा व्यक्ति जब बोलता है पहला झूठ वह हो जाता है जब वह बोलता है। वह जो उसने बोला वह एक प्रतिशत भी वह नहीं है जो उसने जाना। फिर भी वह हिम्मत करता है, साहस जुटाता है और सोचता है क्या है। नहीं हजार किरणें पहुचेंगी तो एक किरण पहुंचेगी। खबर तो पहुच जाएगी। वह बोलता है। अगर महावीर की वाणी पकड़

कर ही कोई महावीर की खोज करने जाए तो भी महावीर नहीं मिलेंगे। ठेठ महावीर को सुनकर ही कोई अगर उनकी वाणी पकड़कर खोजने जाए तो एक्ज़ल बिल्कुल बदल जाएगा। जो महावीर की वाणी को ही पकड़कर महावीर को खोजने जाएगा तो कही पहुचेगा जहां महावीर नहीं होंगे। बिल्कुल चूककर निकल जाएगा वहां से, बिल्कुल ही चूक जाएगा। क्योंकि शब्द ने नही जाना है जो महावीर ने जाना है। वह जाना है निःशब्द ने। और हमने पकडा है शब्द। अब शब्द से हम जहां जाएगे वह वहां नही ले जाने वाला है जहा नि.शब्द मे जाने वाला गया होगा। और फिर अढाई हजार साल बाद महावीर का शब्द जिन्होंने सुना उनमे से जिन्होंने समझा होगा थोडा-बहुत, वे मौन मे चले गए होगे। जिनको थोडी भी समझ आई होगी, पकड आई होगी और नि शब्द की झलक का जरा सा इशारा मिला होगा, वे निःशब्द में भाग गए होगे। जिनकी समझ मे नही आई होगी वे शब्द-सग्रह करने में लग गए होगे। तो महावीर के पास जो समझा होगा वह मौन मे गया होगा। जो नही समझा होगा वह गणधर बन गया होगा। अब यह बडा उल्टा मामला है। आम तौर से हम सोचते हैं कि महावीर के पास जो गणधर हैं, वे उनके सबसे अधिक समझने वाले लोग है। इससे बड़ा झूठ नही हो सकता। महावीर के पास जो सबसे ज्यादा समझने वाला होगा वह मौन मे चला गया होगा। वह तो गया होगा खोज मे वहा। और जो सबसे कम समझने वाला है, वह महावीर क्या बोल रहे हैं, उसको दूसरे तक पहुंचाने की व्यवस्था करने मे लग गया होगा। तो गणधर वे नही हैं जो महावीर को सर्वाधिक समझ सकें। गणधर वे हैं जो महावीर की वाणी का यथार्थ मर्म तो समझ न पाए, किन्तु उनके शब्दो को पकड़ बैठे और उनका संग्रह करने मे लग गए।

परिग्रही जो व्यक्ति होगा, वह चीज सब सग्रह करता है। चाहे धन सग्रह करे, चाहे शब्द संग्रह करे, चाहे यश संग्रह करे, इससे कोई फर्क नही पड़ता। एक परिग्रह की वृत्ति है मनुष्य के अन्दर कि इकट्ठा कर लो। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं जिनके इकट्ठा करने में कुछ थोड़ा-बहुत अर्थ भी हो सकता है—जैसे कि कोई धन इकट्ठा करे। धन इकट्ठा करने में थोड़ा अर्थ हो सकता है क्योंकि धन परिग्रह की वृत्ति से ही पैदा हुआ है और परिग्रही वृत्ति का ही वाहन है, परिग्रही वृत्ति की ही विनिमय मुद्रा है। यानी परिग्रही व्यक्ति का ही धन आविष्कार है। धन का कोई व्यक्ति संग्रह करे तो सार्थक भी है क्योंकि

धन परिग्रह का ही माध्यम है और परिग्रह के लिए ही है लेकिन जिस अनुभव से महावीर गुजरे है वह अपरिग्रह मे घटा है। और उनके शब्दो को जो इकट्ठा कर रहा है, वह परिग्रही वृत्ति का व्यक्ति है।

महावीर को उत्सुकता नही है शब्द संग्रह की, न बुद्ध को है, न क्राइस्ट को है। वैसे तो महावीर भी किताब लिख सकते थे लेकिन महावीर ने किताब नही लिखी, कृष्ण ने भी किताब नही लिखी, बुद्ध ने भी किताब नही लिखी और जीसस ने भी किताब नही लिखी। सिर्फ लाओत्से ने, इन असाधारण लोगो मे से, किताब लिखी और वह भी जबरदस्ती मे लिखी। लाओत्से ने अस्सी साल की उम्र तक किताब नही लिखी। लोग कहते कि कुछ लिखो। और वह कहता कि जो लिखूगा वह झूठ हो जाएगा। जो लिखना है वह लिखा नही जाता, इसलिए इस उपद्रव मे मै नही पड़ता। अस्सी साल तक बचा रहा लेकिन सारे मुल्क मे यह भाव पैदा हो गया कि अब बूढ़ा हुआ जाता है, अब मर जाएगा, जो जानता है वह खो जाएगा। अन्तिम उम्र मे लाओत्से पर्वतो की तरफ चला गया, सब छोड छाडकर, पता नही कि वह कब मरा। उसने कहा कि इससे पहले कि मृत्यु छीने, मुझे खुद ही चला जाना चाहिए। आखिर मृत्यु की प्रतीक्षा क्यो करे, इतना परवश भी क्यो हो? जब वह चीन की रेखा सीमा छोडने लगा तो चीन के सम्राट् ने उसे रुकवा लिया अपनी चुगी-चौकी पर और कहा कि टैक्स चुकाए बिना नही जाने देगे। लाओत्से ने कहा कैसा टैक्स? न हम कोई सामान ले जाते है बाहर, न कुछ लाते है, अकेले जाते हैं, खाली सच तो यह है कि जिन्दगी भर मे खाली है। कुछ सामान कभी गया नही जिस पर टैक्स देना पडे। टैक्स कैसा? सम्राट् ने बहुत मजाक किया और उससे कहा कि टैक्स तो बहुत-बहुत लिए जाते है। इतनी सम्पत्ति कभी कोई आदमी ले ही नही गया, सब कुछ न कुछ दे ही जाते है। तुम बोलते नही हो कि क्या तुम्हारे भीतर है। वह सब चुका दो, कम से कम टैक्स दे दो, सम्पत्ति मत दो, नही तो हम क्या कहेगे, एक आदमी के पास था, वह बिल्कुल ले गया, बिल्कुल ले गया चुपचाप? ऐसा नही हो सकता, इस चुगी-चौकी के बाहर नही जाने देंगे। जबरदस्ती लाओत्से को रोक लिया। वह भी हसा। उसने कहा, बात तो शायद ठीक ही है। लिए तो जाता हू। लेकिन देने का कोई उपाय नही है, इसलिए लिए जाता हू और कुछ नही। देना मैं भी चाहता हू। तब उसने एक छोटी-सी किताब लिखी। उस तरह के असाधारण लोगो में लिखने वाला वह अकेला आदमी है।

पर पहला ही वाक्य यह लिखा है "बड़ी भूल हुई जाती है, जो कहना है वह कहा नहीं जाता। और जो नहीं कहना है वही कहा जाएगा। सत्य बोला नहीं जा सकता। जो बोला जा सकता है वह सत्य हो नहीं सकता। बड़ी भूल हुई जाती है। और मैं इसको जानकर लिखने बैठा हू, इसलिए जो भी आगे पढ़ोगे, इसको जानकर पढना कि सत्य बोला नहीं जा सकता, कहा नहीं जा सकता। और जो कहा जा सकता है, वह सत्य हो नहीं सकता। 'That which can be said is not the Tao' इसे पहले समझ लेना फिर किताब पढना।" तो किसी ने किताब लिखी नहीं, जिसने लिखी उसने प्रश्न-चिह्न पहले लगा दिया। यानी सच तो यह है कि जो समझ जाएगा उसके आगे किताब पढ़ेगा ही नहीं। मामला यह है कि लाओत्से होशियार आदमी मालूम होता है। राजा समझा कि हम चुगी ले रहे हैं। वह गल्ती मे पड गया। जो समझेगा वह उसके आगे किताब पढ़ेगा नहीं। बात खत्म हो गई है। जो नहीं समझेगा वह पढ़ डालेगा। उससे कोई मतलब नहीं।

तो नासमझ किताबें पढते है, समझदार रुक जाते है। बुद्ध, महावीर जैसे लोगो ने किताब नहीं लिखी। कारण हैं बहुत। पक्का नहीं है कि जो कहना है वह कहा जा सकता है। फिर भी कहा। कहने का माध्यम उन्होने चुना, लिखने का नहीं चुना। इसका भी कारण है। क्योंकि कहने का माध्यम प्रत्यक्ष है आमने-सामने। और मैं गया, आप गए कि खो गया। लिखने का माध्यम स्थायी है, आमने-सामने नहीं है। परोक्ष है। न मैं रहूंगा, न आप रहेंगे, वह रहेगा, वह हम से स्वतन्त्र होकर रह जाएगा। कहने मे भूल होती है लेकिन फिर भी सामने है आदमी। अगर मैं कुछ कह रहा हू, तो आप मुझे देख रहे हैं, मेरी आख को देख रहे हैं, मेरी तड़प, मेरी पीडा को भी देख रहे हैं; मेरी मुसीबत भी देख रहे हैं कि कुछ है जो नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि आप थोडा समझ जाएं। लेकिन, एक किताब है, न आंख है, न तड़प है, न पीड़ा है। सब साफ-सुथरा सीधा है। फिर, किताब बचती है। इसमे से किसी ने भी यह फिक्र नहीं की कि बचे। इन सबकी फिक्र यह थी कि कह दें तो बात खत्म हो जाए। इससे ज्यादा उसको बचाना नहो है। लेकिन, बचा ली गई। बचाने वाले लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा इसको बचाना होगा; बड़ी कीमती चीज है; इसको बचा लो। उन्होने बचाने की कोशिश की। फिर उनकी बचाई हुई किताब पर किताबें चलती आईं, टीकाएं होती रहीं। और वह बचाना भी महावीर के ठीक सामने नहीं हो सका। उसका

कारण है कि शायद महावीर ने इन्कार किया होगा। बुद्ध ने इन्कार किया होगा कि यह सामने न हो। तुम लिखना मत। तो वह तीन-तीन सौ, चार-चार सौ, पाच-पाच सौ वर्ष बाद हुआ, यानी जो भी लिखा गया है सुनकर नहीं लिखा गया है। किसी ने सुना है, फिर किसी ने किसी से कहा है। ऐसे दो चार पीढ़ी बीत गई हैं और कहते-कहते वह लिखा गया है। महावीर असमर्थ हैं कहने में। फिर उनको सुननेवाले ने किसी से कहा है, फिर उसने किसी से कहा है, फिर, दो, चार पाच पीढ़ियो के बाद वह लिखा गया है। फिर उस पर टीकाएं चलती रही है, विवाद चलते रहे हैं। वे हमारे पास शास्त्र हैं। अगर किसी को महावीर से चूकना हो तो उन शास्त्रों से सुगम उपाय नही। इन शास्त्रो मे चला जाए तो वह महावीर तक कभी नहीं पहुच सकेगा। तो मैं कोई शास्त्रो से महावीर तक पहुचने की न तो सलाह देता हू और न मैं उस रास्ते से उन तक गया हू और न मानता हू कि कोई कभी जा सकता है। मैं बिल्कुल ही अशास्त्रीय व्यक्ति हू। अशास्त्रीय से कहना चाहिए एकदम शास्त्र-विरोधी।

फिर, महावीर तक पहुचने का क्या रास्ता है? शास्त्रीय रास्ता दिखाई पड़ता है तो इसलिए साधु-सन्यासी शास्त्र खोले हुए है, खोज रहे है महावीर को और क्या रास्ता है और क्या मार्ग है? अगर सारे शास्त्र खो जाए तो साधु, सन्यासियों और पंडितो के हिसाब मे महावीर खो जाएंगे। क्या बचाव है इस मे? अगर सारे शास्त्र खो जाए तो महावीर का क्या बचाव है? महावीर खो जायेंगे। लेकिन क्या सत्य का अनुभव खो सकता है? क्या यह सम्भव है कि महावीर जैसी अनुभूति घटे और अस्तित्व के किसी कोने मे सुरक्षित न रह जाए? क्या यह सभव है कि कृष्ण जैसा आदमी पैदा हो और सिर्फ आदमी की लिखी किताबो मे उसकी सुरक्षा हो और अगर किताबें खो जाएं तो कृष्ण खोजाएगा। अगर ऐसा है तो न कृष्ण का कोई मूल्य है, न महावीर का कोई मूल्य है। आदमी के रिकार्ड, क्लर्कों के रिकार्ड, गणधरो के रिकार्ड ही अगर सब कुछ है, तो ठीक है किताबें खो जाएगी और ये आदमी खो जाएगे। मगर इतना सस्ता नही है यह मामला कि इतनी बड़ी घटनाएं घटे जिन्दगी मे और वह खरबो वर्षों मे और वहां, खरबों लोगो के बीच कभी कोई आदमी परम सत्य को उपलब्ध होता हो, उसके परम सत्य के उपलब्ध होने की घटना सिर्फ कमजोर आदमियो की कमजोर भाषा मे सुरक्षित रहे और अस्तित्व मे इसकी सुरक्षा का कोई उपाय न हो, ऐसा नही है। ऐसा हो भी नही सकता। इसलिए एक और उपाय है। यानी मेरा कहना

है कि जगत मे जो भी महत्त्वपूर्ण घटता है, महत्त्वपूर्ण तो बहुत दूर की बात है, साधारण, और अमहत्त्वपूर्ण घटता है, वह भी किसी तरह पर सुरक्षित होता है, महत्त्वपूर्ण तो सुरक्षित होता ही है, वह तो कभी नष्ट नही होता। इसलिए जो भी महत्त्वपूर्ण घटा है जगत में कभी भी वह मनुष्य पर नही छोड़ दिया गया है कि आप उसे सुरक्षित करे। यह तो ऐसे ही होगा कि अन्धो के एक समाज मे एक आदमी को आंख मिल जाए और उसे प्रकाश दिखाई पड़े, और अन्धो के ऊपर निर्भर हो कि तुम उसके अनुभव को सुरक्षित रखो, अन्धो को छूट हो इस बात की कि तुम्हारे बीच जो आंख वाला एक आदमी पैदा हुआ और उसे जो अनुभव हुआ, तुम उसे सुरक्षित रखना, तुम वेद बनाना, तुम आगम रचना, तुम गीता रचना, तुम बाइबिल बनाना, इन्हे सुरक्षित रखना। और फिर अनुभव के अनुभव की टीकाए होती चली जाए। और हजार दो हजार साल बाद आख वाले आदमी की देखी गई बात अन्धो द्वारा सुरक्षित की गई हो, अन्धो द्वारा व्याख्यायें की गई हो और फिर उनके द्वारा हम आख वाले आदमी की बात को खोजने निकले तो हमसे ज्यादा मूढ़ कोई दूसरा नही होगा।

तो मैं यह कहना चाहता हू कि अस्तित्व मे कुछ भी खोता नही। सच तो यह है कि अभी भी मैं जो बोल रहा हू वह कभी खोएगा नही। आप भी जो बोल रहे हैं, वह भी नही खोएगा। जो शब्द एक बार पैदा हो गया है, वह नही खोएगा कभी। आज हम जानते है, लदन मे कोई बोल रहा है, रेडियो से हम यहा श्रीनगर मे उसे सुनते है। आज से दो सौ वर्ष पहले नही सुन सकते थे और आज से दो सौ वर्ष पहले कोई मान भी नही सकता था कि यह भी कभी सम्भव होगा कि लदन में कोई बोलेगा और श्रीनगर मे कोई सुनेगा। कोई नही मान सकता था। लेकिन क्या आप समझते हैं कि उस दिन लदन मे जो बोला जा रहा था, वह श्रीनगर मे नही सुना जा रहा था? यानी मेरा मतलब यह है कि उस दिन जो भी ध्वनि तरगें लदन में बोलने से पैदा हो रही थीं वे श्रीनगर की इस डल झील के पास से नही गुजर रही थी? अगर नही तो आज आप रेडियो मे कैसे पकड़ लेते? अभी भी यहां से गुजर रही हैं सब तरगें। सारे जगत मे अभी जो बोला जा रहा है, वह भी आपके पास से गुजर रहा है। सिर्फ एक यांत्रिक तरकीब की जरूरत है जिससे वह पकड़ा जा सके। बस। यानी मेरा कहना है कि कृष्ण ने अगर कभी भी बोला है तो आज भी उसकी ध्वनि तरगें, किन्हीं तारो के

निकट से गुजर रही है। यह भी ध्यान रहे कि लदन में जो बोला गया है ठीक आप उसी वक्त नही सुन लेते हैं उसे, क्योंकि ध्वनि तरगो को आने मे समय लगता है। तो जब लन्दन मे बोला जा रहा है तब आप ठीक उसी वक्त नही सुनते है, थोड़ी देर बाद सुनते हैं। मतलब यह हुआ कि उतनी देर ध्वनि तरगे आप तक यात्रा करती हैं। जो कभी भी बोला गया है उसकी ध्वनि तरगे आज भी यात्रा करती हैं, किन्ही तारो के पास से गुजर रही है। और अगर उन तारो के लोगो के पास व्यवस्था होगी यत्रो की तो वे उन्हे पकड़ लेते होगे। यानी किसी तारे पर आज भी महावीर के वचन सुने जा रहे होगे। इसका क्या मतलब हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि इस अनन्त आकाश मे, अनन्त है इसलिए कुछ नही खोता, जो भी पैदा होता है वह यात्रा करता रहता है।

यह मैं ध्वनि की बात कर रहा हू। लेकिन और भी सूक्ष्म तरगे हैं जहा अनुभूति की तरगे शेष रहती हैं। जब हम बोलते हैं तब ध्वनि की तरगें पैदा होती है। लेकिन जब हम अनुभव करते हैं तब भी एक घटना घटती है और तरगे पैदा होती हैं जो कि और भी सूक्ष्म आकाश मे यात्रा करती है। अगर रेडियो हो सके तो हम आकाश, स्थूल आकाश म घूमती हुई ध्वनि तरगो को पकड लेते हैं। अगर कोई यात्रिक व्यवस्था हो सके तो और सूक्ष्म आकाश मे हुए अनुभवो की तरगो को पुन पकडा जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि जगत मे, जो भी सृष्टि मे जितने गहरे अनुभव हुए हैं उतने गहरे आकाश के तल के रिकार्ड सदा सुरक्षित हैं। वे कभी नष्ट नही होते और यह आदमी पर नही छोडा गया है कि वह लिखकर उनको सुरक्षित करे। इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम इन गहराइयो मे अपने भीतर उतरे, यदि हम विशिष्ट ध्यान रखकर उतरे, तो उन विशिष्ट व्यक्तियो की अनुभूति से हम तत्काल प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड सकते हैं। लेकिन अगर हम कोई विशिष्ट व्यक्ति का ध्यान न रखकर उतरे तो हम अपनी अन्तर अनुभूति मे उतर जाते है। अपने भीतर गहरे मे उतरने वाला व्यक्ति ऐसी व्यवस्था कर सकता है कि वह महावीर बुद्ध, जीसस या कृष्ण से संयुक्त हो जाए। सयुक्त होने का मतलब यह नहीं कि कृष्ण कही बैठे है जिनसे सयोग हो जाएगा। वह दिया तो टूट गया और वह ज्योति भी खो गई। लेकिन उस ज्योति ने जो अनुभव किया था उस अनुभव की सूक्ष्म तरगें अस्तित्व की गहराइयों मे आज भी सुरक्षित हैं। और उतनी गहराइयो का विशिष्ट ध्यान लेकर, महावीर का

पूर्ण ध्यान लेकर अगर आप उन गहराइयों पर उतरें तो आपके लिए वे द्वार खुल जाते हैं जहां महावीर के अन्तरंग की सूक्ष्म तरंगें आपको उपलब्ध हो जाएं और जब भी दुनिया में कभी इस तरह के अनुभवों से जुड़ा जाता है तो और कोई जोड़ने का रास्ता नहीं। उसमें सब आदमियों की किताबें खो जाएं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

एक द्वीप था—महाद्वीप अतलान्तिस। लंबा समय हुआ वह डूब गया सागर में। अब वह पृथ्वी पर नहीं है, कभी था, और उसका कोई रिकार्ड नहीं रह गया क्योंकि रिकार्ड भी डूब गए उस द्वीप के साथ। जैसे कि एशिया डूब जाए, पूरा का पूरा एशिया। परिवर्तन हो, सागर हावी हो जाए और एशिया पूरा डूब जाए और एशिया के सारे रिकार्ड भी उसके साथ डूब जाएं और आज तो यह है कि एशिया के कुछ रिकार्ड इंगलैंड में भी हैं, न्यूयार्क में भी हैं जो बच जाए—उस दिन तो यह भी सम्भव नहीं था, उस दिन तो हमें पता ही नहीं था दूसरे कुछ का। अतलान्तिस महाद्वीप पूरा का पूरा डूब गया। कई करोड़ वर्ष पहले। लेकिन कुछ लोग जो गहराइयों में उतरते रहे वे निरन्तर इसकी खबर देते रहे कि एक महाद्वीप पूरा का पूरा डूब गया है और वे इसका रिकार्ड करते चले गए। इसके कोई रिकार्ड नहीं बचे। लेकिन इजिप्ट के कुछ फकीरों ने तिब्बत के कुछ साधकों ने इस बात के रिकार्ड किये कि पूरा का पूरा महाद्वीप डूब गया है, और इसकी कुछ आन्तरिक खोज करने वाले लोग इसकी खोज में निरन्तर लगे रहे कि वह कैसा द्वीप था, कैसी उनकी व्यवस्था थी और आप जानकर हैरान होंगे कि कुछ लोगों ने निरन्तर मेहनत करके सिर्फ आन्तरिक अनुभव में उस महाद्वीप के सारे के सारे नक्शे निर्मित किए। उस जाति के लोगों के चेहरे, उस जाति का धर्म, उस जाति की मान्यताएं, विचार, अनुभूतियां—इनका सारा का सारा इन्तजाम किया। अगर एक व्यक्ति करे तो बड़ा मुश्किल है क्योंकि उसका पक्का कैसा माना जाए कि आदमी कल्पना नहीं कर रहा है। कल्पना कर सकता है। लेकिन अलग-अलग लोगों ने इसके प्रयोग किए और निकटतम सहमतियों पर पहुंच गए कि वह नक्शा ऐसा होगा। वैज्ञानिक तो पहले बिल्कुल इन्कार किए कि ये कभी हो ही नहीं सकता, इसका कोई रिकार्ड ही नहीं, ऐसा कोई द्वीप कभी रहा नहीं महाद्वीप पर, इसका कोई हिसाब ही नहीं कहीं। लेकिन ये लोग अपना काम करते चले गए और इन लोगों के दबाव से अन्ततः वैज्ञानिकों को भी चिन्तना करनी पड़ी कि कुछ हो सकता है। इसकी खोज-बीन वैज्ञानिक ढंगों

से की गई और पता चला कि ऐसा एक महाद्वीप निश्चित ही डूबा था और वह आज समुद्र के तल मे पडा हुआ है। और जहा इन साधकों (मिस्टिक्स) ने कहा था कि वह है, वह करीब-करीब वहां है। उस पर बड़ी गहराई की पानी की परते है। और इनने जो कहा था कि उसमें इस तरह के पहाड होने चाहिए, इन-इन रेखाओ पर, वहा पहाड भी हैं। इसका भी वैज्ञानिक अनुसन्धान चला और अतलातिस पर बडी खोज चल रही है कि क्या वहां से कुछ उपलब्ध हो सकेगा? लेकिन उसकी पहली खबर देने वाले वे लोग थे जिनको कोई मतलब न था। उसकी बात ही बिल्कुल झूठ समझी गई कि अतलातिक महासागर के नीचे अतलातिस डूबा हुआ है। यह मैं इसलिए कह रहा हू कि मेरा रास्ता शास्त्र के मार्ग से बिल्कुल नही है। और मेरी यह भी समझ है कि उस मार्ग जैसा कोई मार्ग भी नही है। इसलिए जो भी उस मार्ग पर पड गए है सिर्फ भटकने वाले सिद्ध हुए हैं। वह कही ले जाने वाले सिद्ध नही हुए है। सरल वही है। किताब पढने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है हालाकि कुछ लोगो के लिए वह भी कठिन है। किताब पढ़ने से ज्यादा सरल बात और क्या हो सकती है? लेकिन आकाशिक रिकार्ड, जिनकी मैं बात कर रहा हू कि अस्तित्व की गहराइयो मे अनुभूतिया सुरक्षित रह जाती है, वहा से उन्हे वापिस पकडा जा सकता है और वहा से उनसे पुन जीवन सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते है।

तो मै भी जो चर्चा करूगा इधर, उसकी शास्त्रानुसार ताल-मेल खोजने की कोशिश मे मत पडना। उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं। किसी और द्वार से ही मैं चेष्टा करता हू और उस चेष्टा मे जो कुछ मुझे दिखाई पडता है, वह मैं आपसे कहता चलूगा। किन्तु जब तक कोई और लोग मेरे साथ उस प्रयोग को करने के लिए राजी न हो तब तक मेरी बात प्रामाणिक है या नही कुछ निर्णय नही हो सकता। उसका कोई निर्णय का उपाय ही नही है दूसरा जब तक कि कुछ लोग मेरे साथ प्रयोग करने को राजी न हो जाएं। और तब मैं लिखकर दू कि तुम्हे यह अनुभव होगा और उन्हे हो जाए तो फिर कुछ बात बने। उसी आशा मे यह सारी बात मैं करूगा कि कुछ लोग निकल आए शायद। विवाद का इसमे उपाय ही नही है कुछ। लेकिन विवाद किससे करना है। हो सकता है कुछ लोग इस प्रेरणा से भर जाए और हिम्मत जुटाए तो आविष्कार हो सकता है। और तभी कोई तोल हो सकती है कि जो मैं कह रहा हू वह कहा तक, कितनी दूर तक, क्या अर्थ रखता है। अब

इसमे उल्टे मामले आजाएंगे और आपके पास कोई उपाय नही होगा कि क्या करे ।

पश्चिम मे एक फकीर था गुरजयिफ । सारी ईसाइयत का इतिहास यह कहता है कि जुडास ने मरवाया जीसस को । जूडास ने जीसस को तीस रुपये पर बेचा और जूडास जीसस का दुश्मन था । सीधी बात है जो आदमी मरवा दे वह दुश्मन है । उसका शिष्य नही था ? शिष्य तो था लेकिन दगाबाज ! धोखा किया, और जीसस को बिकवा दिया । जीसस को सूली इसी वजह से लगी । उसने पकड़वाया रात को आकर । जीसस रात मे ठहरे कहीं और जूडास लाया दुश्मन के सिपाहियो को और जीसस को पकडवा दिया । जूडास के नाम से गदा नाम ईसाइयत के इतिहास मे दूसरा नहीं । यानी किसी आदमी को गाली देनी हो तो जूडास कह दो । इससे बडी कोई गाली नही है । जीसस को फांसी लगवाने मे और बुरा क्या हो सकता है ? लेकिन गुरजियफ पहला आदमी है जिसने कहा कि यह बात सरासर झूठी है । जूडास दुश्मन नही है, जीसस का दोस्त है और पकडवाने मे जीसस का षडयन्त्र है जूडास का नहीं । जीसस चाहते हैं वे पकडे जाए और सूली पर लटकाए जाए । जूडास उनका सेवक है इतना बडा सेवक कि जब जीसस उससे कहते हैं कि तुम मुझे पकडवाते क्यो नही तो बाकी शिष्यो मे किसी की हिम्मत नही है इस काम को करवाने की । लेकिन जूडास तो सेवक है । वह कहता है, "आपकी आज्ञा" । जूडास पकडवा देता है । तो गुरजयिफ ने सबसे पहले यह कहा कि मैं उन गहराइयो मे इस बात की खोज कर आपको खबर देता हू कि जूडास दुश्मन नहीं । और जूडास जैसा मित्र पाना मुश्किल है कि जो मरवाने तक की आज्ञा को चुपचाप शिरोधार्य कर ले और चला जाए । इसीलिए सारी ईसाइयत कहती है कि जूडास के पैर पडे ईसा पकडे जाने के पहले । ईसाइयत कहती है कि कितना अद्भुत था जीसस कि जो पकडा रहा था उसके पैर छुए, पैर धोए । गुरजयिफ कहता है कि पैर पडने योग्य था वह जूडास । ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है कि जिसने इतने पर भी इन्कार न किया जब जीसस ने कहा कि तुम मुझे पकडवा दो, मेरी फासी लगवानी जरूरी है । अगर फासी नही लगती, जो मैं कह रहा हू वह खो जाएगा । मेरी फासी लगती है तो सील मोहर हो जाएगी । मेरी फांसी ही अब मेरा काम कर सकती है और कोई उपाय नही है । तो तुम मुझे फांसी लगवा दो । फासी से बचाने वाला मित्र खोजना आसान है । फांसी लगवाने वाला मित्र खोजना बड़ा मुश्किल है ।

इसलिए गुरजयिफ ने जब पहली दफा यह बात कही तो एक बडी मुश्किल का मामला हो गया। सारी ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया कि यह बकवास है। यह कहता क्या है? यह तो हमारा सारा हिसाब ही पलट गया। यह तो बात ही ठीक नही। लेकिन एक आदमी हिम्मत जुटाकर नही आया कि आकर कोशिश करता कि यह आदमी कहता कहा से है। लेकिन मैंने प्रयोग किया और मैं हैरान हुआ कि वह ठीक कहता है। जूडास दुश्मन नही है। जूडास दोस्त है। वह फकीर ठीक कहता है। वह गल्त कहता ही नही बिल्कुल। मगर बडी मुश्किल से खोज पाया होगा। तो मेरा कहना है कि शास्त्र खोज का रास्ता है ही नही बल्कि सबसे बडी रुकावट है क्योकि मन को ऐसी बातो से भर देता है जो कि हो सकता है नही भी हो। और तब उनसे नीचे उतरना, उनसे विपरीत जाना बिना जाने मुश्किल हो जाता है, एकदम मुश्किल हो जाता है। और महावीर के सम्बन्ध मे तो बहुत ज्यादा हुई है यह बात, हद की है बहुत ही हद की है। गुरजयिफ ने जो यह कहा तो उसको उसने नाम दिया—क्राइस्ट ड्रामा। उसने कहा कि यह सूली-बूली सब खेल है। यह सूली बिल्कुल खेल है और नाटक है पूरा रचा हुआ। जीसस ने इस ख्याल पर अपने मित्र को राजी कर लिया है और अपने आसपास की हवा को कि जो मैं कह रहा हू अगर तुम्हे बहुत दूर तक पहुचाना हो उसकी खबर, तो मेरी फासी लगवा देना जरूरी है। नही तो यह बात खो जाएगी। मेरी फासी ही मूल्यवान बनेगी? इसलिए 'क्रास' मूल्यवान बन गया। जीसस से ज्यादा मूल्यवान 'क्रास' हो गया। यह जो इस तरह की बहुत सी बाते हुई बहुत ही मुश्किल मे डालती है। लेकिन, उनके सम्बन्ध मे विवाद करने का कोई उपाय नही है। उनके सम्बन्ध मे प्रयोग करने का ही उपाय है। इधर, इन दिनो मे बहुत ऐसी बात होगी जो शायद आपको पहली दफा ही ख्याल मे आये, पहली दफा ही सुने आप। लेकिन इस कारण न तो मैं कहता हू कि मान लेना कि मैने कही, और न कहता हू कि इसलिए इन्कार कर देना कि पहली दफा किसी ने कही। अगर सच मे ही प्रेम हो तो खोज पर निकलना।[1]

---

१. इस खोज पर निकलने की प्रक्रिया अत्यन्त सुन्दर शब्दो मे आचार्य जी ने दी है। यह प्रक्रिया उन्ही के शब्दों में इसी ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट रूप मे दी है। प्रवचन के सभी श्रोता इस प्रयोग मे लाभान्वित हुए थे। पाठक भी परिशिष्ट से उस प्रयोग की विधि को जानकर लाभ उठायें। —सम्पादक।

प्रश्नोत्तर

(१८-६-६६) प्रात

प्रश्न : आपने कहा कि आप महावीर के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि से कुछ बतलाएंगे और यदि यह जानना हो कि जो आपने कहा है वह ठीक है या गलत है, दूसरा कोई आदमी भी उसी प्रकार का प्रयोग करके देख ले। मुझे लगता है कि दूसरा भी साधन है जिससे आपके कथन की प्रामाणिकता जांची जा सकती है। वह साधन यह है कि हममें से किसी के जीवन की कोई घटना जो अब तक साक्षात् जानना सम्भव नहीं है, आप यदि बतला दें तो यह प्रमाणित हो सकता है कि जिस प्रकार आप हमारे जीवन की कोई ऐसी घटना जान गए जो आपने कभी देखी-सुनी नहीं उसी प्रकार आप महावीर के पिछले जीवन को अन्तर्दृष्टि से जान सके होंगे। क्या आप इस प्रकार करना पसंद करेंगे ?

उत्तर : दो तीन बातें समझनी चाहिए। पहली बात यह है कि महावीर के बाह्य जीवन की घटना जानना एक बात है और महावीर के अन्तर्जीवन में क्या घटा, यह जानना दूसरी बात है। महावीर के बाह्य जीवन से मुझे प्रयोजन ही नहीं है, न जानने की उत्सुकता है। लेकिन अन्तर्जीवन में क्या घटा उससे प्रयोजन है, उत्सुकता भी है, उस तरफ दृष्टि भी है। तुम्हारे अन्दर भी देखा जा सकता है। तुम्हारे बहिर्जीवन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। सच बात तो यह है कि जिसे हम बाहर का जीवन कहते है वह एक स्वप्न से ज्यादा मूल्य नहीं रखता। हमें वह बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता है क्योंकि हम उस स्वप्न में ही जीते हैं जैसे रात कोई स्वप्न देखे तो स्वप्न में उसे पता ही नहीं चलता कि यह सपना है। लगता है वह बिल्कुल सत्य है। जब तक जाग न जाए तब तक सपना सत्य ही मालूम पड़ता है। जागते ही सपना एकदम व्यर्थ हो जाता है।

तो मेरे लिये बाहर के जीवन का कोई अर्थ ही नहीं कि महावीर कब पैदा हुए, कब मरे, शादी की या नहीं की, बेटी पैदा हुई कि नहीं हुई। इन सबसे मुझे प्रयोजन ही नहीं, कोई अर्थ ही नहीं। हो तो ठीक, न हुआ हो तो ठीक। मैं तो यहां तक कहना चाहता हूं कि महावीर भी हुए हो तो ठीक, न हुए हो तो ठीक। यह महत्त्वपूर्ण ही नहीं है। जो महत्वपूर्ण है वह तो अन्तर में जो गति हुई, चेतना में जो विकास हुआ, जो रूपान्तरण हुआ वह महत्व-

पूर्ण है। वैसे तो किसी के अन्तर्जीवन मे उतरा जा सकता है लेकिन तब भी तुम जाच नही कर पाओगे क्योकि तुम खुद ही अपने अन्तर्जीवन से परिचित नहीं हो। अगर, फिर भी मेरी बात की जाच करनी हो तो तुम्हे अपने अन्तर्जीवन मे उतरना पडेगा।

दूसरी बात यह है कि तुम्हारे बहिर्जीवन के बारे में यदि कोई कुछ घटनाए बताये तो इससे यह पक्का नही होता कि वह महावीर के बारे मे जो बताएगा वह ठीक होगा। क्योकि तुम मौजूद हो और तुम्हारे बहिर्जीवन की घटनाओ मे उतरना बडी साधारण-सी कला की बात है जो एक साधारण-सा टेलिपैथिस्ट भी बता सकेगा, एक साधारण सा ज्योतिषी भी बता सकेगा। वह चार आने लेकर भी बता सकेगा। तो बहिर्जीवन का कोई मूल्य नही, अगर कोई बता भी दे तुम्हारे बहिर्जीवन को तो उससे कुछ प्रामाणिकता नही होती कि वह महावीर के अन्तर्जीवन के बारे मे जो कहेगा वह कोई अर्थ रखता है। असल मे बहिर्जीवन का कोई ऐसा सम्बन्ध ही नही है अन्तर्जीवन मे, और इसीलिए यह समझने जैसा है कि क्राइस्ट का बाहरी जीवन एक है, महावीर का बाहरी जीवन दूसरा है, बुद्ध का तीसरा है, फिर भी अन्तर्जीवन एक है और बहिर्जीवन को देखने वाले लोग इसलिए मुश्किल मे पड जाते हैं।

जिसने महावीर के बहिर्जीवन को पकड लिया है, बुद्ध का जीवन समझने म वह असमर्थ हो जाएगा। क्योकि जो महावीर के बहिर्जीवन मे है, वह सोचता है कि अन्तर्जीवन से अनिवार्य रूप से बधा हुआ है। जैसे वह देखता है कि महावीर नग्न खडे है तो वह सोचता है कि जो परम ज्ञान को उपलब्ध होगा वह नग्न खडा होगा। और यदि बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं तो वह कैसे परम ज्ञान को उपलब्ध होगे। बहिर्जीवन की पकड के कारण ही अन्तर्जीवन के सम्बन्ध मे इतनी खाइया खडी हो गई है। मुझे तो उसमे प्रयोजन ही नही है।

तीसरी बात यह कि मैं ठीक कह रहा हू महावीर के सम्बन्ध मे या नही, इस बात की जाच का भी कोई अर्थ नही है। अर्थ केवल एक है कि वैसे अन्तर्जीवन मे उतरा जा सकता है या नही। मेरी इस जाच-पडताल का भी कोई अर्थ नही है क्योकि मैं इसलिए कह ही नही रहा हू कि मैं सही हू या गलत हू, या कुछ सिद्ध किया जाए। कह इसलिए रहा हू कि तुम जहा हो

वहां से सरक सको, और किसी दूसरी दिशा में गति कर सको। इसलिए यदि सारी बातचीत तुम्हें अन्तर्दशा में गति देने वाली बन जाती है तो मैं मान लूंगा कि काफी प्रमाण हो गया है। और अगर नहीं बनती है और सब तरह से प्रमाणित हो जाता है कि जो मैंने कहा वह ठीक था तो मैं मानूंगा कि बात अप्रामाणिक हो गई। यानी, मेरे लिए अर्थवत्ता इसमे है कि महावीर के जीवन के सम्बन्ध मे मैं जो कहू वह किसी रूप में तुम्हारे जीवन को रूपान्तरित करने वाला बनता हो। न बनता हो तो वह कितना भी सही हो गलत हो गया और बनता हो तो सारी दुनिया सिद्ध कर दे कि वह गलत है, तो मेरे लिए वह गलत न रहा। इसका मतलब यह है; और इसका समझना बहुत उपयोगी होगा, और यही वजह है कि जो लोग जानते रहे हैं उन्होंने इतिहास लिखने पर जोर नहीं दिया। इतिहास की जगह उन्होंने पुराण (मिथ) पर जोर दिया। एक दुनिया है, लोग हैं, जो इतिहास पर जोर दे रहे हैं, एक दूसरी दुनिया है, दूसरा जगत है, कुछ थोड़े से लोगों का जो इतिहास पर जोर नहीं देते, जो पुराण पर जोर देते हैं। और दोनों का अन्तर समझना उपयोगी होगा।

इतिहास का आग्रह है कि बाहर घटी घटनाएं तथ्य (फैक्ट्स) की तरह संगृहीत की जाएं। पुराण इस बात पर जोर देता है कि बाहर की घटनायें तथ्य की तरह इकट्ठी हो या न हो, निष्प्रयोजन है। वे इस भांति इकट्ठी हो कि जब कोई उनसे गुजरे तो उनके भीतर कुछ घटित हो जाए। इन दोनों बातों मे दृष्टि अलग है। तथ्य और इतिहास को सोचने वाला महावीर पर जोर देगा, क्राइस्ट पर जोर देगा—कैसा जीवन ! पुराकथा (मिथ) की दृष्टि वाला व्यक्ति 'तुम' पर जोर देगा कि महावीर का कैसा जीवन कि 'तुम' बदल जाओ। इसमे बुनियादी फर्क पड़े है।

यह हो सकता है कि पुराण (मिथ) किसी दृष्टि से अप्रामाणिक मालूम पड़े। जैसे जीसस का सूली पर चढ़ना और फिर तीन दिन बाद जीवित हो जाना। ऐतिहासिक तथ्य की तरह शायद इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि ऐसा हुआ हो—जैसे जीसस का कुंआरी मां से पैदा होना। ऐतिहासिक तथ्य की तरह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कुंआरी लड़की से कोई पैदा हो सकता है, जिससे पुरुष का सम्पर्क न हुआ हो। बाहर की दुनिया की यह घटना ही नहीं है। बाहर की दुनिया में किसी

कुआरी लडकी से कोई लडका कैसे पैदा होगा। लेकिन जिन्होंने इस पर जोर दिया है, उनकी दृष्टि बडी गहरी है। वे भीतर की घटना को ही कह रहे हैं कि जीसस जैसा बेटा अत्यन्त कुआरी आत्मा से ही जन्म ले सकता है, अत्यन्त 'इनोसेण्ट' भोली कुआरी, शरीर नहीं, कुआरी आत्मा—कुआरे चित्त से। और यह भी हो सकता है कि शरीर कुआरा हो और चित्त बिल्कुल कुआरा न हो। इससे उल्टा भी हो सकता है कि शरीर कुआरा न हो और चित्त बिल्कुल कुआरा हो। जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म वर्जिन गर्ल से ही हो सकता है कुआरी लडकी से ही हो सकता है। यह इतिहास मे नही है। लेकिन इतिहास अगर सिद्ध भी कर दे तो नुकसान ही पहुचाएगा। यानी मैं मानूगा कि यह बात प्रमाणित ही रहनी चाहिए कि जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म एक कुआरे मन से होता है। और यदि किसी मा को जीसस जैसे बेटे को जन्म देना हो तो उसके चित्त का अत्यन्त कुआरा होना जरूरी है और कुआरेपन का कोई सम्बन्ध शरीर से है ही नही। शरीर तो यन्त्र है। कुआरापन तो आन्तरिक मनोदशा है।

अब जैसे, महावीर के पैर को सर्प काट लेता है और दूध बहता है। इसे किसी भी ऐतिहासिक की तरह से, वैज्ञानिक की तरह से सिद्ध नही किया जा सकता। करने वाले करते हों, पर गलत करते है। वे महावीर को व्यर्थ करवा देंगे। और जो बात है, जो मिथ है, जो गाथा है, वह खो जाएगी। बात बहुत और है। इस बात मे किसी चित्त भाव पर ही ख्याल है। सर्प भी काटे, जहर भी महावीर को कोई दे, मारने को भी कोई आ जाए तो भी महावीर का मन मा से भिन्न नहीं हो पाता है। दूध निकलने का कुल मतलब इतना है कि महावीर का मन मातृत्व मे भरपूर है मा से अन्यथा वह नही हो सकते। उनका होना ही मातृत्वमय है। उनके भीतर से कुछ और नही निकल सकता है सिवाय दूध के। लेकिन, न तो शारीरिक अर्थों मे, न तथ्य और इतिहास के अर्थों मे इस बात का कोई मूल्य है। अब, जैसे हम, जो भी हिसाब करने जायेंगे—और हम दोनो तरफ एक जैसे लोग होते हैं—कोई कहेगा यह बिल्कुल सच है; कोई कहेगा यह बिल्कुल गलत है। महावीर के पैर से दूध कैसे निकल सकता है? बात ही झूठी है। और दूसरे व्यक्ति यह सिद्ध करने की कोशिश करेंगे किसी तरकीब से कि पैर से दूध निकल सकता है।

एक मुनि को मैं सुनने गया। वह मुझसे पहले बोले कि मैंने यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि महावीर के पैर मे दूध निकला। कैसे सिद्ध कर दिया है ? तो उन्होंने कहा ऐसे सिद्ध कर दिया है कि जब मां के स्तन से दूध निकल सकता है, यानी शरीर के किसी अग से दूध निकल सकता है तो पैर से क्यो नही निकल सकता है ? तो मैंने उनसे पूछा कि इसके दो अर्थ हुए। एक अर्थ यह हुआ कि महावीर को पुरुष न माना जाए क्योंकि पुरुष के स्तन से भी दूध निकलना मुश्किल है, पैर का तो मामला बहुत दूर है। और अब तक किसी स्त्री के पैर से भी दूध नही निकला। दूसरी बात यह मानी जाए कि स्तन का जो यन्त्र है वह महावीर के पैरो मे लगा हुआ है जो स्त्री के स्तन मे होता है। महावीर के पैर मे वैसी यात्रिक व्यवस्था है जिससे खून दूध मे रूपान्तरित होता है। लेकिन मैंने उनसे कहा कि ये बाते अगर प्रमाणित भी हो जाए कि ऐसा था कि महावीर के पैर स्तन का काम कर रहे थे तो भी जो मतलब था वह खो गया, महावीर का जो मूल्य था वह गया। अगर किसी के भी पैर स्तन का काम कर रहे हो तो उनमे दूध निकल आयेगा। इससे फिर महावीर का कुछ होना न रहा। और यदि मा के स्तन मे दूध निकलता है तो यह कोई बडी खूबी की बात नही है। यह आन्तरिक बात है। अगर सिद्ध भी कर दोगे तो महावीर को पोछ डालोगे। उनकी जो बात थी वह खो जाएगी। वह बात कुल इतनी है कि महावीर का प्रत्युत्तर मा का उत्तर होने वाला है। चाहे तुम कुछ भी करो, चाहे तुम जहर डालो, शत्रुता करो, चोट पहुचाओ वहा से प्रेम और करुणा ही बह सकती है। अब दूध का मतलब क्या होता है। दूध का मतलब है जो तुम्हे पोषण दे सके, और कुछ मतलब नही होता। महावीर को चाहे तुम गाली दो, महावीर जो भी करेंगे वह तुम्हारा पोषक ही सिद्ध होगा, वह तुम्हे पोषण ही देगा। हमे कोई गाली दे, हम जो करेगे वह घातक सिद्ध होगा उसके लिए। और हम जो करेगे दो ही बाते कर सकते है या तो वह घातक सिद्ध हो या पोषक सिद्ध हो। महावीर से जो प्रत्युत्तर निकलेगा, जो रिऐक्शन होगा महावीर का, वह पोषक सिद्ध होने वाला है। इतनी भर बात है उसमे। लेकिन तथ्य मे जाने पर यह भी जरूरी नही कि किसी दिन सर्प ने काटा ही हो। यह भी जरूरी नही कि पैर से दूध निकला हो। जरूरी केवल इतना है कि महावीर के पूरे जीवन को जिसने भी अनुभव किया है उसे ऐसा लगा है कि इसे

अगर हम कविता मे कहें तो ऐसे कह सकते है कि सर्प भी काटे महावीर को, तो दूध ही निकल सकता है। लेकिन इसलिए मुझे कोई प्रयोजन नही है। यह मैं सिद्ध करने जाऊगा ही नही। सिद्ध कर भी सकता हू तो भी सिद्ध करने नहीं जाऊगा; क्योंकि मेरी दृष्टि ही यह है कि महावीर को प्रसंग बना कर 'तुम' कैसे गति कर सकते हो। और यह तब हो सकता है कि बहुत कुछ जो कहा जाता है वह छोड देना पडे, बहुत कुछ जो नही कहा जाता है, उसे खोज लेना पडे। और, हम अब एक दृष्टि लेकर प्रवेश करते हैं और अन्तस् की खोज मे चलते है कब क्या है ? कठिनाई क्या है ?

समझो कि मैं एक बहुत बहादुर आदमी के सम्बन्ध मे कहू कि यह बहुत डरपोक है तो शायद वह भी मुझ से पहली बार राजी न हो कि आप यह मेरे सम्बन्ध मे क्या कह रहे हैं ? मेरे पास प्रमाण पत्र हैं बहादुरी के, सर्टिफिकेट हैं। मैं सिद्ध कर सकता हू कि मुझसे बडा कोई बहादुर नही है। महावीर-चक्र है मेरे पास। युद्ध के मैदान पर कभी पीछे नही लौटा हू। लेकिन ये प्रमाण-पत्र कुछ गल्त नही करते हैं। फिर भी यह हो सकता है कि वह भीतर मे एक भयभीत आदमी हो। और ऐसा हुआ है कि जो व्यक्ति अन्तस् चेतन मे भयभीत होता है, वह बाहर के कृत्यो मे निर्भय सिद्ध करने की कोशिश मे लगा रहता है, यानी वह बाहर के कृत्यो मे अपने को निर्भय सिद्ध करने के जो उपाय कर रहा है, वह उपाय कर ही इसलिए रहा है कि भीतर जो उसका भय है उसे भूल जाए और मिट जाए।

अब एक व्यक्ति मेरे पास आया जिसको कोई भी नही कह सकता कि वह भयभीत होगा। शरीर से बलिष्ठ है, हर तरह के सघर्षों से गुजरा है, जेलें काटी हैं, दबग है, और उसके सामने खडा हो जाए तो आदमी हिल जाए। उस आदमी ने मुझसे कहा कि मैं इतना डरता हू कि जब मैं बोलने खड़ा होता हू तो मेरे पैर कांपने लगते हैं और मुझे लगता है कि आज मेरे मुख से शब्द निकलेगा, या नही। निकल जाता है, यह दूसरी बात है परन्तु सदा भय बना रहता है। अब इस आदमी को खुद ही ख्याल आ जाए तो ठीक है। नही तो इससे कहा जाए कि ऐसा है तो बहुत मुश्किल हो जाए। अब अन्त-र्जीवन के तथ्य हमें ही ज्ञात नहीं। और यदि मैं कहूं आपके सम्बन्ध में यह अन्तर्जीवन की बात है तो हो सकता है कि आप सबसे पहले इन्कार करने वाले व्यक्ति हो। और यह बात ध्यान रहे कि आप जितने जोर से इन्कार करेंगे उतने ही जोर से मेरे लिए सही होगा कि यह तथ्य आप के अन्दर है

क्योंकि जोर से इन्कार इसीलिए आता है। अगर वह तथ्य न हो तो शायद आप कहें : "मैं सोचूंगा, मैं खोजूंगा," लेकिन यदि वह तथ्य है, जैसे भयभीत आदमी बाहर से बहादुर बनने की कोशिश मे लगा है तो उससे यह कहने पर भी कि तुम्हारे अन्दर भीरुता है, वह इतने जोर से इन्कार करेगा कि उसका कोई हिसाब नहीं।

परन्तु मुझे बाहर के तथ्यों से कोई प्रयोजन ही नही। इसलिए उस तरह की प्रामाणिकता में जाने की मैं कोई तैयारी नहीं दिखाऊंगा। मैं तो एक ही प्रामाणिकता मानता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह जिन प्रयोगो से मुझे दिखाई पड़ता है कि ऐसा है उन प्रयोगो मे से कोई भी गुजरने को तैयार हो। अब जैसे समझ लें एक आदमी है जिसने पहली दफा दूरबीन बनाई जिससे दूर के तारे देखे जा सकते हैं। दूरबीन बनी। पहले आदमी ने जिसने दूरबीन बनाई मित्रो को आमंत्रित किया कि तुम आओ कि मैं तुम्हे ऐसे तारे दिखला देता हू जो तुमने कभी नही देखे। उन्होने दूरबीन से देखने से इन्कार कर दिया कि हो सकता है कि तुम्हारी दूरबीन मे कुछ बात हो जिससे कुछ तारे दिखाई पडते हैं, जो नही हैं। तुम खुली आंख से कुछ ऐसी बातें बताओ जो दूर की हैं फिर हम मानें कि तुम्हारी दूरबीन की कोई बात हो सकती है। पहले खुली आख से कुछ बताओ जो कि दूर का है, जो कि हमको नही दिखाई पड़ता परन्तु तुमको दिखाई पड रहा हो फिर हम दूरबीन से झाकें। उन्होने दूरबीन से झांका तो उन्होंने कहा कि इसमे कुछ पक्का नही होता है। हो सकता है यह दूरबीन की ही करतूत हो। मेरी बात आप समझे न ? लेकिन वह आदमी क्या कर सकता है, इसके सिवा और क्या उपाय है। वह तो यही कह सकता है कि तुम भी दूरबीन बना लो जिसमें कि तुम्हे यह पक्का हो जाए। तुम अपनी दूरबीन बना लो और तुम अपनी दूरबीन से झाको। और मामला इतना जटिल है कि जरूरी नही कि मैं अन्तस् प्रयोगो के लिए कहू तो तुम्हे ठीक वही दिखाई पडे जो मुझे दिखाई पडता है। लेकिन एक बात पक्की है कि तुम्हें जो भी दिखाई पडे तुम इतना अनुभव कर सकोगे कि जो कुछ मैं कह रहा हूं वह दिखाई पड़ रहा होगा। दूसरे तुम यह भी अनुभव कर सकोगे कि जो कुछ ,मैं कह रहा हूं उसके पीछे जो दृष्टि है, वह तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़े तो फौरन तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि वह दृष्टि क्या है और यह भी तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि महावीर मेरे लिए गौण हैं। न क्राइस्ट का कोई मूल्य है, न बुद्ध का कोई मूल्य है। मूल्य है हमारा जो भटक रहे हैं, और

इनको किसी तरफ से, किसी कोण से एक चीज दिखाई पड जाए जो इनकी भटकन को मिटा दे, और एक दिन ये वहा पहुच जाए जहां कि कोई भी महावीर कभी पहुचता रहा है।

इसलिए मेरा प्रयोजन ही भिन्न है। और एक ही उपाय है उस प्रयोजन का—क्योकि मेरा प्रयोजन तभी सिद्ध होता है, नही तो सिद्ध ही नहीं होता —अगर मैं यह बता भी दू कि तुम कब पैदा हुए, तुम्हारी कब शादी हुई, कब लडका पैदा हुआ तो भी मेरा प्रयोजन सिद्ध नही होता, असिद्ध होता है क्योकि फिर मैं तुम्हारे बहिर्जीवन पर ही जोर देता हू और तुम्हारी दृष्टि को मैं फिर भी अन्तर्मुखी नही कर पाता। और तुम बहिर्मुखी जीवन दृष्टि को ही पुनः पुन सिद्ध कर लोगे और फिर भीतर उतरने से रह जाओगे। मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बातचीत से तुम्हे बेचैनी पैदा हो जाए और ऐसा लगने लगे कि पता नही यह बात सच है या झूठ, तो तुम मुझसे प्रमाण मत पूछो। फिर तुम प्रमाण की तलाश मे निकल जाओ खुद। अगर बात झूठ भी हुई तो भी तुम वहा पहुच जाओगे जहा पहुचना चाहिए। और बात सही भी हुई तो भी तुम वहा पहुच जाओगे। और जिस दिन तुम वहा पहुच जाओगे तो जरूरी नही कि तुम लौटकर मुझसे कहने आओगे। जैसे समझ लो कि इस कमरे मे आग नही लगी है और मै तुमसे चिल्लाकर कहता हू कि इस कमरे मे आग लगी हुई है और मर जाएगे अगर हम भीतर रहते है, चलो बाहर! चलो! और तुम कहो कि कही कोई ताप नही लगता, कोई लपट नही दिखाई पडती। और मैं तुमसे कहता हू कि तुम बस बाहर चले चलो तो तुमको पता चल जाएगा कि मकान मे आग लगी थी। जब तक तुम भीतर हो कुछ दिखाई नही पडेगा, और तुम बाहर पहुच जाओ और सच मे ही कहो कि मकान मे आग नही लगी थी। लेकिन बाहर जाकर तुम देखोगे कि सूरज निकला है, जो तुमने कभी नही देखा, और ऐसे फूल खिले है जो तुमने कभी नही देखे और ऐसा आनन्द है जो तुमने कभी नही अनुभव किया तो तुम मुझे धन्यवाद दोगे, तुम मुझे कहोगे कि कृपा की कह दिया कि मकान मे आग लगी है। क्योकि हम मकान की भाषा ही समझ सकते थे; सूरज और फूल की भाषा हम समझ ही नही सकते थे क्योकि सूरज और फूल हमने देखा ही नही था। अगर तुमने कहा भी होता कि बाहर सूरज है और फूल हैं, आनन्द की वर्षा हो रही है तो हम कहते कि हम कुछ समझे ही नही। कैसा बाहर! कैसा सूरज! कैसा फूल! हम तो एक ही भाषा समझ

सकते थे मकान की। और हम यही समझ सकते थे कि अगर मकान में आग लगी हो तो ही बाहर जाया जा सकता है। नही तो जाने की कोई जरूरत नही। अगर मकान सुरक्षित है तो बाहर जाने की क्या जरूरत है? हो सकता है कि बाहर जाकर तुम देखोगे कि मकान में आग नहीं लगी है लेकिन फिर भी तुम मुझे धन्यवाद दोगे कि ठीक कहा कि मकान मे आग लगी है, नहीं तो हम बाहर कभी न आ पाते। और अब उस मकान के भीतर कभी न जाएगे। यद्यपि उस मकान मे आग नही लगी है लेकिन मकान मे होना ही आग मे होना है। मेरा मतलब समझे न तुम ? यानी यह जरूरी नहीं है तुम बाहर से मुझसे यही कहो कि मकान मे आग नही लगी है लेकिन मकान मे होना ही आग मे होना है, क्योकि हम चूके जा रहे थे, वह सब जला जा रहा था जीवन, चूका जा रहा था सब कुछ जो मिल सकता था। इसलिए बहुत सी बातें हैं और जिसको आम तौर पर हम प्रमाण कहते हैं उस पर मेरी कोई श्रद्धा नही, किसी तरह के प्रमाण पर। प्रमाण एक ही है कि तुम पहुंच जाओ। और तुम पहुच जाओगे तो इन्कार नही कर सकते; इतना मैं वादा करता हू। यानी तुम पहुच जाओ तो जो मैं कहता हू उससे इन्कार नही कर सकते, इतना मैं वादा करता हू।

प्रश्न : आपने रात को शास्त्रों के बारे में कुछ बात कही थी। मुझे ऐसा लगता है कि आप जो भी कुछ कहते हैं वह शास्त्रों में भी उपलब्ध हो सकता है। और आप जो कुछ कह रहे हैं वह भी स्वयं में एक शास्त्र ही बनते चले जा रहे हैं। और जो बात आप शास्त्रों के सम्बन्ध में कह रहे हैं वह आपकी कही हुई बातों पर भी ज्यों की त्यों लागू हो जाएगी। जो देखने वाला है उसे इसमें भी दीखेगा, जो नहीं देखने वाला है उसे इसमें भी नहीं दीखेगा। जो देखने वाला है उसे प्राचीन शास्त्रों में भी दीख ही जाता है और न देखने वाले को उनमें भी नहीं दीखता। फिर उनकी निन्दा का क्या प्रयोजन ?

उत्तर : उनकी निंदा मैं करता ही नही हू। शास्त्र की निंदा मैं नहीं करता हू क्योंकि शास्त्रो को मैं निन्दा योग्य भी नही मानता। प्रशंसा के योग्य मानना तो दूर, निन्दा योग्य भी नहीं मानता। क्योकि निन्दा भी हम उसकी करते हैं जिससे कुछ मिल सकता होता और नहीं मिला। शास्त्र से मिल ही नहीं सकता। उसकी निंदा का कोई अर्थ नही है क्योंकि शास्त्र से न मिलना शास्त्र का स्वभाव है यानी यह शास्त्र का स्वभाव है कि उससे सत्य नही मिल सकता। मिल जाए तो आश्चर्य हो जाएगा; असम्भव घटना हो

जाएगी। मैं शास्त्र की निंदा नही करता हू, इतना ही कहता हू कि शास्त्र से नहीं मिलता है। जैसे समझिए कि एक आदमी एक रास्ते से जा रहा है और किसी जगह पहुचना चाहता है और हम उससे कहते हैं कि यह रास्ता वहा नही जाता है। इसका मतलब यह नही कि हम उस रास्ते की निंदा करते है। इसका कुल मतलब इतना है कि हम यह कहते हैं कि वह जहा जाना चाहता है वहां वह रास्ता नही जाता। हम यह भी नही कहते कि यह रास्ता कही नही जाता है। यह रास्ता भी कही जाता है। लेकिन जहा वह जाना चाहता है वहा नही जाता बल्कि उससे उल्टा जाता है। जैसे प्रज्ञा की खोज मे निकले हुए व्यक्ति को शास्त्र व्यर्थ है क्योकि शास्त्र का रास्ता प्रज्ञा को नही जाता, पाडित्य को जाता है। और पाडित्य प्रज्ञा से बिल्कुल उल्टी चीज है। पाडित्य है उधार और प्रज्ञा है स्वय की। और ऐसा असम्भव है कि उधार सम्पदा को कोई कितना ही इकट्ठा कर ले तो वह स्वय की सम्पदा बन जाए। जब मैं यह कहता हू कि शास्त्र से नही जाया जा सकता तो भूल कर भी मत सोचना कि मै शास्त्र की निंदा करता हू।

मैं तो केवल शास्त्र का स्वभाव बता रहा हू और यदि शास्त्र का स्वभाव ऐसा है तो मेरे शब्दो को मानकर जो शास्त्र निर्मित हो जाएगे उनका स्वभाव भी ऐसा ही होगा, यानी उनसे कभी कोई प्रज्ञा को नही जान सकेगा। अगर मैं ऐसा कहू कि दूसरो के शास्त्र मे कोई प्रज्ञा को नही जानता और मेरे शब्दो पर जो शास्त्र बन गया है उसमे कोई प्रज्ञा को जानेगा तब तो गल्त बात हो गई। तब तो मैं किसी भी शास्त्र की निंदा कर रहा हू और किसी के शास्त्र की प्रशसा कर रहा हू। नही, मैं तो शास्त्र मात्र का स्वभाव बता रहा हू। वह चाहे महावीर का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे कृष्ण का हो, चाहे मेरा हो, चाहे तुम्हारा हो। इससे कोई फर्क नही पडता। किसी का भी शास्त्र सत्य मे लेजाने वाला नही है। हा, लेकिन दूसरी बात सच है कि अगर दिखाई पड जाए किसी को तो शास्त्र मे दिखाई पड सकता है। लेकिन दिखाई पहले पड जाए। उसका मतलब यह हुआ कि शास्त्र किसी को दिखला नही सकता है लेकिन जिसको दिखलाई पडता है उसे शास्त्र में भी दीख सकता है। लेकिन दिखाई पहले पड जाए तो फिर शास्त्र की क्या बात है। उसे पत्थर, ककड़, दीवार, पहाड़ सबमे दिखाई पडता है। यानी यह सवाल फिर शास्त्र का नही रह जाता। जिसे दिखाई पड गया उसे सबमें दिखाई पड़ता है। तो उसे शास्त्र में क्यों दिखाई पडेगा? अब शास्त्र में उसे नहीं दिखाई

पड़ेगा जो उसे दिखाई पड रहा है। और कल तक चूंकि उसे नही दिखाई पड़ रहा था, इसलिए शास्त्र अन्धे थे क्योंकि उसके अन्धकार को भी तो अंधकार ही दिखाई पड़ रहा था। मेरा मतलब यह है कि शास्त्र में भी हमे वही दिखाई पड़ सकता है, जो हमे दिखाई पड रहा है। शास्त्र उससे ज्यादा नही दिखला सकता। इसलिए शास्त्र मे हम वह नही पढ़ते जो कहनेवाले या लिखनेवाले का इरादा रहा होगा। शास्त्र में हम वह पढ़ते हैं जो हम पढ़ सकते हैं। शास्त्र किसी भी अर्थ में हमारे ज्ञान की वृद्धि नही करता। शास्त्र उतना ही बता देता है जैसे समझ ले आइना है। आइना मे भी हमे वही दिखाई पड जाता है, जो हम है। आइना इसमे कोई वृद्धि नही देता। और कोई यह सोचता हो कि कुरूप आदमी आइने के सामने खडा होकर सुन्दर हो जाएगा तो वह गल्ती मे है, वह एकदम गल्ती मे है। कोई यदि यह सोचता है कि कोई अज्ञानी आदमी शास्त्र के सामने खडा होकर ज्ञानी हो जाएगा तो वह गल्ती मे है। हा, ज्ञानी को शास्त्र मे ज्ञान मिल जाएगा, अज्ञानी को अज्ञान ही दिखता रहेगा। और मजा यह है कि ज्ञानी शास्त्र मे देखने नही जाता क्योकि जब खुद ही दिख गया है तो उसे और किसी दूसरे से क्या देखना है। और अज्ञानी शास्त्र मे देखने जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि सुन्दर आदमी दर्पण से मुक्त हो जाता है और कुरूप आदमी दर्पण के आस-पास घूमता रहता है। वह जो कुरूपता का बोध है वह किसी भाति दर्पण से पक्का कर लेना चाहता है कि मिट जाए, नही है अब। सुन्दर दर्पण से मुक्त हो जाता है। असल मे जितनी बार हम दर्पण को देखते है उतनी ही बार हमे कुरूपता का बोध होता है और किसी भाति पक्का करना चाहते है कि दर्पण यह कह दे कि अब हम कुरूप नही है। विश्वास मे आ जाए कि हम अब कुरूप नही हैं। लेकिन घड़ी भर बाद फिर दर्पण देखना पड़ता है। क्योंकि कुरूपता का जो बोध है वही दर्पण मे दिखाई पडता है बार-बार। शास्त्र मे वही दिखाई पड़ता है, जो हम है।

लेकिन यह बात ठीक है कि आज नही, कल मेरे शब्द इकट्ठे हो जाएगे, और शास्त्र बन जाएंगे और जिस दिन मेरे शब्द शास्त्र बन जाए उसी दिन उनकी हत्या हो गई। फिर भी, ध्यान रहे कि मैं किताब का विरोधी नही हू, शास्त्र का विरोधी हू। इन दोनो मे फर्क करता हू। किताब का दावा नहीं सत्य देने का। किताब का दावा है सिर्फ संग्राहक होने का। किसी ने कुछ कहा था उसे संग्रह किया गया। शास्त्र का दावा सिर्फ संग्राहक होने का नहीं;

शास्त्र का दावा सत्य देने का है। शास्त्र का दावा यह है कि मैं सत्य हू। जो किताब यह दावा करती है कि मैं सत्य हू, वह शास्त्र बन जाती है। जो किताब सिर्फ केवल विनम्र संग्रह है, दावा नही करती जैसा कि मैंने कल कहा था कि लाग्रोत्से ने कहा कि किताब से पहले उसने लिखा कि जो कहा जाएगा वह सत्य नही होगा, इसे समझकर किताब को पढना। शास्त्र नहीं बन रही है यह किताब, यह विनम्र किताब है, यह सिर्फ संग्रह है और इस किताब को यदि कोई शास्त्र बनाता है तो खुद ही जिम्मेदार है। यह किताब उस पर बोझ बनने की तैयारी मे नही थी, यह किताब उसको मुक्त करने की तैयारी में थी। पूरा इसका भाव यही था। तो मेरी सारी बातें ऐसी हैं कि अगर उनको काट पीट न किया जाए तो शास्त्र बनाना मुश्किल है—ज्यादा से ज्यादा किताब बन सकती है। लेकिन शास्त्र बनाए जा सकते हैं। शास्त्र बनाना कठिन नही है। क्योंकि शास्त्र कोई बोलता है कुछ, इससे नही बनते। कोई पकडता है, इससे बनते हैं। यानी शास्त्र महावीर के बोलने से नही बनता गया। गणधरो के पकडने मे बना है। और पकडने वाले है तो पकडने वाला पकड ही न पाए, इसका सारा उपाय हमारी वाणी मे होना चाहिए। यानी वह वाणी ऐसी काटो वाली हो, ऐसी अगारों से भरी हो कि पकडना मुश्किल हो जाए। लेकिन अगारे भी बुझ जाते हैं, एक न एक दिन राख हो जाते हैं और पकडने वाले भी उन्हें मुट्ठी मे पकड लेते है। इसका मतलब सिर्फ यह हुआ कि बार-बार ज्ञानी को पुराने ज्ञानियो की दुश्मनी में खडा होना पडता है। यह बडा उल्टा काम है। निरन्तर ज्ञानियो को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी मे खडा होना पडता है। और यह दुश्मनी नही है, इसमे बडी कोई मित्रता नही हो सकती क्योंकि इस भाति जो राख पकड ली गई है, उसको छुडाने का कोई और रास्ता नही होता। तो अगर जो महावीर को प्रेम करता है उसे जैनियो के खिलाफ खड़ा होना ही पड़ेगा। अगर महावीर भी लौट आए तो उन्हे भी खडा होना पडेगा क्योंकि जो उन्होंने दिया था वह जीवित अगारा था; वह पकडा नही जा सकता, सिर्फ किया जा सकता, समझा जा सकता था। फिर अब राख रह गई है। उसको लोगो ने पकड लिया है और उसको पकड कर वे बैठ गए है। दुनिया में यह जो एक करिश्मे की बात दिखाई पडती है, आश्चर्यजनक मालूम पड़ती है कि क्यो कभी ऐसा होता है कि कृष्ण के खिलाफ महावीर खडे हैं कि महावीर के खिलाफ बुद्ध खड़े हैं कि बुद्ध के खिलाफ कोई और खडा है। यह कैसा अजीब है। होना तो यह चाहिए कि महावीर बुद्ध

का समर्थन करते हों, क्राइस्ट बुद्ध का समर्थन करते हो, मोहम्मद महावीर का समर्थन करते हो, महावीर कृष्ण-राम का समर्थन करते हो। होना तो यह चाहिए लेकिन हुआ इसका उल्टा। होने का कारण है। इसके पहले कि किसी के जीवन में नए ज्ञान की किरण आए, जैसे ही यह किरण आती है उसे दिखाई पड़ता है कि लोगो के हाथ मे राख है। कभी वह भी किरण थी लेकिन अब वह राख है। और समझाया न जाय कि यह राख है तो छुटकारा होने वाला नही। फिर भी, न बुद्ध महावीर के खिलाफ हैं, न महावीर कृष्ण के खिलाफ हैं। खिलाफ हैं शास्त्र बन जाने के। और जो भी शास्त्र बन जाता है वहा सत्य मर जाता है। यदि यह स्मरण रखे तो शास्त्र बनने की उम्मीद मिटती है, आशा मिटती है, लेकिन फिर भी बन सकता है। इसलिए लडाई जारी रहेगी। इसलिए किसी ज्ञानी पर लडाई खत्म नही हो जायेगी। ज्ञानी होगे और आने वाले ज्ञानियो को उनका खण्डन करना होगा। यह बडा कठोर कृत्य है लेकिन प्रेम इतना कठोर भी होता है। यह बडा कठोर कृत्य है।

एक झेन फकीर हुए है। अब झेन फकीर बुद्ध के अनुयायी हैं। लेकिन झेन फकीर अपने अनुयायियो से कहते हैं कि अगर बुद्ध बीच मे आए तो एक चाटा मारकर अलग कर दे; और आयेगा बुद्ध बीच मे तुम्हारे। परन्तु ज्ञान के उपलब्ध होने के पूर्व बुद्ध तुम्हारे बीच मे मार्ग रोकेगा तो एक चाटा मार कर अलग कर देना। एक झेन फकीर का तो यहा तक कहना है कि यदि बुद्ध का मुह मे नाम आए तो पहले कुल्ला करके मुख साफ कर लेना फिर दूसरा काम करना। तो उससे पूछो कि तुम यह क्या कहते हो ? और बुद्ध की मूर्ति रखते हो मन्दिर मे। वह कहता है—यह दोनो ही सही है। बुद्ध से हमारा प्रेम है लेकिन यदि बुद्ध किसी के आडे आ जाए तो उससे हमारी लडाई है। और इसके लिये बुद्ध का आशीर्वाद हमको मिला हुआ है। यानी बुद्ध से हमने यह पूछ लिया है कि हम लोगों से यह कह दे तो कुछ बुरा तो नही कि तुम्हारा नाम मुख मे आ जाए तो कुल्ला करके साफ कर लेना। अब यह आदमी समझने में मुश्किल हो जाएगा। लेकिन यह आदमी है और यह ठीक कह रहा है। एक तरफ यह मूर्ति रखे हुए है, रोज सुबह उसके सामने फूल भी रख आता है और दूसरी तरफ लोगो को समझाता है कि बुद्ध से बचना। इससे खतरनाक आदमी ही नहीं हुआ है, और इसका नाम भी मुख मे आए तो कुल्ला करके साफ कर लेना, इतना अपवित्र है यह नाम।

और कहता है कि बुद्ध से पूछ लिया है, आशीर्वाद ले लिया है कि हा यह करो। अब इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि हर चीज बाधा बन जाती है। असल मे जो भी सीढ़ी है वह मार्ग का पत्थर भी बन सकती है और जो भी पत्थर है वह मार्ग की सीढ़ी भी बन सकता है। सब कुछ बनाने वाले पर निर्भर है। और जब पुरानी सीढ़ी पत्थर बन जाती है तो उसे हटाने की बात करनी पड़ती है, मिटाने की बात करनी पडती है। यह लड़ाई निरन्तर जारी रहेगी। इस लड़ाई को रोकना मुश्किल है। यानी मैं जो कह कर जाऊंगा कल किसी को हिम्मत जुटा कर उसे गलत कहना ही पड़ेगा। मैं जो कहकर जाऊगा, मुझे प्रेम करने वाले किसी व्यक्ति को मेरे खिलाफ लड़ना ही पडेगा। इसके सिवाय कोई उपाय ही नही क्योकि वे सुनने वाले उसको पकड़ेगे, और शास्त्र बनाएंगे और उससे छुटकारा दिलाना होगा। यानी जो व्यक्ति भी हमारे लिए मुक्तिदायी सिद्ध हो सकते हैं उन्हे हम बधन बना लेते है और जब उन्हे बधन बना लेते है तो उनमे भी मुक्ति दिलानी पडती है। और जो हमे फिर मुक्ति दिलाता है, हम उसे फिर बधन बना लेते हैं। लम्बी कथा है यह कि मुक्तिदायी विचार भी कैसे बधन बन जाते हैं, कि मुक्तिदायी व्यक्ति भी कैसे बधन बन जाते हैं; फिर कैसे उनसे छुडाना पडता है और इसलिए कोई भी विचार सदा रहने वाला नही हो सकता। और इसलिए किसी भी विचार की एक सीमा है प्रभाव की। जीवन्त उस प्रभाव-क्षेत्र मे जितने लोग आ जाते हैं और जीवन्त प्रयोग मे लग जाते है, वे तो निकल जाते है। पीछे फिर केवल राख रह जाती है। इसलिए सब तीर्थंकरो, सब अवतारो, उन सब निष्ठावान लोगो के आस-पास राख का सग्रह हो जाता है। और वह जो राख का सग्रह है वह सम्प्रदाय बन जाता है। और फिर वे राख के सग्रह एक दूसरे से लडते हैं, झगडते हैं, उपद्रव करते हैं। और तब जरूरत होती है कि कोई फिर खडा हो और सारी राख को मिटा दे। लेकिन इसका यह मतलब नही होता कि वह राख नही बन जाएगा। वह बनेगा। जो भी अगारा जलेगा, वह बुझेगा। जो विचार एक दिन जीवन्त होगा एक दिन मृत हो जाएगा।

जब महावीर ही मिट जाते है, बुद्ध ही मिट जाते हैं तो जो कहा हुआ है, वह भी मिट जाएगा। इस जगत में जिसमे हम जी रहे हैं कुछ भी शाश्वत नही है। न कोई वाणी, न कोई विचार, न कोई व्यक्ति, कुछ भी शाश्वत नहीं है। यहां सभी मिट जाएगा। मिट जाने के बाद भी पकड़ने वाला आग्रह उसको पकड़े रखेगा और तब किसी को चेताना पडेगा कि लहर चली गई है, हाथ तुम्हारा

खाली हैं। तुम कुछ भी नही पकड़े हो। अब दूसरी लहर आ गई है, तुम पुरानी के चक्कर में पड़े हो। इसे पकड़े रहे तो नई लहर से भी चूक जाओगे। पुरानी लहर जा चुकी। यह जो हमें ख्याल में आ जाए, तो मैं शास्त्र की निंदा नही कर रहा हू। वह जो वस्तुस्थिति है, वह कह रहा हू। और वह जो तुम कहते हो ठीक है। मेरी बहुत सी बातें शास्त्र में मिल जायेंगी। इसलिए नही कि वह शास्त्र में हैं, इसलिए कि तुम मेरी बातो को समझ लो गे। अगर मेरी बातें तुम्हें समझ मे पड गईं तो तुम्हें शास्त्र मे मिल जाएगी क्योंकि शास्त्र में तुम्हें वही मिल जाएगा जो तुम्हारी समझ है क्योकि हम शास्त्र मे अपनी समझ डालते हैं। आम तौर से हम यह समझते हैं कि शास्त्र से समझ निकलती है। निकलती नही। हम शास्त्र मे अपनी समझ डालते हैं। इसीलिए तो गीता की हजार टीकाए हो सकती हैं। अगर गीता से समझ निकलती हो तो उसकी हजार टीकाए कैसे हो सकती हैं? कृष्ण के अगर हजार मतलब रहे होंगे तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा। कृष्ण का तो एक ही मतलब रहा होगा। हजार टीकाए हो सकती है, लाख टीकाए हो सकती हैं, क्योकि हर व्यक्ति अपनी खोज, अपनी समझ उसमे खोज लेगा। और शब्द इतना बेजान है कि तुम उसे मार ठोक कर जहा लाना चाहो, आ जाता है। वह कुछ कर ही नही सकता। तुमने उसकी गर्दन में डाली फांस और खीचा तो तुम जहा लाना चाहते हो ले आते हो। उसी गीता से शकर निकाल लेंगे "कि जगत सब माया है, कर्ममुक्त हो जाना ही संदेश है।" उसी गीता से तिलक निकाल लेंगे कि "कर्म ही जीवन है और जीवन सत्य है।" उसी गीता से दोनो निकाल रहे है। उसी गीता से अर्जुन निकालना है कि युद्ध मे जीत जाओ। अर्जुन सुनने वाला है। श्रोता है पहला वह। पहली टीका उसी की है समझो। पहला कमेन्टेटर वही है। सुना है उसने। सुन ही तो नही लिया, जो सुना है उसको समझा है, गुना है, अपना मतलब निकाला है। अर्जुन मतलब निकाल लेता है युद्ध मे जीत जाओ और महाभारत का युद्ध हो जाता है। और उसी गीता को गांधी अपनी माता समझते हैं और अहिंसा का संदेश निकालते हैं। अब यह बहुत मजेदार मामला है—अर्जुन हिंसा मे उतर जाता है और गाधी उसको जिन्दगी भर हाथ मे रखकर अहिंसा में चले जाते हैं। तो गीता बिचारी कुछ है कि गीता मे हम कुछ डालते हैं। शास्त्र अपनी बुद्धि को बाहर निकाल कर पढ़ने का उपाय है। भीतर पढ़ना जरा मुश्किल है। इसलिए प्रोजेक्ट कर लेते है पर्दे पर। शास्त्र पर्दा बन

जाता है, उसमे अपने भीतर को बाहर लिख लेते हैं। फिर हमें दोहरी तृप्ति मिल जाती है। एक तो हमें अपने पर विश्वास नही है। जब हम गीता मे पढ़ लेते हैं अपने को तो हम मजबूत हो जाते है कि ठीक हैं; क्योकि कृष्ण भी यही कहते हैं। यानी हमे कोई भटक जाने का डर नहीं। महावीर भी यही कहते हैं, बुद्ध भी यही कहते हैं। इस भूल मे पडना भी मत कि अनुयायी ने कभी भी बुद्ध का या महावीर का साथ दिया है। अनुयायी ने बुद्ध और महावीर का साथ लिया है। दिखता है न कि महावीर के पीछे चल रहा है, महावीर का अनुयायी है। सचाई उल्टी है महावीर का अनुयायी महावीर को अपने पीछे चला रहा है और चलाकर आश्वस्त है कि हम कोई गल्ती मे तो हो नही सकते क्योकि महावीर साथ है। तो वह हर चीज को निकाल लेता है, हर चीज के उपाय निकाल लेता है।

जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में आए तो पहला सम्पर्क उनका बगालियों से हुआ। बगालियो की मछली की बदबू और उनके शरीर का गंदापन उनको बास देता था। बास की वजह से वह उन्हे कहते थे 'बाबू'। 'बाबू' मतलब—बू सहित जिसमे बदबू आ रही हो। और, अब बाबूजी मे ज्यादा कीमती शब्द नही है इस वक्त, कि 'आइए बाबूजी'' बदबू की वजह से, सिर्फ गन्दगी की वजह से, कि बगाली से बास आती है मछली की, खाने पीने और रहने का ढग गदा है तो उसको 'बाबू' कहते है। इसलिए, बगाली बाबू अब भी सबसे बडा बाबू है। अभी भी दूसरा इतना बाबू नही हो पाया है। बगाली बाबू अब भी बाबू है। लेकिन, अब आदर का शब्द हो गया है। आदर का इसलिए होगया कि अंग्रेज सत्तावान थे जिसको उन्होने बाबू कहा आदरित हो गया। और, जब अंग्रेज ने 'बाबू' कह दिया, गवर्नर ने किसी को बाबू कहा तो बाहर अकड कर निकला कि हम कोई साधारण थोड ही है, हम 'बाबू' हैं। और, दूसरे लोग भी उसको बाबू कहने लगे। अब बाबू बडा कीमती शब्द है। शब्दो की यात्रा है। हम उनमे क्या डालते हैं, यह हम पर निर्भर है। वैसे शब्द कुछ भी नही। हम उसमे डालते है। अर्थ हमारा है। शब्द कोरा खाली है। शब्द कन्टेनर है, डिब्बा है खाली, 'कन्टेन्ट' विषयवस्तु हम उसमे डालते हैं। और, 'कन्टेन्ट' हमारे हाथ मे है। इसलिए हर पीढी, हर युग, हर आदमी अपना 'कन्टेन्ट' डाल देता है। जो बहुत कुशल है डालने मे, वे किसी भी चीज से कोई अर्थ निकाल सकते हैं। उन पर कोई शब्द का बंधन ही नहीं। इसलिए मैं कहता हूं कि मेरी बात समझ मे आजाए तो शास्त्र में मिल जाएगी। शास्त्र की बात

तुम्हारी पकड़ मे हो तो मेरी बात में मिल जाएगी। लेकिन इसमें पड़ना ही मत क्योंकि यह पड़ना ही गलत दिशा मे ले जाता है। जब मैं तुम्हारे सामने मौजूद हू तो सीधा ही मुझे लेना। शास्त्र को बीच मे लाना ही नहीं। सीधा ही मुझे समझने की कोशिश करना। तुलना ही मत करना। न ही यह कहना कि यह कहां है, कहा नही। होगा तो ठीक; नहीं होगा तो ठीक। सीधे ही समझने की कोशिश उपयोगी है, क्योंकि तभी हम ज्यादा से ज्यादा समझने की कोशिश करते हैं; और जो हमारी समझ मे आ जाए, वह हमे सब जगह दिखाई पड़ने लगेगा।

प्रश्न : पढ़ने और सुनने से ज्ञान नहीं होता तो फिर पढ़ने और सुनने की जरूरत क्या है ? और उसके बाद हमने इतने समय तक जो पढ़ा और जो सुनते आए हैं, उसमें विरोध क्या है ?

उत्तर : हा, जिंदगी बहुत विरोधी चीजो से बनी है। और, यह बात सच है कि पढने और सुनने मे ज्ञान नही आ जाता है। अगर यह बोध बना रहे कि पढ़ने और सुनने से ही ज्ञान नही आजाता है तो पढ़ना सुनना भी तुम्हारे भीतर ज्ञान को लाने के लिये निमित्त बन सकता है। और अगर यह ख्याल हो जाए कि पढना-सुनना ही ज्ञान दे देता है तो तुम्हारे भीतर कभी ज्ञान नही आएगा। यह निमित्त नही बनेगा, यह बाधा बन जायेगी। अब ये बाते उल्टी दिखती हैं ऊपर से। अगर तुम्हे पक्का स्पष्ट है कि क्या पढ़ने से मिलेगा तो तुम्हे पढ़ने से भी कुछ मिल सकता है, क्योंकि तब तुम पढने को नही पकड लोगे क्योंकि तुम्हे यह स्पष्ट है कि पढ़ने से कुछ नही मिलता। तब तुम सुनने को नही पकड़ लोगे। तब, तुम सोचोगे, समझोगे, खोजोगे; वह तुम्हारी खोज जारी रहेगी। और तब पढना भी एक निमित्त बन सकता है तुम्हारी खोज का। तो शास्त्रो से भी वे लोग फायदा उठा सकते हैं, जो शास्त्रो से नहीं बधे है, जो बिल्कुल मुक्त हैं शास्त्रो से, जिन्हे ख्याल ही नही कि शास्त्रो से ज्ञान मिलता है वे शास्त्रो से भी फायदा उठा सकते हैं। और जो यह कहते है कि शास्त्रों में सब लिखा है, सब मिल जाएगा वे शास्त्रो को छाती पर रख कर सिर्फ डूब जाते हैं, और कुछ भी नही कर पाते। और मेरी बहुत बातें तुम्हे उल्टी दिखाई पड़ सकती हैं क्योंकि जिन्दगी ही उल्टी है। और, यहां बड़े अजीब मामले हैं। यहां ऐसा मामला है कि अगर एक आदमी ऐसा पक्का समझ ले कि शास्त्र पढ़ लिया है तो सब मिल गया तो वह पढ़ता रहे शास्त्र, इकट्ठा करता रहे, बहुत इकट्ठा कर ले। और उसे कभी कुछ न मिलेगा

क्योंकि उसने मिलने की सारी बात शास्त्र पर छोड़ दी है और उसकी अन्तर खोज सब खत्म हो गई है। जब शास्त्र से मिल जाता है तो अन्तर खोज की जरूरत क्या है ? इकट्ठा कर लेगा वह शास्त्र और उसकी अन्तर खोज क्षीण होती जाएगी, मर जाएगी। जितना शास्त्र ज्यादा हो जाएगा उतनी अन्तर खोज मर जाएगी। लेकिन एक आदमी जो सचेत है पूरा कि शास्त्र से क्या मिलने वाला है, शब्द ही है वहां, अन्तर खोज जारी रखी है उसने। अन्तर खोज जारी है तो जितनी अन्तर खोज होती चली जाती है उतना ही अधिक उसे शास्त्र में मिलने लगता है, उतना ही अधिक उसे दिखाई पड़ने लगता है क्योंकि शास्त्र आखिर जिन्होंने कहा है, उन्होंने जानकर ही कहा है, कहा नहीं जा सकता, मुश्किल है कहना तो भी जाना है उन्होंने तो ही कहा है। कोड है वह तो। इसमें कुछ जानने वालों ने कुछ प्रतीक छोड़े हैं।

अब जैसे समझ लें एक मन्दिर है, वहां एक मूर्ति रखी है। यह भी एक 'कोड' है, यह भी एक शास्त्र है। उधर अक्षरों में लिखा है, यहां हमने पत्थरों में खोदा है। सब मन्दिर 'कोड' लैंग्वेज (भाषा) में है। अब नए मन्दिर नहीं है क्योंकि नए मन्दिर का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। जितने नए मन्दिर बन गए हैं उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अब, क्योंकि हमें पता ही नहीं है, कोई और ही हिसाब से बना रहे हैं। नया आर्किटेक्ट आ रहा है उसमें, नई बिल्डिंग की डिजाइन आ रही है। वह सब आ रहा है, लेकिन जितना पुराना मंदिर है उतनी ही 'कोड' लैंग्वेज (सांकेतिक भाषा) में है। मंदिर की एक भाषा है। क्योंकि असल में आदमी की कितनी करुण दशा भी है, कितनी कठिनाई भी है। जिनको एक बार कुछ पता चल गया है, वे चाहते हैं कि वह किसी तरह सुरक्षित रह जाए। 'शब्द' में भी लिखते हैं, पत्थर में भी खोदते हैं क्योंकि किताब गल जाएगी, जल जाएगी तो पत्थर में खुदा रहेगा। मन्दिर के पत्थर में 'कोड' खोदा हुआ है। और सारी व्यवस्था ऐसी की गई है कि जो अन्तस् खोज में जाएगा उसके लिए मन्दिर एकदम सार्थक हो जाएगा क्योंकि तब उसे अर्थ ही दूसरे दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। तुम अगर मन्दिर की बनावट देखो तो चौकोन मन्दिर होगा। लेकिन उसके ऊपर का गुम्बद गोल होगा। यानी दो हिस्सों में मन्दिर बंटा हुआ है, नीचे का चौकोन हिस्सा है, ऊपर का गोल हिस्सा है। भीतर तुम जाओगे तो जहां मूर्ति स्थापित की गई है उसे कहते हैं गर्भगृह। अब उसे

क्यों गर्भगृह कहते हैं । वहा मूर्ति रखी है । उस मूर्ति की तुम्हें परिक्रमा करनी होती है । यह कितनी करनी है वह भी सब निर्धारित है । मन्दिर चौकोन है, परिक्रमा गोल है । उस गोल परिक्रमा के बीच मे एक ठीक केन्द्र पर मूर्ति है । ऊपर भी मन्दिर गोल है । अब एक 'कोड' लेंग्वेज है । इन्द्रिय हमारे कोने है; और एक इन्द्रिय में हम चले जाए तो हम एक दिशा मे चले जाएंगे । सब इन्द्रियो के ऊपर, कही न जाने वाली एक गोल स्थिति है जिससे कोई दिशा नही जाती, जिसमे अन्दर घूमना पडता है । कोना तो एक दिशा की तरफ इगित करता है । पूरब–तो पूरब की तरफ बढते चले गए तो तुम पूरब चले जाओगे अन्तहीन । लेकिन गोल घेरे मे किसी तरह इगित नही है । वहां तो तुम्हे अन्दर गोल घूमना पडता है । एक तो हमारा शरीर है, जिसमे दिशाए हैं, जिसमे से तुमने कोई दिशा पकड ली तो अन्तहीन जा सकते हो । और शरीर के अन्दर हमारा एक गोल परिभ्रमण है चित्त का जहा कि तुम कही जा नही सकते, केवल गोल घूम सकते हो । अगर कभी तुमने विचार पर ख्याल किया होगा तो तुम हैरान होगे कि विचार सदा गोल घूमता रहता है । उसकी कभी कोई दिशा नही होती । तुम एक विचार सोचोगे, दूसरा सोचोगे फिर तुम पहले पर आ जाओगे । तुमने कल जो कुछ सोचा था फिर आज सोचने लगोगे फिर कल सोचने लगोगे । विचार का जो घेरा है वह वर्तुल है; वह गोल घेरे मे घूम रहा है । तुम विचार मे भी सीधे नही जा सकते । उसका वर्तुल निश्चित है । अगर कोई भी व्यक्ति अपने भीतर चित्त का थोडा विश्लेषण करेगा तो हैरान रह जाएगा क्योकि वह हमेशा गोल-गोल घूमता रहा है सारी जिन्दगी । वह परिक्रमा है । विचार परिक्रमा है । और अगर तुम विचार की परिक्रमा मे ही घूमते रहे, तुम भगवान तक कभी नही पहुचोगे क्योकि वह उस परिक्रमा के ठीक भीतर है । इस परिक्रमा से उतरो तो तुम पहुंच पाओगे । इसके तुम लगाते रहो चक्कर हजार । अब दो बाते ध्यान मे हो । एक तो चौकोन दिशाओं वाला जहा से डायमेन्शन्स जाते हैं शरीर के । कोई आदमी भोजन के रस मे चला गया है, कोई आदमी कामवासना के रस मे चला गया है, कोई आदमी संगीत के रस मे चला गया है, कोई आदमी सौन्दर्य के रस मे चला गया है । ये दिशाएं अन्तहीन है । ये चली जाएगी । और जितना तुम इनमे जाओगे उतना ही तुम स्वयं से दूर निकलते जाओगे । इसीलिए बाहर के मन्दिर के परकोटे को गोल नही बनाया है । परकोटा हमारा गोल नहीं है । शरीर मे

कोने हैं जिनसे यात्रा हो सकती है। और एक कोने से यात्रा करोगे तो दूसरे कोनो से विरोध हो जायेगा एकदम। और एक ही कोना बढ़ता चला जाएगा और अपने से निरन्तर दूर होते चले जाओगे। फिर, हमारे भीतर शरीर का परकोटा है। उसके भीतर चित्त की गोल परिक्रमा है। अगर तुम इसमे घूमते रहे तो अनेक जन्मों तक घूमते रहोगे इस परिक्रमा में, तो भी परमात्मा तक नही पहुचोगे, सत्य तक नही पहुचोगे। कभी न कभी इस परिक्रमण से उतर जाना पड़ेगा, अन्दर चले जाना पड़ेगा। और मूर्ति जो है बिल्कुल स्थिर है। इसलिए, सारी मूर्तियां स्थिरता की सूचक हैं।

लेकिन कई दफा हैरानी होती है। जैसे अभी जो बात चल रही थी उस पर ख्याल तुम्हे आ जाएगा। जैनो की चौबीस तीर्थंकरो की मूर्तिया हैं। तुम कोई फर्क नही बता सकते हो उनमे, सिवाय चिन्हो के। अगर चिन्ह अलग कर दिए जाए तो मूर्तिया एक जैसी है। उनमे कोई भी फर्क नही हैं। महावीर की मूर्ति पारस की हो सकती है, पारस की नेमि की हो सकती है। सिर्फ नीचे का एक चिन्ह भर है। उसको तुम अलग कर दो तो किसी भी मूर्ति मे कोई फर्क नही है। क्या ये चौबीस आदमी एक जैसे रहे होगे? क्या यह ऐतिहासिक हो सकता है मामला कि इन चौबीस आदमियों की एक जैसी आंख, एक जैसी नाक, एक जैसे चेहरे, एक जैसे बाल रहे हो? यह तो असम्भव है। दो आदमियो का एक जसा खोजना मुश्किल है। और ये चौबीस बिल्कुल एक जैसे रहे हो, इनमे भेद ही नही कोई? नही, यह ऐतिहासिक तथ्य नही है। यह तथ्य ज्यादा आन्तरिक है। क्योंकि जैसे ही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, सब भेद विलीन हो जाते हैं, और अभेद शुरू हो जाता है। वहा सब एक सा चेहरा है, एक सी नाक है और एक सी आंख है। मतलब केवल इतना है कि हमारे भीतर एक ऐसी जगह है जहा नाक-चेहरे आदि मिल जाते हैं, बिल्कुल एक सा ही रह जाता है। जो लोग एक जैसे हो गए हैं उनको हम कैसे बताए? तो हमने मूर्तिया एक जैसी बना दी हैं—बिल्कुल एक जैसी। उनमे कोई फर्क ही नही दिया है। मूर्तियां कभी एक जैसी नही रही, हो नही सकती। इसलिए मूर्तियो की चिन्ता ही नहीं करनी पडी। महावीर का चेहरा कैसा रहा हो, यह सवाल ही नहीं रहा है। उस चेहरे की हमने बात ही छोड दी। अगर फोटोग्राफ लिया होता तो महावीर की मूर्ति से यह कभी मेल ही नही खा सकती थी। क्योंकि फोटोग्राफ सिर्फ बाहर को पकडता है। मूर्ति में हमने भीतर को पकड़ने की

कोशिश की है। भीतर आदमी एक से हो गए हैं। इसलिए अब इनकी बाहर की मूर्तियों को अलग-अलग रखना गलत सूचना हो जाएगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि भीतर को हमने बाहर पर जिता दिया है। फोटोग्राफ मे बाहर भीतर पर जीत जाता है। फोटोग्राफ अलग-अलग होता है। परन्तु ये चौबीस तीर्थंकरो की मूर्तिया अलग नही। ये बिल्कुल एक हैं। उनका लेबल एक हो गया। जैसे ही चेतना एक तल पर पहुच गई है, सब एक हो गया है। यानी उनके चेहरे एक हो गए, चेहरो मे फर्क नही रहा। आखें अलग-अलग रही होंगी लेकिन जो उनसे झांकने लगा, देखने वाला था, वह एक हो गया। होठ अलग-अलग रहे होंगे लेकिन जो वाणी निकलने लगी, वह एक हो गई। भीतर सब एक हो गए।

तो एक गोल परिक्रमा है जिसका हम चक्कर अनन्त जीवन तक लगाते रहे तो भी इस गर्भगृह मे प्रवेश नही कर पाएगे। परिक्रमा से उतरना पड़ेगा। तो हम वहा जाएगे, जहा भगवान को प्रतिष्ठित किया है। भगवान को अगर हम गौर से देखेंगे तो सब स्थिर है, सब शान्त है। उस मूर्ति मे सब शान्त है, सब स्थिर है जैसे वहा कोई गति ही नही, कोई कम्पन नही। इसलिए, पत्थर की मूर्तिया चुनी गईं क्योंकि पत्थर हमारे पास सबसे ज्यादा ठहरा हुआ तत्त्व है जिससे हम खबर दे सकें—सबसे ज्यादा ठहरा हुआ और उस ठहराव मे भी जो हमने रूपरेखा चुनी है, वह बिल्कुल ठहरी हुई है। मूवमेन्ट की बात ही नहीं। इसलिए हाथ जुडे हुए है, पैर जुडे हुए हैं। पैर क्रॉस्ड हैं पद्मासन मे, आखे आधी बन्द हैं। ध्यान रहे आखें अगर पूरी बन्द हों तो खोलनी पड़ेगी। आखे अगर पूरी खुली हो तो बन्द करनी पड़ेंगी क्योंकि अति मे लौटना पड़ता है। अति पर कोई ठहर नही सकता। अगर आप श्रम करे तो आपको विश्राम करना पड़ेगा। अगर विश्राम करे बहुत, तो फिर आपको श्रम करना पड़ेगा। 'अति' पर कोई कभी ठहर नही सकता। इसलिए आख को आधा खुला, आधा बन्द रख दिया है, मध्य मे जहा से न यहा जाना है न वहा जाना है ठहरने का प्रतीक है सिर्फ, सब ठहर गया है। अब कही कुछ जाना-आना नही। अब कही कोई गति नहीं। न पीछे लौटना है, न आगे जाना है। अब कही कुछ जाना नही। यह सब ठहरा हुआ वह बिल्कुल केन्द्र में है। तो मन्दिर प्रत्येक व्यक्ति का प्रतीक है कि तुम अपने साथ क्या कर सकते हो। या तो तुम बाहर के कोनो से जा सकते हो, यात्रा पर। यह इन्द्रियों की यात्रा होगी। या तो भीतर मस्तिष्क

के विचार में चक्कर लगा सकते हो; वह परिभ्रमण होगा। और या तुम सबके बीच मे जाकर स्थिर हो सकते हो, वह उपलब्धि होगी। हजार तरह की कोशिश की है। नृत्य मे, संगीत मे, चित्र मे, मूर्ति मे, शब्द में, हजार तरह की कोशिश की है। पिरामिड है, इजिप्ट के। उनमें जो बड़े अद्‌भुत रहस्य है, वे सब खोद डाले हैं उन्होंने कि कभी भी कोई जानने वाले लोग आएगे तो पत्थर न मिटेंगे। बड़ी मेहनत की है। सब खोद डाला है कि कैसे अन्तरात्मा तक पहुचने का क्या रास्ता है? पिरामिड के पूरे पत्थरों मे सब इशारे खुदे हुए हैं, पूरे इशारे खुदे हुए हैं। जिन लोगो ने जाना है, उन्होने बहुत तरह की कोशिश की है कि जो जाना है वह किसी तरह रह जाए और बाद में जब भी कोई जानने वाला आये तो वह फौरन खोल ले कि वहां क्या है। वे हैं कुंजियां जिनसे ताले खुलते हैं। लेकिन न आपको ताले का पता है, न आपको कुंजी का पता है। आप कुंजी भी लिए बैठे हैं; ताला भी लटका है, कुछ नहीं खुलता। और पहली बात यह है कि अगर जोर से अंधे की तरह कुछ पकड़ लिया तो तुम कभी भी कुछ नहीं खोल पाओगे। इसलिए पकड़ना मत।

जो मैं निरन्तर कह रहा हू उसका कुल मतलब इतना है कि शास्त्र को पकड़ना मत। पढ़ना, पकड़ना मत, सुनना किसी को लेकिन बहरे मत हो जाना, पढ़ो, अंधे मत हो जाना! सुनना और पूरी तरह जानते हुए सुनना कि सुनने से क्या हो सकता है। और, मैं कहता हू कि अगर इस तरह सुना तो सुनने से भी हो सकता है। पढ़ने से क्या हो सकता है? अगर ऐसा जानते हुए पढ़ा तो पढ़ने से भी हो सकता है। हो सकने का मतलब यह कि वह भी निमित्त बन सकता है तुम्हारी भीतर की यात्रा का। कोई भी चीज निमित्त बन सकती है। लेकिन अंधे होकर पकड़ लेने से सब बाधा हो जाती है। पढ़ो; सुनो! लेकिन प्रत्येक क्षण यह जानते रहो कि खोज मेरी है और मुझे करनी होगी। इसमे बासा और उधार सत्य नहीं ले सकता है। यह अगर स्मरण रहे तो मैं जो कह रहा हू वह तुम्हारे लिए बाधा नहीं बनेगा। नहीं तो वह भी बाधा बन जाएगा।

अब तुमने देखा खजुराहो का मन्दिर। जिनकी समझ मे बात आई उन्होंने कितनी मेहनत से खोदने की कोशिश की है। मन्दिर के बाहर की दीवार पर सारी सेक्स, सारी काम और योनि सब खोद डाला है। बड़ी अद्‌भुत बात खोदी है पत्थर पर। लेकिन भीतर मन्दिर मे नहीं है सेक्स का कोई चित्र।

सब बाहर की परिधि पर खोदा गया है। और मतलब यह है सिर्फ कि जीवन की बाहर की परिधि 'सैक्स' से बनी है, काम से बनी है। और, अगर मन्दिर के भीतर जाना है तो इस परिधि को छोड़ना पड़ेगा। मन्दिर के बाहर ही रहना हो तो ठीक है, यही चलेगा। 'काम' जीवन की बाहर की दीवार है और 'राम' भीतर मन्दिर में प्रतिष्ठित है। जब तक काम में उलझे हो तब तक भीतर नहीं जा सकोगे। लेकिन अगर सारे मैथुन चित्रों को कोई घूमता हुआ देखता रहे तो कितनी देर देखता है। फिर थक जाता है, फिर ऊब जाता है, फिर कहता है कि अब मन्दिर मे अन्दर चलो। और अन्दर जाकर बड़ा विश्राम पाता है क्योंकि वहा पर एक दूसरी दुनिया शुरू होती है। जब जीवन की अनन्त यात्राओ मे थक जाएगे हम, सैक्स के जीवन से बाहर घूम-घूमकर, तब एक दिन मन कहेगा कि अब बहुत हुआ; अब बहुत देखा, अब बहुत समझा, अब भीतर चलो। इस तथ्य को पत्थर मे खोद कर छोड़ दिया किन्ही ने, जिन्होंने जाना उन्होने छोड दिया। अनुभव से यह बात उनको दिखाई पडी कि दो ही तरह का जीवन है—या 'काम' का या 'राम' का। और 'काम' 'राम' के मन्दिर की दीवार है। ऐसा नही कि काम राम का दुश्मन है, सिर्फ बाहर की दीवार है। 'राम' को वही सुरक्षित किए हुए है चारों तरफ से। राम के रहने का घर उसी से बना है। राम को निवास न मिलेगा अगर 'काम' न रह जाए। तो 'काम' दुश्मन भी नही है। फिर भी 'काम' रोकने वाला है। अगर बाहर ही घूमते रहे, तो भूल ही जाओगे कि मन्दिर मे एक जगह है जहा 'काम' नहीं है, जहा कुछ और शुरू होता है, एक दूसरी ही यात्रा शुरू होती है। लेकिन जब ऊब जाओ तभी तो भीतर जाओगे। अभी भी मैं देखता हूं कि जब खुजराहो जाकर बैठ जाता हूं तो जो देखने वाले आते हैं, वे पहले तो बाहर ही घूमते हैं। मन्दिर को कोई सीधा नही जाता। कभी कोई गया ही नहीं भीतर मन्दिर मे। कोई भी जा कैसे सकता है ? उधर बैठ कर देखता हू तो जो भी यात्री आता है वह पहले बाहर घूमता है। और इतने अद्भुत चित्र हैं कि कहा भीतर जाना ? कैसा भीतर ! वे इतने उलझाने वाले हैं और इतने अद्भुत हैं कि इतनी मैथुन प्रतिमाए इस अद्भुत ढंग से दुनिया में कहीं भी नहीं खोदी। असल में दुनिया मे इस गहरे अनुभव को बहुत कम लोग उपलब्ध हुए। अतः इसे खोदने का कोई उपाय न था। खोद ही नहीं पाए। अब पश्चिम करीब पहुंच रहा है, जहां हमने हजार दो हजार साल पहले खोदे वहां अब पहुंच रहा है। अब वहां 'सेक्स' की परिधि अपनी पूरी तरह प्रकट

हो रही है। हो सकता है कि सौ दो सौ वर्षों में वह भीतर के मन्दिर को भी निर्मित करे। जोर से परिभ्रमण हो रहा है सेक्स का, अब भीतर का मन्दिर निर्मित होगा। मैं देखता हूं कि वहां तो बाहर यात्री घूम रहा है। धूप तेज होती जाती है और यात्री एक-एक मैथुन चित्र को देखता जाता है। थक गया है, पसीना-पसीना हो गया है। सब देख डाला बाहर ; फिर कहता है—चलो अब भीतर भी देखें। बाहर से थक जाएगा तो कोई भीतर जाएगा। अब इसको पत्थर मे भी खोदा है ; कितनी मेहनत की है। इसे किताबों में भी लिखा है। लेकिन किताब में इतना ही लिखना पड़ेगा कि जब बाहर मे थक जाओगे, 'काम' मे जब थक जाओगे तब 'राम' की उपलब्धि होगी। लेकिन हो सकता है कि इतना सा वाक्य किसी के ख्याल मे ही न आए; हो सकता है कि इसको पढ कर तुम कुछ भी न समझो। तो इसका एक मन्दिर भी बनाया है। और इसको हजार रूप मे खोजा है—संगीत से भी, नृत्य से भी, सब तरफ से, सब माध्यम से। जिसको भी ज्ञात हो गया है वह कोशिश करेगा तुम्हें खबर देने की। लेकिन फिर भी जरूरी नहीं। अगर तुमने खबर को भी पकड़ लिया, जैसे किसी ने कहा कि यही सत्य है कि खजुराहो के मन्दिर मे बाहर 'काम' है, अन्दर 'राम' है, तो हम इसी मन्दिर मे ठहर जाते हैं, झंझट छोड़ें, जब यही सत्य है और सब सत्य इसमे खोदा हुआ है तो हम इसी मन्दिर के पुजारी हो जाते हैं। तो हो जाओ तुम पुजारी ! चूक गए तुम बात। अगर तुम समझ जाते तो इस मन्दिर से कुछ लेना देना ही नहीं था। बात खत्म हो गई थी। अगर इशारा समझ मे आ गया होता तो इस मन्दिर मे न भीतर था, न बाहर था कुछ। बात खत्म हो गई थी और तुम कहते कि ठीक है। और तुम लोगो से कहते कि देखना मन्दिर मे मत उलझ जाना; मन्दिर से कुछ न मिलेगा और अगर ध्यान रहा कि मन्दिर से कुछ न मिला तो शायद खोज हो और मन्दिर से भी कुछ मिल जाए। मेरी कोई शत्रुता नहीं मन्दिर से, शत्रुता होने का कोई सवाल ही नहीं, न कोई निंदा है। क्योंकि निंदा करने का क्या अर्थ हो सकता है ? जो मैं कह रहा हूं, वह फिर लिखा जाएगा, तो लिखे हुए का क्या अर्थ हो सकता है लेकिन इतनी चेतावनी जरूरी है कि न निन्दा करना, न प्रशंसा करना। समझना; समझ तो वह मुक्ति की तरफ ले जाता है।

प्रश्न : तो सिर्फ तीर्थंकरों की ही क्यों, बुद्ध और महावीर में भी वही रूप की समानता है। क्राइस्ट, राम और कृष्ण—सबमें वही समानता है। लेकिन वे अलग-अलग समय में हुए इसलिए इनकी बात छोड़ें हम। केवल बुद्ध और महावीर की बात करें। दोनों समकालीन हैं। दोनों में से महावीर ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं बुद्ध हैं; जो मेरा रूप है वही बुद्ध का रूप है। और बुद्ध ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं वही महावीर का रूप है ?

उत्तर : विचारणीय बात है। चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां एक जैसी हैं। तो क्यो क्राइस्ट की, क्यो बुद्ध की भी ऐसी नही है ? और ठीक कहते हैं आप, कम से कम बुद्ध तो महावीर के साथ ही थे, एक ही समय मे थे। इन दोनों की मूर्तिया एक जैसी हो सकती थी। लेकिन नही ! और नहीं हो सकती थीं। कारण कि ये जो चौबीस तीर्थंकरो की एक धारा है इस धारा ने एक सोचने का ढग निर्मित किया है, अभिव्यक्ति की एक 'कोड' लेंग्वेज निर्मित की है इस धारा ने। और, यह धारा कोई तीर्थंकर नहीं बनाती। यह धारा तीर्थंकरों के आस-पास निर्मित होती है। यह सहज निर्मित होती है। एक भाषा, एक ढग, एक प्रतीक की व्यवस्था निर्मित हुई है, शब्दो की परिभाषा और ढंग निर्मित हुआ है, और यह ढग कोई तीर्थंकर निर्मित नही करता, उनके होने से निर्मित होता है। उनकी मौजूदगी से निर्मित होता है। जैसे सूरज निकला है। सूरज अब कोई आपकी बगिया का फूल निर्मित नही करता। लेकिन सूरज की मौजूदगी से फूल खिलते हैं, फूल निर्मित होते हैं। सूरज न निकले तो आपकी बगिया में फूल नही खिलेंगे। फिर भी सूरज सीधा जिम्मेदार नही है आपकी बगिया के फूल खिलाने को। फिर आपने अपनी बगिया मे एक तरह के फूल लगा रखे है और मैंने अपनी बगिया मे दूसरी तरह के। मेरा बगिया मे दूसरी तरह के फूल खिलते हैं और आपकी बगिया मे दूसरी तरह के। दोनो सूरज से खिलते हैं। फिर भी, दोनों मे भेद होगा और आपने अपनी बगिया मे इस तरह के फूल लगा रखे हैं तो उनमें भी भेद होगा। प्रत्येक धारा जैसे कि चौबीस तीर्थंकरों की एक धारा है, एक प्रतीक व्यवस्था में खड़ी हुई है। उसका अपना प्रतीक है, अपने शब्द हैं, अपनी 'कोड' लेंग्वेज है। और वह, उसके आस-पास जो वर्तुल खड़ा हो गया है उन शब्दों, उन प्रतीकों के आस-पास, वह न दूसरे प्रतीक समझ सकता है, न पहचान सकता है। बुद्ध की एक बिल्कुल नई

परम्परा शुरू हो रही है जिसके सब प्रतीक नए हैं और मैं मानता हू कि उसका भी एक कारण है। असल मे पुराने प्रतीक एक सीमा पर जाकर जड हो जाते हैं और हमेशा नए प्रतीकों की जरूरत पडती है। अगर बुद्ध यह कह दें कि जो मैं कह रहा हू वही महावीर कहते हैं तो जो फायदा बुद्ध पहुंचा सकते हैं, वह कभी नही पहुचा सकेंगे। महावीर पर एक धारा खत्म हो रही है और जड़प्राय होकर नष्ट हो रही है। महावीर अन्तिम हैं एक भाषा के और वह भाषा जड हो गई होगी, उखड गई होगी और अब उसकी गति चली गई होगी, टूटने के करीब हो गई होगी। बुद्ध एक बिल्कुल नई धारा के सिर्फ प्रारम्भ हैं। इस नई धारा को पूरी चेष्टा करनी पडेगी कि वह कहे कि यह महावीरवाली धारा तो है ही नही। मजा तो यह है कि यह पूरी तरह जानते हुए कि जो महावीर हैं वही बुद्ध हैं, बुद्ध को पूरे समय जोर देना पडेगा, और ज्यादा जोर देना पडेगा कि कही भूल-चूक से भी वह उस धारा से न जुड जाए क्योंकि वह जो मरती हुए धारा हो गई है, जिसका वक्त पूरा हो गया है विदा हो रही है, अगर उससे यह भी जुड गई तो यह जन्म ही नही ले पाएगी। आप मतलब समझ रहे हैं न ? मेरा मतलब यह है कि बुद्ध को बहुत सचेत होना पड़ेगा। इसलिए ख्याल मे आपको आ जाए कि महावीर ने बुद्ध के खिलाफ एक शब्द भी नही कहा, बुद्ध का कोई खण्डन नहीं किया। लेकिन बुद्ध ने बहुत बार महावीर का खण्डन किया और बहुत कठोर शब्द कहे। इसलिए मैं कहता हूं कि महावीर वृद्ध थे, बुद्ध जवान थे महावीर विदा हो रहे थे और बुद्ध आ रहे थे। बुद्ध को एकदम जरूरी था यह डिस्टिंक्शन बनाना, यह भेद बनाना, बिल्कुल साफ। उस व्यवस्था से हमें कुछ लेना देना नहीं। वह बिल्कुल गलत है, क्योंकि लोक मानस मे वह विदा होती हुई व्यवस्था हुई जा रही है और अगर उससे कोई भी सम्बन्ध जोडा तो नई व्यवस्था के जन्मने में बाधा बनने वाली है, और कुछ नहीं होने वाला है। फिर और भी बात है। चाहे कोई व्यवस्था विचार की, चिन्तन की, दर्शन की कितनी ही गहरी क्यो न हो वह केवल एक विशेष तरह के व्यक्तियों को ही प्रभावित करती है। कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जो सब तरह के व्यक्तियों के काम आ सके। अब तक नही है और न हो सकती है। अब तो यह पक्का माना जा सकता है कि वह नहीं हो सकती। महावीर के व्यक्तित्व को जो प्रभावित करती है बात, वह पारस वाली, नेमि वाली, आदिनाथ वाली बात उन्हें प्रभावित करती है। वह उस टाइप के व्यक्ति

हैं, और इस टाइप के बनने में भी अनन्त जन्म लगते हैं। एक खास टाइप के बनने में उनको वह खास तरह की धारा ही प्रभावित कर सकती है। बुद्ध बिल्कुल भिन्न तरह के व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व की अपनी यात्रा है। उन्हें उसमें कुछ रस नहीं मालूम होता। लेकिन मैं मानता हूं कि बुद्ध की चिंतना ने बहुत से लोगों को, जो महावीर से कभी कोई लाभ नहीं ले सकते थे, लाभ दिया। और वे बुद्ध से लाभ ले सके। लेकिन बुद्ध और महावीर की एक धारा है; मीरा की अपनी चिन्तना, अपनी धारा है। महावीर और मीरा का व्यक्तित्व बिल्कुल उल्टा है। अगर महावीर की अकेली चिन्तना दुनिया मे हो तो बहुत थोडे से लोग ही सत्य के अन्तिम मार्ग तक पहुच पायेंगें क्योंकि मीरा के टाइप के लोग वंचित रह जायेंगे, उनसे उसका मेल ही नही हो पाता। अनन्त धाराएं चलती हैं इसलिए कि अनन्त प्रकार के व्यक्ति हैं और चेष्टा यही है कि ऐसा एक व्यक्ति भी न रह जाए जिसके योग्य और जिसके अनुकूल पड़ने वाली धारा न मिल सके। इसलिए अनन्त धाराएं हैं और रहेगी। दुनिया जितनी विकसित होती जाएगी उतनी धाराएं ज्यादा होती जाएंगी। धाराए ज्यादा होनी चाहिएं।

महावीर की जो जीवनधारा है वह एकदम पुरुष की है, उसमें स्त्री का उपाय ही नही है। पुरुष और स्त्री के मानस में बुनियादी भेद है। जैसे स्त्री के पास जो मन है वह निष्क्रिय (पैसिव) मन है। पुरुष के पास जो मन है वह आक्रामक (एग्रेसिव) मन है। इसलिए स्त्री अगर किसी को प्रेम भी करे तो आक्रमण नही करेगी। प्रेम भी करे, उसका मन किसी के पास जाने को हो, तब भी बैठकर उसकी प्रतीक्षा करेगी कि वह आए। यानी वह किसी को प्रेम भी करती है तो जा नही सकती उठकर उसके पास। वह प्रतीक्षा करेगी कि वह आए। उसका पूरा का पूरा मन निष्क्रिय (पैसिव) है। आप आएंगे तो खुश होगी, आप नहीं आएंगे तो दुखी होगी। लेकिन इने-शियेटिव नही ले सकती, पहल नही कर सकती कि वह खुद आप पर जाए। अगर एक स्त्री किसी को प्रेम करती है तो वह कभी प्रस्ताव नही करेगी कि मुझ से विवाह करना है। वह प्रतीक्षा करेगी कि कब तुम प्रस्ताव करो। किसी स्त्री ने कभी प्रस्ताव नही किया विवाह का। हा वह प्रस्ताव के लिए सारी योजना करेगी। प्रस्ताव लेकिन तुम्ही करो। प्रस्ताव कभी वह नही करने वाली। और प्रस्ताव किए जाने पर भी कभी कोई स्त्री सीधा 'हां' नहीं भर सकती क्योंकि 'हां' भी आक्रामक है। और एकदम से 'हां' भरने से पता

चलता है कि उसकी तैयारी थी। तो कभी एकदम 'हां' नही करेगी। वह 'ना' करेगी। 'ना' को धीरे-धीरे, धीमा करेगी। 'ना' को धीरे-धीरे 'हां' के करीब ला पाएगी। 'निगेटिव' है उसका माइन्ड। शारीरिक रचना भी उसकी निगेटिव है, पाजेटिव नही। इसलिए स्त्री कभी किसी पुरुष पर बलात्कार नही कर सकती, कभी हमला नही कर सकती क्योकि पुरुष यदि राजी नही है तो स्त्री किसी तरह का काम सम्बन्ध उससे स्थापित नही कर सकती। लेकिन स्त्री अगर राजी भी नही होती तो भी पुरुष उसके साथ सम्भोग कर सकता है, व्यभिचार कर सकता है। क्योकि वह है निगेटिव; पुरुष है पाजिटिव।

महावीर की जो जीवन चिन्तना है वह पुरुष की जीवन चिन्तना है। इसलिए महावीर के मार्ग मे स्त्री को मोक्ष पाने का उपाय भी नही है। अकारण नही है वह बात। इसका मतलब यह नही कि स्त्री को मोक्ष नही हो सकता। इसका मतलब केवल इतना है कि महावीर के मार्ग से नही हो सकता। महावीर के मार्ग मे स्त्री को एक बार और पुरुष योनि लेनी पड़े तब वह मोक्ष की तरफ जा सकती है। क्योकि महावीर की जो व्यवस्था है, वह सकल्प की है; इच्छा की, आक्रमण की, बहुत गहरे आक्रमण की व्यवस्था है। उस व्यवस्था मे कही हारना, टूटना, पराजित होना उसका उपाय नही। महावीर कहते हैं कि जीतना है तो जीतो, समग्र शक्ति लगाकर जीतो। एक इच शक्ति पीछे न रह जाए। और लाम्रोत्से कहता है अपने एक शिष्य को जो उससे पूछता है कि आप कभी हारे। लाम्रोत्से कहता है "मैं कभी नही हारा"। शिष्य कहता है "कभी तो हारे होगे, जिन्दगी मे, किसी मौके पर।" लाम्रोत्से कहता है, "बिल्कुल नही! कभी मैं हारा ही नही!" तो उसका रहस्य क्या था; राज क्या था? लाम्रोत्से कहता है, "राज यह था कि मैं सदा हारा हुआ ही था। यह मेरे हारने का कोई उपाय ही न था। मैं पहले से ही हारा हुआ था। कोई मेरी छाती पर चढ़ने आता तो मैं जल्दी से लेट जाता और उसको बिठा लेता। वह समझता कि मैं जीत गया; मैं समझता कि खेल हुआ क्योंकि मैं पहले से हारा हुआ था। जीते क्या तुम? तो मुझे कोई हरा ही नही सकता क्योकि मैं सदा हारा हुआ हू।"

अब यह जो लाम्रोत्से है, यह स्त्री के मार्ग का अग्रणी व्यक्ति है। यह हराई नहीं जाएगी। यह पूरी तरह हार जाएगी और आपको मुश्किल में डाल देगी। स्त्री किसी को हराने नहीं जाएगी और हराने के लिए जाकर मुश्किल

में पड़ जाएगी। वह पूरी तरह हार जाएगी; पूर्ण आत्मसमर्पण कर देगी। वह कहेगी : मैं तुम्हारी दासी हू, तुम्हारे चरणों की धूल हूं। और तुम हैरान हो जाओगे कि कब वह तुम्हारे सिर पर बैठ गई, तुम्हें पता नही चलेगा। उसके जीतने का रास्ता हार जाना है, पूरी तरह हार जाना, सम्पूर्ण समर्पण। और जो स्त्री सम्पूर्ण समर्पण नही कर पाती, वह कभी नही जीत पाती, वह जीत ही नहीं सकती। इसलिए इस युग मे स्त्रियां दुखी होती चली जाती हैं क्योंकि उनका समर्पण खत्म हुआ जा रहा है और वे भूल कर रही हैं। वे सोच रही हैं कि पुरुष जैसा हम भी करें। वे उसमे हार जाने वाली हैं। पुरुष का करना और ढग का है। पुरुष के जीतने का मतलब है जीतना। स्त्री के जीतने का मतलब है हारना। उसका पूरा का पूरा मानस ही भिन्न है। इसलिए जो स्त्री जीतने की कोशिश करेगी वह कभी नही जीत पायेगी। उसका जीवन नष्ट हो जायेगा क्योंकि वह पुरुष की कोशिश में लगी है जो कि उसके व्यक्तित्व की सम्भावना ही नही। और इसीलिए, पश्चिम मे स्त्रिया बुरी तरह हार रही है क्योकि वे पुरुष को जीतने की कोशिश मे लगी हैं। वह बात ही उन्होने छोड दी है कि 'हम समर्पण करेंगे, हम जीतेंगे'। पुरुष को जीतने का एक ही उपाय था कि हार जाओगे। इस तरह मिट जाओगे कि पता ही न लगे कि तुम हो, और तुम जीत गए। पुरुष बच ही नही सकता; तुमसे जीत ही नही सकता।

लाओत्से कहता है कि हम पहले से ही हारे हुए थे, इससे हमे कभी कोई हरा नही सकता। लाओत्से और महावीर का मार्ग बिल्कुल उल्टा है। एक दम ही उल्टा है, इसमे कोई समानता ही नही है। लाओत्से का मार्ग उन लोगो के लिए उपयोगी है जो हारने मे समर्थ हैं, महावीर का मार्ग उनके लिए उपयोगी है जो जीतने मे समर्थ हैं, जो सिर्फ जीत ही सकते है। इसीलिए 'महावीर' का शब्द उनको मिल गया। महावीर शब्द मिलने का और कोई कारण नहीं है। लडने की, आक्रमण की जो चरम क्षमता है उससे वह महावीर कहलाए। और कोई कारण नही है। यानी वहां गुजाइश नही छोड़ी कोई उन्होंने किसी तरह के भय की, किसी तरह के समर्पण की। इसीलिए महावीर परमात्मा को इन्कार करते है। उसकी वजह है कि अगर भगवान है तो समर्पण करना पड़ेगा। हम से ऊपर कोई है यह महावीर मान ही नही सकते। पुरुष यह मान ही नहीं सकता कि वह जो पुरुष का चित्त है, उससे ऊपर है कोई। यह असम्भव

है। महावीर भगवान से इन्कार करते हैं। यह दार्शनिक (फिलासफिकल) नहीं है मामला। यह कोई दर्शन का मामला नहीं है कि कोई परमात्मा नहीं है। तुम ही परमात्मा हो। मैं ही परमात्मा हूं! आत्मा ही शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है। यानी आत्मा ही जब पूर्ण रूप से जीत लेती है तो परमात्मा हो जाती है। ऐसा कोई परमात्मा नही है जिसके पैरों में तुम सिर झुकाओ, जिसकी तुम प्रार्थना करो। परमात्मा से इन्कार कर देते हैं बिल्कुल क्योंकि परमात्मा है तो समर्पण करना पडेगा, भक्ति करनी पड़ेगी। इसलिए परमात्मा से बिल्कुल इन्कार है। लाओत्से अपने को इन्कार करता है। लाओत्से कहता है . "मैं हू ही नही। वही है; क्योकि मैं अगर थोडा सा भी बचा तो हमला जारी रहेगा, लड़ाई जारी रहेगी। अगर मैं जरा इंच भर 'मैं' हू तो वह 'मैं' लडेगा"। इसलिए लाओत्से कहता है कि 'मैं हूं ही नही। मैं एक सूखा पत्ता हूं। जब हवाएं मुझे पूरब ले जाती हैं, मैं पूरब चला जाता हू, पश्चिम ले जाती है, पश्चिम चला जाता हू। मैं एक सूखा पत्ता हू। जब हवाएं नीचे गिरा देती हैं, नीचे गिर जाता हूं; ऊपर उठा लेती हैं, ऊपर उठ जाता हू। क्योंकि "मैं हूं ही नही।" हवाओं की जो मर्जी है वह मेरी मर्जी है। सूखे पत्ते की तरह "मैं नही हू।" तो उसके लिए परमात्मा ही रह जाता है और ये दोनो रास्ते एक ही जगह पहुचा देते हैं। इससे कोई फर्क नही पडता। या तो मैं पूरी तरह मिट जाऊ तो एक ही बच गया परमात्मा। या परमात्मा को पूरी तरह मिटा दू तो एक ही बच गया "मैं"। बस एक ही बच जाना चाहिए आखिर मे। दो रहेगा तो उपद्रव है, आसक्ति है और एक ही बचाने के दो उपाय हैं। पुरुष एक को बचा लेता है, एकदम स्त्री को मिटाकर अपने में विलीन कर लेता है। स्त्री भी एक को बचा लेती है, वह अपने को मिटा देती है और पूरी तरह मिट जाती है। इसमे जो सवाल है किसी के ऊपर-नीचे होने का नही है। सवाल टाइप ऑफ माइन्ड का है। वह जो हमारे मस्तिष्क का टाइप है उसका तो महावीर का एक है मार्ग, एक है ढंग; बुद्ध का ढंग दूसरा है। बुद्ध की एक नई भाषा खडी हो रही है अब, नए प्रतीक खड़े हो रहे हैं। बुद्ध को समझना होगा तो उन्ही प्रतीकों से समझना होगा। बुद्ध की एक नई मूर्ति निर्मित हो रही है। क्राइस्ट का बिल्कुल और है मार्ग—तीसरा है। क्राइस्ट जैसा तो कोई आदमी नहीं है इनमें से। क्राइस्ट तो बिना सूली पर चढ़े हुए सार्थक ही नहीं। और महावीर अगर सूली पर चढे तो हमारे लिए

व्यर्थ हो जाएंगे। जो महावीर को एक धारा में सोचते हैं उनके लिए बिल्कुल व्यर्थ हो जाएगे। लेकिन क्राइस्ट का बिना सूली पर चढे अर्थ ही नहीं है। क्राइस्ट का और तरह का व्यक्तित्व है। कृष्ण का और ही तरह का, उसका कोई हिसाब ही नही। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि कृष्ण और महावीर में कैसे मेल बिठाएं, कोई मेल ही नही। और यह सब सार्थक है, सब सार्थक इन अर्थों में कि पता नही कौन सा व्यक्तित्व ज्योति की अनुभूति कराए; किस व्यक्तित्व में आपको ज्योति दिखे। आपको उसमे ही ज्योति दिखेगी जिस व्यक्तित्व का आपका टाइप होगा। नही तो आपको नही दिखेगी। मैं मानता हूं कि यह बड़ा विचित्र है कि यह सब भिन्न-भिन्न टाइप हैं, यह भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं, इन-इन भिन्न-भिन्न ज्योतियो से भिन्न-भिन्न तरह के लोगो को दर्शन हो सकते हैं। और हो सकता है, अभी भी बहुत सम्भावना शेष है। और हो सकता है उन्ही सम्भावनाओं के शेष होने की वजह से बहुत बडी मानव जाति अब तक धार्मिक नही हो पाई। उसका कारण है कि उस टाइप का आदमी अब तक ज्योति को उपलब्ध नही हुआ। मेरा मतलब आपने समझा न ? यानी जिसको वह समझ सकता था उस आदमी की पहुच ही नहीं उस जगह जहां से उसको ज्योति दिखाई पड़ जाए।

मेरी अपनी दृष्टि है, मेरा अपना प्रयोग रहा और मैं नहीं समझता कि किसी ने वैसा प्रयोग अब तक किया है। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं अपने व्यक्तित्व का टाइप मिटा दूं। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं सिर्फ व्यक्ति रह जाऊ अत्यन्त व्यक्तित्वहीन, जिसका कोई टाइप नहीं। जैसे मकान मे दो खिडकिया हैं। एक तरफ से हम देखेंगे तो एक दृश्य दिखाई पडेगा। दूसरी तरफ से देखेंगे तो दूसरा दृश्य दिखाई पड़ेगा। और दोनो दृश्य एक ही बडे दृश्य के हिस्से हैं। जिसको मैं इस खिड़की की बात कहू, वह दूसरी खिडकी पर खडा हो तो कहेगा सब झूठ है, सरासर झूठ है। कैसी ? कहा की झील ? कुछ नहीं है; सब झूठ बात है। मैं भी खिड़की पर खडा हूं। मैं भी बाहर देख रहा हू; झील नहीं है, पहाड़ है। और, मैं कहू कि कसा पहाड़ ? झील के अतिरिक्त तो यहां कुछ भी नही दिखाई पड़ रहा है। और हम लड़ते है क्योंकि दूसरे की खिड़की पर जाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरे की खिडकी पर जाने का मतलब दूसरा हो जाना है। और कोई उपाय नही। सारा का सारा व्यक्तित्व दूसरे जैसा हो जाए तो उसकी खिडकी पर आप खड़े हो जाएं। वह हो नहीं सकता; वह बहुत मुश्किल मामला है।

हजार खिडकियां हैं जीवन के भवन में। जिसकी खिड़की के जो खिड़की करीब पड़ गई वह उस खिडकी पर जाकर दर्शन कर सकता है। लेकिन एक रास्ता और भी है कि हम मकान के बाहर ही क्यो न आ जाएं ? दूसरे की खिडकी पर जाना तो बहुत मुश्किल है। लेकिन मकान के बाहर आजाना मुश्किल नही है। और मेरा मानना है कि मकान के बाहर आजाना सब तरह की खिडकी पर खडे लोगो के लिए एक जैसा ही आसान है। अगर एक खिडकी को हम पकड़ते हैं तो दूसरे की खिडकी के दुश्मन हो जाते हैं, हो ही जाएगे। और अगर हम मकान के बाहर आ जाते हैं तो हमे पता लगता है कि उस मकान के भीतर जितनी खिडकिया हैं, वे सब एक ही दृश्य को दिखला रही हैं।

दृश्य बहुत बडा है, खिडकिया बहुत छोटी हैं। खिडकियो से जो दिखाई पडता है वह पूरा नही। अब अगर कभी भी कोई व्यक्ति बाहर आ जाए, सारी दृष्टियो को, सारे 'मैं' को छोड कर, तो उसे दिखाई पडता है कि 'कृष्ण' एक खिडकी है, 'राम' एक खिडकी है, 'बुद्ध' एक खिडकी है, 'महावीर' एक खिडकी है। महावीर उस खिड़की से छलाग लगा चुके हैं बाहर। लेकिन खिडकी रह गई और उनके पीछे आने वाले खिडकी पर खडे रह गए। महावीर पहुच गए बाहर, लेकिन खिडकी से गए बाहर। महावीर तो निकल गए। खिडकी के पीछे जो उनके साथ आए थे, वे खिडकी पर खडे रह गए। और वे कहते हैं कि जिस खिड़की से महावीर गए वही सत्य है। एक बुद्ध वाली खिडकी है, वहां भी लोग सत्य हैं। और, अब दुनिया मे सम्भावना इस बात की पैदा हो गई है कि हम मनुष्य को द्वार से बाहर ले जा सकते है, खिडकियो के बाहर ले जा सकते हैं। और वहा जो दिखाई पडेगा उसमे हमे सब एक से मालूम पडेंगे क्योकि हम खिडकी के बाहर खडे होकर देखेंगे। तो मुझे बुद्ध और महावीर मे कोई फर्क नही दिखाई पड़ता, लेकिन मकान के बाहर खडे हो तो ही, नही तो फर्क है क्योकि फर्क खिडकी से निर्मित होता है जिससे वह कूदे। वह खिड़की हमारी नजर मे रह गई, वह बिल्कुल अलग है। महावीर का ढंग है—अत्यन्त संकल्प का, दृढ सकल्प का यानी महावीर कहते हैं कि अगर किसी भी चीज में पूर्ण सकल्प हो गया है तो उपलब्धि हो जाएगी। बुद्ध की बिल्कुल और ही बात है। बुद्ध कहते हैं : संकल्प तो सघर्ष है। संघर्ष से कैसे सत्य मिलेगा ? सकल्प छोड़ो, शान्त हो जाओ। संकल्प ही मत करो तो उस शान्ति मे ही सत्य मिलेगा। यह भी ठीक है।

यह भी एक खिड़की है। ऐसे भी मिल सकता है। और महावीर भी कहते हैं, वह भी ठीक है। वैसे भी मिल सकता है।

हम इस तरह विचार करें कि अलग-अलग मूर्तिया जो बनी, अलग-अलग मन्दिर बने, मस्जिदें खडी हुईं, उनके अलग-अलग प्रतीक हुए, अलग भाषा बनी, अलग कोड बना तो वह बिल्कुल स्वाभाविक था। और फिर भी कोई अलग नही है। यानी कभी न कभी एक मन्दिर दुनिया में बन सकता है जिसमे हम क्राइस्ट की, बुद्ध की, महावीर की एक सी मूर्तियां ढालें। इसमे कोई कठिनाई नही। लेकिन बड़ी कठिनाई यही मैं कह रहा हूं आपसे कि यदि आप महावीर से प्रेम करते हैं तो आप क्राइस्ट की मूर्ति महावीर जैसी ढालेंगे और अगर आप क्राइस्ट से प्रेम करते है तो आप महावीर की मूर्ति क्राइस्ट जैसी ढालेंगे। तब फिर बात गडबड हो गई। अगर क्राइस्ट को प्रेम करने वाला आदमी महावीर की मूर्ति ढालेगा तो सूली पर लटका देगा। क्योंकि अभी वह 'कोड' और लेंग्वेज (भाषा) पैदा नही हो सकी जो सारी मूर्तियो मे काम आ सके। लेकिन वह भी हो सकता है। बहुत दिन तक बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध की मूर्ति नही बनी क्योंकि बुद्ध ने इन्कार किया है कि मूर्ति बनाना मत। और मूर्ति की जगह केवल प्रतीक चला—बोधिवृक्ष।

सात-आठ सौ वर्ष बाद धीरे-धीरे अकेला वृक्ष-प्रतीक रखना मुश्किल हो गया। और, बुद्ध की मूर्ति वापिस आ गई। अगर हम झाकना चाहें सबके भीतर समान के लिए तो हमे मूर्ति मिटा देनी पडेगी। फिर हमे एक नया कोड विकसित करना होगा। जैसे मुहम्मद की कोई मूर्ति नही है। और उस कोड के विकास करने मे एक प्रयोग है वह, और वह हिम्मत का है। बुद्ध की मूर्ति नही थी परन्तु पाच-छ सौ साल में हिम्मत टूट गई और मूर्ति आ गई। मुसलमानो ने बड़ी हिम्मत जाहिर की है। चौदह सौ साल हो गए। मूर्ति को प्रवेश नही करने दिया है। खाली जगह छोडी। बहुत मुश्किल है, बहुत आसान नही है। मन मूर्ति के लिए लालायित हो उठता है। मन कहता है कि कोई रूप? कैसे थे? मन की इच्छा होती है कोई रूप बने। बहुत रूप बनाकर लोगो ने देख लिए। कुछ लोग हैं, जिनके लिए सब रूपो में भूल दिखाई पड़ी है। उन्होंने रूप हटाकर भी देख लिया; रूप नही रखा। मुहम्मद को विदा ही कर दिया। मस्जिद खाली रह गई। कुछ लोगो के व्यक्तित्व की दशा वही हो सकती है। बहुत मन्दिर, बहुत मस्जिद बन गए। कुछ लोगों ने मन्दिर और मस्जिद को भी विदा करके देख लिया, तीर्थों

को भी विदा करके देख लिया। सब तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर, अनन्त तरह के लोग; अनन्त तरह की उनकी इच्छाएं; अनन्त तरह की उनकी व्यवस्थाएं। और सबके लिए समुचित मार्ग मिल सके, इसलिए उचित ही है कि यह भेद रहे। लेकिन वक्त आएगा जैसे-जैसे मनुष्यता विकसित होगी वैसे-वैसे हम खिड़की का आग्रह छोड़ देंगे, व्यक्ति का आग्रह छोड़ देंगे। यह पहले भी मुश्किल पड़ा होगा, इतना आसान नहीं है यह। इसलिए, हमने प्रतीक थोड़े से बचा लिए—चौबीस तीर्थंकर हैं जैनों के। अच्छा तो यह होता कि प्रतीक भी न रहते लेकिन मन ने थोड़ा सा इन्तजाम किया होगा कि एकदम कैसे कर दे, कि थोड़ा सा तो चिन्ह रखो कि ये कौन हैं, थोड़ा सा चिन्ह बना लो। उतने मे भी भेद हो गया। तो पारस का मन्दिर अलग बनता है, महावीर का मन्दिर अलग बनता है। उनके चिन्ह मे भी भेद ला दिया। वह चिन्ह भी विदा कर देने की जरूरत है। लेकिन मन मनुष्य का बदले तभी, उसके पहले नही हो सकता है। आप ठीक पूछते हैं, जो अनुभव हुआ है वह तो एक ही है। लेकिन उस अनुभव को कहा गया अलग-अलग शब्दो मे। महावीर कहते हैं: आत्मा को पाना परम ज्ञान है। इससे ऊचा कोई ज्ञान नही। और बुद्ध वही, उसी समय मे, उसी क्षेत्र मे मौजूद रहते हैं और कहते है कि आत्मा को मानने से बडा अज्ञान नही है और दोनों ठीक कहते हैं। और मैं जानता हू कि न महावीर इसके लिए राजी हो सकते हैं बुद्ध से; और न बुद्ध इसके लिए महावीर से राजी हो सकते है। और दोनो जानते हैं भली भाति कि कोई भेद नही है। और दोनो राजी नही हो सकते हम पर करुणा के कारण। राजी हुए तो हमारे लिए व्यर्थ हैं। महावीर इसीलिए बहुत बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित नही कर सके जितना बुद्ध ने इतने बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित किया। उसका कारण है कि महावीर के पास जो प्रतीक थे, वे अतीत के थे और बुद्ध के पास जो प्रतीक थे वे भविष्य के थे। महावीर के पास जो प्रतीक थे उनके पीछे तेईस तीर्थंकरो की धारा थी। प्रतीक पिट चुके थे, प्रतीक प्रचलित हो चुके थे, प्रतीक परिचित हो गए थे। इसीलिए महावीर का बहुत क्रान्तिकारी व्यक्तित्व भी क्रान्तिकारी नहीं मालूम पड़ता था क्योंकि प्रतीक, जो उन्होंने प्रयोग किए, पीछे से आये थे। और बुद्ध का उतना क्रान्तिकारी व्यक्तित्व नहीं था जितना महावीर का। किन्तु वह ज्यादा क्रान्तिकारी मालूम हो सका। बुद्ध के प्रतीक भविष्य के हैं। यानी बहुत फर्क पड़ता है। भाषा जो बुद्ध ने चुनी वह भविष्य की थी। सच तो यह है कि अभी बुद्ध का

प्रभाव और बढ़ेगा। आने वाले सौ वर्षों में बुद्ध के प्रभाव के निरन्तर बढ़ जाने की भविष्यवाणी की जा सकती है क्योंकि बुद्ध ने जो प्रतीक चुने वे आने वाले सौ वर्षों मे मनुष्य के और निकट आ जाने वाले हैं, एक दम निकट आ जाने वाले हैं। यानी मनुष्य अभी भी इन प्रतीकों से पूरी तरह चुक नही गये हैं, बल्कि करीब आ रहे हैं। इसलिए, पश्चिम मे इस समय बुद्ध का प्रभाव एकदम बढ़ता जा रहा है। बुद्ध ने सारे प्रतीक नए चुने हैं, सारी भाषा नई चुनी है। जैसे कि महावीर ने आत्मा की बात की है; बुद्ध ने आत्मा को इन्कार कर दिया है। बुद्ध ने कहा कि आत्मा वगैरह कोई भी नही है। महावीर ने इन्कार किया परमात्मा को, परमात्मा नही है, मैं ही हूं। बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नही की, इन्कार करने योग्य भी नहीं माना। बात ही फिजूल है, चर्चा के योग्य नही। और "मैं हूं" इसको भी इन्कार कर दिया और कहा कि जो अपने 'मैं' के पूर्ण इन्कार को उपलब्ध हो जाता है, उसका निर्माण हो जाता है। यह जो आने वाली सदी है, धीरे-धीरे उस जगह पहुच रही है जहा व्यक्ति अनुभव कर रहा है कि व्यक्ति होना भी एक बोझ है। इसको भी इसलिए बिदा हो जाना चाहिए, इसकी भी कोई आवश्यकता नही। अहंकार 'इगो' भी एक बोझ है इसे भी विदा हो जाना चाहिए। फिर भी महावीर ने जो व्यवस्था की उसमें मोक्ष पाने का ख्याल है, मोक्ष मिल जाए। उसमें एक उद्देश्य, एक लक्ष्य है, ऐसा मालूम पड़ता है। जो प्रतीक उन्होंने चुने हैं उनकी वजह से ऐसा मालूम पड़ता है कि मोक्ष एक लक्ष्य है। उसके लिए साधना करो, तपस्या करो तो मोक्ष मिलेगा। बुद्ध ने कहा कि कोई लक्ष्य नही क्योंकि जब तक लक्ष्य की भाषा है तब तक इच्छा है, वासना है, तृष्णा है। लक्ष्य की बातें मत करो। उसका मतलब हुआ कि अभी जिओ, इसी क्षण में जिओ, कल की बात मत करो। तो दुनिया, पुरानी दुनिया गरीब दुनिया थी और गरीब दुनिया कभी भी इसी क्षण मे नहीं जी सकती। गरीब दुनिया को हमेशा भविष्य मे जीना पड़ता है। अगर किसी गरीब आदमी से कहो कि आज ही जियो तो क्या आप कहते हैं, कल का क्या होगा। लेकिन दुनिया बदल गई है, समृद्ध दुनिया पैदा हो गई है।

अमेरिका में पहली दफा धन इस बुरी तरह बरस पड़ा है कि अब कल का कोई सवाल नही। बुद्ध की यह बात कि 'आज इसी क्षण जियो' पहली बार सार्थक हो जाएगी। पहली दफा, कल की चिन्ता करने की

जरूरत नही । कल का कोई मतलब ही नहीं । आयेगा, आयेगा; नही आएगा, नही आएगा । गरीब दुनिया जो है वह स्वर्ग बनाती है आगे। वहा तृप्तिया हैं । यहां तो, सुख मिलता नही, तो आदमी सोचता है मरने के बाद । समृद्ध दुनिया जो है, वह स्वर्ग आगे क्यों बनाए। वह आज ही बना लेती है, इसी वक्त बना लेती है। हिन्दुस्तान का स्वर्ग भविष्य में होता है; अमेरिका का स्वर्ग अभी और यहीं । इसी से हमे ईर्ष्या होती है । भौतिकवादी से ईर्ष्या का अधिकार है हमको। इसलिए हम गाली देते हैं, निंदा करते हैं, उसका भी कारण है। उसका स्वर्ग अभी बना जा रहा है, हमारा मरने के बाद, पक्का भरोसा नही कि होगा कि नही होगा। बुद्ध ने जो सदेश दिया वह तात्कालिक जीने का है, उस क्षण जीने का है। महावीर का जो सदेश है, मन के संकल्प का है। सकल्प तनाव (टैन्शन) से चलता है। सकल्प की जो प्रक्रिया है, वह तनाव की प्रक्रिया है, परम तनाव की। और मजे की बात यह है कि सब चीजें अगर उनकी पूर्णता तक ले जाई जाए तो अपने से विपरीत मे बदल जाती हैं। यह नियम है। अगर आप तनाव को उसके अति (एक्स्ट्रीम) पर ले जाए तो विश्राम शुरू हो जाता है। जैसे कि हम इस मुट्ठी को बाधें और पूरी ताकत लगा दें बांधने मे। फिर मेरे पास ताकत ही न बचे तो मुट्ठी खुल जाएगी। क्योंकि जब मेरे पास ताकत नही बचेगी और सारी ताकत बाधने मे लग जाएगी और आगे ताकत नही मिलेगी बाधने को तो क्या होगा ? मुट्ठी खुल जाएगी। और मैं मुट्ठी को खुलते देखूगा, बाध भी नही सकूगा, सारी ताकत तो मैं लगा चुका हू, हा धीरे से मुट्ठी को बाधे तो खुल नही सकती अपने आप, क्योकि ताकत मेरे पास सदा शेष है जिससे मैं उसको बाधे रहूगा। इसलिए महावीर कहते है कि सकल्प पूर्ण कर दो। इतना तनाव पैदा होगा कि तनाव की आखिरी गति आ जाएगी और फिर तनाव समाप्त हो जायेगा, शिथिल हो जायेगा। ले जाते हैं वे भी विश्राम की ओर लेकिन उनका मार्ग है पूर्ण तनाव से भरा। और बुद्ध कहते हैं कि तनाव कष्टपूर्ण होगा। जितना तनाव है वह भी छोड दो। अब ऐसा हुआ कि बीच मे हम खड़े हैं आधे तनाव में। महावीर कहते हैं "पूर्ण तनाव" ताकि तनाव से बाहर निकल आओ। बुद्ध कहते हैं जितना तनाव है उससे भी पीछे लौट आओ। तनाव ही छोड दो। तभी विश्राम आता है। महावीर की भाषा को अब इस सदी में समझना मुश्किल पड़ जाएगा। क्योंकि कोई तनाव पसंद नही करता। तनाव वैसे ही बहुत ज्यादा है। आदमी इतना तना हुआ है

इसीलिए मैं कहता हूं कि भविष्य की जो भाषा है वह बुद्ध के पास है। पश्चिम मे महावीर की बात कोई नही मानेगा कि और संकल्प करो और तपश्चर्या करो। हम मरे जा रहे हैं वैसे ही। अब हम पर कृपा करो। हमको कुछ विश्राम भी चाहिए। बुद्ध कहते हैं विश्राम का यह रहा रास्ता कि जितना तनाव है वह भी छोड़ दो, पूर्ण विश्रान्त हो जाओ। यह जचेगा। तनावों से भरा हुआ आदमी जचेगा नहीं।

महावीर के पहले के तेईस तीर्थंकरो के लम्बे काल मे प्रकृति के परम विश्राम मे आदमी जी रहा था। कोई तनाव न था। विश्राम ही था जीवन मे। उस विश्राम मे महावीर की भाषा सार्थक बन गई क्योंकि विश्राम की बात सार्थक होती ही नही उस दुनिया मे। उस दुनिया मे आदमी से विश्राम की बात करना बिल्कुल फिजूल था। जैसे बम्बई के आदमी से कहो : चलो इस झील पर वहा बडी शाति है, तो उसको समझ मे आता है। इस झील के पास एक गरीब आदमी अपनी बकरिया चरा रहा है। उसको कहो तुम कितनी परम शाति मे हो। वह कहता है कभी बम्बई के दर्शन करने को मन होता है। उसके मन मे बम्बई बसी है। कभी बम्बई वह जाए स्वाभाविक है। जो जहा है वहा से भिन्न जाना चाहता है। जब सारा जगत प्रकृति की गोद मे बसा हुआ था, न कोई तनाव था, न कोई चिन्ता थी उस स्थिति में सकल्प को बढ़ाकर तनाव को पूर्ण करने की बात ही अपील कर सकती थी। वह भाषा ही काम कर सकती थी। तो वह चली। फिर एक सक्रमण आया। उस सक्रमण मे महावीर बहुत प्रभावी नही हो सके और जो लोग उनके पीछे भी गए वे भी उनको मान नही सके। वह नाम मात्र की यात्रा रही। और नए लोगो को वह उस दिशा मे नही ला सके क्योंकि नया आदमी उसके लिए राजी नही हुआ। रोज-रोज सगठन क्षीण होता गया। जैसे दिगम्बर जैन मुनि हैं। श्वेताम्बर जैन मुनि महावीर से बहुत दूर है क्योंकि उसने बहुत समझौते कर लिए हैं। इसलिए उसकी सख्या ज्यादा है। वह अभी भी है समझौते करके। दिगम्बर जैन मुनि ने समझौता नहीं किया, महावीर की जैसी बात थी ठीक वैसा ही प्रयोग किया। तो मुश्किल से बीस-बाईस मुनि हैं पूरे मुल्क में। और हर साल अगर एक मरता है तो फिर पूरा नही होता। अगर इक्कीस रह जाते हैं तो बाईस करना मुश्किल होता है। तीस-पैंतीस वर्षों मे वे बीस-बाईस जैन-मुनि मर जाएगे। पचास साल बाद

दिगम्बर जैन मुनि का होना असम्भव है। भाषा चली गई। कोई राजी नहीं है। एक मरता है तो वे उसका पूरा नहीं कर पाते, दूसरे को नहीं ला पाते और जिनको वे आज रखे भी हैं उनमें से कोई शिक्षित नहीं है। यानी एक अर्थ में वे पुरानी सदी के लोग हैं, इसलिए राजी भी हैं। एक शिक्षित आदमी को, ठीक आधुनिक शिक्षा पाए हुए आदमी को, दिगम्बर जैन मुनि नहीं बनाया जा सका अब तक, बन नहीं सकता। उसकी भाषा सब बदल गई है। तो अशिक्षित, बिल्कुल कम समझ के लोग, गांव के लोग, दक्षिण के लोग— उत्तर का एक जैन मुनि नहीं है दिगम्बरों के पास। और वह भी आज क्यों नहीं बनता ? यानी वे भी सब पचपन वर्ष से ऊपर उम्र के लोग हैं जो बीस-पच्चीस वर्षों मे विदा हो जाएगे। एक मरता है तो दूसरा उसकी जगह नहीं ला पाते। वह भाषा मर गई। श्वेताम्बर मुनि की संख्या बची है, बढ़ती है, क्योंकि वह वक्त के साथ भाषा को बदलता रहा है, समझौते करता रहा है। समझौते की तरकीबें निकालता रहा है। समझौते करके ही वह बचा हुआ है। और वह रोज समझौते करता जा रहा है। माइक से बोलना है तो वह माइक से बोलने लगेगा। यह करना है, वह करना है, वह सब समझौते कर रहा है। कल वह गाडी मे बैठने लगेगा, परसो वह हवाई जहाज मे उड़ेगा। वह सब समझौते कर लेगा। वह समझौते करके ही बच रहा है। लेकिन समझौते करने मे उसका महावीर से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया।

मैं यह कह रहा हूं कि भविष्य के लिए, महावीर की जो साधना है वह सार्थक हो सकती है और एक ही उपाय है कि उसे भविष्य की भाषा मे सिर्फ पूरा का पूरा रख दिया जाए। मैं कहता हू कि समझौता जीवन मे मत करो। जीवन मे समझौता बेईमानी है। समझौता ही बेईमानी है असल मे। प्रत्येक युग मे जब नई भाषा बनती है तो भाषा बदलती है। नए शब्द चुनेंगे, नई दृष्टि चुनेंगे, नया दर्शन चुनेंगे। और मूल साधना का सूत्र ख्याल में न रह जाएगा। जैसे मैं कहता हूं कि आज अगर महावीर की नहीं है कोई अपील सारे जगत मे तो उसका कारण है कि उनकी भाषा बिल्कुल ही पिटी-पिटाई हो गई। लेकिन अब भी हो सकती है अपील। भाषा इस युग के अनुकूल आज हो तो आज अपील हो जाए। अपील आप क्या कहते हैं इसकी नहीं है, अपील इस बात की है कि आप उसको कैसे कहते हैं; वह युग के मन के अनुकूल है या नहीं। नहीं तो वह खो गई अपील। एक तो वह इसलिए पिछड़ गए क्योंकि उन्होंने अतीत की भाषा का उपयोग

किया। महावीर एक अर्थ में अतीत के प्रति अनुगत हैं। बुद्ध अतीत के प्रति बिल्कुल नही, भविष्य के प्रति अनुगत हैं। अतीत इन्कार ही कर दिया है। इसलिए अपने से पहले किसी परम्परा को उन्होंने नहीं जोड़ा। नई परम्परा को सूत्रबद्ध किया। और भी बहुत से कारण हैं जिनकी वजह से परिणाम नहीं हो सका जितना हो सकता था। परम्परा पुनरुज्जीवित की जा सकती है। भाषा में कोई कठिनाई नही है। लेकिन अनुयायी कभी उसकी हिम्मत नही जुटा पाता क्योंकि उसे लगता है कि सब खो जाएगा। भाषा ही उसकी सम्पत्ति है। अगर उसको बदला तो सब खो गया। जब कि भाषा सम्पत्ति नही है, भाषा सिर्फ कन्टेनर है, डिब्बा है, विषयवस्तु (कन्टेन्ट) की बात है असल मे। इसमे पता नही कितना फर्क पड़ता है। अभी मैंने पढ़ा कि एक अमेरिकी लेखक ने एक लाख किताबें छपवाईं लेकिन नहीं बिक सकी। तीन वर्ष परेशान रहा। तो उसने जानकर विज्ञापन-सलाहकारों से सलाह की। उन्होंने कहा तुमने जो किताबो का नाम रखा है वह पिटा-पिटाया है। किताबों का जो कवर (मुखपृष्ठ) है वह गल्त है। वह आधुनिक मन के अनुकूल नहीं। इसलिए वह किताबो मे रखा रहेगा, कभी उस पर नजर ही नही पड़ने वाली किसी खरीदने वाले की। किताब पीछे देखी जाती है, किताब का कवर पहले देखा जाता है। तो उसने कवर बदल दिये। नए रंग, नई डिजाइन। आधुनिक कला से सम्बन्धित कर दिया, नाम बदल दिये। वे किताबें दस महीनो में ही बिक गईं। और भारी प्रशंसा हुई उन किताबों की। हमेशा ऐसा होता है। महावीर के ऊपर बहुत पुराना कवर है। अब नया कवर होना चाहिए, और जरूर। क्योंकि महावीर की धारा का इतना अद्भुत अर्थ है कि वह खो जाए तो नुकसान होगा, सारी मानव जाति का नुकसान होगा। जैनियो को तो नुकसान हुआ कवर बदलने से। मानव जाति का नुकसान होगा महावीर की धारा का अर्थ खो जाने से। इसलिए हमें जैनियों के नुकसान की चिंता नहीं करनी चाहिए।

मनुष्यजाति की समृद्धि में महावीर आगे भी सार्थक रहें, यह मेरी चाहना है। उस पर जैसे हम उनकी साधना प्रकृति को पूरा समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा लेकिन उसमें क्या है? जैसे मैं यह कह रहा हूं उदाहरण के लिए, महावीर की साधना पूर्ण संकल्प की साधना है। और जैन परम्परा कहती है दमन की साधना। दमन शब्द सार्थक नहीं, खतरनाक है। फ्रायड के बाद दमन की जो भी साधना बात करेगी उसके लिए जगत में कोई स्थान

नही, हो ही नही सकता। अब फ्रायड के बाद दमन का जिस साधना पद्धति ने प्रयोग किया, वह पद्धति उस शब्द के साथ ही दफना दी जाएगी। वह नही रह सकती है अब। और ऐसा नही है कि महावीर की साधना दमन की साधना है। असल मे दमन का अर्थ ही और था तब। फ्रायड ने पहली बार दमन को नया अर्थ दिया है जो कभी था ही नही। तब कायाक्लेश शब्द का हम उपयोग करते थे। अब नही करते है। अब किसी ने कहा 'काया क्लेश' वह गया। उसी शब्द के साथ डूब जाएगा पूरा का पूरा उसका विचार। क्योकि काया-क्लेश आने वाले भविष्य के लिए सार्थक नही, निरर्थक है। और काया-क्लेश का जो मतलब है वह अब भी सार्थक है। महावीर की पद्धति मे जिसको काया-दमन कहा है, वह अब भी सार्थक है। लेकिन यह शब्द बाधा पड गया है, एकदम खतरनाक हो गया है। फ्रायड के बाद जो काया-क्लेश दे रहा है वह आदमी खुद को सताने में मजा ले रहा है। वह आदमी रुग्ण है, मानसिक बीमार है जो अपने को सताने मे मजा ले रहा है। दो तरह के लोग है जो दूसरो को सताने मे मजा लेते हैं वे हैं सैडिस्ट और जो अपने को सताने मे मजा लेते हैं वे हैं मैसोचिस्ट। इसलिए जैनियो की नासमझी मे वह महावीर फस जाने वाले हैं और उनके बचाव का कोई उपाय नही है।

और अगर महावीर के शरीर को देखो तो तुम्हे पता चल जाएगा कि तुम्हारी कायाक्लेश की बात नितान्त नासमझी की है। हा, तुम्हारे मुनि को देखो तो पता चलता है कि कायाक्लेश सच है। महावीर की काया को देखकर लगता है कि ऐसी काया को सवारने वाला आदमी ही नही हुआ। महावीर को देखकर तो ऐसा ही लगता है। ऐसी सुन्दर काया न बुद्ध के पास थी, न क्राइस्ट के पास थी जैसी महावीर के पास। जितना सुन्दर शरीर महावीर के पास था ऐसा किसी के पास नही था। और मेरा अपना मन मानता है कि इतना सुन्दर होने की वजह से वह नग्न खड़े हो सके। असल में नग्नता को छिपाना कुरूपता को छिपाना है। हम सिर्फ उन्ही अंगों को छिपाते है जो कुरूप हैं। इतने परम सुन्दर हैं वह कि छिपाने को कुछ भी नही, नग्न खड़े हो सके है। नग्न होने मे भी परम सुन्दर हैं। और उनकी परम्परा को न पकडने वाला, शब्द पकड़ने वाला जो आदमी कायाक्लेश करता है वह शरीर को सता रहा है, वह बिल्कुल पागल है। सताया हुआ शरीर ऐसा नहीं होता जैसा महावीर का है। हा, दिगम्बर मुनि को देखने से पता चलता है कि

वह शरीर को सता रहा है। कोई भी दिगम्बर मुनि अब तक महावीर जैसा शरीर खड़ा करके नहीं बता सका है। कहीं भूल हो गई है। महावीर काया-क्लेश किसी और ही बात को कहते हैं। एक आदमी जो सुबह घन्टे भर व्यायाम करता है वह भी कायाक्लेश कर रहा है। वह पसीने-पसीने हो जाता है, शरीर को थका डालता है। और एक वह भी काया-क्लेश कर रहा है जो एक कोने में बिना खाए, पिए, नहाए, धोए पड़ा है। लेकिन पहला आदमी काया के लिए ही काया-क्लेश कर रहा है। दूसरा आदमी काया की दुश्मनी में क्लेश कर रहा है। दोनो का दस वर्ष ऐसा ही क्रम चला तो दोनो को जब खड़ा करेंगे तो नम्बर एक का एक अद्‌भुत सुन्दर शरीर वाला व्यक्ति निकल आएगा और दूसरा एक दीनहीन मरा हुआ व्यक्ति हो जाएगा। काया-क्लेश किसलिए ? महावीर कहते हैं काया का क्रम काया के लिए ही है। काया कभी भी वैसी नही बन सकती। जैसी बन सकती है उसके लिए श्रम उठाना पड़ेगा। तो क्लेश जो शब्द है वह अब घातक और दुश्मनीपूर्ण मालूम पड़ता है। वह महावीर के लिए नही है घातक और दुश्मनीपूर्ण। उस शब्द को पकड कर हम महावीर की पूरी वृत्ति को नष्ट कर देंगे। उस शब्द को बदलना पड़ेगा।

अब महावीर के अनुसार उपवास का मतलब होता है अपने पास रहना, आत्मा के पास रहना। जैसे उपनिषद्—गुरु के पास बैठना, ऐसे उपवास—अपने पास होना। लेकिन उपवास का अनशन 'न खाना' अर्थ हो गया है। अब यह उपवास नही चल सकता, न खाने वाला। न खाने पर जोर दिया तो वह दमन और काया-क्लेश वाली बात है। चार-चार महीने तक कोई आदमी बिना खाए नही रह सकता है लेकिन उपवास में रह सकता है। उपवास का मतलब ही और है। उपवास का मतलब है कि एक व्यक्ति अपनी आत्मा मे इतना लीन हो गया है कि शरीर का उसे पता ही नही तो भोजन भी नही करता है। क्योंकि शरीर का पता हो तो भोजन करे, अपने भीतर ऐसा लीन हो गया है कि शरीर का पता नही चलता। दिन बीत जाते हैं, रातें बीत जाती हैं, और शरीर का पता नही।

एक संन्यासी मेरे पास आया। वह मेरे सामने ही रुका था, आया मुझसे मिलने। मैंने कहा आप खाना खाकर जाएं। उन्होंने कहा कि आज तो मेरा उपवास है। मैंने कहा कैसा उपवास ? उन्होने कहा आप नहीं जानते कैसा उपवास ? खाना नही लेते दिन भर। मैंने कहा आप इसको उपवास समझते

हैं ? अनशन क्या है ? फिर कहते हैं वही चीज है, नाम से क्या फर्क पड़ता है। मैंने कहा तो आप फिर अनशन करते हैं, उपवास का आपको पता नहीं। अगर आप अनशन करेंगे तो ध्यान रहे कि पूरा वास शरीर के पास होगा, आप आत्मा के पास आने वाले नही हैं। अनशन का मतलब ही है नही खाया, खाने का ख्याल है नही खाया, छोड़ा है तो दिन भर शरीर के पास ही मन घूमेगा। भूख लगी है, प्यास लगी है, कल का ख्याल कि कल क्या खाएंगे परसों क्या खाएगे ? मैंने कहा कि उपवास से अनशन बिल्कुल उल्टा है। दोनों मे भोजन नही खाया जाता लेकिन दोनो उल्टी ही बातें हैं क्योंकि अनशन मे आदमी शरीर के पास ही रहता है चौबीस घन्टे जितना कि खाना खाने वाला भी नही रहता। दो दफा खा लिया और बात खत्म हो गई। और अनशन वाला दिन भर खाता रहता है, मन ही मन मे खाना चलता रहता है। उपवास का मतलब है कि किसी दिन ऐसे मौज मे आ गए हो तुम अपने भीतर कि शरीर की कोई याद न रहे। और महावीर की जो शरीर की तैयारी है वह इसीलिए है कि जब शरीर की याद न रहे तो शरीर इतना समर्थ रहे कि दस पाच दिन, महीने झेल जाए। तो झेलेगा कैसे ? यह मुनि का शरीर तो झेल ही नही सकता। अगर मुनि भीतर चला जाए तो उसका शरीर मर ही जाए क्योंकि शरीर मे जो अतिरिक्त ताकत होनी चाहिए झेलने के लिए वह है ही नही। अगर बहुत बलिष्ठ शरीर हो तो तीन महीनो तक बिल्कुल आसानी से बिना खाए बच सकता है; नष्ट नही होगा। तो महावीर ने अगर चार-चार महीने के उपवास किए है तो इस बात का सबूत है कि उनके पास भारी बलिष्ठ शरीर था, साधारण नही, असाधारण रूप से कि चार-चार महीने उन्होने नही खाया तो शरीर बचा रहा, शरीर मिट नही गया। यह काया-क्लेश करने वाला तो कभी ख्याल भी नही कर सकता। वह चार दिन मे मर जाएगा अगर उपवास उसका हो जाए। उपवास का मतलब यह है कि आत्मा और चेतना एकदम भीतर चली जाए कि बाहर का उसको ख्याल ही न रहे। इसका शरीर तो स्वास छोड़ देगा फौरन। लेकिन शब्दो मे ध्यान ही नही है।

मैंने उस सन्यासी को कहा कि तुम भी जिस दिन ध्यान करो, ध्यान मे इतना डूब जाओ कि उठने का मन न करे तो उठना ही मत तुम। जब उठने का मन हो उठना, न हो तो मत उठना। तो उन्होंने तीन महीने ध्यान किया था। उनके साथ एक युवक रहता था। उसने एक दिन सुबह आकर खबर दी

कि आज चार बजे से वह ध्यान में गए हैं तो नौ बज गया है। अभी तक उठे नहीं हैं और उन्होंने कह दिया है कि यदि न उठें तो उठाना मत लेकिन मुझे बहुत डर लग रहा है। वह पड़े हैं। मैंने कहा उन्हें पड़े रहने दो। दो बजे वह फिर दोपहर में आया फिर जरा घबराहट होने लगी क्योंकि वह पड़े ही हैं, न करवट लेते हैं, न हाथ चलाते हैं, कहीं कुछ नुकसान न हो जाए। हमने कहा तुम मत डरो। आज उपवास हो गया तो हो जाने दो। रात नौ बजे वह फिर आया और कहा अब तो मेरी हिम्मत से बाहर हो गया है और आप चलिए। मैंने कहा कोई जाने की जरूरत नहीं है। ग्यारह बजे रात वह आदमी उठा और भागा हुआ मेरे पास आया। उसने कहा कि आज समझा कि उपवास और अनशन का क्या अर्थ है, कितना भेद है। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा भी उपवास का अर्थ हो सकता है। जब आप भीतर चले जाते हैं तो बाहर का स्मरण ही छूट जाता है। उस स्मरण के छूटने से पानी भी छूट जाता है। और शरीर इतना अद्भुत यन्त्र है कि जब आप भीतर रहते हैं तो शरीर सावधान हो जाता है, अपनी व्यवस्था पूरी कर लेता है। आपको कोई चिन्ता की जरूरत नहीं। और शरीर की साधना का मतलब है कि शरीर ऐसा हो कि जब आप भीतर चले जाएं तो उसे आपकी कोई जरूरत न हो, वह अपनी व्यवस्था कर ले। वह स्वचालित यन्त्र की तरह अपना काम करता है, आपकी प्रतीक्षा करता रहे कि जब आप बाहर आयेंगे तो वह आपको खबर देगा कि मुझे भूख लगी है, कि मुझे प्यास लगी है, नहीं तो वह चुपचाप झेलेगा, आपको खबर भी नहीं देगा। कायाक्लेश का मतलब है काया की ऐसी साधना कि बाधा न रह जाए, साधन हो जाए, सीढ़ी बन जाए। लेकिन शब्द बड़े खतरनाक हैं इसलिए इसको कायाक्लेश मत कहो, इसको कायासाधना कहो। इसको क्लेश कहा तो क्लेश शब्द ऐसा बेहूदा है कि उससे ऐसा लगता है कि सता रहे हो। उपवास को न खाना मत कहो, अनशन मत कहो, उपवास को कहो आत्मा के निकट होना। आत्मा के निकट होकर शरीर भूल जाता है। वह दूसरी बात है, वह गौण बात है। अनशन हो जाएगा लेकिन वह दूसरी बात है। अनशन करने से उपवास नहीं होता, उपवास करने से अनशन हो जाता है। यह सब ख्याल में आ जाए तो महावीर की धारा के खो जाने का कोई कारण नहीं। और अगर जैन मुनि और साधु-संन्यासियों के हाथ में रही तो वह खो जाने वाली है। इसका कोई उपाय ही नहीं, और यह भी ध्यान रहे कि महावीर जैसा आदमी

दुबारा पैदा होना मुश्किल है, एकदम मुश्किल है क्योंकि वैसे आदमी को पैदा होने के लिए जो पूरी हवा और वातावरण चाहिए, वह दुबारा असम्भव है। जैसा काल, जैसा चित्र चाहिए, वह दुबारा सम्भव नही है। मेरा मतलब है कि कोई आदमी कभी भी नही खोना चाहिए। जिसने कोई भी मूल्यवान बचाया है, वह बचा रहना चाहिए ताकि उसके अनुकूल लोगो के लिए वह ज्योति बन सके। ज्यूरेस्टर नही खोना चाहिए, कनफ्युशियस नही खोना चाहिए, मिलरेपा नही खोना चाहिये। इन लोगो ने अलग-अलग कोणो से पहुंच कर ऐसी चीज पाई है जो बचनी ही चाहिए। मनुष्य जाति की असली सम्पत्ति वह है। लेकिन वे जो उसको खो रहे है, वही उसको बचाने वाले मालूम पड़ते हैं। वे जो उसके रक्षक हैं, वही उसको खोए दे रहे हैं।

द्वितीय प्रवचन
१८.६.६६ रात्रि

२

महावीर के जन्म से लेकर उनकी साधना के काल के शुरू होने तक कोई स्पष्ट घटनाओं का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। जीसस के जीवन में भी पहले तीस वर्षों के जीवन का कोई उल्लेख नही है। इसके पीछे बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण है। महावीर जैसी आत्माए अपनी यात्रा पूरी कर चुकी होती हैं पिछले जन्म में ही, घटनाओं का जो जगत है, वह समाप्त हो चुका होता है। इस जन्म मे उनके आने की जो प्रेरणा है उनकी स्वयं की कोई वासना उसमे कारण नही है। सिर्फ करुणा कारण है। जो उन्होने जाना है, जो उन्होंने पाया है उसे बांटने के अतिरिक्त इस जन्म में उनका अब कोई काम नही। ठीक से समझें तो तीर्थंकर होने का अर्थ है ऐसी आत्मा जो अब सिर्फ मार्ग दिखाने को पैदा हुई हो। और जो अभी स्वय ही मार्ग खोज रहा हो वह मार्ग नही दिखा सकता। जो खुद ही अभी मार्ग खोज रहा है उसके अभी मार्ग बनाने का कोई अर्थ नही। क्योंकि मार्ग क्या है, यह मार्ग पर चलने से नही, मजिल पर पहुच जाने से पता चलता है। चलते समय तो सभी मार्ग ठीक मालूम होते हैं जिन पर हम चलते हैं, वही मार्ग ठीक मालूम पड़ते हैं। और चलते समय कसौटी भी कहां है कि जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, वह ठीक होगा। क्योंकि मार्ग का ठीक होना निर्भर करेगा मंजिल जाने पर। मार्ग के ठीक होने का एक ही अर्थ है कि जो मंजिल मिला दे। लेकिन यह पता कैसा चलेगा मंजिल मिलने के पहले कि इस मार्ग से मंजिल मिलेगी। यह तो उसे ही पता चल सकता है जो मजिल पर पहुंच गया है। लेकिन जो मजिल पर पहुंच गया है, उसका मार्ग समाप्त हो गया है। और मंजिल पर पहुच जाना इतना कठिन नही है जितना मजिल पर पहुंच कर मार्ग पर लौटना। साधारणत: कोई भी कारण नही मालूम देता कि जो मंजिल पर पहुंच गया हो वह मंजिल पर विश्राम करे। दुनिया मे मुक्त आत्माएं तो बहुत होता हैं क्योंकि मुक्ति के मंजिल पर पहुंचते ही वह खो जाती हैं निराकार मे। लेकिन थोडी सी आत्माएं फिर अंधेरे पथो

पर वापस लौट आती है। ऐसी आत्माए जो मंजिल पर पहुच कर वापस लौटती हैं तीर्थंकर कहलाती हैं। कोई परम्परा उन्हें तीर्थंकर कहती है, कोई परम्परा अवतार कहती है, कोई परम्परा उन्हे ईश्वरपुत्र कहती है, कोई परम्परा पैगम्बर कहती है। लेकिन पैगम्बर, तीर्थंकर, अवतार का जो अर्थ है, वह इतना है सिर्फ, ऐसी चेतना जिसका काम पूरा हो चुका और लौटने का कोई कारण नही रह गया है। बहुत कठिन है जो मैंने कहा। मजिल खोजना कठिन है; मंजिल पर पहुच कर जब परम विश्राम का क्षण आ गया तब लौटना उन रास्तो को बहुत मुश्किल है, अत्यन्त कठिन है। इसलिए उन थोडी सी आत्माओ को परम सम्मान उपलब्ध हुआ है जो मजिल पाकर वापस रास्ते पर लौट आती है। और यही आत्माए मार्गदर्शक हो सकती है। तीर्थंकर का मतलब है जिस घाट से पार हुआ जा सके। तीर्थ कहते है उस घाट को जहा से पार हुआ जा सके। और तीर्थंकर कहते हैं उस घाट के मल्लाह को जो पार करने का रास्ता बता दे। महावीर का इस जन्म मे और कोई प्रयोजन नही है अब। इसलिए बचपन का सारा जीवन घटनाओ से शून्य है। घटनाएं घटने का कोई अर्थ नही है। वह बिल्कुल शून्य है घटनाओ से। इसलिए कोई घटनाए उल्लिखित नही हैं, उल्लिखित होने का कोई कारण नही है। जीसस का प्रारम्भिक जीवन बिल्कुल शून्य है घटनाओ से। अब यह बडी हैरानी की बात है आम तौर से कि जिन्हे हम विशिष्ट पुरुष कहते है, उनके बचपन मे विशिष्ट घटनाएं नही घटती हैं। जिन्हे हम विशिष्ट पुरुष कहते है उनका प्राथमिक जीवन बिल्कुल घटनाशून्य होता है। इस अर्थ मे घटनाशून्य होता है कि वह लगा है किसी और काम मे, अपना अब कोई काम नही रहा। बस वह चुपचाप बढता चला जाता है। चारो तरफ चुप्पी होती है, वह चुपचाप बडा हो जाता है उस क्षण की प्रतीक्षा मे जब वह जो देने आया है कुछ देना शुरू कर दे। मेरी दृष्टि में तो महावीर को वर्धमान का नाम इसीलिए मिला। इसलिए नही कि जैसा कहानियों की किताबो मे लिखा हुआ है कि उनके घर मे पैदा होने से घर मे सब चीजों की बढ़ती होने लगी, धन बढ़ने लगा, यश बढ़ने लगा। मेरी दृष्टि में तो नाम ही यह अर्थ रखता है कि जो चुपचाप बढ़ने लगा, जिसके आसपास कोई घटना न घटी यानी जिसका बढ़ना इतना चुपचाप था जैसे पौधे चुपचाप बडे होते है, कलियां फूल बनती हैं और कभी पता नही चलता, कही कोई शोर गुल नही होता, कही कोई आवाज नहीं होती। ऐसे

चुपचाप बड़ा होने लगा। मैं तो उसमें यही अर्थ देख पाता हूं कि चुपचाप बढ़ने लगा। और यह चुपचाप बढ़ना दिखाई पड़ने लगा होगा क्योंकि घटनाएं न घटना बहुत बड़ी घटना है। छोटे से छोटे भी आदमी के जीवन में घटनाएं घटती हैं, चाहे वे छोटी हो। बड़े आदमी के जीवन में बड़ी घटनाएं घटती है, चाहे कैसी भी हों। लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति है जिसके जीवन मे कोई घटना न घटी हो, जो इतना चुपचाप बढ़ने लगा हो कि चारो तरफ कोई वर्तुल पैदा न होता हो समय में, क्षेत्र मे। तो वह अनूठा दिखाई पड़ा होगा कि वह कुछ विशिष्ट ही है। इसलिए शिक्षक उसे पढ़ाने आए होंगे, उसने इन्कार कर दिया होगा क्योकि वह पढेगा नही। वह पढ़ा हुआ ही है। शिक्षक पढ़ाने आए है तो वर्धमान ने मना कर दिया है। क्योकि शिक्षको ने पढ़ा है जो उसे पढ़ा सकते है, वह पहले से ही जानता है। इसलिए कोई शिक्षा नही हुई। शिक्षा का कोई कारण भी न था, कोई अर्थ भी न था। कोई घटना न घटी। वह चुपचाप बड़े हो गये। और हो सकता है कि यह बात भी अनुभव मे आई होगी लोगो को। इतने चुपचाप कोई भी बड़ा नही हो सकता। ऐसा ही जीसस का भी जीवन है। वे चुपचाप बड़े हो गए हैं।

दूसरी बात ध्यान मे रख लेनी जरूरी है महावीर के जन्म के सम्बन्ध मे, जो अर्थपूर्ण है। जो गाथा (मिथ) है, जो कहानी है वह यह है कि वह ब्राह्मणी के गर्भ मे आए और देवताओ ने गर्भ बदल दिया। और क्षत्रिया के गर्भ मे पहुचा दिया। यह बात तथ्य नही है। यह कोई तथ्य नहीं है कि किसी एक स्त्री का गर्भ निकाला और दूसरी स्त्री मे रख दिया। लेकिन यह बड़ी गहरी बात है और गहरी बात कई चीजो की सूचना है वह हमे समझनी चाहिए। पहली सूचना तो यह है कि महावीर का जो पथ है वह पुरुष का, आक्रमण का, क्षत्रिय का है। महावीर का जो व्यक्तित्व है और उनकी खोज का पथ है वह क्षत्रिय का है। क्षत्रिय का इन अर्थों मे कि वह जीतने वाले का है। और इसीलिए महावीर जिन कहलाए। जिन का मतलब है जीतने वाला, जिसका और कोई पथ नही सिवाय जीतने के। जीतेगा तो ही उसका मार्ग है। और इसलिए पूरी परम्परा जैन हो गई। तो यह बड़ी मीठी कहानी चुनी है। ब्राह्मणी के गर्भ मे था किन्तु देवताओ को उसे उठा कर क्षत्रिया के गर्भ में कर देना पड़ा। क्योंकि वह बच्चा ब्राह्मण होने को न था। अब ब्राह्मण भी समझने जैसी बात है। ब्राह्मण का अपना

मार्ग है। जैसे मैंने कहा पुरुष का एक मार्ग है आक्रमण का, स्त्री का एक मार्ग है समर्पण का। ब्राह्मण का एक मार्ग है भिक्षा माग लेने का। यानी ब्राह्मण यह कह रहा है कि परमात्मा से लडोगे ? प्रलोभन है। समर्पण करोगे किसके प्रति ? उसका अभी कोई पता नही है। लेकिन अज्ञात घेरे हुए है चारो तरफ और हम अत्यन्त क्षुद्र और दीन-हीन हैं। हम जीत नहीं सकते और हम समर्पण भी क्या करेंगे ? हमारे पास समर्पण को भी क्या है ? दीनता, हीनता इतनी है, असहाय हम इतने हैं तो देंगे क्या हम ? देने को क्या है ? और छीनेंगे कैसे ? एक ही मार्ग है कि हाथ फैला दें विनम्रता से। और भिक्षा मे हम ले लें। तो ब्राह्मण का जो मार्ग है, ब्राह्मण की जो वृत्ति है वह भिक्षुक की है।

कहानी कहती है कि महावीर जैसा व्यक्ति अगर ब्राह्मणी के गर्भ मे आ जाएगा तो देवताओ को उसे हटा कर क्षत्रिया के गर्भ मे रख देना पडेगा। वह व्यक्तित्व ब्राह्मणी का नही है। और व्यक्तित्व गर्भ से आते हैं। वह व्यक्तित्व ही जन्मना क्षत्रिय का है। जो जीतेगा, माग नही सकता है। महावीर ऐसे हाथ नही फैला सकते, परमात्मा के सामने भी नही, किसी के भी सामने नही; वह जीतेंगे। जीत कर ही अर्थ है उनकी जिन्दगी का। और इस देश मे जो परम्परा थी, उन क्षणो मे जो परम्परा थी, सर्वाधिक प्रभावी, वह ब्राह्मणो की थी। वह असहाय, मागने वाले की थी। अद्भुत है यह बात। इतनी आसान नही जितना कोई सोचता हो। क्योंकि असहाय होना बडी अद्भुत क्रान्ति है, बिल्कुल असहाय हो जाना। वह भी एक मार्ग है, लेकिन वह मार्ग बुरी तरह पिट गया था, असहाय ब्राह्मण मरा दम ही हो गया था। जो अद्भुत घटना घट गई थी वह यह थी। क्योंकि मार्ग तो था असहाय होने का लेकिन परम्परा इतनी गाढ़ी हो गई थी, इतनी मजबूत हो गई थी कि असहाय ब्राह्मण सबसे ज्यादा अकड कर सड़क पर खडा था। ब्राह्मण की जो मौलिक धारणा थी वह खडित हो चुकी थी। ब्राह्मण गुरु हो गया था, ब्राह्मण ज्ञानी हो गया था, ब्राह्मण सबके ऊपर बैठ गया था। वह जो असहाय होने की धारणा थी वह खो गई थी। उस बात को तोड देना जरूरी था। इसको बडे प्रतीक रूप मे कथा कहती है कि ब्राह्मणी के गर्भ मे भी आकर देवताओं को हटा देना पड़ा। यानी ब्राह्मणी का गर्भ अब महावीर जैसे व्यक्ति को पैदा करने में असमर्थ हो

गया था। उसका यह मतलब है कि ब्राह्मण की दिशा से महावीर जैसा व्यक्ति के होने की सम्भावना न थी। सूख गई थी धारा, अकड़ गई थी, ऐंठ गई थी, गल्त हो गई थी। अब क्षत्रिय की धारा है। इसलिए जो संघर्ष था उस दिन वह बहुत गहरे में ब्राह्मण और क्षत्रिय के मार्ग का संघर्ष था। और यह थोड़ी सोचने की बात है कि जैनों के चौबीसों तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं। असल में वह मार्ग ही क्षत्रिय का है। कोई पूछता है कभी कि क्या क्षत्रिय के अलावा और कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता ? नहीं हो सकता। चाहे वह बेटा ब्राह्मणी के ही गर्भ से क्यो न पैदा हो वह होगा क्षत्रिय ही, तो ही उस मार्ग पर जा सकता है। वह मार्ग आक्रमण का है, वह मार्ग विजय का है। वहा भाषा विजय की और जीत की है।

दूसरी बात लोग निरतर पूछते है कि क्या गरीब का बेटा तीर्थंकर नही हो सकता ? वह सब राजपुत्र थे—क्षत्रिय और राजकुल के। यह भी बहुत अर्थपूर्ण है कि जो अभी इस ससार को ही नही जीत पाया है, वह उस ससार को कैसे जीतेगा ? आक्रमण का मार्ग है न ? तो अभी जब इस ससार में ही नही जीत पाए तो वहां कैसे जीत लोगे ? यह इतनी छोटी सी जीत नही तय कर पाए तो उस बडी जीत पर कैसे जाओगे ? इसलिए चौबीसो बेटे राजपुत्र हुए हैं। राजपुत्र इस अर्थ के सूचक हैं कि जीतने वाला जो है वह कुछ भी जीतेगा। और जब वह इसको जीत लेगा तब उसकी तरफ उसकी नजर उठेगी। जब वह इस लोक को जीत लेगा तब उस लोक को जीतेगा। जीत के मार्ग पर पहले यही लोक पड़ने वाला है। ब्राह्मण इस लोक मे भी भिक्षा मागेगा, उस लोक मे भी। वह मानता ही यह है कि प्रसाद से ही मिलेगा जो मिलना है। आक्रमण की बात ही नही है कोई। ग्रेस से, प्रभु की कृपा से मिलेगा। जो इतिहास के क्षेत्र में शोध करने वालों ने ब्राह्मणजाति के विरुद्ध क्षत्रिय जाति के सघर्ष की चर्चा की है वह निराधार है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसी दो जातियों का कोई संघर्ष नही, संघर्ष है ऐसी दो परम्पराओं का, ऐसे दो मार्गों का जो सत्य की खोज मे निकले हो। और तब एक मार्ग कुण्ठित हो जाता है,—और सब मार्ग कुण्ठित हो जाते हैं सीमा पर जाकर क्योंकि सब मार्ग अहमन्य हो जाते हैं। ब्राह्मण का मार्ग प्राचीनतम मार्ग है। वह कुण्ठित हो गया है। उसके विरोध में बगावत जरूरी थी। वह बगावत क्षत्रिय से आनी स्वाभाविक थी क्योंकि हमेशा बगावत ठीक

विपरीत से आती है, विद्रोह जो है ठीक विपरीत से आता है। ब्राह्मण है मागने वाला ; क्षत्रिय है जीतने वाला। एक दान और दया मे लेगा; दूसरा दुश्मन को समाप्त करके लेगा। ठीक बगावत विपरीत वर्ग से आने वाली थी, इसलिए वह क्षत्रिय थे। इसलिए वह जन्म की कथा बड़ी मीठी है। मानी वह यह बताती है कि ब्राह्मण की जो कोख थी, वह बाझ हो गई है। अब उसमे महावीर जैसा व्यक्ति पैदा नही हो सकता। वह परम्परा क्षीण हो गई थी, सूख गई थी। ब्राह्मण उस युग मे महावीर या बुद्ध की हैसियत का एक भी आदमी पैदा नही कर पाया। वह मार्ग सूख गया था। उसने पैदा किया आगे लेकिन वक्त लग गया डेढ़ हजार वर्ष का। फिर आया सघर्ष। डेढ़ हजार वर्ष मे महावीर और बुद्ध ने जो परम्परा छोडी थी वह सूख गई और जड़ हो गई। तब ठीक विपरीत विद्रोह फिर काम कर गया। ये जो प्रतीक इस तरह चुने हैं बड़े अर्थपूर्ण है। और इन प्रतीको को जो जडता से तथ्यो की भाति पकड़ लेता है वह बिल्कुल भटक ही जाता है। उसे पता ही नही चलता कि क्या अर्थ हो सकता है। महावीर के जीवन मे मैं कहता हू कोई घटना नही घटी।

लेकिन कुछ बाते सोचने जैसी है। जैसे दिगम्बर कहते हैं कि महावीर अविवाहित रहे। मजेदार घटना है। और श्वेताम्बर कहते हैं कि वे न केवल विवाहित हैं बल्कि उनकी एक बेटी भी हुई। कितनी ही चीजें विकृत हो जाए, लेकिन यह असम्भव है कि एक अविवाहित व्यक्ति के साथ एक पत्नी और लड़की भी जुड जाए। यह करीब-करीब असम्भव है। लेकिन यह भी असंभव है कि एक विवाहित व्यक्ति और उसकी एक लड़की और दामाद के होते हुए एक परम्परा उसे अविवाहित घोषित करे। यह दोनो बातें असम्भव हैं। ये बातें कैसे सम्भव हो सकती है? अगर विवाह हुआ हो, लड़की हुई हो, दामाद हो और ये सब बाते तथ्य हो तो कोई कैसे इन्कार करेगा इस बात को कि यह हुआ ही नही। यहां सिर्फ यह बात समझ लेनी है कि तथ्य जरूरी नही सदा सत्य हो। बहुत बार तथ्यो मे बुनियादी हेर-फेर हो जाते हैं। और जो सत्य को नही देख पाते वे सिर्फ मृत तथ्यो को सगृहीत कर लेते हैं। मेरा मानना है कि महावीर का विवाह जरूर हुआ होगा लेकिन वे बिल्कुल अविवाहित की भाति रहे होगे। जिन्होंने यह तथ्य देखा उन्होने कहा कि विवाह जरूर हुआ। और जिन्होने सत्य देखा उन्होने कहा कि वह आदमी अविवाहित था। अविवाहित होना एक सत्य है और विवाहित होना एक तथ्य

है। कोई व्यक्ति बिना अविवाहित हुए अविवाहित हो सकता है, मन से, चित्त से, वासना से। और विवाहित होने की वासना क्या है, इसे हम समझ लें। विवाहित होने की वासना है कि मैं अकेला काफी नहीं, पर्याप्त नहीं। दूसरा भी चाहिए जो आए और मुझे पूरा करे। विवाहित होने का मतलब क्या है? विवाहित होने का गहरा मतलब है कि मैं अपने में पर्याप्त नहीं हूं। जब तक कि कोई मुझे मिले, जोड़े और पूरा न करे, पुरुष अपर्याप्त है अपने में, आधा है, स्त्री जोड़े यह विवाहित होने की कामना है। यह विवाहित होने का चित्र है। स्त्री अधूरी है अपने में। पुरुष के बिना खाली है। पुरुष आए और उसे भरे और पूरा करे। यह विवाहित होने की कामना है। तो दिगम्बरों को मैं कहता हू उन्होंने ठीक ही कहा कि महावीर अविवाहित थे। क्योंकि उस व्यक्ति में किसी से पूरे होने की कोई कामना न बची थी। वह पूरा था। कही कोई अधूरापन न था जो किसी और से उसे पूरा करना है। इसलिए यह मैं मानता हू कि श्वेताम्बरो से दिगम्बरो की आख गहरी पडी, बहुत गहरी पड़ी। बहुत गहरा देखा उन्होंने कि यह आदमी अविवाहित है। इस साधारण तथ्य के लिए कि स्त्री से उसका विवाह हुआ है, उसको विवाहित कहना एकदम अन्याय हो जाएगा। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं? एकदम अन्याय हो जाएगा इस आदमी को विवाहित कहना क्योंकि यह आदमी बिल्कुल अविवाहित है। और इसलिए सम्भव हो सका कि जिन्होने गहरे देखा उन्हें वह अविवाहित दिखाई पडा और जिन्होंने तथ्य देखा उनके लिए वह विवाहित होने का तथ्य ठीक था। विवाह तो हुआ था। और यह आदमी अपने में इतना पूरा था कि दूसरा इसके पास हो सकता है, दूसरा इसके निकट हो सकता है, दूसरा चाहे तो इससे अपने को भर भी सकता है लेकिन इस आदमी को दूसरे की अपेक्षा नहीं। इसलिए यह हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो लेकिन महावीर ने पत्नी नही पाई। इसलिए उन दिगम्बरों की आख गहरी गई। वे कहते हैं कि पत्नी नहीं थी इस आदमी के पास। यह हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो। यह भी हो सकता है कि पत्नी ने इससे सन्तान पाई हो। लेकिन महावीर पिता नही थे और न पति थे। यह घटना घटी भी हो तो अत्यन्त बाह्य तल पर घटी। लेकिन भीतर यह आदमी पूरा था। इस पर जोर देने के लिए दिगम्बरो ने कहा कि इस आदमी ने कभी शादी नहीं की। मगर उनसे भी जैसे-जैसे बात आगे बढ़ी, भूल होती चली गई। वह तथ्य से इन्कार करने लगे। उनको भी ख्याल न रहा इस बात का कि तथ्य यह था

कि शादी की थी। और मैं मानता हू कि यह बात भी अर्थपूर्ण है कि महावीर ने इन्कार नही किया शादी के लिए। असल मे जो शादी के लिए आतुर हो वह, और जो शादी के लिए इन्कार करता है वह, दोनों स्त्रियों को अर्थ देते हैं। इन्कार करने वाला भी अर्थ देता है, इन्कार करने वाला भी भय प्रकट करता है, इन्कार करने वाला भी पलायन करता है। इन्कार करने वाला भी मानता है कि स्त्री कुछ है जो पास होगी, तो मैं कुछ और हो जाऊंगा। महावीर ने ना भी न की होगी इसलिए शादी हो गई होगी। ना कर देते तो शादी रुक सकती थी। लेकिन ना तक भी न की होगी। आदमी इतना पूरा था कि ना करने तक का उपाय न था। ठीक है, स्त्री आती है तो आए, न आती है तो न आए। ये दोनों बातें अर्थहीन हैं। अन्य घटनाओ से भी लगता है कि यह बात सच रही होगी।

महावीर ने आज्ञा चाही है पिता से कि मैं संन्यासी हो जाऊ। पिता ने कहा—मेरे रहते नही। मैं जब तक जीवित हू तब तक तुम बात ही मत करना दुबारा। और महावीर चुप हो गए। अद्‌भुत आदमी रहा होगा। जिसको सन्यास लेना हो वह ऐसा काम करे कि आज्ञा मागे! पहली बात यह कि जिसको सन्यास लेना हो वह आज्ञा क्यो मागे? सन्यास का मतलब ही यह है कि मोह-बन्धन तोड रहा है। सन्यास की भी आज्ञा मांगनी पडती है? जैसे कोई आत्महत्या करने की आज्ञा मांगे कि मैं आत्महत्या करना चाहता हू, आप आज्ञा देते हो? तो कौन आज्ञा देगा? सन्यास की कभी आज्ञाए दी गई हैं, सन्यास लिया जाता है। और महावीर ने आज्ञा मागी संन्यास की, कि मैं सन्यास ले लू। कौन पिता राजी होगा और महावीर जैसे बेटे का? ऐसे बेटे हैं उनके, और पिता संन्यास के लिए राजी हो जाए? महावीर जैसे बेटे का कोई पिता राजी होगा सन्यास के लिए? इन्कार किया होगा और कहा होगा कि मैं मर जाऊ तब यह बात करना, यह बात ही मत करना मुझसे। और मजा यह है, घटना यह है कि यह लडका तो बहुत अद्भुत है, यह चुप हो गया और फिर इसने बात ही न की। निश्चित ही सन्यास लेने या न लेने से कोई बुनियादी फर्क न पड़ता होगा इसको। इसलिए जोर भी नहीं है कोई कि ठीक है, नही भी हुआ तो भी चलेगा। पिता मर गए तो मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई से कहा कि मुझे आज्ञा दे दें। अब तो पिता चल बसे कि मैं संन्यासी हो जाऊं। बडे भाई ने कहा कि तुम पागल हो गए हो। एक तो पिता के मरने का दुख और तुम अभी मुझे छोड़कर चले जाओगे।

और घर भी नही पहुचे, वह भी अभी रास्ते पर। मुझसे यह बात कभी मत करना। तो बडी मजेदार घटना है कि महावीर ने फिर यह बात ही नही की। फिर वह घर मे ही रहने लगे। लेकिन थोडे ही दिनो में घर के लोगों को पता चला कि महावीर जैसे नहीं है। हैं घर मे, और नही हैं। उनका होना न होने के बराबर है। न वे किसी के मार्ग मे आड़े आते हैं, न वे किसी की तरफ देखते हैं, न, कोई उन्हे देखे, इसकी आतुरता रहती है। वे ऐसे हैं जैसे उस बडे भवन मे अकेले हैं, जैसे कोई है ही नही। कोई उनसे पूछे, 'हां और ना' में जवाब मागे तो भी नही देते। किसी पक्ष और विपक्ष में नही पडते। किसी वाद-विवाद मे रस नही लेते। घर मे क्या हो रहा है, नहीं हो रहा है, उन्हे कुछ प्रयोजन नही। अतिथि हो गए हैं। तो घर के लोगो को लगने लगा कि वह तो गए ही। सिर्फ शरीर रह गया है। तब घर के लोगो ने कहा कि शरीर को रोकना उचित नही। जो जा ही चुका है—हम इसे भी रोकने के भागीदार क्यो बनें ? तब घर के लोगो ने प्रार्थना की कि अब आपकी मर्जी हो तो आप सन्यास ले लें क्योकि हमारी तरफ से तो लगता है सन्यास पूरा हो ही गया। आप घर मे हैं या नही, बराबर हो गया। हम क्यो इस पाप के भागीदार हो कि आपको रोक लें ? और महावीर चल पड़े। ऐसा जो व्यक्ति है उसने शादी के वक्त यह भी नही कहा होगा कि नही करनी है। क्योंकि नही करने मे भी तो स्त्री को हम मूल्य देते है, दूसरे को मूल्य देते हैं, डरते हैं कि नही करनी है। शादी के बाद भी ऐसे रहा होगा जैसे कि शादी के पहले रहता था। कुछ फर्क ही न पडा होगा। इसलिए जिन्होंने गहरे देखा उन्होंने माना कि वह अविवाहित हैं। जैसा कि मैंने कहा कि जीसस की मा कुवारी है और बेटे को जन्म दिया क्योंकि उसके कुवारेपन मे ही पैदा हो सकता है जीसस जैसा बेटा। महावीर जैसा व्यक्ति पति हो, कैसे हो सकता है ? यानी पति होने की जो धारणा है, उसे हम थोडा सोचें और समझे कि महावीर जैसा व्यक्ति पति कैसे हो सकता है ? पति मे पहले तो स्वामित्व है और जो व्यक्ति जड वस्तु पर भी स्वामित्व नही रखना चाहता वह किसी जीवित व्यक्ति पर स्वामित्व रखेगा, यह असम्भव है। यह कल्पना ही असम्भव है। यानी जो धन को भी नही कह सकता कि मैं इसका मालिक हू, वस्तु के साथ भी ऐसा दुर्व्यवहार नही कर सकता मालिक होने का, वह किसी जीवित स्त्री के साथ मालिक होने का दुर्व्यवहार कैसे करेगा ? पति होना एक तरह का दुर्व्यवहार है, एक प्रभुत्व है, एक स्वामित्व है। महावीर पति नही हो सकता और

महावीर पिता भी कैसे हो सकता है ? हा, लडकी जन्मी हो, यह हो सकता है। पिता की कामना क्या है, यह भी हम ठीक से समझ लें। पिता की कामना है, स्वय को, स्वय की देह को, स्वय के अस्तित्व को दूसरो के माध्यम से आगे जारी रखना। पिता की कामना का अर्थ क्या है ? आखिर कोई पिता होना क्यो चाहता है ? कामना यह है कि मै तो नही रहूगा, कोई फिक्र नही। लेकिन मेरा अश रहेगा, रहेगा और रहेगा। इसलिए बाझ पिता दुखी है, बाझ मा दुखी है। दुख क्या है ? दुख है खत्म हो गई एक रेखा—जहा हम समाप्त हो रहे है, जहा से हम मे से कुछ भी नही बचेगा जीवित। जैसे एक शाखा जिसमे आगे पत्ते आना बद हो गए, सब सूख गए। पिता की आकाक्षा क्या है ? पिता की आकाक्षा है कि चाहे यह शरीर मर जाए लेकिन इस शरीर का एक अश फिर शरीर निर्मित कर लेगा और रहेगा। मैं जीऊगा दूसरो में। इसलिए बाप बेटे को बनाने के लिए इतना आतुर है। बेटे मे बाप की महत्वाकाक्षा और अहकार जीना चाहते है। बेटे के रूप मे वे बने रहना चाहते हैं। महावीर जैसे व्यक्ति को बने रहने की आकाक्षा का सवाल ही नही। न अहकार है, न होने की तृष्णा। न होने का अनुभव करके लौटा हुआ आदमी है। जहा सब खो जाता है, वहा से लौटा हुआ आदमी है। तो इसको ख्याल हो सकता है कि पिता बनो ? हा यह हो सकता है लडकी पैदा हुई हो। इस बात को ठीक से समझे बिना गडबड हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। जब लडकी पैदा हुई तो महावीर पिता है। एसा तथ्य पकडने वाले को दिखेगा। मगर जो सत्य को पकडने जाता है उसके लिए लडकी का होना न होना अप्रासगिक है। हो सकता है महावीर की पत्नी, जो अपने को पत्नी मानती रही हो मा भी बनना चाही हो, और मा बन गई हो। लेकिन महावीर पिता नही बन पाए। और इसलिए एक धारा मे जिन्होने देखा, उन्होने बिल्कुल इन्कार कर दिया और कहा कि आदमी ऐसा था ही नही, यह बात ही झूठ है। लेकिन उन्होने तथ्य को इन्कार किया और दूसरो ने तथ्य को पकड लिया। और सत्य को देखना बहुत मुश्किल होता है। तथ्य आवरण बन जाता है।

एक छोटी कहानी मुझे याद आती है। एक गाव के बाहर एक नग्न मुनि ठहरा हुआ है। सम्राट् की पत्निया उसे भोजन कराने गाव के बाहर जा रही है। नदी दूर पर है, कोई पुल नही, कोई नाव नही। वे अपने पति से, सम्राट् से पूछती हैं कि हम क्या करें ? कैसे पार जाए ? तो वह कहते हैं कि तुम नदी से जाकर कहना कि यदि मुनि जीवन भर के उपासे हो तो मार्ग

मिल जाए। नदी मार्ग दे देगी अगर उस पार ठहरा हुआ वह मुनि जीवन भर का उपवास किया हुआ है। तो उन्होंने जाकर कहा है। और कहानी है कि नदी ने मार्ग दे दिया। वे बहुत बहुमूल्य भोजन बनाकर, स्वादिष्ठ मिष्ठान्न बनाकर ले गईं— मुनि के सामने रखती है। मुनि उनकी सारी थालिया साफ कर गए हैं, कुछ भी नही बचा है। जब वे लौटने को हुईं तब बडी चिन्तित हुईं कि अभी तो नदी को कहकर हम लौट आईं थी कि मुनि अगर जीवन भर के उपासे हो तो—अब क्या करेगी ? मुनि से पूछती हैं कि अब हम क्या करें ? अभी तो हम कहकर आ गईं थी कि आप जीवन भर के उपासे हैं, लेकिन अब तो यह नही कह सकती है। सामने ही भोजन कर लिया है। तो मुनि ने कहा कि इससे क्या फर्क पडता है। तुम जाओ और नदी से यही कहो कि अगर मुनि जीवन भर के उपासे है तो नदी राह दे दे। उन स्त्रियो को बडी मुश्किल हो गई क्योंकि भोजन थोडा भी नही, बहुत ज्यादा, पूरा ही मुनि कर गए हैं, कुछ छोडा भी नही है पीछे और फिर भी कहते हैं उपासे हैं। बडी शका मे, बडे सन्देह मे उन्होने नदी से जाकर कहा। खुद पर हसी आती है कि यह कैसे सम्भव है। लेकिन नदी ने फिर मार्ग दे दिया। तो वे लौटकर अपने पति से पूछती हैं। जाते वक्त जो घटा वह बहुत छोटा चमत्कार था। लौटते वक्त जो घटा है, उस चमत्कार का मुकाबला ही नही। जाते वक्त भी चमत्कार हुआ था कि नदी ने मार्ग दिया। लेकिन वह बहुत छोटा हो गया अब। वह मुनि जो कि सब खा गए और फिर उपवासे हैं ! उनके पति ने कहा जो उपवास स्थायी ही है उसी के करने वाले को हम मुनि कहते हैं। भोजन से उपवास का कोई सम्बन्ध ही नही है। असल मे भोजन करने की तृष्णा एक बात है और भोजन करने की जरूरत बिल्कुल दूसरी बात है। भोजन की तृष्णा भोजन न करो तो भी हो सकती है। भोजन करना और उसकी जरूरत बिल्कुल दूसरी बात है। भोजन करो तो भी हो सकता है तृष्णा न हो। जब तृष्णा छूट जाती है और सिर्फ जरूरत रह जाती है शरीर की तो आदमी उपवासी है। जैसा मैंने सुबह कहा वह भीतर वास किए चला जाता है। शरीर की जरूरत है —सुन लेता है, कर देता है। इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नही है। खुद कभी भी उसने भोजन नही किया है। तो अगर यह हो सकता है तो फिर महावीर पिता नहीं होंगे, लड़की हो तो भी; पति नही होंगे अगर पत्नी हो तो भी। तथ्य अक्सर सत्य को ढाक लेते हैं और हम सब तथ्यो को ही देख पाते हैं और हमारा ख्याल होता है कि तथ्य बड़े कीमती हैं। और

तथ्य के बहुत पहलू हो सकते है ।

मैंने सुना है एक अदालत मे एक मुकदमा चला। एक आदमी ने एक हत्या कर दी है। आखो देखे गवाह ने कहा कि खुले आकाश के नीचे यह हत्या की गई है। जब हत्या की गई, मै मौजूद था। और आकाश में तारे थे। दूसरे आदमी ने कहा कि यह हत्या मकान के भीतर की गई है, मैं मौजूद था। चारो तरफ दीवार से बन्द परकोटा था। द्वार पर मैं खडा था। चारो तरफ दीवार थी, मकान था जिसके भीतर हत्या की गई है। उस न्यायाधीश ने कहा कि मुझे बहुत मुश्किल मे डाल दिया है तुमने, क्योकि एक कहता है खुले आकाश के नीचे और दूसरा कहता है मकान के भीतर। एक तीसरे आख वाले गवाह ने जिसने खुद देखा था कहा कि दोनो ही ठीक कहते है। मकान अधूरा बना था। अभी सिर्फ दीवार ही उठी थी। ऊपर आकाश मे तारे थे—छप्पर नही था मकान पर। और ये दोनो ही ठीक कहते है। आकाश मे तारे थे और खुले आकाश के नीचे ही हत्या हुई। चारो तरफ दीवार थी, और मकान था, वह भी सच है। जीवन बहुत जटिल है और एक ही तथ्य को हम बहुत तरह से देख सकते है और फिर दूसरी गहराई यह कि तथ्य जरूरी नही कि सत्य हो। सत्य कुछ और भी हो सकता है, तथ्य से विपरीत भी हो सकता है। लेकिन चूकि हम तथ्यो को ही जाते है और सत्यो से हमारा कोई सम्बन्ध नही, इसलिए अक्सर हम तथ्यो को पकड लेते है और तब मुश्किल मे पड जाते है और बहुत कठिनाई पैदा हो जाती है।

जैनियो के एक तीर्थंकर है। श्वेताम्बर मानते है कि वह स्त्री हैं, दिगम्बर मानते है कि वह पुरुष है। ऐसा झगडा हो सकता है एक व्यक्ति के सम्बन्ध मे। यह झगडा भी हो सकता है दो परम्पराओ में कि वह स्त्री है या पुरुष। अब यह तो बडी सीधी तथ्य की बाते हैं। इनमे भी झगडा हो सकता है। लेकिन तथ्य बडा झूठ बोल सकते है, और जब कभी सत्य के विपरीत होता है तो कठिनाई पैदा हो जाती है। हो सकता है कि जिस तीर्थंकर के बारे मे यह ख्याल है, वह स्त्री हो शरीर से। लेकिन तीर्थंकर हो ही नही सकता कोई व्यक्ति जब तक आक्रामक न हो, जब तक कि पुरुषवृत्ति न हो, जब तक कि सघर्ष और संकल्प न हो। यह भी हो सकता है कि सघर्ष, सकल्प और आक्रमण ने पूरे व्यक्तित्व को बदल दिया हो। यह भी हो सकता है जब वह सन्यास लिया हो स्त्री रहा हो, तो पुरुष

हो गया हो। यानी मेरा मतलब समझ लेना कि यह पूरा परिवर्तन भी सम्भव है। ऐसा अभी रामकृष्ण के वक्त मे हुआ है। रामकृष्ण ने सारी साधनाएं की, सब मार्गों से जाना चाहा कि वह मार्ग ले जा सकता है कि नही। तो उन्होंने ईसाइयो की, सूफियो की, वैष्णवो की, भक्ति-मार्गियो की, योगियो की, हठयोगियों की, सब तरह की साधनाए की। उससे उन्होने एक सखी सम्प्रदाय की भी साधना की जिसमे व्यक्ति अपने को कृष्ण की स्त्री मान लेता है, परिपूर्ण भाव से सखी हो जाता है, गोपी बन जाता है, पुरुष भी हो तो भी। वह रात को कृष्ण की मूर्ति साथ लेकर सोता है पति की तरह, पत्नी होकर। रामकृष्ण ने समग्रभाव से स्वीकार कर लिया और कुछ महीनो तक उन्होंने स्त्रीभाव की कामना की। बडी अद्भुत घटना घटी उनके साधना-काल मे, उनकी आवाज बदल गई, स्त्री की सी आवाज हो गई। चाल बदल गई। वह स्त्रियो जैसे चलने लगे। उनके स्तन उभर आए और तब घबराहट हुई कि कही उनका पूरा शरीर तो रूपान्तरित नही हो जाएगा। कही उनका पूरा का पूरा लैंगिक रूपान्तरण न हो जाए। और उन्हे रोका उनके मित्रो ने, भक्तो ने। लेकिन वह उधर जा चुके थे। वह कहते थे कैसा पुरुष? कौन पुरुष? कौन रामकृष्ण? वह तो अब नही रहा। साधना पूरी हो जाने पर भी छ महीने तक उन पर स्त्री के चिन्ह रहे। छ महीने तक उनको देखकर लोग हैरान हो जाते थे कि इनको क्या हो गया? अगर यह सम्भव है तो फिर अगर किसी ने उन्हे उन दिनो मे देखा होगा तो वह लिख सकता है कि वह स्त्री थे। अब मेरे अपने ज्ञान मे ऐसा है कि वह व्यक्ति स्त्री ही रही होगी जब वह साधना के जगत मे प्रविष्ट हुई लेकिन जो साधना चुनी वह पुरुष की साधना है। और उस साधना ने पूरा का पूरा रूपान्तरण किया होगा, न केवल व्यक्तित्व का बल्कि देह का भी। अब तो हम जानते हैं वैज्ञानिक ढग से कि तीव्र मनोभावो से पूरी देह बदल सकती है। जिन्होंने तथ्य पकड़ा होगा उन्होने देखा होगा कि वह स्त्री थी, तो स्त्री रही उनकी किताब मे और जिन्होने रूपान्तरण देखा होगा उनके लिए पुरुष हो गए। तथ्य को एकदम अन्धे की तरह पकड लेना खतरनाक है। सत्य पर नजर होनी चाहिए। तथ्य रोज बदल जाते है। यह तथ्य है कि आप पुरुष या स्त्री हैं किन्तु यह सत्य नही है। बिल्कुल सत्य नही है। सत्य वह है जो नही बदलता। पुरुष स्त्री हो सकते हैं और स्त्री पुरुष हो सकती है। बहुत गहरे मे कोई आदमी अलग-अलग नही होता। स्त्री भी होती है, भीतर पुरुष भी होता है,

मात्रा मे फर्क होता है। जिसको हम पुरुष कहते हैं, उसमें ६० प्रतिशत पुरुष और ४० प्रतिशत स्त्री होती है। जिसको हम स्त्री कहते हैं वह ६० प्रतिशत स्त्री और ४० प्रतिशत पुरुष होता है। यह मात्रा बहुत कम भी हो सकती है। यह बहुत सीमान्त पर भी हो सकती है। यह ५१ प्रतिशत जैसी स्थिति मे भी हो सकती है। और तब जरा फर्क भिन्न का, और रूपान्तरण हो जाएगा। दो प्रतिशत की बदलाहट और पूरा व्यक्ति बदल जाएगा। लेकिन मनुष्य जाति को हमेशा बाधा पड़ी है इस बात से कि उसने तथ्यो को एकदम बिल्कुल अधों की तरह जकड कर पकड लिया है। और तथ्य बडा झूठ बोल सकते है।

महावीर के सम्बन्ध मे भी बातें कही जाती है। अब जैसे एक वर्ग मानता है कि वह वस्त्र पहने हुए थे, चाहे वह देवताओं का दिया हुआ वस्त्र हो, चाहे वह आखो से न दिखाई पडने वाला वस्त्र हो। लेकिन वह वस्त्र पहने हुए है, नग्न नही है। और एक वर्ग मानता है कि वह बिल्कुल नग्न है, वस्त्र उन्होने छोड दिए हैं। किसी प्रकार का वस्त्र उनके शरीर पर नही है। और ये दोनो बातें एक साथ सच है। वह बिल्कुल सच है कि महावीर ने वस्त्र छोड दिए थे। वह बिल्कुल नग्न हो गए लेकिन उनकी नग्नता भी ऐसी थी कि उसे ढाकने के लिए वस्त्रो की जरूरत नही थी। अब हमें थोडा समझना जरूरी होगा। एक आदमी इस भाति वस्त्र पहन सकता है कि वह नगा हो। एक आदमी इस भाति वस्त्र पहन सकता है कि वह नग्नता को प्रकट करे। सच तो यह कि नगा शरीर इतना नगा नही होता जितना वस्त्र उसे नगा कर सकते है। जानवरो को देख कर हमे शायद ही ख्याल आता हो कि वे नगे है। लेकिन आदमी और स्त्रियां इस तरह के वस्त्र पहन सकते है कि उनके वस्त्र पहनने मे तत्काल ख्याल आए उनके नगेपन का। और आदमी ने ऐसे वस्त्र विकसित कर लिए है कि वह उसके शरीर को उघाड़ते है, ढाकते नही। जो वस्त्र ढाकता है उसे कौन पसद करता है ? जो व्यक्ति वस्त्र उघाडता है, इतना उघाडता है कि और उघाडने की इच्छा जगे, इतना नही उघाडता कि उघाड़ने की इच्छा मिट जाए, उघाडता है और उघाडने की इच्छा जगाता है ऐसा व्यक्ति वस्त्र पहने हुए भी नगा है। ठीक इससे उल्टा भी हो सकता है कि व्यक्ति नगा खड़ा हो गया है और इतना उघाड़ा हुआ है कि उघाडने को कुछ नही बचा है, उघाडने की कोई इच्छा भी नही है उसको, उघाडने की कोई कामना भी नही है, कोई उघाड़ कर

देखे यह आमन्त्रण भी नही है तो उसकी नग्नता भी वस्त्र बन जाती है। जब कोई वस्त्रो मे नंगा हो सकता है तो कोई नग्नता मे वस्त्रो मे क्यों नही हो सकता ? महावीर बिल्कुल नग्न थे लेकिन उनकी नग्नता किसी को भी नग्नता जैसी नही लगी। इसलिए यह स्वाभाविक था कहानी का बन जाना कि जरूर वे कोई ऐसे वस्त्र भी पहने हुए हैं जो दिखाई नहीं पड़ते, जो देवताओ के दिए हैं, देवदूत ने दिये है। देवताओं ने ऐसे वस्त्र दे दिए है उनको जो दिखाई भी नही पडते और फिर भी उनकी नग्नता दिखाई नहीं पडती। तो कही कोई अदृश्य वस्त्र उनको छिपाए हुए हैं। यह धारणा पैदा हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। पर महावीर निपट नग्न हैं। असल मे निपट नग्न आदमी ही नग्नता से मुक्त हो सकता है। वस्त्रो मे ढके हुए आदमी का नग्नता से मुक्त होना बडा मुश्किल है क्योकि वस्त्रो में जिसे वह ढाकता है वह उसके ढाकने की चेतना स्पष्ट है। और जिसे हम ढाकते है सचेतन, वह उघड जाता है। जिसे हम चेतन रूप से ढाकते है, हमारी चेतना उस अग को उघडा हुआ अग बना देती है। क्योकि जब हम चेतन होकर ढाकते हैं तो चेतन होकर दूसरा उसे उघडा हुआ देखना चाहता है। सिर्फ नग्न आदमी ही नगेपन से मुक्त हो सकता है। यह बडी उल्टी बात मालूम पडेगी। वस्त्र मे ढका हुआ आदमी कैसे नगेपन से मुक्त होगा ? यह कठिन भी है किन्तु हो भी सकता है। क्योकि बुद्ध और क्राइस्ट कपडे पहने हुए हैं। सम्भव तो है पर बहुत कठिन है, एकदम कठिन है। सम्भव इसलिए है कि जब मै वस्त्र पहनता हू तो मैं दो कारणो से पहन सकता हू। कारण मेरे आन्तरिक हो सकते है कि कुछ है जो मैं छिपाना चाहता हू, कुछ है जो मैं नही दिखाना चाहता, या कुछ है जो मै भयभीत हू कि दिख न जाए। मेरे वस्त्र पहनने के कारण आन्तरिक भी हो सकते है, एकदम बाह्य भी हो सकते हैं। तब एक अर्थ मे मैं वस्त्र नहीं पहने हुए हू। तुम्हे मैंने वस्त्र पहना दिए है। बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग जो वस्त्र पहने हुए है वे भी नग्न होने की उतनी ही हैसियत रखते है जितनी महावीर। इनके भीतर भी कुछ छिपाने को नही है। लेकिन हो सकता है, दूसरा नग्नता न देखना चाहे। तो दूसरे पर आक्रमण क्यो करना ! दूसरे की आख पर हमने वस्त्र डाला हुआ है, अपने शरीर पर नही। और दूसरे की आंख पर भी वस्त्र डालने का सबसे सरल उपाय यही है कि अपने शरीर पर डाल दो क्योकि मैंने सुना है कि जब सबसे पहले जमीन पर काटो ने तकलीफ दी तो

एक सम्राट ने बुद्धिमान लोगो को बुला कर पूछा कि क्या करें ? कैसे बचें ? बुद्धिमानो ने कहा एक काम करे, सारी पृथ्वी को चमडे से ढक दे जिससे कि हम चमडे पर चले, काटे न गडे। सम्राट ने कहा इतना चमडा कहा से लाओगे ? पृथ्वी बहुत बडी है। बडी मुश्किल मे पड गए बुद्धिमान लोग। बहुत सोचा। बुद्धिमानो को बडी चीजे जल्दी सूझ जाती है, छोटी चीजे उनमे चूक जाती है, तब राजा से एक नौकर ने कहा कि आप भी कैसी पागलपन की बातो मे पडे हैं। और इतने बडे-बडे बुद्धिमानो को बैठ कर सोचना है। मैं तो बोलता नही इस डर से कि मैं गवार हू, कैसे बोलू। लेकिन यह पागलपन की बात है। अपने पैरो को क्यो नही चमडे से ढका जा रहा है। अपने पैरो को चमडे से ढक ले, सारी पृथ्वी पर आप जहा जाओगे वहा चमडा होगा। पचायत मे क्यो पडते है कि सारी पृथ्वी को ढको। आपकी आख पर वस्त्र डालने की सबसे अच्छी तरकीब यही है कि अपने शरीर पर वस्त्र डाल लो। और सरल उपाय क्या हो सकता है ? सबकी आख पर डालने जाओ तो बहुत बडी पृथ्वी है और बडी मुश्किल पड जाए। तो कुछ इसलिए वस्त्र पहन सकते हैं कि वे आपकी आख पर वस्त्र डाल देना चाहते है क्योकि अभी आपकी आख नग्न को देखने की हिम्मत नही जुटा सकती। लेकिन यह कठिन है। महावीर की नग्नता पर इसीलिए दो मत खड हो गए। महावीर निश्चित ही नग्न थे, इसमे कोई दूसरा विकल्प नही है। लेकिन बहुत लोगो को महावीर अत्यन्त वस्त्र वाले मालूम पडे होगे।

मेरे एक मित्र है। वह विन्ध्यप्रदेश के शिक्षामन्त्री थे। एक अमेरिकन मूर्तिकार खजराहो देखने आया। भारतीय सरकार ने उन मेरे मित्र को लिखा कि आप विशिष्ट रूप से ले जाए मूर्तिकार को। उन्हे ठीक रूप से खुजराहो दिखाए। मेरे मित्र बडे परेशान हुए। वह खजुराहो के पास के ही रहने वाले हैं, निकट ही दस-बीस मील दूर रहते है। खजुराहो को बचपन से ही जानते है। वह बहुत भयभीत हुए कि वह अमेरिकन मूर्तिकार क्या विचार लेकर वापस जाएगा ? और वह सिर्फ खजुराहो देख कर सीधा वापस लौट जाने को है, सीधा दिल्ली से खुजराहो और वापस। वह भारतीय सस्कृति के सम्बन्ध मे क्या सोचेगा कि ऐसे मन्दिर ! ऐसी नग्न मूर्तिया ! ऐसे अश्लील दृश्य ! वह बहुत डरे हुए हैं, बडे भयभीत हैं, और बड़ी तैयारी करके गए हैं कि यह जबाब दूगा, यह जबाब दूगा। पूछेगा तो इस तरह से समझाएगे। बता देगे कि यह कोई भारतीय धारा की मूल शाखा नहीं है।

यह किनारे से कुछ विक्षिप्त लोगो की, कुछ पागलो की, कुछ भोगियो की, कुछ तांत्रिकों की, कुछ वाममार्गियो की चेष्टायें हैं। यह कोई ऐसा मन्दिर नही है कि भारत का मन्दिर है। भारत का मन्दिर ही नही है एक अर्थ मे यह। पुरुषोत्तमदास टंडन कहते थे मिट्टी से ढाक दो खजुराहो को, उसको उखाडो ही मत। गाधी जी तक राजी थे कि उसको ढकवा दो। रवीन्द्रनाथ बीच मे न कूद पड़ते तो अवश्य ही ढक जाता यह मन्दिर। मूलधारा तो गाधी और पुरुषोत्तमदास टंडन की है—वही ठीक कह रहे है। तो यह मन्त्री सब समझ-बूझ कर गए हैं, बडी तैयारी करके गए हैं लेकिन वह आदमी कुछ पूछता ही नही। एक-एक मूर्ति को देखता जाता है, एकदम नग्न मूर्तिया, एकदम नग्न चित्र! और वह तैयारी मे जुटे हैं कि वह कुछ पूछे। लेकिन वह कुछ पूछता ही नही। वह मन्त्रमुग्ध देखता है और आगे बढ जाता है। वह पूरे मन्दिर मे घूम कर निकल आया। वह सीढिया उतर आया, वह गाडी मे बैठ गया, उसने कुछ कहा ही नही कि अश्लील है, भद्दी है। वह तो ऐसा भाव विभोर हो गया है कि कही खो गया है। लेकिन मित्र ने सोचा कि फिर भी वह ख्याल तो ले ही जाएगा। शायद, शिष्टाचार के कारण न कहता होगा। तो उन्होने कहा कि सुनिए आप, यह मत सोचिए कि अश्लील मूर्तिया कोई भारत की प्रतीक है। मूर्तिकार ने कहा अश्लील तो मुझे फिर से देखना पडेगा क्योकि इतनी सुन्दर मूर्तिया मैंने कभी देखी ही नही। इनके सौन्दर्य से मै ऐसा अभिभूत हो गया कि मैं नही देख पाया कि वह अश्लील भी थी। फिर मुझे वापस ले चलो। अब मैं गौर से देखूगा कि अश्लील वे कहा है क्योकि मैं तो अभिभूत था, इतना अभिभूत था उनके सौन्दर्य से, उनकी बढता से और उनके चेहरो पर प्रकट ज्योति से कि मैं नही देख पाया कि वे नगी है। मेरे मित्र बहुत घबराए कि मूर्तिया नगी आप नही देख पाए।

हो सकता है कि महावीर के पास बहुत से लोग आए होगे और महावीर के चेहरे में और महावीर की आखो मे ऐसे डूबे होगे। हो सकता है कि लौट गए हो, पता न चला हो कि महावीर नगे थे। क्योकि मनुष्य मे हमे वही दिखाई पड़ता है जो उसमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर किसी व्यक्ति मे तुम्हे उसका सेक्स दिखाई पडता है तो वह उसमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर उससे बडी घटनाए उसके जीवन मे घट गई हो और उससे वही रोशनी उसमे निकलने लगी हो तो हो सकता है कि सैकडो लोग महावीर को देख कर गए हों और उन्होने गाव मे जाकर खबर दी हो कि कौन कहता

है कि महावीर नगे है, फिर से देखना पडेगा ? जरूर कोई अदृश्य वस्त्र उन्हे घेरे है। ख्याल तो आता है कि कुछ नगे थे, देह पर कुछ था नही। फिर भी नगे थे ऐसा दिखाई नही पडा। कोई अदृश्य वस्त्र उन्हे घेरे होगे। कोई देवताओ के वस्त्र उन्हे घेरे है कि वे नग्न हैं फिर भी नग्न नही मालूम पडते। नग्नता छिपी है। और तब कहानिया बनती है और सत्य देखना मुश्किल हो जाता है। ये सब बाते इसलिए कह रहा हू कि हमारे मस्तिष्क मे एक बात बहुत साफ हो जाए कि तथ्यो पर जोर सिर्फ नासमझ देते है। समझदार का जोर सदा सत्य पर होता है। और सत्य कुछ ऐसी चीज है कि तथ्य के भीतर से आप देख सकते है लेकिन तथ्य को पकडने से कभी नही देख सकते, फिर आप वही रुक जाते है। दरवाजा इस कमरे के भीतर लाता है लेकिन छोड दे उसे तब। और पकड ले तो आप द्वार पर रह जाते है, आप कमरे के भीतर नही जाते। तथ्य के सब द्वार सत्य मे जाते है लेकिन जो तथ्य को पकड लेता है वही अटक कर रह जाता है और द्वार मकान नही है, सिर्फ मकान मे जाने की खाली जगह है। तथ्य सत्य नही है, सिर्फ सत्य की सम्भावना है जहा से आप जा सकते है लेकिन अगर वही रुक गए तो सदा के लिए वही अटक सकते है। और हमारी आखे तथ्यो को ही देखती है। असल मे मै पदार्थवादी उसको कहता हू जो तथ्यो को ही देखता है।

मेरी दृष्टि मे भौतिकवाद का कोई मतलब नही है—जो तथ्यो को ही देखता है, जो कहता है इतना रहा तथ्य, बाकी सब झूठ है। यह तथ्य को गिन लेता है और कहता है कि इसके आगे कुछ भी नही है। लेकिन मजे की बात यह है कि तथ्य सत्य की सबसे बाहरी परिधि है, सबमे बाहरी परकोटा है। जो भी है उसके भीतर और जितने हम गहरे भीतर जाएगे उतना तथ्य छूटता चला जाएगा और सत्य निकट आता जाएगा। इसीलिए सत्य को कहने की भाषा तथ्य की नही हो पाएगी। सत्य को कहने के लिए नई भाषा खोजनी पडेगी जो प्रतीकात्मक है। सत्य को तथ्य की भाषा मे नही कहा जा सकता, कहे तो इतिहास बन जाता है। अब जैसे कि यह बात है कि महावीर कभी बूढे नही हुए, न कोई दूसरा तीर्थंकर कभी बूढा हुआ। न बुद्ध कभी बूढे हुए। न राम, न कृष्ण। इनकी कोई बुढापे की मूर्ति आपने कभी देखी कि ये बूढे हो गए हैं ? तो क्या मामला है ? क्या ये लोग जवान ही रह गए ? जवानी के आगे नही गए ? गए तो जरूर होगे। यह तो असम्भव है कि न गए हो। तथ्य यही होगा कि महावीर को बूढा होना पडेगा, बूढे हुए होगे। जब मरना

पडता है तो बूढ़ा होना पडेगा। लेकिन सत्य यह कहता है कि वह आदमी कभी बूढा नहीं हुआ होगा। जो उसने पा लिया है, वह इतना युवा है, वह इतना सदा यौवन है कि वहा कैसा बुढापा ? जिन लोगों ने तथ्य पर जोर दिया होगा वे महावीर की बूढ़ी शकल भी करते। लेकिन सत्य पर जिन्होंने आंख रखी तो फिर गाथा (मिथ) बनानी पडी कि महावीर कभी बूढ़े नही होते। अब कभी आपने ध्यान दिया कि ये कोई भी तीर्थंकर कभी बूढे नही हुए। यह युवा होने की सम्भावना कहा है ? तथ्य मे तो नही है, इतिहास मे तो नही है लेकिन गाथा (मिथ) मे है। इसीलिए मैं कहता हू कि इतिहास से ज्यादा गहरी घुस जाती है मिथलोजी (गाथाशास्त्र)। उसकी पकड ज्यादा गहरी है। लेकिन उसको कहने के लिए तथ्य छोड देने पडते है और कहानी गढनी पडती है कि नही, नही, कृष्ण कभी बूढे नही होते। बच्चे होते, जवान होते है, बस फिर ठहर जाते हैं, फिर बूढे नही होते। असल मे तो चित्त सदा नया है और चित्त सत्य को जान गया है। वह कैसे वृद्ध होगा ? वह कैसे क्षीण होगा ? वह क्षीण होता ही नही। वह सदा के लिए उस हरियाली को पा गया है जो अब कही नही मिलती। इसलिए युवा होने तक तो यात्रा है उसकी। जब तक कि वह सत्य पाकर युवा नही हो गया तब तक वह बच्चा होता है, बडा होता है। जैसे वह पहुच गया उस बिन्दु पर जहा सत्य पा लिया जाता है, जो सदा जवान है, जो कभी बूढा नही होता वैसे ही फिर उसकी यात्रा रुक जाती है। शरीर की तो नही रुक सकती, शरीर तो बूढ़ा होगा और मरेगा। लेकिन हम उस तथ्य को इन्कार कर देते है और कह देते है कि वह तथ्य झूठ है, उसका कोई मतलब नही। वह आदमी भीतर जवान है, वह जवान ही रह गया है। वह अब कभी बूढा नही होगा। इसलिए बहुत से इन अद्भुत लोगो की मृत्यु का कोई उल्लेख नही है कि वे मरे कब। वह उल्लेख इसलिए नही है कि जन्म तक तो बात ठीक है; मरना उनका होता नही। तथ्य मे तो वे मरे। इसलिए जैसे-जैसे दुनिया ज्यादा तथ्य होती गई वैसे-वैसे हमारे पास रिकार्ड उपलब्ध होने लगा। जैसे महावीर का रिकार्ड है हमारे पास कि वह कब मरे। लेकिन ऋषभ का नहीं है रिकार्ड उपलब्ध। दुनिया और भी मिथ के ज्यादा करीब थी। अभी लोग तथ्य पर जोर ही नहीं दे रहे थे। राम का कोई रिकार्ड नहीं है कि वह कब मरे। इसका कारण यह नही कि वह नही मरे होंगे। जिन्होंने सारी जिन्दगी की कहानी लिखी, वे एक बात पर चूक गए थे कि बडी भारी घटना रही होगी मरने की। यानी जन्म का सब

ब्यौरा लिखते हैं, बचपन का ब्यौरा लिखते है, विवाह है, लडाई है, झगडा है, सब आता है, सब जाता है। सिर्फ एक बात चूक जाती है कि आदमी गए कब ? नही, मिथ उसको इन्कार कर देते है। वह कहते हैं ऐसा आदमी मरता नही। ऐसा आदमी परम जीवन को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए मृत्यु की बात ही मत लिखो। इसलिए इस मुल्क मे हम जन्मदिन मनाते हैं। पश्चिम मे मृत्युदिन। पश्चिम मे जो मरने का दिन है वह बडी कीमत रखता है। पूरब मे जो जन्म का दिन है वह बडी कीमत रखता है। और उसका कारण है क्योंकि हम जन्म को स्वीकार करते है। हम मृत्यु को इन्कार ही कर देते है। पश्चिम मे जन्म जितना स्वीकृत है, मृत्यु उससे ज्यादा स्वीकृत है क्योंकि जन्म तो पहले हो चुका है, मृत्यु तो बाद मे हुई है। जो बाद मे हुआ है ज्यादा ताजा है, ज्यादा कीमती है। जन्मदिन की ही बात किए चले जाते है और उसका कारण है कि हम जन्म को तो मानते है मृत्यु को नही। जीवन है, मृत्यु नही। ये सारे तथ्य अगर तथ्य की तरह पकडे जाए तो कठिनाई हो जाती है। लेकिन अगर हम इनकी गहराई मे उतर जाए और इनके मिथ की जो गुप्त भाषा है उसे खोल दे तो बडे रहस्य के पर्दे उठने लगते है। जैसे अब गाधी की हमने मरणतिथि मनानी शुरू की है। वह पश्चिम की नकल है। अगर महावीर जैसे व्यक्ति का हम मृत्युदिन मनाते भी है तो उस मृत्यु दिवस हम नही कहते है। उसे निर्वाण दिवस कहते है। मरता नही, वह सिर्फ निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है। उसको भी मृत्युदिवस नही कहते है। उसको भी कहेंगे निर्वाणदिवस।

तथ्यों ने ऐसी व्यर्थ की बातो म उलझा दिया है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है और उनके समक्ष वे लोग जो निरतर सत्य पर जोर देते रहे है आज इस तरह हारे हुए खडे है और वे हारे इसलिए खडे है कि वे खुद ही तथ्य मे हार गए है और उनको भी लग रहा है कि कोई बडी भूल-चूक हो गई है। मेरी दृष्टि मे तथ्यों का भी मूल्य है अगर वे सत्यो को बता पायें, अन्यथा उनका कोई मूल्य नही है। शाश्वत की तरफ इनसे इशारा हो जाए तो ठीक है अन्यथा कोई भी मूल्य नही है। मील के पत्थर है जो हमे कहते है आगे चलो लेकिन कुछ नासमझ लोग मील के पत्थरो को पकडकर रुक जाते है। मील के पत्थरो का क्या मूल्य है सिवाय कि वे कहे कि और आगे और आगे। तथ्य भी मील के पत्थर हैं सत्य की यात्रा मे और इसलिए अगर महावीर के जीवन की प्रारभिक सारी घटनाओ को उनकी गहराई मे—उनकी

खाल को छोड़कर उनके सार को पकड लिया जाये तो ही महावीर का उद्घाटन होगा और तो ही बाद मे महावीर का हो पाते है, कैसे हो पाते हैं वे समझ पायेंगे और उनको समझने की दृष्टि मिल सकती है ।

प्रश्नोत्तर

(१९.९.६६) प्रात

प्रश्न—यदि तीर्थङ्कर पहले जन्म में ही कृतकृत्य हो चुके है और केवल करुणावश संसार में आते हैं तो फिर वे केवल एक ही बार क्यों आते है ? बारम्बार क्यों नहीं आते ? इस प्रकार तो उन्हे अब भी संसार में ही होना चाहिए था । और जो वे करुणावश आते है तो क्या अपनी इच्छा से आते हैं या उनका यह आना स्वाभाविक होता है ?

उत्तर—यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है मेरी दृष्टि मे । जिसके जीवन का कार्य पूरा हो चुका है वह ज्यादा से ज्यादा एक ही बार वापिस लौट सकता है । वापिस लौटने का कारण है जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैंडल चलाना बन्द कर दे तो पिछले वेग मे साइकिल थोडी देर बिना पैंडल चलाए आगे जा सकती है । लेकिन बहुत देर तक नही । इसी तरह जब एक व्यक्ति का जीवन कार्य पूरा हो चुका है तो उसके अनेक जीवन की वासनाओ ने जो वेग दिया है, गति दी है वह ज्यादा से ज्यादा उसे एक बार और लौटने का अवसर दे सकती है । इससे ज्यादा नहीं । जैसे पैंडल बन्द कर दिए हैं तो भी साइकिल थोडी दूर तक चलती जा सकती है लेकिन बहुत दूर तक नही । और यह भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के साथ भिन्न-भिन्न समय की अवधि होगी क्योंकि पिछले जीवन की कितनी गति और कितनी शक्ति चलाने की शेष रह गई है, यह प्रत्येक का अलग-अलग होगा । इसलिए बहुत बार ऐसा हो सकता है कि कोई करुणा से लौटना चाहे और न लौट सके ।

दूसरा प्रश्न भी विचारणीय है । क्या तीर्थंकर अपनी मर्जी से लौटते हैं ? हा, लौटते तो वे अपनी मर्जी से हैं लेकिन ऐसा जरूरी नही है कि सिर्फ मर्जी से ही लौटें । अगर थोडी शक्ति शेष रह गई है तो मर्जी सार्थक हो जाएगी । अगर शक्ति शेष नही रह गई है तो मर्जी निरर्थक हो जाएगी । उस स्थिति मे करुणा दूसरा रूप ले सकती है लेकिन लौट नही सकती है । और यह भी समझ लेना उचित है जैसा कि मैंने कहा कि साइकिल चलाते वक्त पैंडल बन्द हो जाए, जिस दिन वासना क्षीण हो गई उस दिन पैंडल चलना बन्द हो गए । लेकिन, चाक थोड़ी दूर और चल जाएंगे, अपनी ही मर्जी से । अगर

वह व्यक्ति साइकिल से नीचे उतर जाना चाहे तो उसे कोई रोकने वाला नही है। वह अपनी ही मर्जी से अब भी बैठा हुआ है। पैडल चलाना बंद कर दिया है, वासना क्षीण हो गई है। लेकिन अब भी देह के वाहन का वह उपयोग करता है थोडी दूर तक। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि अब देह के वाहन को चलाने की कोई शक्ति शेष ही न बची हो। अक्सर इसलिए ऐसा हो जाता है कि इस तरह की आत्माओ का दूसरे जन्मो का जीवन अति क्षीण होता है। शंकराचार्य जैसे व्यक्ति जो तीस-पैंतीस साल ही जी पाते हैं, इसका कोई और कारण नही है। वेग बहुत कम है। अक्सर इस तरह की आत्माओ का जीवन अत्यल्प होता है। जैसे जीसस क्राइस्ट है—अत्यल्प जीवन मालूम होता है। यह जो अत्यल्प जीवन है वह इसी कारण है। और कोई कारण नही। वेग ही इतना है। अपनी ही मर्जी से लौट सकते हैं, न लौटना चाहे तो कोई लौटाने वाला नही है। लेकिन लौटना चाहे तो अगर शक्ति शेष है तो ही लौट सकते है। फिर मैने कहा कि करुणा से कोई नही रोक सकता है। शरीर नही उपलब्ध होगा। तब दोहरी बातें हो सकती है। या तो वैसा व्यक्ति किसी दूसरे के शरीर का उपयोग करे जैसा कि मक्खली गोसाल ने किया।

यह बात भी महावीर के सन्दर्भ मे है, इसलिए समझ लेना उचित है। कहानिया कहती है—मक्खली गोसाल बहुत वर्षों तक महावीर के साथ रहा। फिर उसने साथ छोड दिया। फिर वह महावीर के विरोध मे स्वतन्त्र विचारक की हैसियत से खडा हुआ। लेकिन जब महावीर ने शिष्यो को कहा कि मक्खली गोसाल तो मेरा शिष्य रह चुका है, मेरे साथ रहा है तो उसने स्पष्ट इन्कार किया। उसने कहा वह मक्खली गोसाल जो आपके साथ था मर चुका है। यह तो मैं एक बिल्कुल ही दूसरी आत्मा हू, उसके शरीर का उपयोग कर रहा हू। मै वह व्यक्ति नही हू। साधारणतया महावीर के अनुयायी समझते रहे हैं कि यह झूठ है। पर यह झूठ नही है। यह बात बिल्कुल ही सच है। मंखली गोसाल नाम का जो व्यक्ति महावीर के साथ रहा था, वह अतिसाधारण व्यक्ति था। किन्ही कारणो से असमय मे उसकी मृत्यु हुई और उसकी देह का उपयोग दूसरी स्वतन्त्र चेतना ने किया जो तीर्थंकर की ही हैसीयत की थी। लेकिन अपना शरीर उपलब्ध करने मे असमर्थ थी तो उसने मक्खली गोसाल के शरीर का उपयोग किया। और इसीलिए इस व्यक्ति का, जो अभी नया व्यक्ति बना, पुराने शरीर मे मक्खली गोसाल के, महावीर से कोई मेल नहीं

हो सका। यह एक बिल्कुल स्वतन्त्र चेतना थी जिसका अलग अपना काम था—और अपना काम किया उसने। इसलिए मंखली गोसाल भी तीर्थंकर होने का एक दावेदार था।

उस युग मे अकेले महावीर या बुद्ध ही नही थे, मंखली गोसाल था, अजित-केश कम्पली था, संजय वेलटिपुत्र था, प्रबुद्ध कात्यायन था, पूर्ण काश्यप था—ये सबके सब तीर्थंकर की हैसियत के लोग थे। लेकिन सब अलग-अलग परम्पराओं के तीर्थंकर थे। उनमे से सिर्फ दो की परम्पराए पीछे शेष रह गई, एक महावीर की, एक बुद्ध की। बाकी सब परम्पराए खो गई। एक रास्ता तो यह है कि वैसा व्यक्ति प्रतीक्षा करे असमय मे किसी के शरीर छूट जाने की और उसमे प्रवेश कर जाए। एक यह उपाय है जिसका कई बार प्रयोग किया गया है। दूसरा उपाय यह है कि वह व्यक्ति अशरीर ही रहकर थोडे से सम्बन्ध स्थापित करे और अपनी करुणा का उपयोग करे। उसका भी उपयोग किया गया है। कुछ चेतनाओं ने अशरीर हालत से संदेश भेजे है, सम्बन्ध स्थापित किए है।

और जो कल बात छूट गई थी वह यह कि मूर्तियो का सबसे पहला प्रयोग पूजा के लिए नही किया गया है। उसका तो पूरा विज्ञान है। मूर्ति का सबसे पहला प्रयोग अशरीरी आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए किया गया है। जैसे महावीर की मूर्ति है। इस मूर्ति पर अगर कोई बहुत देर तक चित्त एकाग्र करे और फिर आख बद कर ले तो मूर्ति का निगेटिव आंख मे रह जाएगा। जैसे कि हम दरवाजे पर बहुत देर तक देखते रहे और आख बद कर ले तो दरवाजे का एक निगेटिव, जैसा कि कैमरे की फिल्म पर जाता है, आख पर रह जाएगा। उस निगेटिव पर भी अगर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो उसके बहुत गहरे परिणाम है। महावीर की मूर्ति, बुद्ध की मूर्ति का जो पहला प्रयोग है, वह उन लोगो ने किया है जो अशरीर आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। महावीर की मूर्ति पर अगर ध्यान एकाग्र किया और फिर आंख बद कर ली और निरन्तर अभ्यास से निगेटिव स्पष्ट बनने लगा तो वह जो निगेटिव है, महावीर की अशरीरी आत्मा से सम्बन्धित होने का मार्ग बन जाता है और उस द्वार से अशरीरी आत्माए भी सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। यह अनन्त काल तक हो सकता है, इसमें कोई बाधा नही है। तो मूर्ति, पूजा के लिए नही है, एक डिवाइस है, बडी गहरी डिवाइस जिसके माध्यम से, जिनके शरीर खो गए हैं और जो शरीर

ग्रहण नही कर सकते है, उनमे एक खिड़की खोली जा सकती है, उनसे एक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। फिर रास्ता यह है कि अशरीरी आत्माओ से कोई सम्बन्ध खोजा जा सके। अशरीरी आत्माएं भी सम्बन्ध खोजने की कोशिश करती है। करुणा फिर यह मार्ग ले सकती है और आज भी जगत मे ऐसी चेतनाए है जो इन मार्गों का उपयोग कर रही हैं। थियोसाफी का सारा का सारा जो विकास हुआ है वह अशरीरी आत्माओ के द्वारा भेजे गए सन्देशो पर निर्भर है। थियोसाफी का पूरा केन्द्र इस जगत मे पहली बार बहुत व्यवस्थित रूप से ब्लेवेट्सकी, अल्काट, ऐनीबेसेन्ट, लीडबीटर इन चार लोगो की पहली दफा अशरीरी आत्माओ से संदेश उपलब्ध करने की अद्भुत चेष्टा पर आधारित है। और जो संदेश उपलब्ध हुए है, वे बहुत हैरानी के है। संदेश कभी भी उपलब्ध हो सकते है। क्योंकि अशरीरी चेतना कभी भी नही खोती। लेकिन शरीरी आत्मा तब तक आसानी से उस अशरीरी चेतना से सम्बन्ध स्थापित कर लेगी जब तक करुणावश वह भी सम्बन्ध स्थापित करने को उत्सुक है। धीरे-धीरे करुणा भी क्षीण हो जाती है। करुणा अन्तिम वासना है। जब सब वासनाए क्षीण हो जाती हैं, करुणा ही सिर्फ रह जाती है। लेकिन अन्त मे करुणा भी क्षीण हो जाती है। इसलिए पुराने शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते है। करुणा भी जब क्षीण हो जाती है तब उनसे सम्बन्ध स्थापित करना अतिकठिन हो जाता है। उनकी करुणा शेष रहे तब तक सम्बन्ध स्थापित करना सरल है। क्योंकि वे भी आतुर हैं। जब उनकी करुणा क्षीण हो गई, अन्तिम वासना गिर गई तब फिर सम्बन्ध स्थापित करना निरन्तर कठिन होता चला जाता है। जैसे कुछ शिक्षको से अब सम्बन्ध स्थापित करना करीब-करीब कठिन हो गया है। महावीर से सम्बन्ध स्थापित करना अब भी सम्भव है। लेकिन उसके पहले के तेईस तीर्थंकरो मे से किसी से भी सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता और इसलिए महावीर कीमती हो गए और तेईस एकदम से गैर कीमती हो गए। इसका बुनियादी कारण यह है कि अब उन तेईस तीर्थंकरो से कोई सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता है, किसी तरह का भी।

प्रश्न इसका अर्थ यह हुआ कि ये जो मोक्ष के बारे में कहा जाता है, आत्मा चली गई है और सारे जगत मे लीन हो गई है, फिर उस आत्मा से कैसे सम्बन्ध स्थापित हो ?

उत्तर—इसको थोड़ा समझना पड़ेगा—इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। मैं

पूरी बात कह लूं फिर आप समझ जाएँगे। तेईस तीर्थंकर एकदम गैर ऐतिहासिक हो गए मालूम पड़ते हैं। उनके गैर ऐतिहासिक हो जाने का और कोई कारण नहीं है। वे बिल्कुल ऐतिहासिक व्यक्ति थे, लेकिन आध्यात्मिक लोक मे उनके अन्तिम सम्बन्ध का सूत्र भी क्षीण हो जाने के कारण अब उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता। महावीर से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और इसीलिए महावीर अन्तिम होते हुए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गए उस धारा मे। बुद्ध से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। जीसस से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। कृष्ण से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। हमे अढाई हजार वर्ष बहुत लम्बे मालूम पडते हैं क्योंकि हमारा कालमान बहुत छोटा है। शरीर से छूट जाने पर अढाई हजार वर्ष ऐसे है जैसे क्षण गुजरा हो। मुहम्मद से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

इसलिए जिन परम्पराओ के शिक्षको से अभी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, वे फैलती-फूलती है। जिन परम्पराओ के शिक्षको से अब कोई सम्बन्ध स्थापित नही हो सकता वह एकदम सूखकर नष्ट हो जाती हैं। किन्तु उनका मूल स्रोत से सम्बन्ध नही टूट जाता। और इसलिए नए शिक्षक जीतते हुए मालूम पडते हैं, पुराने शिक्षक हारते हुए मालूम पडते है। अब यह बडी हैरानी की बात है कि महावीर से पहले तेईसवे तीर्थंकर को ज्यादा वक्त नही हुआ, अढाई सौ वर्ष का ही फासला है लेकिन उस तीर्थंकर से भी सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल हो गया है। इसलिए उस तीर्थंकर के निकट जीने वालो को महावीर के पास आ जाना पडा। लेकिन एक बुनियादी विरोध भीतर छूट गया जिसने पीछे परम्पराओ को दो खंडो में तोड़ने मे हाथ बटाया। क्योंकि मूलतः जो शिक्षक पार्श्व से सम्बन्धित थे उनका प्रेम, उनका समर्पण और उनका द्वार पार्श्व के प्रति खुला था। लेकिन, चूंकि पार्श्व खो गए बहुत जल्दी और उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव न हुआ इसलिए महावीर के पास वे आए। लेकिन उनका मन, उनका धन, उनका व्यक्तित्व पार्श्व के अनुकूल था। इसलिए दो धाराए फौरन टूटनी शुरू हो गईं। वह आ गए पास लेकिन भेद रहे।

किसी ने पूछा है कि एक ही समय मे दो तीर्थंकर क्यो नही होते। एक परम्परा मे, एक ही समय मे दो तीर्थंकर नही होते। इसका कारण यह है कि अगर एक तीर्थंकर काम कर रहा है उस परम्परा का तो दूसरा तत्काल

विलीन हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नही होती। जैसे एक ही कक्षा मे, एक ही समय मे दो शिक्षको की कोई जरूरत नही होती। उससे सिर्फ बाधा ही पैदा होगी और कुछ भी न होगा। एक उपद्रव ही होगा कि एक ही कक्षा मे दो चार शिक्षक एक ही पीरियड मे उपस्थित हो जाए। उसकी वजह से सिर्फ सघर्ष फैलेगा। एक शिक्षक पर्याप्त होता है। एक शिक्षक यदि काम कर रहा है तो दूसरा शिक्षक अगर होने की स्थिति मे भी है तो भी नहो होता। उसकी कोई जरूरत नही होती। करुणा पीछे भी काम कर सकती है। और पीछे भी सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते है।

चीन के हाथ मे तिब्बत के चले जाने मे जो बडे से बडा नुकसान हुआ वह भौतिक अर्थों मे नही नापा जा सकता। सबसे बडा नुकसान यह हुआ है कि बुद्ध मे तिब्बत के लामाओं का प्रतिवर्ष एक दिन निकट सम्पर्क स्थापित होता रहा था। उस परम्परा को घात पहुच गया। प्रतिवर्ष बुद्धपूर्णिमा के दिन पाच सौ विशिष्ट भिक्षु और लामा एक विशेष पर्वत पर मानसरोवर के निकट उपस्थित होते थे। यह अत्यन्त गुप्त व्यवस्था थी। ठीक पूर्णिमा की रात, ठीक समय पर बुद्ध का साक्षात्कार पाच सौ व्यक्तियो को निरन्तर हजारो वर्षों से होता रहा। और इसलिए तिब्बत का बौद्ध भिक्षु जितना जीवन्त, जितना गहरा था उतना दुनिया का कोई बौद्ध भिक्षु नही था क्योकि और किसी के जीवित सम्पर्क नही थे बुद्ध से। एक वर्ष की शर्त पूरी होती रही थी निरन्तर बुद्ध पूर्णिमा के दिन और इन दिनो को मनाने का कारण भी यह है कि इन दिनों का सम्पर्क आसानी से स्थापित हो सकता है। वे दिन उस चेतना की स्मृति मे भी महत्त्वपूर्ण दिन है। और उन महत्त्वपूर्ण दिनो मे ज्यादा करुणा विगलित हो सकती है और वह भी आतुर हो सकती है कि किसी धारा से सम्बन्धित हो जाए। ऐसा नही कि ठीक पाच सौ भिक्षुओ के समक्ष बुद्ध अपने पूरे रूप मे ही प्रकट होते रहे। किंतु यह भी सम्भव है। क्योकि हमारा यह शरीर गिर जाता है इससे ही ऐसा मत मान लेना कि हमारे सब शरीर होने की सम्भावना मिट जाती है। सूक्ष्म शरीर कभी भी रूपाकार ले सकता है। और अगर बहुत से लोग आकाक्षा करे तो सूक्ष्म शरीर के रूपाकार लेने मे कोई कठिनाई नहीं। ऐसा होगा सूक्ष्म शरीर कि अगर तलवार उसमे से निकालो तो तलवार निकल जाएगी कुछ कटेगा नही। अत्यन्त सूक्ष्म अणुओ का बना हुआ शरीर होगा। मनो-अणुओ का ही कहना चाहिये। अब तक विज्ञान पहुंच सका है जिन अणुओ तक वे

भौतिक अणु हैं। लेकिन जिन्होंने सूक्ष्म आन्तरिक जीवन में खोज की है उन्होंने उन अणुओं की भी खबर दी है जिन्हें मनो-अणु कहना चाहिए— 'मनो अणुओं' की भी एक देह है। यह मनोकाया जैसी चीज भी है। अगर बहुत लोग आकांक्षा से और एकाग्रचित्त होकर प्रार्थना करें और करुणा शेष रह गई हो किसी चेतना मे जो शरीर नहीं पकड सकती है तो वह 'मनोदेह' में प्रकट हो सकती है।

सब मूर्तियां बहुत गहरे मे उस 'मनोदेह' को प्रकट करने की एक उपाय मात्र है। सब प्रार्थनाएं, सब आकांक्षाए उस चेतना को विगलित करने के उपाय मात्र हैं कि उससे किसी तरह का सम्बन्ध स्थापित हो सके। और यह बहुत रहस्यवादी प्रयोग की बात है। इसलिए मन्दिर, मस्जिद मे जो अब हो रहा है वह है तो सब कचरा लेकिन जो व्यवस्था है पीछे वह बडी अर्थपूर्ण है। उस अर्थपूर्ण व्यवस्था का उपयोग जो जानते हैं वे करते ही रहे हैं और आज भी करते हैं। क्षीण होती जाती है निरन्तर वह सम्भावना, यानी ख्याल ही मिटते जाते हैं कि हम क्या करें? ऐसा ही है जैसे कि समझें कि तीसरा महा-युद्ध हो जाए, दुनिया खत्म हो जाए, कुछ लोग बच जाए और हमारा यह बिजली का पखा उनको मिल जाए। तो वे अतीत मस्मरण की तरह उसे रखे रहेंगे कि पता नहीं यह किस काम का था। लेकिन यह कुछ भी समझ मे न आ सके कि यह हवा करता रहा होगा। क्योंकि न उनके पास बिजली का ज्ञान रह जाए, न उनके पास प्लग का ज्ञान रह जाए, न इस पखे की आन्तरिक व्यवस्था को समझने की उनकी अक्ल रह जाए, तो हो सकता है, वह अपने म्यूजियम मे इस पखें को रख लें, तार को रख ले, रेल के इजन को सभाल कर रख लें; हो सकता है कि पूजा भी करने लगे, अतीत के स्मृतिशेष चिह्नों के स्मरण की तरह। लेकिन यह कोई पता न होगा कि रेल का इंजन हजारो लोगो को खीच कर भी ले जाता रहा होगा क्योंकि न पटरियां बचे, न इजिनियरिंग शास्त्र बचे, न कोई खबर देने वाला बचे कि कैसे चलता होगा? कैसे क्या होता होगा? क्योंकि कोई भी व्यवस्था हजारो विशेषज्ञो पर निर्भर करती है। हो भी सकता है कि एक आदमी ऐसा बच जाए जो कहे कि मैं रेल मे बैठा था और वह इंजन रेल के डिब्बे खींचने का काम करता था। लेकिन, लोग उससे कहे कि तुम चलाकर बता दो तो वह कहे मैं सिर्फ बैठा था, मैं चलाकर नहीं बता सकता। बाकी मुझे इतना पक्का स्मरण है कि मैं इस

गाडी मे बैठा था, इसमें हजारो लोग बैठते थे और यह गाडी एक गाव से दूसरे गाव जाती थी। मगर मैं चलाकर नही बता सकता, लेकिन मैं बैठा था इतना पक्का है। और यह बैठने वाला चिल्लाता रहे और किताबे भी लिखे कि यह रेल का इजन है, इसमे लोग बैठते थे, चलाते थे लेकिन कोई उसकी सुनेगा नही क्योकि यह चला कर नही बता सकेगा। तो हर दिशा मे, बाह्य या आन्तरिक हजारो उपाय खोजे जाते है। लेकिन कभी-कभी आमूल सभ्यताए नष्ट हो जाती है, खो जाती है अन्धकार मे, अगर उनके विशेषज्ञ खो जाए। हजार कारण होते है खो जाने के। आज मन्दिर और मस्जिद बने हुए है। तन्त्र, मत्र, यत्र सब बचे हुए है बहुत, बहुत रूपो मे लेकिन कुछ उनका मतलब नही है। क्योंकि उनसे क्या हो सकता था इसका कुछ पता नही। वह कैसे हो सकता था इसका भी कुछ पता नही। और तब जैसे रेल के इजन की पूजा करे कोई आगे भविष्य मे जाकर, ऐसा हम मूर्तियो की पूजा कर रहे है। हा, कुछ लोगो की स्मृति रह गई थी कि कुछ होता था, उनके पीछेवालो को भी वह कह गए है कि कुछ होता था, वह आज भी मन्दिरो के घेरे मे उनकी सुरक्षा के लिए खड़े हुए है। क्योंकि उनके पास कुछ भी बताने को नही है कि क्या होता था, क्या हो सकता था—वह करके कुछ भी नही बता सकते।

चेतनाए जैसे ही मुक्त होती है, मुक्ति के पहले सारी वासनाए समाप्त हो जाती है। इसको थोडा ठीक से समझ लेना चाहिए। मुक्ति होती ही उस चेतना की है जिसकी सारी वासनाए समाप्त हो गई है। लेकिन अगर सारी वासनाए समाप्त हो जाए तो अमुक्त स्थिति और मुक्त स्थिति के बीच सेतु क्या होगा? दोनो को जोडता कौन होगा? वह आत्मा तो अपने को पहचान ही नही सकेगी क्योकि उसने अपने को वासना मे ही जाना था। और अगर सारी वासनाए एक क्षण मे समाप्त हो जाए और दूसरे क्षण कोई वासना न रह जाए तब वह आत्मा अपने को पहचान ही नही सकेगी कि मैं वही हू। इसलिए जब सारी वासनाए समाप्त हो जाती है तब सिर्फ सेतु की तरह एक वासना शेष रह जाती है जिसको मैं करुणा कह रहा हू, वही शेष रह जाती है। यही उसका पुराने जगत से एक मात्र सेतु होता है। अमुक्त आत्मा और मुक्त आत्मा के बीच जो एक सेतु है, वह करुणा का है। लेकिन अन्तत सेतु के पार हो जाता है सब और करुणा भी चली जाती है। तो तीर्थंकर का होना करुणा की वासना से होता है। और एक जन्म से ज्यादा असम्भव है

इस मोमन्टम मे जाना, इस गति मे जाना । इसलिए एक जन्म से ज्यादा नही हो सकता, और जैसा कि मैंने कहा है कि सभी ज्ञानियों को ऐसा हो जाता है ऐसा भी नही है । इसलिए महावीर की स्थिति मे अनेको पहुंचते है लेकिन सभी तीर्थंकर नहीं हो जाते क्योंकि मुक्ति का आकर्षण इतना तीव्र है, मुक्ति का आनन्द इतना तीव्र है कि बहुत बलशाली लोग ही वापस लौट सकते हैं, एक जन्म के लिए ही । और यह बलशाली लोग एक जन्म मे लौटकर इतना इन्तजाम कर जाते है, पूर्ण इन्तजाम कर जाते हैं, यानी उनके लौटने का प्रयोजन ही यह होता है असल मे कि यह पूरा इन्तजाम कर जाते है कि जब वह शरीर नहीं ग्रहण कर सकेंगे तब उनसे कैसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकेगा । अब इसकी बहुत गहरी व्यवस्था है ।

समझ लें कि एक पिता है, उसके छोटे-छोटे बच्चे है और वह लम्बी यात्रा पर जा रहा है, जहा से वह कभी नही लौटेगा । वह अपने बच्चो के लिए इन्तजाम कर जाता है सब तरह का । उन्हे कह जाता है कि इस पते पर चिट्ठी लिखना तो मुझे मिल जाएगी । वह घर मे अपना चित्र भी छोड जाता है कि जब तुम बडे हो जाओ तो तुम पहचानना कि मैं ऐसा था । वह उन बच्चो के लिए स्मृति भी छोड जाता है कि तुम जब बडे हो जाओ तो मै जो तुमसे कहना चाहता था, वह इसमे लिखा है, वह तुम समझ लेना । और जब भी मुझसे सम्बन्ध स्थापित करना चाहो तो यह मेरा फोन नम्बर होगा । इस विशेष फोन नम्बर पर तुम मुझसे सम्पर्क स्थापित कर सकोगे । मैं नही लौट सकूगा अब । अब लौटना असम्भव है । तो प्रत्येक करुणापूर्ण शिक्षक एक बार लौट कर सारा इन्तजाम कर जाता है कि पीछे उससे कैसे सम्बन्ध स्थापित किए जा सकेंगे । जब शरीर खो जाएगा तो उसका कोड नम्बर क्या होगा, जिस विशेष मन स्थिति मे, जिस विशेष कोड नम्बर पर उससे सम्पर्क स्थापित हो जाएगा । सारे धर्मों के विशेष मत्र कोड नम्बर हैं । जिन मन्त्रो के निरन्तर उच्चारण से ध्यानपूर्वक चित्र एक विशिष्ट ट्यूनिग को उपलब्ध होता है और उस ट्यूनिग में विशिष्ट शिक्षको से सम्बन्ध स्थापित हो सकते है । वह बिल्कुल टेलिफोनिक नम्बर है कि चित्त अगर उसी ध्वनि मे अपने को गतिमान करे तो एक विशिष्ट ट्यूनिंग को उपलब्ध हो जाता है । और वह कोड नम्बर किसी एक शिक्षक का ही है, वह दूसरे के लिए काम मे नही आ सकता । दूसरे के लिए वह उपयोगी नहीं है । इसलिए इन कोड नम्बरो को अत्यन्त गुप्त रखने की व्यवस्था की गई है ।

इसलिए चुपचाप अत्यन्त गुप्तता मे ही वे किए जाते है। सम्बन्ध स्थापित हो सके इसलिए बहुत उपाय छोड जाते हैं; चिन्ह छोड जाते है, मूर्तिया छोड जाते है, शब्द छोड जाते है, मत्र छोड जाते हैं, विशेष आकृतिया जिनको तत्र कहे वह छोड जाते है, यत्र छोड जाते है। जिन आकृतियो पर चित्त एकाग्र करने से विशिष्ट दशा उपलब्ध होगी उस दशा मे उनसे सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। लेकिन वह सब खो जाता है। और, धीरे-धीरे उनसे सम्पर्क स्थापित होना बद होता चला जाता है। जब उनसे पूरा सम्पर्क टूट जाता है तब उनके पास कोई उपाय नही रह जाता। तब वैसे शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते है, विलीन हो जाते है। ऐसे अनन्त शिक्षक मनुष्य जाति मे पैदा हुए है। सभी शिक्षकों का अपना काम था वह उन्होने पूरा किया और पूरी मेहनत भी की है।

कुछ जीवन्त परम्पराए है जिनमे कि वह चलता है। जैसे कि तिब्बत का लामा है, दलाई लामा है। बडी अद्भुत बात है लेकिन बडी कीमत की है। जब एक दलाई लामा मरता है, तो वह सब चिन्ह छोड जाता है कि मेरा अगला जन्म जो होगा उसमे तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे? वह सारे चिन्ह छोड जाता है। मेरा अगला जन्म होगा तो ये मेरे चिन्ह होग। और ये सवाल तुम मुझसे पूछना तो ये जवाब मै तुम्हे दूगा। तब तुम पक्का मान लेना कि मैं वही आदमी हू। नही तो तुम पहचानोगे कैसे, मानोगे कैसे कि मै वही हू जो पिछला दलाई लामा मरा था। जो अभी दलाई लामा है इसका पहला गुरु जब मरा यह वही आत्मा है। वह चिन्ह छोड कर गया था कि पूरे तिब्बत मे खोज बीन करना इतने वर्षो के बाद। और जो लडका इन चीजो का यह जवाब दे दे, समझना कि वह मै हू। बाते अत्यन्त गुप्त थी। वे सील बद मोहर उत्तर है उनके। वह कोई खबर किसी को नही मिल सकती। सारे तिब्बत मे खोज शुरु हुई। और सारे तिब्बत मे सैकडो, हजारो बच्चो से पूछे गए वही सवाल। लेकिन कोई बच्चा कैसे जवाब देता? इस बच्चे ने सारे जवाब दे दिए तो स्वीकृत कर लिया गया कि पुरानी आत्मा उसमे उतर आई है। तब उसको फिर गद्दी पर बिठा दिया गया। सिर्फ शरीर नया हो गया, आत्मा वही है। शिक्षक यह भी करते रहे ताकि वे अनन्त जन्मो तक निरतर उपयोगी हो सके। जब खो जाए वे जन्मो से तब भी वे उपयोगी हो सके।

एक जन्म से ज्यादा तो नही हो सकता यह। लेकिन जन्म बद हो जाने

के बाद बहुत समय तक सम्बन्ध स्थापित रह सकते है। सम्बन्ध स्थापित रहने के दो सूत्र रहेगे। उस शिक्षक की करुणा की वासना शेष रह गई हो जितनी दूर तक, और जितने दूर तक उससे सम्बन्ध होने के सूत्र साफ और स्मरण मे रह गए हो। इसीलिए जैसा मैंने कल कहा कि कई वर्षों तक तो जरूरत नही पडती है लिखने की कि क्या कहा था क्योंकि बारबार सम्बन्ध स्थापित करके जांच की जा सकती है कि यही कहा था। लेकिन जब वे सूत्र क्षीण होने लगते हैं और सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल होने लगता है तब लिखने की बारी आती है। इसलिए पुराना कोई भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सैकडो वर्षों तक नही लिखा गया। क्योंकि तब तक वे सूत्र थे जिससे कि सम्बन्ध जोड कर हम पूछ सकते थे, जान सकते थे कि यही कहा है। लिखने की कोई जरूरत न थी। लेकिन जब सम्बन्ध क्षीण होने लगे और अन्तिम शिक्षक मरने लगे जिनका सम्बन्ध हो सकता था तो फिर उनसे कहा कि अब लिख दिया जाए। अब पूरी बात लिख दी जाए जैसा कि सिखों के मामले मे हुआ। दसवे गुरु के बाद कोई व्यक्ति नजर नही आया जो कि ग्यारहवा गुरु हो सकेगा। जरूरी हुआ कि ग्रन्थ लिख दिया जाए क्योंकि अब सम्भावना नही है कि सम्पर्क हो सकेगा। बाकी दस गुरुओ की जो परम्परा है उसमे निरन्तर सम्पर्क स्थापित है। वह नानक से टूटती नही है। उसमे कोई कठिनाई नही पडती है। नानक निरन्तर उपलब्ध है; सम्बन्ध जोडा जा सकता है। गद्दी पर बिठाने की जो बात थी वह धीरे-धीरे पीछे तो बडी स्वार्थ की बात हो गई। मगर वही अर्थ की थी। बहुत अर्थ की थी। लेकिन हम सभी अर्थ की बातो को व्यर्थ कर सकते है।

अब जैसे कि शकराचार्य की गद्दी पर जो शकराचार्य बैठे हैं उन्हे कुछ भी पता नही; कुछ भी मतलब नही। अब उनका गद्दी पर बैठना बिल्कुल राजनीतिक चुनाव जैसा मामला है। लेकिन प्राथमिक रूप से शकराचार्य अपनी जगह उस आदमी को बिठाल गया है, जिससे वह सम्बन्ध स्थापित रख सकेगा। और कोई मतलब नही है उसका। अपनी जगह उस आदमी को बिठाल दिया जा रहा है जिससे कि अब वह सम्बन्ध स्थापित रख सके। मर कर भी वह मरेगा नही इस जगत मे। उसका एक सम्बन्ध सूत्र कायम रहेगा। एक व्यक्ति मौजूद रहेगा जिससे वह काम जारी रखेगा। और उस व्यक्ति को वह कह कर जाएगा, समझा कर जाएगा कि वह कैसे व्यक्ति को चुन कर बिठा जाएगा ताकि इस व्यक्ति के खो जाने पर भी

सम्बन्ध सूत्र जारी रहे। और, वह सम्बन्ध सूत्र खत्म हो गए। अब शकराचार्य से किसी शकराचार्य को कोई सम्बन्ध सूत्र नही है। सम्पर्क टूट गया है। इसलिए अब सब फिजूल बात हो गई। अब उसमे कोई मूल्य नही रह गया। अब वह मामला सिर्फ धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा का है कि कौन आदमी बैठे। तो झगडे है, अदालत मे मुकदमे भी चलते हैं, और सब निर्णय अदालत करती है कि कौन आदमी हकदार है। यह निर्णय करने की बात ही नही है। यह प्रश्न ही नही है निर्णय करने का क्योकि निर्णय कौन करेगा? यह निर्णय पुराना शिक्षक कर सकता था, पिछला शिक्षक कर सकता था और तब कई बार ऐसा हुआ है कि बिल्कुल ऐसे लोगो के हाथ मे गद्दी सौप दी गई है जिनके बाबत किसी को कोई ख्याल ही नही था।

एक शिक्षक मर रहा था चीन मे। पाच सौ उसके भिक्षु थे। उसने खबर भेजी कि जो भिक्षु चार पक्तियो मे मेरे दरवाजे पर आकर लिख जाए धर्म का सार उसको मैं अपनी गद्दी पर बिठा जाऊगा क्योकि मेरा वक्त विदा का आ गया है, अब मैं जाता हू। तो पाच सौ थे भिक्षु। बडे ज्ञानी, पण्डित थे उनमे। और सबको पता था कि कौन जीतेगा क्योकि जो सबमे बडा पण्डित था वही जीतेगा। उस पण्डित ने जाकर द्वार पर लिख दिया शिक्षक के धर्म को चार सूत्रो मे। लिख दिया कि मनुष्य की आत्मा एक दर्पण की भाति है, उस पर विकार की, विचार की धूल जम जाती है। उस धूल को पोछ डालने का जो साधन है, वह धर्म है। सारे लोग पढ़ गए और कहा कि अद्भुत है, बात तो पूरी हो गई। और तो कुछ होता ही नही आत्मा मे। सिर्फ धूल जम जाती है, उसको झाड़ देने का जो साधन है वह धर्म है। लेकिन गुरु सुबह उठा है, बूढ़ा गुरु अस्सी वर्ष का। उसने देखा। उसने कहा कि यह किस नासमझ ने दीवार खराब की है। उसको पकड कर लाया जाए इसी वक्त। तो वह पण्डित एकदम भाग गया क्योकि उसने कहा कि वह गुरु पकड लेगा फौरन क्योकि यह सब किताबो से पढ कर उसने लिखा है। सारे आश्रम मे चर्चा हुई। वह दस्तखत भी नही कर गया था उसके नीचे। इसी डर से अगर गुरु पसद करेगा तो जा कर कह दूगा मैंने लिखा है और अगर नापसंद कर देगा तो झझट के बाहर हो जाएगे। सारे आश्रम मे चर्चा चल पडी कि क्या हो गया। एक आदमी आज से कोई बारह साल पहले आया था और बारह साल पहले इस बुड्ढे के पैर को पकड कर कहा था कि सन्यासी होना है मुझे। इस बुड्ढे आदमी ने पूछा था तुझे संन्यासी दीखना

है या कि होना है। उसने कहा था कि दीख कर क्या करेंगे ? और दीखना होता तो आपसे पूछने की क्या जरूरत थी। हम दीख जाते। तो उसने कहा होना बहुत मुश्किल है। होना है तो फिर एक काम कर। आश्रम मे पाच सौ भिक्षु हैं। उनका जो चौका है, जहा चावल बनता है, खाना बनता है वहा तू चावल कूटने का काम कर और दुबारा मेरे पास मत आना, आना ही मत। जरूरत होगी तो मैं तेरे पास आऊगा। न किसी से बात करना, न कपडे बदलना, चुपचाप जैसा तू है, उस आश्रम के चौके के पीछे चावल कूटने का काम कर और दुबारा आना मत, भूल कर भी मेरे पास। जरूरत होगी तो मैं आ जाऊगा। नही होगी तो बात खत्म हो गई। वह युवक बारह साल पहले से आश्रम के पीछे जाकर चावल कूटता रहा। लोग धीरे-धीरे उसको भूल भी गए क्योकि वह और कोई काम ही नही करता था। वह आश्रम के पीछे चावल कूटता रहता था। न किसी से बोलता था। सुबह उठता था, चावल कूटता था। शाम को थक जाता था, सो जाता था। बारह साल हो गए। न कभी गुरु उसके पास गया। न कभी वह दुबारा पूछने आया। आज, सारे आश्रम मे एक ही चर्चा थी, भोजनालय मे भी भिक्षु वही चर्चा कर रहे थे। वह चावल कूट रहा था। उसके पास से दो तीन भिक्षु चर्चा करते निकले कि बडी हद कर दी गुरु ने। इतने सुन्दर वचनो को, इतने श्रेष्ठ वचनो को कह दिया कचडा है। वह चावल कूटने वाला जो बारह साल से चुपचाप चावल कूटता रहा था, लोग उसको भूल ही गए थे। उसके पास से निकलते थे तो कौन ध्यान देता था, फिर वे सब बडे भिक्षु थे, ज्ञानी थे। वह साधारण चावल कूटने वाला चावल कूटते-कूटते हसने लगा। उन भिक्षुओं ने रुक कर उसको देखा कि तुम भी हसते हो, किस बात से हसते हो ? उसने कहा कि ठीक ही गुरु ने कहा है कि क्या कचरा लिखा है। उन्होंने कहा अरे ! तू एक चावल कूटने वाला। बारह साल से सिवाय चावल के तूने कुछ और कूटा नही और तू भी वक्तव्य दे रहा है इस पर। तुझको पता है कि धर्म क्या है। उसने कहा मुझको पता तो है पर लिखना भूल गया। पता तो मुझे हो गया लेकिन लिखना भूल गया, लिखे कैसे ! और धर्म क्या लिखा जा सकता है ? इसलिए मै अपना चावल ही कूटता रहता हू। खबर तो मुझे भी मिल गई थी कि वह दरवाजे पर लिखने के लिए कहा था। लेकिन एक तो यह कि कौन गद्दी की झझट मे पडे। दूसरा यह कि लिखें कैसे। उन भिक्षुओं ने कहा—अच्छा, वह सिर्फ मजाक मे कि चलो हम लिख देंगे, तू बोल दे।

तो उसने कहा—'यह हो सकता है। धर्म के साथ अक्सर यह हुआ है। बोला किसी ने, लिखा किसी ने। यह हो सकता है क्योंकि हम जिम्मेदार न रहे। इससे कोई न कह सकेगा कि तुमने लिखा। हम सिर्फ बोले। चल कर उसने कहा, मै बोल देता हू। उसने बोल दिया और उन भिक्षुओ ने दीवाल पर लिख दिया। वे जो चार पक्तिया लिखी काट दी थी गुरु ने। उनकी बगल मे उसने दूसरी चार पक्तिया लिखी। उसने कहा 'कौन कहता है कि आत्मा दर्पण की भाति है। जो दर्पण की भाति है उस पर तो धूल जम ही जाएगी। आत्मा का कोई दर्पण ही नही है, धूल जमेगी कहा ?' जो इस सत्य को जान लेता है, वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है।

गुरु भागा हुआ आया और उसको पकड लिया और कहा कि "तू भाग मत जाना क्योंकि ऐसे लोग निकल कर भाग जाते है। तूने ठीक बात लिख दी है।" उसने कहा कि लेकिन मुझसे गल्ती हो गई। मैं अपना चावल ही कूटना चाहता हू। मैं किसी का गुरु वगैरह नही होना चाहता। लेकिन उससे गुरु ने कहा कि तेरे बिना कोई चारा नही। तुझसे मेरा सम्बन्ध हो सकेगा पीछे भी। उसको अपनी गद्दी पर बिठाया और उसने कहा मैं जानता था अगर कोई लिख सकेगा तो वह चावल कूटने वाला, जो बारह साल से लौटा नही, चावल ही कूट रहा है। और, जिसने शिकायत भी नही की एक बार कि गुरु अब तक नही आया, अब मर जाएगे तब आएगा। मै जानता था कि उसको मिल ही गया है, इसलिए नही लौटा। उसने कहा कि सब मिल गया था इसलिए आपके आने की प्रतीक्षा न थी, आने की जरूरत भी न थी क्योंकि चावल कूटना रहा, कूटता रहा। कुछ दिन तक विचार चले पुराने क्योंकि नए विचारो का कोई उपाय ही न था। न किसी म बात करना, न कुछ पढना। चावल ही कूटना। और चावल कूटने मे विचार कही पैदा होते है ? धीरे-धीरे सब विचार मर गए। चावल कूटना ही रह गया। जब सब विचार मर गए और सिर्फ चावल कूटना रह गया तो मै इतनी तेजी से जागा जिसका कोई हिसाब नही। सारी चेतना मुक्त हो गई।

यह जो खो गया शिक्षक है, वह करुणावश कुछ रास्ते ऐसे छोड जाता हे पीछे। लेकिन सभी चीजे क्षीण हो जाती हैं। सभी सम्पर्क सूत्र शिथिल पड जाते है और खो जाते है।

प्रश्न : आपने जो बातें कहीं, उनमे से कुछ विचित्र भी लगीं। आपने उपवास की जो तुलना की—भोजन कर लिया पर भोजन न करने के

समान; विवाह कर लिया पर विवाह न करने के समान—इतने तक समझ में आया। पर सन्तान उत्पन्न कर दी और सन्तान उत्पत्ति न करने के समान, मैथुन किया पर न करने के समान—यह प्रक्रिया तो ऐसी नजर आती है कि बिना वासना और तृष्णा के हो ही न पाए।

उत्तर : अगर भोजन की बात समझ मे आती है तो मैथुन की क्यो नही ? यदि भोजन द्रष्टा ज्ञाता के रूप मे किया जा सकता है तो मैथुन क्यो नही ? अगर किसी भी क्रिया को करते समय पीछे साक्षी खडा है और देख रहा है तो कोई भी क्रिया बन्धनकारी नही होती। भोजन करते समय अगर साक्षी पीछे देख रहा है कि भोजन किया जा रहा है और मैं अलग खडा हू तो भोजन सिर्फ शरीर मे जा रहा है। पीछे अछूता कोई खडा है जिसको कुछ भी नही छू सकता, जो सिर्फ देख रहा है, जो सिर्फ द्रष्टा है भोजन किए जाने का। अब ध्यान रखिए भोजन शरीर मे जा रहा है और मैथुन में शरीर से कुछ बाहर जा रहा है। उसका भी साक्षी हुआ जा सकता है। साक्षी तो किसी भी क्रिया का हुआ जा सकता है, चाहे वह अन्तर्गामी हो चाहे वहिर्गामी। असल मे जो भोजन शरीर मे जा रहा है, वही मैथुन मे शरीर मे बाहर जा रहा है। भोजन मे क्या जा रहा है भीतर ? उसी का सारभूत फिर मैथुन मे बाहर जा रहा है। लेकिन यह जा रहा है शरीर मे, वह आ रहा है शरीर मे। अगर चेतना साक्षी हो सके तो बात समाप्त हो गई है। तब नदी से गुजर सकते हो ऐसे कि पाव न भीगें। नदी से गुजरोगे तो पाव भीग ही जाएगे। लेकिन बिल्कुल ऐसे जैसे पाव न भीगे अगर पीछे कोई साक्षी रह गया है तो बात खत्म हो गई है। गहरे मे प्रश्न साक्षिभाव का है। सिर्फ और कुछ नही। फिर कौन सी क्रिया है, इससे कोई सम्बन्ध नही। जैसे ही क्रिया के साक्षी हुए कर्ता मिट गया। कर्ता मिटा कि कर्म मिट गया। क्रिया रह गई सिर्फ। अब यह क्रिया हजारो कारणो से उद्भूत हो सकती है। वह जो तुम कहते हो सन्तति है उसके पैदा करने मे कोई वासना न हो। सच तो यह है कि जब ऐसी सन्तति पैदा हो जिसमे कोई वासना न हो तब केवल शरीर एक उपकरण बना है एक क्रिया का। इससे ज्यादा कुछ भी नही हुआ है। चेतना उपकरण नही बन सकती। लेकिन साधारणत आदमी मैथुन मे बिल्कुल खो जाता है। होश रह ही नही पाता। बेहोश हो जाता है। तब केवल शरीर ही उपकरण नही बनता, भीतर आत्मा सो गई होती है, मूर्च्छित हो गई होती है। और मैथुन का जो विरोध है वह केवल

इसीलिए है कि आत्मा की मूर्च्छा सर्वाधिक मैथुन मे होती है। अगर वहा आत्मा अमूर्च्छित रह जाए तो बात खत्म हो गई। कोई बात न रही। और प्रश्न भोजन का नही। वह भी एक क्रिया है। किसी भी क्रिया मे, जैसे अभी तुम मुझे सुन रहे हो, सुनना भी एक क्रिया है, अगर तुम साक्षी हो जाओ तो तुम पाओगे कि सुना भी जा रहा है और तुम दूर खडे होकर सुनने को देख भी रहे हो।

जैसे मै बोल रहा हू और मै साक्षी हू। मैं बोल भी रहा हू और पूरे वक्त मै जानता हू कि मेरे भीतर अबोला भी कोई खडा हुआ है। और असल मे जो अबोला खडा है वही मैं हू। जो बोला जा रहा है, वह उपकरण है वह साधन है। वह मैं नही हू। चल रहे हो रास्ते पर और अगर जाग जाओ तो तुम पाओगे कि चल भी रहे हो, कुछ भीतर अचल भी खडा है जो नही चल रहा है, जो कभी चला ही नहीं, जो चल ही नही सकता है। और अगर चलने की क्रिया मे तुम पूरे जाग गए हो तो तुम पाते हो कि चलने की क्रिया हो रही है और भीतर कोई अचल भी खडा है। और इस अचल का बोध हो जाए तो तुम किसी दिन कह सकते हो कि मै कभी चला ही नही। और हजारो लोगो ने तुम्हे चलते देखा होगा और रिकार्ड होगे तुम्हारे चलने के और फोटोग्राफ होगे तुम्हारे चलने के कि तुम चले थे, यह रहा फोटोग्राफ, और अदालत निर्णय देगी कि हा तुम चले थे। लेकिन, इसमे कोई फर्क नही पडता। तुम कहोगे कि वह सिर्फ दिखाई पडा था तुम्हे कि हम चल थे। लेकिन भीतर मे अचल था। कोई नही चला था। कौन सी क्रिया है यह सवाल नही है महत्त्वपूर्ण। यदि क्रिया के भीतर तुम जागे हुए हो तो तुम क्रिया से भिन्न हो गए। और तब क्रिया जगत के इस जाल का एक हिस्सा हो गई। जैसे स्वास चल रही है और अगर तुम देख रहे हो तो स्वास का चलना या न चलना जगत की विराट व्यवस्था का हिस्सा हो गया और तुम बिल्कुल बाहर होकर देखने लगे कि स्वास चल रही है। जैसे तुमने सूरज को उगते डूबते देखा। सूरज दूर है। फर्क इतना ही है स्वास जरा पास चलती है। एक पक्षी मैथुन कर रहा है। वह देह तुमसे थोडी दूर है। लेकिन उसको मैथुन करते देखकर यह तो नही कहते कि मै मैथुन कर रहा हू। तुम कहते हो मै देख रहा हू। पक्षी मैथुन करता है। तुम बाहर हो गए। एक तल पर जिस दिन चेतना सम्पूर्ण रूप से साक्षी हो जाती है, यह शरीर दूर खडे पक्षी से ज्यादा अर्थ का नही रह जाता। उतना ही फासला हो जाता है।

और तुम कह सकते हो—शरीर से हो रहा है। समझना कठिन मालूम पड़ता है हमें। कठिन इसलिए कि हम मैथुन में निरन्तर मूर्च्छित हुए हैं, भोजन में मूर्च्छित हुए हैं, सब चीजों में मूर्च्छित हुए हैं।

गुरजियफ एक फकीर था। उसका काम था कि लोग उसके पास आए। बहुत अद्भुत था वह व्यक्ति। इसी सदी में थोड़े से जानने वाले दो चार लोग जो हैं, उनमें से एक आदमी था वह। लोगों को ऐसी चीजें सिखाता कि तुम सोच ही नहीं सकते। लोगों से कहता तुम क्रोध करो। वह ऐसा अवसर पैदा कर देता कि उनको क्रोध आजाए। जैसे कि आप आए हों तो वह ऐसे उपद्रव खड़े करवा देगा आपके चारों तरफ कि आप क्रोधित हो जाओ और आप चिल्लाने लगो, आग-बबूला हो जाओ, सारा इन्तजाम होगा कि आपको आग बबूला किया जाए। और फिर वह एकदम से कहेगा—देखो, क्या हो रहा है और तुम चौंक गए हो। आखें लाल हैं, हाथ काप रहे हैं। और तुम हसने लगे हो। तुम्हारा हाथ अब भी काप रहा है और आखे लाल है। तुम्हारे होठ फड़क रहे है, तुम्हारा मन किसी की गर्दन दबा देने को है। और उसने कहा कि देखो। और तुम्हे याद आ गया कि उसने क्रोध का इन्तजाम करवाया था पूरा का पूरा। अब तुम ने देखा और तुम एक क्षण मे अलग हो गए, क्रोध अलग हो गया और तुम एक क्षण मे अलग खड़े हो गए। तब सब शान्त हो गया है भीतर। मगर शरीर अब भी काप रहा है। जैसे कभी तुमने देखा हो, रात सपना देखा हो, डर गए हो, नीद खुल गई, और सपना टूट गया और अब तुम जानते हो, अब तुम हसते हो कि वह सपना था। फिर भी हाथ काप रहे है, फिर भी स्वास धड़क रही है और अभी डर मौजूद है। और तुम जानते हो कि अब तुम जग गए हो और वह सपना था सिर्फ। लेकिन सपने का प्रभाव इतनी जल्दी थोड़े ही चला जाएगा। शरीर को वक्त लगेगा शात होने में। वह सब तरह के उपाय करता और लोगों को उन उपायों के बीच में कहना कि जागो! और अगर उस वक्त सुनाई पड़ जाए बात तो अभी आदमी जाग जाए।

तन्त्र ने इसके उपाय किए बहुत। नग्न स्त्री को सामने बिठाया हुआ है। साधक उसको देख रहा है और खोता चला जा रहा है। आखो मे उसके सम्मोहन आता चला जा रहा है, वह भूला चला जाता है, कभी कोई चिल्लाता है कि जागो और वह एक क्षण मे जाग कर देखता है और सब शिथिल हो गया। नग्न स्त्री सामने रहती है चित्रवत्। उसका कापता हुआ

मन और शरीर रह गया है। दूर और भीतर कोई जाग गया है और देख रहा है। वह हंसता है कि क्या पागलपन था ? वह सारी व्यवस्था किसी भी क्षण जागने मे उपयोगी हो सकती है। ऐसी कोई क्रिया नही है जिसमे न जागा जा सके। हा मैथुन सर्वाधिक कठिन है। उसका कारण है कि मैथुन ऐसी क्रिया है जो मनुष्य के ऊपर प्रकृति ने नही छोडी। अगर छोड दी जाए तो शायद कोई पुरुष, कोई स्त्री कभी मैथुन करने को राजी न हो। अगर मनुष्य पर छोड दी जाए तो कोई कभी ही न हो क्योकि ऐसी एब्सर्ड, ऐसी व्यर्थ, ऐसी बेमानी क्रिया है। तो प्रकृति ने उसके लिए बहुत गहरी हिपनोसिस डाली है भीतर। इतना गहरा सम्मोहन और इतनी गहरी मूर्च्छा डाली है कि उसी प्रभाव मे ही कोई कर सकता है, नही तो कर नही सकता। मुश्किल पड जाए। वह मूर्च्छा बहुत गहरी है।

मै इस पर बहुत प्रयोग करता रहा और बडे हैरानी के अनुभव हुए। एक युवक मेरे पास था जिससे मैन वर्षों सम्मोहन के प्रयोग किए। उसको मैने सम्मोहित करके बेहोश किया है। पास मे एक तकिया पडा है। और उससे मै बेहोशी मे कहता हू कि उठने के पन्द्रह मिनट बाद तू इस तकिए को चूमना चाहेगा। कोई उपाय नही कि तू इसको चूमने से रुक जाए। तुझे इसे चूमना ही पडेगा। अब उसे होश वापस लौटा दिया है। वह होश मे आ गया है। अब वह बैठा है। और सब लोगो को पता है। पन्द्रह लोग वहा बैठे है, सबको पता है। अब वह लडका बार-बार चोरी से उस तकिए को देखता है जैसे कोई किसी स्त्री को देखता है। अब वे पन्द्रह लोग जाकर उसको देख रहे है कि क्या मामला है? वह कभी मौका मिल जाए तो चुपचाप उसे छू लेता है। उसके मन मे इतनी गहरी हिपनोसिस, सम्मोहन है कि तकिए ने एक कामुकता का अर्थ ले लिया है। वह खुद भी सकोच कर रहा है कि यह क्या पागलपन है कि वह तकिए को देखे। लेकिन अब उसका भीतर पूरा मन तकिए की तरफ डोला चला जा रहा है। अब तकिया यहा रखा है और वह वहा बैठा है। वह किसी भी बहाने यहा पास आकर बैठ गया है। बहाना बिल्कुल दूसरा है। क्योकि तकिए के पास आकर बैठने के लिए वह कैसे कह सकता है ? वह कहता है कि मुझे वहा से सुनाई पडता तो मैं ठीक से आपके पास आकर बैठ जाता। मैंने तकिया उठा कर इस तरफ रख लिया है वह इधर तकिए के पास आकर बैठ गया है। अब वह बड़ा बेचैन है। वह कहता है कि अब वहा जरा दीवार से टिक कर बैठना मुझे ठीक

होगा। वह आकर दीवार से टिक कर बैठ गया है। वह तकिए की तलाश में है। मैंने तकिया उठा कर अलमारी में बंद कर दिया है। पन्द्रह मिनट अब पूरे हुए जाते है और वह बेचैन है, बिल्कुल तड़फ रहा है। और कहना है चाबी दीजिए उस अलमारी मे मेरा फाउन्टेनपेन रखा हुआ है। तकिए के लिए अब वह कैसे कहे ? वह खुद भी नहीं सोच पा रहा है कि तकिए के लिए मैं कैसे कहूं। हम सब बैठे हैं। उसको चाबी दे दी गई है। उसने जाकर ताला खोला है। वह सब तरफ देख रहा है। फाउन्टेनपेन उठाता है और झुक कर तकिए को चूम लेता है। और एकदम मुक्त हो जाता है। अब उससे पूछते है तुम यह क्या करते हो। वह एकदम रोने लगता है और कहता है कि मेरी समझ के बाहर है कि मैं क्या कर रहा हू लेकिन वह परेशान है। उस तकिए मे मेरा क्या हो गया है। लेकिन मैं उसको चूम कर बड़ा हल्का हो गया हूं। तकिए के प्रति एक यह हालत पैदा की जा सकती है। किसी भी चीज के प्रति हिपनोसिस की जा सकती है।

प्रकृति ने मैथुन के साथ एक हिपनोसिस डाली हुई है, एक सम्मोहन डाला हुआ है उसी सम्मोहन के प्रभाव मे सारा खेल चलता है। इसलिए आदमी बिल्कुल अपने को विवश पाता है। जब एक सुन्दर चेहरा उसे खींचता है तो वह अपनी सामर्थ्य में, होश मे नही है, बिल्कुल बेहोश है। इस सम्मोहन (हिपनोसिस) को तोड़ा जाए और इसको तोड़ने की विधियां है। और सबसे बड़ी विधि साक्षी होना है तो सम्मोहन एकदम टूट जाता है, कट जाता है। अगर सम्मोहन कट जाता है तो महावीर जैसे व्यक्ति को स्त्री में कोई आकर्षण नही है, कोई अर्थ नही है लेकिन स्त्री को हो सकता है अर्थ और आकर्षण। महावीर को पिता बनने मे कोई अर्थ और आकर्षण नही लेकिन स्त्री को हो सकता है अर्थ और आकर्षण। और महावीर बिल्कुल —निरपेक्ष द्रष्टा (पैसिव आनलुकर) की तरह हैं। मैथुन से भी गुजर सकते हैं। इसमे कोई कठिनाई नहीं। एक दफा सम्मोहन (हिपनोसिस) टूट जाए बस तब किसी भी क्रिया से आदमी देखता हुआ गुजर सकता है। और जिस दिन मैथुन से कोई देखता हुआ गुजर जाता है, उसी दिन मैथुन से मुक्त हो जाता है। फिर मैथुन मे कोई मतलब न रहा क्योंकि हिपनोसिस पूरी तरह टूट गई है। लेकिन ऐसा व्यक्ति इन्कार करने का भी कोई कारण नही मानता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति को इन्कार करने में भी कोई अर्थ नही है। जैसे कि उस युवक से कहो कि तुम तकिए को चूमना चाहते

हो तो वह कहेगा—नहीं । "मैं नहीं चूमना चाहता।" क्योंकि अब शर्म मालूम पड़ती है कि तकिए को चूमूं। वह इन्कार करेगा। हो सकता है वह कसम खा ले भगवान की कि मैं तकिए को कभी नहीं चूमूंगा। लेकिन, तकिए के प्रति उसका पागलपन जारी है। इस कसम में भी वह छिपा है। इसलिए ब्रह्मचर्य काम से छूट जाना नहीं है, काम से जाग जाना है। तब हम कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी ब्रह्मचारी कहते हैं—"ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है वह और अद्भुत है वह" । प्रकृति ने, सन्तति जारी रहे इसलिए, बहुत गहरी मूर्च्छा डाली है। लगता हमें कठिन है लेकिन कुछ भी कठिन नहीं है, साक्षी के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। इसलिए मैंने ऐसा कहा कि महावीर की पत्नी है लेकिन वे अविवाहित हैं। महावीर को पुत्री हुई है लेकिन वे निसन्तान हैं। हमें ये दोनों बातें बड़ी सरलता से समझ में आ जाती हैं। स्त्री से भागता हुआ आदमी भी समझ में आ जाता है; स्त्री की तरफ भागता हुआ आदमी भी समझ में आ जाता है। स्त्री की तरफ मुंह किये समझ में आ जाता है ? स्त्री की तरफ पीठ किये समझ में आ जाता है।

कृष्ण और गोपियों को देखें। कृष्ण की उपलब्धि बहुत अद्भुत है। कितनी हजार स्त्रियां उसे घेरे हुए हैं। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह एक लीला है, एक खेल है और कृष्ण पूरे वक्त जागा हुआ है। उसमें कोई मतलब नहीं है। जीवन में जीना है तो दो रास्ते हैं। सोकर जियो, तो भोजन भी सोकर करोगे तुम नींद में। कपड़े भी सोए हुए पहनोगे, प्रेम भी सोए हुए करोगे, सेक्स में से भी सोए हुए गुजरोगे। दूसरा एक रास्ता है—जागे हुए। प्रत्येक क्रिया जागे हुए करो। सेक्स सर्वाधिक गहरी क्रिया है क्योंकि बाइ-लोजी जीवविज्ञान और पूरी प्रकृति उसमें उत्सुक है। लेकिन ऐसा व्यक्ति जिसके लिए स्त्री ही मिट गई है, चुपचाप खड़ा आदमी, हमें समझ में बहुत मुश्किल से आता है। न, भागता है, न उत्सुक है, न स्त्री के प्रति उन्मुख है, न स्त्री से विमुख है। न राग में है, न विराग में है इसलिए महावीर के लिए जो शब्द इस्तेमाल हुआ है वीतराग, बड़ा अद्भुत है। वीतराग का मतलब है—राग से मुक्त। और राग न विराग है न राग। राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हो सकता है कि एक व्यक्ति राग की दुश्मनी में विरागी हो जाए, विराग की दुश्मनी में रागी हो जाए। लेकिन वीतरागी का मतलब है जिसका राग-विराग गया, जो सहज खड़ा रह गया, न भागता है, न आता है, न बुलाता है, न भयभीत है। वीतराग

का मतलब ही यह है कि जहा न राग है, न विराग है; और महावीर के पीछे चलने वाला जो साधक है वह राग से विराग को पकडता है। राग को बदलता है विराग मे। विरागी सिर्फ उल्टा रागी है—शीर्षासन करता हुआ रागी। सिर्फ सिर के बल पर खडा हो गया है। रागी कहता है—स्पर्श करूगा, प्रेम करूगा, जिऊगा। विरागी कहता है—स्पर्श नही करूगा, प्रेम नही करूगा, जिऊगा भी नही। भय है, खतरा है बध जाने का। एक बधने को आतुर है, एक बधने से भयभीत है। लेकिन, बधन दोनों के केन्द्र मे है। दोनो की नजरो में बधन है। इसलिए, रागी विरागी की पूजा करने निकल जाएगे। वीतरागी को पहचानना बहुत मुश्किल है। क्योकि, वीतरागी जो हमारी कैटेगरीज हैं—नाप जोख हैं—उनके बाहर पड़ जाता है एकदम। तराजू के इस पल्लू पर रखो तब भी तोल हो जाती है, तराजू के उस पल्ले पर रखो तब भी तोल हो जाती है। तराजू से उतर जाओ तो तोल कहा? राग एक पलडा है, विराग दूसरा पलडा है। दोनो पर तोल हो सकती है। लेकिन वीतराग की तोल क्या होगी? वीतराग को कैसे तोलोगे? महावीर को सताए जाने का जो लम्बा उपक्रम है उस मे वीतरागता कारण है? विरागी को इस मुल्क ने कभी नही सताया, यह ध्यान मे रहे। महावीर के जमाने मे कोई विरागियो की कमी नही रही। विरागी का सदा आदर रहा है। विरागी को कभी नही सताया किसी ने क्योकि रागी विरागी को कभी सता ही नही सकते—रागी सदा विरागी को पूजते हैं क्योकि रागी को लगता है कि मैं कैसी गदगी में उलझा हू लेकिन विरागी कैसा मुक्त हो गया है सारी गदगी से। लेकिन वीतरागी को दोनो सताते हैं—रागी भी और विरागी भी, क्योकि रागी को लगता है कि यह आदमी कैसा है? विरागी को लगता है कि यह सब तोडे जा रहा है, सब नष्ट किए जा रहा है। महावीर को दो तरह के दुश्मन सता रहे हैं। एक जो रागी हैं, सता रहे हैं, पत्थर मार रहे है। वे कह रहे हैं यह आदमी विरागी ही नही है। एक विरागी भी सता रहा है। वह कह रहा है यह आदमी कैसा विरागी है। वीतरागी को पहचानना ही मुश्किल है। द्वन्द्व को हम पहचान सकते हैं, निर्द्वन्द्व को नही। द्वैत को हम पहचान सकते हैं, अद्वैत को नहीं। और महावीर की पूरी वृत्ति वीतराग की है, पूरा भाव वीतराग का है। और प्रत्येक स्थिति मे, क्योंकि वीतरागी के लिए स्थिति का सवाल नहीं है। स्थिति को रागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए और विरागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए। रागी कहता है—स्त्री हो,

धन हो, पैसा हो, यह सब होना चाहिए। इसके बिना मैं जी नही सकता। विरागी कहता है—स्त्री न हो, धन न हो, पैसा न हो, इसके साथ मैं जी नही सकता। यानी जीने की दोनो की कन्डीशन है, शर्त है। एक की शर्त ऐसी है, एक की शर्त वैसी है। लेकिन दोनो का जीना कन्डीशनल है, बाशर्त है। वीतरागी कहता है—जो हो सो हो ! उसे कुछ लेना-देना नही है। वह अछूता खडा है।

जो आदमी अछूता होगा वह बेशर्त होगा और बेशर्त आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए महावीर का जमाना महावीर को बिल्कुल नही पहचान पाया। बहुत मुश्किल था पहचानना। निरन्तर यातना दी जा रही है, निरन्तर सताया जा रहा है। उस आदमी को हम सतायेंगे ही जो हमारे सब मापदण्डो से अलग खडा हो जाए, जिससे हम तोल न कर सके, लेबिल न लगा सके कि यह है कौन ! लेबिल लगा देने से हमें सुविधा हो जाती है। एक लेबिल लगा दिया है कि यह आदमी फलां है। फिर हम लेबिल के साथ व्यवहार करते है, आदमी के साथ नही। पक्का पता लगा लिया कि यह आदमी सन्यासी है, लिख दिया सन्यासी है। फिर सन्यासी के साथ जो करना है, वह हम इसके साथ करते है। लिख दिया रागी है तो जो रागी के साथ करना है, वह हम इसके साथ करते हैं। लेकिन एक आदमी ऐसा है जिस पर लेबिल लगाना मुश्किल है कि यह कौन है। महावीर वर्षों तक इस हालत में घूमे है कि लोग पूछ रहे हैं कि यह है कौन, यह आदमी कैसा है और महावीर कोई उत्तर नही दे रहे हैं। महावीर मौन है। क्योकि है कौन, इसका क्या उत्तर देना ? कोई लेबिल होता तो उत्तर दे देते। महावीर निरन्तर मौन है। लोग जो कहते है वह चुपचाप खडे है, सब सह लेते हैं। गाव के पास खडे है। गाय चराने वाला अपनी गाय और बैल को उनके पास छोड जाता है और कहता है—जरा देखना, मैं अभी लौट कर आता हू। मेरी कोई गाय खो गई है। वह यह भी नही कहते कि मैं नही देखूगा। इतना कह दें तो मामला खत्म हो जाए। वह यह भी नही कहते कि मै देखूगा। इतना कह दें तो बात खत्म हो जाए। वह आदमी एक लेबिल लगा ले, झझट के बाहर हो जाए। महावीर खड़े रहते है जैसे कि सुना अनसुना किया, जैसे प्रश्न पूछा नही गया। ऐसे खड़े रहते हैं। वह आदमी चला गया है खोजने। वह शाम होते-होते खोजकर लौट आता है। गाय, और बैल जो पीछे महावीर के पास छोड गया था, उठ कर जंगल में चले

गए हैं। उस आदमी ने पूछा कि गाय-बैल कहां हैं? तब भी वह वैसे ही खड़े हैं क्योंकि आने-जाने का हिसाब ही नही रखते वह कुछ। वह वैसे ही खडे हैं। वह कहता है कि तुमने उसी वक्त क्यों नहीं कह दिया था तब भी वह वैसे ही खडे हैं। तब वह आदमी समझता है कि इसने चुरा लिये हैं, इसने कही छुपा दिए हैं। यह आदमी बेईमान है। वह मारपीट करता है। वह मारपीट को भी सह रहे हैं फिर भी वैसे खडे हैं। लेकिन थोडी देर मे वह गाय बैल लौट आए हैं जगल के बाहर। सांझ होने लगी है; धूप दब गई तो वापस लौट पड़े। वह आदमी बहुत दुखी होता है। वह क्षमा मांगता है। तब भी वह वैसे ही खडे हैं। यह आदमी कोई शर्त मे नही, कोई लेबिल में नही; जो हो रहा है, उसमे वैसा ही खडा है, अजेय है। अद्भुत घटना है। जो भी हो रहा है, कुछ भी हो रहा है जैसे इसे मतलब ही नही कि क्या हो रहा है। यह हर हालत में वैसा ही खड़ा है और सब चीजो को देख रहा है। इस व्यक्ति को समझने मे बडी कठिनाई है।

पीछे, जिन्होंने शास्त्र लिखे, उन्होंने कहा ' महावीर बडे क्षमावान हैं; उन्होंने क्षमा कर दिया है। कोई मारता है तो उसे क्षमा कर देते हैं। मगर समझ ही नही पाए लोग। क्षमा वही करता है जो क्रोधित होता है। क्षमा, क्रोध के बाद का हिस्सा है। जो महावीर को क्षमावान कहता है वह महावीर को समझता ही नही। महावीर को क्रोध ही नही उठता, क्षमा कौन करेगा, किसको करेगा ? महावीर देख रहे हैं। वे ऐसा ही देख रहे हैं कि इस आदमी ने ऐसा-ऐसा किया है। पहले मारा, फिर क्षमा मांगी। देख रहे हैं, ऐसा-ऐसा हुआ। और खडे हैं चुपचाप और सब देख रहे हैं। उसमे कोई चुनाव भी नही कर रहे हैं कि ऐसा होना था और ऐसा नही होना था। ऐसे निरन्तर कि वह राग और विराग के बाहर हो गए हैं, चुनाव के बाहर हो गए हैं, अच्छे-बुरे के बाहर हो गए हैं, कौन क्या कहता है, इसके बाहर हो गए हैं। यह वीत-रागता परम उपलब्धि है जो जीवन में सम्भव है। जीवन की यात्रा मे जो परम बिन्दु है वह वीतरागता है। वह जीवन का अन्तिम बिन्दु है क्योंकि उसके बाद फिर मुक्ति की यात्रा शुरू हो जाती है। वीतराग हुए बिना कोई मुक्त नहीं होता। रागी मुक्त नही हो सकता। विरागी मुक्त नहीं हो सकता। दोनों बंधे हैं। लेकिन हम जो समझते नही है, वीतराग का मतलब विरागी कहते हैं जो कि राग से छूट गया है। नही, विराग राग ही है, सिर्फ उल्टा राग है जो राग से छूट गया है।

राग शब्द बडा अच्छा है। राग का मतलब होता है रंग। विराग का मतलब होता है उससे उल्टा। हमारी आखें हमेशा रगी हैं, कुछ रंग है आख पर। उस रंग से ही हम देखते हैं। चीजे हमे वैसी दिखाई पडती हैं, जो हमारा रग होता है आख का। चीजे वैसी नही दिखाई पडती जैसी वे हैं। रगी आख कभी सत्य को नही देख सकती है। अब एक रागी है। उसे राह से एक स्त्री जाती दिखाई पडती है तो लगता है स्वर्ग है। स्त्री सिर्फ स्त्री है। रागी को लगता है स्वर्ग है। विरागी बैठा है वही पर। उसको लगता है नरक जा रहा है, आख बन्द करो। स्त्री सिर्फ स्त्री है। विरागी को दिखता है नरक जा रहा है। आख बद करो। इसलिए लिखता है अपनी किताबो मे—स्त्री नरक का द्वार है, और रागी लिखता है कि स्त्री स्वर्ग है, वही मुक्ति है, वही आनन्द है। स्त्रिया सोचेगी कि यह ऐसे ही लिख रखे है। रागी स्त्री को स्वर्ग बना लेता है, एक रग है उसकी आख पर। विरागी स्त्री को नरक बना लेता है, एक रग है उसकी आंख पर। वीतरागी खडा रह जाता है। स्त्री—स्त्री है। वह अपने रास्ते जाती है, मैं अपनी जगह खडा हू। न वह स्वर्ग है, न वह नरक है। वह उसके बाबत कोई निष्कर्ष नही लेता क्योकि उसकी आखो मे कोई रग नही है, रगमुक्त है वह। इसलिए जो-जो जैसा-जैसा है, वैसा-वैसा उसे दिखाई पडता है। बात खत्म हो जाती है। वह कुछ भी अपनी तरफ से नही डालता। न वह कहता है सुन्दर किसी को, न वह कहता है असुन्दर। क्योकि सुन्दर और असुन्दर हमारे रग है, जो हम थोपते है। चीजे सिर्फ चीजे है। न तो कुछ सुन्दर है, न कुछ असुन्दर है। हमारा भाव है जो हम उनमे डाल देते है।

अब जैसे देखिए कि आज सुशिक्षित और सुरुचिपूर्ण घर मे कैक्टस लगा हुआ है। हा, काटे वाले पौधे है, मरुस्थल मे उगने वाले। गाव के बाहर लगते थे धतूरा, नागफनी। वे आज के घर के बैठक खाने मे लगे हुए हैं। आज से सौ साल पहले अगर उन्हे कोई बैठक खाने मे ले आता तो उस आदमी को हम पागलखाने ले गए होते कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। क्या नागफनी घर मे लगाने की चीज है ? लेकिन गुलाब एकदम बहिष्कृत हो गया है। नागफनी आ गई है उसकी जगह। सुशिक्षित आदमी के घर मे नागफनी लगी हुई है, क्या हो गया ? नागफनी एकदम सुन्दर हो गई। जो कभी सुन्दर न थी, जो कुरूपता का साकार रूप थी सदा; वह आजकल एकदम सौन्दर्य की अनुभूति बन गई। क्या हो गया ? रग बदल गए; एकदम रग बदल गए।

और हर बार हम रग से ऊब जाते है तो बदल देते है क्योकि एक ही रंग को देखते-देखते ऊब हो जाती है। गुलाब को हजार साल तक सुन्दर-सुन्दर कहते हुए ऊब हो गई। तो छोडो। इसको बाहर करो। इसको घर से बाहर करो। ब्राह्मण को आदर देते बहुत ऊब हो गई तो अब शूद्र को बिठाओ। नागफनी शूद्र थी बहुत दिनो तक, अब एकदम ब्राह्मण हो गई। नागफनी गाव के बाहर रहती थी जैसे शूद्र रहता था अब वह एकदम से अभिजात्य हो गई, घर के भीतर आ गई। ऊब सदा अति पर ले जाती है। जब हम एक चीज से ऊबते हैं तो ठीक उससे उल्टी चीज पर चले जाते है। जो आदमी नाच-गाने से ऊब जाएगा, खाने से ऊब जाएगा, उपवास करने लगेगा। कपडो से ऊब जाएगा, त्याग करने लगेगा। धन से ऊब जाएगा, धर्म की तरफ चला जाएगा। मधुशाला मे ऊबेगा, मन्दिर जाएगा। मन्दिर से ऊबा हुआ आदमी मधुशाला की खोज मे निकलता है। जहा से हम ऊबते है, उल्टे हो जाते हैं। राग से ऊबते है तो विराग पकड लेता है। विराग से ऊब जाते हैं तो राग पकडने लगता है। और अगर हम रागियो और विरागियो के मस्तिष्क को खोलकर देखे तो हमे बडी हैरानी होगी कि उसके भीतर हमे उल्टे आदमी मिलेंगे। रागी के भीतर निरन्तर विरागी होने का भाव मिलेगा, बुरी से बुरी स्थिति मे भी। इसलिए रागी विरागी की पूजा करते है। वह उनका गहरा भाव है। वह भी होना चाहते है यही। और विरागी के भीतर अगर हम झाके तो रागी के प्रति ईर्ष्या मिलेगी। जैसे रागी के मन मे विरागी के प्रति आदर मिलेगा। इसलिए विरागी निरन्तर रागियो को गाली दे रहा है। वह गाली ईर्ष्याजन्य है। उसके भी मन मे यही कामना है। जो-जो उसकी कामना है, उस-उसके लिए वह रागी को गाली दे रहा है कि तुम यह-यह पाप कर रहे हो। नरक मे सडोगे। वह डरा रहा है, धमका रहा है। लेकिन भीतर उसके कामना वही है। मुझे बडे-से-बडे साधु मिलते है जो सामने आत्मा-परमात्मा की बात करते है। एकान्त मे सिवाय सेक्स के दूसरी बात ही उनके चित्त मे नही होती। और बडे घबडाते है कैसे इससे छुटकारा हो और कहते है कि बस यही घेरे हुए है। चौबीस घटे परमात्मा की और मोक्ष की चर्चा चल रही है। लेकिन भीतर वासना का दौर चल रहा है पूरे वक्त। और यह हो सकता है कि मधुशाला, वेश्या के घर मे बैठा हुआ एक आदमी कई बार संन्यासी हो जाता है मन मे कि छोडो सब बेकार है; उल्टा खीचता रहता है। रागी विरागी हो जाता है और विरागी रागी हो जाता है। जो इस जन्म

मे रागी है, अगले जन्म मे विरागी हो जाए; जो इस जन्म में विरागी है, वह अगले जन्म मे रागी हो जाए। यह जानकर मैं बहुत हैरान हुआ हूं। इधर कुछ बहुत से गहरे प्रयोगो ने कुछ अजीब से नतीजे दिए हैं जो चौंकाने वाले है। जैसे कि एक आदमी है जो बिल्कुल ही राग-रग मे पडा हुआ है, उसके पिछले जन्म मे उतरने की कोशिश करो तो तुम दग रह जाओगे कि वह सन्यासी रह चुका है। और सन्यासी रहते वक्त उसने इतना विरोध पाल लिया है सन्यासी होने से कि यह जन्म उसका रागी का हो गया है।

एक स्त्री मेरे पास आती थी और उसे बडी आतुरता थी कि किसी तरह पिछले जन्म मे वह उतर जाए। मैंने उससे बहुत कहा कि यह आतुरता छोड दो क्योकि इसमे कठिनाइया पड सकती है। उसको बडा सती-साध्वी होने का ख्याल था। और उसे उसका इतना भाव पकडा कि मुझे शक ही था कि पिछले जन्म मे वह वेश्या रह चुकी होनी चाहिए। नही तो इतने जोर से सती-साध्वी होने का भाव नही पकडता है। वह जिससे ऊब गई है, वह नए जन्म की शुरूआत बन जाती है। फिर भी वह नही मानी। मैंने कहा कि ठीक है, तू प्रयोग कर। वह छ महीने तक पिछले जीवन मे उतरने का, जातिस्मरण का प्रयोग करती रही। एक दिन आकर एकदम चिल्लाने-रोने लगी कि मुझे किसी तरह भुलाओ क्योकि मैं दक्खिन के किसी मन्दिर मे देवदासी थी, वेश्या थी। और मैं इसको भूलना चाहती हू। मै इसे याद ही नही करना चाहती कि ऐसा कभी हुआ। मैंने कहा जो याद आ गया उसको भूलना मुश्किल है। इसलिए प्रकृति ने सारी व्यवस्था की है कि पिछला जन्म आपको याद न आए क्योकि पिछले जन्म मे आप निरन्तर रूप से उल्टे रहे होंगे। आम तौर से लोग सोचते हैं इस जन्म मे जो सन्यासी है, उसने पिछले जन्म मे संन्यासी होने का अर्जन किया होगा। ऐसा मामला नही है। इस जन्म में जो विरागी है, वह पिछले जन्म मे राग के चक्कर मे घूमता रहा है। यह फिक्र न करे कि हमे क्या होना है, रागी कि विरागी। फिक्र इसकी करे कि हम जो भी हो, उसमे हम जागें। हम कुछ होने की चिन्ता छोड दे। वह जो जागना है, वीतरागता मे ले जाएगा। और वह वीतरागता बिल्कुल ही भिन्न बात है।

इसी सन्दर्भ मे यह भी, जैसा कि मैंने जातिस्मरण की बात की, पिछले जन्म के स्मरण की—महावीर की बड़ी से बड़ी देनो मे एक देन है। ये उस तरह की ध्यान-पद्धतिया हैं जिनसे व्यक्ति अपने पिछले जन्मों में उतर

जाए। और अगर एक व्यक्ति अपने पिछले जन्मो मे उतर जाए और दो चार जन्म भी जान ले तो बहुत हैरान हो जाए। फिर वही वह आदमी नही हो सकता जो अभी था क्योकि वह पाएगा कि यह सब तो मैं बहुत बार कर चुका; इससे उल्टा भी कर चुका मगर कुछ भी नही पाया। हर बार जैसे चाक के स्पोक घूम कर फिर अपनी जगह पर आ जाते हैं, ऐसे ही मैं घूमा और अपनी जगह पर आ गया। कई बार लगा चाक को कि ऊपर पहुच गया हू लेकिन जब उसे लग रहा था कि ऊपर पहुच रहा हू तभी नीचे आना शुरू हो गया था। कई बार चाक को लगा बिल्कुल गिर गया हू नरक मे तभी ऊपर चढ़ना शुरू हो गया। बहुत बार स्वर्ग छुआ, बहुत बार नरक छुआ; बहुत बार सुख छुआ, बहुत बार दुख छुआ, बहुत बार राग छुआ, बहुत बार विराग छुआ। सब द्वन्द्वो मे चक्र घूम चुका है। अगर दस-पाच जीवन स्मरण आ जाए तो यह सब इतनी बार हो चुका है कि अब इसमे चुनाव का कोई मतलब नही है। जातिस्मरण का मतलब यही है कि यह द्वन्द्व हम बहुत बार भोग चुके है, इन दोनों से हम जाग सके हैं। इन दोनो मे चुनाव का कोई उपाय नही है। लेकिन, मन का नियम यह है कि जो वह करता है उससे उल्टे को चुनता है। इसलिए सन्यासियो के पास रागियो की भीड होती है। जो वह चुनता है, अभी कर रहा है, उसके अनकॉन्शस मे, अचेतन मे उल्टे का इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। जब वह सेक्स मे होता है, तब उसको ब्रह्मचर्य की बाते ख्याल मे आती हैं। और जब वह ब्रह्मचर्य साधता है तो सेक्स की बाते ध्यान मे आती है, जब वह भोजन कर रहा होता है तब वह सोचता है भोजन त्याग कैसे करू और जब वह भोजन त्याग करता है, तब भोजन का स्मरण आने लगता है। इतना अद्भुत है यह मामला, हमारे द्वन्द्व मे घूमने की व्यवस्था। और हम एक बार एक ही जगह होते हैं इसलिए दूसरा हमे आकर्षित करता रहता है उल्टा। अगर दो चार जन्मो का यह स्मरण आ जाए कि हम दोनो तरफ घूम चुके है तो फिर तीसरा उपाय है। और वह जो तीसरा उपाय है वही महावीर का उपाय है—वीतरागता का। इन दोनों मे कोई अर्थ नहीं तो अब क्या करू? अगर भोग नहीं, अगर योग नहीं, तो तीसरा क्या रास्ता है? तीसरा रास्ता सिर्फ यह है कि दोनो के प्रति जाग जाऊ। तो त्रिकोण बन जाता है। उस त्रिकोण की, त्रिभुज की नीचे की एक रेखा है जिस पर दो द्वन्द्व हैं। इधर राग है, उधर विराग है? जो इधर होता है वह उधर आ जाता है, जो उधर होता है, वह इधर आना

चाहता है। और इन्ही दोनो के बीच हम घूमते रहते है। जो इन दोनों से जागता है, वह जो त्रिभुज का ऊपर का छोर है वहा पहुच जाता है। वह वीतराग है। वह दोनो से पार हो गया है। वह न राग मे है, न विराग मे है। लेकिन जो राग मे खडा है, जो विराग मे खडा है, उन दोनो के लिए बेबूझ हो जाता है कि यह आदमी कहा है? क्योकि हमारे होने की परिभाषा मे दो ही बिन्दु है राग और विराग। यह आदमी कहां है? तो इस आदमी को समझना मुश्किल हो जाता है। लेकिन समझने का प्रश्न नही है। यह आदमी हम दोनो को समझ पाता है और हम दोनो इस आदमी को बिल्कुल नही समझ पाते।

जाति स्मरण का प्रयोग महावीर की बडी से बडी देन है। और मै समझता हू उस पर कोई काम नही हो सका। असली बात वही है। उस साधना से गुजर करके किसी व्यक्ति को वीतरागता मे लाया जा सकता है, किसी भी व्यक्ति को। और जब तक उस साधना से नही गुजरता तब तक वह यही होगा कि रागी है तो विरागी हो जाएगा और विरागी है तो रागी हो जाएगा। और यह दोनो एक-से मूढतापूर्ण हैं। इन दोनो को कोई चुनाव का सवाल नही है। और हमे रोज दिखाई पड़ता है कि हम विरोधी को अनजाने चुनने लगते है। महलो मे जो आदमी बैठा हुआ है वह निरन्तर यही कहता है कि झोपडी का मजा यहा कहा है। और ईर्ष्या करता है झोपडी के आदमी से, और उसकी नीद और उसकी मौज से। झोपडी मे जो बैठा है वह पूरे वक्त महल के लिए ईर्ष्यालु है कि जो महल मे हो रहा है, वह यहा कहा, झोपडी मे मरे जा रहे है। झोपडी वाला महल की तरफ जा रहा है, महल वाला झोपडी की तरफ आ रहा है। बडे शहर वाला छोटे गाव की तरफ भाग रहा है, छोटे गाव वाला बडे शहर की तरफ भाग रहा है। पूरे समय जहा हम हैं, उससे विपरीत की तरफ हम जा रहे है क्योकि जहा हम है वहा हम ऊब जाते है, वहा हम बोरडम से भर जाते हैं। और जिससे हम ऊब गए है उससे उल्टे की तरफ हम जाते है। जैसे पूरब भौतिक की तरफ जाएगा क्योकि वह अध्यात्म से ऊब गया है और पश्चिम अध्यात्म की तरफ आएगा क्योकि वह भौतिकवाद से ऊब गया है। पश्चिम मे इस समय जो चिन्तना है कि क्या है अध्यात्म मे, कैसे हम आध्यात्मिक हो जाए और पूरब की जो कामना है पूरी की पूरी कि कैसे हम वैज्ञानिक हो जाएं, कैसे धन आए, कैसे समृद्धि आए, कैसे अच्छे मकान, कैसे अच्छी मशीन। पूरब का

व्यक्तित्व भौतिकवाद की तरफ जा रहा है। पश्चिम का व्यक्तित्व अध्यात्म की तरफ आ रहा है। व्यक्ति मे भी वही होता है, समाज मे भी वही होता है, राष्ट्र मे भी वही होता है। 'अति'—दूसरी 'अति' हमे पकड लेती है। महावीर कहते है कि दोनो 'अतियों' मे हम बहुत घूम चुके है; दोनो विरोधो मे हम बहुत बार घूम चुके हैं। क्या कभी हम जागेंगे और उस जगह खडे हो जाएगे, जहा कोई 'अति' नही है, कोई विरोध नही है, कोई द्वन्द्व नही है। इस स्थिति का नाम वीतरागता है। और यह सभी मे है। ध्यान रखिए यह सभी मे है। जैसे एक आदमी क्रोध कर रहा है। क्रोध करके आपने कभी ख्याल किया है कि क्रोध करने के बाद आप क्या करते है? आप पछतावा करते है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो क्रोध के बाद पछतावा न करता हो। और अगर मिल जाए तो अद्भुत है। क्रोध करके आदमी पछताता है। पछतावा दूसरी 'अति' है। क्रोध किया कि पछतावा आया। पछतावे के वक्त आदमी सोचता है कि हम बडे भले आदमी है देखो! हमने क्रोध कर लिया और हम पछतावा भी कर रहे है। क्रोध किया कि क्षमा पीछे आई। विपरीत आता रहेगा सारे जीवन के सब तलो पर। यह कभी आपने ख्याल किया कि जिसको आप प्रेम करेंगे उसके प्रति उसकी घृणा इकट्ठी होने लगती है। फ्रायड ने पहली दफा इस तथ्य की तरफ सूचना दी कि जिसको आप प्रेम करते है, उसके प्रति आपकी घृणा इकट्ठी होने लगती है। क्योंकि प्रेम तो आप कर लेते है। जब प्रेम से ऊबने लगते हैं तब करेंगे क्या? और जिस व्यक्ति से आप घृणा करते हैं पूरी, बहुत सम्भावना है कि उसके प्रति आपका प्रेम इकट्ठा होने लगे।

एक यहूदी फकीर था। उसने एक किताब लिखी और किताब बडी क्रांतिकारी थी। यहूदियो का जो सबसे बडा धर्मगुरु था, जो रब्बी था उसके पास उसने वह किताब अपने एक मित्र के हाथ भेट भेजी कि जाकर रब्बी को मेरी किताब भेंट कर आओ। और उस यहूदी फकीर ने—वह बगावती फकीर था—कहा कि सिर्फ इतना ही ख्याल रखना कि जब तुम रब्बी को किताब दो तो रब्बी क्या कहते है, क्या करते हैं, उसे जरा ध्यान से देख लेना। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नही। तुम सिर्फ नोट कर लाना कि उन्होने क्या कहा, क्या किया, गुस्से में आए, नाराज हुए, किताब फेंकी, कैसा चेहरा था, सब खबर ले आना। वह आदमी गया, उसने किताब दी। उसने कहा कि यह फलां-फलां फकीर ने किताब दी है। रब्बी ने किताब को तो

देखा भी नही। हाथ मे उठाकर दरवाजे के बाहर फेक दिया और कहा कि भागो यहा से। इस तरह की किताबो को छूना भी अधर्म और पाप है। रब्बी की औरत पास मे बैठी थी। उसने कहा ऐसा क्यो करते है। फेंकना ही हो तो वह आदमी चला जाए तो पीछे फेंक सकते हैं। और फिर इतनी हजारो किताबें घर मे है, एक कोने मे उसको भी रख दे। न पढना हो, न पढे। लेकिन ऐसा क्यो करते है? पर रब्बी आग बबूला हो गया, लाल हो गया। उस आदमी ने नमस्कार किया, वापस आया। उस फकीर ने पूछा—क्या हुआ? कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। रब्बी बडा खतरनाक है। उसकी पत्नी बहुत भली है। रब्बी ने किताब बाहर फेक दी और कहा कि हटो यहा से, भाग जाओ यहा से—वह आग हो गया एकदम। उस फकीर ने पूछा—उसकी पत्नी ने जिसको तुम बहुत भली कहते हो क्या किया? उसने कहा कि किताब को उठा लाओ। उसने नौकर से किताब मगवा ली और कहा घर मे इतनी किताबें है, यह भी रखी रहेगी, ऐसा भी क्या? और फेकना हो तो पीछे फेक देना। लेकिन सामने ऐसा क्यो करते हो? तो उस फकीर ने कहा कि रब्बी से अपना कभी मेल हो सकता है। लेकिन उसकी पत्नी से कभी नही। 'रब्बी' से अपना मेल हो ही जाएगा। रब्बी को किताब पढ़नी ही पडेगी। वह किताब पढेगा ही। मगर उसकी पत्नी कभी नही पढेगी। तब उस आदमी ने पूछा—आप तो उल्टी बात कह रहे है। रब्बी बडा नाराज था, एकदम आगबबूला हो गया था। फकीर ने कहा वह नाराज हुआ था तो थोडी देर मे नाराजगी शिथिल होगी, नाराज कोई कितनी देर रहेगा और जब कोई आग मे चढ जाता है ऊपर तो वापस उसे शाति मे लौटना पडता है, जब कोई श्रम करता है तब उसे विश्राम करना पडता है, जब कोई जागता है उसे सोना पडता है। उल्टा जाना ही पडता है। रब्बी कितनी देर क्रोध मे रहेगा? आखिर डिग्री नीचे आएगी। शात होगा; किताब उठाकर लाकर पढेगा। लेकिन उसकी पत्नी? उससे कोई आशा नही। क्योकि उसकी कोई डिग्री नही। क्रोध मे नही गई तो क्षमा मे भी नही लौटेगी। उसने चीजो को जिस तटस्थता से लिया है उससे अपना कोई सम्बन्ध नही बन सकता। जब हम क्रोध कर रहे है तभी क्षमा इकट्ठी होनी शुरू हो जाती है; जब हम क्षमा कर रहे है तभी क्रोध इकट्ठा होना शुरू हो जाता है, जब हम प्रेम कर रहे है तभी घृणा इकट्ठी होने लगती है; जब हम घृणा कर रहे हैं, तभी प्रेम इकट्ठा होने लगता है। यही द्वन्द्व है आदमी का कि जिसको प्रेम करता है, उसको

घृणा करता है; जिसको घृणा करता है उसको प्रेम करता है। मित्र सिर्फ मित्र ही नहीं होते, शत्रु भी होते हैं। शत्रु सिर्फ शत्रु ही नही होते, मित्र भी होते हैं। इसलिए निरन्तर यह होता रहता है। जब मैं निरन्तर अनुभव करता हू कि अगर मुझे कोई आदमी बहुत जोर से प्रेम करने लगे तो मैं जानता हू कि यह आदमी जल्दी जाएगा क्योंकि उसकी घृणा इकट्ठी होने लगी है। और मैं इसलिए चिन्तित हो जाता हूं कि यह आदमी जाएगा और अब इसके बिना जाए लौटने का कोई उपाय नही होगा। और अगर कोई आदमी जोर से मुझे घृणा करने लगे, क्रोध करने लगे तो मैं जानता हू कि वह आएगा। क्योंकि इतनी घृणा मे वह कैसे जियेगा, उसे लौटना पडेगा।

महावीर कहते है कि सब द्वन्द्व बाधता है दूसरे से, उल्टे से बाध देता है। इसलिए द्वन्द्व के प्रति जागने मे वीतरागता उपलब्ध होती है। न काम, न ब्रह्मचर्य—तब सच मे ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। न क्रोध, न क्षमा—तब सच मे ही क्षमा उपलब्ध होती है क्योंकि उससे विपरीत फिर होता ही नही। न हिंसा, न अहिंसा—तब सच्ची अहिंसा उपलब्ध होती है क्योंकि तब उसके विपरीत कुछ होता ही नहीं। इसलिए बहुत भूल हो जाती है। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल हो जाता है क्योंकि महावीर की अहिंसा वह अहिंसा नही है जो हिंसा के विपरीत है। हिंसा के विपरीत जो अहिंसा है, वह आज नहीं तो कल हिंसक हो ही जाएगी। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल है क्योंकि वह हिंसा के विपरीत नही है। जहा न हिंसा रह गई, न अहिंसा रह गई, वहा जो रह गया उसको महावीर अहिंसा कह रहे है।

ऐसा लगता है कि हम राग और विराग के बीच अनेक जन्मो मे घूम चुके है। ऐसा नही है कि राग ही राग मे ही घूमते रहे है। बहुत बार राग हुआ है, बहुत बार विराग हुआ है। वीतराग कभी नही हो सका और वह होगा भी नही क्योंकि एक 'अति' पर जाकर ठीक पेन्डुलम दूसरे अति पर जाना शुरू हो जाता है। इसलिए मैं कहता हू इसकी चिन्ता मत करें कि हमे क्या होना है —राग या विराग।

प्रश्न—जीवन के रहस्य को जानने के लिए, जीवन और मृत्यु से अभय प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने इतनी साधना की थी। लेकिन वही बुद्ध, दलाई लामा के रूप में केवल अपने जीवन को बचाने के लिए ही चीनियों के चंगुल से भागकर यहां पर आता है। वही बुद्ध जिसने 'अभयो भव', 'उभयवीतो

भग' कहा, वही बुद्ध दलाई लामा के रूप मे, एक कायर के रूप में हमारे सामने आ जाता है। यह ऐसी चीजें हैं जिससे लगता है कि या वह बुद्ध झूठ थे या यह दलाई लामा जो विन्ह रूप मे आए है झूठ हैं।

उत्तर—असल मे, चीजे जैसी हमे दिखाई पडती है वैसी ही नही होती। दलाई लामा को समझना बहुत मुश्किल है क्योकि जिस भाषा मे हम सोचने के आदी है उस भाषा मे निश्चय ही वह भागा अपने को बचाने के लिए। कायर मालूम पडता है। लडना था, जूझना था। भागना क्या था? ऐसा ही हमें दिखाई पडता है, बिल्कुल सीधा और साफ। लेकिन मैं आपसे कहता हू कि दलाई लामा के भागने मे बहुत और अर्थ है। ऊपर से यही दिखाई पडता है कि दलाई भागा; बचाया अपने को—बडा कायर है। सचाई इतनी नही है। सचाई ऊपर से ही इतनी दिखाई पड रही है। दलाई लामा का भागना अत्यन्त करुणापूर्ण, महत्वपूर्ण है। दलाई अगर वहा लडता तो हमारी नजरो मे वह बहुत बहादुर हो जाता। लेकिन दलाई लामा को कुछ और बचाकर लाना था जो हमे दिखाई ही नही पड रहा है, जो कि लडने मे नष्ट हो सकता था। समझ ले एक मन्दिर है और एक पुजारी है। और यह पुजारी किन्ही गहरी सम्पत्तियो का अधिकारी भी है जो उसके मरते ही एकदम खो जा सकती है इन अर्थों मे कि उनसे सम्बन्ध का फिर कोई सूत्र नही रह जाएगा और जरूरी है कि इसके पहले कि वह मरे, वह सारे सूत्र और वह सारी सम्पत्तियो की खबर किन्ही को दे दे। दलाई लामा के पास बहुत रहस्यमय सूत्र है जिन्हे इस समय जमीन पर मुश्किल से चार-पाच लोग समझ सके है। दलाई लामा का भाग आना अत्यन्त जरूरी था।

तिब्बत का उतना मूल्य नही जितना मूल्य दलाई लामा की जान का है और जो वह किसी को द सकता है उसका है। और, तिब्बत की हार निश्चित थी। तिब्बत का चीन मे डूबना निश्चित था। यह भी दलाई लामा को दिखाई पड सकता है जो दूसरे को दिखाई नही पड सकता। और अगर ऐसा साफ दिखाई पडता हो तो लडना उचित नही है, चुपचाप हट जाना उचित है। उस सबको लेकर बचाना ज्यादा कीमती है। तिब्बत तो बचेगा नही और वह सब बच सकता है भागने से। और आज, दलाई बैठकर वह सारे प्रयोग कर रहा है दस-पच्चीस लोगो को साथ लेकर, जिनके साथ वह भागकर आया है। कीमती लोगो को वह सारी सम्पदा दे रहा है। उसके मरने का कोई सवाल

ही नही। वह तिब्बत मे भी मर सकता था और यहा भी मरेगा। मरने से बचने का प्रश्न ही नहीं है। बहुत बार ऐसा हुआ है। यह पहली बार नही हुआ हिन्दुस्तान मे। बौद्ध भिक्षुओ को भागना पडा हिन्दुस्तान से। एक वक्त आया जब हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षुओ को भागना पडा। भागना इसलिए जरूरी हो गया कि यहा भूमि बिल्कुल बजर हो गई उनके लिए। उनको ग्रहण करने के लिए, जो उनके पास था, कोई नही बचा। अपनी जान का सवाल न था, लेकिन सवाल था उसका जो वे जानते थे, जो बीज उनके पास थे, जो किसी भूमि मे अकुरित हो सकते थे। उनको भागकर सारी एशिया मे खोज करनी पडी कि कही और हो सकता है कुछ। उन्होने बडी कृपा की कि चीन चले गए, तिब्बत चले गए, बर्मा चले गए, थाई चले गए और जाकर उन्होंने बीज आरोपित कर दिए। फिर उनके बीजो मे आज फिर बीज लौटने की सभावना बन सकती है। लेकिन यह हो सकता था कि उस समय वे भी भिक्षु, जो भागे इस मुल्क से, कायर मालूम पड होगे। लडना था यहा, जाना कहा था ? लेकिन जिनके पास कुछ है, वह लडने से ज्यादा उसको बचाने की फिक्र करेंगे। बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठे और 'बोधि' को प्राप्त हुए, वह मूल वृक्ष नष्ट हो गया। लेकिन उसकी एक शाखा अशोक ने लका भेज दी थी। वह लका मे सुरक्षित है। अब उस वृक्ष की एक शाखा वापस आ गई है। मूल वृक्ष नष्ट हो गया। नष्ट किया ही गया होगा क्योकि जब बौद्धो के पैर उखड गए तो सब नष्ट कर दिया गया। आप हैरान होगे जानकर कि बुद्ध का जो मन्दिर है उसका पुजारी ब्राह्मण है। वह बौद्ध नही है। वह सम्पत्ति भी एक ब्राह्मण पुजारी की है—मन्दिर और उसकी व्यवस्था भी। वह सब नष्ट हो गया। लेकिन अशोक के द्वारा भेजी गई उस वृक्ष की एक शाखा लका मे पल्लवित हो गई। और उस शाखा की एक शाखा लाकर फिर हम लगा सके। उस वृक्ष का एक बच्चा मौजूद है। यह वृक्ष की चर्चा मैंने इसलिए की कि प्रतीक की तरह ख्याल मे आ जाए।

तिब्बत में फिर वह हालत आ गई—तिब्बत चीन के हाथ मे जाएगा और कम्युनिज्म जितनी जोर से दुनिया से रहस्य विज्ञान को खत्म कर सकता है उतना कोई चीज खत्म नही कर सकती। जो भी आन्तरिक सत्य है और उनके जो भी सूत्र है, कम्युनिज्म उनको जड-मूल से काटने मे उत्सुक है। और जहा भी जाएगा वहां सबसे पहले जो उस मुल्क की आन्तरिक सम्पदा है उसको वह बिल्कुल तोड डालेगा। तिब्बत के कम्युनिस्टो के हाथ

मे जाने के बाद वहा जो सबसे पहली चोट होने वाली थी, वह चोट थी उसकी आन्तरिक सम्पदा पर। तिब्बत बहुत अद्भुत था इन अर्थों में कि दुनिया मे तिब्बत के पास सर्वाधिक बहुमूल्य सम्पत्ति थी आन्तरिक सत्यो की। क्योकि वह दुनिया से कटा हुआ जिया, दुनिया की उसे कोई खबर न थी, दुनिया का कोई सम्बन्ध न था उससे। दुनिया का कोई ताल-मेल न था उससे। वह दूर अकेले मे, एकान्त मे चुपचाप पडा था। अतीत की जो भी सम्पदा थी जानने की वह सब उसने सरक्षित कर ली थी। दलाई का भागना बहुत जरूरी था। लेकिन मुश्किल है कि कोई आदमी इसकी तारीफ कर सके। लेकिन मैं करता हू कि दलाई वहा लडता तो दो कौडी की बात थी वहां लडना। कायर नही है वह आदमी। मगर जो बचा कर ले आया है उसे आरोपित कर देना जरूरी है। लेकिन इस मुल्क मे लोगो को ख्याल भी नही है कि दलाई के साथ एक बहुत बडी मूल शाखा वापस लौटी है जिससे यह मुल्क फायदा उठा सकता है। लेकिन मुल्क को कोई मतलब ही नही है, कोई सम्बन्ध ही नही लगा इससे। वह आपके मुल्क मे है, यह घटना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह आसान न था, उसको ले आना आसान न था। यह बिल्कुल अवसर है, वक्त है, समय है कि उसको यहा आ जाना पड़ा है। और उसका हम फायदा ले सकते है। बहुत से एसोटेरिक, बहुत से गुह्य सत्य है जो उससे पता चल सकते हैं। लेकिन हमे कोई मतलब नही है, हमे कोई प्रयोजन नही है। और हम को दिखता ऊपर से यही है मै ऐसा नही मानता, मैं ऐसा नही मानता। अगर सोच लीजिए कि यहा मैं हू और मुझे लगे कि इस देश में उस बात से कोई मतलब नही हल होने वाला, नही हैं वे लोग जो उस बात को समझ सकें। अब मैं आपको कहूगा कि जिन लोगो मे मेरे इस जीवन मे सम्बन्ध बन रहे हैं, उनमे से मैं बहुतो को पहचानता हू जिनसे मेरे पिछले जीवन मे सम्बन्ध थे। चालीस-पचास करोड के मुल्क से मुझे कोई मतलब नही है। मतलब दो चार सौ लोगो से है चालीस-पचास करोड लोगो में से। मैं मेहनत कर रहा हूं इन दो चार सौ लोगो को अपने पास ले आऊँ इसके लिए। और कल मुझे ऐसा लगे कि मुल्क कम्युनिस्टों के हाथ मे जाता है या ऐसे लोगों के हाथ मे जाता है जो जड काट देंगे तो मैं दो चार सौ लोगो को लेकर कहीं भी भाग जाना पसद करूगा। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न ? मैं उन दो चार सौ लोगो को लेकर भाग जाना पसद करूगा। पचास करोड से मुझे कोई प्रयोजन ही नही। मैं उन दो चार सौ लोगों को लेकर भाग जाऊँगा कहीं भी

जंगल मे। दुनिया को यही लगेगा कि यह आदमी भाग गया, कुछ लडा नहीं, वक्त पर काम नही आया। लेकिन मैं जानता हू कि मुझे क्या करना चाहिए। वह दलाई लामा थोडे से लोगो को लेकर भाग आया है और उन लोगों मे से थोडे से कीमती लोगो को बचा लाया है, जो आगे शाखाए सिद्ध हो सकें। और हो सकता है, दो सौ वर्ष बाद, एक सौ वर्ष बाद, पचास वर्ष बाद, तिब्बत की हवाएं ठीक हो जाए और दलाई लामा जो बचा ले वह वापस तिब्बत मे आरोपित हो सके। इसकी आशा मे लगा हुआ है। सारी आशा और आकाक्षा है, जिसके पीछे इतना कष्ट झेलता है कोई। वह आशा और आकाक्षा यह है कि बीज बच जाए और अगर पचास साल बाद, या सौ साल बाद, क्योकि जिंदगी एक सी थोडी चलती रहती है, पचास-सौ साल मे सारी चीजे बदल जाएगी तो तिब्बत मे वापस लौट आया जा सकता है। वे चीजे फिर वापस तिब्बत मे पहुच सकती है। लेकिन वे सत्य हमे दिखाई नही पडती है। वह सम्पदा हमारी आखो की सम्पदा नही है। वे सारे बहुमूल्य ग्रन्थ अपने साथ ले आया है जो सिर्फ तिब्बती मे ही सुरक्षित रहे हैं। संस्कृत मे नष्ट हो गए है। अब दलाई की सम्पदा हैं। और उनको किसी भी हालत मे बचाना जरूरी है। बौद्धो के सारे सूत्र ग्रन्थ हिन्दुस्तान मे नष्ट किए गए। जो लोग यहा से भाग गए ग्रन्थो को लेकर वे ग्रन्थ आज चीनी मे, तिब्बती मे, बर्मी मे सुरक्षित हैं। और वे फिर वापस लौटाए जा सकते हैं। अब ऐसे-ऐसे अद्भुत ग्रन्थ हमने खो दिए जिनका कोई हिसाब नही। हमने ही इनको जला डाला। उस दिन तो ऐसा ही लगा होगा कि बोधिधर्म चीन क्यो जा रहा है ? भागता है जिन्दगी से। लेकिन बोधिधर्म ने ध्यान की जो मूल शाखा थी बुद्ध की उसको नष्ट नही होने दिया। उस एक आदमी पर निर्भर था वह मामला सब। वह एक आदमी मर जाए रास्ते मे तो इतनी बडी सम्पदा नष्ट होती थी कि जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल था।

बुद्ध के जीवन मे एक बहुत अद्भुत घटना हो चुकी है। एक दिन सुबह बुद्ध एक फूल लेकर आए। ऐसा कभी नही होता है। किसी ने रास्ते मे एक फूल दे दिया है, वह उसको लेकर मच पर बैठ गए हैं। वह चुप बैठे हैं, बडी देर हो गई है। फिर भिक्षु राह देखते-देखते थक गए है कि वह बोले। फिर बेचैनी शुरू हो गई है कि वह चुप क्यो हैं, बोलते क्यो नही है। फिर वह हंसने लगे हैं। उनकी हसी सुन कर एक महाकाश्यप नाम का भिक्षु जोर से हंसा है। यह आदमी कभी बोला नही था इसके पहले। यह चुप ही रहता

था। यह कभी बोलता ही नही था। यह जोर से हसा है। बुद्ध ने उसे बुलाया और उसके हाथ मे वह फूल दे दिया। और भिक्षुओ से कहा 'जो मैं बोल कर दे सकता था वह मैंने तुम्हे दिया, जो मैं बोल कर नही दे सकता, वह मैं महाकाश्यप को देता हू। कोई चीज ट्रासफर की गई जो दिखाई नही पड़ती। बुद्ध ने कहा जो मैं नही दे सकता था शब्द से, वह मैं महाकाश्यप को दिए देता हू।

हजारो साल से यह पूछा जाता रहा है कि महाकाश्यप को दिया क्या ? कौन सी चीज ट्रासफर की गई थी ? लेकिन अगर शब्द मे बुद्ध कह सकते तो खुद ही कह दिए होते। अब कौन कहे क्या हुआ ? महाकाश्यप बुद्ध की आन्तरिक सम्पदा का, एसोटेरिक सम्पदा का अधिकारी बना। और महा-काश्यप का कोई नाम नही होगा क्योकि उसने कोई किताब नही लिखी, महाकाश्यप का बौद्ध ग्रन्थो मे नाम खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योकि उसके नाम का कोई कार्य नही है। लेकिन वह अद्भुत घटना है और महाकाश्यप के पास जो था, वह खोज-खोजकर किन्ही व्यक्तियो को देता रहा। वह मामला देने का था, समझने का नही था। महाकाश्यप की परम्परा मे एक भिक्षु था बोधिधर्म। वह हिन्दुस्तान से भागा क्योकि हिन्दुस्तान मे कोई आदमी उसे नही मिला जिसको ट्रासफर कर दे जो उसके पास था। वह भागा और चीन मे एक आदमी को ट्रासफर किया। तो चीन मे वह परम्परा कुछ पीढियो तक चली और अन्तत उसको जापान ट्रासफर करना पड़ा क्योकि कोई आदमी चीन मे उपलब्ध नही हुआ। अब वह जापान मे जिन्दा है। वे जो जेन है महाकाश्यप पहला गुरु है उनका। अब वह जापान मे है। सुजूकी उसका आखिरी गुरु है अभी। लेकिन अब ऐसा डर हो गया है कि उसे कोई जापान मे भी ले सकता है या नही। तो सुजूकी पूरी जिन्दगी से यूरोप और अमेरिका मे मेहनत कर रहा है, किसी को ट्रासफर करने के लिए। ग्राहक मन (रिसेपटिव माइन्ड) चाहिए न ! जापान मे आशा नही बंधती है क्योकि अब जापान एकदम भौतिकवादी हो गया है। सारी चेतना जड़ता से भर गई है। एक तरफ विकास होता है, दूसरी तरफ पतन होता है कई बार। अब जापान एकदम आधुनिक है, अत्याधुनिक, तो किसको वह दिया जाए ? अब वह बूढ़ा आदमी, हद से बूढा आदमी सुजूकी पूरी जिन्दगी से यूरोप मे भटक रहा है। लेकिन दो-तीन आदमी उसको मिल गए है। एक फ्रांस मे ह्यूबर्ट बिनायक। एक अमेरिका मे एलन वाट। उसने उनको दे दिया है। अब उसका छुटकारा

हो गया है। अब वे जानेंगे, समझेंगे। महाकाश्यप के पास जो था वह ह्यूबर्ट बिनायक के पास है, एलन वाट के पास है। कुछ चीजे इतनी गहरी हैं कि उनको ग्रहण करने के लिए आदमी चाहिए न ! पर वह सब हमे दिखाई पड़ता नही। वह सब कैसे चलता है, कैसे जाता है, हमे दिखाई नही पड़ता है। और जिसके पास है वह जानता है उसकी तकलीफ को कि क्या करे। उसको कैसे पहुचा दे कि वह बच जाए, मैं तो मर जाऊ लेकिन कुछ मेरे पास है, वह बच जाए। वह मुझसे ज्यादा कीमती है। वह बचना चाहिए। वह कहीं किसी के काम आता रहेगा पीढ़ियो तक। इसलिए उसे ऐसा मत लें। ऐसा नही है मामला।

प्रश्न : मैथुन एक अनुभूति है। जब मूर्च्छा होती है अनुभूति पैदा होती है। जब साक्षी होता है तब मूर्च्छा हो ही नहीं सकती। जब अनुभूति हो ही नहीं सकती तब मैथुन कैसे हो सकता है ?

उत्तर—साधारणत. ठीक कह रहे हो। लेकिन कोई भी क्रिया दो तरह से हो सकती है या तो उस क्रिया मे डूबो या उस क्रिया से बाहर खडे रह जाओ। जब डूबोगे तुम उस क्रिया मे तब तुम मूर्च्छित हो जाओगे। जब तुम क्रिया के बाहर खडे रहोगे तब तुम साक्षी रहोगे। पहली हालत में मैथुन तुम्हारी जरूरत होगी, दूसरी हालत मे और तरह की जरूरत हो सकती है और बहुत तरह की जरूरत है। जैसे मैंने अभी कहा कि ज्ञान के ट्रांसफर करने की बात है। अब यह तुम हैरान होगे कि कुछ लोग इस स्थिति मे पहुच जाए जहा मैथुन बिल्कुल अनावश्यक हो गया है, फिर भी जिस शरीर की सम्भावना उनके पास हो, उसको वे ट्रासफर करना चाहेगे। वे उस शाखा को भी तोडना नही चाहेगे। वह शाखा भी कीमत की है। जैसे—बुद्ध जैसा व्यक्ति, या महावीर जैसा व्यक्ति—एक आत्मा की यात्रा है लेकिन एक शरीर भी चाहिए जो उतनी कीमती आत्मा को पकडता हो। वैसे व्यक्ति यह भी न चाहें कि वैसा शरीर न रहे क्योकि महावीर तक आते-आते जो वीर्य अणु विकसित हुआ है, वह साधारण नही है। आत्मा असाधारण है सो तो है ही। लेकिन जो वीर्य अणु महावीर तक आते-आते विकसित हुआ है वह भी साधारण नहीं है। वे उसको भी ट्रासफर करना चाहेंगे।

मैथुन उनका रस नही है। मैथुन एक भोजन, स्नान, सोना, उठना या बैठना जैसी एक बाह्य जरूरत की चीज है जो उपयोगी हो सकती है बल्कि हो सकता है कि हजार दो हजार वर्ष बाद जबकि हमारा ज्ञान प्रजननविज्ञान

(जेनेटिक्स) की ओर बढ जाएगा तो शायद हम नाराज हो जीसस पर कि वह वीर्य अणुकी लम्बी यात्रा जो जीसस पर आकर इस भाति फलीभूत हुई, वह जारी क्यों नही रखी। हम नाराज हो सकते है क्योकि वह दुबारा सम्भव नही है। वह लाखो करोडो वर्षों की यात्रा के बाद उस तरह का वीर्य अणु, वह विशिष्ट वीर्य अणु, जीसस के शरीर मे है। और जीसस के शरीर के साथ खो जाती है वह शाखा। मेरा मतलब समझे न तुम ? यानी यह हो सकना है—अभी तो सम्भव नही था पहले, लेकिन आज से हजार साल बाद, बल्कि पाच सौ साल बाद, बल्कि शायद पचास साल बाद यह सम्भव हो जाएगा कि बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो के वीर्य अणु को हम सुरक्षित रख सकेंगे। आइस्टीन जैसे वैज्ञानिक के वीर्य अणु को सुरक्षित रखने की जरूरत है क्योकि यह सम्भावना मुश्किल से फलीभूत होती है। अगर आइस्टीन जैसी स्त्री उपलब्ध हो जाए, आइस्टीन के मरने के दो सौ साल बाद तो वीर्य अणु सुरक्षित रह सकता है। तो उस स्त्री के अणु मे, इस वीर्य अणु के संयोग से जो व्यक्ति पैदा किया जा सके वह ऐसा अनूठा होगा जैसा आइस्टीन भी नही था। जैसे-जैसे हमारी समझ बढेगी वैसे-वैसे हम श्रेष्ठ व्यक्तियो के वीर्य अणुओ को नष्ट नही होने देंगे। उनको हम बचाकर रखेंगे। उस वक्त तो कोई उपाय नही था। अब तो उपाय है। अब तो मैथुन अनिवार्य नही है। वीर्य अणु सुरक्षित किया जा सकता है, बिना मैथुन के वीर्य अणु सक्रिय हो सकता है और उससे सन्तति हो सकती है लेकिन उस वक्त यह उपाय नही था। तो मेरा मानना है कि यह भी ध्यान मे हो सकता है। बुद्ध ने भी एक बेटे का जन्म दिया था। महावीर की भी एक बेटी थी। समझे आप ? मैं यह कह रहा हू कि मैथुन मे जब रस है तब आप डूबते हैं, जब रस नही है तब कोई बात नही है। तब वह बिल्कुल एक यान्त्रिक क्रिया है।

प्रश्न : वह बायोलोजिकल मामला कैसे हो सकता है ? मूच्छित होने से पीछे अनुभूति होती है। बिना अनुभूति के मामला बायोलोजिकल कैसे हो सकता है ?

उत्तर : अनुभूति वगैरह कुछ नही होती आपको। जो होना है कुल इतना होता है कि आपके चित्त का तनाव शरीर से बाहर निकल जाने से मुक्त हो जाता है। और कुछ नही होता आपको। उस तनावमुक्ति को आप बडी अनुभूति समझ लेते हैं। अनुभूति वगैरह कुछ नही होती। जो तनाव इकट्ठा हो जाता है वह जब वीर्य सख्ती से बाहर निकल जाता है, मुक्त हो जाता है।

अनुभूति क्या खाक होती है आपको ? अनुभूति हुई क्या है कभी ? अनुभूति हो सकती है लेकिन उसके उपाय दूसरे हैं। वह मामला फिर सेक्स का नहीं है। बायोलोजिकली वह सिर्फ आपका तनाव दूर कर देता है। इसलिए बहुत अधिक तनावमुक्त लोगो के लिए उसकी जरूरत भी नही रह जाती। लेकिन बहुत तनावयुक्त लोगो के लिए उसकी जरूरत बढ जाती है। जितना तनाव बढता है उतना सेक्स बढता है। पश्चिम मे जो इतनी कामुकता है उसका कोई और कारण नही। चित्त तनावग्रस्त हो गया है और तनाव को शिथिल करने का एक ही उपाय है। वह यह कि शरीर से शक्ति बाहर हो जाए। और कुछ नही इससे ज्यादा। हम जिसको कहते है 'घनीभूत शक्ति' वह एकदम से बाहर हो जाती है, सारे शरीर के स्नायु शिथिल हो जाते हैं। उतनी शक्ति के निकलने पर शिथिल होना ही पडेगा। और यह जो शिथिलता आपको मालूम पड़ती है, आप समझते हैं कि यह आपको अनुभव हो रहा है सेक्स का। यह सिर्फ तनाव दूर होने का अनुभव है। दो दिन बाद आप फिर तनाव मे हो जाते है। दस दिन बाद फिर आप तनाव मे हो जाते है। फिर मुक्त होने की जरूरत पड जाती है जैसे कि आपके हीटर मे, कुकर मे वाल्व लगा हुआ है। ज्यादा गर्मी होगी तो उस वाल्व से निकल जाती है। वैसे वाल्व है सिर्फ, और प्राणि-विज्ञान उसका उपयोग करता है। अनुभूति कुछ भी नही होती। लेकिन जब तनाव घट जाता है तो फिर जरूरत नही रहती। जो लोग शिथिल शांति से जीते है उनके लिए उतनी ही अनावश्यक हो जाती है वह बात। उस स्थिति मे भी उन्हे दूसरे कारण प्रभावित कर सकते हैं, विचार दे सकते हैं और वे मैथुन को भी एक क्रिया की तरह उपयोग कर सकते है। वह जो मैं कह रहा हू उसके लिए कोई अनुभव वगैरह की बात नही है।

प्रश्न—एक जो बात आपने आज कही वह शायद ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। और बहुत दिनों से, जो भी जैन धर्म पर सोचते हैं, उनके मन में चक्कर काटती है। आपने कहा महावीर वीतराग हैं न रागी हैं न वैरागी। लोग इसे दूसरी तरह कहते हैं : वह राग-द्वेष दोनों से मुक्त है। पर प्रश्न यह है कि मान लीजिए स्त्री का आकर्षण—यह भी व्यर्थ है; स्त्री का विकर्षण—यह भी व्यर्थ है। समाज की व्यवस्था के लिए, आपका वीतरागता का उपदेश सामान्य स्तर पर बरता जा सके, इसकी बहुत कम आशा है। यानी चालीस करोड़ के चालीस करोड़ लोग वीतराग हो जाएंगे, इसकी आशा बहुत कम है। पर जो समाज का नियंत्रण है उसके लिए संयम, चाहे वह ऊपरी भी

क्यों न हो, आवश्यक सा प्रतीत होता है। महावीर ने या आपने स्वयं उसके लिए क्या सोचा है ? समाज की व्यवस्था के लिए वह नियंत्रण जो ऊपरी है, और अध्यात्म की दृष्टि से व्यर्थ सा भी है, समाज की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। उस नियंत्रण के बारे में क्या महावीर कहना चाहते थे और क्या आप कहना चाहेंगे ?

उत्तर : पहली बात यह कि वीतरागता करोडो लोगो के लिए कठिन तो है, पर असम्भव नही। और कठिन होने का बडे से बडा कारण यह है कि कठिन मान ली गई है। यदि हमारी धारणा है किसी चीज के प्रति कि वह कठिन है तो वह कठिन हो जाती है। हमारी धारणा ही किन्ही चीजो को कठिन और किन्ही को सरल बनाती है। जब मैं कहता हूं कि कठिन है, असम्भव नही, तो मेरा मतलब यह है कि कठिन भी इसलिए नही है कि उसकी प्रक्रिया कठिन है बल्कि इसलिए कि हमारे राग और विराग की पकड कठिन है, तो इसे छोडना मुश्किल हो जाता है। यानी जैसे एक आदमी पहाड पर चढ रहा है और बडा बोझ लिए हुए है, गट्ठर बाधे हुए है, पत्थर बाधे हुए है। कहता है : पहाड पर चढना बहुत कठिन है। तो हम उससे कहे पहाड पर चढना उतना कठिन नही जितना कठिन तुम्हारा बोझ है। तुम इसे छोड सको तो पहाड पर बडी सरलता से चढ सकते हो। असली सवाल पहाड पर चढने की कठिनाई का नही है जितना कि तुम बोझ बाधे हुए हो और जिसके साथ तुम नही चढ सकते। और, उसे तुम छोडना नही चाहते, इसलिए कठिन हुआ जा रहा है। मेरा मतलब समझे न ! एक-एक आदमी जिस-जिस तरह के मानसिक बोझ को पकडे हुए है उसकी वजह से वीतरागता कठिन हो गई है। अगर वह यह मान भी ले कि कठिन है तो भी वह बोझ को तो छोडता ही नही है। बल्कि बोझ को और पकड लेता है ताकि सिद्ध हो जाए कि बिल्कुल कठिन है वह, सरल है ही नही मामला। सच्चाई मे तो यह है हालत कि राग और विराग बहुत ही कठिन है, असम्भव है। न तुम राग से कुछ उपलब्ध कर पाते हो कभी भी, न विराग मे उपलब्ध कर पाते हो। सिर्फ राग से तुम विराग की प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो और विराग से राग की प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो। यानी राग की उपलब्धि ही क्या है ? सिर्फ विराग को पकडा देना और विराग की उपलब्धि है राग को पकडा देना। और यह एक अनन्त वृत्त है। इसकी उपलब्धि कुछ है नही। तुम स्वय को तो कभी उपलब्ध कर ही नही सकते दोनों हालतो मे। तुम व्यक्ति

ही नहीं बन पाते अगर राग और विराग मे पडे हुए हो तुम। और वह जो कहते हैं कि राग और द्वेष से छूट जाना वीतरागता है, वह बडी गल्त व्याख्या कर रहे हैं। वे विराग को बचा जाते है। राग और द्वेष से मुक्त हो जाना अगर वीतरागता का अर्थ उन्होने किया तो वे विराग को बचा जाते है, और वह तरकीब है बहुत शरारतपूर्ण। राग का ठीक विरोधी विराग है, द्वेष नही। द्वेष तो राग का ही हिस्सा है, विरोध नही। विरोधी तो विराग है। द्वन्द्व विराग का है राग से, द्वेष से नही। तो वे तरकीब से बनाए गए हैं। उन्होंने विरागी को बचा लिया है, विरागी और वीतरागी को सीढ़ी बना दिया है। वे कहते है कि वैराग्य से वीतराग की सीढी जाती है। मैं कह रहा हू चाहे राग से जाओ, चाहे विराग से, वीतराग होने का फासला दोनों से बराबर है। इसे हम समझे।

दूसरी बात यह कि यह कठिन नही है, क्योंकि जो स्वभाव है वह अन्तत कठिन नही हो सकता, विभाव ही कठिन हो सकता है। और, जो स्वभाव इतना आनन्दपूर्ण है कि उसकी एक झलक मिलनी शुरू हो जाए तो हम कितने ही पहाड उसके लिए चढ जाते हैं। बस झलक जब तक नही मिलती तब तक कठिनाई है। और झलक राग और विराग मिलने नही देते। यह जरा सा भी हटे तो उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। जैसे आकाश मे बादल घिरे हुए हैं और सूरज की किरण भी दिखाई नही पडती। जरा सा बादल सरके और किरण झाकने पडने लगती है। राग और विराग के द्वन्द्व की जरा सी टूट जाए खिडकी तो वीतरागता का आनन्द बहने लगता है। और वह बहने लगे तो कितनी ही यात्रा पर जाना सम्भव है, कठिन नही। लेकिन हम क्या करते है हम राग म विराग मे जाते है, विराग से राग मे आते है। ये दोनो ही एक से घेरने वाले बादल है। इसलिए कभी सन्धि भी नही मिलती उसको जानने की। राग और विराग मे डोलते हुए मनुष्यो का जो समाज है, वह नियम बनायेगा ही। क्योंकि राग विराग मे डोलता हुआ आदमी बहुत खतरनाक है। इसलिए नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम कौन बनायेगा ? वही राग विराग मे डोलते हुए आदमी नियम बनायेंगे। राग विराग मे डोलते हुए लोग खतरनाक है। राग विराग मे डोलते हुए नियम बनाने वाले लोग और भी खतरनाक है।

यानी मामला ऐसा है जैसे पागलखाना है एक। पागलो के लिए कुछ नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम बनाने वाले भी पागल हैं। तो नियम और

भी खतरनाक हैं क्योंकि पागल नियम बनायेंगे, और पागलो के लिए। एक तो पागल ही खतरनाक है, फिर पागल नियम बनाये तो और बहुत खतरा शुरू हो जाता है। तो समाज ऐसे ही खतरे मे जी रहा है और जब हम कहते हैं कि वीतरागता की तरफ जाना है तो हम यह नही कहते कि नियम तोड देना है। हम यह नहीं कह रहे। मैं तो यह कह रहा हू कि जो व्यक्ति थोडी सी भी वीतरागता मे गया उसके लिए नियम अनावश्यक है। यानी वह जीता ऐसे है कि उससे किसी को दुख, पीडा यह सब सवाल ही नही है। हा कोई उससे दुख लेना चाहे तो बात ही अलग है, उसकी मुक्ति है उससे। महावीर ऐसे जीते है कि उनके लिए दुख सुख का सवाल ही नही मगर कोई दुख सुख लेना चाहता है तो लेता है। लेकिन पूरा जिम्मा लेने वाले पर ही है। महावीर का देने का कोई हाथ नही उसमे, जग भी कोई दुख लेगा, कोई सुख देगा। वह उस लेने वाले पर निर्भर है। महावीर तो जैसे जीते है, जीते है। जितना वीतराग चित्त होगा उतना विवेक पूरा होगा। पूर्ण वीतरागता, पूर्ण विवेक। और वीतरागता के लिए किसी सयम की जरूरत नही, किसी नियम की जरूरत नही क्योकि विवेक स्वय ही सयम है। अविवेक के लिए सयम की जरूरत होती है। इसलिए सब सयमी अविवेकी होते है। जितनी बुद्धिहीनता होती है, उतना सयम साधना पडता है। यानी बुद्धि की कमी को वे सयम से पूरा करने की कोशिश करते हैं लेकिन बुद्धि की कमी सयम से पूरी नही होती।

अब तक जो हमने समाज बनाया है वह बुद्धि की कमी का सयम से पूरा करने की कोशिश कर रहा है। इसलिए हजारो साल हो गए कोई फर्क नही पडा। तुम पूछ सकते हो कि अगर हम नियम तोड दे तो समाज ही टूट जाएगा मगर यह मै नही कह रहा हू। यह वैसी ही बात है जैसे पागल खाने के लोग कहे कि अगर हम ठीक हो जाएगे तो पागल खाने का क्या होगा? फिर पागल खाना टूट जाएगा। अगर लोग विवेकपूर्ण हो जाए तो समाज नही होगा जैसा हम समाज समझते रहे है। बिल्कुल बुनियादी फर्क हो जाएगे। लेकिन पहली दफा ठीक अर्थों मे समाज होगा। अभी क्या है—समाज है, व्यक्ति नही। और समाज सब व्यक्तियो को अपने घेरे मे कसे हुए है। और समाज केवल व्यवस्था का नाम है। व्यवस्था बजनी और व्यक्ति कमजोर हे। व्यवस्था छाती पर बैठी है और व्यक्ति नीचे दबा है। कुछ भी व्यवस्था होगी। जिस व्यक्ति की मैं बात कर रहा हू और वह बन जाए अगर

विवेकपूर्ण व्यक्ति, वीतराग चित्त से भरा हुआ, जीवन के आनन्द से भरा हुआ, तो भी व्यवस्था होगी। लेकिन व्यक्ति की छाती पर नहीं, व्यक्ति के लिए ही व्यवस्था होगी। अभी व्यवस्था के लिए व्यक्ति हो गया है। और तब भी समाज होगा। लेकिन तब समाज दो व्यक्तियों, दस व्यक्तियों, हजार व्यक्तियों के बीच के अन्त सम्बन्ध का नाम होगा। व्यक्ति केन्द्र होगा, समाज गौण होगा और समाज केवल हमारे अन्तर्व्यवहार की व्यवस्था होगी। और विवेकशील व्यक्ति का अन्तर्व्यवहार किसी बाहरी समय और नियम से नहीं चलेगा, एक आन्तरिक अनुशासन से चलेगा। जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक समाज जैसे चलता है चलेगा। यह ऐसा ही है जैसे हम कहे कि सब लोग स्वस्थ हो जाए तो इन डाक्टरों का, अस्पतालों का क्या होगा? वह स्वस्थ रह जाते हैं तो उनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती क्योंकि वह अच्छा काम नहीं है जो डाक्टर और अस्पताल को करना पड़ता है। अच्छा लग रहा है क्योंकि हम बीमार होने का काम किए चले जाते हैं। यह अच्छा नहीं है क्योंकि हम जो गल्त करते हैं उसको पोछने का काम करना पड़ता है सिर्फ। और तो कुछ करना नहीं पड़ता। तो जैसे-जैसे विवेक विकसित हो, वीतरागता विकसित हो, समाज होगा, अन्त सम्बन्ध होंगे। लेकिन वह बड़े गौण हो जाएंगे, व्यक्ति प्रमुख हो जाएगा और उसका अन्तर् अनुशासन असली बात होगी। इसलिए मेरा कहना यह है कि समाज की व्यवस्था में व्यक्ति को संयम देने की चेष्टा कम होनी चाहिए, विवेक देने की व्यवस्था ज्यादा होनी चाहिए। विवेक से संयम आएगा और संयम से विवेक कभी नहीं आता है।

प्रश्न : पर जब तक विवेक नहीं संयम की आवश्यकता मान लीजिए?

उत्तर बनी ही रहेगी।

प्रश्न महावीर भी ऐसा ही समझते थे?

उत्तर : समझेंगे ही। इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं। यानी जब तक विवेक नहीं है तब तक किसी न किसी तरह के नियमन की व्यवस्था बनी ही रहेगी। लेकिन यह ध्यान रहे कि किसी भी नियम की व्यवस्था से विवेक आने वाला नहीं, इसलिए विवेक को जगाने की सतत कोशिश जारी रखनी पड़ेगी। संयम और नियम की व्यवस्था को सिर्फ आवश्यक बुराई समझना होगा। वह गौरव की बात नहीं। चौरास्ते पर एक पुलिस वाला खड़ा है, इसलिए लोग बाएं-दाएं चल रहे हैं, यह कोई सौभाग्यपूर्ण बात नहीं। लोगों को बाए-दाए चलना चाहिए और पुलिस वाले को विदा होना चाहिए। व्यर्थ ही एक आदमी

को हम परेशान कर रहे हैं कि वह लोगों को बाए-दाए चलाता रहे। और लोग कैसे बुद्धिहीन हैं कि अगर चौरास्ते पर एक पुलिसवाला नही है तो वे बाए-दाए भी नही चलेंगे। इसका मतलब है कि समाज ने बुद्धि पैदा करने की कोशिश ही नही की है अब तक, और पुलिस वालो से काम ले रही है विवेक का। करोड़ो निकल रहे है एक सडक से और एक पुलिस वाला स्थानापन्न हो गया है, करोडो लोगो के विवेक का। वह पुलिस वाला भी विवेकहीन आदमी है। वह किसी तरह चला लेता है बाए दाए। लेकिन फर्क क्या पड़ता है? बस बाए दाए चलना हो जाता है और एकसीडेट कुछ कम होते हैं सड़क पर। लेकिन अगर हमने समझा है कि विवेक की कमी इसने पूरी कर दी तो हम गल्ती मे हैं। यह सिर्फ सूचक है कि विवेक नही है और हमे कोशिश करनी चाहिए कि विवेक आ जाए ताकि हम इसको विदा कर दे। नीति, सयम, नियम धीरे-धीरे विदा हो सके ऐसा विवेक हमे जगाना चाहिए। जिस समाज मे कोई नियम नही होगा, कोई सयम नही होगा, लोग विवेक से जीते होगे, वह पहली बार सही समाज होगा। नही तो समाज का सिर्फ धोखा चल रहा है।

प्रश्न—मेरी इसमे सहमति है जो आप कह रहे है। जहा मतभेद मुझे लगा यानी विचारकों में मतभेद, वह यह कि जिसको आप कह रहे है नियम, यद्यपि वह अन्ततोगत्वा छोड़ने के लिए है और व्यर्थ है, उसे वह व्यवहार दृष्टि नाम देते है। तो उस व्यवहार दृष्टि की कोई आंशिक उपयोगिता है या नहीं है, इस पर मतभेद चलता है। यह विचारणीय है।

उत्तर : वह चलेगा उनमे क्योंकि विचारक द्रष्टा नही है। और वह जो चल रहा है जैसा कि उन्होंने मान रखा है कि एक व्यवहार दृष्टि और एक निश्चय दृष्टि, ऐसी कोई चीज नही होती। दृष्टि तो एक ही है—निश्चय दृष्टि। व्यवहार की दृष्टि कहना ऐसा ही है जैसे कि यह कहना कि कुछ लोगो की आख की दृष्टि होती है, कुछ लोगो की अन्धी दृष्टि होती है। हम कहे कि अन्धे की भी आख तो होती है, सिर्फ देखती नही। और आख वाले की भी आख होती है, सिर्फ देखती है, इतना फर्क होता है, इतना ही फर्क होता है, बाकी आख तो दोनो मे ही होती है। तो एक अधी आख होती है, एक देखने वाली आख होती है। व्यवहार दृष्टि अन्धे की आख है। वह दृष्टि है ही नही। दृष्टि तो एक ही है जहा से दर्शन होता है। वह निश्चय दृष्टि है।

व्यवहार की जो सारी बातचीत है, और ऐसा दो हिस्से करना, कि यह

भी एक दृष्टि है और इसकी भी जरूरत है—यह सिर्फ अन्धे अपने को तृप्ति देने की कोशिश कर रहे हैं। यानी अधा यह मानने को भी राजी नही कि मैं अधा हू। वह कहता है कि मेरा अधा होना भी बहुत जरूरी है। आख की तरफ जाने के लिए मेरा अधा होने की बडी आवश्यकता है। वह यह कह रहा है। कोई दृष्टि नही है दो। दृष्टि तो एक ही है। व्यवहार दृष्टि सिर्फ समझौता है और अन्धो के विचार है अपने। अन्धों के भी विचार होते है। आख मिल गई वहा से दर्शन शुरू होता है, विचार खत्म होता है। वहा कोई सोचता नही, वहा देखता है। और ये जो दो टुकडे हुए इन दो टुकड़ो ने बडा नुकसान किया है। क्योकि वह व्यवहार दृष्टि वाला कहता है कि यह भी जरूरी है। पहले तो इसको पूरा करना पड़ेगा। फिर, इसके बाद दूसरी बात उठेगी—साधते-साधते। व्यवहार दृष्टि साधते-साधते निश्चय दृष्टि उपलब्ध होगी, इससे ज्यादा गलत बात नही हो सकती। वास्तव मे बात यह है कि व्यवहार दृष्टि छोडते-छोड़ते निश्चय दृष्टि उपलब्ध होगी। साधने का सवाल ही नही, छोड़ने का सवाल है। यानी अन्धे को साधते-साधते आंख मिलेगी, ऐसा नही है। अधेपन को छोडते-छोडते आख मिलेगी। व्यवहार दृष्टि छोडनी है क्योकि वह दृष्टि नही, दृष्टि का धोखा है। उपलब्ध तो निश्चय दृष्टि करनी है। इसलिए मैं ये दो शब्द भी लगाना पसद नही करता क्योकि वह 'निश्चय' लगाना बेमानी है वह तो व्यवहार के खिलाफ लगाना पडता है। इसलिए मैं कहता हू अंधापन छोडना है, दृष्टि उपलब्ध करनी है, निश्चय का क्या सवाल है? ऐसी भी कोई दृष्टि होती है, जो अनिश्चित हो। फिर उसको दृष्टि कहना फिजूल है। और व्यवहार की कोई दृष्टि नही होती। जैसे कि एक अधा आदमी है। वह अपनी लकडी टेक-टेक कर रास्ता बना लेता है, दरवाजा खोज लेता है और कहता है कि मुझे लकडी की बड़ी जरूरत है। ठीक ही कहता है क्योकि वह अधा है। लेकिन उसे ध्यान रखना चाहिए। अगर वह कहे कि आख मिल जाए तो भी लकडी की जरूरत है तब हम उससे कहेगे कि तुम फिर पागल हो। तुम्हे पता ही नही कि आंख मिलने से क्या होता है। व्यवहार दृष्टि हमारी स्थिति है अन्धेपन की। निश्चय दृष्टि हमारी सम्भावना है आख की। हमें व्यवहार दृष्टि को तोड़ना है ताकि निश्चय दृष्टि यानी सम्यक् दृष्टि हमे उपलब्ध हो सके।

तृतीय प्रवचन

१९.९.६९ रात्रि

३

महावीर के बचपन के सम्बन्ध मे थोडी सी बाते कल सोची। जैसा मैंने कहा, तीर्थंकर की चेतना का व्यक्ति पूर्णता को छूकर लौटा होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि महावीर के लिए इस जीवन मे करने को कुछ भी बाकी नही रहा, सिर्फ देने को बाकी रहा है, पाने को कुछ भी बाकी नहीं रहा। यह बात अगर समझ मे आए तो इस बात की गहरी निष्पत्तिया होगी। पहली निष्पत्ति यह होगी कि साधारणत महावीर के सम्बन्ध मे जो यह समझा जाता है कि उन्होने त्याग किया, वह बिल्कुल व्यर्थ हो जाएगा। आज इस बात को समझ लेना जरूरी है, महावीर ने कभी भी भूलकर कोई त्याग नही किया। त्याग दिखाई पडा है महावीर ने कभी भी नही किया है। और जो दिखाई पडता है, वह सत्य नही है। क्योकि जो दिखाई पडता है वह देखने वालो पर ज्यादा निर्भर होता है, बजाय इसके कि जो उन्होने देखा। भोग से भरे हुए लोगो को किसी भी चीज का छूटना त्याग मालूम पडता है। और इसलिए महावीर के जीवन पर जिन्होने लिखा उन्होने रत्ती-रत्ती भर एक-एक चीज का हिसाब बताया है कि उन्होने क्या-क्या छोड़ा। कितने बडे महल थे, कितना बडा राज्य था, कितने हाथी और कितने घोडे थे, कितने मणि-माणिक्य। इन सबका एक-एक हिसाब किया है। ये हिसाब देने वाले भोगी चित्त के लोग थे, इतना तो निश्चित है क्योकि इन्हे मणि-माणिक्य, घोडे-हाथी और महल ही बहुत मूल्यवान मालूम होते थे। इनको महावीर ने छोड़ा, यह घटना इनको बडी चमत्कारपूर्ण मालूम पडी होगी क्योकि भोगी चित्त कुछ भी छोडने मे समर्थ नही है। वह सिर्फ पकड़ सकता है, छोड नही सकता। हा उसे छुडाया जा सकता है, लेकिन वह छोड़ नही सकता। और, जब वह देखता है कि कोई व्यक्ति सहज ही छोड़ कर जा रहा है तो इससे ज्यादा महत्वपूर्ण और चमत्कारपूर्ण घटना उसे मालूम नहीं हो सकती। लेकिन महावीर जैसी चेतना कुछ भी छोड़ती नही है क्योकि उस तल पर कुछ भी पकडने का भाव नही रह जाता है। जो

पकडते हैं, वे छोड भी सकते हैं। जो पकडते ही नही, जिनकी कोई पकड नही है, उनके छोडने का कोई सवाल ही नही। महावीर ने कुछ भी नही त्यागा है, जो व्यर्थ है उमके बीच से वह आगे बढ गए है। लेकिन हम सबको दिखाई पडेगा कि बहुत बडा त्याग हुआ है। और, ऐसा दिखाई पडने मे हम पकडने वाले चित्त के परिग्रही लोग है, यही सिद्ध होगा, और कुछ सिद्ध न होगा। महावीर त्यागी थे, ऐसा तो नही है। लेकिन महावीर को जिन लोगो ने देखा वह भोगी थे—इतना सुनिश्चित है। भोगी के मन मे त्याग का बडा मूल्य है। उल्टी चीजो का ही मूल्य होता है। बीमार आदमी के मन मे स्वास्थ्य का बडा मूल्य है। स्वस्थ आदमी को पता भी नही चलता। बुद्धि-हीन के मन मे बुद्धिमत्ता मूल्यवान है, लेकिन बुद्धिमान को कभी पता भी नही चलता। जो हमारे पास नही है उसका ही हमे बोध होता है। और जो हम पकडना चाहते है, उसे कोई दूसरा छोडता हो तो भी हम आश्चर्य से चकित रह जाते है। लेकिन यहा मै महावीर के भीतर से चीजो को कहना चाहता हू। महावीर कुछ भी नही छोड गए है। और, जो व्यक्ति कुछ छोडता है, छोडने के बाद उमके पीछे छोडने की पकड शेष रह जाती है। जैसे एक आदमी लाख रुपए छोड दे। लाख रुपए छोड देगा, लेकिन लाख रुपए मैंने छोडे, यह पकड पीछे शेष रह जाएगी। यानी भोगी चित्त त्याग को भी भोग का ही उपकरण बनाता है। भोगी चित्त धन को ही नही पकडता, त्याग को भी पकड लेता है। असल सवाल तो पकडने वाले चित्त का है। वह अगर सब कुछ त्याग कर दे तो वह इस सबका हिसाब-किताब रख लेगा अपने मन मे कि क्या-क्या मैंने त्यागा है, कितना मैंने त्यागा है। ऐसे त्याग का कोई मूल्य नही। यह भोग का ही दूसरा रूप है, परिग्रह का ही दूसरा रूप है। लेकिन एक और तरह का त्याग है जहा चीजें छूट जाती है क्योकि चीजो को पकडने से हमारे भीतर की कोई तृप्ति नही होती, बल्कि चीजो को पकडने से हमारे भीतर का विकास अवरुद्ध होता है। हम चीजे पकडते क्यो है ? चीजो को पकडने का कारण क्या है ? हम चीजो को पकडते है क्योकि चीजो के बिना एक असुरक्षा मालूम पडती है। अगर मेरा कोई भी मकान नहीं है तो मैं असुरक्षित हू, किसी दिन सडक पर पडा हो सकता हू। हो सकता है मर रहा होऊ और मुझे कोई छप्पर न मिले। तो मैं असुरक्षित हू। इसलिए मकान को जोर से पकडता हू, धन को जोर से पकडता हू क्योकि कल का क्या भरोसा है। कल के लिए कुछ इन्तजाम चाहिए। जिस व्यक्ति के मन में

जितनी असुरक्षा का भाव है, वह उतना चीजो को जोर से पकडेगा। लेकिन जिस चेतना को यह पता हो गया कि उसके तल पर कोई असुरक्षा नही, वहा न कोई भय है; न कोई पीडा है, न कोई दुःख है, न कोई मृत्यु है—ऐसा जिसे पता चल गया है वह कुछ भी नही पकडता। पकडता था असुरक्षा के कारण। असुरक्षा न रही तो पकड भी न रही। और जो अपने भीतर प्रविष्ट हुआ है वह तो प्रतिक्षण, प्रतिपल अपने आनन्द से भर गया है कि कल का सवाल कहा है कि कल क्या होगा, आज काफी है।

जीसस निकलते थे एक बगीचे के पास से और बगीचे मे फूल खिले है। और जीसस ने अपने शिष्यो से कहा है देखते हो इन फूलो को सोलोमन ? खुद सोलोमन भी अपनी पूरी समृद्धि मे इतना शानदार न था। सम्राट् सोलोमन, जिसने सारी पृथ्वी के धन को इकट्ठा कर लिया था, अपनी पूरी समृद्धि में और साम्राज्य मे इन साधारण से फूलो के मुकाबले मे न था। देखते हो इनकी शान दार चमक, इनकी मुस्कराहट, इनका नाच। और साधारण मे गरीब लिली के फूल ! तो किसी सिलसिले मे पूछा है कारण क्या है ? रहस्य क्या है इसका कि सोलोमन साधारण लिली के फूल से भी शानदार न था। तो जीसस ने कहा : फूल अभी जीते है, सोलोमन कल के लिए जीता था। फूल अभी है, उन्हें कल की कोई चिन्ता नही, आज काफी है। और तुम भी फूलो की तरह ही रहो कि आज काफी हो जाए। तो जिसके लिए आज का, अभी का यह क्षण काफी है, आनन्द से भरा है, वह कल के क्षण की चिन्ता नही करता। इसलिए कल के क्षण के लिए इकट्ठा करने का पागलपन भी उसके भीतर नही है। वह जीता है आज के लिए। तो ऐसा व्यक्ति कुछ पकडता नही, छोडने का सवाल ही नही। छोडना आता है पीछे, त्याग आता है पीछे। जब पकड आ जाए तो सवाल उठता है, छोडो ! ऐसा व्यक्ति पकडता ही नही। और ध्यान रहे कि जिसको पकड आ गई है अगर वह छोडेगा तो पकड बाकी रहेगी, छोड़ने को पकड लेगा। वह पकड उसकी आदत का हिस्सा हो गई है। उसने धन पकडा था, अब वह त्याग पकडेगा। उसने मित्र पकडे थे, अब वह परमात्मा को पकडेगा; परिवार पकडा था, अब वह पुण्य, पाप, धर्म पकड लेगा। कल खाते-बही पकडे थे, अब वह शास्त्र पकड लेगा। शास्त्र भी खाते-बही हैं और धर्म भी सिक्का है जो कही और चलता है। और पुण्य भी मोहरे हैं जो कही काम पडती है। और वह उनको पकडेगा। इसलिए ध्यान देने की यह बात है कि जो व्यक्ति पकड़ने के चित्त से भरा है, वह अगर त्याग करेगा तो वह भी

नहीं होने वाला है। इसलिए सवाल त्याग करने का नही, सवाल पकड़ने वाले चित्त की वस्तुस्थिति को समझ लेने का है। अगर हमारी समझ मे आ गया कि यह है चित्त पकडने वाला और पकडना व्यर्थ हो गया तो पकड विलीन हो जाएगी, त्याग नही होगा। पकड विलीन हो जाएगी और चीजें ऐसी दूर हो जाएगी, जैसे वह दूर हैं ही। कौन सा मकान किसका है? एक पागलपन तो यह है कि पहले मैं यह मानू कि यह मकान मेरा है। और फिर दूसरा पागलपन यह है कि मैं इसका त्याग करू। लेकिन यह ध्यान रहे कि अगर यह मकान मेरा नही है तो मैं त्याग करने वाला कौन हू? त्याग मे भी मेरा स्वामित्व शेष है। मैं कहता हू यह मकान मै त्याग करता हू। मैं ही त्याग करता हू न? और क्या त्याग मै कर सकता हू उसका जो मेरा ही नही? तो त्याग करने वाला यह मान कर ही चलता है कि मकान मेरा है। और वस्तुत जो त्याग की घटना घटती है वह इस सत्य मे घटती है कि किसी को पता चलता है कि यह मकान मेरा है ही नही। तो त्याग कैसा? मेरा नही है, यह बोध पर्याप्त है, कुछ छोडना नही पडता। जो मेरा नही है, वह छूट गया। और चीजे थोडे ही हमे बाधे हुई है। चीजे और हमारे बीच मे 'मेरे' का एक भाव है, जो बाधे हुए है। एक मकान है जिसमे आग लग गई है। तब घर का मालिक रो रहा है, चिल्ला रहा है. और इसी भीड मे से एक कहता है आप क्यो परेशान हो रहे है? आपको पता है कि आपके बेटे ने मकान बेच दिया है और पैसे मिल गए है। बेटे ने खबर नही दी आपको। और वह आदमी एकदम हसने लगा और उसने कहा ऐसा है क्या? अब भी वह मकान जल रहा है, अब भी आदमी वही है, सब भीड भी वही है। लेकिन अब वह उसका मकान नही रह गया है। मकान बेचा जा चुका है। अब वह मेरा नही। वह हस रहा है और वह अब ऐसी हल्की बातें कर रहा है जैसी कि और सारे लोग कर रहे हैं कि बहुत बुरा हो गया कि मकान जल गया है। लेकिन तभी उसका बेटा भागा हुआ आता है। वह कहता है। वह आदमी बदल गया है। रुपए अभी मिले नहीं हैं। सिर्फ बेचा था। असल मे वह आदमी बदल गया है और वह आदमी फिर चिल्लाने लगा है कि मै मर गया, मैं लुट गया। अब क्या होगा? एक क्षण मे 'मेरा' फिर जुड गया है। मकान मेरा ही है और जल रहा है तो मकान के जलने की पीड़ा है या 'मेरे' के जलने की। और अगर 'मेरे' के जलने की पीड़ा है, तो जो आदमी कहता है 'मेरा मकान', उसकी भी पकड है; जो आदमी कहता है 'मेरा मकान'

मैं त्याग करता हूं, उसकी भी पकड़ है। लेकिन जो आदमी कहता है 'कौन सा मकान? मेरा है कोई मकान ? मुझे पता नही चलता मेरा कौन सा मकान है ? मेरा कोई मकान ही नही है, मैं बिल्कुल बिना मकान के हूं' अगृही है वह। अगृही का मतलब यही है। अगृही का मतलब यह नहीं कि जिसने घर छोड़ दिया है। अगृही का मतलब यह है जिसने पाया कि कोई घर है ही नही। इसे ठीक से समझ लेना। सन्यासी को हम कहते हैं अगृही, गृहस्थ नही। लेकिन कौन है अगृही? जिसने घर छोड दिया। मगर उसका घर बाकी है; वह चाहे पहाडों में, चाहे हिमालय मे चला जाए, जिस घर को छोडा, वह अभी उसका घर है। अगृही का मतलब है जिसने पाया कि घर तो कही है ही नही, कोई घर मेरा नही है। सन्यासी का मतलब यह नहीं जिसने पत्नी का त्याग किया। सन्यासी का मतलब है कि जिसने पाया कि पत्नी कहा है ? सन्यासी का मतलब यह नही कि जिसने साथी छोड दिये है। संन्यासी का मतलब है जिसने पाया कि साथी कहा हैं ? खोजा और पाया कि साथी तो कही भी नही है कोई, बिल्कुल अकेला हूं। इन दोनो बातो मे बुनियादी भेद है। पहले मे हम कुछ पकड कर छोडने की कोशिश कर रहे है। दूसरे मे हम पाते है कि पकड का उपाय ही नही है, किसको पकडें, कहा पकडने जाए। तो महावीर कुछ त्याग नही रहे हैं। जो उनका नही है, वह दिखाई पड गया है। इसलिए कोई पकड नही है। इसलिए यह कहना बिल्कुल व्यर्थ की बात है कि वह सब छोड कर जारहे हैं। वह जान कर जा रहे है कि कुछ भी उनका नही है। और अगर हम इस बात को समझ लेंगे तो महावीर के बाबत, समस्त त्याग के बाबत हमारी दृष्टि ही दूसरी हो जाएगी। तब हम लोगो को यह न समझाएगे कि तुम छोड़ो, तुम त्याग करो। हम लोगो को समझाएगे कि तुम देखो, तुम्हारा है क्या ? तुम्हारा है कुछ ?

एक सम्राट था इब्राहीम। उसके द्वार पर एक संन्यासी सुबह से ही शोर गुल मचा रहा है। और पहरेदार से कहता है मुझे भीतर जाने दो, मैं इस सराय मे ठहरना चाहता हू। और पहरेदार कहता है . तुम पागल हो गए हो, संन्यासी हो कि पागल हो। यह सराय नही, सम्राट का महल है, उनका निवास स्थान है। तो वह कहता है कि फिर मुझे उसी सम्राट से बात करनी है। क्योंकि हम तो सराय समझ कर यहां आए हैं और ठहरना चाहते हैं। वह धक्का देकर भी चला जाता है। सम्राट भी आवाज सुन रहा

हैं, सब बातें सुन रहा है और उससे कहता है : तुम कैसे आदमी हो, यह मेरा निजी महल है। मेरा निवास स्थान है। यह सराय नही, सराय दूसरी जगह है। वह सन्यासी कहता है : मैं समझा कि पहरेदार ही नासमझ है; आप भी नासमझ हैं। पहरेदार क्षमा के योग्य है। आखिर वह पहरेदार ही है। आपको भी यही ख्याल है कि यह आपका निवास स्थान है, यह आपका घर है। सम्राट ने कहा. ख्याल ? यह मेरा है। ख्याल नही है यह मेरा। यह मेरा है ही। सन्यासी ने कहा बडी मुश्किल मे पड गया मैं। कुछ दो बार दस साल पहले मैं आया था। तब भी झझट हो गई थी। और मैंने कहा था कि इस सराय मे ठहर जाऊ। तब तुम्हारी जगह एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था और वह कहता था : यह मेरा ही महल है। यह मकान मेरा है। तो उस इब्राहीम ने कहा वह मेरे पिता थे। उनका अब देहावसान हो गया। उस फकीर ने कहा मैं उनके पहले भी आया था, तब एक और बूढ़े को पाया था। वह भी इसी जिद्द मे था कि यह मेरा महल है। जब यहा कई बार मकान के मालिक बदल जाते है तो इसको सराय कहना चाहिए या निवास ? और मैं फिर आऊंगा कभी। पक्का है कि तुम मिलोगे ? वायदा करते हो ? तुम न मिले तो फिर बडी दिक्कत हो जाएगी। फिर कोई मिलेगा कहेगा मेरा है। तो फिर मुझे ठहर ही जाने दो। यह सराय ही है, किसी का नही है। जैसे तुम ठहरे हो वैसे मैं भी ठहर सकता हू। इब्राहीम उठा सिंहासन से, उस फकीर के पैर छुए और कहा, तुम ठहरो लेकिन अब मैं जाता हू। उसने कहा कहा जाते हो ? सम्राट् ने कहा कि मैं तो इसी भ्रम मे ठहरा हुआ था कि यह मेरा मकान है। अगर सराय हो गया तो बात खत्म हो गई। जो मैं ठहरा था, तो इन दीवारो की वजह से थोड़े ही ठहरा था। ठहरा था इस वजह से कि यह मेरा है महल। अगर तुम कहते हो कि यह सराय है तो ठीक है, तुम ठहरो। मैं जाता हू। और वह सम्राट छोडकर चला गया। उस सम्राट ने त्याग किया क्या ? नही। मकान नही था, सराय थी, यह दिखाई पड गया। बात खत्म हो गई। सराय का कोई त्याग करता है ? नही, सराय मे ठहरता है और विदा हो जाता है।

ऐसा बोध महावीर जन्म के साथ लेकर पैदा हुए थे। ऐसा बोध हम चाहे तो हमे भी हो सकता है। और ऐसे बोध के लिए जो जरूरी है, वह सम्पत्ति का त्याग नही, सम्पत्ति के सत्य का अनुभव है। सम्पत्ति का त्याग, हो सकता है, उतना ही अज्ञानपूर्ण हो जितना सम्पत्ति का सग्रह था। इस-

लिए प्रश्न संग्रह और त्याग का नहीं, प्रश्न सत्य के अनुभव का है। सम्पत्ति क्या है? है कुछ मेरा? यह बोध त्याग बनता है, ऐसा त्याग किया नही जाता। इसलिए ऐसे त्याग के पीछे कर्ता का भाव इकट्ठा नही होता और जिस कर्म के पीछे कर्त्ता का भाव इकट्ठा नही होता उस कर्म से कोई बन्धन पैदा नही होता। और जिस कर्म से कर्ता का भाव पैदा होता है वह कर्म बन्धन का कारण हो जाता है। यानी कर्म कभी नही बाधता। कर्म के साथ कर्ता का भाव जुडा हो तो ही वह बाधता है। और कर्ता का जो भाव है वही हमारा कारागृह अहकार है। महावीर से अगर कोई कहे कि यह तुमने त्याग किया तो वह हसेंगे, कहेगे किसका त्याग ? जो मेरा नही था, वह नही था। यह मैंने जान लिया। त्याग कैसे करू ? त्याग दोहरी भूल है—भोग की दोहरी भूल। भोग पीछा नही छोड रहा है। तो पहली बात यह समझ ले कि महावीर जैसे व्यक्ति को त्यागी समझने की भूल कभी नही करनी चाहिए। सिर्फ अज्ञानी त्यागी हो सकते है, ज्ञानी कभी त्यागी नही होते। ज्ञानी इसलिए त्यागी नही होते कि ज्ञान ही त्याग है। उसे त्यागी होना ही नही पडता। उसके लिए कोई प्रयास, कोई श्रम नही उठाना पड़ता। अज्ञानी को त्याग करना पडता है, श्रम लेना पडता है, सकल्प बाधना पड़ता है, साधना करनी पडती है। अज्ञानी के लिए त्याग एक कर्म है। और इसलिए अज्ञानी का जब त्याग होता है तो अज्ञानी 'त्याग किया' ऐसे कर्ता का निर्माण कर लेता है। यह कर्ता उसका पीछा करता है। और यही कर्ता गहरे मे हमारा परिग्रह है। सम्पत्ति हमारा परिग्रह नही है। जो कहता है 'मैंने किया' वही हमारा परिग्रह है।

कभी आपने सोचा ? रात आप सपना देखते है कि नीद मे आप एक आदमी की हत्या करते है। सुबह आप उठे और आपको याद आया कि आपने सपने मे एक आदमी की हत्या कर दी है। फिर क्या आप ऐसा कहते हैं कि यह हत्या मैंने की ? चूकि, ऐसा नही कहते, इसलिए कोई पश्चात्ताप भी नही आप सुबह बिल्कुल हल्के फुल्के हैं। एक आदमी की हत्या की है रात और सुबह आप मस्त हैं। क्योकि स्वप्न मे आप द्रष्टा रहे हैं, कर्ता नही हो पाए। सुबह आप जानते हैं सपना देखा था। इसलिए रात हत्या कर दी है, तब से सुबह से हाथ पैर नही धो रहे है, पछता नही रहे है और घबरा भी नही रहे हैं कि पाप हो गया। आप जानते हैं कि देखा था सपना ही। हो सकता है सपने में आप संन्यासी हो गए हो, सब त्याग कर दिया हो लेकिन सुबह

आप हंसते हैं क्योंकि आप द्रष्टा हो गए है। हो सकता है सपने में जब सो रहे हो तो हत्या करके भागे हो; छाती धडक गई हो, पसीना छूट गया हो, छिप गए हो कि अब फसे, अब फसे। और हो सकता है कि सपने मे जब त्याग किया हो तो अकड कर चले हो, फूल-मालाए पहनी हो, रास्ते पर जलूस निकले हो, स्वागत-सत्कार हुआ हो और अकड कर समझा हो कि हा, मैंने सब कुछ त्याग कर दिया लेकिन सुबह जाग कर आप कहते हैं कि सपना था, मतलब कि मैं द्रष्टा था। अब इस बात को ठीक से समझ लेना कि जिस चीज के हम द्रष्टा हो जाते हैं, वह सपना हो जाती है। और जिस चीज के हम कर्ता हो जाते हैं वह सत्य हो जाती है चाहे वह सपना ही हो। जब हम कर्ता हो जाते हैं सपने मे तो वह सत्य हो जाता है सपना। और चाहे जीवन सत्य ही क्यो न हो जब हम द्रष्टा हो जाते हैं तो वह सपना हो जाता है। यानी सपने को अगर सत्य बनाना हो तो प्रक्रिया यह है कि आप द्रष्टा भर मत हो, आप कर्ता हो तब सपना बिल्कुल सत्य हो जाएगा। और ठीक इससे उल्टी प्रक्रिया यह है कि आप जिसको सत्य कहते हैं, उसके द्रष्टा होना, कर्ता भर मत बनना, तब सत्य एकदम सपना हो जाएगा।

तो महावीर छोड कर इसलिए नही जा रहे है कि सपना था और छोडना है और छोड रहे है। नही, एक सपना टूट गया है, और द्रष्टा हो गए हैं और बाहर हो गए है। अब कोई लौट कर उनसे कहे कि कितनी सम्पदा थी जो छोडी थी तो वह कहेंगे कि सपने की भी कोई सम्पदा होती है, सपने मे कोई त्याग होता है। भोग भी सपना है, त्याग भी सपना है क्योंकि दोनो हालत मे कर्ता मौजूद है। इसलिए ज्ञानी न त्यागी है, न भोगी है, सिर्फ द्रष्टा रह गया है। और इसलिए जो भी द्रष्टा रह जाए उसके जीवन से भोग और त्याग दोनो एक साथ विदा हो जाते है। ऐसा नही कि त्याग बच रहता है और भोग विदा हो जाता है। भोग और त्याग एक ही सिक्के के दो पहलू थे, वह दीख जाता है। दूसरी दृष्टि से देखें तो इसी का अर्थ ही वीतरागता हुआ। अगर मैं कर्ता नही हू तो वीतरागता फलित हो जाएगी। और अगर मैं कर्ता हू तो राग फलित होगा या विराग फलित होगा; भोग होगा या त्याग होगा; दुख होगा, या सुख होगा। द्वद्व मे सब कुछ होगा लेकिन निर्द्वन्द्व कुछ भी नही हो पाएगा। महावीर त्याग करते है, ऐसी धारणा है। जो उनको मानते हैं, उनके अनुयायी हैं, उनके पीछे चलते हैं उन सबकी ऐसी धारणा है कि वह त्याग करते है, महात्यागी हैं, और

मुझे लगता है इसमें वे केवल अपनी भोगवृत्ति की खबर दे रहे हैं। महावीर का उन्हें कुछ भी पता नही। और यह सवाल महावीर का नहीं। दुनिया में जब भी किसी व्यक्ति से त्याग हुआ है तो वैसे ही हुआ है।

मैंने सुना है एक फकीर थे। रात एक सपना देखा उन्होंने और सुबह जब उठे तब उनका एक शिष्य उनके पास से गुजरा। तब उन्होने कहा— सुनो जरा! मैंने एक सपना देखा है। क्या तुम उसकी व्याख्या कर सकोगे? उसने कहा ठहरिए! मैं अभी व्याख्या किए देता हू। वह शिष्य गया और पानी का भरा हुआ घड़ा उठा लाया और कहा. जरा अपना मुह धो डालिए। तो गुरु खूब हंसने लगे। तब एक दूसरा शिष्य गुजरा। उससे कहा: सुनो एक मैंने बहुत अद्भुत सपना देखा है। और इस नासमझ को कहा कि तुम व्याख्या करो तो यह पानी का घडा ले आया है और कहता है कि मुह धो डालिए। तुम व्याख्या करोगे? उसने कहा: एक दो क्षण रुकिए। मैं अभी आया। वह एक कप मे चाय ले आया और कहा अगर मुह धो लिया हो तो थोडी चाय पी लीजिए। तो गुरु खूब हसे और वह कहता है कि अगर आज यह घडा न लाया होता तो मैंने इसको कान पकड़ कर बाहर कर दिया होता। और अगर यह आज चाय लेकर न आ गया होता तो इस आश्रम मे ठहरने का उपाय न था। सपने की कहीं व्याख्या करनी होती है? सपना सपना, दिख गया। बात खत्म हो गई। सपने की कहीं व्याख्या करनी होती है? तो ठीक ही किया। पानी ले आया। उससे हाथ, मुह धो लिया। बात खत्म हो गई। अब क्या मामला है? अब हाथ मुह धो डालना ही काफी है। अब और कोई व्याख्या की जरूरत नही है। सपने की कोई व्याख्या नही करनी होती। व्याख्या सदा सत्य की होती है, सपने की नही। सपने की क्या व्याख्या? सपने का बोध त्याग है। सपने का बोध— जो जीवन हम जी रहे हैं वह एक सपने की भांति है—इस बात का बोध। फिर कहा, कुछ पकड़ना है?

मैंने सुना है एक सम्राट् का बेटा मर रहा है। वह उसकी खाट के पास बैठा है। चार दिन, पाच दिन, दस दिन बीत गए है। और बेटा रोज डूबता जा रहा है। और एक ही लड़का है और बचने की कोई उम्मीद नही। वही आशा थी बुढ़ापे की, वही भविष्य था। वह सम्राट् न सो पाता है, न जग पाता है, बेचैन है, परेशान है। और चिकित्सकों ने कह दिया है कि आज रात बेटे के बचने की कोई उम्मीद नही। सम्राट् उसी के पास कुर्सी रखे बैठा

है। कब स्वांस छूट जाए कुछ पता नही। जितनी देर स्वांस रह जाए उतना ही अच्छा है। कई दिन का जगा है। उस रात दो बजे सम्राट् की नीद लग गई है। और उसने सपना देखा है कि उसके बारह बेटे हैं। इतने सुन्दर, इतने स्वस्थ जैसे कभी देखे नही थे, जैसे कभी किसी के हुए नही। बडा चक्रवर्ती साम्राज्य है, सारी पृथ्वी का राजा है। अद्भुत स्फटिक के महल हैं, स्वर्ण पथ हैं, सुन्दर नारिया है, सुन्दर पत्नियाँ हैं। सब सुख है। कोई कमी नही। और तभी वह बेटा जो बीमार पडा है, मर गया है। राजा की पत्नी चिल्ला कर रोई है, राजा चुपचाप बैठा रह गया है। थोडी देर चुप रहा है; फिर हसने लगा है, फिर रोने लगा है, फिर हसने लगा है। उसकी पत्नी ने कहा: आपको क्या हो गया है। आप पागल तो नही हो गए। उसने कहा पागल ? कह नही सकता। पहले पागल था कि अब पागल हो गया हू। मैं बडी मुश्किल मे पड गया हू। रानी ने कहा—मुश्किल की क्या बात है। बेटा मर गया है, यह बडी मुश्किल है। राजा ने कहा—अब यह सवाल नही रहा। अब मैं बडी दिक्कत मे हू कि मेरे बारह बेटे मर गए, उनके लिए रोऊ कि मेरा एक बेटा मर गया, उसके लिए रोऊ ? मैं रोऊ किसके लिए ? या तेरह के लिए इकट्ठा रोऊ ? तेरह के लिए इकट्ठा रोना बडा मुश्किल है क्योकि तेरह होते नही। वे बारह एक सपने के थे और जब मैं उस सपने मे था तब वह था ही नहीं लडका। कहा गया था मुझे पता नही। खो गया था। और जब जग गया हू तो यह एक ही बचा है और वे बारह खो गए है। और जैसे उन बारह के साथ यह एक भूल गया था, वैसे इस एक के साथ वे बारह भूल गए है। क्या सच है, क्या झूठ है, मैं इस मुश्किल मे पड गया हू। रोऊ तो किसके लिए ? उन बारह के लिए रोऊ, या इस एक के लिए या तेरह के लिए ? और तेरह का जोड नही बनता। या फिर किसी के लिए न रोऊ क्योकि एक सपना बनता है, एक छूट जाता है, दूसरा बनता है। दूसरा छूट जाता है, तीसरा बनता है, तीसरा छूट जाता है। रोऊ किसके लिए? अब पागल नही हू। तो इस राजा को हम यह न कहेंगे कि उसने बेटे का मोह त्याग दिया। नही, यह बात ही व्यर्थ हो गई अब। अब हम यह न कहेगे कि वह अनासक्त हो गया, निर्मोही हो गया। नही, हम यह कुछ भी न कहेंगे। अब हम सिर्फ इतना ही कहेंगे कि बेटा सत्य न रहा। निर्मोही या मोही होने के लिए भी बेटे का सत्य होना जरूरी है। अब हम इतना ही कहेगे कि बेटा एक सपना हो गया। बात खतम हो गई। अब यह राजा को बेटे का मोह

छूट गया—ऐसा नहीं। बेटा सत्य ही न रहा। और, अगर बेटा सत्य न रहे तो क्या बाप सत्य रह जाएगा। इससे हम और थोडा भीतर जाएंगे तो पता चल जाएगा कि जब बेटा असत्य हो गया तो बाप की क्या सत्यता रह जाएगी। उन बारह बेटो के साथ वह बाप भी तो मर गया जो सपने में था। वह अब कहा है ? इस बेटे के साथ इसका बाप भी मर गया वह अब कहाँ है ?

अगर जीवन का एक कोना भी सपना हो जाए तो आप फिर पूरे जीवन को सपना होने से न बचा सकेंगे क्योकि सब परस्पर सम्बन्धित हैं। अगर बेटा असत्य है तो बाप भी असत्य हो गया है। फिर सत्य क्या बचेगा ? सब सम्बन्ध असत्य हो गए। अगर जीवन का एक कोना भी दिखने लगे कि सपना है तो वह सपना पूरे जीवन पर फैल जाएगा। और सपने का एक कोना दिखने लगे कि यह सत्य है तो वह सारे जीवन पर फैल जाएगा। यहाँ जिंदगी के जो अनुभव है समग्र है, खण्ड-खण्ड नही है। ऐसा नही कह सकता कोई आदमी कि एक चीज भर मेरे लिए जीवन मे सपना होगी, बाकी सब सत्य है। अगर ऐसा कोई आदमी कहता है तो वह गल्ती मे पडा हुआ है। उसे कुछ सपना भी नही हुआ है। सपना होगा कुछ तो पूरा सपना हो जाता है। और सत्य होगा कुछ तो पूरा सत्य रहता है। सपने और सत्य के बीच कोई समझौता नही हो सकता। बारह बेटे और एक बेटे को जोडा नही जा सकता, तेरह नही हो सकते। महावीर को ऐसा जो बोध है, वह बोध उनका त्याग बन गया है। हमे ऐसा दिखा है क्योंकि हम भोगी हैं और सिर्फ त्याग की भाषा समझ सकते है। इसलिए हैरानी होगी कि त्यागियो के पास भोगी इकट्ठे हो जाते है क्योकि सिर्फ भोगी ही त्याग को पकड पाते हैं। और वह अद्भुत बात है कि महावीर जैसे अपरिग्रही के लिए, अगृही के लिए, महावीर जैसे सब कुछ त्याग मे खडे व्यक्ति के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ है वह अत्यन्त भोगी, अत्यन्त परिग्रही है। महावीर के पीछे जो जैनो की परम्परा खडी हुई उन जैनो से ज्यादा धनी, परिग्रही, सब इकट्ठा करने वाले लोग इस मुल्क मे दूसरे नही। यह थोडा विचारणीय है। इसके पीछे अर्थ है कि त्याग की भाषा भोगी को बहुत पकडती है। और भोगी आस-पास इकट्ठा खड़ा हो जाता है, और एक उल्टा जाल बन जाता है और, यह सदा हुआ है। अब जीसस जैसे आदमी के पीछे, जो कहता है कि जो तुम्हारे एक गाल पर चाटा मारे, दूसरा कर देना, जो कहता है कोई तुम्हारा कोट छीने तो कमीज भी

दे देना, उस आदमी के पीछे जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने जितनी तलवार चलाई इस जमीन पर, और जितना खून किया उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

असल मे जो बहुत घृणा से भरे हैं, उन्हे प्रेम की भाषा एकदम पकड लेती है। वह उनकी कमी है। वह उसे पूरा कर लेना चाहते है। भोगी त्याग से अपने को पूरा कर लेता है। खुद नही त्याग कर सकता, कोई बात नही; त्यागी को पकड लेता है। प्रेम की जिनके मन मे कमी है वे कुछ नही कह सकते खुद, वे एक प्रेम का सदेश देने वाले को पकड लेते है। सारी दुनिया मे सदा ऐसा हुआ है। अनुयायी अक्सर गुरु से उल्टे होते हैं क्योंकि उल्टी चीजें लोगो को आकर्षित करती है, पास बुला लेती हैं। और वे जो उल्टे लोग है ये जो भी रिकार्ड स्थापित करते हैं, वह एकदम गल्त होता है क्योंकि वह इनका सूचक होता है।

मन का जो द्वन्द्व है, और उल्टा होना है, उसमे एक दो बाते और समझ लेनी जरूरी हैं। हम सब के मन दो खण्डो मे बटे हुए है। चेतन और अचेतन मे बटे हुए हैं—एक मन जिसे हम जानते हैं, एक मन जिसे हम खुद भी नही जानते। और, मन के रहस्यो मे सबसे कीमती रहस्य यह है कि जो हमारे चेतन मन मे होता है उससे ठीक उल्टा हमारे अचेतन मन मे होता है। अगर चेतन मन मे कोई आदमी बहुत विनम्र है तो अचेतन मन मे बहुत अहकारी होगा। यानी चेतन मन से ठीक उल्टा उसका अचेतन होगा। अचेतन उल्टा ही होता है, और हमे कोई पता नही होता कि हमारा ही मन का बडा हिस्सा पीछे छिपा हुआ हमसे उल्टा है। और वह अचेतन ही इसलिए हो जाता है कि हम उल्टे हिस्से को दबाते हैं और वह पीछे अधेरे मे छिपता चला जाता है। जो हमे प्रीत करे उसे हम चेतन मे बचा लेते है, जो अप्रीत करे उसे पीछे हटा देते हैं। यह जो पीछे हमारे मन बैठा हुआ है, यह ठीक उल्टा होता है जैसे हम ऊपर से दिखाई पड़ते हैं उससे। ऊपर से जो आदमी त्याग की प्रशसा कर रहा हो, उसके अचेतन मे भोग की आकाक्षा होगी। अगर किसी आदमी ने जानकर त्याग किया, चेष्टा करके त्याग किया तो त्याग करने से ही वह भोग की आकाक्षा मे लीन हो जाएगा क्योकि वह पीछे छिपा हुआ मन अपनी माग शुरू कर देगा। और इसलिए आप कोई भी काम करके देखें, हमेशा मन उल्टी बातें करता रहेगा। अगर कोई आपको गाली दे और आप झगड़ा करके लड़ लें

तो फिर लौट कर पाएंगे कि पश्चात्ताप हो रहा है 'ठीक नही किया, यह बुरा किया कि गाली का जवाब गाली से दिया, और क्रोध किया' । लेकिन आप ऐसा मत सोचना कि आपने इससे उल्टा किया होता तो कोई फर्क पड़ने वाला था । अगर किसी ने गाली दी होती और आप बिना गाली दिए चुपचाप घर लौट आए होते तो भी मन कहता कि बहुत बुरा किया, ऐसे चुप-चाप लौट आना ठीक नही किया, जब उसने गाली दी है तो अन्याय को सहना उचित है क्या ? आप जो करके आएगे, मन उल्टे का सुझाव पीछे से देना शुरू करेगा । आप जो निर्णय लेंगे उससे उल्टा निर्णय भी आपके मन में सगृहीत होगा ।

गुरजियफ एक फकीर था । जब भी कोई साधक उसके पास आता वह आठ दिन उसको खिलाता-पिलाता । वह इतनी शराब पिलाता जिसका कोई हिसाब नही । उसकी बडी बदनामी हो गई इसलिए कि कोई उसके पास जाए तो वह पहले उसे शराब पिलाएगा । उसका यह नियम था कि जो शराब पीने से इन्कार करे उसे वह सीमा के भीतर न घुसने देता, न अपने पास आने देता । आठ दस दिन रात दो-दो बज जाते, तीन-तीन बज जाते । वह शराब पर शराब पिलाता अपने हाथ से । आठ-दस दिनो मे जब वह आदमी बार-बार बेहोश हो जाता तब गुरजियफ उसका अध्ययन करता कि वह आदमी है कैसा? क्योकि वह जो ऊपर से दिख रहा है, उससे ठीक उल्टा भीतर बैठा हुआ है । वह कहता है कि मैं तुम्हारे झूठे चेहरे के साथ मेहनत नही करूगा । तुम्हारे भीतर क्या है उसे मुझे जान लेना जरूरी है । अब जो आदमी ऊपर से बडी अच्छी-अच्छी बाते करता था, शराब पीकर एकदम गालिया बक रहा है । यह गालियां बकने वाला आदमी भीतर बैठा है । कभी आपने सोचा कि शराब गालिया बना सकती है । शराब के पास कोई ताकत नही कि गालियो को निर्मित कर ले । गालिया भीतर दबा ली और सद्वचन ऊपर इकट्ठे कर लिए हैं । जब शराब पीते हैं तब चेतन मन बेहोश हो जाता है । अब वह जो भीतर है निकलना शुरू हो जाता है । यह बड़े आश्चर्य की बात है । अगर साधु-सन्तो को शराब पिलाई जाए तो उनके भीतर से हत्यारे, व्यभिचारी निकलेंगे और अगर व्यभिचारियो को शराब पिलाई जाए तो उनके भीतर से साधु-सन्तो की झलक भी मिल सकती है । जो आदमी पाप कर रहा है, वह निरन्तर आकाक्षा कर रहा है कब छुटकारा होगा ? कैसे इससे बाहर निकलूंगा । यह सब क्या हो रहा है ? इस सबसे मैं कैसे बाहर जाऊ ? यह जो बात है कि

हम अपने से उल्टा अपने भीतर इकट्ठा कर लेते हैं, अगर यह हमारे ख्याल मे हो तो हम महावीर को भूल कर भी त्यागी नही कहेगे क्योकि महावीर जैसा व्यक्तित्व अविभाज्य होता है। उसके भीतर दो खण्ड नही होते। एक ही खण्ड होता है। अगर त्याग करेगा तो पूरा। उसमे दो हिस्से नहीं होते। वह जो भी करेगा, उसमे पूरा मौजूद होगा। जैसे हम समुद्र को कही से भी चखे वह खारा होगा। ऐसे महावीर जैसे व्यक्ति को हम कही से भी पकडे वह होगा जैसा है। हम ऐसे नही है। हमे अलग-अलग कोणो से पकडा जाए तो हममे से अलग-अलग आदमी निकलेगे। मन्दिर मे हममे से एक आदमी निकलना है; शराबखाने मे हममे से दूसरा आदमी निकलना है, मित्र के साथ तीसरा निकलता है, दुश्मन के साथ चौथा निकलता है, दुकान पर पांचवा निकलता है, ताश खेलने के वक्त छठवा निकलता है। आदमी के भीतर का हिसाब नही। हमारे कितने चेहरे हैं जो हम वक्त-वक्त पर निकाल देते है? ठीक अर्थों मे त्याग उसी व्यक्ति से फलित हो सकता है जिसका व्यक्तित्व पूरा अखण्ड हो गया हो। ऐसे व्यक्ति का भोग भी त्याग ही है क्योकि ऐसे व्यक्ति मे दो हिस्से नही है, उल्टे हिस्से नही है इस व्यक्ति के भीतर। इसलिए उसमे दूसरे व्यक्तित्व के उदय होने की कभी कोई सम्भावना नही है। लेकिन हमने तो द्वन्द्व की भाषा मे सब सोचा है। दो मे तोडे बिना हम सोच नही सकते। तब हम कहेगे कि महावीर त्यागी है, भोगी नही, हम कहेगे क्षमावान है, क्रोधी नही, हम कहेगे अहिंसक हैं, हिंसक नही, हम कहेंगे दयालु है, क्रूर नही। हम दो हिस्सो मे तोड-तोड कर चलेंगे। और तब हम महावीर जैसे व्यक्ति को कभी भी नही समझ पाएगे। अखण्ड व्यक्ति मे द्वन्द्व विलीन हो जाता है, न वहा त्याग है, न वहा भोग। वहा एक नई घटना घटी है जिसके लिए शब्द खोजना कठिन है। या तो हम उसे त्यागपूर्ण भोग कहे या भोगपूर्ण त्याग कहे। एक ऐसी घटना घटी है जिसे एक शब्द से चुनकर नही पकडा जा सकता। या तो हम उसे क्रोधपूर्ण क्षमा कहे या क्षमापूर्ण क्रोध कहे। दो टुकडो को अलग करके नही कहा जा सकता। और क्रोधपूर्ण क्षमा का क्या मतलब है? क्षमापूर्ण क्रोध का क्या मतलब है? कोई मतलब नही होता, वह अर्थहीन है। जिसे हम कहे मित्रता-पूर्ण शत्रु अथवा शत्रुतापूर्ण मित्र—इसका क्या मतलब होता है? इसका कोई मतलब नही होगा। या शत्रु का मतलब होता है या मित्र का मतलब होता है। इन दोनो को मिला देने से कोई मतलब नही होता। इसलिए ठीक रास्ता यही है कि हम दोनो का निषेध कर दे। वहा दोनो नही हैं। न वहा त्याग है,

न भोग। लेकिन हमारा मन जानना चाहता है कि वहा है क्या ? वहां कुछ तो होना चाहिए। वहा है क्या ? न वहा घृणा है, न प्रेम, न वहा हिंसा है, न अहिंसा। फिर वहा है क्या ? चूंकि हम समझाने में मुश्किल हो जाएगे कि वहा क्या है इसलिए हमने यह ठीक समझा है कि जो बुरा है, उसे इन्कार कर दो, जो भला है उसे स्थापित कर दो। कह दो महावीर भोगी नही हैं, त्यागी है; हिसक नही, अहिंसक है, क्रोधी नही, क्षमावान हैं। लेकिन द्वन्द्व को बचा लो। मगर हमने कभी सोचा ही नही कि जो आदमी क्रोधी नही है वह क्षमा कैसे करेगा ? जिसे कभी क्रोध नही हुआ वह क्षमा कैसे करेगा? किस को क्षमा करेगा ? क्षमा के पहले क्रोध अनिवार्य है। और जो आदमी भोगी नही है, वह त्यागी कैसे हो सकता है ? भोगी ही त्यागी हो सकता है क्योंकि वे दोनो जुडे हैं साथ-साथ इकट्ठे। लेकिन चूंकि हमारी कल्पना मे यह नही आता, इसलिए हम एक खण्ड को हटाकर दूसरे को बचा लेना चाहते हैं। असल मे वह हमारी आकाक्षा का सबूत है, महावीर के सत्य का नही। हम चाहते है कि हमारे भीतर क्रोध न हो, क्षमा हो, हिंसा न हो, अहिंसा हो; परिग्रह न हो, अपरिग्रह हो, बन्धन न हो, मोक्ष हो। यह हमारी चाहना है और हमारी चाहना बताती है कि क्या है ? घृणा है—चाहते है हम प्रेम हो, हिंसा है—चाहते हैं अहिसा हो। बन्धन है, चाहते है मुक्ति हो। हमारी चाह दो बाते बताती है। हमारी चाह का मतलब ही यही है। जो नही है, उसकी ही चाह होती है। हम है कुछ और चाहते ठीक उल्टे को ही हैं। इसी को हम थोप लेते है। जिन्हे हम आदर्श पुरुष बना लेते है, उन्ही पर थोप देते है। और उस व्यक्ति को समझना मुश्किल हो जाता है। क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति मे दोनों न हों। इसमे कठिनाई क्या है कि एक व्यक्ति मे न प्रेम हो, न घृणा हो, न भोग हो, न त्याग हो। यह जरूरी क्यो कि इनमे दो मे से कोई एक हो ही। लेकिन हमारी धारणा मे आना मुश्किल हो जाएगा कि ऐसा आदमी कैसा होगा जिसमे दोनो नही है। और जिसमे दोनो नही हैं वही अखण्ड हो सकता है, नही तो खण्ड-खण्ड होगा। और जिसमे दोनो नही हैं वही मुक्त हो सकता है क्योंकि द्वन्द्व मे कोई मुक्ति कभी सम्भव नही। इसलिए महावीर जैसा व्यक्ति बेबूझ हो जाता है, हमारी पकड के बाहर होजाता है।

चीन मे दस चित्र है जो किसी अद्‌भुत चित्रकार ने बनाये है। पहले चित्र मे घोड़े पर सवार एक आदमी जंगल की ओर जा रहा है। लेकिन कुछ बात ऐसी है कि आदमी कही और जाना चाहता है, घोडा कही और जाना चाहता है। इसलिए

बड़ा तनाव है। पर घोडा वहा कैसे जाना चाहे जहा आदमी जाना चाहे। घोड़ा, घोडा है, आदमी आदमी है। और आदमी को घोडा कैसे समझे और घोडे को आदमी कैसे समझे? घोडा किसी और रास्ते पर जाना चाहता है और आदमी किसी और रास्ते पर जाना चाहता है। तो बडी तनाव मे दोनो उस चित्र मे हैं। दूसरे चित्र मे घोडा आदमी को पटक कर भाग गया है। असल मे आदमी ने घोडे पर चढने की कोशिश की तो घोडा आदमी को पटकेगा। यानी जिस पर हम चढेगे वह हमको पटकेगा। आदमी को पटककर घोडा भाग गया है। आदमी पडा है परेशान और घोडा भाग गया है। तीसरे चित्र मे आदमी घोडे को खोजने निकला है। घोडे का कही पता नही चल रहा। जगल ही जगल है। चौथे चित्र मे घोडे की पूछ एक वृक्ष के पास दिखाई पडती है, सिर्फ पूछ। पाचवे चित्र मे आदमी पास पहुँच गया है, पूरा का पूरा घोडा दिखाई पडता है। घोडे की पूछ पकड ली है। और सातवे चित्र मे आदमी फिर घोडे पर सवार हो गया है और आठवें चित्र मे वह घोडे पर सवार होकर घर की ओर वापस लौट रहा है। नौवें चित्र मे घोडे को बाध दिया है। आदमी उसके पास बैठा है। घोडा बिल्कुल शात है, आदमी बिल्कुल शात है। दसवे चित्र मे दोनो खो गए है, सिर्फ जगल रह गया है, न घोडा है न आदमी। ये दस पूरी साधना के चित्र हैं। लेकिन आखिरी चित्र मे दोनो खो गए हैं। लडाई ही खो गई है, द्वन्द्व खो गया है। नौ चित्रो मे बहुत तरह से लडाई चलती रही है। जब तक दोनो है लडाई चलती रही है, कुछ न कुछ उपद्रव होना रहा है। लेकिन, आखिरी चित्र मे दोनो ही खो गए हैं। अब न घोडा है, न घोडे का मालिक, कोई भी नही है। खाली चित्र रह गया है।

इसी प्रकार जिन्दगी मे द्वन्द्व की लडाई है। क्रोध से हम लड रहे हैं, घृणा से हम लड रहे हैं, हिसा से हम लड रहे है, भोग से हम लड रहे हैं। जिससे हम लड रहे है, उस पर सवार होने की कोशिश कर रहे हैं। और जिस पर हम सवार होने की कोशिश कर रहे हैं, वह हमे पटके दे रहा है, बार-बार पटक रहा है। भोगी त्यागी होने की कोशिश करता है, रोज-रोज पटकें खा जाता है, फिर गिर जाता है, फिर परेशान होता है।

एक घर मे मैं मेहमान था कलकत्ता मे। उस घर के बूढे आदमी ने कहा कि मैंने ब्रह्मचर्य की जीवन मे तीन बार प्रतिज्ञा की। बहुत व्यग्यपूर्ण बात थी क्योकि ब्रह्मचर्य की तीन बार प्रतिज्ञा लेनी पड़े तो ब्रह्मचर्य है कैसा

क्योंकि एक बार लेनी चाहिए प्रतिज्ञा ब्रह्मचर्य की। मैं खूब हसने लगा लेकिन मेरे बगल का आदमी नही समझ सका जो वहा पास बैठा था। उसने कहा : आपने बड़ी साधना की। वह बूढा भी हसने लगा। उस आदमी ने पूछा : फिर तीन बार ही ली, चौथी बार नही ली। उस बूढे आदमी ने कहा कि तुम यह मत सोचना कि मैं तीसरी बार सफल हो गया। नही, तीन बार असफल होकर फिर मैंने हिम्मत ही छोड़ दी। जब मैंने बिल्कुल ही छोड दिया ख्याल कि लडना ही नही है क्योकि तीन दफा हार चुका, बहुत हो चुका तो मैं एकदम हैरान हुआ कि मुझ पर सेक्स की इतनी कम पकड कभी भी नही थी जिस दिन मैंने यह तय किया कि अब लडना नही, जो है सो ठीक है। और मेरी पकड एकदम ढीली हो गई। और, मेरी पकड बडी जोर से थी क्योकि मैं सकल्प कर रहा था, व्रत कर रहा था। असल मे व्रत, सयम त्याग, सघर्ष—किससे कर रहे हैं हम ? जिससे हम कर रहे हैं, उसको हमने मान लिया। जिससे हम लडने लगे, उसको हमने स्वीकृति दे दी। और, हम उस पर कभी बेमौके चढ़ भी जायेगे तो कितनी देर चढ़े रहेगे ? अगर आप एक दुश्मन की छाती पर बैठ भी जाए, जिन्दगी भर तो नही बैठे रहेगे। कभी तो उसकी छाती छोड़ेंगे ? और दुश्मन, अगर कोई दूसरा होता तो अपने घर चला जाता। यह दुश्मन ऐसा नही कि दूसरा है, अपना ही हिस्सा है। जिस दिन आप छोडेंगे, वह वापस लौट कर खडा हो जायेगा। और एक अजीब बात है। किसको आप दबाते हैं ? आपके ही दो हिस्से—आप ही दबाने वाले, आप ही दबने वाले। जिसे आप दबाते है वह तो विश्राम कर लेता है हिस्सा। और जो दबाता है वह थक जाता है। थोडी देर मे उल्टा सिलसिला शुरू हो जाता है। इसलिए जिस चीज को आप दबायेंगे, थोडे दिन मे आप पायेगे कि आप उससे दबे हुए है। क्योकि जो हिस्सा दब गया है वह विश्राम कर रहा है। और जो दबा रहा है उसको श्रम करना पड रहा है। श्रम करने वाला थकेगा, विश्राम करने वाला सबल हो जाएगा। इसलिए रोज उल्टा परिवर्तन होता है। लडेगे तो हारेगे; दबाएगे तो गिरेंगे। लेकिन खोज बिल्कुल दूसरी बात है। पहले चित्र मे वह आदमी जबरदस्ती घोडे पर सवार हो रहा है। दूसरे चित्र मे वह खोज पर निकला है। खोज लड़ाई नही है। एक आदमी क्रोध से लड़ रहा है एक बात, और एक आदमी क्रोध की खोज मे निकला है कि क्रोध क्या है यह बिल्कुल दूसरी बात है। और जब वह खोज पर निकला है तब उसे पूछ दिखाई पड़ गई है। थोड़ा सा

दिखा है। फिर पूंछ के करीब और चला गया है। पूरा घोडा दिखाई पड़ गया है। फिर उसने घोडे को पकड लिया है क्योंकि जिसे हम समझ लेते है फिर उससे लडना नही पडता है। उसे हम ऐसे ही सहज पकड लेते है क्योंकि वह आपका ही हिस्सा है। उससे लडना क्या है ? वह अपना ही हाथ है। बाए को दाए हाथ से लडाए तो क्या फायदा होगा ? वह घोडे को लेकर घर की तरफ चल पडा है। उसने घोडे को लाकर घोडे की जगह बाध दिया हैं। उसके पास चुपचाप बैठ गया है। वह लड नही रहा है, न सवार हो रहा है। अब कोई सघर्ष ही नही है। घोडा अपनी जगह है, वह अपनी जगह है। क्रोध अपनी जगह है, आदमी अपनी जगह है। चुपचाप दोनो अपनी जगह पर है। दसवे चित्र मे दोनो विलीन हो गये हैं। क्रोध भी विलीन हो गया है, क्रोध से लडने वाला भी विलीन हो गया है। तब क्या रह गया है ? एक खाली चित्र रह गया है। दसवा चित्र बहुत अद्भुत है। वह कोरा चित्र पट है। उसमे कुछ भी नही। इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि वे दस चित्र जब किसी को भेंट किए किसी ने तो उसने कहा ना तो ठीक है। दसवें चित्र की क्या जरूरत है ? क्योंकि वह बिल्कुल खाली कैनवास का टुकडा है। तब उससे कहा गया कि दसवा ही सार्थक है। बाकी नौ तो सिर्फ तैयारी है। उनमे कुछ नही है। जो है इस दसवे मे है। तब आदमी पूछता है लेकिन इसमे तो कुछ भी नही है। उस चेतना मे कुछ भी नही है, सब खो गया। रिक्तता रह गई है, खाली आकाश रह गया है, शून्य रह गया है। कोई द्वन्द्व नही है, सब अखण्ड हो गया है। ऐसा अखण्ड व्यक्ति ही देने मे समर्थ है। खण्डित व्यक्ति देने मे समर्थ नही है। ऐसा अखण्ड व्यक्ति ही तीर्थंकर जैसी स्थिति मे हो सकता है। मेरा कहना है कि यह महावीर लेकर ही पैदा हुए थे और जो हमे दिखाई पड रहा है वह हमारी भ्रान्तियो का गट्ठर है। हम कभी चीजो के बहुत पास जाकर नही देखते, सदा दूर से देखते है, बहुत फासले से देखते है। हम चीजो को पास से देख भी नही सकते क्योंकि पास से देखना हो तो खुद ही गुजरना पडे उनसे। इसके पहले देख भी नही सकते। यानी महावीर घर से कैसे गए, इसे हम कैसे देख सकते हैं? क्योंकि हम कभी अपने घर स गए ही नही। यह हमारे लिए देखना मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है सिर्फ क्योंकि हम कभी पास से गुजरे ही नही किसी चीज के कि हम भी देख लेते। बहुत फासला है। कोई गुजरता है और हम देखते है, भूल होजाती है। क्योंकि जब कोई गुजरता है तो केवल उसकी बाह्य व्यवस्था भर दिखाई

पड़ती है। उसका भीतरी अनुभव दिखाई नहीं पड़ता। और सब कथाएं, जो भी लिखा गया है, वे एकदम बाहर से खींचे गए चित्र हैं। और बाहर से यही दिखाई पड़ता है कि महल था, महल छोड़ दिया, धन था, धन छोड़ दिया, पत्नी थी, पत्नी छोड़ दी, प्रियजन थे, निकट के रिश्तेदार थे, सब छोड़ दिये। यही दीखता है। यही दिख सकता है। तब त्याग की एक व्यवस्था हम खड़ी करेंगे और उस त्याग की व्यवस्था मे बहुत से लोग छोड़ने की कोशिश करेंगे, मर जाएंगे और दिक्कत मे पड़ जाएंगे। बहुत लोग यही कोशिश करेंगे कि छोड़ दे मकान को लेकिन मकान पीछा करेगा।

एक जैन मुनि थे। वे बीस वर्ष पहले अपनी पत्नी को छोड़कर गए थे। उनकी जीवन कथा किसी ने लिखी तो वह उसे मेरे पास लाया। मैंने उलटा पुलटा कर उसे देखा तो उसमें मुझे एक वाक्य पढ़ने को मिला—"बीस साल हो गए हैं, पत्नी को छोड़े, काशी मे रहते है। पत्नी मरी है, तार आया है। उन्होने तार पढ़कर कहा—"चलो झंझट छूटी।" उस जीवनकथा लिखने वाले ने लिखा है—"कैसा परमत्यागी व्यक्ति कि पत्नी मरी तो केवल एक वाक्य मुख मे निकला कि 'चलो झंझट छूटी' और कुछ भी न निकला।" वह लेखक खुद किताब लेकर आए थे, मैंने उनसे कहा, "किताब बन्द करो, किसी को पता न दो।" उन्होने कहा, "क्यो?" मैंने कहा "तुमको पता नही—क्या लिखा है इसमे? अगर ऐसा ही हुआ है तो बीस साल पहले जिस पत्नी को छोड़कर तुम्हारा मुनि चला गया था उसकी झंझट बाकी थी। अब उसके मरने से कहता है कि 'झंझट छूटी'—तो झंझट बाकी थी। किसी न किसी चित्त के तल पर झंझट रही होगी। यह पत्नी के मरने की प्रतिक्रिया नही है। यह प्रतिक्रिया चित्त के भीतर के झंझट चलने की है। झंझट खत्म हुई पत्नी के मरने से। पत्नी को छोड़ने से भी पूरी न हुई वह झंझट, क्योंकि वह पत्नी है यह भी न मिटा, क्योंकि उस पत्नी को छोड़ा है यह भी न मिटा; क्योंकि उस पत्नी को क्या-क्या होता होगा यह भी न मिटा। यह कुछ भी न मिटा। और अब वह मर गई तो झंझट छूट गया।" और मैंने कहा कि यह भी हो सकता है कि तुम्हारे इस मुनि ने कई दफा चाहा हो कि पत्नी मर जाए क्योंकि इसका यह कहना इसकी भीतरी आकांक्षा का सबूत भी हो सकता है। इसने कई बार चाहा हो कि वह मर जाए। शायद छोड़ने के पहले चाहा हो कि यह मर जाए। वह नही मरी। उसने शायद बाद मे भी कभी सोचा हो कि यह मर जाए। क्योंकि यह शब्द बड़ा अद्भुत है और उसके पूरे अचेतन

की खबर लाता है।

एक दूसरी घटना सुनाता हू। एक फकीर गुजर गया है। उसका एक शिष्य है जिसकी बडी ख्याति है; इतनी ख्याति है कि गुरु से भी ज्यादा। और लोग कहते है कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लाखों लोग इकट्ठे हुए हैं—गुरु मर गया है। शिष्य मन्दिर के द्वार पर बैठा छाती पीट-पीट कर रो रहा है। लोग बडे चौके हैं क्योकि ज्ञानी और रोए ! दो चार जो निकट हैं, उन्होने कहा : यह आप क्या कर रहे है ? सब जिन्दगी की इज्जत पर पानी फिर जाएगा। आप—और रोते हैं ? ज्ञानी और रोए। तो उस आदमी ने आखे ऊपर उठाईं और कहा—मैं ऐसे ज्ञानी से छुटकारा चाहता हू जो रो भी न सके। नमस्कार ! इतनी भी आजादी न बचे तो ऐसा ज्ञानी मुझे नही होना। क्योकि ज्ञान की खोज हम आजादी के लिए किए है। ज्ञान एक नया बन्धन बन जाए और मुझे सोचना पडे कि क्या कर सकता हू, क्या नही कर सकता हू तो मैं क्षमा चाहता हू। तुमसे कहा किसने कि मैं ज्ञानी हू ? फिर भी उन लोगो ने पूछा : भई ठीक तो है लेकिन आप ही तो समझाते थे कि आत्मा अमर है अब काहे के लिए रो रहे हैं ? उसने कहा आत्मा के लिए कौन पागल रो रहा है ? वह शरीर भी बहुत प्यारा था। और वैसा शरीर अब दुबारा नही हो सकेगा। अद्वितीय था वह। आत्मा के लिए रो कौन रहा है ? शरीर कुछ कम था क्या ? तुम मेरी चिन्ता मत करो क्योकि मैंने अपनी चिन्ता छोड दी है। अब जो होना है, सो होता है। हसी आती है तो हसता हू, रोना आता है तो रोता हू। अब मै रोकता ही नही कुछ। क्योकि अब रोकने वाला ही कोई नही है। कौन रोके ? किसको रोके ? क्या रोकना है ? क्या बुरा है ? क्या भला है ? क्या पकडना है ? क्या छोड़ना है—सब जा चुका है। जो होता है, होता है। जैसे हवा चलती है, वृक्ष हिलते हैं, वर्षा आती है, बादल आते हैं, सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। बस ऐसा ही है। न तुम फूल से जाकर कहते हो कि क्यो खिले हो तुम। न तुम बदलियो से जाकर कहते हो कि क्यों आई हो तुम। न तुम सूरज से पूछते हो कि क्यों निकले हो तुम। मुझसे क्यो पूछ रहे हो कि क्यो रो रहे हो ? कोई मैं रो रहा हू ? रोना आ रहा है। कोई रोने वाला भी नही है। यह तो बहुत मुश्किल मे पड गए हैं। और किसी एक ने कहा कि "आप कहते हो सब माया है, सब सपना है।" वह कहता है अभी मैं कब कह रहा हू कि सब माया नही है, सब सपना नही है। मेरा कहना है कि अगर उतनी ठोस

देह भी सत्य साबित न हुई, मेरे ये तरल आंसू कितने सत्य हो सकते हैं ? इसे समझना हमे मुश्किल हो जाएगा। उस मुनि को समझना बहुत आसान है जिसने कहा, "झंझट छूटी।" क्योंकि हमारा चित्त भी वैसा है। वह द्वन्द्व मे ही जीता है।

इतना निर्द्वन्द्व होना बहुत मुश्किल है कि जहां रहना भी क्रिया न रह जाए, जहां उसके भी हम कर्ता न रह जाए, जहा उसके भी हम द्रष्टा हो जाएं, जहां उस पर कभी भी हम रुकें न, कुछ बन्धन न डाले, कुछ व्यवस्था न डाले, जो होता हो, होता रहे। जैसे वृक्षो मे पत्ते आते हैं, जैसे आकाश मे तारे निकलते हैं, ऐसा ही सब हो जाए। ऐसा अखण्ड व्यक्ति ही सत्य को उपलब्ध होता है और ऐसे अखण्ड व्यक्ति से ही सत्य की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन इतना अखण्ड हो जाना ही सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काफी नही है। अखण्ड व्यक्ति भी, हो सकता है, बिना सत्य को अभिव्यक्त किए ही मर जाए और बहुत से अखण्ड व्यक्ति बिना सत्य को प्रकट किए ही समाप्त हो जाते हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि सौन्दर्य को जान लेना सौन्दर्य को निर्मित करना नही है। एक आदमी सुबह के उगते सूरज को देखता है और अभिभूत हो जाता है सौन्दर्य से। लेकिन यह अभिभूत हो जाना पर्याप्त नही है कि वह एक चित्र बना दे सुबह के उगते सूरज का, अभिव्यक्त कर दे उसको, जरूरी नही है। तुम सुबह बैठे हो वृक्ष के नीचे और पक्षी ने गीत गाया और तुम डूब गए सगीत में। तुमने अनुभव किया है सगीत लेकिन जरूरी नहीं कि वीणा उठाकर तुम गीत को पुनर्जन्म दे दो। यानी सत्य की अनुभूति एक बात है और उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल दूसरी बात। बहुत से अनुभूतिसम्पन्न लोग बिना अभिव्यक्ति दिए समाप्त हो जाते हैं। दुनिया मे कितने कम लोग हैं जो सौन्दर्य को अनुभव नहीं करते, लेकिन कितने कम लोग हैं जो सौन्दर्य को चित्रित कर पाते हैं; कितने कम लोग हैं जिनके प्राणो को आन्दोलित नही कर देता संगीत लेकिन कितने कम लोग हैं जो संगीत को अभिव्यक्त कर पाते हैं; कितने कम लोग हैं जिन्होंने प्रेम नहीं किया है, लेकिन प्रेम की दो कडी लिख पाना बिल्कुल दूसरी बात है।

यहां दो-तीन बातें कहूं ताकि आगे का सिलसिला ख्याल में रह सके। पहली बात—अखण्ड की अनुभूति हो जाना पर्याप्त नहीं है। अभिव्यक्ति के लिए कुछ और करना पड़ता है अनुभूति के अतिरिक्त। अगर वह और न किया जाए तो अनुभूति होगी मगर व्यक्ति खो जाएगा। तीर्थंकर वैसा अनुभवी है। वह जो

कुछ करता है—अभिव्यक्ति के लिए। इसलिए महावीर की जो बारह वर्ष की साधना है वह मेरी दृष्टि मे सत्य-उपलब्धि के लिए नही है। सत्य तो उपलब्ध है। सिर्फ उसकी अभिव्यक्ति के सारे माध्यम खोजे जा रहे हैं उन बारह वर्षों मे। और, ध्यान रहे सत्य को जानना तो कठिन है ही, सत्य को प्रकट करना और भी कठिन है। महावीर की अपनी शक्ति है। अगर महावीर को सब मिल गया है तो यह तपश्चर्या, यह साधना, यह उपवास, यह बारह वर्षों का लम्बा काल—यह क्या हो रहा है? यह क्या कर रहे हैं? अगर मैं कहता हू कि वह पाकर लौटे हैं तो यह क्या कर रहे हैं? तो जितना गहरा देखने की मैंने कोशिश की उतना मैं इस नतीजे पर पहुचा हू कि यह अभिव्यक्ति के सब उपकरण खोजे जारहे हैं और बहुत तरहो पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की जा रही है जिसकी कम शिक्षको ने फिक्र की है, कभी भी। यानी जीवन के जितने तल है और जितने रूप हैं, उन सब रूपो तक सत्य की खबर पहुचाने की अद्भुत तपश्चर्या की है उन्होने। यानी सिर्फ मनुष्य से ही यह नही बोल देना है—क्योंकि मनुष्य तो सिर्फ जीवन की एक छोटी सी घटना है, मनुष्य जीवन यात्रा की केवल एक सीढी है—एक ही सीढी पर सत्य नही पहुचा देना है, मनुष्य से पीछे की सीढियो पर भी उसे पहुचा देना है, मनुष्य से भिन्न सीढियो पर भी उसे पहुचा देना है। यानी पत्थर से लेकर देवता तक सुन सके, इसकी सारी व्यवस्था उन्होने की है। जो चेष्टा है वह यह कि जीवन के सब रूपो मे सवाद हो सके और सब रूपो पर सत्य को अभिव्यक्त किया जा सके। वह तपश्चर्या सत्य की उपलब्धि के लिए नही है, सत्य की अभिव्यक्ति खोजने के लिए है। और तुम हैरान होगे कि सुबह सूरज को देखकर सौन्दर्य को अनुभव कर लेना बहुत सरल है; लेकिन उगते हुए सूरज को चित्रित करने मे हो सकता है कि जीवन लग जाए, तब आप समर्थ हो पाए।

विन्सेन्ट वान गाग ने जो अन्तिम चित्र चित्रित किया है, वह है सूर्यास्त का। यह इधर मनुष्यजाति मे हुए दो चार बडे चित्रकारो मे एक है वान गाग। और अन्तिम चित्र उसने सूर्यास्त का चित्रित किया जिसे पूरा करते ही उसने आत्महत्या कर ली। और लिखा गया कि जिसे चित्रित करने के लिए जीवन भर से कोशिश कर रहा था वह काम पूरा हो गया। और अब सूर्यास्त ही चित्रित हो गया। अब और रहने का अर्थ क्या है और इतनी आनन्दपूर्ण घड़ी से मरने के लिए और अच्छी घड़ी न मिल सकेगी। सूर्यास्त चित्रित हो गया है, और वह मर गया है। आप हैरान हो जाएंगे कि इस

चित्र को चित्रित करने के लिए उसने कैसी मुश्किलें उठाईं, उसने सूर्य को कितने रूपो में देखा। सुबह से भूखा खेतों मे पड़ा रहा, जगलों मे पड़ा रहा; पहाड़ो पर पड़ा रहा। सूरज की पूरी यात्राए, उसके भिन्न-भिन्न चेहरे, उसकी भिन्न-भिन्न स्थितिया, उसके भिन्न-भिन्न रग, उसका भिन्न-भिन्न रूप, वह जो प्रतिपल भिन्न होता चला जा रहा है, उगने से लेकर डूबने तक, उसकी सारी यात्रा और लीज मे जहा सूरज सबसे ज्यादा तपता है एक वर्ष तक, थोड़ा नही, देखता रहा। पागल हो गया क्योकि इतनी गर्मी सहना सम्भव नहीं था। एक वर्ष तक निरन्तर आखें सूरज पर टिकी रहीं, आखो ने जवाब दे दिया और सिर घूम गया। एक साल पागलखाने मे रहा। जब पागलखाने से वापस हुआ तब कहा अब चित्रित कर सकूगा क्योकि जब जिया ही न था, उसे देखा ही न था, उसके साथ ही न रहा था उसे कैसे चित्रित करता? एक सूर्यास्त को चित्रित करने के लिए एक आदमी एक वर्ष तक सूरज को देखे, पागल हो जाए, तब चित्रित कर पाए तो सत्य को, जिसका कोई प्रकट रूप दिखाई नही पडता, उसे कोई जाने, फिर शब्द मे, और माध्यमो से उसे पहुचाने की कोशिश करे तो उसके लिए लम्बी साधना की जरूरत पडेगी। महावीर की जो साधना है वह अभिव्यक्ति के उपकरण खोजने की साधना है। कठिन है; बहुत ही कठिन है। उसे समझने की हम कोशिश करेंगे कि वह साधना मे कैसे अभिव्यक्ति के लिए एक-एक सीढी खोज रहे हैं, एक-एक मार्ग खोज रहे हैं, कैसे वह सम्बन्ध बना रहे है अलग-अलग जीवन की स्थितियो से, योनियो से। वह हमारे ख्याल मे आ जाएगा तो पूरी दृष्टि और हो जाएगी, सोचने की बात ही और हो जाएगी।

प्रश्नोत्तर

(२०.६.६६) प्रात.

प्रश्न : यदि जो कुछ महावीर ने पिछले जन्म में प्राप्त किया था, उससे विश्व के सभी तत्वों को लाभ हो, इसलिये अभिव्यक्ति के माध्यमों की खोज उन्होंने इस जन्म में की तो फिर उनके पिछले जन्मों की साधना क्या थी जिससे उनके बन्धन कट कर उन्हें सत्य की उपलब्धि हो सकी ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात यह समझ लेनी जरूरी है कि तप या संयम से बन्धनो की समाप्ति नहीं होती; बन्धन नहीं कटते। तप और संयम कुरूप बन्धनो की जगह सुन्दर बन्धनों का निर्माण भर कर सकते हैं।

लोहे की जंजीरों की जगह सोने की जंजीरें आ सकती हैं। जंजीर मात्र नहीं कट सकती है क्योंकि तप और संयम करने वाला व्यक्ति वही है जो अतप असंयम कर रहा था। उस व्यक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ा है। एक आदमी व्यभिचार कर रहा है। इसके पास जो चेतना है, इसी चेतना को लेकर अगर कल वह ब्रह्मचर्य की साधना करने लगे तो व्यभिचार बदल कर ब्रह्मचर्य हो जायेगा। इस व्यक्ति के भीतर की चेतना जो व्यभिचार करती है ब्रह्मचर्य साधेगी। व्यभिचार जैसे एक बन्धन था ब्रह्मचर्य भी एक बन्धन ही सिद्ध होने वाला है। इसलिए सवाल तप और सयम का नहीं है। सवाल है चेतना के रूपान्तरण का, चेतना के बदल जाने का। और चेतना को बदलने के लिए बाहर के कर्मों का कोई भी अर्थ नहीं है, चेतना को बदलने के लिए भीतर की मूर्च्छा के टूटने का प्रश्न है। चेतना के दो ही रूप हैं : मूर्च्छित और अमूर्च्छित, जैसे कर्म के दो रूप हैं—सयम और असंयम। अगर कर्म मे बदलाहट की गई तो सयम आ सकता है असयम की जगह, मगर चेतना इससे अमूर्च्छित दशा मे नहीं पहुच जाएगी। मूर्च्छित के भीतर व्यक्ति सोया हुआ है, प्रमाद मे है। वह अप्रमाद मे कैसे पहुचेगा? महावीर की पिछले जन्मों की साधना अप्रमाद की साधना है। हमारे भीतर जो जीवन चेतना है वह कैसे परिपूर्ण रूप से जागृत हो? इस विषय मे महावीर कहते हैं. "हम विवेक से उठें, विवेक से बैठे, विवेक से चले, विवेक से भोजन करें, विवेक से सोए भी।" अर्थ यह है कि उठते-बैठते, सोते, खाते-पीते प्रत्येक स्थिति में चेतना जागृत हो, मूर्च्छित नहीं। थोडे गहरे मे समझना उपयोगी होगा। हम रास्ते पर चलते हो तो शायद ही हमने कभी ख्याल किया हो कि चलने की जो क्रिया हो रही है, उसके प्रति हम जागृत है। हम भोजन कर रहे हैं तो शायद ही हमे यह स्मरण रहा हो कि भोजन करते वक्त जो भी हो रहा है उसके प्रति हम सचेत हैं। चीजे यन्त्रवत् हो रही हैं। रास्ते के किनारे खड़े हो जाए और लोगो को रास्ते से देखे तो ऐसे लगेगा कि मशीनो की तरह वे चले जा रहे हैं। ऐसे भी लोग दिखाई पड़ेंगे जो हाथ हिलाकर किसी से बाते कर रहे हैं और साथ में कोई भी नहीं है। ऐसे लोग भी मिलेंगे जिनके होठ हिल रहे हैं और बात चल रही है लेकिन साथ में कोई भी नहीं है। किसी स्वप्न मे खोए हुए, निद्रा मे डूबे हुए ये लोग मालूम पड़ेंगे। दूसरे के लिए ही नहीं है ऐसा। हम अपने में भी देखें, अपना भी ख्याल करें तो यही प्रतीत होगा। जीवन में हम ऐसे जीते हैं जैसे किसी गहरी मूर्च्छा

मे पड़े हो। हमने जिन्हे प्रेम किया है, वह मूर्च्छा मे, हमें पता नहीं क्यो ? हम नही बता सकते कोई कारण। हमने जिनसे घृणा की है, वह मूर्च्छा मे; हम जब क्रोध किए है तब मूर्च्छा मे, हम जैसे भी जिए हैं उस जीने को एक सजग व्यक्ति का जीना तो नही कहा जा सकता। वह एक सोए हुए व्यक्ति का जीना है। कुछ लोग है जो रात मे भी नीद मे उठ आते हैं। एक बीमारी है निद्रा मे चलने की—नीद मे उठते हैं, खाना खा लेते हैं, घूम लेते है, किताब पढ़ लेते है, फिर सो जाते है। सुबह उनसे पूछिए वे कहेगे—कौन उठा ? कोई भी नही उठा। अमेरिका मे एक आदमी था जो रात निद्रा मे उठकर अपनी छत से पड़ोसी की छत पर पहुच जाता था फिर वापस आ जाता था। आठ-नौ मंजिल के मकानो की छत पर से कूदना और बीच मे फासला दस-बारह फुट का। यह रोज चल रहा था। धीरे-धीरे पडोसियो को पता चला कि वह रोज रात यह करता है। एक दिन सौ-पचास लोग नीचे इकट्ठे हुए देखने के लिए। वह तो नीद मे करता था। होश मे तो वह छलाग भी नही लगा सकता था। जैसे ही छलांग लगाने को हुआ नीचे लोगो ने जोर से आवाज दी और उसकी नीद टूट गई। वह बीच खड्ड मे गिर गया और प्राणान्त हो गया। यह वह वर्षों से कर रहा था लेकिन वह मानता नही था कि मैं यह करता हू।

निद्रा मे हम बहुत से काम करते हैं। लेकिन जागे हुए भी किसी सूक्ष्म निद्रा मे हम जीते हैं, इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जागे हुए भी, होश से भरे हुए भी हमारे भीतर एक धीमी सी तन्द्रा का जाल फैला हुआ है। जैसे एक आदमी ने आपको धक्का दिया है और आप क्रोध से भर गए हैं। कभी आपने सोचा कि यह क्रोध आपने जान कर किया है या कि हो गया है। जैसे बिजली का बटन दबाएं तो पखा चल पड़ता है। हम पखा को नही कह सकते कि पखा चल रहा है। पखा सिर्फ चलाया गया है। और एक आदमी ने आपको धक्का दिया फिर आपके भीतर क्रोध चल पडा। हम यह नही कह सकते है कि आपने क्रोध किया है। हम इतना ही कह सकते हैं कि बटन किसी ने दबाया और क्रोध चल पड़ा। आप भी नही कह सकते कि मैं क्रोध कर रहा हू क्योकि जो आदमी यह कह सकता है कि मैं क्रोध कर रहा हू उस आदमी को कभी क्रोध करना सम्भव नही है। क्योंकि अगर वह मालिक है तो करेगा ही नहीं। अगर मालिक नही है तो ही कर सकता है। हमारी सारी जीवन क्रिया सोई-सोई है। हम सब नीद में चल रहे हैं। इसे महावीर

ने कहा है प्रमाद। यह है मूर्च्छा। और साधना एक ही है कि कैसे हम क्रिया मात्र मे जागे हुए हो जायें? क्योकि जैसे ही हम जागेंगे वैसे ही चेतना का रूपान्तरण शुरू हो जाएगा। आपने कभी ख्याल किया कि रात जब आप सोते हैं तब आपकी चेतना बिल्कुल दूसरी हो जाती है। वही नही रहती जो जागने मे थी। सुबह जब आप जागते है तो चेतना वही नही रहती जो सोने मे थी। चेतना मूल रूप से दूसरे तलो पर पहुच जाती है। जो आपने कभी सोचा नही था वह आप कर सकते हैं रात मे। जो आप कल्पना नही कर सकते थे कि पिता को मार डालू, वह आप रात मे हत्या कर सकते हैं। और जरा भी दहशत नही होगी मन को। दिन मे जो भी आप थे, जो आपके सम्बन्ध थे, वे सब खो गये निद्रा मे। एक धनी वैसा ही साधारण हो गया है निद्रा मे जैसा एक दरिद्र भिखमगा सड़क पर सोया हो।

एक फकीर था। उसके गाव का सम्राट एक दिन उसके पास से निकल रहा था। सम्राट ने उससे पूछा कि हममे तुममे क्या फर्क है? फर्क तो निश्चित है। तुम भिखारी हो एक गाव के सडक पर भीख मागने वाले। मै सम्राट हू। उस आदमी ने कहा, फर्क जरूर है लेकिन जहा तक जागने का सम्बन्ध है वही तक। सोने के बाद हममे-तुममे कोई फर्क नही। क्योकि सोने के बाद न तुम्हे ख्याल रह जाता है कि तुम सम्राट हो, और न मुझे कि मैं भिखारी हू। खेल जगने का है। सोने मे आपको यह भी पता नही रह जाता कि आप कौन हैं। जो आप जागने मे थे उसका भी पता नही रह जाता। आपकी उम्र क्या है यह भी पता नही रह जाता। आपका चेहरा कैसा है यह भी पता नही रह जाता। आप बीमार हैं कि स्वस्थ यह भी पता नही रह जाता। निश्चित ही चेतना किसी और तल पर सक्रिय हो जाती है। इस तल से एकदम हट जाती है। नीद और जागने की साधारण स्थितियो मे हम जान सकते हैं कि अगर हम जागने को भी समझें कि वह भी एक तन्द्रा है तो वह तन्द्रा जिसकी टूट जाती होगी, वह बिल्कुल ही नए लोक मे प्रवेश कर जाता होगा। साधना का एक ही अर्थ है कि हम कैसे सोए-सोए जीने मे प्रवेश कर जाए और महावीर की पूरी साधना ही इतनी है कि सोना नही है, जागना है। जागने की प्रक्रिया क्या होगी? जागने की प्रक्रिया जागने का ही प्रयास होगी। जैसे किसी आदमी को हमे तैरना सिखाना है तो वह हमसे कहे कि तैरना सीखने का कोई रास्ता बतायें क्योकि मैं तो तभी पानी मे उतरूगा जब तैरना सीख जाऊ, बात तो वह बिल्कुल ठीक दलील की कह रहा है कि बिना

तैरना जाने पानी में उतरना खतरनाक है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि अगर तुम बिना तैरे पानी मे उतरने को राजी नही हो तो तैरना कैसे सिखाया जा सकता है ? क्योंकि तैरना सीखने की एक ही तरकीब है कि तैरो ! तैरना सीखने की और कोई तरकीब ही नही है। तैरना शुरू करना पडेगा। पहले हाथ-पैर तडफडाओगे , उल्टा सीधा गिरोगे, डूबोगे, उतरोगे। लेकिन तैरना शुरू करना पडेगा। उसी शुरूआत से तैरना धीरे-धीरे व्यवस्थित हो जाएगा और तैर सकोगे। लोग भी पूछते हैं. जागने की तरकीब क्या है ? जागने की कोई तरकीब नही हैं। जागना ही पडेगा। पहले हाथ-पैर तडफडाने पडेंगे, गल्त-सही होगा, डूबना उतरना होगा। क्षण भर को जागेंगे फिर सो जाएगे ऐसा होगा। लेकिन जागना ही पडेगा। निरन्तर जागने की धारणा से धीरे-धीरे जागना फलित हो जाता है। जागने की तरकीब का मतलब इतना ही है कि हम जो भी करे यह हमारा प्रयास हो, यह हमारा सकल्प हो कि हम उसे जागे हुए करेंगे। और आप इसकी कोशिश करेंगे तो आप पाएंगे कि नीद बहुत गहरी है। एक क्षण भी नही जाग पाते हैं कि नीद पकड लेती है। एक छोटा सा काम है—रास्ते पर चलने का और आप तय करके ही चले कि आज मैं जागा हुआ ही चलूगा तब आपको पता चलेगा कि निद्रा कितनी गहरी है और निद्रा का क्या मतलब है। आप एक सेकेंड एक दो कदम उठा पाएगे कि फिसल जाएगा दिमाग, चलने की क्रिया से हट जाएगा, और कही चला जाएगा। फिर आपको ख्याल आएगा कि मैं फिर सो गया, जागना तो भूल गया था, चलना तो भूल गया था। क्षण भर को भी पूरी तरह जाग कर चलना मुश्किल है क्योंकि नीद बहुत गहरी है लेकिन हमे नीद का पता नही चलता क्योंकि हमे जागने का कोई पता ही नही है।

तो तुलना नही है हमारे पास कि हम किसको जागना और सोना कहते है। एक आदमी ऐसा पैदा हो जो रात न सो सके, उसे कभी पता नही चलेगा कि वह जिस हालत मे है, वह जागी हुई हालत है। इस सोए और जागने मे उसे फर्क तभी हो सकता है जब वह दूसरी स्थिति को भी समझ ले। जब महावीर जैसे लोग कह रहे है कि हम सोए हुए जी रहे है तो हमारी समझ मे नही पड़ती बात। क्योंकि जागकर जीने का क्षण भर का अनुभव भी हमे नहीं है। तुलना कहां से हो, कैसे हो ? कहा तोले ? इसका थोड़ा सा प्रयास करे। एक क्षण को भी अगर जागकर चल लेंगे दो कदम तो आप पाएगे कि बिल्कुल ही

अलग चित्त की दशा है। लेकिन क्षण भर मे खो जाते है और नीद फिर पकड लेती है जैसे बादल जरा सी देर को हटते हैं और सूरज दिख भी नही पड़ता कि फिर घिर जाते है। और नीद का हमारा लम्बा अभ्यास है, और अकारण नही है नीद का अभ्यास। कारण है उसमे—कारण है उसमें। पहला कारण तो यह है कि सोए हुए जीना बडा सुविधापूर्ण है। इसलिए सुविधापूर्ण जीने मे—क्या हो रहा है, क्या नही हो रहा है, क्या कर रहे हैं, क्या नही कर रहे हैं—इसकी कोई विभेदक रेखा नही खिचती। जगे हुए व्यक्ति को फौरन विभेदक रेखा खडी हो जाती है कि यह करने जैसा है, यह न करने जैसा है। और फिर जो न करने जैसा है उसे करने मे वह एकदम असमर्थ हो जाता है। और जिसे हम जिन्दगी कह रहे हैं, उसमे निन्यानबे प्रतिशत ऐसा है जो न करने जैसा है। जिसे हम सोए रहे तो ही कर सकते हैं, जागे तो नही कर सकते। और जो जागता जाता है, वह नही कर पाता है। भीतर कही भय भी है कि जैसे हम है उसमे कही से आमूल उपद्रव न हो जाए। इसलिए सोए हुए चलना ही ठीक मालूम पडता है। दूसरी बात है कि सोए हुए लोगो के साथ सोए हुए होने मे ही सरलता पडती है। चारो तरफ लोग सोए हुए हो और एक आदमी जाग जाए तो आप नही समझ सकते कि उसकी कठिनाई कैसी होगी ?

मेरे एक मित्र थे, वह पागल हो गए। पागल हो गए १६३६ के करीब। वे घर से भाग गए और एक अदालत मे पकडे गए। कुछ उनपर मुकदमे चले। मजिस्ट्रेट ने कहा—"वह पागल हैं", उन्हे छ माह की सजा दी गई लेकिन सजा उनकी पागलखाने मे कटे। और लाहौर के पागलखाने मे भेज दिए गए। वह मुझे कहते हैं कि दो महीने मेरे बडे आनन्द से कटे क्योकि मैं पागल था और सब वहा पागल थे। कोई तीन सौ पागलो का जमाव था। बडा आनन्द ही आनन्द था। बाहर मैं कष्ट मे ही था। चूकि मेरा ताल-मेल ही नही बैठता था किसी से, चूकि सब ठीक थे मै पागल था, मैं जो करता उनको न जचता, वह जो करते, मुझको न जचता था। पागलखाने मे पहुच कर तो मैं जैसे स्वर्ग मे पहुंच गया। जाकर जो मैंने पहला काम किया—वह परमात्मा को, उस मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया जिसने मुझे पागलखाने मे भेजा था। सब अपने-जैसे लोग थे। बहुत ही बढ़िया था सब। लेकिन दो महीने बाद बड़ी मुश्किल हो गई। छ. महीने की सजा हुई थी और दो महीने बाद, पागलखाने मे कहीं एक डिब्बा मिल गया रखा हुआ फिनायल का; और वह उसको उठा

कर पी गए। पागल आदमी थे। वह फिनायल पी गए। इस फिनायल पीने से उनको पन्द्रह दिन तक इतने कै-दस्त हुए कि सारी सफाई हो गई और सब गर्मी निकल गई; वह बिल्कुल ठीक हो गए। यानी उस पागलखाने में वह गैर पागल हो गए। और वह डाक्टरो को कहने लगे कि अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हू। और अब मेरी बड़ी मुसीबत हो गई है। लेकिन वहा कौन मानता था क्योकि डाक्टरो ने कहा यहा सभी पागल यही कहते हैं कि हम ठीक हैं। यह कोई बात है। कोई पागल कभी मानता है कि मैं पागल हू। उन्होने जितनी समझाने की कोशिश की, कोई समझने को राजी न था। छः महीने की सजा पूरी करनी पडी। वह मुझसे कहते थे कि चार महीने मेरे इतने कष्ट मे कटे कि ऐसा नरक मे कोई किसी को न डाले। क्योकि सब थे पागल और मैं हो गया था ठीक। कोई मेरी टाग खीच रहा है; कोई मेरा कान घुमा रहा है; कोई धक्का ही मार देता है, कोई पानी ही डाल देता है ऊपर आकर; सो रहा हू तो कोई घसीट कर दो चार कदम आगे कर जाता है। यह मैं भी करता रहा होऊगा दो महीने पहले। लेकिन तब हम सब साथी थे। तब कभी ख्याल न आया था कि यह गल्त कर रहा हू। अब बड़ी मुश्किल हो गई। और अब मैं असमर्थ हो गया कि मैं भी यही करू। अब मैं न किसी की टाग खीच सकता, और न किसी पर पानी डाल सकता। मै बिल्कुल ठीक था और वे सब पागल थे। उनकी जो मर्जी आती वे करते। कोई चलते चपत मार जाता, कोई बाल खीच जाता, कोई आकर कधे पर बैठ जाता, कोई गोदी मे बैठ जाता। चार महीने निरन्तर यही भगवान से प्रार्थना रही कि या तो जल्दी बाहर कर या फिर पागल कर दे। क्योकि यह तो फिर बडा असुविधापूर्ण हो गया। पागलखाने मे किसी आदमी के ठीक हो जाने की जो तकलीफ है, वही सोए हुए जगत के बीच जागने की तकलीफ है। क्योकि वह आदमी फिर सोए हुए आदमी के ढग से व्यवहार नही कर सकता और सोया हुआ आदमी तो अपना ढग जारी रखता है। तो महावीर जैसे लोग जिस कष्ट मे पड़ जाते है, उस कष्ट का हम हिसाब नही लगा सकते क्योंकि हमें पता ही नही है कि वह कष्ट कैसा है? क्योकि हम सोए हुए लोगो के बीच मे एक आदमी जाग गया, उसकी भाषा बदल गई, उसकी चेतना बदल गई, वह एकदम अजनबी हो गया।

अगर एक तिब्बती भारत मे आ जाए या आप तिब्बत मे चले जाए तो जो अजनबीपन है वह सिर्फ भाषा के शब्दो का है, बहुत ऊपर का अजनबीपन है,

भीतर आदमी एक जैसे हैं। क्रोध उसको आता है, क्रोध आपको आता है। घृणा उसको आती है, घृणा आपको आती है। ईर्ष्या मे वह जीता है, ईर्ष्या में आप जीते हैं। फर्क है तो इतना कि ईर्ष्या का शब्द आपका अलग है, उसका अलग। थोड़े दिनो मे पहचान हो जाएगी और 'ईर्ष्या' के शब्द मेल खा जाएंगे तब अजनबीपन मिट जाएगा। यानी साधारणत पृथ्वी के अलग-अलग कोनो पर रहने वाले को हम अजनबी कहते हैं। लेकिन वह अजनबीपन बडा छोटा है, सिर्फ भाषा का है। आदमी-आदमी एक जैसे है। लेकिन जब कोई आदमी सोई हुई पृथ्वी पर जागा हुआ हो जाता है तो जो अजनबीपन शुरू होता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है, क्योंकि अब भाषा का भेद नही, अब तो सारी चेतना का भेद पड गया है। सब आमूल बदल गया है। अगर हमे कोई गाली देता है तो हमारे भीतर क्रोध उठता है। उसे कोई गाली देता है तो उसके भीतर करुणा उठती है। इतनी चेतना का फर्क हो गया है क्योंकि उसे दिखाई पडता है कि एक आदमी बेचारा गाली देने की स्थिति मे आया है, कितनी तकलीफ मे होगा। और उसके भीतर मे करुणा बहनी शुरू हो जाती है और हमारे लिए समझना आसान है—अगर आप मुझे गाली दें, और मै भी आपको गाली दू। तो, आपका मैं मित्र हू क्योंकि आपकी दुनिया का ही निवासी हू। आप मुझे गाली दे और मैं आपको प्रेम करू तो आप जितना क्रोध से भरेंगे मेरे प्रति उतना गाली देने वाले के प्रति शायद न भरे।

एक आदमी तुम्हारे गाल पर चाटा मारे और तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे तो इससे ज्यादा अपमानजनक स्थिति दूसरे आदमी के लिए क्या हो सकती है? तुमने तो उसको कीडा-मकोडा बना दिया। यानी तुमने उसकी आदमियत भी स्वीकार न की। तुमने इतना भी न कहा कि ठीक है, तुमने एक चाटा मारा, एक चाटा हम भी मारेंगे। तो तुम बराबर हो गए होते। तुम तो एकदम आसमान मे चले गए और वह एकदम जमीन पर रेंगता हुआ कीड़ा हो गया। यह अपमान बरदाश्त नही किया जा सकता। नीत्से ने लिखा है—यह अपमान बरदाश्त के बाहर है। तुमने तो उस आदमी को बिल्कुल मिटा दिया। आदमी भी स्वीकार न किया तुमने। और तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया उसके साथ कि जिसका कोई हिसाब नहीं। यह सद्व्यवहार न हुआ, नीत्से कहता है, यह तो बहुत दुर्व्यवहार हो गया। सद्व्यवहार यही था कि समानता के हेतु एक चाटा तुमने भी मारा होता तो हम दोनो बराबर

हो गए होते; हम एक ही तल पर होते। तुम पहाड़ पर खड़े हो गए, हम खाई मे पड गए। वह ठीक कहता है। गाली देने वाला उत्तर मे आई गाली से इतना नाराज न होगा क्योकि यह उसकी अपनी भाषा है। गाली आनी चाहिए। गाली दी ही इसलिए गई है। लेकिन अगर उत्तर मे करुणा लौटे तो उसके क्रोध का हिसाब नही रह जाएगा। उसके अपमान और उसकी पीडा को नही समझ सकते हम। वह फिर इसका बदला लेगा। तो सोए हुए आदमियों के भीतर एक अनजानी स्वीकृति है इस बात की कि अगर जीना है सबके साथ तो चुपचाप सोए रहो। पागलो के साथ रहना है तो पागल बने रहो। और भीतर भी हमे डर है क्योंकि सब बदल जाएगा। सब बदलने की हम हिम्मत नही जुटा पाते।

इसलिए साधक का पहला लक्षण है—अनजान, अपरिचित, अनहोनी के लिए हिम्मत जुटाना। उसके लिए हम हिम्मत नही जुटा पाते, साहस ही नही जुटा पाते। हम कहते भी हैं कि हमको शाति चाहिए, सत्य चाहिए लेकिन हम ये सब बातें इस तरह करते हैं कि जैसे हम है, वैसे मे ही सब मिल जाए। हमे बदलना न पडे। हमने जो व्यवस्था कर रखी है, जो मकान बना रखा है, जो सम्बन्ध बना रखे है, उनमे कोई हेर-फेर न करना पडे। सब जैसा है वैसा रहे, और कुछ मिल जाए। लेकिन हमे यह पता ही नही है कि अंधे आदमी को आख मिलेगी तो उसके सब सम्बन्ध बदल जाएगे। क्योकि कल के सम्बन्ध अघे आदमी के सम्बन्ध थे। कल वह जिस आदमी का हाथ पकड कर रास्ता चलता था, अब हाथ पकडने से इन्कार कर देगा। और हो सकता है जिसका हाथ पकड कर वह चला था, उसे हमेशा यह ख्याल रहा हो कि मैं उसका सहारा हू। कल वह हाथ पकडने से इन्कार कर देगा कि क्षमा करो अब मेरे पास आंख है। मै चल सकता हू। तो यह आदमी भी नाराज होगा जिसका उसने सदा हाथ पकडा था क्योकि अब वह सहारा नही मागता है। सहारा देने का भी सुख है, सहारा देने का भी अहंकार है। तो अधे आदमी ने एक तरह सम्बन्ध बनाए थे, आख वाला आदमी दूसरे तरह के सम्बन्ध बनाएगा। सोए हुए आदमी ने एक तरह की दुनिया बसाई है; जागा हुआ आदमी इस दुनिया को बिल्कुल ही अस्त-व्यस्त कर देगा। तो वह भी डर है हमारे भीतर। वह साहस भी नही है। लेकिन अगर थोड़ा सा साहस हम जुटा पाए तो जागना कठिन नही है। क्योकि जो सो सकता है वह जाग सकता है, चाहे कितनी ही गहरी नीद मे सोया है।

जो सोया है उसमें जागने की क्षमता शेष है। एक आदमी यहा कितनी ही गहरी नीद मे सोया हुआ है। हम यहा उसके पास जागे हुए बैठे हैं। हम दोनो बिल्कुल भिन्न हालत मे हैं। अगर दूसरे सोए हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसको पता नही चलेगा। अगर जागे हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसे पता चलेगा। मकान मे आग लग गई तो सोए हुए आदमी को कोई पता नही चलेगा जब तक कि वह जाग न जाए। लेकिन जागे हुए आदमी को फौरन पता चल जाता है कि इस मकान मे आग लग गई है। ये दोनो आदमी इस मकान मे हैं। एक सोया है, एक जागा। सोया हुआ आदमी सोया हुआ है निश्चिन्त। जागे हुए आदमी को चिन्ता पकड गई। लेकिन फिर भी इन दोनो आदमियो मे बुनियादी भेद नही क्योंकि सोया हुआ आदमी एक क्षण मे जाग सकता है और जागा हुआ आदमी एक क्षण मे सो सकता है। यह तो साधारण तल पर जागना और सोना है ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति जाग गया है वह जानता है कि जो सोए है, वह जाग सकते हैं। लेकिन वहा एक फर्क है। एक साधारण तल पर जागने और सोने मे बुनियादी फर्क नही है क्योंकि जिसे हम जागना कह रहे है, वह थोडी कम डिग्री मे सोना ही है और जिसको हम सोना कह रहे हैं, वह थोड़ी कम डिग्री मे जागना ही है। उन दोनो मे डिग्री का ही भेद है। लेकिन उस तल पर, परम जागरण के तल पर, निद्रा और जागने मे डिग्री का भेद नही है, मौलिक रूपान्तरण का भेद है। इसलिए सोया हुआ आदमी जाग सकता है लेकिन जागा हुआ आदमी सो नही सकता। उस तल पर कोई जागा हुआ आदमी फिर कभी नही सो सकता।

ये रूपान्तरण ऐसे हैं जैसे कि हम दूध को चाहे तो दही बना सकते हैं। फिर दही से वापस दूध नही बना सकते। लेकिन पानी को हम बर्फ बना सकते है। बर्फ को हम फिर पानी बना सकते हैं क्योंकि बर्फ और पानी मे गर्मी के क्रम का भेद है। रूपान्तरण नही हो गया है। जो बर्फ है, वह कल पानी था। वह कल फिर पानी हो सकता है। सिर्फ गर्मी का फर्क पड जाए जो अभी पानी है वह कल बर्फ हो सकता है, भाप हो सकता है। वे सब एक ही चीज की क्रमिक अवस्थाए है। लेकिन दूध अगर दही हो जाए तो फिर वापस दूध बनाने का कोई उपाय नही। क्योंकि दही सिर्फ दूध की एक अवस्था नही है, मौलिक रूपान्तरण है। वह चीज ही नई हो गई है। सब बदल गया है। लेकिन दूध दही हो सकता है। दही दूध नही हो सकती। निद्रा से जागरण आ सकता

है लेकिन जागरण से फिर निद्रा का कोई उपाय नहीं। जागरण की एकमात्र विधि है कि हम जागने की कोशिश करें। जो भी हम कर रहे हैं उसमे हम जागे हुए होने की कोशिश करें। जैसे अभी आप मुझे सुन रहे हैं। तो आप दो तरह से सुन सकते हैं। बिल्कुल सोए हुए सुन सकते हैं। सोए हुए सुनने मे मैं बोल रहा हू, आपके कानो पर चोट पड रही है, आप मौजूद नहीं हैं। सोए हुए सुनने का मतलब है—मैं बोलूगा, सुनेंगे भी आप और नहीं भी सुनेंगे। सुनेंगे इन अर्थों मे कि आपके पास कान हैं तो कानो पर आवाज की चोट पड़ती रहेगी, भीतर ध्वनि गूजती रहेगी। कान समझेंगे कि सुनाई पड रहा है। लेकिन आप अगर मौजूद नहीं हैं, भीतर से अनुपस्थित हैं, कहीं और है तो आप सो गए है। एक युवक हाकी खेल रहा है, पैर मे चोट लग गई है, खेलने मे मस्त है, पैर से खून बह रहा है, सारे दर्शको का दिखाई पड रहा है कि पैर से खून टपक रहा है, जगह-जगह बिन्दुओ की कतार बन गई है लेकिन उसे कोई पता नहीं। उसका ही पैर है, उसे पता नहीं। बात क्या है ? वह पैर के पास अनुपस्थित है। वह खेल मे उपस्थित है। जहां ध्यान है, जहा उपस्थिति है, वहां वह है। जहां ध्यान नहीं है, जहां उपस्थिति नहीं, वहा निद्रा है। खेल खत्म हुआ और एकदम से उसने पैर पकड लिया। ओफ ! मैं तो मर गया, कितनी चोट लग गई, कितना खून बह गया। इतनी देर मुझे पता क्यो नहीं चला ? पता हमें केवल उसका चलता है जहा हम उपस्थित होते हैं। अगर ठीक मे समझें तो ध्यान की अनुपस्थिति ही निद्रा है। जो हम कर रहे हैं अगर ध्यान वहां अनुपस्थित है तो निद्रा है। और अगर ध्यान वहा उपस्थित है तो जागरण है। प्रत्येक क्रिया मे ध्यान उपस्थित हो जाए तो जागरण शुरू हो गया। महावीर जिसको विवेक कहते हैं, उसका यही अर्थ है। क्रिया मे ध्यान की उपस्थिति का नाम विवेक है और क्रिया मे ध्यान की अनुपस्थिति का नाम प्रमाद है।

महावीर का एक भक्त सम्राट उनसे मिलने आया। रास्ते मे ही उस सम्राट के बचपन का एक साथी महावीर से दीक्षित होकर तपश्चर्या कर रहा है। सम्राट ने सोचा कि अपने मित्र को भी देखते चले। जब वह मित्र के पास गया तो उसने देखा कि वह जो कि कभी एक राजा था नग्न खडा है, आखें बद हैं, एकदम शान्त है। सम्राट ने उसे नमस्कार किया और मन में कामना की कि कब ऐसी शाति मुझे भी उपलब्ध होगी। फिर वह महावीर से मिलने गया और पूछा : "मैंने प्रसन्नचन्द्र को देखा खडे हुए।

वह अत्यन्त शान्त है, कितना अद्‌भुत हो गया है वह। ईर्ष्या होती है मन में। मैं पूछता हू आप से कि इस शात अवस्था मे अगर उसकी देह छूट जाए तो वह कहां जायेगा ?" महावीर ने कहा कि जिस वक्त तुम वहा से गुजर रहे थे, अगर उस वक्त प्रसन्नचन्द्र की देह छूट जाती तो वह सातवे नरक मे गिरता। सम्राट एकदम हैरान हो गया। उसने कहा : क्या कहते हैं आप ? सातवें नरक मे ? तो हमारा क्या होगा ? सातवें नरक के नीचे और भी नरक हैं क्या ? अगर वह शात मुद्रा मे खडा हुआ सातवें नरक मे गिरेगा तो हमारा क्या होगा ? महावीर ने कहा . नही, तुम समझे नही मेरा मतलब। जब तुम आए, तब वह ऊपर से शात दिखाई पड रहा था। भीतर बडी कठिनाई मे पडा था। तुमसे पहले ही तुम्हारे वजीर निकले थे, तुम्हारे सैनिक निकले थे। और उन्होंने भी खडे होकर उसे देखा था और एक वजीर ने कहा था, देखो ! मूर्ख सब छोड-छाड कर यहा खडा है। छोटे-छोटे बच्चे हैं इसके। दूसरो के हाथ मे सब छोड आया है। वे सब हडपे जा रहे है। जब तक बच्चे बडे होगे तब तक सब समाप्त हो जायेगा। इसने किया है विश्वास और उधर विश्वासघात हो रहा है। और यह मूर्ख बना यहा खडा है। ऐसा उसके सामने कहा था। ऐसा जैसे उसने सुना उसका हाथ तलवार पर चला गया जो अब नही था। लेकिन सदा थी तलवार उसके बगल मे। हाथ तलवार पर चला गया। तलवार उसने बाहर निकाल ली। उसने कहा : वे क्या समझते हैं अपने को, अभी मैं जिंदा हूं, अभी मैं मर नही गया, एक-एक की गरदन उतार दूगा। और जब तुम उसके पास आए तब वह गरदनें उतार रहा था उस वक्त। अगर वह मर जाता तो सातवे नरक मे पड जाता। क्योंकि वह जहा था वहा नही था। वह गहरी निद्रा मे चला गया था। वह सपना देख रहा था। क्योंकि न तलवार थी हाथ मे, न वजीर थे सामने लेकिन सपने में गर्दनें काट रहा था। तुम जब निकले वहां से अगर वह उस समय मर जाता तब वह सातवे नरक मे गिर जाता। लेकिन अब अगर पूछते हो इस वक्त तो वह श्रेष्ठतम स्वर्ग पाने का हकदार हो गया है। लेकिन सम्राट ने कहा . अभी घडी भर भी नही हुआ हमे वहां से गुजरे। महावीर ने कहा कि जब उसने तलवार रख दी नीचे तो जैसी उसकी सदा आदत थी युद्धो के बाद अपने मुकुट को सभालने की, वह सिर पर हाथ ले गया। लेकिन सिर पर तो घुटी हुई खोपड़ी थी। वहां कोई मुकुट न था। तब एक सेकेन्ड में वह जाग गया—सारी निद्रा से वापस आ गया।

सब स्वप्न खण्ड खण्ड हो गए। और उसने कहा कि "मैं यह क्या कर रहा हूं? और मैं वह प्रसन्नचन्द्र नही हूं अब जो तलवार उठा सके। उसके उठाने का तो मैं ख्याल छोड़ कर आया हू।" और क्षण में वह लौट आया है। इस समय वह बिल्कुल वही खड़ा है। अभी वह स्वर्ग का हकदार है।

हम सोए हैं तो हम नरक मे हो जाते हैं, हम जागे हैं तो स्वर्ग में हो जाते हैं। यह जागने की चेष्टा हमे सतत करनी पडेगी। जन्म-जन्म भी लग सकते हैं। एक क्षण मे भी हो सकता है। कितनी तीव्र हमारी प्यास है, कितना तीव्र सकल्प है—इस पर निर्भर करेगा। तो महावीर ने अपने पिछले जन्मो मे अगर कुछ भी साधा है तो साधा है विवेक, साधा है जागरण। और इस जागरण की जितनी गहराई बढती चली जाती है उतने ही हम मुक्त होते चले जाते हैं क्योकि बंधने का कोई कारण नही रह जाता। उतने ही हम पुण्य मे जीने लगते हैं क्योकि पाप का कोई कारण नही रह जाता। उतने ही हम अपने मे जीने लगते है क्योकि दूसरे मे जीना भ्रामक हो जाता है। उतना ही व्यक्ति शात है, उतना ही आनन्दित है, जितना जागा हुआ है। जिस दिन पूर्ण जागरण की घटना घट जाती है, विस्फोट हो जाता है; चेतना के कण-कण जागृत हो उठते है, कोने-कोने से निद्रा विलीन हो जाती है। उस दिन के बाद फिर लौटना नही। उस दिन के बाद फिर परिपूर्ण जागना। ऐसी परिपूर्ण जागी हुई चेतना ही मुक्त चेतना है। सोई हुई चेतना, बधी हुई चेतना है। इसलिए ध्यान से समझ ले कि पाप नही बाधता है कि हम पुण्य से उसको मिटा सके। मूर्च्छा बाधती है। मूर्च्छित पाप भी बांधता है, मूर्च्छित पुण्य भी बाधता है। मूर्च्छित असयम भी बाधता है, मूर्च्छित सयम भी बाधता है। और इसलिए यह बहुत समझ लेने जैसा है कि अगर कोई असयम को सयम बनाने मे लग गया है तो कुछ भी न होगा, पाप को पुण्य बनाने मे लग गया है तो भी कुछ न होगा; क्रूरता को दया बनाने मे लग गया है तो भी कुछ न होगा; क्योकि वह व्यक्ति केवल क्रिया को बदल रहा है और उसके भीतर की चेतना वैसी की वैसी अमूर्च्छित बनी है। और कई बार उल्टा भी हो जाता है। उल्टे का मतलब यह कि कई बार लोहे की जजीर ही ठीक है क्योकि उसे तोडने का मन भी करता है। और सोने की जजीर गल्त है क्योकि उसे संभालने का मन करता है; क्योंकि सोने की जंजीर को जजीर समझना मुश्किल है। सोने की जजीर को आभूषण समझना आसान है। इसलिए पापी भी कई बार जागने के लिए आतुर हो जाता है। और जिसे हम साधु कहते हैं, वह जागने के लिए आतुर

नहीं होता। फर्क ऐसा ही है जैसे कोई आदमी दुखद स्वप्न देख रहा है और एक आदमी सुखद स्वप्न देख रहा है लेकिन सुखद स्वप्न देखने वाला जागना नही चाहता। वह चाहता है कि थोड़ी देर और सो लू। सपना बहुत सुखद है, कोई तोड न दे। और थोडी देर सो लू। लेकिन दुखद स्वप्नवाला, (दुःस्वप्न) वाला, एकदम जाग जाता है हडबडा कर। पापी दुखद स्वप्न देख रहा है। पुण्यात्मा सुखद स्वप्न देख रहा है। इसलिए बहुत बार डर है कि पापी जाग जाए, पुण्यात्मा रह जाए। मैं यह कहता हू कि इसकी फिक्र ही मत करना कि पाप को कैसा पुण्य बनाए, असयम को कैसे सयम बनाएं, हिंसा को कैसे अहिंसा बनाए, कठोरता को कैसे दया बनाए। इस चक्कर मे ही मत पडना। सवाल यह है ही नही कि हम क्रिया को कैसे बदले। सवाल यह है कि कर्ता कैसे बदलें? अगर कर्ता बदल जाता है तो क्रिया भी बदल जाती है। क्योकि तब व्यक्ति किसी क्रिया के करने मे असमर्थ और किसी क्रिया के करने मे समर्थ हो जाता है। भीतर से कर्ता बदला, चेतना बदली।

तो मैं कहता हू कि पाप वह है जो सजग व्यक्ति नही कर सकता है और पुण्य वह है जो जागे हुए व्यक्ति को करना ही पडता है। इसलिए ऐसे भी पुण्य हैं जो किए हुए पाप हैं क्योकि आदमी ही सोया हुआ है। दिखता पुण्य है, वह होगा पाप ही क्योकि आदमी ही सोया हुआ है। सोया हुआ आदमी कैसे पुण्य कर सकता है? इसलिए पुण्य दिखाई पड़ेगा, भीतर पाप छिपा होगा। और ऐसा भी सम्भव है कि जागा हुआ व्यक्ति कुछ ऐसे काम करे जो आपको पाप लगे मगर वे पाप न हो। क्योकि जागा हुआ व्यक्ति पाप कर ही नही सकता। इसलिए दोनो तरह की भूलें सम्भव हैं।

कबीर को एक रात ऐसा हुआ। कबीर थोडे से जागे हुए लोगों मे से एक हैं। रोज लोग आते हैं कबीर के घर सुबह, भजन-कीर्तन चलता है, कबीर के पास बैठते हैं; फिर जाने लगते हैं। कबीर कहता है खाना तो खा जाओ। कभी दो सौ, कभी चार सौ गरीब आदमी। कबीर का बेटा और पत्नी परेशान हो गए। और उन्होने कहा—हमारी बरदाश्त के बाहर है। हम कैसे सम्भाल पाए, कैसे इन्तजाम करें? आपने तो इतना कह दिया कि 'भोजन कर जाओ'। यह भोजन हम कहा से लाए? कबीर ने कहा कि भोजन लाने की व्यवस्था इतनी कठिन नही है जितनी घर आए आदमी को खाने के लिए न कहें, यह कठिन है। यह हो नही सकता कि कोई घर मे आए और मैं उसको कहू कि खाना मत खाओ। तो आप कुछ इन्तजाम करो। आखिर

कब तक इन्तजाम चलता। उधारी भी ले ली गई। उधारी भी चढ गई। फिर एक दिन साझ लडके ने कहा कि अब बरदाश्त के बाहर हो गया है। कोई हम चोरी करने लगे ? कबीर ने कहा : अरे यह तुम्हें ख्याल क्यो नही आया अब तक ? लड़के ने क्रोध में कहा था लेकिन यह सुनकर लडका हैरान हुआ कि कबीर कहते हैं कि तुम्हे चोरी करने का ख्याल क्यो नही आया ? तब लड़के ने बात को जाचने के लिए कहा तो क्या मैं चोरी करने जाऊँ ? कबीर ने कहा हा ! अगर मेरी जरूरत हो तो मैं भी चलू। लडके ने और जाचने के लिए कहा अच्छा ठीक है कि मैं चलता हू। उठो आप। पर उसकी समझ के बाहर हो गई यह बात कि कबीर और चोरी करें। समझ रहे हैं कबीर कि नही समझ रहे हैं कि मै क्या कह रहा हू। फिर जाकर उस लडके ने एक दीवाल खोद डाली, सेंध लगा दी। कबीर से कहता है जाऊ भीतर ! कबीर कहते है बिल्कुल चला जा। वह भीतर गया। वह वहा से एक बोरा गेहू खिसका कर लाया बाहर। बाहर बोरा निकल आया। कबीर उसे उठाने लगे और फिर उस लडके से पूछा घर के लोगो को कह आया है कि नही कि हम एक बोरा ले जाते है। तब लडके ने कहा कि चोरी है यह। कोई दान मे तो नही ले जा रहे, किसी ने भेंट तो नही की। तब कबीर ने कहा यह नही हो सकता। तुम जा कर कह आ घर मे कि हम चोरी करके एक बोरा ले जा रहे है। घर के मालिक को खबर तो कर देनी चाहिए।

बडी अद्भुत बात है। दूसरे दिन लोगो ने कबीर से पूछा तो कबीर ने कहा बडी गल्ती हो गई। गल्ती इसलिए कि यह भाव ही चला गया कि क्या मेरा है, क्या उसका है। तब बाद मे ख्याल आया कि चोरी तो उसी भाव का हिस्सा था कि वह उसकी चीज है, यह मेरी। जब मेरी कोई चीज न रही तो किसी की कोई चीज न रही। पर इतनी बात जरूर थी कि घर से लाये थे, सुबह ढूंढेगा, परेशान होगा, इतनी खबर कर देनी चाहिए कि एक बोरा ले जाते है।

अब इस आदमी को समझना हमे बडा मुश्किल हो जाएगा। इसके चोरी करने मे भी इतना अद्भुत पुण्य है क्योकि उसे यह भाव ही खो गया है कि क्या दूसरे का है, क्या अपना ? कबीर जैसा व्यक्ति अगर चोरी करने भी चला जाए तो भी पुण्य है। और हम जैसा व्यक्ति अगर दान भी करता हो तो भी चोरी है। क्योकि दान मे भी हमारी जो वृत्ति और मूर्च्छा होगी, वह चोरी की है। दान में भी हमें लगता है कि यह मेरा है और इसे मैं दे रहा हू।

और कबीर को चोरी मे भी नही लगता कि वह दूसरे का है और मैं ले रहा हू। यह जो फर्क हमे ख्याल मे आ जाए तो वह दान हमारा पाप है क्योकि उसमे 'मेरा' मौजूद है। और कबीर की चोरी को कोई परमात्मा कही बैठा हो तो पाप नही कह सकता क्योकि वहा 'मेरा' नही है। हा इतनी बात थी कि घर के लोगो को खबर कर देनी थी, नही तो सुबह बेचारे ढूढेगे। वह जो खबर करवाने भेजी है, वह इसलिए नही कि चोरी बुरी चीज है, बल्कि इसलिए कि सुबह घर के लोग व्यर्थ मे ही धूप मे परेशान होगे, खोजेगे कि कहा चला गया बोरा। इतना जगाकर तू खबर कर आ, मैं घर चलता हू।

यह जो ऐसा बहुत बार हुआ है हमे समझना मुश्किल हो जाता है। अब जैसे कृष्ण ही हैं। अर्जुन समझ नही पाया कृष्ण को। अर्जुन समझ लेता तो बात ही और होती। अर्जुन भाग रहा है कि "ये मेरे प्रिय जन हैं, मर जाएगे।" कृष्ण उसे कहते है "पागल, कभी न कोई मरता है न कोई मारता है।" अब कृष्ण किस तल पर खडे होकर कह रहे है, अर्जुन को कुछ खबर नही। अर्जुन जिस तल पर खडा है, वही समझेगा न ? अर्जुन समझ रहा था—'मेरे है।' कृष्ण कहते है—'कौन किसका है', यह दो बिल्कुल अलग तलो पर बात हो रही है। और मैं समझता हू कि गीता को पढने वाले निरन्तर इस भूल मे पडे है। क्योकि बिल्कुल, भिन्न तलो पर यह बात हो रही है। अर्जुन कहता है—"ये मेरे प्रिय जन हैं, मेरे गुरु है। मेरे रिश्तेदार है।" कृष्ण कहते हैं· "कौन किसका है ? कोई किसी का नही है। अपने ही तुम नही हो।" अर्जुन समझ लेता तो फिर ठीक था। मगर उसने गल्त समझा। उसने समझा कि जब कोई अपना नही है तो मारा जा सकता है। पीडा तो अपने की होती है। अर्जुन कहता है कि मर जाएगे तो पाप लगेगा। कृष्ण कहते हैं कि न कभी कोई मरा और न कभी किसी ने मारा। शरीर के मारने से कही वह मरता है, जो भीतर है। यह बिल्कुल और तल से कही जा रही है बात। अर्जुन सोचता है कि जब कोई मरता ही नही तो मारने मे हर्ज ही क्या है ? मारो ! और यह भूल निरन्तर चलती रही है। यानी मैं मानता हू कि अगर अर्जुन कृष्ण को ठीक समझ जाता तो महाभारत का युद्ध कभी नही हो सकता था। लेकिन अर्जुन समझा ही नही। और समझने की कठिनाई जो थी वह भी मैं मानता हूं। कठिनाई यही है कि कृष्ण जिस चेतना मे खडे होकर कह रहे हैं, वह अर्जुन की चेतना नही है। सवाल अर्जुन की चेतना को बदलने का है। जो अर्जुन ने समझा, वह उसने किया। अब अगर कबीर

का बेटा—कल कबीर मर जाए, और कल उसके घर में खाना न हो तो चोरी कर लाएगा क्योंकि वह कहेगा कि चोरी मे पाप ही क्या है ? क्योंकि खुद कबीर ने साथ दिया था चोरी मे। लेकिन कबीर जिस चोरी को गया था, वह बात और थी। और कमाल उसका बेटा जिस चोरी को चला जाए वह बात और है। यह दो तल की बातें थी जिनमे भूल हो जानी सम्भव है। और ऐसी ही भूल कृष्ण और अर्जुन के बीच हो गई है और वह भूल अब तक नही मिट सकी। और हजार-हजार टीकाए लिखी गई हैं गीता पर। लेकिन किसी को भूल ख्याल मे नही। भूल बुनियादी हो गई है। दो अलग चेतनाओ के बीच मे हुई बात में निरन्तर भूल हो गई है। क्योंकि जो कहा गया वह समझा नही गया। जो समझा गया वह कहा नही गया। इसलिए मेरा जोर निरन्तर यह है कि हम कर्म को बदलने के विचार मे न पडें, हम चेतना को बदलने के विचार मे पडें क्योंकि चेतना से कर्म आता है। चेतना बदल जाती है तो कर्म बदल जाते हैं।

महावीर की पूरी साधना विवेक की साधना है, सयम की साधना नही। क्योंकि विवेक से सयम छाया की तरह आता है। लेकिन निरन्तर यह समझा गया है कि महावीर सयम की साधना कर रहे हैं। और वह बुनियादी भूल है।

प्रश्न . मुक्त आत्माओ मे करुणा शेष रह जाती है और करुणा भी वासना का ही एक सूक्ष्म रूप है—ऐसा आपने कहा। वासना में सदा द्वन्द्व रहता है। सदा दो रहते है—परस्पर विरोधी दो। ऐसी स्थिति मे करुणा का विरोधी कौन सा तत्त्व है, जो मुक्त आत्माओं मे शेष रह जाता है ?

उत्तर : पहली बात यह है कि करुणा वासना का सूक्ष्म रूप है—ऐसा नही। करुणा वासना का अन्तिम रूप है। इन दोनो मे भेद है। अन्तिम रूप से मेरा मतलब है कि वासना और निर्वासना के बीच जो सेतु है—चाहे हम करुणा को वासना का अन्तिम रूप कहे, चाहे करुणा को निर्वासना का प्रथम रूप कहे, यह बीच की कडी है, जहा वासना समाप्त होती है और निर्वासना शुरू होती है। करुणा सूक्ष्म रूप नही है वासना का। अगर सूक्ष्म रूप हो तो करुणा मे भी द्वन्द्व होगा। वासना मे तो सदा द्वन्द्व रहता ही है। इसलिए वासना मे दुख है क्योंकि जहा द्वन्द्व है, वहा दुख है। वासना चाहे कितनी ही सुखद हो, उसके पीछे उसका दुखद रूप खडा ही रहेगा। सब वासनाएं एक सीमा पर अपने से विपरीत मे बदल जाती हैं। प्रत्येक वासना

का विरोधी तत्क्षण मौजूद ही रहता है । वह कभी अलग होता ही नही । जब हम प्रेम की बात करते हैं, तभी घृणा खडी हो जाती है । जब हम क्षमा की बात करते हैं, तभी क्रोध खडा हो जाता है । जब हम दया की बात करते हैं, तभी कठोरता आ जाती है । यानी अगर ठीक से समझें तो दया कठोरता का ही अत्यन्त कम कठोर रूप है । यानी जो फर्क है वह इस तरह का जैसे ठंडे और गरम मे । गरम ठडे मे फर्क क्या है ? गरम-ठण्डी दो चीजें नही है । ये एक ही तापमान के दो तल है । हम ऐसा समझे तो ठीक समझ मे आ जाएगा । एक बर्तन मे गरम पानी रखा है । दूसरे बर्तन मे बिल्कुल ठडा पानी रखा है । आप दोनो मे अपने दोनो हाथ डाल दें । एक आइसकोल्ड ठडे पानी मे, एक उबलते हुए गरम पानी मे । फिर दोनो हाथो को निकालकर एक ही बाल्टी मे डाल दे, जिसमे साधारण पानी रखा है । और तब आप हैरान रह जाएगे । आपका एक हाथ कहेगा कि पानी बहुत ठडा है । और आपका दूसरा हाथ कहेगा कि पानी बहुत गरम है । और पानी बिल्कुल एक बाल्टी मे है । आपके हाथ की ठडक और गर्मी पर निर्भर करेगा कि आप इस पानी को क्या कहते हैं । और आप बडी मुश्किल मे पड जाएगे कि इस पानी को क्या कहे ? क्योकि एक हाथ खबर दे रहा है कि पानी ठडा है, दूसरा हाथ खबर दे रहा है कि पानी गरम है ।

कठोरता और दया इसी तरह की चीजें है । इनमे जो भेद है, वह भेद अनुपात का है । तब यह भी हो सकता है कि एक बहुत कठोर आदमी को जो चीज बहुत दयापूर्ण मालूम पडे, एक बहुत दयापूर्ण आदमी को वह चीज बहुत कठोर मालूम पडे । वह तो सापेक्ष होगा । तैमूरलग जैसे आदमी को जो बात बहुत दयापूर्ण मालूम पडे वह गाधी जसे आदमी को अत्यन्त कठोर मालूम पड सकती है । दोनो हाथ हैं लेकिन एक ठडा, एक गरम । तो पानी की खबर वे वैसी देंगे । नैतिक पुरुष इसी द्वन्द्व मे जीता है, इसके बाहर नही जाता । वह कहता है—कठोरता छोडो, दया पकडो ; शोषण छोडो, दान पकडो; हिंसा छोडो, अहिंसा पकडो । नैतिक व्यक्ति कहता है कि जो बुरा है, उसे छोडो , जो अच्छा है उसे पकडो । लेकिन, वह यह भूल जाता है कि जिसे वह अच्छा कह रहा है, वह उसी बुरे की अत्यन्त छोटी, कम विकसित अवस्था है । वह उससे भिन्न और विरोधी नही है । लेकिन जैसे ही व्यक्ति वासना से निर्वासना के जगत मे प्रवेश करता है तो बीच की एक बफर स्टेज, जिसको कहना चाहिए दो अवस्थाओं के बीच का रिक्त

स्थान, उस मे भी करुणा सेतु है। करुणा कठोरता का उल्टा नही है। करुणा और दया समानार्थक नही है। दया कठोरता की प्रहरी है इस फर्क को ठीक से समझ लेना उपयोगी होगा। जब मैं किसी व्यक्ति पर दया करता हू तब ध्यान मे दूसरा व्यक्ति होता है जिस पर मैं दया कर रहा हू। भूखा है, दयायोग्य है। दया दूसरे की दीनता पर, दुख पर, दरिद्रता पर निर्भर करती है। दूसरा केन्द्र मे होता है। और जब मैं कठोर होता हू तब भी दूसरा केन्द्र मे होता है। यह दूसरा दुश्मन है, बुरा है, उसे मिटना जरूरी है। दया और अदया—दोनो मे दृष्टि बिन्दु दूसरे पर होती है। करुणा का दूसरे से कोई सम्बन्ध नही। दूसरा कैसा है, करुणा का इससे प्रयोजन नही। मैं कैसा हू, यह प्रयोजन है। मैं करुणापूर्ण हू।

जैसे एक दिया जल रहा है और उसमे रोशनी बरस रही है। पास से कोई निकलता है, इससे दिया रोशनी कम और ज्यादा नही करता। कौन पास से निकलता है—अच्छा या बुरा आदमी, दीन, दरिद्र, या धनवान, हारा हुआ कि जीता हुआ, दिया जलता रहता है। कोई नही निकलता तब भी जलता रहता है। क्योकि दिए का जलना दूसरे पर निर्भर नही करता। दिए का जलना उसकी अन्तर् अवस्था है। एक भिखारी सडक पर निकला तो आप दयापूर्ण हो गये। लेकिन अगर एक सम्राट निकला तो फिर आप कैसे दयापूर्ण होगे ? भिखारी निकला तो आप दयापूर्ण होगे और सम्राट निकला तो आप दया की आकाक्षा करेगे। क्योकि दया दूसरे से बधी थी, आप पर निर्भर नही थी। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति के पास से कोई निकले—दीन, भिखारी या सम्राट—इससे कोई फर्क नही पडता। करुणा बरसती रहेगी, सम्राट पर भी उतनी ही, भिखारी पर भी उतनी ही क्योकि करुणा दूसरे पर निर्भर नही करती है। महावीर का दिया है जो जल रहा है, जिससे रोशनी बरस रही है। इसलिए करुणा को कोश शब्द मे जो दया का पर्यायवाची बताया जाता है वह बुनियादी भूल है। एकदम भूल है। दया बात ही और है। दया कोई अच्छी चीज नही। हा, बुरी चीजो मे अच्छी है।

करुणा बात ही और है। करुणा से विपरीत कुछ भी नही है। करुणा मे द्वन्द्व नहीं है। दया मे द्वन्द्व है क्योकि दया सकारण है। वह आदमी दीन है,

इसलिए दया करो; वह आदमी भूखा है, इसलिए रोटी दो, वह आदमी प्यासा है, इसलिए पानी दो। उसमें दूसरे आदमी की शर्त है। करुणा है बिना शर्त। दूसरा कैसा है इससे इसका कोई सम्बन्ध नही। मैं करुणा दे सकता हू इससे कोई फर्क नही पडता कि वह कैसा है, कौन है, क्या है? अगर कोई भी नही तो भी करुणापूर्ण व्यक्ति अकेले मे खडा है। अगर महावीर एक वृक्ष के नीचे अकेले खडे है, कई दिन बीत जाते है और कोई नही निकलता वहा से तो भी करुणा झरती रहती है। जैसे एक फूल खिला है निर्जन मे और उसकी सुगध फैल रही है। रास्ते से कोई निकलता है तो उसे मिल जाती है, अगर कोई नही निकलता तो भी झरती रहती है। सुगध देना फूल का स्वभाव है। राहगीर को देख कर नही कि कौन निकल रहा है। इसको जरूरत है कि नही यह सवाल ही नही। यह फूल का आनन्द है। करुणा एक अन्तर् अवस्था है, दया अन्त- सम्बन्ध है, अन्तर् अवस्था नही। मै किससे जुडा हू, दया इस पर निर्भर करती है। मैं इधर से भी ले सकता हू, उधर से भी ले सकता हू। मै किससे जुडा हू इस पर निर्भर करेगी यह बात। मगर करुणा अन्तर् अवस्था है और वासना का अन्तिम छोर है अन्तिम छोर इन अर्थों मे कि उसके बाद फिर निर्वासना का जगत शुरू हो जाता है या निर्वासना का प्रथम छोर है क्योंकि उसके बाद निर्वासना शुरू हो जाती है।

वासना का जगत द्वन्द्व का जगत है। यह थोडा समझने जैसा होगा। वासना द्वैत का जगत है—जहा दो के बिना काम नही चलता। सब चीजे विरोधी होगी। अधेरा प्रकाश, जन्म मृत्यु—ऐसा जहा विरोध होगा। वासना और निर्वासना के बीच म अद्वैत का सेतु है। वासना है द्वैत—जहा हम स्पष्ट कहेगे: दो है। और बीच का सेतु है अद्वैत—जहा हम कहेगे . दो नही हैं। अभी हम दो का उपयोग करेगे। पहले कहते थे, दो है, अब हम कहेगे—'दो नही है।' निर्वासना का जो जगत है वहा तो हम यह भी नही कह सकते कि अद्वैत है। क्योकि वहा 'दो' का शब्द भी उठाना गल्त है। वासना मे सख्या का सवाल है, निर्वासना मे सख्या का सवाल ही नही। यानी यह भी कहना गल्त है वहा कि 'दो नही है।' बीच का जो सेतु है, वहा हम कह सकते है कि 'दो नही हैं' क्योकि वासना छूट गई है और निर्वासना अभी आ रही है। बीच के अन्तराल मे करुणा है। करुणा अद्वैत है। अद्वैत के भी ऊपर एक लोक है, जहा से यह भी कहना गल्त है कि 'अद्वैत' अर्थात् जहा हम कहें 'दो नही'। पहले 'दो है' ऐसी

एक सार्थकता थी; फिर दो नही ऐसी एक सार्थकता थी; अब कुछ भी कहना मुश्किल है। मौन हो जाना ही ठीक है। अब 'एक', 'दो' या 'तीन' का कोई सवाल ही नही उठता। वह है निर्वासना। लेकिन, इसके पहले कि हम सख्या से असख्या मे पहुचे, सीमा से असीमा मे पहुचे, बीच मे निषेध का एक क्षण, निषेध की एक यात्रा है। वह है करुणा जिसका कोई विरोधी ही नही है। दया का विरोधी है, करुणा का विरोधी नही है। बुद्ध ने जिसे करुणा कहा है महावीर उसे अहिंसा कहते हैं; जीसस उसे प्रेम कहते हैं। ये शब्दो की पसदगिया है। ये सभी शब्द सेतु पर इगित करते है करुणा से गुजरना पडेगा, बुद्ध कहते हैं। अहिसा मे गुजरना पडेगा, महावीर कहते है। प्रेम से गुजरना पडेगा, जीसस कहते है। यह सिर्फ शब्द भेद है; सेतु एक ही है जहा से हम द्वन्द्व से छूटते है और द्वन्द्व-मुक्त मे जाते है। बीच मे एक जगह है जिसे मैंने कहा है करुणा, अहिंसा, प्रेम। इसका विरोधी कोई भी नही। कुछ चीजो के विरोधी होते है, कुछ चीजो के विरोधी नही होते। जिनके विरोधी नही होते, वे सेतु बनते है। और फिर आगे तो न पक्ष है, न विपक्ष है, विरोधी का सवाल ही नही है क्योंकि वह ही नही है जिसका विरोधी हुआ जा सके।

प्रश्न द्रष्टा भाव मे संसार स्वप्न है, ऐसा आपका कहना है। किन्तु यह व्यक्तिपरक दृष्टिकोण की बात हुई। वस्तुपरक दृष्टि से संसार क्या स्वप्न ही है? इस सम्बन्ध मे महावीर की दृष्टि शकराचार्य के मायावाद से कहां भिन्न है ?

उत्तर : मैंने कल रात कहा था कि अगर स्वप्न मे कर्ता भाव आ जाए तो स्वप्न सत्य हो जाता है। इससे ठीक उल्टे, अगर सत्य मे, यथार्थ मे कर्ता भाव आ जाए तो वह सत्य भी स्वप्न हो जाता है। इसमे अहकार ही सूत्र है। चाहे तो स्वप्न को सत्य बना लो, और चाहो तो सत्य को स्वप्न कर दो। यह मैंने कल कहा था। उसी सम्बन्ध मे यह प्रश्न है। इसका यह मतलब हुआ कि अगर हम समझ ले कि जगत स्वप्न है तो क्या सचमुच ही जगत नही है या कि यह स्वप्न होने का भाव सिर्फ मेरा आत्मपरक ही है। मुझे ऐसा लग रहा है कि यह मकान नही है, सपना है तो क्या इसका यह मतलब मान लिया जाए कि सच मे ही मकान नही है, खाली जगह है यह। जैसा कि रात सपने का मकान खो जाता है ऐसे ही यह मकान भी क्या इतना ही असत्य है ? तो फिर शकर के मायावाद मे कि सब जगत माया है, और

महावीर के द्वैतवाद मे—क्योंकि महावीर जगत को माया नही कहते है—क्या फर्क है ?

इसमे बहुत बाते समझनी होगी । पहली बात यह कि स्वप्न भी असत्य नही है । स्वप्न का भी अस्तित्व है । जब आप रात सपना देखते है तो आप सुबह जाग कर कहते है कि 'सब सपना था, कुछ भी न था ।' लेकिन जो न हो तो सपने तक भी नही हो सकता है । स्वप्न के बाबत बडी भ्रान्ति है । स्वप्न असत्य नही है । स्वप्न की अपनी तरह की सत्ता है, अपने तरह का सत्य है उसमे । वह सूक्ष्म मानस परमाणुओ का लोक है, तरल परमाणुओ का लोक है । असत्य नही है । असत्य का मतलब होता है जो है ही नही । तो तीन चीजे हैं । असत्य, जो है ही नही । सत्य, जो है । और इन दोनो के बीच मे एक स्वप्न है जो न तो इन अर्थो मे नही है जिन अर्थो मे खरगोश के सीग या बाझ मा का बेटा । और न इन अर्थों मे है जैसे पहाड । जो दोनो के बीच है, जो हो भी किसी सूक्ष्म अर्थ मे, और जो न भी हो किसी सूक्ष्म अर्थ मे । शकर का भी 'माया' से यही मतलब है । शकर कहते है तीन यथार्थ है—सत्, असत् और माया । माया को मिथ्या कहिए तो भी कोई फर्क नही पडता । लेकिन मिथ्या से लोगो को ख्याल होता है कि जो नही है । एक तो ऐसी चीज है जो है ही नही और एक ऐसी चीज है, जो बिल्कुल है । और, एक ऐसी चीज है, जो दोनो के बीच मे है, जिसम दोनो के गुण मिलते है ।

स्वप्न असत्य नही है । हा, जागरण-जैसा वह सत्य नही है । स्वप्न का अपना सत्य है । और अगर स्वप्न के सत्य की खोज मे कोई जाए तो जितना सत्य उसे बाहर की दुनिया मे मिल सकता है, उतना ही सत्य वहा भी मिल सकता है । लेकिन हम तो बाहर की दुनिया मे ही नही जा पाते, स्वप्न की दुनिया म जाना तो बहुत मुश्किल है । क्योकि बिल्कुल छायाओ का लोक है वह जहा अत्यन्त तरल चीजे हैं जिनको मुट्ठी मे बाधना मुश्किल है । स्वप्न मे भी खोज की जा सकती है, और होती रही है । जो लोग स्वप्न-लोक की गहराइयो मे गए है वे बहुत हैरान हो गए है कि जिसको हम स्वप्न कहते है वह बहुत गहरे अर्थों मे हमारे सत्य लोक से जुड़ा है । बहुत से स्वप्न हमारे पिछले जन्मो की स्मृतिया हैं, बहुत से स्वप्न हमारे भविष्य की झलक है बहुत से स्वप्न हमारी अन्तर्यात्राए है मनोजगत मे, जिनका हमे पता नही चलता क्योंकि इस देह से वे यात्राएं नही होती, सूक्ष्म देहो से होती हैं ।

तो मैं स्वप्न को असत्य नही कहता हू । फर्क इतना ही कर रहा हू कि स्वप्न मे जो सत्य दिखाई पडता है, वह स्वप्न के सत्य होने से नही आता। वह हमारे कर्ता होने से आता है । और हमारा कर्तापन मिट जाए तो हमारे लिए स्वप्न मिट जाएगा, स्वप्न का सत्य तो बना ही रहेगा । अगर हमारा कर्तापन का भाव मिट जाए, अगर मै नीद मे जाग जाऊ और मुझे ख्याल आ जाए कि यह स्वप्न है और मैं तो सिर्फ स्वप्न देख रहा हू तो एकदम विलीन हो जाएगा । इसका यह मतलब नही कि स्वप्न के सत्य नष्ट हो गए । स्वप्न के सत्य अपने बल पर बने रहेगे ।

कर्ताभाव से स्वप्न मे सत्य प्रकट हुआ था । अब वह अप्रकट हो गया । ठीक ऐसे ही जागने मे जो चीजे हमे दिखाई पड रही हैं वे हैं । उनकी अपनी सत्ता है । महावीर को भी निकलना हो, शकर को भी निकलना हो तो दरवाजे से निकलेगे, दीवाल से नही निकलेगे । माया या स्वप्नवत् कहने का मतलब बहुत दूसरा है । वह यह है कि दीवाल याना वस्तु का अपना एक सत्य है । लेकिन वह सत्य एक बात है और हम कर्ता होकर मोहग्रस्त अह-ग्रस्त होकर उस पर और सत्य प्रोजेक्ट कर रहे है जो कही भी नही है । जैसे एक मकान है, उसका अपना सत्य है । लेकिन यह मकान मेरा है यह बिल्कुल ही सत्य नही है । 'यह मेरा', बिल्कुल मेरे प्रक्षेप (प्रोजैक्शन) की बात है । मकान को पता भी नही होगा कि मैं किसका था और कई बार इसकी भ्रान्तिया गहरी हैं । जैसे कि हम कहते है कि यह देह मेरी है । आपको ख्याल होना चाहिए कि इस देह मे करोडो कीटाणु जी रहे है और वे समझ रहे है कि यह देह उनकी है । और उनमे से किसी को पता नही कि आप भी इसमे है एक । आपका बिल्कुल पता नही । जब आपको कंसर हो गया, घाव हो गया, नासूर हो गया और दस कीडे उसमे पल रहे है तो आप सोच रहे है कि यह मेरी देह को खाए जा रहे हे । कीडो को ख्याल भी नही हो सकता । कीड़ो की अपनी देह है, वह उसमे जी रहे हे । जब आप उन्हे हटाते है, तो उनको स्वत्व से वचित कर रहे है । आप समझ रहे है कि आपकी देह मे कितने लोग देह बनाए हुए है । और वह अरबो, खरबो कीटाणु देह बनाए हुए है और सब यह मान रहे है कि उनकी देह है । जब हम यह कह रहे है कि वस्तु की अपनी सत्ता है, इस देह की अपनी सत्ता है तो 'मेरा है', यह धारणा बिल्कुल स्वप्नवत् हो जाती है । जिस दिन आप जागेगे, देह रह जाएगी और अगर 'मेरा' न रह जाए तो 'देह' बहुत और अर्थों मे प्रकट होगी,

जिन अर्थों मे वह कभी प्रकट नहीं हुई थी। 'मेरे' की वजह से ही उसने दूसरा रूप ले लिया था। जब मैं कह रहा हू कि अगर हम जाग जाए, और कर्ता मिट जाए, साक्षी रह जाए तो भी वस्तुओ का सत्य रहेगा। लेकिन तब वह वस्तु सत्य रह जाएगी। और मै उसमे कुछ प्रक्षेप (प्रोजेक्ट) नही करूगा। और तब एक बहुत बडी दुनिया मिट जाएगी एकदम जिसको आप अपना बेटा कह रहे हैं, उसको आप अपना बेटा नही कहेगे। अगर आप बिल्कुल 'साक्षी' हो गए तो आप सिर्फ पैसेव (निष्क्रिय) रह जाएगे, एक द्वार रह जाएगे जिससे वह व्यक्ति आया। लेकिन आप पिता नही रह जाएगे। और बहुत गहरे मे देखेगे तो पता चलेगा कि आपने अपने शरीर का मैल छोड दिया है। इस मैल के आप पिता नही कहलाते और आप अपने वीर्य अणुओ के पिता कैसे हो सकते है। यह मैल भी शरीर मे उसी तरह पैदा होता है जिस तरह वीर्य अणु पैदा होते हैं। यह नाखून आप काट कर फेंक देते है और यह बाल आप काट कर फेक देते हैं, कभी नही कहते कि मैं इनका पिता हू। कभी लौट कर भी नही देखते इन्हे। जिस शरीर ने ये सब पैदा किए है उसी शरीर ने वीर्य अणु भी पैदा किए हैं। आप कौन है? आप कहा है? यानी मैं यह कह रहा हू कि अगर आप ठीक से साक्षी हो जाए तो कौन पिता है? कौन बेटा है? क्या मेरा है? यह सब एकदम विदा हो जाएगा। और ये अगर सारे अन्त. सम्बन्ध एकदम विदा हो जाए तो जगत बिल्कुल दूसरे अर्थो मे प्रकट होगा। तब जगत होगा, आप होगे लेकिन बीच मे कोई सम्बन्ध नही होगा। जो हम बाधते है, वह सब विदा हो जाएगा। जब मैं यह कहता हू कि आप अगर जाग जाएगे तो जगत स्वप्नवत हो जाएगा मेरा मतलब यह नही कि जगत झूठा हो जाएगा। जगत और अर्थो मे रहेगा। जिन अर्थों मे आज है, उन अर्थो मे नही रह जाएगा। स्वप्न भी बचता है, वह नही खो नही जाता। उसकी भी सार्थकता है। और आप हैरान होगे कि थोडी भी चेष्टा करे तो एक ही स्वप्न मे हजार बार प्रवेश कर सकते हैं। हम को क्यो स्वप्न मिथ्या मालूम पड़ता है? उसका कारण है कि आप स्वप्न मे दुबारा प्रवेश नही कर पाते। और एक ही मकान मे दुबारा जग जाते है तो मकान सच्चा मालूम होने लगता है क्योकि बार बार इसी मकान मे आप जगते हैं रोज सुबह। यही मकान, यही दूकान, यही मित्र, यही पत्नी, यही बेटा—तो यह बार-बार घूमता है। अगर हर बार सुबह आप जागें और मकान दूसरा हो जाए तो आपको मकान का सत्य भी उतना ही झूठा लगेगा

जितना स्वप्न का। क्या भरोसा कि कल सुबह क्या हो जाए ? सपने मे ग्राप एक ही बार जा पाते हैं, दुबारा उस सपने को ग्राप चालू नही कर पाते। क्योकि ग्राप जागने मे ही ग्रपने मालिक नही है, सोने की मल्कियत तो बहुत दूर की बात है। ग्राप सपने मे कैसे जा सकते हैं ? लेकिन इस तरह की पद्धतियां ग्रौर व्यवस्थाए है कि एक ही स्वप्न मे बार-बार जाया जा सकता है। तब ग्राप हैरान रह जाएगे कि स्वप्न इतना ही सत्य मालूम होगा जितना यह मकान। क्योकि ग्राज स्वप्न मे एक स्त्री ग्रापकी पत्नी थी तो कल वह नही रह जाएगी। कल ग्राप खोजे कितना भी तो भी पता नही चलेगा कि वह कहा गई। लेकिन ग्रगर ऐसा हो सके, ग्रौर ऐसा हो सकता है कि रोज रात ग्राप सोए ग्रौर एक निश्चित स्त्री रोज रात सपने मे ग्रापकी पत्नी होने लगे, ऐसा दस वर्ष तक चले तो ग्राप ग्यारहवे वर्ष पर यह कह सकेंगे कि रात झूठ है ? ग्राप कहेगे जैसा दिन सच्चा है, वैसी रात भी सच्ची है। स्वप्न को स्थिर करने के भी उपाय हैं। उसी स्वप्न मे रोज-रोज प्रवेश किया जा सकता है। तब वह सच्चा मालूम होने लगेगा। ग्रौर ग्रगर हम गौर से देखें तो रोज-रोज हम उसी मकान मे सुबह जागते भी नही जिसमे हम कल सोए थे। क्योकि मकान बुनियादी रूप से बदल जाता है। ग्रगर हमारी दृष्टि उतनी भी गहरी हो जाए कि हम बदलाहट को देख सके तो जिस पत्नी को ग्रापने कल रात सोते वक्त छोडा था, सुबह ग्रापको वही पत्नी उपलब्ध नही होती। उसका शरीर बदल गया, उसका मन बदल गया, उसकी चेतना बदल गई। उसका सब बदल गया है। लेकिन उतनी सूक्ष्म दृष्टि भी नही है हमारी कि हम उतनी गहरी दृष्टि से जाच कर सके कि सब बदल गया है, यह तो दूसरा व्यक्ति है। इसलिए ग्राप कल की ग्रपेक्षा करके झझट मे पड जाते है। कल वह बडी शान्त थी, बड़ी प्रसन्न थी। ग्राज सुबह से वह नाराज हो गई। ग्राप कहते है कि ऐसा कैसे हो सकता है। क्योकि ग्राप ग्रपेक्षा कल की लिए बैठे है। कल उसने बहुत प्रेम किया था ग्रौर ग्राज बिल्कुल पीठ किए हुए है। ग्रापको लगता है कि यह कुछ गडबड़ हो रहा है। लेकिन ग्रापको ख्याल नही है कि सब चीजे बदल गई है। जिस दिन हम बहुत गहरे मे इधर घुस जाएं यानी ग्रगर गहरे स्वप्न मे चले जाएं तो स्वप्न भी मालूम होगा वही है। ग्रौर ग्रगर गहरे सत्य मे चले जाए तो पता चलेगा कि वही कहा है ? रोज बदलता चला जा रहा है। मेरा कहने का प्रयोजन यह है कि इन सारी स्थितियो मे, चाहे स्वप्न, चाहे जागरण, ग्रगर 'साक्षी' जग जाए

तो बिल्कुल ही एक नई चेतना का कारण होता है। लेकिन उससे कोई मिथ्या जगत हो जाता है ऐसा नही। उससे सिर्फ इतना हो जाता है कि जो कल तक जगत हमने बनाया था वह बिदा हो जाता है और एक बिल्कुल नया वस्तुपरक सत्य सामने आता है। जो हमने बनाया था, वह बिदा हो जाता है।

महावीर उसके लिए 'माया' का प्रयोग नही करते क्योंकि 'माया' के प्रयोग से लगता है जैसे कि सब झूठ है। वे कहते है कि वह भी सत्य है। यह भी सत्य है। लेकिन दोनो सत्यो के बीच हमने बहुत से झूठ गढ रखे है, वे बिदा हो जाने चाहिए। तब पदार्थ भी अपने मे सत्य है और परमात्मा भी अपने मे सत्य है। और बहुत गहरे मे दोनो एक ही सत्य के दो छोर हैं। शकर उसके लिए 'माया' का प्रयोग करते हैं, उसमे भी कोई हर्ज नहीं है क्योकि जिसमे हम जी रहे हैं वह बिल्कुल माया जैसी बात है। एक आदमी रुपए गिन रहा है, ढेर लगाता जा रहा है, तिजोरी मे बन्द करता जा रहा है। रोज गिनता है और रोज बन्द करता है। अगर हम उसके मनोजगत मे उतरे तो वह रुपयो की गिनती मे जी रहा है। और बडे मजे की बात है कि रुपयो मे क्या है जिसकी गिनती मे कोई जिए। कल सरकार बदल जाए और कहे कि पुराने सिक्के खत्म तो उस आदमी का पूरा का पूरा मनोलोक एकदम तिरोहित हो जाएगा। वह एकदम नगा खड़ा हो गया। अब कोई गिनती नही है उसके पास। तो हम स्वप्न के जगत मे जी रहे है और ऐसे ही सिक्के हमने सब तरफ बना रखे है—परिवार के, प्रेम के, मित्रता के जो कल सुबह एकदम बदल जाएगे नियम बदल जाने से।

मुझे एक मित्र ने एक पत्र लिखा। बहुत बढिया पत्र था। कुछ लोग मेरे साथ थे, साथ नही रह गए। उन्होने मुझे पत्र लिखा। और हम सबको यह भ्रान्ति होती है कि जो साथ है, वह सदा साथ है, यह बिल्कुल पागलपन है। जितनी देर साथ है, बहुत है। जिस दिन अलग हो गए, अलग हो गए। जैसे साथ होना एक सत्य था, वैसे अलग होना एक सत्य है। साथ ही बना रहे तो फिर हम एक माया के जगत मे जीना शुरू कर देते हैं। आप मेरे मित्र हैं, तो बात काफी है इतनी। आप कल भी मेरे मित्र हो, तो फिर मैंने एक कल्पना जगत मे जीना शुरू कर दिया। फिर मैं दुख भी पाऊगा, पीड़ा भी पाऊगा। अपेक्षा मैंने बना ली। कल कौन कह सकता है क्या हो जाए ? रास्ते कभी हमारे पास आ जाते हैं, कभी चले जाते है। कभी एक दूसरे का

रास्ता कटता भी है। कभी बडे फासले हो जाते हैं तो कुछ मित्र मुझे छोडकर चले गए हैं। एक मित्र ने मुझे एक कहानी लिखी। उसने लिखा कि यूनान मे एक बार ऐसा हुआ कि एक साधु था एथेन्स नगर मे। उस साधु पर मुकदमा चला। उसकी बातो को एथेन्स नगर के न्यायाधीशो ने कहा कि लोगो को बिगाड देने वाली हैं। इसलिए हम तुम्हे नगर निकाला देते हैं, नगर से बाहर किए देते हैं। साधु नगर से निकाल दिया गया। वह एथेन्स छोडकर दूसरे नगर मे चला गया। दूसरे नगर के लोगो ने उसका बडा स्वागत किया क्योंकि उस साधु की जो मान्यताए थी उस नगर के लोगो से मेल खा गईं। उस नगर का एक नियम था कि जो भी नया आदमी उस नगर मे मेहमान बने, सारा नगर मिलकर उसका मकान बना दे। तो राज ने ईंट जोड दी, ईंटे बनाने वाले ने ईंटे ला दी। पत्थर वाला पत्थर लाया, बढई लकडी लाया। खपरा लाने वाला खपरा लाया। सारे ग्राम के लोगो ने श्रम किया। जल्दी ही उसका एक मकान बन गया। प्रवेश होने की तैयारी हो रही है। साधु द्वार पर आया। तभी गाव एकदम मकान पर टूट पडा। छप्पर वाला छप्पर ले गया, ईंट वाला ईंट ले गया, दरवाजे वाला दरवाजा निकालने लगा। सब चीजे एकदम अस्त-व्यस्त होने लगी। सारा मकान एकदम टूटने लगा। तब साधु ने खडे होकर पूछा कि यह क्या बात है? मुझसे कोई गल्ती हो गई क्या? तो जो लोग सामान ले जा रहे थे उन्होने कहा नही, तुम्हारी गल्ती का सवाल नही। हमारा सविधान बदल गया। कल तक हमारे विधान मे यह बात थी कि जो भी नया आदमी गाव मे आए और रहे उसका हम मकान बनाए। रात की धारासभा मे वह हमने खत्म कर दिया। हमारा विधान बदल गया। इसलिए हम अपना-अपना सामान लिए जा रहे हैं। बात खत्म हो गई। अब तुम्हारा प्रवेश हो जाता तो मुश्किल हो जाता। इसलिए हमे जल्दी करनी पड रही है। तुम्हारे प्रवेश के बाद पुराना सविधान लागू हो जाता। अभी तुम्हारा प्रवेश नही हुआ, इसलिए हम इसे लिए जा रहे है। मित्र ने मुझे यह कहानी लिखी और यह पूछा : क्या साधु की कोई भूल थी। मैंने उत्तर दिया कि साधु की एक ही भूल थी। उसने आदमियो के बनाए हुए नियम को ज्यादा मूल्य दिया था। जो आदमी नियम बनाते हैं वे कभी भी तोड़ सकते हैं। साधु की भूल इतनी ही थी कि उसने यह भी क्यो पूछा कि क्या मुझसे कोई भूल हो गई है? यह भी नही पूछना था। उसे जानना चाहिए था कि जो मकान बनाते है, वे गिरा सकते हैं। नियम बदल गया

था। साधु ने नियम को अपना सम्मान समझ लिया था यह भूल हो गई थी उससे। यह उसका सम्मान नही था, यह सिर्फ नियम का सम्मान था। नियम बदल गया, सारी बात खत्म हो गई।

हम एक जिन्दगी मे जीते हैं, जो हमारे बनाए हुए नियमो, बनाई हुई मान्यताओं, बनाई हुई व्यवस्थाओ की है। उन्हे जैसे ही हम जानेगे, एकदम झूठी मालूम पड़ेगी। पत्नी एकदम झूठी मालूम पड़ेगी। स्त्री सत्य रह जाएगी। वह हमारी बनाई हुई व्यवस्था है। युवक रह जाएगा लेकिन उसका बेटा होना खो जाएगा। मकान रह जाएगा लेकिन 'मेरा होना' चला जाएगा। धन का ढेर रह जाएगा लेकिन गिनती का रस खो जाएगा। जगत होगा वस्तुपरक लेकिन उसकी आत्मपरकता कि वह यहा है वहा है, तिरोहित हो जाएगी जैसे कोई जादू की दुनिया से एकदम जग गया हो और सब खो जाए। जैसे वृक्ष हो, वृक्ष मे लगे फल और सब बिदा हो जाएं और चीजे जैसी है वैसी रह जाए। वस्तु रह जाएगी लेकिन हमारी कल्पित वस्तु एकदम बिदा हो जाएगी। इस अर्थ मे मैंने कहा कि स्वप्न भी सत्य बन जाता है, अगर हम उसमे लीन हो जाते हैं और जिसे हम सत्य कहते है, वह भी स्वप्नवत् हो जाएगा अगर हम अपनी लीनता को तोड लेते हैं।

प्रश्न : महावीर पूर्व जन्म मे ही पूर्ण हो गए यह आपका कहना है। किन्तु वर्तमान जगत में अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए उन्हें तपश्चर्या करनी पड़ी। पूर्ण में यह अपूर्णता कैसी? क्या पूर्णता मे अभिव्यक्ति के साधनों की उपलब्धि शामिल नहीं?

उत्तर : ठीक है। नही ; पूर्णता की उपलब्धि मे अभिव्यक्ति के साधन सम्मिलित नही हैं। अभिव्यक्ति की पूर्णता उपलब्धि की पूर्णता से बिल्कुल अलग है। असल मे पूर्णता भी एक नही है, अनन्त पूर्णताए हैं। इससे हमे बडी कठिनाई होती है। एक दिशा मे एक आदमी पूर्ण हो जाता है, इसका मतलब यह नही कि वह सब दिशाओ मे पूर्ण हो जाता है। एक आदमी चित्र बनाता है। वह चित्र बनाने मे पूर्ण हो गया है। इसका यह मतलब नही कि वह सगीत में भी पूर्ण हो जाएगा यानी कि वह वीणा बजा सकेगा। वीणा की अपनी पूर्णता है, अपनी दिशा है। अगर कोई आदमी वीणा बजाने में पूर्ण हो गया तो उसका यह मतलब नही है कि वह नाचने मे भी पूर्ण हो जाए। नाचने की अपनी पूर्णता है। बहुत आयाम हैं पूर्णता के। क्या सर्वतोमुखी पूर्णता किसी को मिली है? नही, कोई व्यक्ति समस्त पूर्णताओ मे

पूर्ण नही हुआ। कई पूर्णताए ऐसी है कि एक मे होगे तो फिर दूसरे मे हो ही नही सकते। वे विरोधी पूर्णताए है। एक व्यक्ति पुण्य मे पूर्ण हो जाए तो फिर वह पाप की पूर्णता मे पूर्ण नही हो सकता। पाप की भी अपनी पूर्णता है। और अगर वह पाप मे पूर्ण हो जाए तो वह पुण्य मे पूर्ण नही होगा। न केवल पूर्णताए अनन्त है बल्कि विरोधी भी है। कोई यह सोच ही नही सकता कि कोई व्यक्ति समस्त दृष्टि से पूर्ण हो जाए। परमात्मा के बारे जो हमारी धारणा है वह इस लिहाज से कीमती है। इस धारणा का मतलब है, कि सिर्फ परमात्मा ही सब दिशाओ मे पूर्ण है क्योकि वह कोई व्यक्ति नही है। वह सब व्यक्तियो मे अनन्त दिशाओ मे पूर्णता प्राप्त कर रहा है। परमात्मा अगर कोई व्यक्ति हो तो वह भी पूर्ण नही हो सकता सब दिशाओ मे। लेकिन पापी से वह एक तरह की पूर्णता पा रहा है, पुण्यात्मा से वह दूसरी तरह की पूर्णता पा रहा है। परमात्मा के जो अनन्त हाथ हम चित्रो मे देखते है, उसका कारण कुल इतना है कि अनन्त हाथो से वह पूर्ण हो रहा है। हम दो हाथो मे कैसे पूर्ण होगे ? सब हाथ उसके ही हो, तब तो ठीक है। फिर कोई कठिनाई नही। फिर अगर महावीर एक दिशा मे पूर्ण हो और हिटलर दूसरी दिशा मे पूर्ण हो जाए तो परमात्मा को कोई कठिनाई नही पडती क्योकि हिटलर के हाथ भी उसके है, महावीर के हाथ भी उसके हैं। परमात्मा को छोड कर कोई सब दिशाओ मे पूर्ण नही हो सकता और परमात्मा व्यक्ति नही है। इसलिए वह शक्ति है; सबकी ही शक्ति का समग्रीभूत नाम है। उसको तो छोड दे। लेकिन कोई भी व्यक्ति कभी भी इस अर्थ मे पूर्ण नही होता। उसकी अपनी दिशा होनी है, उसमे वह पूर्ण हो जाता है।

अनुभूति की एक दिशा है, अभिव्यक्ति की बिल्कुल दूसरी। और अनुभूति के लिए जो करना पडता है, अभिव्यक्ति के लिए करीब-करीब उससे उल्टा करना पडता है। इसलिए दोनो साधी जा सकती हैं, लेकिन एक साथ नही। एक सध जाए तो फिर दूसरी साधी जा सकती है। इसलिए कभी भी अनुभूति की पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति की पूर्णता नही होती। क्योंकि अनुभूति मे जाना पडता है भीतर और अभिव्यक्ति मे आना पडता है बाहर। और यह बिल्कुल ही उल्टा आयाम है। अनुभूति मे छोडना पडता है सबको और हो जाना पडता है बिल्कुल 'स्व', सब छोड़कर बिल्कुल एक बिन्दु। अभिव्यक्ति मे फैलना पड़ता है, सबको जोडना पडता है। अभिव्यक्ति मे 'दूसरा' महत्व-

पूर्ण है; अनुभूति मे 'स्वय' ही महत्वपूर्ण है। उल्टी दिशाए हैं बिल्कुल । जानना मौन मे है और बताना वाणी मे है । तो जो जानेगा उसको मौन होना पडेगा और जब बताने जाएगा तो फिर शब्द की साधना करनी पडेगी । इसलिए जरूरी नही कि जो अभिव्यक्ति कर रहा हो वह जानता भी हो । हो सकता है कि वह सिर्फ अभिव्यक्ति हो । तब वह उधार हो जाएगी । किसी और ने जाना होगा । वह सिर्फ अभिव्यक्ति किए चला जा रहा है । इसलिए बहुत बार ऐसा होता है कि अकेली अभिव्यक्ति वाला आदमी भी बहुत ज्ञानी मालूम पडता है । उसके पास अनुभूति कोई भी नही है । सिर्फ उसने उधार अनुभूतिया बटोर ली हैं। ऐसे ही आदमी को मैं पण्डित कहता हू जिसके पास अभिव्यक्ति है, अनुभूति नही । ऐसे भी लोग है जिनके पास अनुभूति है, अभिव्यक्ति नही ।

बुद्ध से एक दिन जाकर किसी ने पूछा कि आप इतने वर्षों से समझाते आ रहे हैं कितने ऐसे लोग हैं जो उस सत्य को उपलब्ध हो गए हों। बुद्ध ने कहा—बहुत, यहीं बैठे हुए हैं । उस आदमी ने पूछा, लेकिन आप जैसा महिमाशाली तो इनमे से कोई भी नही दिखाई पडता । बुद्ध ने कहा कि थोडा सा ही फर्क है । मैंने अभिव्यक्ति भी साधी है । अनुभूति मे तो वे मेरी जगह पहुच गए हैं, लेकिन अभिव्यक्ति ? जब तक अभिव्यक्ति न साधे, तुम्हे उनका पता भी न चलेगा । क्योकि जब वे तुमसे कहेगे तभी तो जानोगे । उन्हे अनुभूत हो गया है, इससे थोडे ही जानोगे । केवल ज्ञानी और तीर्थंकर मे यही फर्क है । तीर्थंकर भी केवल-ज्ञानी से ज्यादा नही है । सिर्फ अभिव्यक्ति और है उसके पास । केवल-ज्ञानी तीर्थंकर से इच भर कम नही है । अनुभूति मे वही है जहा वह है । सिर्फ अभिव्यक्ति नही है उसके पास । अभिव्यक्ति साध ले तो वह भी शिक्षक हो जाता है । अभिव्यक्ति न साधे, अनुभूति तो होती है । सिद्ध होता है लेकिन बन्द हो जाता है । सब तरफ फैल नही पाता जो उसने जाना है । तो अनुभूति की पूर्णता महावीर को पिछले जन्म मे हुई है, अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए उन्हे साधना करनी पडी । और मै कहता हू कि अनुभूति की पूर्णता उतनी कठिन नही है जितनी अभिव्यक्ति की पूर्णता कठिन है । क्योकि अनुभूति मे मैं अकेला हू । जो मुझे करना है, अपने से ही करना है । अभिव्यक्ति मे दूसरा सम्मिलित हो जाएगा । इसलिए दूसरे को जानना, दूसरे को समझना, दूसरे तक पहुंचाना दूसरे की भाषा है, दूसरे का अनुभव है, दूसरे का व्यक्तित्व है । करोड-करोड तरह के व्यक्तित्व है ।

करोड-करोड़ योनियों में बंटा हुआ प्राण है । उन सब पर प्रतिध्वनि हो सके, उन सब तक खबर पहुंच सके, पत्थर भी सुन ले और देवता भी सुन ले— उस सबकी फिर साधना बहुत बडी बात है । इसलिए केवल ज्ञान तो बहुत लोगों को उपलब्ध होता है लेकिन तीर्थंकर बहुत कम लोग बन पाते हैं। क्योंकि केवल ज्ञान अनन्त-अनन्त लोगो को उपलब्ध होता है। परिपूर्ण ज्ञान की अनुभूति करोड़ों लोगो को होती है परन्तु जिसको हम शिक्षक कह सकें जो बता भी सके कि ऐसे हुआ है, ऐसा मुश्किल से कभी होता है। इसलिए मैंने कल कहा ' अभिव्यक्ति के लिए महावीर का यह पहला जन्म है। पर हमारा क्या होता है ? हम पूर्णता को बडे व्यापक अर्थ मे लेते हैं। कोई व्यक्ति अनुभूति मे पूर्ण हो सकता है, और अभिव्यक्ति बिल्कुल न हो। अनेक लोग जाने हैं और मौन रह गए है। फिर कहा ही नही उन्होंने। खोज ही नही सके वे मार्ग कहने का।

जैसे कि आप अभी जाएंगे डल झील पर और सौन्दर्य को देखेंगे। हो सकता है कि आपको सौन्दर्य का पूर्ण अनुभव हो जाए। लेकिन इसका यह मतलब नही कि आप आकर डल झील को पेंट कर दें। यह भी हो सकता है कि आप से कम अनुभव किसी को हो और वह आकर पेंट कर दे। क्योंकि पेंट की कुशलता अलग बात है अनुभूति की कुशलता से। अनुभूति आपको हो सकती है डल झील पर जाकर सौन्दर्य की। सारा प्राण भीग जाए। लेकिन आपसे कोई कहे कि रंग उठाकर और ब्रुश उठाकर जरा पेंट कर दे तो आप कहेंगे यह मुझसे नही हो सकता। और भी दिशाए हैं। जब आप डल झील पर गए थे तो आपने सोचा होगा कि आप सिर्फ देख रहे हैं। वह सौन्दर्य केवल देखने को नहीं था। अगर आप बहरे होते तो इतना सौन्दर्य आपको दिखाई न पडता। उसमे भेड़ो की आवाज भी छिपी थी। उसमे लहरो की छम-छम भी छिपी थी। उसमे सब था जुडा हुआ। आप बहरे होते, आप देख तो लेते लेकिन आपके देखने में कमी रह गई होती। उसमे आस-पास जो सुगंधि आ रही थी, वह भी सौन्दर्य का हिस्सा था। जब कोई आदमी किसी स्त्री को प्रेम करता है तो वह कभी नही सोचता कि उसके शरीर की गंध भी उसमें तीस प्रतिशत हिस्सा लेती है। यानी वह कितनी ही सुन्दर हो अगर उसकी गंध उसको मेल नही खाती है तो बिल्कुल ही ताल-मेल नही बैठ सकता; उसके शरीर की एक गंध है, जो भीतर से उसे आकर्षित करती है और यह गंध विशेष विशेष लोगो को आकर्षित करती है। यानी वह कितनी ही

सुन्दर हो, जरा सी गंध उसकी विपरीत हो तो कभी तालमेल नही होगा। विरोध ही रहेगा; झंझट खडी रहेगी। और आप कभी सोच भी नही पाएगे कि उसके शरीर की गध बाधा दे रही है। तो जैसे कि सौन्दर्य बडी चीज है, उसमे गध भी सम्मिलित है, उसमे ध्वनि भी सम्मिलित है, उसमे सब सम्मिलित है। वह एक पूर्ण, समग्र अनुभूति है। आप अगर पेंट भी कर लो और मैं आपसे कहू : इस झील पर जो संगीत का अनुभव हुआ था, वह बजाओ। आप कहोगे कि वह मैं नही कर सकता। आप पेंट करके सिर्फ आख से जो देखा गया था वही पेंट कर पा रहे हो, जो कान से जाना गया था, वह नही कर पा रहे हो; नाक से जो जाना गया था वह नही कर पा रहे हो। अभी पूर्णता सम्पूर्णता नही है। तब मेरा कहना है कि अगर हम सम्पूर्णता के लिए रुकेगे तो शायद ही कोई आदमी कभी पृथ्वी पर सम्पूर्ण रहा हो। असम्भव है और उसके कई कारण है जो हमे दिखाई नही पडते। जैसे जिस आदमी की आख रगो को देखने लगेगी बहुत गहराई मे, उस आदमी के कान धीमे-धीमे शक्ति खो देंगे। इसलिए अन्धो के पास कान की जो शक्ति होती है, आख वालों के पास कभी नही होती। इसलिए अन्धा जैसा सगीतज्ञ हो सकता है आख वाला कभी नही हो सकता। उसका कारण है कि भीतर शक्ति की सीमा है। अगर वह पूरी आख या कान से बहने लगती है तो दूसरी इन्द्रियों से खीच लेती है। अन्धे के पास कान की ताकत ज्यादा होती है क्योंकि आख की जो शक्ति बच गई है वह कानो से बह जाती है। अगर कोई व्यक्ति सगीत मे बहुत कुशल हो जाए, उसका कान तो शिक्षित हो जाएगा लेकिन आखे मन्द हो जाएगी, स्पर्श क्षीण हो जाएगा। वह व्यक्ति और दिशाओं मे एकदम सिकुड जाएगा। शक्ति सीमित है, अनुभूति अनन्त है। इसलिए, सिर्फ परमात्मा को छोड़ कर जो कि सभी शक्तियो का जोड है, कोई शक्ति कभी सम्पूर्ण नही होगी। हा, एक-एक दिशा मे पूर्णता पा लेने से वह परमात्मा मे लीन हो जाता है। परमात्मा मे लीन हो जाने से वह समग्र मे पूर्ण हो जाता है। जैसे कोई भी नदी कभी पूर्ण नही होती, सागर मे खोकर पूर्ण होती है। नदी रहते हुए पूर्ण नही होती क्योंकि उसके किनारे होंगे, तट होंगे। सागर मे जाकर वह पूर्ण हो जाती है। तो व्यक्ति एक दो या तीन दिशा मे ही पूर्ण हो सकता है, समस्त पूर्णताओं को नही पकड सकता। लेकिन एक दिशा मे भी कोई पूर्ण हो जाए तो वह उस द्वार पर खडा हो जाता है, जहा से परमात्मा मे प्रवेश होना सम्भव है। यानी पूर्णता किसी भी दिशा से लाई गई हो, परमात्मा के द्वार

पर खड़ा कर देती है। अगर वह वहां से अपने को जोड दे और खो जाए तो वह परमात्मा के साथ एक हो गया। उस अर्थ मे वह अब सम्पूर्ण हो गया। लेकिन अब वह रहा ही नही। जैसे नदी रही ही नहीं, वह सागर हो गई।

अनन्त-अनन्त पूर्णताओं की दृष्टि अगर हमारे ख्याल मे हो तब हम समझ सकेंगे कि सर्वज्ञ का क्या मतलब होगा। तब हम पागलपन मे नही पडेंगे। तब हम इतना ही कहेंगे कि महावीर ने स्वय को जानने मे जो भी जाना जा सकता था, जान लिया। सर्वज्ञ का यह मतलब होगा। न कि साइकिल का टायर फट जाए तो वह उसे जोडना भी जानते हैं, आदमी को टी० बी० हो जाए तो वह उसकी दवाई भी जानते हैं। सर्वज्ञ का यह मतलब नही होता। लेकिन महावीर को पकडने वालो ने सर्वज्ञ का कुछ ऐसा मतलब लिया है कि महावीर जो भी जाना जा सकता है, वह सब जानते हैं। यह बिल्कुल फिजूल बात है। सर्वज्ञ का इतना ही मतलब है कि जिस पूर्णता की एक दिशा को उन्होंने पकडा है, उसमे वे सर्वज्ञ हो गए है। आत्मज्ञान की दिशा मे वह सर्वज्ञ है। उनके सर्वज्ञ होने का यह मतलब नही कि वह आपकी बीमारी को भी जानते हैं, भविष्य मे क्या होगा, यह भी जानते हैं, कल क्या हुआ था, यह भी जानते हैं। इन सब बातो से उन्हे कोई मतलब नही है। इस तरह बहुत लोग सर्वज्ञ हो सकते हैं चूकि अनन्तताए अनन्त है, पूर्णताए अनन्त हैं। 'केवल ज्ञान' का मतलब यह है कि जहा ज्ञेय न रहा, ज्ञाता न रहा, बस ज्ञान रह गया। न कुछ जानने को शेष रहा, न कोई जानने वाला शेष रहा, बस ज्ञान ही शेष रहा। जानने की क्षमता ही सिर्फ शेष रह गई।

प्रश्न : हर चीज को ?

उत्तर : नही ? बिल्कुल नही। वह 'हर चीज' से हम जोड करके ही दिक्कत में पड़ जाते हैं। जानने की शुद्ध क्षमता शेष रह गई है उनमे। यह क्षमता पूर्ण है, पूर्ण इस अर्थ मे नही कि वह सब जानते हैं; पूर्ण इस अर्थ मे कि जैसे समझ ले कि एक आदमी गीत गाने की पूर्ण क्षमता को उपलब्ध होता है इसका यह मतलब नही कि उसने सब गीत गाए। क्योंकि गीत अनन्त है। इसका यह मतलब नही कि वह इस वक्त गा रहा है। इसका मतलब यह है कि वह गीत गाने की पूर्णता को उपलब्ध हो गया है, जो भी गीत गाना चाहेगा गा सकता है। लेकिन जब वह एक गीत गाएगा तो दूसरा गीत न गा पाएगा। सिर्फ क्षमता है उसमे सभी गीत गाने की। वह कुछ भी जान सकता है। जैसे कि एक आइना है। उसके पास क्षमता है कि वह

दर्पण हो सकता है। जरूरी नही कि इस वक्त उसमें छाया बन रही है, किसी आदमी का चेहरा बन रहा है। वह खाली पड़ा है इस वक्त। लेकिन कोई भी चेहरा सामने आए तो जाना जा सकता है। वह पूर्ण जाने जा सकने की क्षमता रखता है। वह उसका सामर्थ्य है। कोई भी खड़ा हो जाए तो वह जानेगा। लेकिन एक खड़ा हो जाए तो दूसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। दो खड़े हो जाए तो तीसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। और दस आदमी उसको घेर लें, पीछे करोडो की भीड हो, तो उनको जानना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन इनमे से कोई भी सामने खडा हो तो वह जान सकेगा। केवल ज्ञान का मतलब है कि ज्ञान की शुद्धता उपलब्ध हो गई है। हा, जानने की क्षमता उपलब्ध हो गई है। वह जिस दिशा मे भी लगा देगा उसी दिशा में पूर्णता को जान लेगा। लेकिन एक दिशा मे लगाएगा तो दूसरी दिशाओ से तत्काल वंचित हो जाएगा। और सत्य यह है कि शुद्ध ज्ञान की क्षमता मे जीना इतना आनन्दपूर्ण है फिर उसे कोई दूसरी दिशा मे लगाता नही। शुद्ध दर्पण होना इतना आनन्दपूर्ण है कि कौन प्रतिबिम्ब बनाए। इसलिए केवल ज्ञानी को जैसे ही शुद्धता उपलब्ध होती है वह जानना छोड देता है। क्योकि अब सब जानना उसकी जानने की क्षमता पर छा जाएगा और उसकी जानने की क्षमता को अशुद्ध कर देगा आवरण बन कर। इसलिए केवल ज्ञानी, जो कि जान सकना है किसी भी चीज को, जानना छोड देता है; जानने की क्षमता मे ही रम जाता है। वह इतना आनन्दपूर्ण है कि कौन सी बाधा ले वह। जानने की क्षमता ही इतनी आनन्दपूर्ण है कि वह क्यो जानने जाए किसी को। अज्ञान जानने जाता है, ज्ञान ठहर जाता है। क्योकि अज्ञान मे जिज्ञासा है कि जान लो। और जब ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होती है तो ज्ञान ठहर जाता है। वह जानने जाता ही नही है क्योकि जानने का कोई सवाल भी नही रह जाता। अज्ञान भटकाता है, यात्रा करवाता है। ज्ञान ठहरा देता है। इसलिए अज्ञानी जानते हुए मिल जाएगे, लेकिन केवल ज्ञानी नही। क्योकि अज्ञानी चेष्टा कर रहा है निरन्तर—यह जानूं। मगर केवल ज्ञान की धारणा बहुत अद्भुत है। लेकिन उसको इस तरह विकृत किया हुआ है लोगो ने कि जिसका कोई हिसाब नही। जो सब जानता है, जो सब जान सकता है—इन दोनो मे भिन्नता है। जो जान सकता है, वह जानेगा यह जरूरी नही। आमतौर से तो यही जरूरी है कि वह जानेगा ही नही, अब वह इस झंझट मे नही पड़ेगा। इसलिए अगर मैं आपसे कहूं कि केवलज्ञानी

सब जान सकता है, और कुछ भी नहीं जानता है तो आप इसमें विरोध मत समझना। सब जान सकता है मगर कुछ भी नहीं जानता है। अब वह किसी दिशा में जाता ही नहीं। वह चुप खड़ा है। अगर वह किसी भी दिशा में गया तो परमात्मा मे नहीं जा सकेगा। किसी भी दिशा मे गया हुआ व्यक्ति परमात्मा मे नही जा सकता क्योकि परमात्मा सब दिशाओ का जोड़ है। और एक दिशा मे गया हुआ व्यक्ति अन्य दिशाओ के विपरीत पड़ जाता है। यानी जिस व्यक्ति को परिपूर्ण ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होगी वह तत्काल सब दिशाए छोड देगा और परमात्मा मे लीन हो जाएगा। जो इस पूर्ण स्थिति मे पहुचता है, जहा सिर्फ जानना ही शेष रह जाता है, वह एकदम डूब जाता है, सर्वव्यापक हो जाता है, हो ही गया, जैसे कि एक बूद सागर मे गिरी और सर्वव्यापी हो गई। क्योकि वह सागर से एक ही हो गई। और जब तक वह दिशा पकड़े रहता है, तब तक वह सर्वव्यापी नही होता। जीसस ने कहा है कि जो अपने को बचाएगे, वे नष्ट हो जाएगे। जो अपने को खो देगे, वे सब पा लेगे। बचाओ मत, अपने को खो दो। लेकिन खो वही सकता है जिसका कोई विकास नही। किनारा खोने की हिम्मत होनी चाहिए। अगर किनारा पकडे रहे तो सागर मे कैसे जाएंगे। दिशाओं के किनारे होते हैं, आयाम होता है मगर परमात्मा अनन्त और आयामशून्य है। वहां कोई किनारा नही है। उसमे खोने की क्षमता का ही अर्थ केवल ज्ञान है जहा आदमी डूब जाता है फिर जानने की कोशिश मे नही पडता। यहा दो सम्भावनाए है : या तो वह डूब जाए परमात्मा मे जो सामान्यतया होता है; या एक जीवन के लिए वह लौट आए और जहा पहुचा है उस क्षमता की खबर दे। उसी को मैं करुणा कहता हू : और वह करुणा है तो उसे अभिव्यक्ति की पूर्णता पानी होगी। उपाय करना होगा दूसरे से कहने का। गूगा भी जान सकता है सत्य को लेकिन वह कह नही सकता। गूगा भी प्रेम कर सकता है लेकिन वह कह नही सकता। अगर गूगे को कहना हो अपनी प्रेयसी से कि मैं तुझे प्रेम करता हू तो उसे वाणी सीखनी पड़ेगी। प्रेम करने के लिए वाणी सीखने की जरूरत नही है। प्रेम करना एक और बात है। वह गूगा भी कर सकता है। गूगा हजारो से कुछ बाते कर सकता है। लेकिन अगर उसे कहना हो, क्या जाना उसने प्रेम में, तो फिर उसे और दूसरी तरह की, यानी अभिव्यक्ति की, पूर्णता प्राप्त करनी होगी। महावीर इस जन्म मे उस दूसरी तरह की पूर्णता की साधना में लगे हैं।

चतुर्थ प्रवचन
२०.६.६६ रात्रि

४

सत्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति कैसे मिले, यही बड़े से बड़ा सवाल महावीर के सामने इस जन्म मे था। महावीर ही पहले शिक्षक नही थे जिनके सामने अभिव्यक्ति की बात उठी हो। जिन्होंने सत्य जाना है उन सभी के सामने यह सवाल है लेकिन महावीर के सामने सवाल कुछ बहुत गहरे रूप मे उपस्थित हुआ था। महावीर के व्यक्तित्व की विशेषताओ में एक विशेषता यह थी कि उन्हे सत्य की जो अनुभूति हुई, उसकी अभिव्यक्ति को उन्होंने जीवन के समस्त तलो पर प्रकट करने की कोशिश की। मनुष्य तक कुछ बात कहनी है, कठिन तो है फिर भी बहुत कठिन नही। लेकिन महावीर की चेष्टा अनूठी है। उन्होने चेष्टा की कि पौधे पशु-पक्षी, देवी-देवता सब तक, जीवन के जितने तल हैं—उन सब तक उन्हें जो मिला है, उसकी खबर पहुचे। महावीर के बाद ऐसी कोशिश करने वाला दूसरा आदमी नही हुआ। यूरोप मे फ्रासिस ने थोडी सी कोशिश की है पक्षियों और पशुओ से बात करने की। अभी-अभी श्री अरविन्द ने कोशिश की है पदार्थ तत्त्व पर चेतना के स्पन्दन पहुचाने की। लेकिन महावीर जैसा प्रयास न पहले कभी हुआ, न बाद मे हुआ। वे जो बारह वर्ष आम तौर पर सत्य की साधना के लिए समझे जाते हैं, वे सत्य की जो उपलब्धि हुई है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए साधन खोजने के हैं। और इसीलिए ठीक बारह वर्षों बाद महावीर सारी साधना का त्याग कर देते हैं। नहीं तो साधना का कभी त्याग नही किया जा सकता। सत्य की उपलब्धि की जो साधना है, उसका कभी त्याग किया ही नहीं जा सकता क्योंकि वह ऐसी नहीं है कि सत्य उपलब्ध हो जाने पर व्यर्थ हो जाए। जैसा कि मैंने सुबह कहा सत्य की उपलब्धि का मार्ग है—अमूर्च्छित चेतना, अप्रमाद, विवेक, जागरण। तो ऐसा नही है कि जिसको सत्य उपलब्ध हो जाए वह जागरण, विवेक, अप्रमाद का त्याग कर दे। यह असम्भव है, क्योंकि जो सत्य उपलब्ध होगा, उसमे जागरण अनिवार्य होगा। यानी वह सत्य भी जागी हुई चेतना का एक रूप ही होगा। इसलिए फिर ऐसा नहीं है कि जागरण छोड़ दिया जाए। सिर्फ वही साधना छोड़ी जा सकती है जो परम उपलब्धि की तरफ न हो बल्कि

साधन की तरह उपयोग की गई हो। जैसे कि आप यहां एक बैलगाड़ी में बैठकर आए हैं। आप उतर कर बैलगाड़ी को छोड़ देंगे। क्योंकि बैलगाड़ी पहुंचाने का साधन थी; इसके बाद व्यर्थ हो जाती है। जो साधन कहीं जाकर व्यर्थ हो जाते हैं, वे साधन के हिस्से नहीं होते इसलिए व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन जो साधन अनिवार्यतः साधन मे विकसित होते हैं, वे कभी व्यर्थ नहीं होते। विवेक कभी व्यर्थ नही होता। लेकिन महावीर, बारह वर्ष की साधना के बाद सब छोड देते हैं। और उनके पीछे चलने वाले चिन्तक कभी यह विचार नही कर पाए कि यह कैसी बात है। इसका कोई उत्तर भी नहीं दे पाए। न दे पाने का कारण है कि वे समझ ही न सके कि यह केवल अनुभूति को अभिव्यक्त करने के साधन खोजने का इन्तजाम था, आयोजन था। वे माध्यम मिल गए हैं और आयोजन व्यर्थ हो गया। यानी आयोजन शाश्वत नही था, सामयिक था, जरूरत का था। इससे ज्यादा उसका मूल्य नही है।

क्या किया जाए जीवन के समस्त तलो तक अपनी अनुभूति प्रतिध्वनि की तरग पैदा करने के लिए? तीन बाते समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो अस्तित्व का मूक अग है। जैसे पत्थर है, पौधा है, पक्षी है, पशु है। ये अस्तित्व के मूक अग हैं। फर्क है पत्थर और पशु मे बहुत। लेकिन यह विभाग मूक है। अगर इस मूक अग से सम्बन्धित होना हो किसी व्यक्ति को और अपने अनुभव को इस तक पहुचाना हो तो उसे परम जड अवस्था, परम मूक अवस्था मे उतरना पडेगा। तभी उसका ताल-मेल, सामजस्य हो सकेगा। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति वृक्ष के पास बैठकर पूर्णतया मूक हो जाए ऐसा जैसे कि जड़ हो गया, जैसे कि उसका शरीर कोई जीवित वस्तु नही है, और उसकी चेतना परिपूर्ण शान्त होती चली जाए और उस जगह पहुच जाए, जहा एक शब्द नहो है तो इस परिपूर्ण मूक अवस्था मे वृक्ष से सवाद होना सम्भव है। रामकृष्ण निरन्तर ऐसी अवस्था मे उतरते रहे, जिसे मैं रामकृष्ण की जड़-समाधि कहता हू।

महावीर ने इस दिशा मे मनुष्य जाति के इतिहास मे सबसे गहरे प्रयोग किए हैं। आप जानकर हैरान होगे कि महावीर की जो अहिंसा की बात है, वह किसी तत्त्व विचार मे नही निकली है। वह अहिंसा की बात नीचे के जगत के तादात्म्य से निकली है। उस तादात्म्य में उन्होने जो पीड़ा अनुभव की नीचे के जगत की, उस पीडा की वजह से, अहिंसा उनके जीवन का परम तत्त्व बन गया है। इसमे दो बातें समझने जैसी हैं। आम तौर से यह समझा

जाता है कि जो अहिंसक है, वह मोक्ष की साधना कर रहा है; अहिंसा से जियेगा तो मोक्ष मे चला जाएगा। लेकिन ऐसे लोग भी मोक्ष में चले गए हैं, जो अहिंसा से नही जिए हैं। न तो क्राइस्ट अहिंसक है, न रामकृष्ण, न मुहम्मद। ऐसे लोग मोक्ष में चले गए हैं जो अहिंसा से नही जिए हैं।

इसलिए जिनको यह ख्याल है कि अहिंसा से जीने से मोक्ष मे जाएंगे वे महावीर को नही समझ पाए। बात बिल्कुल ही दूसरी है। महावीर ने मनुष्य से नीचे का जो मूक जगत है, उससे जो तादात्म्य स्थापित किया है और उसकी जो पीड़ा अनुभव की है, वह इतनी सघन है कि अब उसे और पीड़ा देने की कल्पना भी असम्भव है। इतनी असम्भव किसी के लिए भी नही रही कभी भी, जितनी महावीर के लिए असम्भव हो गई। और यह जिस अनुभव से आया है, वह उस जगत को अपने प्राणो मे विस्तीर्ण करने का प्रयोग था। इस प्रयोग करने मे अहिंसा निर्मित होने मे दो बातें हुई। एक यह कि जो पीडा अनुभव की, उन्होने नीचे के जगत की, वह इतनी ज्यादा है कि उसमे जरा भी कोई बढ़ती करे किसी भी कारण से तो वह असह्य है। दूसरी बात उन्होंने यह अनुभव की कि अगर व्यक्ति पूर्ण अहिंसक न हो जाए तो नीचे के जगत से तादात्म्य स्थापित करना बहुत मुश्किल है। यानी हम तादात्म्य उसी से स्थापित कर सकते हैं जिसके प्रति हमारा समस्त हिंसक भाव, आक्रामक भाव विलीन हो गया हो और प्रेममात्र उदय हो गया हो। तादात्म्य सिर्फ उसी से सम्भव है। अगर मूक जगत से तादात्म्य स्थापित करना है तो अहिंसा शर्त भी है। नही तो वह तादात्म्य स्थापित नही हो सकता। जैसे मैंने सत फ्रांसिस का नाम लिया। इस आदमी ने पशुओ के साथ सम्बन्ध स्थापित करने मे बेजोड़ काम किया है। इस बात की आखो देखी गवाहिया हैं कि जब सत फ्रांसिस नदी के किनारे खड़ा हो जाता तो सारी मछलियां तट पर इकट्ठी हो जातीं, सारी नदी खाली हो जाती। न केवल वे इकट्ठी हो जाती बल्कि छलाग लगाती फ्रांसिस को देखने के लिए। जिस वृक्ष के नीचे वह बैठ जाता उस जगल के सारे पक्षी उस वृक्ष पर आ जाते। न केवल वृक्ष पर आ जाते बल्कि उसकी गोद मे उतरने लगते, उसके सिर पर बैठ जाते, उसके कधो को घेर लेते। सत फ्रांसिस से जब भी किसी ने पूछा कि यह कैसे सम्भव हुआ है तो वह कहते : और कोई कारण नही है। वे भली भाति जानते हैं कि मेरे द्वारा उनके लिए कोई भी नुकसान कभी भी नही पहुच सकता। और पक्षियों के पास अन्त-प्रज्ञा है जो हमने बहुत पहले खो दी है। जापान मे एक ऐसी साधारण

चिड़िया है जो गांवों में ग्राम तौर पर होती है और दिन भर गांव में दिखाई पड़ती है, भूकम्प ग्राने पर चौबीस घंटे पहले वह गांव छोड़ देती है। ग्रभी हमने भूकम्प की जाच पडताल के कितने भी उपाय किए हैं, वे भी दो, ढाई घंटे से पहले खबर नही दे सकते ग्रौर वह खबर भी विश्वसनीय नहीं होती। लेकिन वह चिडिया चौबीस घंटे पहले एकदम गाव छोड़ देती है। उस चिड़िया का गाव मे न दिखाई पडना पक्का है कि चौवीस घटे के भीतर भूकम्प ग्रा जाएगा। बड़ी कठिनाई की बात रही कि वह चिडिया कैसे जान पाती है क्योकि चिडिया के पास जानने के कोई यन्त्र नही हैं, कोई शास्त्र नही है, कोई विधि नही है। ऊपर उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले सैंकड़ो पक्षी है, जो प्रति वर्ष सर्दी के दिनो मे, जब बर्फ पडती है तो यूरोप के समुद्री तटो पर चले जाते है। बर्फ पड़नी शुरू हो जाय ग्रगर तब वे यात्रा शुरू करे तो उनका ग्राना बहुत मुश्किल है। इसलिए बर्फ गिरने के महीने भर पहले वे उडान शुरू कर देते हैं। ग्रौर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वे जिस दिन उडान शुरू करते हैं उसके ठीक एक महीने बाद बर्फ गिरनी शुरू हो जाती है। फिर वे हजारो मील का फासला तय करके यूरोप के समुद्र तटो पर ग्रा जाते है ग्रौर बर्फ गिरना बन्द होने के महीने भर पहले वे वापस यात्रा शुरू कर देते है। वे कभी भटकते नही। हजारो मील के रास्ते पर कभी नही भटकते। वे जहा से ग्राते हैं ठीक वहा ग्रपनी जगह वापस लौट जाते हैं। पक्षियो ग्रौर पशुग्रो के जगत मे जिन लोगो ने प्रवेश किया है वे हैरान हुए है कि उनके पास एक प्रज्ञा है जो बिना बुद्धि के उन्हे चीजो को साफ कर देती है। यह जो हमारे हृदय मे भाव की धारा उठती है—प्रेम की या घृणा की, उसके स्पन्दन काफी हैं। वे उन्हें स्पर्श कर लेते हैं ग्रौर वे हमसे सचेत हो जाते हैं।

महावीर ने ग्रहिंसा के तत्त्व पर जो इतना बल दिया है, उस बल का ग्रौर कोई कारण नही है। एक कारण यह है कि नीचे के मूक जगत से पूर्ण ग्रहिंसक वृत्ति के बिना सम्बन्धित होना ग्रसम्भव है। ग्रौर दूसरा कारण यह है कि जब सम्बन्धित हो जाए तो उस मूक जगत की इतनी पीड़ाग्रो का बोध होता है—इतनी ग्रन्तहीन ग्रनन्त पीड़ाएं हैं उसकी, कि उसमे हम किसी भी भाति थोड़ा भार हल्का कर सकें, कि भार न बढ़े इसकी भावना पैदा हो जाना भी स्वाभाविक है। बुद्ध भी इस बात को नही समझे हैं। गौतम बुद्ध का भी सत्य के ग्रनुभव को सवाहित करने का जो प्रयोग है, वह मनुष्यों से ज्यादा गहराई पर नहीं गया है। सच बात यह है कि न जीसस ने, न बुद्ध ने, न

जरदुस्त ने, न मुहम्मद ने, न किसी दूसरे ने मनुष्य तल से नीचे जो एक मूक जगत का फैलाव है जहां से हम आ रहे हैं, जहां हम कभी थे, जिससे हम पार हो गए हैं—वहा पहुंचने का कोई मार्ग बताया है। उस जगत के प्रति भी हमारा एक अनिवार्य कर्तव्य है कि हम उसे पार होने का रास्ता बता दे और खबर कर दे कि वह कैसे पार हो सकता है। मेरी समझ यह है कि महावीर ने जितने पशुओ और जितने पौधो की आत्माओ को विकसित किया है, उतना इस जगत मे किसी दूसरे आदमी ने नही किया। यानी आज पृथ्वी पर जो मनुष्य है, उनमे से बहुत से मनुष्य सिर्फ इसलिए मनुष्य है कि उनकी पशुयोनि या उनकी पौधे की योनि में या उनके पत्थर होने में महावीर ने सदेश भेजे थे और उन्हे बुलावा भेजा था। इस बात की भी खोज बीन की जा सकती है कि कितने लोगो को उस तरह की प्रेरणा उपलब्ध हुई और वे आगे आए। यह इतना अद्भुत कार्य है कि अकेले इस कार्य की वजह से महावीर मनुष्य मानस के बड़े से बडे ज्ञाता बन जाते है। यानी अगर उन्होने अकेले सिर्फ एक ही यह काम किया होता तो भी वे मनुष्य जाति के मुक्तिदाताओ में बल्कि जीवन शक्ति के मुक्तिदाताओ मे चिरस्मरणीय हो जाते। यह काम बहुत कठिन है क्योकि नीचे के तल पर तादात्म्य स्थापित करना अत्यन्त दुरूह बात है। उसके कारण है। हमसे जो ऊपर है, उससे तादात्म्य स्थापित करना हमेशा सरल है क्योकि हमारे अहकार को तृप्ति मिलती है, उसके तादात्म्य से। यह कहना बहुत सरल है कि 'मैं परमात्मा हू' लेकिन यह कहना बहुत कठिन है कि 'मैं पशु हू।'

चूंकि नीचे अहकार को चोट लगती है, ऊपर अहकार को तृप्ति मिलती है, इसलिए हम सब ऊपर जाना चाहते हैं; हमारी गहरी आकाक्षा ऊपर जाने की है हमारा चित्त ऊपर की तरफ उन्मुक्त होता है। जैसे नदी है, समुद्र की तरफ भाग रही है। समुद्र की तरफ भागना बहुत आसान है क्योकि ढाल उस तरफ है, उन्मुक्तता उस तरफ है। लेकिन कोई गगोत्री की तरफ जाने का विचार करे तो बड़ी मुश्किल मे पड़ जाए क्योकि वहा चढाव है, और वहा सागर भी नही है।

महावीर की यह चेष्टा है कि पीछे के लोगो को पीछे की स्थितियो की तरफ लौटाकर वहां जो जाग गया है उसको आगे बढाया जाये। यह बहुत कठिन है। एक तो पीछे जाने का कभी ख्याल ही नही आता। हमे आगे जाने का ख्याल आता है। जो हम रह चुके होते हैं वह हम भूल चुके होते हैं। उससे

कोई सम्बन्ध ही नही रह जाता। और भूलने का भी कारण है। क्योकि जो अपमानजनक है, उसे हम स्मरण नहीं रखना चाहते। असल में अतीत जन्मों को भूल जाने का जो कारण है, गहरे से गहरा, वह यह है कि हम उन्हें याद रखना नही चाहते। जो कि हम नीचे से नीचे से आ रहे हैं उसको हम भूल जाना चाहते हैं। एक गरीब आदमी है, वह अमीर हो जाए तो सबसे पहला काम वह स्मृति के चिह्न मिटा देना चाहता है, जो उसकी गरीबी को कभी भी बता सकें कि वह कभी गरीब था। यहां तक कि गरीबी के दिनो मे जिनसे उसकी दोस्ती रही उनसे मिलने से वह कतराने लगता है क्योकि उनकी दोस्ती, उनकी पहचान, सबको खबर देती है कि आदमी कभी गरीब था। वह अब नया सम्बन्ध बनाता है, नई दोस्तिया कायम करता है। वह नीचे को भूल जाता है। तो जब अमीर आदमी गरीब मित्रो तक को छोड सकता है तो पीछे की पशु योनिया, पक्षियो की योनिया, पौधो की योनिया, पत्थरो की योनिया जो रही हो उन्हे आकर भूल जाना चाहे, तो आश्चर्य नही। फिर उनसे तादात्म्य स्थापित करने की कौन फिक्र करे ? महावीर ने पहली बार चेष्टा की है और इस चेष्टा को करने की जो विधि है उसको भी थोडा समझ लेना जरूरी है।

अगर किसी भी व्यक्ति को पीछे की अविकसित स्थितियो से तादात्म्य बनाना है तो उसे अपनी चेतना को, अपने व्यक्तित्व को उन्ही तलो पर लाना पड़ता है जिन तलों पर वे चेतनाए हैं। यह जानकर आप हैरान होगे कि महावीर का चिह्न सिंह है और उसका कारण शायद आपको कभी भी ख्याल मे न आया होगा और न आ सकता है। उसका कारण यह है कि पिछली चेतनाओ से तादात्म्य स्थापित करने मे महावीर को सबसे ज्यादा सरलता 'सिंह' से तादात्म्य स्थापित करने मे मिली। कोई और कारण नही है। उनका व्यक्तित्व भी 'सिंह' जैसा है। वह पिछले जन्मो मे 'सिंह' रह चुके हैं और लौट कर उससे तादात्म्य बनाना उनके लिए एकदम सरल हो गया है। सच तो ऐसा है कि जब उनका सिंह से तादात्म्य हुआ तो उन्होने पूरी तरह जाना होगा कि 'मैं सिंह हू' और यह उनका प्रतीक बन गया, चिह्न बन गया। और उनके व्यक्तित्व मे यह बाते भी हैं जो सिंह मे हो। जैसे 'सिंह' झुण्ड मे नही चलेगा, भीड़ मे नही चलेगा। एकदम अकेला खड़ा रहेगा। महावीर में वैसा गुण है। सिंह मे जो आक्रमण है, जीत की विजय का जो अदम्य भाव है, वह महावीर मे है; सिंह मे जैसा अभय है वह महावीर की

साधना का प्रथम सूत्र है। यह चिह्न आकस्मिक नही है। कोई चिह्न कभी आकस्मिक नही होता, उस चिह्न के पीछे बहुत वैज्ञानिक मामला है।

जुग ने बहुत काम किया है। इस सम्बन्ध मे कई परीक्षण किए उसने। और इस बात की खोज की कि प्रत्येक व्यक्ति के मानस मे कुछ चिह्न हैं जो उसके व्यक्तित्व के चिह्न है। अगर उन चिह्नो को समझा जा सके तो हम उसके व्यक्तित्व को उघाडने मे सफल हो सकते है। यह जो महावीर के नीचे 'सिंह' बना हुआ है, यह उसके व्यक्तित्व की पहचान की कुजी है। पीछे उतर कर तादात्म्य स्थापित करना इसके लिए चेतना को निरन्तर शिथिल करना होगा और चेतना को उस स्थिति मे ले आना होगा जहा चेतना मे कोई गति नही रहती, जहा चेतना बिल्कुल, शिथिल, शान्त और विराम को उपलब्ध हो जाती है और शरीर बिल्कुल जड अवस्था को उपलब्ध हो जाता है। शरीर जब जड हो और चेतना शिथिल और शून्य हो तब किसी भी वृक्ष, पशु, पौधे से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है। और एक मजे की बात है कि अगर वृक्षो से तादात्म्य स्थापित करना हो तो किसी खास वृक्ष से तादात्म्य स्थापित करने की जरूरत नही। वृक्षो की पूरी जाति के साथ एकदम तादात्म्य स्थापित हो सकता है क्योकि वृक्षो के पास व्यक्तित्व अभी पैदा नही हुआ। अभी वे एक जाति की तरह जीते है। जैसे कि गुलाब के पौधे से तादात्म्य स्थापित करने का मतलब है समस्त गुलाबो से तादात्म्य स्थापित हो जाना क्योकि किसी पौधे के पास अभी व्यक्ति का भाव नही है, अभी अहकार और अस्मिता नही हैं। लेकिन मनुष्यो से अगर तादात्म्य स्थापित करना हो तो बहुत कठिन बात है। हा, आदिवासी जातियो से इकट्ठा तादात्म्य अभी भी स्थापित हो सकता है क्योकि वे कबीले की तरह जीते हैं। उनका कोई व्यक्तित्व नही है लेकिन जितना समाज सभ्य होगा, जितना सुसस्कृत होगा उतना मुश्किल हो जाएगा। जैसे अगर बर्टेंड रसल से तादात्म्य स्थापित करना हो तो सीधा व्यक्ति से तादात्म्य स्थापित करना होगा। अग्रेज जाति से तादात्म्य स्थापित करने मे और किसी से भी तादात्म्य स्थापित हो जाए, बर्टेंड रसल छूट जाएगा बाहर। उसके पास अपना व्यक्तित्व है। जितने नीचे हम उतरते हैं, उतना वहा व्यक्तित्व नही है। इसलिए इस वर्ग मे तादात्म्य पूरी जाति से होता है। इस तादात्म्य की स्थिति मे जो भी भाव-सकल्प किया जाए वह प्रतिध्वनित होकर उन सारे जीवो तक व्याप्त हो जाता है। जैसे गुलाब के पौधो की जाति से तादात्म्य स्थापित किया गया हो तो उस क्षण मे जो भी भाव-तरंग पैदा की जाए वह समस्त

गुलाबों तक सक्रमित हो जाती है। ऐसी अवस्था में महावीर ने बहुत समय गुजारा। और ऐसी अवस्था को उपलब्ध करने में उनको बहुत सी बातें करनी पड़ीं जो पीछे समझाने वाले को मुश्किल होती चली गई। जैसे महावीर खड़े हैं, कोई उनके कानो मे कीलें ठोक दे, महावीर को पता नहीं चलता। कारण कि पत्थर में कील ठोक दो तो पत्थर को क्या पता चलता है क्योंकि सब करीब-करीब अचेतन है। महावीर के कान मे कीलें ठोके जा रहे हैं तो उनको पता नहीं चलता। कारण कि उस समय वे ऐसी चीजो से तादात्म्य कर रहे हैं जिनको पता नहीं चलता कीलें ठोके जाने से। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न ? जिन प्राणी जगत से वह सम्बन्ध स्थापित किए खडे हैं, उस प्राणी को कान में कीला ठोके जाने से पता नहीं चलेगा। इसलिए महावीर को भी कभी पता नही चल सकता है। अगर महावीर का कोई हाथ भी काट लेगा तो भी उन्हे पता नही चलेगा, जैसे कोई वृक्ष की एक शाखा काट ले। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनका तादात्म्य क्या है। हम सब जानते है कि लोग अंगारो पर कूद सकते हैं। तादात्म्य किससे है, इस पर सब बात निर्भर करती है। अगर उस व्यक्ति ने किसी देवता से तादात्म्य किया है तो वह अगारो पर कूद जाएगा, जलेगा नही क्योकि वह देवता नही जल सकता है। जो रहस्य है वह कुल इतना है। आदमी तो फौरन जल जाएगा लेकिन अगर उसने अपना तादात्म्य किसी देवता से किया हुआ है, उसके साथ अपने को एक मान लिया है, उसकी धुन मे नाचता हुआ चला जा रहा है तो उसके नीचे अंगारो के ढेर लगा देने पर भी उसके पावो पर फफोला नही आएगा क्योकि जिससे उसका तादात्म्य है, चेतना उस वक्त वैसा ही व्यवहार करना शुरू कर देती है। हमारे तादात्म्य पर निर्भर करता है कि हम कैसा व्यवहार करेंगे। यह जो हम मनुष्य हैं अभी यह भी गहरे मे हमारा तादात्म्य ही है। इसलिए मनुष्य को कैसे व्यवहार करना चाहिए, वैसा हम व्यवहार करते हैं। गहरे मे यह भी हमारी मनोभूमि की पकड है कि "हम मनुष्य हैं", तो फिर हम मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे हैं।

इस सम्बन्ध मे बहुत सी घटनाएं मुझे ख्याल मे आती हैं। महावीर के जीवन में बहुत जगह है जहां समझना मुश्किल हो जाता है। न समझने की वजह से हम कहते हैं कि आदमी क्षमावान है, अक्रोधी है। यानी क्रोध नहीं करता है। यह सब ठीक है। क्रोध न करे, क्षमा करे लेकिन कान मे कीलें ठुकें और पता न चले। यह अकेले अक्रोधी और क्षमावान को नही

होने वाला है। कितना ही अक्रोधी हो, अक्रोध और बात है लेकिन कान मे कीले ठुकें और पता न चले, यह बिल्कुल अलग बात है। यह तभी हो सकता है जब महावीर बिल्कुल चट्टान की तरह हो उस हालत मे।

सुकरात एक रात खो गया। घर के लोग रात भर परेशान रहे। सुबह मित्र खोजने निकले तो एक वृक्ष के नीचे जहा बर्फ पड़ी है, सब बर्फ से ढका हुआ है, वह घुटने-घुटने तक बर्फ मे डूबा हुआ है। वह वृक्ष से टिका हुआ खडा है। उसकी आख बद है और वह बिल्कुल ठडा है। सिर्फ धीमी सी स्वांस चल रही है। उसे हिलाया है, बमुश्किल वह होश मे आया है, उसके हाथ पैर पर मालिश की है, उसे गर्म किया है, कपडे पहनाए है। फिर जब वह थोड़ा होश मे आया है, उससे पूछा है कि तुम क्या कर रहे थे। तो कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई। रात जब मैं खडा हुआ ती सामने कुछ तारे थे; मैं उनको देख रहा था। और कब मेरा तारो से तादात्म्य हो गया मुझे याद नहीं। और कब मैंने ऐसा जाना कि मैं तारा हू, मुझे पता नही, और तारे तो ठडे होते हैं, इसलिए मैं ठडा होता चला गया। और चूकि मैं तारा समझ रहा था अपने को इसलिए कोई बात ही नही उठी, घर लौटने का ख्याल ही नही था। वह तो तुमने जब मुझे हिलाया तब मैं जैसा एक दूसरे लोक से वापस लौटा हूं।

हम जहा तादात्म्य कर लेते हैं, वही हो जाते हैं। तादात्म्य की कला बहुत अद्भुत बात है। और जरा सी चूक हो जाए तादात्म्य मे तो सब गडबड हो जाएगा। महावीर जो अभिव्यक्ति का उपाय खोज रहे हैं, वह है भूत, जड, मूक जगत उस सबमे तरगें पहुचाने का। और ये तरगें अब तो वैज्ञानिक ढग से भी अनुभव की जा सकती है।

तीर्थ और मन्दिर जिस दिन पहली बार खडे हुए, उनके खडे होने का कारण बहुत ही अद्भुत था। वह यही था। अगर महावीर जैसा व्यक्ति इस कमरे मे रह जाए कुछ दिन तो इस कमरे से उसका तादात्म्य हो जाता है। और इस कमरे के रग-रग पर, कण-कण पर उसकी तरगें अकित हो जाती हैं। फिर इस कमरे मे बैठना किसी दूसरे के लिए बड़ा सार्थक हो सकता है, बड़ा सहयोगी हो सकता है। इस कमरे में अगर एक आदमी ने किसी की हत्या कर दी हो, या आत्महत्या कर ली हो तो आत्महत्या के क्षण मे इतनी तीव्र तरंगो का विस्फोट होता है—क्योंकि आदमी मरता है, टूटता है—कि सैकड़ों वर्षों तक इस कमरे की दीवारों पर उसकी प्रतिध्वनिया अकित हो जाती हैं और यह हो सकता है कि एक रात आप इस कमरे में आकर सोएं

और रात आप एक सपना देखें आत्महत्या करने का। वह आपका सपना नही है। वह सपना केवल इस कमरे की प्रतिध्वनियो का आपके चित्त पर प्रभाव है। और यह भी हो सकता है, इस कमरे मे रहते हुए आप किसी दिन आत्म-हत्या कर गुजरे—यह भी बहुत कठिन नही है। इससे उल्टा भी हो सकता है। लेकिन महावीर और मीरा जैसा कोई व्यक्ति इस कमरे मे बैठकर एक तरगो मे जिया हो तो यह कमरा उसकी तरगो से भर जाएगा। इसके कण-कण मे—क्योकि उधर जो हमे कण दिखाई पड रहा है मिट्टी का, और यह जो हम मे कण हैं उनमे—कोई बुनियादी भेद नही है। वह सब एक मे ही बहुत विद्युत के कण हैं और सब विद्युत के कण तरगो को पकड सकते है, तरगो को देख सकते है। कमजोर आदमी को तरगे दे देते हैं और शक्तिशाली आदमियो से उनको तरगें लेनी पडती हैं। मैंने परसो बोधिवृक्ष की बात की थी। इस वृक्ष को इतना आदर देने का और तो कोई कारण नही है। वह वृक्ष ही है। बुद्ध उसके नीचे बैठकर अगर निर्वाण को भी उपलब्ध हुए तो क्या मतलब है? लेकिन मतलब निश्चित है। इस वृक्ष के नीचे निर्वाण की घटना घटी तो उस क्षण मे इतनी तरगे बुद्ध के चारो तरफ विस्फोट की तरह फैली कि यह वृक्ष उसका सबसे बडा गवाह है और इस वृक्ष के कण-कण मे उसकी तरगो का अकन है। और आज भी जो रहस्य को जानता है वह उस वृक्ष के नीचे बैठकर उन तरगो को वापस अपने मे बुला सकता है। आकस्मिक नही था कि हजार-हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार मील तक बौद्ध भिक्षु चक्कर लगाए, दो क्षण उस वृक्ष के पैरो मे पडे रहने के लिए आते रहे। आकस्मिक नही है। इसके पीछे सारी की सारी विज्ञान की बात है। सम्मेद शिखर है, गिरनार है, काबा है, काशी है, जेरुसलम है—इन सबके साथ कुछ सकेत और कुछ गहरी लिपियो मे कुछ जुडा है। उनकी तरगें धीरे-धीरे नष्ट हो गई है। करीब-करीब इस समय पृथ्वी पर कोई भी जीवित तीर्थ नही है, सब तीर्थ मर गए हैं। उनकी तरगे नष्ट हो गई है। इतनी तरगो का उनके ऊपर और आघात हो गया है इतने लोगो के आने जाने का कि वे करीब-करीब कट गई है और समाप्त हो गई हैं। लेकिन इस बात मे तो अर्थ था ही, इस बात में तो अर्थ है ही। जड से जड वस्तु पर भी तरंगे क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती हैं। अभी एक नवीनतम प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह प्रयोग यह है कि जैसे-जैसे हम अणु को तोडकर और परमाणुओ को तोड़कर इलैक्ट्रोन की दुनिया में पहुचे है, वहा जाकर एक नया अनुभव आया है जो

बहुत घबड़ाने वाला है और जिसने विज्ञान की सारी व्यवस्था उलट दी है। वह अनुभव यह है कि अगर इलैक्ट्रोन को बहुत खुर्दबीनों से निरीक्षण किया जाए तो जैसा वह अनिरीक्षित व्यवहार करता है, निरीक्षण करने पर उसका व्यवहार बदल जाता है। कोई उसे नही देख रहा है तो वह एक ढग से गति करता है और खुर्दबीन से देखने पर वह डगमगा जाता है और गति बदल देता है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ का अन्तिम अणु भी मनुष्य की आख और निरीक्षण से प्रभावित होता है। ऐसे जैसे आप अकेले सडक पर चले जा रहे हैं, कोई नही है सडक पर, फिर अचानक किसी खिडकी मे से कोई झाकता है और आप बदल गए। आप दूसरी तरह चलने लगे। अभी जिस शान से आप चल रहे थे वैसा नही चल रहे। अभी गुनगुना रहे थे, अब गुनगुनाना बद हो गया। अपने बाथरूम मे आप स्नान कर रहे है, गुनगुना रहे हैं, नाच रहे है, या आइने के सामने मुह बना रहे है और अचानक आपको पता चले कि बगल के छेद से कोई आदमी झाकता है, आप दूसरे आदमी हो गए। निरीक्षण आदमी मे फर्क लाये, यह समझ मे आता है। लेकिन अणु भी, परमाणु भी, निरीक्षण से डगमगा जाए तो बडी हैरानी की बात है। और यह सब इस बात की खबर देते है कि हम कुछ गल्ती मे हैं। वहा भी प्राण, वहा भी आत्मा, वहा भी देखने से भयभीत होने वाला, देखने से सचेत होने वाला, देखने से बदलने वाला मौजूद है। इन परमाणुओ तक भी महावीर ने खबर पहुचाने की कोशिश की है। इस खबर पहुचाने के लिए ही, जैसा मैंने कहा, पहले तो यह अनेक बार ऐसी अवस्था मे पाए गए, जहा वह जीवित हैं या मृत हैं कहना मुश्किल है। और यह अवस्थाए लाने के लिए उन्हे कुछ और प्रयोग करने पड़े वे भी हमे समझ लेने चाहिए। महावीर का चार-चार महीने तक, पाच-पाच महीने तक भूखा रह जाना बडा असाधारण है। कुछ न खाना और शरीर को कोई क्षीणता न हो, शरीर को कोई नुकसान न पहुचे, शरीर वैसा का वैसा ही बना रहे शायद ही आपने कभी सोचा हो। या जो जैन मुनि और साधु सन्यासी निरन्तर उपवास की बात करते हैं, उनमे से, अढ़ाई हजार वर्ष होते हुए महावीर के हुए, एक भी यह नही बता सकता है कि तुम चार-पाच महीने का उपवास करो तो तुम्हारी क्या गति होगी। महावीर को क्यो नही हो रहा है ऐसा। यह आदमी चार-चार पांच-पाच महीनो तक नहीं खा रहा है। बारह वर्ष मे मुश्किल से जोड़ तोड़ कर एक आध वर्ष भोजन किया है यानी बारह दिन के बाद एक दिन तो निश्चित ही,

कभी दो दिन, कभी दो महीने बाद, कभी-कभी तीन महीने बाद, इस तरह चलता है लेकिन इसके शरीर को कोई क्षीणता उपलब्ध नही हुई है। इसका शरीर पूर्ण स्वस्थ है, असाधारण रूप से स्वस्थ है, असाधारण रूप से सुन्दर है—क्या कारण है ? अब मेरी अपनी जो दृष्टि है, जैसा मैं देख पाता हू, वह यह है कि जो व्यक्ति नीचे के तल पर, पदार्थ के परमाणुओ, पौधो के परमाणुओ, पक्षियो के परमाणुओ को इतना बडा दान दे रहा है अगर ये परमाणु उसे प्रत्युत्तर देते हो तो आश्चर्य नही। यह परमाणु-जगत का प्रत्युत्तर है। जो आदमी पास मे पडे हुए पत्थर की आत्मा को भी जगाने का उपाय कर रहा है, जो पास मे लगे हुए वृक्ष की चेतना को जगाने के लिए भी कम्पन भेज रहा है अगर ऐसे व्यक्ति को सारे पदार्थ-जगत मे प्रत्युत्तर मे बहुत सी शक्तियाँ मिलती हो तो आश्चर्य नही। और उसे वे शक्तिया मिल रही हैं। आखिर वृक्ष को हम भोजन बनाकर लेते हैं, काटते हैं, पीटते है, आग पर पकाते हैं, फिर वह जो वृक्ष है, वृक्ष का पत्ता है, या फल है, इस योग्य होता है कि हम उसे पचा सकें और वह हमारा खून और हड्डी बन जाए। बनता तो वृक्ष ही है। और वृक्ष क्या है, मिट्टी ही है; मिट्टी क्या है, सूरज की किरणें ही हैं। वह सब चीजें मिल कर एक फल में आती हैं। फल हम लेते हैं। हमारे शरीर मे पचता है और पहुच जाता है। आज नही कल, विज्ञान इस बात को खोज लेगा कि जो किरणो को पीकर वृक्ष का फल 'D' विटामिन लेता है, क्या जरूरत है कि इतनी लम्बी यात्रा की जाए कि हम फल को लें और फिर 'डी' विटामिन हमे मिले। सूरज की किरण से सीधा क्यो न मिले ? यह सूरज की किरण को हम एक छोटे केपस्यूल मे क्यो न बद करें और वह आदमी को दें ताकि वह पचास फल खाने मे जितना 'डी' विटामिन इकट्ठा कर पाए, एक कैपस्यूल उसको पहुचा दे। आज नही कल, विज्ञान उस दिशा मे गति करेगा ही। लेकिन विज्ञान की गति और तरह की है। वह छीन-झपट की गति है। महावीर की भी एक तरह की गति है और वह गति भी किसी दिन स्पष्ट हो सकेगी कि क्या यह सम्भव नही है। आखिर पानी ही तो हमे बचाता है, हवा बचाती है, सूरज बचाता है यही सब तो हमारा भोजन बनते हैं। क्या यह सम्भव नही है कि बहुत गहरे प्रतिदान मे जो आदमी इन सबके लिए एकात्म्य साध रहा हो उसको इनसे भी प्रत्युत्तर मे कुछ मिलता हो जो हमे कभी नही मिलता, या मिलता है तो बहुत श्रम से मिलता है।

इस तरह की दो घटनाएं और घटी हैं। अभी यूरोप में एक औरत जिन्दा

है जिसने तीस साल से भोजन नही किया और वह पूर्ण स्वस्थ है और वैसी ही सुन्दर है, वैसी ही स्वस्थ है जैसे महावीर रहे होगे। और तीस साल से उसने कुछ भी नही लिया है। उसके शरीर मे कुछ भी नही गया है। उसके सब एक्स-रे हो चुके हैं, जाच-पड़ताल हो चुकी है। उसका पेट सदा से खाली है। तीस साल से उसने कुछ भी नही खाया है। लेकिन उसका एक छटांक बजन भी नही गिरता है नीचे। वह पूर्ण स्वस्थ है। न केवल बजन नहीं गिरता है बल्कि एक और दुर्घटना है जो उसके साथ चलती है। ईसाइयो मे, ईसाई फकीरो मे एक तादात्म्य का प्रयोग है जो स्लिगमेटा कहलाता है। जैसे जीसस को जिस शुक्रवार को शूली लगी, उनके दोनो हाथो पर कीले ठोके गए तो जो ईसाई फकीर, ईसाई साधक जीसस से तादात्म्य कर लेते हैं, शुक्रवार को ऐसा हाथ फैला कर बैठ जाते है और हजारो लोगो के सामने उनके हाथो मे अचानक छेद हो जाते है और खून बहने लगता है वह जीसस से तादात्म्य के आधार पर—यानी उस क्षण वह भूल गए है कि मैं हू, वह जीसस है। शुक्रवार का दिन आ गया और वह शूली पर लटका दिए गए हैं। उनके हाथ फैल जाते है। हजारो लोग देख रहे है। उनकी हथेली फटती है और खून बहना शुरू हो जाता है। इस औरत ने तीस साल से खाना तो लिया नही और तीस साल मे प्रतिशुक्रवार सेरो खून इसके हाथ से बह रहा है। दूसरे दिन हाथ ठीक हो जाते है और सब घाव मिट जाते है और उसके बजन मे कमी नही आती। पश्चिम मे घटना घटे, वहा तो वैज्ञानिक चिन्तन चलता है किसी भी बात पर। लेकिन उनकी पकड मे अब तक नही आ सका कि बात क्या हो सकती है।

बगाल मे एक औरत थी। उसे मरे अभी कुछ वर्ष हुए। पतालीस वर्ष तक उसने कोई भोजन नही किया। वह बहुत स्वस्थ नही थी किन्तु साधारण स्वस्थ थी। इतने वर्ष भोजन न करने से कोई असुविधा नही आई थी, चलती फिरती थी। बूढ़ी औरत थी। सब ठीक था। उसका पति जिस दिन मरा उस दिन से भोजन नही लिया। घर के लोगो ने समझाया, बुझाया कि भोजन ले लो। उसने कहा मै पति के मरने के बाद भोजन कैसे ले सकती हू। घर के लोगो ने, मित्रो ने कहा कि ठीक है, रहने दो, ठीक ही कहती है, वह कैसे ले सकती है। दो दिन बीत गए तब फिर लोगो ने कहा तो उसने कहा कि अब तो पति के मरने के बाद ही सब दिन है। अब इससे क्या फर्क पडता है कि एक दिन, दो दिन, तीन दिन। अब तो बाद मे

ही सब कुछ है । और जब उस दिन तुम राजी हो गए तो अब तुम राजी ही रहो । अब मैं बाद मे कैसे भोजन ले सकती हू । अब बात खत्म हो गई । वह पेंतालीस साल जिन्दा रही । उसने भोजन नही लिया । लेकिन वैज्ञानिक उसकी भी चिन्तना करते रहे, विचार करते रहे । उनको साफ नहीं हो सका कि बात क्या है । मेरी अपनी समझ यह है, और महावीर से ही वह समझ मेरे ख्याल मे आती है कि हो सकता है किसी न किसी तरह से परमाणुओं का सूक्ष्म जगत सीधा भोजन देता हो । इसके अतिरिक्त और कोई बात नही है । वह कैसे देता हो, किस ढग से देता हो यह हमारी बाते है । लेकिन, सूक्ष्म जगत से सीधा भोजन मिलता हो, और बीच मे माध्यम न बनाना पडता हो । महावीर को ऐसा भोजन मिला है । इसलिए महावीर के पीछे जो भूखो मर रहे है, वे बिल्कुल पागल हैं । वे निपट शरीर को गला रहे है और नासमझी कर रहे है । इसलिए महावीर के उपवास को मै कहता हू 'उपवास' है और बाकी पीछे लोग अनशन कर रहे है वे सिर्फ मासाहारी है—अपना ही मास पचा जाते है । एक दिन के उपवास मे एक पौंड मास पच जाता है । तो चाहे हम दूसरे का मास खाए या अपना खाए, इसमे कोई फर्क नही पडता है । वह मासाहार ही है क्योकि शरीर की जरूरत है उतने की । जितनी गर्मी चाहिए, जितनी शक्ति चाहिए वह शरीर लेगा । अगर आप बाहर स नही देते है तो वह शरीर मे पचा लेगा । तो इतनी चर्बी पचा जाएगा और उस पचाने मे आप उपवास समझेगे । वह उपवास नही है । शरीर मे कोई फर्क न आए, शरीर जैसा था वैसा रहे तब तो जानना चाहिए कि भोजन के सूक्ष्म मार्ग उपलब्ध हो गए है, सिर्फ भोजन बद नही किया गया है । और महावीर जो तीन-चार महीने के बाद एक आध दिन भोजन लेते है, वह इसलिए नही लेते कि एक दिन के भोजन लेने से कोई फर्क पड जाएगा क्योकि जब चार महीने भोजन के बिना एक आदमी रह सकता है तो आठ महीने क्यो नही ? वह सिर्फ इस रहस्य को प्रकट न करने के लिए है कि अगर साल दो साल भूखा रह जाए आदमी तो लोग पूछेगे कि यह हुआ कैसे ? और यह हर किसी को बताना खतरनाक भी हो सकता है । सभी बाते सभी को बताने के लिए नही भी है । जो वे एक दिन खाना ले लेते है वह सिर्फ इसलिए कि लोगो को सात्वना हो जाए कि वे खाना ले लेते हैं । एक दिन खाना ले लेते है तो दो चार-महीने बात खत्म हो जाती है । इसलिए, जो बाते अभी मैं कह रहा हू उनमे कुछ सूत्र छोड़े जा रहा हू । इसलिए अभी इनका प्रयोग नही किया जा सकता । आप इनका

प्रयोग नही कर सकते ।

महावीर पाखाना नही जाते, पेशाब नही जाते । बड़ी चिन्तना की बात है कि यह कैसे हो सकता है ? महावीर को पसीना नही बहता, यह कैसे हो सकता है ? अगर भोजन ले ले तो यह सब होगा क्योंकि यह भोजन से जुडा हुआ हिस्सा है। अगर आप भीतर डालेंगे तो बाहर निकालना पडेगा । लेकिन अगर सूक्ष्म तल से भोजन मिलने लगे तो इसका कोई मतलब ही नही रह जाता है । निकालने को कुछ है ही नही । इतना सूक्ष्म है भोजन कि निकालने लायक कुछ भी उसमे से बचता नही । वह सीधा शरीर मे लीन हो जाता है ।

महावीर की अहिंसा को भी इस तरह से समझने की कोशिश करना जरूरी है । और तरफ से भी हम समझने की कोशिश करेंगे । महावीर के लम्बे उपवास समझ लेने जरूरी है कि सूक्ष्म भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया उन्हे उपलब्ध है ।

काशी मे एक सन्यासी था विशुद्धानन्द और उसने एक अति प्राचीन विज्ञान को जो एकदम खो गया था फिर से उज्जीवित किया । वह है सूर्य किरण विज्ञान । उस आदमी ने इस तरह लेंस बनाए थे कि एक मरी हुई चिडिया को ले जाकर आप रख दें तो वह लेंस से सूरज की किरणो को पकडेगा और उस चिडिया पर डालेगा । थोडी देर कुछ करता रहेगा बैठा हुआ । और आपके सामने चिडिया जिन्दा हो जाएगी । और यह प्रयोग पश्चिम के डाक्टरो के सामने भी किए गए और यूरोप से आने वाले न जाने कितने लोगो ने ये प्रयोग अपनी आखो से देखे । जिंदा चिडिया को बिठा दे । वह फिर लेंस को रखेगा । फिर कुछ और ढग से किरणे डालेगा, कुछ करेगा और चिडिया मर जाएगी । उसका कहना था कि सूर्य की किरण मे सीधा जीवन और मृत्यु आ सकती है । बीच मे कुछ और लेने की जरूरत नही । सीधा जीवन आ सकता है । सीधी मृत्यु आ सकती है और बात मे गहरी सच्चाई है । सारा जीवन जो हमे पृथ्वी पर दिखाई पड रहा है, वह सूरज की किरण से बधा हुआ है । सूरज अस्त हो जाए, सारा जीवन अस्त हो जाएगा । न पौधे होंगे, न फूल होंगे, न पक्षी होंगे, न आदमी होगा । कोई भी नही होगा । प्राणी हो सकते है, सूरज न हो तब भी, लेकिन देह नही होगी । देह और प्राण का सम्बन्ध सूरज की किरण से ही जुडा है । अदेही हो सकेंगे । लेकिन देह नही होगी ।

अभी चाद मे लौटते वक्त जो एक घटना घटी है, वह विचारणीय है, बहुत ज्यादा विचारणीय है। चाद से वे लौट आए हैं और चांद पर कोई नही पाया गया है। कोई पाने को है भी नही ऐसे। लेकिन लौटते वक्त उनके नीचे के जो ट्रांसमिटर्स हैं, और जो रेडियो स्टेशन है, जहा वह पकड़ रहे है, वहा इतने जोर की चीखें-पुकार, इतना कोलाहल, इतना हसना सुना गया है कि जैसे करोडो भूत-प्रेत एकदम से चिल्ला रहे हो। ये तीन आदमी अगर कोशिश भी करें चिल्लाने की, रोने की तो भी किसी स्थिति मे ये करोडो भूत-प्रेतो की आवाजो का भ्रम पैदा नही कर सकते। और उनसे लौटने पर पूछा गया तो उन्होने कहा हमको तो कुछ भी पता नही, हम तो विश्राम करते चले आ रहे है। यह इस बात की गहरी सूचना है और खबर है कि चाद पर कोई देहधारी तो नही है क्योकि चाद पर अभी वह स्थिति नही पैदा हुई जहा पर देह प्रकट हो सके। लेकिन चाद पर अदेही आत्माओ की पूरी स्थिति है। इस पृथ्वी पर सूर्य की किरणो ने देह और प्राण को जोडने मे बडा उपाय किया है। सूर्य की किरणो से सीधा भी कुछ हो सकता है। आख से भी सूरज की किरणे पी जा सकती है, और जीवनदायी हो सकती हैं। त्राटक के बहुत से प्रयोग सीधे सूरज से जीवन खीचने के प्रयोग है। वह सिर्फ एकाग्रता के प्रयोग नही हैं। सीधा सूरज से जीवन खीचने के प्रयोग है। और एक दफा वह उतर जाए ख्याल मे तो सूरज से कही से भी जीवन खीचा जा सकता है।

तिब्बत मे एक विशेष प्रकार का योग होता है जिसको सूर्य योग ही कहते है। तिब्बत मे तो भयकर सर्दी है। सूरज कभी दिखता है, कभी नही दिखता है। बर्फ ही बर्फ जमी है। नगा फकीर भी उस बर्फ पर बैठा रहेगा और आप पाएगे उसके शरीर से पीसना चू रहा है। नगा बैठा हुआ है, सारे तरफ से पसीना झर रहा है। बर्फ पर ही नगा बैठा हुआ है। रात, सूरज का कोई पता नही और पसीना टपक रहा है। उसकी प्रक्रिया है कि सूर्य कही भी हो हम उसका ताप पकड सकते हैं।

यह जो मैं कह रहा हू वह इस ख्याल से कह रहा हू ताकि आपके ख्याल मे आ सके कि महावीर ने नीचे के जगत से सम्बन्ध स्थापित किए तो नीचे जगत ने भी उत्तर दिए हैं। फिर कहानियो मे हमने इन उत्तरो को लिखा है जो कविताएं बन जाती है। कहानी है, कविता है जो यह कहती है कि जब महावीर चलते है अगर काटा सीधा पडा हो तो महावीर को देख

कर तत्काल उल्टा हो जाता है। ये हमारी कहानियां हैं। और एक बहुत गहरी बात उसमें कहने की कोशिश की गई कि प्रकृति भी महावीर के प्रतिकूल होने की कोशिश नही करती, बल्कि अनुकूल होने की कोशिश करती है क्योंकि जिसने इतना प्रकृति से प्रेम किया हो, इतना तादात्म्य किया हो, वह प्रकृति कैसे उसके प्रतिकूल होने की कोशिश करेगी। मुहम्मद के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि जब वे चलते हैं तो एक बदली उनके ऊपर छाया की तरह चलती है। ऐसी कोई बदली चले, यह जरूरी नही है। चल भी सकती है। लेकिन बात यह है कि जरूर जो लोग जहां से सम्बन्ध बनाते हैं वहां से कुछ हो सकता है। उत्तर जरूर मिलेंगे। सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी आपके प्रेम का उत्तर देता ही है। उत्तर चारो तरफ से आते है और ध्यान रहे उत्तर वही होते है जो हम फेंकते है, वही गूजते हैं, प्रतिध्वनित होते हैं, लौट आते है। तो महावीर की अहिंसा का उत्तर अगर अहिंसा की तरफ से लौटे तो आश्चर्य की बात नही है।

पहली बात यह है कि महावीर ने नीचे के तल से सम्बन्ध स्थापित किए, मूक जगत से। नीचे मूक जगत है, फिर बीच मे मनुष्य का जगत है जो शब्द का जगत हे। फिर मनुष्य के ऊपर देवताओ का जगत है। ये तीन जगत हैं। मूक का मतलब, जहा वाणी अभी प्रकट नही हुई। शब्द का जगत, जहां प्रकट हो गई। मौन का जगत, जहा वाणी वापस खो गई है। देवताओ के पास कोई वाणी नही है।

प्रश्न : शरीर है ?

उत्तर : शरीर भी नही है। पशुओ के पास भी कोई वाणी नही है, लेकिन शरीर है, वाणी प्रकट नही हुई है। यन्त्र है पशुओ के पास, वाणी प्रकट हो सकती है।

प्रश्न : पशुओं की अपनी भाषा है ?

उत्तर : कहने मात्र को। भाषा नही है, सिर्फ सकेत है। संकेत काम चलाऊ है। और बड़े सीमित है। जैसे मधुमक्खियो के कोई चार संकेत है उनके पास। वे चार संकेत दे सकती है।

प्रश्न : पक्षियों की आवाजों के लिए ग्रन्थ है ?

उत्तर। हा, हा, पक्षियो से बात की जा सकती है लेकिन पक्षियो के पास अपनी वाणी नही है। आप सम्बन्ध जोड सकते है। पक्षी आपसे कुछ कह नहीं सकता है लेकिन पक्षी कुछ अनुभव कर सकता है। और अगर आप

अनुभव के तल पर उससे सम्बन्ध जोड ले तो आप जान सकते है कि वह क्या अनुभव कर रहा है। वह आपसे कुछ कहता नही, सिर्फ आप उसके अनुभव को जान सकते है कि वह क्या कर रहा है। जैसे एक कुत्ता रो रहा है। वह आपसे कुछ कह नही रहा है। उसके भीतर कुछ हो रहा है जिससे वह रो रहा है। लेकिन अगर आप सम्बन्ध जोड सकें उसके भीतर से तो शायद आप पता लगा सकते है कि पडोस मे कोई मरने वाला है इसलिए वह रो रहा है लेकिन कुत्ते को यह पता नही कि पडोस मे कोई मरने वाला है इसलिए वह रो रहा है। उसके चित्त मे इस तरह की तरगे उठ रही हैं पास से आकर कि कही मृत्यु होने वाली है। यह उसका मूक अनुभव है। इस मूक अनुभव मे वह रो रहा है, चिल्ला रहा है। आपसे कुछ कह सकता नही है वह। कहने का उपाय नही है उसके पास और आप भी उसके चिल्लाने से कुछ नही समझ सकते हैं। जब हम कहते है कि पशुओ-पक्षियो की भाषा सीखने के सम्बन्ध मे बहुत से प्रयोग किए गए है और बहुत दूर तक सफलता भी पाई गई है लेकिन उनमे उनकी कोई वाणी नही पकडता है। उनके पास कोई शब्द, वर्ण, अक्षर से निर्मित वाणी नही है। अनुभूति के तल जरूर है, अनुभूति की तरगे है। उन्हे अगर पकड ले तो आप उस कोड को खोज सकते है। आप खोज सकते है कि उनको क्या एहसास हो रहा होगा। तीन तल मे मैं बाट देता हू जीवन को एक मूक जहा वाणी प्रकट हो सकती है, मगर प्रकट नही हुई, जहा सिर्फ अनुभव है, भाव है, शब्द नही है। दूसरा, मनुष्य का जगत, जहा शब्द प्रकट हो गया है जहा हम शब्द के द्वारा काम करने लगे है, बात करने लगे है, विचार करने लगे है, संवाद करने लग है। तीसरा, मनुष्य से ऊपर देवताओ का जगत, जहा वाणी खो गई है, व्यर्थ हो गई है, अब उसकी कोई जरूरत नही रही, अब बिना शब्द के ही बातचीत हो सकती है, मौन ही सम्भाषण बन सकता है। इनमे सर्वाधिक कठिन पशुओ का जगत मालूम पडता है—पौधो का, पक्षियो का, पत्थरो का। लेकिन सर्वाधिक कठिन वह नही है। इनमे कठिन देवताओ का जगत भी मालूम पड सकता है क्योंकि जहा शब्द नही है वहा अभिव्यक्ति कैसे होती होगी। मगर वह भी इतना कठिन नही है। सबसे ज्यादा कठिन सम्भाषण का जगत है, मनुष्य का जगत है जिसने सवाद के लिए शब्द ईजाद कर लिए है और इस तरह कि शब्दो के कारण ही सवाद होना मुश्किल हो गया है। सबसे सरल देवताओ का जगत है, जहा मौन विचार हो सकता है। इसलिए

यह जो कहा जाता है कि महावीर के समवसरण मे पहली उपस्थिति देवताओ की है, उसका अर्थ सिर्फ इतना ही है। सबसे सरल सम्भाषण उनसे हो सकता है। शब्द बीच मे बाधा नहीं है, शब्द बीच मे माध्यम नही है। सीधा जो भाव उठे, वह सम्प्रेषित हो जाता है। बीच मे किसी को कोई यात्रा करने की जरूरत नही रह जाती। जैसे हम देखते हैं, कि टेलिफोन है। उसमे एक तार की व्यवस्था है। फिर वायरलेस है, जिसमे बीच मे कोई तार नही है, सीधा सबध है। बीच मे तार लाने की जरूरत नही है। सीधा, सम्प्रेषण हो जाता है। ऐसे ही एक सम्भाषण शब्द के द्वारा हो जाता है। जहा शब्द 'मुझे' और 'आपको' जोडता है और एक सम्भाषण ऐसा भी है जहा शब्द भी बीच मे नही है। सिर्फ मौन है। और मौन मे जो अनुभव होता है वह सम्प्रेषित हो जाता है। तो देवताओं के साथ सत्य की वार्ता सबसे ज्यादा सरल है। इसलिए पहली उपस्थिति उनकी रही हो तो यह आश्चर्य की बात नही है। यह स्वाभाविक है।

प्रश्न : ये देवी-देवता सब हुए है ?

उत्तर : हुए हैं नही। हैं ही। उसकी हम धीरे-धीरे बात कर सकेंगे कि वह क्या है। उस सम्बन्ध मे भी थोडी बात जान लेनी उचित होगी। पशु, पक्षी भी महावीर के समवसरण मे उपस्थित है, उन्हे सुनने को उपस्थित है। यह भी हैरानी की बात मालूम पडती है कि पशु पक्षी सुनने को उपस्थित हो ! मनुष्य भी उपस्थित है। पशु-पक्षियो को जो कहा गया है शायद उन्होने भी सुना है। देवताओ को जो कहा गया है शायद उन्होंने भी सुना है। मनुष्यों को जो कहा गया है शायद उन्होने नही सुना है। क्योंकि उनके पास शब्द है और समझदारी का ख्याल है जो बडा खतरनाक है। मनुष्य को यह ख्याल है कि 'मैं सब समझ लेता हू।' यह बडी भारी बाधा है। और मनुष्य शब्द सुनता है और शब्द को पकडने का, सग्रह करने का उपाय ईजाद कर लिया है उसने—भाषा को वह सब संगृहीत कर लेता है। वह कहता है 'यह सब लिखा हुआ है।' वह शब्द पकड लेता है फिर शब्दो की व्याख्या करता है और भटक जाता है। इसलिए मनुष्य के साथ बड़ी कठिनाई है। क्योकि मनुष्य पशु है लेकिन वह पशु नही रह गया है। मनुष्य देवता हो सकता है लेकिन अभी हो नही गया है। वह बीच की कड़ी है। अगर ठीक से हम समझे तो वह प्राणी नही है, सिर्फ कड़ी है। पशु से चला आया है वह आगे। लेकिन पशु बिल्कुल खो नही गया है। इसलिए जो जरूरी

चीजे हैं, वह अब भी भाषा के बिना करता है। जैसे क्रोध आ जाए तो वह चाटा मारता है, प्रेम आ जाए तो वह गले लगाता है। जो जरूरी चीजें हैं, वह अभी भी भाषा के साथ नही करता है। भाषा अलग कर देता है फौरन। उसका पशु होना एकदम प्रकट हो जाता है। पशु के पास कोई भाषा नही है। प्रेम है तो वह गले लगा लेता है, क्रोध है तो चाटा मार देता है। वह नीचे उतर रहा है। वह भाषा छोड़ रहा है। वह जानता है कि भाषा समर्थ नही है। इसलिए जो बहुत जरूरी चीज है उसमे वह गैर भाषा के काम करता है। या फिर जो बहुत और ज्यादा जरूरी चीजे हैं जिनमे भाषा बिल्कुल बेकार हो जाती है तो वह मौन से काम करता है। मनुष्य पशु नही रह गया है और देवता भी नही हो गया है। वह बीच मे खडा है। एक तरह का क्रास रोड्स है, एक तरह का चौरास्ता है जो सब तरफ से बीच मे पडता है। कही भी जाना है तो मनुष्य से हुए बिना जाने का उपाय नही है। इस मनुष्य को समझाने की चेष्टा ही सबसे ज्यादा कठिन चेष्टा है। देवता समझ लेते हैं जो कहा जाता है वैसा ही क्योकि बीच मे कोई शब्द नही होता। व्याख्या करने का कोई सवाल नही है वहा। पशु समझ लेते है क्योकि उनमे कहा ही नहीं जाता। व्याख्या की कोई बात ही नही होती। सिर्फ तरगे प्रेषित की जाती हैं। तरगे पकड ली जाती हैं। जैसा कि अब यह टेप रिकार्डर मुझे सुन रहा है। आप भी मुझे सुन रहे हैं। इस कमरे मे कोई देवता भी उपस्थित हो सकता है। यह टेप रिकार्डर कोई व्याख्या नही करता है। यह सिर्फ रिसीव कर लेता है, सिर्फ तरगो को पकड लेता है। इसलिए कल इसको बजाएगे तो जो इसने पकडा है, वह दुहरा देगा पदार्थ के तल पर, और पशु के तल पर जो ग्रहण शक्ति है वह इसी तरह की सीधी है। सिर्फ तरगे सम्प्रेषित हो जाती हैं। देवता तल पर अर्थ सीधे प्रकट हो जाते है। मनुष्य के तल पर तरगे पहुचती हैं, अर्थ वह खुद खोजता है। तब बडी मुश्किल हो जाती है। तब उसकी सब व्याख्याए खडी हो जाती है। व्याख्याओ पर व्याख्याए खडी हो जाती है। जैसा मैंने कहा कि महावीर शायद अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने न मालूम कितने पशुओ, न मालूम कितने पक्षियो, न मालूम कितने पौधो को आमन्त्रित किया है मनुष्य की तरफ। दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है। वही शायद ऐसे अकेले व्यक्ति है और लोगो ने भी शायद चेष्टा की है, बहुत लोगो ने सफलता पाई है जिन्होंने देवताओ को भी मनुष्य की तरफ आकर्षित किया है। इस पर हम पीछे बात करेगे। मनुष्यो से कैसे सम्प्रेषण हुआ है, देवताओ

से कैसे सम्प्रेषण हो सकता है, वह हम फिर बात करेंगे । बारह वर्ष की पूरी साधना अभिव्यक्ति, सम्प्रेषण की साधना है । कैसे पहुचाया जा सके जो पहुचाना है ? और जैसे ही उनकी साधना पूरी हो गई है, उन्होंने छोड दी है और वह पहुंचाने के काम मे लग गए हैं । दो छोटे सूत्र ख्याल मे रख लेने चाहिएं । पशु के पास सम्प्रेषण करना है तो मूक होना पडेगा । मूक का मतलब यह कि वाणी खो देनी पडेगी; वह रह ही नही जाएगी भीतर । करीब करीब मूर्च्छित और जड जैसा मालूम पडने लगेगा व्यक्ति । लेकिन शरीर जड़ होगा, मन जड होगा, मगर भीतर चेतना पूरी जागी होगी । अगर मनुष्य से सम्बन्ध जोडना है तो दो उपाय हैं · जो मनुष्य साधना से गुजरे उसके साथ बिना शब्द के सम्बन्ध जोडा जा सकता है क्योंकि साधना से गुजर कर उसे उस हालत मे लाया जा सकता है जहा देवता होते हैं । तब वह मौन मे समझ सकता है । जैसे मैंने कल कहा कि महाकाश्यप को बुद्ध ने कहा कि वह मैंने तुझे दे दिया है जो मै शब्दो से दूसरे को नही दे सका हू । या फिर वाणी है जो सीधी उनसे कही जाए । वह उसे सुने, समझे । लेकिन, वह नही समझ पाता है । इसलिए महावीर की कथा यह है कि महावीर कहते हैं, गणधर सुनते हैं, गणधर लोगो को समझाते है । यह बडा खतरनाक मामला है । महावीर किसी को कहते हैं, वह सुनता है । फिर वह जैसा समझता है, व्याख्या करके लोगो को समझाता है । बीच मे एक मध्यस्थ खड़ा होता है और महावीर से सीधा सम्बन्ध नही हो पाता क्योकि हम शब्दो को समझ सकते हैं; अनुभूतियो को नही और या फिर हम अनुभूतियो मे प्रवेश करे, ध्यान मे जाए, समाधि मे उतरें और उस जगह खडे हो जाए जहा शब्द के बिना तरगे पकडी जा सकती हो । एक रास्ता वह है, नही तो फिर मध्यस्थ होगे, व्याख्याए होंगी, शब्द होगे—सब बदल जाएगा, सब खो जाएगा । जो भी शास्त्र निर्मित हैं, वे आदमियो के बोले गए शब्दो द्वारा निर्मित हैं । वे शब्द भी सीधे महावीर के नही है । वे शब्द भी टीकाकारो के हैं । और फिर हमने अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार उनको सगृहीत किया है, अपनी व्याख्या की है । और इसलिए सब लड़ाई झगडा है, सब उपद्रव है । महावीर ने मौन में क्या कहा है उसे पकडने की जरूरत है । या उन्होने जिनसे मौन से बोला जा सकता था, उन देवताओ से क्या कहा है, उसे पकडने की जरूरत है या जिनके साथ शब्द का उपयोग असम्भव था, उन पक्षियों, पौधों, पत्थरो को क्या कहा, उसे पकडना जरूरी है । और जो

मैंने पहले दिन कहा वह सब किसी गहनतम अस्तित्व की गहराइयों से सुरक्षित है। वह सब वापिस पकडा जा सकता है। सिर्फ मन की एक अवस्था में हमें उतरना पडेगा जहा हम फिर उसे पकड सकते हैं।

प्रश्नोत्तर

(२१-६-६६ प्रात)

प्रश्न : महावीर सब कुछ अपना मौलिक कहते है। वे किसी के अनुयायी नही थे। उनका अपना कुटुम्ब रहा होगा। उन्होने अपना पंथ स्वतः निर्माण किया। फिर वह पार्श्वनाथ के पंथ से कैसे मेल खा गया ? और जैन नाम का जो सम्प्रदाय महावीर के साथ जुड़ा वे कौन लोग थे और वे क्या कहलाते थे ?

उत्तर . इसमे दो तीन बाते समझने की है। पहली बात यह कि महावीर के साथ ही पहली बार विचार की एक धारा सम्प्रदाय बनी। महावीर के पहले जो विचारधारा थी उसका आर्यपरम्परा से पृथक् अस्तित्व नही था। वह आर्यपरम्परा के भीतर पैदा हुई एक धारा थी। उसका नाम 'श्रमण' था। वह जैन नही कहला रही थी तब तक। और 'श्रमण' कहलाने का कारण यह था कि ब्राह्मणधारा इस बात पर श्रद्धा नही रखती है कि श्रम, साधना और तप के माध्यम से परमात्मा को पाया जा सकता है। ब्राह्मण धारा का विश्वास है कि परमात्मा को पाया जा सकता है विनम्रभाव मे, प्रार्थना मे, शास्त्रविधि मे, दीनभाव मे, जहा हम बिल्कुल असहाय है, जहा हम कुछ भी नही कर सकते, जहा करने वाला वही है। इस पूर्ण दीनता को जीसस ने 'पावर्टी ऑफ स्पिरिट' कहा है, जहा मनुष्य कहता है कि 'मैं दीन और दरिद्र हू, मैं कर ही क्या सकता हू, मैं सिर्फ माग सकता हू, मैं अपने को हाथ जोडकर समर्पण कर सकता हू।' ऐसी एक धारा थी जो परमात्मा को या सत्य को दीन और विनम्र भाव से मागती थी। उससे ठीक भिन्न और विपरीत एक धारा चलनी शुरू हुई जिसका आधार श्रम था, प्रार्थना नही;जिस का आधार यह नही था कि हम प्रार्थना करेंगे, पूजा करेंगे और मिल जाएगा किन्तु जिसका आधार यह था कि हम श्रम करेंगे, सकल्प करेंगे, श्रम और

सकल्प से जीता जाएगा । यह आर्य जीवन-दर्शन बडी बात है । इसमे श्रमण सम्मिलित है, ब्राह्मण सम्मिलित है । महावीर पर आकर इस धारा ने अपना पृथक् अस्तित्व घोषित किया । महावीर के पहले तक वह धारा पृथक् नही है । इसीलिए आदिनाथ का नाम तो वेद मे मिल जाएगा लेकिन महावीर का नाम किसी हिन्दू ग्रन्थ मे नही मिलेगा । पहले तीर्थंकर का नाम तो वेद मे उपलब्ध होगा पूरे समादर के साथ । लेकिन महावीर का नाम उपलब्ध नही होगा । महावीर पर आकर विचार की धारा सम्प्रदाय बन गई और उसने आर्य जीवन पथ से अलग पगडडी तोड ली । तब तक वह उसी पथ पर थी । अलग चलती थी, अलग धारा थी चिन्तना की लेकिन थी उसी पथ पर । उस पथ मे भेद नही खडा हो गया था और एकदम से भेद खडा होता भी नही है । वक्त लग जाता है । जैसे जीसस पैदा हुए तो जीसस के वक्त मे ही इसकी धारा अलग नही हो गई । जीसस के मर जाने पर भी दो तीन सौ वर्ष तक यहूदी के अन्तर्गत ही जीसस के विचारक चलते रहे । लेकिन जैसे-जैसे भेद साफ होते गए और दृष्टि मे विरोध पडता गया—जीसस के तीन सौ, चार सौ, पाच सौ साल बाद—क्रिश्चियन धारा अलग खडी हो गई । जीसस तो यहूदी ही पैदा हुए और यहूदी ही मरे । जीसस ईसाई कभी नही थे । जैनो के पहले तेईस तीर्थंकर आर्य ही थे, आर्य ही पैदा हुए और आर्य ही मरे । वे जैन नही थे । लेकिन महावीर पर आकर धारा बिल्कुल पृथक् हो गई, बलशाली हो गई, उसकी अपनी दृष्टि हो गई और इसलिए फिर वह 'श्रमण' न कहलाकर जैन कहलाने लगी । 'जैन' कहलाने का और भी एक कारण था क्योकि श्रमणो की एक बडी धारा थी । सभी श्रमण 'जैन' नही हो गये । श्रम और संकल्प पर आस्था रखने वाले आजीवक भी थे, बौद्ध भी थे और दूसरे विचारक भी थे । जब महावीर ने अलग पूरा दर्शन दे दिया तब फिर इस श्रमणधारा की भी एक धारा रह गई । बौद्धधारा भी श्रमण धारा है । पर वह अलग हो गई । इसलिए फिर इसको एक नया नाम देना जरूरी हो गया । और यह महावीर के साथ जुड गया । क्योकि जैसे बुद्ध को हम कहते हैं : गौतम बुद्ध, जाग्रत पुरुष वैसे महावीर को हम कहते है महावीर जिन महावीर विजेता, जिसने जीता और पाया । असल मे जिन बहुत पुराना शब्द है । वह बुद्ध के लिए भी उपयुक्त हुआ है । जिन का मतलब जीतना ही है । लेकिन फिर भेदक रेखा खीचने के लिए जरूरी हो गया कि जब गौतम बुद्ध के अनुयायी बौद्ध कहलाने लगे तो महावीर के अनुयायी जैन

कहलाने लगे। 'जिन' और 'जैन' शब्द महावीर के साथ प्रकट हुए और दो स्थितियां हुई—एक तो आर्यमूलधारा से श्रमणधारा टूट गई और श्रमण धारा मे भी नए पथ हो गए जिनमे जैन एक पथ बना। इसलिए महावीर के पहले तीर्थंकर हिन्दू सघ के भीतर है। महावीर पहले तीर्थंकर हैं जो हिन्दू सघ के बाहर खडे होते हैं। समय लगता है किसी विचार को पूर्ण स्वतन्त्रता उपलब्ध करने मे। वह समय लगा।

दूसरी बात यह कि महावीर निश्चित ही किसी के अनुयायी नहीं है। उनका कोई गुरु नही है। पर उन्होने जो कहा, उनसे जो प्रकट हुआ, उन्होंने जो सवादित किया वह जो तेईस तीर्थंकरो के अनुयायी चले आते थे, उनसे बहुत दूर तक मेल खा गया। महावीर को चिन्ता भी नही है कि वह मेल खाए। वह मेल खा गया यह सयोग की बात है। नही मेल खाता तो कोई चिन्ता की बात न थी। वह मेल खा गया। और वे अनुयायी धीरे-धीरे महावीर के पास आ गए। और दूसरे लोग, जो पार्श्व की परम्परा के जीवित थे, महावीर के करीब आ गए। बहुत बार ऐसा होता है। ऐसा भी नहीं है कि महावीर सब वही कह रहे है जो पिछले तेईस तीर्थंकरो ने कहा हो। बहुत कुछ नया भी कह रहे है। जैसे किसी पिछले तीर्थंकर ने ब्रह्मचर्य की कोई बात नही की है। और पार्श्वनाथ का जो धर्म है वह चतुर्याम है, उसमे ब्रह्मचर्य की कोई बात नही है। महावीर पहली बार ब्रह्मचर्य की बात कर रहे है। और बहुत सी बातें है जो महावीर पहली बार कर रहे हैं। लेकिन वे बातें पिछले तेईस तीर्थंकरो के विरोध मे नही हैं, चाहे वे उनको आगे बढाती हो, कुछ जोडती हो, उनसे भिन्न हो, उनसे ज्यादा हो लेकिन उनके विरोध मे नही हैं। इसलिए स्वभावतः उस धारा से सम्बद्ध लोग महावीर के निकट इकट्ठे हो गए हैं। और महावीर जैसा बलशाली व्यक्ति किसी धारा को मिल जाए तो वह धारा अनुगृहीत ही होगी। सच तो यह है कि महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर बडे साधक थे, सिद्ध थे लेकिन जो एक दर्शन निर्मित करता है ऐसा उनमे कोई भी न था। वह महावीर ही व्यक्ति है जो उसको उपलब्ध हुआ। इसलिए चौबीसवा होते हुए भी वह करीब-करीब प्रथम हो गए। सबसे अन्तिम होते हुए भी उनकी स्थिति प्रथम हो गई। अगर आज उस विचारधारा का कुछ भी जीवन्त अश शेष है तो सारा श्रेय महावीर को उपलब्ध होता है। व्यवस्था और दर्शन बनाने वाला एक बिल्कुल अलग बात है। बहुत तरह के विचारक होते हैं। कुछ विचारक ऐसे होते हैं जो खण्ड-खण्ड मे सोचते हैं, जो कभी सारे टुकडो को इकट्ठा जोडकर

समग्र दर्शन स्थापित नहीं कर पाते । इन तेईस तीर्थंकरो की हजारो वर्षों की यात्रा मे, जो सारे खण्ड थे, उन सारे खण्डो को महावीर ने एक सम्बद्ध रूप दिया । इसलिए जैन दर्शन पैदा हो सका ।

निश्चित ही, जसा आप पूछते है, महावीर के परिवार के लोग किसी पथ को, किसी विचार को मानते रहे होगे । लेकिन कोई भी पथ और कोई भी विचार आर्य जीवन पथ के ही हिस्से थे । उनमे कोई भिन्नता नही थी । इसलिए सम्भव है कि कृष्ण का चचेरा भाई तीर्थंकर हो सके और कृष्ण हिन्दुओ के परम अवतार हो सके । इसमे कोई बाधा न थी । विचार पद्धतिया थी किन्तु वे अभी सम्प्रदाय न बन पायी थी । जैसे कि आज कोई कम्यूनिस्ट है, सोशलिस्ट है, फासिस्ट है । एक ही घर मे एक आदमी सोशलिस्ट हो सकता है, एक आदमी फासिस्ट हो सकता है, एक आदमी कम्युनिस्ट हो सकता है । लेकिन कभी ऐसा हो सकता है कि जब ये सम्प्रदाय बन जाए तो कम्युनिस्ट का बेटा कम्युनिस्ट हो, सोशलिस्ट का बटा सोशलिस्ट हो । तब विचार-पद्धतिया न रही । तब जन्म से बधे हुए सम्प्रदाय हो गए । महावीर के पहले भारत मे विचारपद्धतिया थी और आर्य जीवन दृष्टि सब को घेरती थी । उनमे वेद के क्रियाकाण्डी लोग थे और ठीक उनके विरोध मे उपनिषद् के विचारक थे । लेकिन इसमे वह कोई अलग बात नही हो जाती थी ।

अब मजा है कि वेदान्त शब्द का मतलब है कि जहा वेद का अन्त हो जाता है, सत्य का प्रारम्भ होता है । यानी वेद तक तो सत्य ही नही । जहा वेद समाप्त हुआ, वहा से सत्य शुरू होता है । अब ये वेदान्त की दृष्टि वाले लोग भी आर्य जीवन दृष्टि के हिस्से थे । उपनिषद् इतना ही विरोधी है वेद का जितना कि बौद्ध विचारक या जैन विचारक, महावीर या बुद्ध । उपनिषद् के ऋषि वेद के विरोध मे हैं और इतनी सख्त बाते कही हैं कि हैरानी होती है । ऐसी सख्त बाते कही है वैदिक क्रियाकाण्डी ब्राह्मणो के लिए उपनिषद् तक ने कि आश्चर्य होता है । लेकिन तब तक कोई सम्प्रदाय नही है । तब तक सभी एक परिवार के सभी तरह के विचारक हैं । वह सभी एक ही परिवार की शाखाए है । वह लडते भी है, झगडते भी है, विरोध भी करते है लेकिन अभी कोई जन्मत ऐसा भेद नही पड गया है कि आदमी जन्म से किसी सम्प्रदाय का हिस्सा हो गया हो । महावीर के साथ पहली दफा आर्य जीवन पद्धति मे एक अलग रास्ता टूट गया । फिर श्रमण जीवन पद्धति मे भी बुद्ध के साथ अलग रास्ता टूट गया । ऐसे ही जैसे एक वृक्ष होता है, नीचे पीड

होती है, वह तो एक ही होती है । फिर पीड एक जगह से दो शाखाओं में टूट जाती है । अब हम जो शाखाओ पर बैठे हो, पूछ सकते हैं कि पीड के समय मे हमारी शाखा कहा थी । शाखा थी ज्ञान की पर पीड़ मे इकट्ठी एक ही जगह थी ।

भारत मे जो विचार का विकास हुआ है, वह वृक्ष की भाति है । उसमे पीड तो आर्य जीवन पद्धति है । उसमे दो शाखाए टूटी हैं—एक हिन्दू एक श्रमण । श्रमण मे भी दो शाखाए टूटी है—बौद्ध और जैन । हिन्दुओ मे भी कई शाखाए टूटी है—साख्य, वैशेषिक, योग, मीमासा, वेदान्त ।

प्रश्न : पहले सम्प्रदाय जो आपने कहा वह तो महावीर के बाद का मालूम होता है ।

उत्तर : हा, हा वही तो मैं कह रहा हू ।

प्रश्न : महावीर के समय मे नहीं ?

उत्तर : नही, नही, वह महावीर के साथ ही टूट गया । अनुभव बहुत बाद मे होता है हमे । महावीर पहला सुसम्बद्ध चिन्तक है जैन तीर्थंकरो की धारा मे । महावीर के समय मे भी भारी विवाद था कि चौबीसवा तीर्थंकर कौन है ? इसके लिए गोशाल भी दावेदार था कि चौबीसवा तीर्थंकर मैं हू । क्योंकि तेईस तीर्थंकर हो गए थे और चोबीसवे की तलाश थी कि चौबीसवा कौन ? और जो भी व्यक्ति चौबीसवा सिद्ध हो सकता था वह निर्णायक होने वाला था क्योंकि वह अन्तिम होन वाला था । दूसरा, उसके वचन सदा के लिए आप्त हो जाने वाले थे क्योंकि पच्चीसवे तीर्थंकर के होने की बात नही थी । भारी विवाद था महावीर के समय मे । अजित देश कम्बली और मक्खली गोशाल दावेदार थे चौबीसवे तीर्थंकर होने के । परम्परा अपना अन्तिम सुसगति देने वाला व्यक्ति खोज रही थी । बुद्ध और महावीर के समय मे कोई आठ व्यक्ति तीर्थंकर होने के दावेदार थे । इनमे महावीर विजेता हो गए क्योंकि परम्परा ने उनमे वह सब पा लिया जो उसे पाने जैसा लगता था और वह सील-मोहर बन गई । सम्प्रदाय तो फिर धीरे-धीरे बना है । महावीर के मन मे सम्प्रदाय का सवाल ही नही था लेकिन महावीर ने जितनी सुसम्बद्ध रूप रेखा दे दी श्रमण जीवन-दृष्टि को उतनी ही वह धारा बध गई, सम्प्रदाय बन गया । सम्प्रदाय शब्द बहुत पीछे जाकर बदनाम हो गया है । गन्दगी की कोई बात न थी इसके साथ । सम्प्रदाय का मतलब इतना था कि जहा से जीवन दृष्टि

मिलती हो, जहा से मार्ग मिलता हो, जहा से प्रकाश मिलता हो वहा प्रत्येक को हक है उस प्रकाश की धारा मे बहने का और चलने का। जो सत्य दिखाई पडता है, उसे मानने का हक है प्रत्येक को। फिर महावीर की बात तो बहुत अद्भुत है। महावीर से ज्यादा गैर साम्प्रदायिक चित्त खोजना कठिन है। लेकिन सम्प्रदाय के जन्मदाता वही हैं। तो भी वे गैर साम्प्रदायिक है क्योकि शायद सारी पृथ्वी पर ऐसा दूसरा आदमी ही नही हुआ जिसके पास इतना गैर साम्प्रदायिक चित्त हो। क्योकि जो किसी की बात को सापेक्ष दृष्टि मे सोचता हो उसकी दृष्टि मे साम्प्रदायिकता नही हो सकती। बहुत बाद मे आइस्टीन ने सापेक्षवाद की बात कही है। विज्ञान के जगत मे सापेक्ष की बात आइन्स्टीन ने अब कही, धर्म के जगत मे महावीर ने अढाई हजार साल पहले कही। बहुत कठिन था उस वक्त यह कहना क्योकि उस वक्त आर्यधारा बहुत टुकडो मे टूट रही थी और प्रत्येक टुकडा पूर्ण सत्य का दावा कर रहा था। असल मे साम्प्रदायिक चित्त का मतलब यह है कि जो यह कहता हो कि सत्य यही है और कही नही। साम्प्रदायिक चित्त का मतलब है कि सत्य का ठेका मेरे पास है और किसी के पास नही। और सब असत्य है, सत्य मैं हू। ऐसा जहा आग्रह हो, वहा साम्प्रदायिक चित्त है। लेकिन जहा इतना विनम्र निवेदन हो कि मैं जो कह रहा हू वह भी सत्य हो सकता है, उससे भी सत्य तक पहुचा जा सकता है तो सम्प्रदाय निर्मित होगा पर साम्प्रदायिक चित्त नही होगा वहा। सम्प्रदाय निर्मित होगा इन अर्थो मे कि कुछ लोग जाएगे उस दिशा मे, खोज करेंगे, पाएगे, चलेंगे, अनुगृहीत होंगे उस पथ की तरफ, उस विचार की तरफ। महावीर एकदम ही गैर साम्प्रदायिक चित्त है। बहुत ही अद्भुत है उनकी दृष्टि। वह जहा बिल्कुल ही कुछ न दिखाई पडता हो वहा भी कहते है कि कुछ न कुछ होगा। चाहे दिखाई न पडता हो तो भी कुछ न कुछ सत्य होगा क्योकि पूर्ण सत्य भी नही होता, पूर्ण असत्य भी नही होता। असत्य मे भी सत्य का अश होता है, सत्य मे भी असत्य का अश होता है। वह कहते है कि इस पृथ्वी पर पूर्ण जैसी कोई चीज नही होती, सब चीजे अपूर्ण होती है। अगर कोई उनसे पूछे कि ऐसा है तो कहेगे 'हा, है।' और साथ यह भी कहेगे कि 'नही भी हो सकता है' महावीर की सापेक्षता भी एक कारण बनी महावीर के अनुयायियो की सख्या न बढने मे। क्योकि सख्या बढने मे अन्धदृढता का होना जरूरी है सख्या तब बढती है जब दावा पक्का और मजबूत हो कि जो हम कह रहे हैं, वही सही है, और जो दूसरे लोग कह रहे हैं, सब ठीक

नही। तब पागल इकट्ठे होते हैं क्योकि इस दावे मे उनको रस मालूम होता है। लेकिन एक आदमी कहे, 'यह भी सही, वह भी सही, तुम जो कहते हो वह भी ठीक, हम जो कहते है वह भी ठीक। तीसरा जो कहता है वह भी ठीक—तो ऐसे आदमी के पास पागल इकट्ठे नही हो सकते। क्योंकि वे कहेगे कि इस आदमी की बातो मे क्या मतलब है यानी यह तो सभी को ठीक कहता है। यह कहता है नास्तिक भी ठीक है, आस्तिक भी ठीक है क्योकि दोनो मे ठीक का कोई अश है। तो इसके पास पागल समूह इकट्ठा नही हो सकता। अन्धविश्वासी इकट्ठे करने हो तो दावा इतना पक्का मजबूत होना चाहिए कि उसमे सशय की जरा भी रेखा न हो। क्योकि महावीर की बातो मे सशय की रेखा मालूम पडती है, वह सशय नही है, सम्भावना है लेकिन साधारण आदमी को समझना मुश्किल होता है कि सम्भावना और सशय मे क्या फर्क है? महावीर से कोई कहे 'ईश्वर है।' तो महावीर कहेगे 'हो भी सकता है, नही भी हो सकता। किसी अर्थ मे हो सकता है, किसी अर्थ मे नही हो सकता है।' यह महावीर सिर्फ सब सत्यो की सम्भावना की बात कर रहे है। वह यह नही कह रहे कि मुझे सशय है कि ईश्वर है, या नही। वह यह नही कह रहे कि मैं सशय करता हू कि ईश्वर है, या नही। वह यह कह रहे है कि सम्भावना है ईश्वर के होने की भी, न होने की भी। अगर कोई ऐसा मानता हो कि आत्मा परम शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है तो ठीक ही कहना है। अगर कोई ऐसा मानता है कि परमात्मा कही पर बैठा हुआ हम सब को खिलौनो की तरह नचा रहा है तो ऐसा नही है। जब वह कहते है कि ईश्वर है और ईश्वर नही है—दोनो एक साथ—तो वह ईश्वर के अर्थों मे भेद करते हैं। लेकिन महावीर की इतनी सूक्ष्म दृष्टि अन्धविश्वास नही बनाई जा सकती क्योकि दूसरे को गलत एकदम मे नही कहा जा सकता। और जहा दूसरे को एकदम गलत न कहा जा सकता हो वहा अनुयायी इकट्ठे करना बहुत मुश्किल है, एकदम असम्भव है। क्योकि अनुयायी पक्का मान कर आना चाहता है। अनुयायी पूरी सुरक्षा चाहता है। मगर जब वह देखता है कि यह आदमी खुद ही सदिग्ध दिखता है, सुबह कुछ कहता है, दोपहर कुछ कहता है, साझ कुछ कहता है, कभी इसका खुद का ही ठिकाना नही हो पाया है तो हम इसके पीछे कैसे जाए? जब एक आदमी जोर से टेबिल पर घूसा मार कर कहता है कि जो मैं कहता हू, परम सत्य है और सबके सब गलत हैं तो जितने कमजोर बुद्धि के लोग है वे सब उससे एकदम प्रभावित हो जाते हैं। कमजोर बुद्धि

के लिए दावा चाहिए मजबूत। वह बुद्धिमान आदमी से चौंक जाता है। उधर अगर कोई दावे से कहे कि यही ठीक है तो बुद्धिमान आदमी जरा चौंक जाएगा कि यह आदमी कुछ गल्त होना चाहिए क्योंकि ठीक का इतना दावा बुद्धिमान आदमी नही करता। बुद्धिमान आदमी झिझक जाता है क्योंकि जिंदगी बडी जटिल है। वह इतनी सरल नही कि हमने कह दिया कि 'बस ऐसा है।' जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमे विरोधी के सच होने की भी सम्भावना बनी रहती है। इसलिए जो आदमी जितना बुद्धिमान होता चला जाता है, उतना ही उसके वक्तव्य 'स्यात्' होते चले जाते है। वह कहता है 'स्यात् ऐसा हो', फिर वह एकदम से नही कह देना 'ऐसा है ही।' लेकिन बुद्धिमान की जो यह बात है उसे समझने के लिए भी बुद्धिमान ही चाहिए। जितने ज्यादा बुद्धिहीन दावे होगे उतनी बुद्धिहीनो की संख्या ज्यादा होगी। एकदम दावा होना चाहिए आम आदमी के लिए जैसे कि एक ही अल्लाह है, और उसके सिवाय दूसरा कोई अल्लाह नही। तो फिर आदमी की समझ मे आता है कि यह पक्का जानने वाला आदमी है जो साफ दावा कर रहा है और जिसके हाथ में तलवार भी है कि अगर तुमने गल्त कहा तो हम सिद्ध कर देगे तलवार से कि तुम गल्त हो। कमजोर बुद्धि के लोगो को तलवार भी सिद्ध करती है। बुद्धिमान आदमी जिसके हाथ मे तलवार देखेगा, उसको गल्त ही मानेगा। तलवार से कही सिद्ध होता है कि क्या सही है, क्या गल्त ? दुनिया मे जितने दावेदार पैदा हुए हैं उतनी ज्यादा उन्होंने संख्या इकट्ठी कर ली है। महावीर संख्या इकट्ठी नही कर सके है। संख्या इकट्ठी करना बहुत मुश्किल था, एकदम असम्भव था। क्योंकि महावीर किसको प्रभावित करेगे ? आदमी आता है गुरु के पास इसलिए कि उसे पक्का आश्वासन मिल जाए। जो गुरु उसे कहता है कि लिख कर चिट्ठी देते हैं कि स्वर्ग मे तुम्हारी जगह निश्चित रहेगी, वह गुरु समझ मे आता है। जो गुरु कहता है कि पक्का रहा मैं तुझे बचाने वाला रहूगा, जब सब नरक मे जा रहे होगे तब मुझे जो मानता है वह बचा लिया जाएगा। तब वह मानता है कि यह आदमी ठीक है, इसके साथ चलने मे कोई अर्थ है। महावीर का कोई भी दावा नही है। इतना गैर दावेदार आदमी ही नही हुआ इस जगत मे। उसने सत्य को इतने कोनो से देखा है जितना किसी ने कभी नहीं देखा। दुनिया में तीन सम्भावनाओ की स्वीकृति महावीर के पहले से चली आती थी। जैसे कोई कहे यह घडा है। तो इस का मतलब यह था कि (१) 'घड़ा है, (२) घडा नही है, क्योंकि मिट्टी ही तो

है, और(३) घडा है भी, नही भी है। घडे के अर्थ मे घडा है, मिट्टी के अर्थ मे नही भी है'। एक आदमी कह सकता है 'यह तो मिट्टी ही है, घडा कहा ?' तो उसको गलत कैसे कहोगे ? मिट्टी ही तो है। लेकिन एक आदमी कहे कि 'नही, मिट्टी है ही नही, यह तो घडा है। क्योकि मिट्टी तो पडी है बाहर, उसमे और इसमे भेद है' तो उसे भी सही मानना पडेगा। सत्य के तीन कोण हो सकते हैं—(१) है, (२) नही है, (३) दोनो, नही भी और हैं भी। 'यह त्रिभगी महावीर के पहले भी थी। लेकिन महावीर ने इसे सप्तभगी किया है। और कहा कि तीन से काम नही चलेगा। सत्य और भी जटिल है। इसमे चार 'स्यात्' और भी जोडने पडेगे। तो बहुत ही अद्भुत बात कही लेकिन बात कठिन होती चली गई, उलझ गई और साधारण आदमी की पकड के बाहर हो गई। ये तीन बाते ही पकड के बाहर है लेकिन फिर भी समझ मे आती है। घडा सामने रखा है। कोई कहता है—घडा है। हम कहते है हा, घडा है। लेकिन, हम एकदम ऐसा नही कहते कि 'हा, घडा है।' हम कहते है,— 'स्यात् घडा है।' क्योकि दूसरी सभावना बाकी है कि कोई कहे कि मिट्टी ही है, घडा कहा, तो हम सिद्ध न कर पाएगे कि घडा कहा है। तो हम कहते है . 'स्यात् घडा है।' 'स्यात् घडा नही है', 'स्यात् घडा है भी और नही भी है।' महावीर ने इसमे चौथी भगी 'जोडी और कहा 'स्यात् अनिर्वचनीय है,' शायद कुछ ऐसा भी है जो नही कहा जा सकता यानी इतने से काम नही चलता है। मिट्टी है, घडा है, यह भी ठीक है। लेकिन कुछ बात ऐसी भी है जो नही कही जा सकती। उसे कहना मुश्किल है। क्योकि घडा अणु भी है, परमाणु भी है, इलेक्ट्रोन भी है, प्रोटोन भी है, विद्युत भी है—सब है और इस सबको इकट्ठा कहना मुश्किल है। घडा जैसी छोटी सी चीज भी इतनी ज्यादा है कि इसको अनिर्वचनीय कहना पडेगा। और एक बात तो पक्की है कि घडे मे जो है-पन है, एग्जिस्टैन्स है, जो होना है, वह तो अनिर्वचनीय है ही क्योकि 'है' की क्या परिभाषा ? क्या अर्थ ? अस्तित्व का क्या अर्थ ? घडे का भी अस्तित्व है और अस्तित्व अनिर्वचनीय है। अस्तित्व तो ब्रह्म है। महावीर ने चौथा जोडा। 'शायद घडा अनिर्वचनीय है।' पाचवा, जोडा कि 'स्यात् है और अनिर्वचनीय है।' छठवा जोडा कि 'स्यात् नही है और अनिर्वचनीय है' और सातवा जोडा कि 'स्यात् है भी, और नही भी है और अनिर्वचनीय है।' अब यह बात जटिल होती चली गई इसलिए अनुयायी खोजना मुश्किल है।

इस प्रकार सत्य को सात कोणो मे देखा जा सकता है, यह महावीर का

कहना है और बडी अद्भुत बात है। आठवें कोण से नहीं देखा जा सकता। सात अन्तिम कोण है इसलिए सप्त भग की सात दृष्टियो से सत्य को देखा जा सकता है। और जो एक ही दृष्टि का दावा करता है, वह छ अर्थों मे असत्य का दावा करता है क्योकि छः दृष्टिया वह नही कह रहा है। और जो एक ही दृष्टि को कहता है कि यही पूर्ण सत्य है वह जरा अतिशय कर रहा है, सीमा के बाहर जा रहा है। वह इतना ही कहे कि यह एक दृष्टि से सत्य है तो महावीर को किसी से झगडा ही नही। अगर वह विचार इतना रहे कि 'इस दृष्टि से मैं यह कहता हू' तो महावीर कहेगे कि 'इस दृष्टि से यह सत्य है।' लेकिन इससे उल्टा आदमी आजाए और वह कहे कि 'इस दृष्टि से मैं यह कहता हू कि वह असत्य है' तो महावीर उससे कहेगे तुम भी ठीक कहते हो—इस दृष्टि मे यह असत्य है। लेकिन तीन की दृष्टि बहुत पुरानी थी। साफ था कि तीन तरह से सोचा जा सकता है। है, नही है, दोनो है—है, नही भी है। महावीर ने उसमे चार और दृष्टिया जोड़ी। चौथी दृष्टि ही कीमती है। फिर बाकी तो उसी के ही रूपान्तरण है। वह है अनिर्वचनीय की दृष्टि कि कुछ है जो नही कहा जा सकता, कुछ है जिसे समझाया नही जा सकता, कुछ है जो अव्याप्त है, कुछ है जिसकी कोई व्याख्या नही हो सकती है, छोटे से छोटे मे और बडे से बडे मे भी है, वह है कुछ भव्य अस्तित्व जो कि बिल्कुल ही व्याख्या के बाहर है। उसकी हम क्या व्याख्या करे। अब यह मजे की बात है। उपनिषद कहते हैं ब्रह्म की व्याख्या नही हो सकती। बाइबिल कहती है ईश्वर की व्याख्या नही हो सकती। लेकिन महावीर कहते है ईश्वर ब्रह्म तो बडी बाते है, घडे की ही व्याख्या नही हो सकती। ईश्वर और ब्रह्म को तो छोड दो, घडे मे भी एक तत्त्व है ऐसा 'अस्तित्व' जो उतना ही अव्याख्येय है, जितना ब्रह्म। छोटी सी छोटी चीज मे वह मौजूद है और अनिर्वचनीय है। इसलिए वह चौथी भग जोडते हैं कि 'स्यात् अनिर्वचनीय है'। लेकिन उसमे भी वह 'स्यात्' लगाते हैं। जो खूबी है महावीर की वह बहुत अद्भुत है। वह ऐसा भी नही कहते कि 'अनिर्वचनीय है' क्योकि वह कहते है कि यह भी दावा ज्यादा हो जायगा। इसलिए ऐसा कहो 'स्यात्'। वह जो भी कहते है, 'स्यात्' पहले लगा देते हैं। लेकिन 'स्यात्' का मतलब 'शायद' नही है। शायद मे सन्देह है। महावीर जब कहते हैं कि 'स्यात्' तो उसका मतलब है: 'ऐसा भी हो सकता है,' इससे अन्यथा भी हो सकता है। 'स्यात्' शब्द मे दो बाते जुड़ी है ऐसा

है, इससे अन्यथा भी है, इसलिए कोई दावा नही है। तब है वह अनिर्वचनीय पर फिर वे तीन 'भगियों' को वापस दोहरा देते हैं। वह कहते है : है, और अनिर्वचनीय है। कोई चीज़ है और अनिर्वचनीय है। लेकिन ऐसा भी हो सकता है : कोई चीज नही है और अनिर्वचनीय है। जैसे शून्य। शून्य है तो नही। शून्य का मतलब ही है, जो नही है। लेकिन, 'शून्य' अनिर्वचनीय है। 'न होते हुए भी' वह अव्याख्येय है। और सातवा वह जोडते है : "है भी, नही भी है, और अनिर्वचनीय भी है।' यानी इन सात कोणो से सत्य को देखा जाने पर इन सातो ही कोणो मे जो व्यक्ति बिना किसी दृष्टि से बधे, देखने मे समर्थ है, वह पूरे सत्य को जानने मे समर्थ हो जाएगा लेकिन बोलने मे समर्थ नही होगा। पूरा सत्य जब भी बोला जाएगा तभी इन्ही भगियो मे बोलना पडेगा। इसलिए महावीर से आप पूछते जाए कि 'ईश्वर है।' वह सात उत्तर देते हैं। तब आप चुपचाप घर चले आते हैं कि इस आदमी से क्या लेना देना है। हम साफ उत्तर चाहते हैं, हम पूछने गए है कि 'ईश्वर है' तो हम चाहते है कि या कहे है, या कहे नही है, बात खत्म करे। आप महावीर से पूछने जाते है। वह कहते हैं "(१) स्यात्—है भी, (२) स्यात्—नही भी है, (३) स्यात् है भी, नही भी; (४) स्यात् अनिर्वचनीय है, (५) स्यात् है और अनिर्वचनीय है, (६) स्यात् नही है और अनिर्वचनीय है, (७) स्यात् है भी, नही भी है और अनिर्वचनीय भी है।' आप घर लौट आते है कि इस आदमी से कुछ लेना देना नही है क्योकि इस आदमी से हम उतने ही उलझे लौटे जितने हम गए थे। क्योकि इस आदमी से हम उत्तर लेने गए थे और इस आदमी ने उत्तर दिया है लेकिन इतना पूरा उत्तर देने की कोशिश की है कि कम बुद्धि को वह उत्तर पकड मे नही आ सकता। इसलिए महावीर का अनुगमन नही बढ सका। महावीर के अनुयायी बढे ही नही। महावीर के जीवन-काल मे जो लोग महावीर के जीवन से प्रभावित हुए थे फिर उनकी सन्तति भले ही महावीर के पीछे चलती रही अन्धे की तरह, किन्तु नए लोग नही आ सके, क्योकि महावीर जैसा व्यक्ति ही पैदा नही कर सकी वह परम्परा फिर, क्योकि उसके लिए बडा अद्भुत व्यक्ति चाहिए जो इतने भिन्न कोणो से लोगो को आकर्षित कर सके। सीधी-सीधी बात से आकर्षित करना बहुत सरल है। इतनी जटिल बात से आकर्षित करना बहुत कठिन है। इसलिए महावीर के सीधे सम्पर्क मे जो लोग आए थे, फिर उनके बच्चे ही पीछे खडे होते चले गए। मगर जन्म से कोई धर्म का सम्बन्ध नही है इसलिए 'जैन' जैसी कोई

चीज नही है दुनिया मे। वह महावीर के साथ ही खत्म हो गई। जन्म से कोई सम्बन्ध ही नही है। इसलिए इस समय पृथ्वी पर 'जैन' जैसी कोई जाति नही है। ये जो सब जन्म से जैन लोग है इनको कुछ पता ही नही है और बडे मजे की बात यह है कि यह जो जन्म से जैन हैं, ये ऐसे दावे करते हैं जो महावीर सुन ले तो बहुत हसे। इनके दावे सब ऐसे है कि जो महावीर के उल्टे है क्योकि यह कहेगे कि महावीर तीर्थंकर है। खुद महावीर कहेगा . "स्यात् हो भी सकता है, स्यात् नही भी हो सकता है।"

प्रश्न—स्यात् 'हो सके' क्या हर धर्म मे होगा यह ?

उत्तर—हा, हर धर्म मे है। जैनो मे बहुत ज्यादा। लेकिन बात इतनी जटिल है कि उसे सिर्फ जन्म से ही नही पकड़ा जा सकता किसी भी हालत मे। जैसे मैं यह मानता हू कि एक आदमी जन्म से मुसलमान हो सकता है क्योंकि बात बहुत सरल है, बहुत गहरी नही है। जन्म से कोई सूफी नही हो सकता क्योंकि बात बहुत गहरी है। सूफी मुसलमान फकीरो का ही हिस्सा है लेकिन जन्म से कोई सूफी नही हो सकता। सूफी होने के लिए तो स्वय होना ही पड़ेगा। कोई यह कहे कि 'मेरे बाप सूफी थे, इसलिए मैं सूफी हू' तो कोई नही मानेगा। मुसलमान हो सकता है। कोई दम नही है उसमे। जन्म से जैन होना बिल्कुल ही असम्भव है। कारण कि वह मामला ही सूफियों जैसा है। वह बिल्कुल साधन से उपलब्ध हो सकता है। जिन बन जाओ, तो ही जैन बन सकते हो। यानी वह जीत न लें जब तक, बनने का उपाय नही है कुछ, और बात इतनी जटिल है जिसका कोई हिसाब नही है क्योंकि जीवन ही जटिल है। महावीर कहते है कि जीवन ही इतना जटिल है कि हम उसको सरल करें तो झूठ हो जाता है। जैसे कि अरस्तू का तर्क है।

दुनिया मे दो ही तर्क है। एक अरस्तू का तर्क है, एक महावीर का। दुनिया में तीसरा तर्क नही है। दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। महावीर के तर्क को कोई मानता नही क्योंकि अरस्तू का तर्क सीधा है, यद्यपि झूठ है। और, अरस्तू का तर्क यह है कि अ अ है और 'अ' कभी 'ब' नही हो सकता। 'ब' 'ब' है। 'ब' कभी 'अ' नही हो सकता। यह अरस्तू कहता है। दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। पुरुष पुरुष है, स्त्री स्त्री है। पुरुष स्त्री नही हो सकता, स्त्री पुरुष नही हो सकती। 'काला' 'काला' है, 'सफेद' 'सफेद' है। 'सफेद' काला नही, 'काला' 'सफेद' नही। अंधेरा अंधेरा है, 'उजाला' उजाला है। ऐसा साफ है तर्क अरस्तू का। वह चीजो को तोड़कर

अलग-अलग कर देता है। तर्क का मतलब है कि सचाई पैदा हो। महावीर कहते हैं : 'अ' 'अ' भी हो सकता है, 'अ' 'ब' भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि 'अ' भी न हो, 'ब' भी न हो। और 'अ' अनिर्वचनीय है। महावीर कहते है 'स्त्री' स्त्री भी है, 'पुरुष' भी है। 'पुरुष' 'पुरुष' भी है, 'स्त्री' भी है। पुरुष 'स्त्री' भी हो सकती है। स्त्री पुरुष भी हो सकता है और अनिर्वचनीय भी है। हो भी सकते है, नही भी हो सकते है। इस तर्क को समझना बहुत मुश्किल मामला है। लेकिन सच महावीर ही है। जिन्दगी इतनी सरल नही जैसा अरस्तू समझता है। जिन्दगी मे न कोई चीज काली है, न सफेद। काले और सफेद का भेद काफी नही है। कोई स्थान ऐसा नही है जो बिल्कुल अधेरा है। और कोई स्थान ऐसा नही है जो बिल्कुल प्रकाशित है। असल मे गहरे प्रकाश मे भी अधकार की मौजूदगी है और अधकार से अधकार जगह म भी प्रकाश की मौजूदगी है। ठीक तोडा नही जा सकता। जिन्दगी बिल्कुल घुली-मिली है। कौन-सी चीज ऐसी है जो बिल्कुल ठडी है और गरम नही है। और कौन सी चीज ऐसी है जो बिल्कुल गरम है और ठडी नही है। बिल्कुल सापेक्ष बाते है। ऐसा कुछ भी नही है साफ टूटा हुआ। तो महावीर कहते है कि जिन्दगी बिल्कुल जुडी हुई है—एकदम जुडी हुई है। एक पैर जिन्दगी है और दूसरा पैर मौत है और दोनो साथ-साथ चल रहे है। ऐसा नही है कि एक आदमी जिन्दा है और एक आदमी मरा है। मरना और जीना बिल्कुल साथ-साथ चलता है। अधेरा और प्रकाश बिल्कुल एक ही चीज के हिस्से है। अरस्तू के तर्क से गणित निकलता है क्योंकि गणित सफाई चाहता है कि दो-दो चार होने चाहिए। महावीर के गणित से दो-दो चार नहीं होते, कभी पाच भी हो सकते है, कभी तीन भी हो सकते हैं। ऐसा पक्का नही कि दो-दो चार ही होंगे। जिन्दगी इतनी तरल है, इतनी ठोस नही है। ऐसी मुर्दा भी नही है तो वहा दो-दो कभी पाच भी हो जाते है, कभी दो और दो तीन भी रह जाते है। तो महावीर के तर्क से निकलता है रहस्य। और अरस्तू के तर्क से निकलती है गणित। क्योंकि रहस्य का मतलब यह है कि जहा हम साफ-साफ न बाट सके कि ऐसा है। महावीर की इस गहरी दृष्टि मे उतरने के लिए केवल उसी के घर मे जन्म लेना बिल्कुल ही व्यर्थ है। उससे कोई मतलब ही नही जुडता है। इतनी गहरी दृष्टि के लिए तो इतनी गहरी दृष्टि मे उतरने की ही जरूरत है। कोई उतरे तो ही ख्याल मे आ सके। महावीर के पीछे जो वर्ग खडा

हुआ है, महावीर के सीधे सम्पर्क मे जो लोग आए थे, वे लोग महावीर से प्रभावित हुए होगे। अब उनके बच्चो और उनके बच्चो के बच्चो का कोई सम्बन्ध नही है इस बात से और इसलिए वे यह भी भूल जाते हैं कि वे क्या कह रहे है। जैसे कि अगर कोई जैन मुनि कहता है कि जैन दर्शन ही सत्य है तो वह भूल रहा है। उसे पता ही नही है कि यह तो महावीर कभी नही कहते। यानी अगर कोई जैन अनुयायी यह कहता है कि महावीर जो कहते है, वही ठीक है, तो उसे पता नही कि खुद महावीर इसमे इन्कार कर देगे। यानी इतना अद्भुत मामला है कि कोई अगर महावीर से यह भी पूछे कि जिस स्याद्वाद की आप बात कर रहे है, क्या वह पूर्ण सत्य है। तो वे कहेगे . 'स्यात्'। इसमे भी वह 'स्यात' का ही उपयोग करेगे। वह यह नही कहेगे कि जो स्याद्वाद (थ्यूरी आफ प्रोबेबिलेटी) मैने कहा वही एकमात्र सत्य है। हर चीजों के सात कोण हैं और उन्हे सात तरह से देखा जा सकता है। कोई अगर पूछे कि यह परम सत्य है तो महावीर कहेगे . "'स्यात्'' हो भी सकता है, नही भी हो सकता है। अनिर्वचनीय है।" यह जो जटिलता है, इसकी वजह से अनुयायी का आना बहुत कठिन हो गया है।

फिर, महावीर की और भी बाते हैं जो अनुयायी के आने मे एकदम बाधक है। जैसे महावीर नही कहते कि मैं तुम्हारा कल्याण कर सकूगा। वह कहते है तुम ही अपना कल्याण कर लो तो काफी है, मैं कैसे कर सकूगा? कोई किसी का कल्याण नही कर सकता। अपना कल्याण आप ही करना होगा। अनुयायी आता है इसलिए कि कोई उसका कल्याण कर दे। तो जब कोई कहता है कि 'मेरी शरण मे आ जाओ, मैं तुम्हे मोक्ष मे पहुचा दूगा तो अनुयायी आता है। मगर महावीर कहते हैं कि "मेरी शरण से तुम मोक्ष मे नही पहुच सकोगे। कोई किसी की शरण से कभी मोक्ष मे नही पहुचा है।" हम पूछते हैं तो कौन इसके पास आए—प्रयोजन क्या है? स्वार्थ क्या है? लाभ क्या है? हित कैसे सिद्ध होगा? यह आदमी कैसा है कि अपने सिवाय और किसी का हित सिद्ध नही कर सकता है? महावीर ने गुरु नही बनाया, यह बडी मूल्यवान बात है। महावीर खुद भी किसी के गुरु बनना नही चाहते। गुरु का कोई प्रयोजन नही है। महावीर की दृष्टि ज्यादा से ज्यादा कल्याण मित्र बनने की है। बस इससे ज्यादा कोई किसी का गुरु नही बन सकता क्योकि गुरु चलता है आगे, शिष्य चलता है

पीछे, मित्र चलता है साथ। यानी ज्यादा से ज्यादा तुम मेरे साथ चल सकते हो। मैं तुम्हारे आगे नही चल सकता, तुम मेरे पीछे नही चल सकते। और यह अपमान भी कोई किसी का कैसे करे कि किसी को पीछे चलाना।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन मे एक बहुत अद्भुत कहानी है। उन्हे गाव के कुछ लडको ने आकर कहा कि हमने स्कूल मे आपका प्रवचन करवाना है, आप चले। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा हम बिल्कुल तैयार है। वे अपने गधे पर चढकर चलने को तैयार हुए तो लडके बडे हैरान हुए कि मुल्ला गधे पर उल्टा बैठ गया कि गधे का मुह इस तरफ और मुल्ला का मुह उस तरफ और पीछे लडको को कर लिया। रास्ते मे सब दुकानो के लोग झाक-झाक कर देखने लगे कि मुल्ला का दिमाग खराब हो गया है क्योकि वह गधे पर उल्टा बैठा हुआ है। लडके भी बडे पशोपेश मे पडने लगे क्योकि उसके साथ वे भी बुद्धू बन रहे है। तो एक लडके ने कहा कि मुल्ला, अगर सीधे बैठ जाओगे तो बडा अच्छा होगा क्योकि आगे बडा बाजार आता है। सब लोग देखेगे और हम भी आपके साथ मुश्किल मे पड गए है। मुल्ला ने कहा कि तुम समझते नही हो। कारण है इसका। अगर मैं तुम्हारे तरफ पीठ करके बैठू तो तुम्हारा अपमान हो जाएगा। और अगर तुम मेरे आगे चलो तो तुम्हे सकोच लगेगा कि वृद्ध के आगे कैसे चले। तो फिर मैने सोचा यही तरकीब उचित है कि मैं गधे पर उल्टा बैठ जाऊ। आमने-सामने होना अच्छा है। कोई किसी का अपमान नही करेगा। यह जो मुल्ला है, यह बहुत अद्भुत आदमी है। इसकी छोटी से छोटी मजाक मे भी बड़े गहरे सत्य है। जैसे वह बहुत सीधा मजाक कर रहा है। लेकिन वह यह कह रहा है कि जो तुम्हारे आगे चलता है वह भी अपमान करता है और अगर तुम आगे चलते हो तो तुम उसका अपमान करते हो।

महावीर को बिल्कुल पसद नही है। न तो अपने आगे किसी को रखना पसद है, इसलिए कोई गुरु नही बनाया, न अपने पीछे किसी को रखना पसद है, इसलिए किसी को अनुयायी नही बनाया। वह कहते है, कोई किसी का कल्याण नही कर सकता, कोई किसी को स्वर्ग नही ले जा सकता; कोई किसी का मुक्तिदाता नही है। प्रत्येक को स्वय होना पडेगा। इसलिए अनुयायी होने के सारे रास्ते तोडे जा रहे हैं। वे साथ हो सकते हैं। अनुगमन नही हो सकता, सहगमन हो सकता है। इसलिए जो महावीर का अनुयायी है वह

तो समझ ही नही पाएगा क्योंकि अनुयायी होकर ही उसने सब गल्ती कर दी है। और महावीर के साथ होना बडी हिम्मत की बात है। पीछे होना बडी सरल बात है। साथ होने का मतलब है उन सबसे गुजरना पडेगा जिनसे महावीर गुजरते हैं। हम पीछे ही होना चाहते है। इसमे कुछ नही करना पडता। महावीर को चलना पडता है, हम पीछे होते है। और पीछे होने की वजह से हम पर कभी कोई इलजाम भी नही हो सकता क्योंकि हम सिर्फ अनुयायी है।

इसलिए महावीर के आस-पास बडी सख्या उपस्थित नही हो सकी। छोटी सख्या उपस्थित हुई और वह निरन्तर छोटी होती चली गई। और अब करीब-करीब शाखा सूख गई है। अब उसमे कोई प्राण नही रहा है। जैसे बहुत दिन तक, पत्ते गिर जाते है, शाखा सूख जाती है फिर भी वृक्ष खडा रहता है—ऐसा हो गया है। फिर से फूट सकता है यदि महावीर को ठीक से समझा जा सके। फिर इसमें नए अकुर आ सकते हैं। और मैं मानता हू कि नए अकुर आने चाहिए। मैं किसी का अनुयायी नही, फिर भी चाहता हू कि इस शाखा में नए अकुर आने चाहिए। जैसे मैं चाहता हू कि लाओत्से की शाखा मे नए अकुर आए, जीसस की शाखा मे आए क्योंकि यह सब वृक्ष बडे अद्भुत थे और इन सब वृक्षों के पीछे, नीचे न जाने कितने लोगों को छाया मिल सकती है। ये सूख जाते है तो वह छाया मिलनी बद हो जाती है। लेकिन मजा यह है कि जो इन वृक्षो के नीचे ठहर गए है, वही इनको सुखाने के कारण बने है। क्योंकि वे पानी नही देते वृक्ष को, पूजा करते है। और पूजा से कही वृक्ष बढते है कभी ? पूजा से वृक्ष सूखते हैं। पानी देने से वृक्ष बढते है। पानी वे देते नही। सब वृक्ष सूख गए है। चूकि इस प्रसग मे महावीर की बात चलती है इसलिए मैं कहता हू कि कोई 'जैन' नही है। एक सूखा हुआ वृक्ष है, एक स्मृति मे। उसके नीचे खडे हुए लोग हैं जो पूजा कर रहे हैं। और वे जो भी कर रहे है उसका महावीर से कोई ताल-मेल नही है क्योकि महावीर जैसे व्यक्ति से ताल-मेल बिठाना बहुत मुश्किल बात है। और अगर महावीर की 'स्यात् की दृष्टि' को हम समझ ले और अगर इसको ठीक से प्रकट किया जा सके तो भविष्य मे महावीर के वृक्ष के नीचे बहुत से लोगो को छाया मिल सकती है। क्योंकि 'स्यात्' की भाषा रोज-रोज महत्वपूर्ण होती चली जाएगी। विज्ञान ने उसे एकदम स्वीकार कर लिया है। आइस्टीन की स्वीकृति बहुत अद्भुत है। और इतने अद्भुत

मामलो में स्वीकार किया है कि हमारी कल्पना के बाहर है। जैसे अब तक समझा जाता था कि जो अणु है, जो अन्तिम अणु है, परमाणु है वह एक बिन्दु है जिसमे लम्बाई-चौडाई नही। लेकिन प्रयोगो से पता चला है कि कभी तो वह अणु बिन्दु की तरह व्यवहार करता है और कभी वह लहर की तरह व्यवहार करता है। तो बडी मुश्किल हो गई। उसका क्या कहे हम ? स्यात् अणु है, स्यात् लहर है तो एक नया शब्द बनाना पडा 'क्वाण्टा'। अर्थात् जो दोनो है—बिन्दु भी और लहर भी। यह हो नही सकता। अगर हम कहे कि एक चीज 'बिन्दु' भी है और लकीर भी तो व्यामोह हो जाएगा। तुम क्या कह रहे हो ? 'बिन्दु' बिन्दु होता है, 'लकीर' लकीर होती है। 'बिन्दु' लकीर कैसे हो सकती है ? 'लकीर' बिन्दु कैसे हो सकती है ? लेकिन, 'क्वाण्टा' का मतलब है कि जो परम अणु है, वह बिन्दु भी है, लकीर भी है। वह कण भी है, लहर भी है। यह दोनो बाते कैसे हो सकती है ? कण कैसे लहर हो सकता है और लहर कैसे कण हो सकती है। लेकिन, आइस्टीन ने कहा कि दोनो सम्भावनाए एक साथ है। इसलिए ऐसा मत कहो कि बिन्दु ही है, कण ही है। ऐसा कहो "स्यात् बिन्दु है, स्यात् लहर है।" आइस्टीन ने ग्लिटिविटी को इतना स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि सब चीजे डगमगा गई है। जो कल तक निरपेक्ष सत्य का दावा करती थी, वह सब डगमगा गई है। विज्ञान अब सापेक्ष के भवन पर खडा हो गया है। और इसलिए मैं कहता हू कि महावीर की 'स्यात्' की भाषा को अगर प्रकट किया जा सके तो भविष्य मे महावीर ने जो कहा है, वह परम सार्थकता ले लेगा जो उसने कभी नही ली थी। यानी आने वाले पाच सौ, हजार वर्षों मे महावीर की विचार दृष्टि बहुत ही प्रभावी हो सकती है लेकिन उसके 'स्यात्' को प्रकट करना पडेगा तब जैन ही खुद डरेगा क्योकि अनुयायी हमेशा 'स्यात्' से डरता है क्योकि 'स्यात्' शब्द डगमगा देता है। यानी उसका मतलब यह हुआ कि मधुशाला के लिए अगर कोई पूछे कि मधुशाला बुरी है और कहना पडे कि 'स्यात् बुरी है, स्यात् अच्छी है।' जाने वाले पर निर्भर है कि वह क्या करता है। कोई पूछे, "मन्दिर अच्छा है।' तो कहना पडे 'स्यात् अच्छा है, स्यात् बुरा है।' जाने वाले पर निर्भर करता है कि वह मन्दिर मे क्या करता है।

महावीर तो ऐसा बोलेगे लेकिन अनुयायी ऐसा कैसे बोले। वह तो मधुशाला और मन्दिर मे फर्क करेगा और उसे तो पक्का कहना पडेगा कि

मधुशाला बुरी है और मन्दिर अच्छा है। लेकिन तब वह 'स्यात्' से मुक्त हो गया और निश्चय पर आ गया, और बात खत्म हो गई। महावीर के साथ चलना मुश्किल है। और इसलिए अनुयायी खडे हो जाते है। और अनुयायी कभी भी किसी अर्थ के नही होते।

प्रश्न : जो कुछ आपने आज तक कहा वह सब एक ही प्रश्न को विशेष रूप से जन्म देता है। वह प्रश्न है : क्या आप जो कुछ कह रहे हैं, वह जैन परिभाषा में सम्यक् दर्शन के नाम से कहा गया है और आप आन्तरिक विवेक और जागरूकता पर पूरा बल दे रहे हैं? पर एक सम्यक चारित्र भी उसका अंग है और वह चारित्र बाह्य रूप में भी प्रकट होता है, चाहे वह आता दर्शन में से ही है, पर उसका स्वयं का स्वरूप कुछ बाह्य मे भी होता है। जैसे आप अगर अपरिग्रह को लें तो एक असम्पत्ति का भाव उसका मूल है, मूर्च्छा का अभाव उसका मूल है। पर बाह्य मे वह, बाह्य पदार्थों की सीमा बधती चली जाए, इस रूप में प्रकट होना ही चाहिए। ऐसी जैन दर्शन की मुझे भावना लगती है। इसी आधार पर तो अणुव्रत और महाव्रत का भेद हुआ। आज मेरी मूर्च्छा टूट गई पर सब पदार्थ मुझसे आज ही छूट नहीं जाते अचानक, क्योंकि मेरी आवश्यकताए धीरे-धीरे ही छूटने वाली हैं। वही आज आचरण के रूप मे अणुव्रत से प्रारम्भ होगा, कल महाव्रत में समाप्त होगा। आज अगर यह भेद ही न मानें, केवल मूर्च्छा टूटना ही अगर ग्रहण कर लें तो अणुव्रत महाव्रत का कोई भेद, कोई क्रम नही रहेगा। और चारित्र नहीं केवल दर्शन ही रह जाएगा?

उत्तर : इसमे भी दो तीन बाते समझनी चाहिए। एक तो अणुव्रत से कोई कभी महाव्रत तक नही जाता। महाव्रत की उपलब्धि से अनेक अणुव्रत पैदा होते हैं।

प्रश्न—(दोनों शब्दों का अर्थ)?

उत्तर : हा, मैं बताता हू। महाव्रत का अर्थ है जैसे पूर्ण अहिसा। पूरे अहिंसक ढग से जीने का अर्थ है महाव्रत—पूर्ण अपरिग्रह, पूर्ण अनासक्ति। अणुव्रत का मतलब है जितनी सामर्थ्य हो। एक आदमी कहता है कि मैं पाच रुपये का परिग्रह रखूगा। यह अणुव्रत है। एक आदमी कहता है : मै नग्न रहूगा। यह महाव्रत है। साधारणत ऐसा समझा जाता है कि अणुव्रत से महाव्रत की यात्रा होती है कि पहले पाच रुपए का रखो, फिर चार का, फिर तीन का, फिर दो का, फिर एक का। फिर बिल्कुल मत रखो। साधारणतः ऐसा समझा

जाता है। हम छोटे-से छोटे का अभ्यास करते-करते बडे की तरफ जाएगे किन्तु यह बात ही गलत है। हो सकता है कि एक आदमी दस रुपए की जगह पाच रुपए का रखने का अभ्यास करे। यह अभ्यास होगा। मूर्च्छा नही टूटेगी। क्योकि अगर मूर्च्छा टूट गई होती तो महाव्रत उपलब्ध होता। मूर्च्छा के टूटते ही महाव्रत उपलब्ध होता है। महाव्रत का जीवन व्यवहार मे अणुव्रत दिखाई पड सकता है। लेकिन मूर्च्छा टूटते ही अणुव्रत उपलब्ध नही होता, महाव्रत उपलब्ध होता है। और अगर एक आदमी के पास दस रुपए थे और उसने अभ्यास कर पाच का अणुव्रत साध लिया, कल अभ्यास करके चार का साध लिया, परसो तीन का, फिर दो का, फिर एक का और आखिर मे उसने अपरिग्रह भी साध लिया तो भी मूर्च्छा नही टूट सकती क्योकि हमे साधना उसे पडता है जिसकी हमारी मूर्च्छा नही टूटती है। जिसकी मूर्च्छा टूट जाती है वह साधना नही पडता है। वह सहज आता है। मूर्च्छा टूटी या नही, इसका एक ही सबूत है कि जो आपमे हो रहा है साधना पडा है, या कि आया है। अगर आया है तो मूर्च्छा टूटी और अगर साधना पडा तो मूर्च्छा नही टूटी क्योकि साधना उसके खिलाफ करनी पडती है, अपने ही मन के खिलाफ। मेरा मन कहता है कि मैं दस रुपये रखू। मेरा व्रत कहता है कि मै पाच रुपये रखू। तो मै लडता किससे हू? अपने मन से लडता हू जो कहता है दस रखो। मन तो दस का है, और व्रत पाच का है। तो मै लडता अपने से हू। मूर्च्छा टूट जाए तो मन ही टूट जाता है। दस का नही, पाच का नही, दो का नही, एक का नही। मन परिग्रह का ही टूट जाता है। उस हालत मे भी वह पाच रुपए रख सकता है। लेकिन तब वह सिर्फ जरूरत होगी उसकी मूर्च्छा नही क्योकि जीवन-व्यवहार मे, जीवन मे जहा हम जी रहे है, मूर्च्छा टूट जाने पर भी एक आदमी मकान मे सो सकता है। लेकिन मकान उसका परिग्रह नही है। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह नही कि चीजे हट जाएगी। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह है कि चीजो से जो हमारा लगाव है वह छूट जाएगा। एक आदमी मकान मे सो रहा है। यह मकान 'मेरा' है। मूर्च्छा इस 'मेरे' मे है। मूर्च्छा मकान मे सोने मे नही है। तुम्हारे खीसे मे पाच रुपए है, इसमे मूर्च्छा नही है।

मैने सुना है एक नदी के किनारे दो फकीर है। उनमे विवाद हो रहा है। एक फकीर कहता है कुछ भी रखना ठीक नही है। वह एक पैसा भी पास नही रखता है। दूसरा फकीर कहता है 'कुछ न कुछ पास होना जरूरी है।' नही तो बडी मुश्किल पड जाएगी।' फिर वे दोनो नदी के तट पर

आए। सांझ हो गई है, सूरज ढल रहा है। नाव वाला है। नाव वाला उनसे कहता है: एक रुपया लेंगे हम पार कर देंगे। नहीं, अब मैं जाता नही। मेरा गांव इसी तरफ है। मैं नाव बांधकर अब घर जा रहा हू। अब रात हो गई। दिन भर काम से थक गया हू। उन फकीरो को उस तरफ जाना जरूरी है। उस तरफ लोग प्रतीक्षा करते होंगे, हैरान होंगे। इस तरफ घना जगल है, कहां पड़े रहेंगे। वह फकीर एक रुपया निकालता है जो कहता है : कुछ रखना जरूरी है। एक रुपया देता है। नाव मे दोनो सवार होकर उस तरफ पहुच जाते है। वह फकीर कूदता है कि देखो मैंने कहा था कुछ रखना जरूरी है। नही तो हम उसी पार रह गए होते। वह जो फकीर कहता था कुछ भी रखना जरूरी नही, छोडना जरूरी है वह कहता है कि तुम रखने की वजह से इस पार नही पहुचे। तुम एक रुपया छोड सके, इसलिए पार पहुचे सिर्फ रखने से इस पार नही पहुचे। फिर विवाद शुरू हो जाता है। बडी मुश्किल हो गई। जिसने एक रुपया दिया था उसने सोचा था, विवाद जीत गए। उस पार नदी के फिर विवाद चलने लगा है और इस बात का कोई अन्त नहीं हो सकता क्योंकि दूसरा फकीर यही कहता है कि हम इस पार आए ही इसलिए कि तुम एक रुपया छोड सके। छोड़ने से हम इस पार आए। वह फकीर कहता है हम आते ही नही अगर एक रुपया हमारे पास न होता। और मेरा मानना यह है कि कोई तीसरे फकीर की वहा जरूरत है जो कहे कि हा, हो तभी छोडा जा सकता है, न हो तो छोडा भी नही जा सकता। इसलिए मैं कहता हूं कि चीजें हो और तुममे सतत छोडने की सामर्थ्य हो। बस इतनी ही बात है। चीजें न हो, यह सवाल नही है। सवाल यह है कि तुम मे सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो।

एक सम्राट एक संन्यासी से बहुत प्रभावित था। सन्यासी नग्न पड़ा रहता था एक नीम वृक्ष के नीचे। उस सम्राट पर असर बढता गया और एक दिन उसने कहा : यहा नही, मेरे पास इतने बडे महल हैं, आप वहा चलें। सोचा था उसने कि सन्यासी इन्कार करेगा कि महल मे नही जा सकता, मैं अपरिग्रही हू। संन्यासी ने कहा : जैसी आपकी मर्जी। वह डंडा उठाकर खड़ा हो गया। सम्राट के मन मे बड़ी मुश्किल हुई। सोचा था कि अपरिग्रही है, इन्कार करेगा। सम्राट को बड़ी शंका आने लगी मन में, सन्देह आने लगा कि कुछ भूल हो गई मुझसे। आदमी, दिखता है, कि महल की प्रतीक्षा ही कर रहा है। सिर्फ नीम के नीचे शायद इसीलिए पड़ा हो कि कोई महल मे ले जाने वाला मिल जाए। इसलिए एक दफा इन्कार भी नही किया। यह कैसा अपरिग्रही है? अपरिग्रही

को तो कहना चाहिए कभी नही जा सकता महल मे। महल ? पाप है। वहा मैं कैसे जा सकता हू ? फिर भी, सम्राट ने कहा, देखे, कोशिश करे, जांच-पडताल करे। तो जो उसका अपना कमरा था, जहां बहुमूल्य सामान था, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गद्दिया थी, मखमले थी, कीमती कालीन थी, उसने कहा कि आप तो यहां ठहर सकेंगे न ? उसने कहा बिल्कुल मजे से। वह जैसा नीम के नीचे सोया था, वैसे ही मखमली गद्दे पर सो गया। सम्राट ने अपना सिर ठोका और कहा कुछ गल्ती एकदम हो गई है। हम एकदम गलत आदमी को ले आए हैं क्योंकि परिग्रही को अपरिग्रही तब समझ मे आता है जब वह परिग्रह की दुश्मनी मे हो। परिग्रही को, जिसको चीजो से पकड है, सिर्फ वही समझ मे आता है जो चीजो को पकडने से ऐसा डर कर हाथ फैला दे कि 'नही' मैं छू नही सकता। ये चीजे पाप है। जिसको रुपए से मोह है, वह रुपए लात मारने वाले को ही आदर देता है। परिग्रही सिर्फ उसको ही समझ सकता है जो ठीक उससे उल्टा करे। सम्राट् बहुत मुश्किल मे पड गया। वह फकीर ऐसे रहने लगा जैसे सम्राट रहता है। छ महीने बीत गए तो एक सुबह अपने बगीचे मे टहलते हुए सम्राट ने उससे पूछा कि अब तो मुझ मे और आप मे कोई भेद नही मालूम पडता। बल्कि शायद आप ही ज्यादा सम्राट है। मुझे चिन्ता, फिक्र और सब इन्तजाम भी करना पडता है। तब तो एक फर्क था जब आप नीम के नीचे पडे थे, मै सम्राट था। क्या मैं पूछ सकता हू कि कोई फर्क बाकी है। सन्यासी ने कहा 'फर्क पूछते हो। चलो, थोडा आगे चले चले, थोडा आगे बताएंगे।' बगीचा पार हो गया। गाव निकल गया। सम्राट ने कहा : बता दे। उसने कहा थोडा और आगे चले। गाव की नदी आ गई। वे नदी के पार हो गए। सम्राट ने कहा, 'कब बताएगे। धूप चढी जाती है।' उसने कहा 'चले चलो अभी, अपने आप पता चल जाएगा।' सम्राट ने कहा · 'क्या मतलब'। फकीर ने कहा अब मै लौटूगा नही। अब तुम चले ही चलो मेरे साथ। सम्राट ने कहा "मैं कैसे चल सकता हू ! मेरा मकान, मेरा राज्य !" उस फकीर ने कहा तो तुम लौट जाओ। लेकिन अब हम जाते है। अगर फर्क दिख जाए तो दिख जाए। मगर यह मत समझना कि हम कोई तुम्हारे महल से डर गए। तुम अगर कहो कि 'लौट चलो' तो हम लौट जाए। लेकिन तुम्हारी शका फिर पैदा हो जाएगी। इसलिए अब हम जाते हैं। अब तुम अपना महल सभालो। इसमे फर्क तुम्हे दिखता है कि हम जा सकते हैं किसी भी क्षण। अपरिग्रह का मतलब यह नही है कि चीजें न हो। क्योंकि

चीजें न होने पर जो जोर है, वह चीजें होने पर जो जोर था उसका ही प्रतिरूप है। चीजें हों या न हों यह सवाल नही है अपरिग्रह का। अपरिग्रह का सवाल है कि व्यक्ति चीजो के सदा बाहर है। उसके भीतर कोई चीज नही है। उस फकीर ने कहा कि हम तुम्हारे महल में थे लेकिन तुम्हारा महल हम मे नही है। बस इतना ही फर्क है। तुम महल मे कम हो, महल तुममे ज्यादा है। हम छोड़ कर कही भी जा सकते है। हमारे भीतर नही है कोई मामला। हम उसके भीतर से निकल सकते हैं। कोई महल हमको पकड नही सकता और जैसे हम नीम के नीचे सोते थे वैसे तुम्हारे महल मे भी सोए। वही आदमी है, वैसे ही सोया है। तो महाव्रत से अणुव्रत फलित हो सकते हैं लेकिन अणुव्रतो के जोर से कभी महाव्रत नही निकलता है क्योकि अणुव्रत की कोशिश मूर्च्छित चित्त की कोशिश है। और महाव्रत की तुम कोशिश ही नही कर सकते। वह तो अमूर्च्छा लाओ तभी उपलब्ध होगा। महाव्रत अभ्यास से नही आ सकता। तुम्हारी मूर्च्छा टूट जाए तभी फलित होता है, तुम्हारा चित्त महाव्रती हो जाता है। लेकिन जीवन मे हजार तरह से अणुओ मे प्रकट होगा वह महाव्रत—हजार-हजार अणुओ मे। लेकिन जिसको हम साधक कहते है आम तौर पर वह अणुव्रत से चलता है महाव्रत तक पहुचने की कोशिश मे। मगर वह कभी नही पहुच पाता। वह अणुओ के जोड़ पर पहुच जाएगा, महाव्रत पर नही। महाव्रत अणुओं का जोड़ नही है। महाव्रत विस्फोट है और जब चेतना पूरी की पूरी विस्फोट होती है तब उपलब्ध होता है। महावीर महाव्रती है। जीवन तो अणुव्रती होगा क्योकि कही जाकर भिक्षा माग लेंगे। विश्राम के लिए किसी छाया के तले रुकेंगे, फिर चलेंगे, फिरेंगे, बात करेंगे। इस सब में अणु होगे लेकिन भीतर जो विस्फोट हो गया, वहा महान् होगा। फिर जो दूसरी बात पूछी गई वह इसी से सम्बन्धित है। तीन शब्द हैं महावीर के . सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र। लेकिन अनुयायियो ने बिल्कुल उल्टा किया हुआ है। वे कहते हैं सम्यक् चारित्र, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन। वे कहते हैं पहले चारित्र साधो, फिर ज्ञान स्थिर होगा। जब ज्ञान स्थिर होगा तब दर्शन होगा। पहले चारित्र को बनाओ, जब चारित्र शुद्ध होगा तो मन स्थिर होगा, स्थिर मन से ज्ञान होगा। जानोगे तुम, जानने से दर्शन उपलब्ध होगा तो मुक्त हो जाओगे। स्थिति बिल्कुल उल्टी है। सम्यक् दर्शन पहले है। जिसका हमें दर्शन होता है, उसका हमे ज्ञान होता है। दर्शन है शुद्ध दृष्टि। जैसा तुम एक फूल के पास से निकले, और तुम खड़े हो गए और तुम्हे दर्शन

हुआ फूल का, अभी ज्ञान नही हुआ। जब दर्शन को तुम समझने की कोशिश करोगे तुम कहोगे गुलाब का फूल है 'बड़ा सुन्दर है। यह ज्ञान हुआ। जब दर्शन को तुम बाधते हो तब वह ज्ञान बन जाता है। और फिर तुमने फूल तोड़ा और उसकी सुगध ली। यह चारित्र हुआ। दर्शन जब बधता है तब ज्ञान बन जाता है। ज्ञान जब प्रकट होता है तब चारित्र हो जाता है। चारित्र अन्तिम है—प्रथम नही। दर्शन प्रथम है। जीवन का सत्य क्या है इसका दर्शन चाहिए। वह ध्यान से होगा, समाधि से होगा। इसलिए साधना ध्यान और समाधि की है। दर्शन उसका फल है। जब दर्शन हो जाएगा और तुम सचेत हो जाओगे दर्शन के प्रति तब ज्ञान निर्मित होगा। जब तुम उससे अन्यथा आचरण नही कर सकते हो तब तुम्हारा आचरण सम्यक् हो जाएगा।

प्रश्न : वह आचरण किस रूप में होगा ?

उत्तर : वह कई रूपो मे हो सकता है क्योकि आचरण बहुत सी चीजो पर निर्भर है। वह सिर्फ तुम पर निर्भर नही है। जीसस मे एक तरह का होगा, कृष्ण मे एक तरह का होगा, महावीर मे एक तरह का होगा। दर्शन बिल्कुल एक होगा। ज्ञान मे भेद पड जाएगा क्योंकि उस दर्शन को ज्ञान बनाने वाला प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है। जगत के जितने अनुभूति-उपलब्ध व्यक्ति है सबका दर्शन एक है। लेकिन ज्ञान सब का अलग होगा। मतलब यह कि उनकी भाषा, उनके सोचने का ढग, उनकी शब्दावली, वह सबकी सब ज्ञान बनेगी। फिर ज्ञान आचरण बनेगा। आचरण भी भिन्न होगा। जैसे समझ ले कि अगर आज महावीर न्यूयार्क मे पैदा हो तो वह नगे नही खडे होगे क्योकि न्यूयार्क मे नगे खडा होने का एक ही परिणाम होगा कि पागल खाने मे बद करके उनका इलाज किया जाए। इस स्थिति मे उनका आचरण नग्न होने का नही होगा। जिस स्थिति मे वे भारत मे थे, उस दिन नग्नता पागलपन का पर्याय नही थी, सन्यास का पर्याय थी।

प्रश्न : उत्तरी ध्रुव मे वह मांस भी खा सकते हैं, अगर ऐसा हो ?

उत्तर : सम्भव है। लेकिन मैंने कल रात जो बात कही अगर आपने सुनी है तो वह उत्तरी ध्रुव मे मास नही खाएंगे—अगर उन्हें मूक जगत से सम्बन्ध स्थापित करना है तो वह मास नही खा सकते। और अगर सम्बन्ध स्थापित न करना हो तो वे मास खा सकते है और मोक्ष हो सकता है। मांस खाने से मोक्ष का कोई विरोध नही है। लेकिन तब वह मनुष्य से ही सम्बन्ध स्थापित

कर सकेंगे ज्यादा से ज्यादा। और वह सम्बन्ध भी बहुत शुद्ध सम्बन्ध नही होगा। उसमे भी थोडी बाधाएं होगी। अगर पूर्ण शुद्ध सम्बन्ध स्थापित करना है तो इस जगत के प्रति किसी तरह की चोट जाने-अनजाने नहीं होनी चाहिए। तब सम्बन्ध पूर्ण स्थापित होगा। मुझे अगर तुमसे सम्बन्ध स्थापित करने है तो मुझे तुम्हारे प्रति पूर्ण अवैर साधना होगा। जितना मेरा वैर होगा, जितना मैं तुम्हे चोट पहुचा सकता हू, जितना तुम्हारा शोषण कर सकता हू, जितनी तुम्हारी हिंसा कर सकता हू, उसी मात्रा मे मैं तुम्हे जो पहुचाना चाहूंगा, नही पहुचा सकूगा। प्रेम को पहुचाने के लिए सत्य के अतिरिक्त कोई और द्वार नही है। इसलिए महावीर अगर उत्तरी ध्रुव मे पैदा हो और उनको अपने नीचे के मूक पशु जगत और पदार्थ जगत से सम्बन्ध स्थापित करना हो तो वह मासाहार नही करेंगे लेकिन अगर करना हो तो यहा भी कर सकते है कोई कठिनाई नही है। इसलिए अहिंसा की जो मेरी दृष्टि है वह बात ही और है। अहिसा को मैं अनिवार्य तत्त्व नही मानता हू मोक्ष प्राप्ति का। अहिंसा को मैं अनिवार्य तत्त्व मान रहा हू मनुष्य के नीचे की योनियो से सम्बन्ध स्थापित करने का। तो ज्ञान-भेद होगे, दर्शन एक होगा, ज्ञान-भेद हो जाएगा तो फिर चरित्र-भेद भी हो जाएगा। क्यो ? क्योकि दर्शन है शुद्ध स्थिति। न वहा मैं हू, न वहा कोई और है। दर्शन मे कोई विकार नही है। फिर ज्ञान मे भाषा आ गई, शब्द आ गए। जो भाषा मै जानता हू, वही आएगी। जो तुम जानते हो, वही आएगी। अब जीसस को पालि, प्राकृत नही आ सकती। जब उन्हे ज्ञान बनेगा वह पालि, प्राकृत या संस्कृत मे नही बन सकता। वह आरमेक मे बनेगा। जब कनफ्यूसियस को दर्शन होगा क्योकि वह पुरुष मुक्त है इसलिए वह दर्शन वही होगा जो बुद्ध को होगा, महावीर को होगा। लेकिन जब ज्ञान बनेगा तो चीनी मे बनेगा जिस शब्दावली मे वह जिया है और पला है। महावीर को जब मुक्ति अनुभव होगी तो वह उसे मोक्ष कहेंगे, उसे निर्वाण नही कहेगे क्योकि वह निर्वाण शब्द मे पले ही नही हैं। शकर को जब अनुभूति होगी तो वह कहेगे 'ब्रह्म उपलब्धि'। वह 'ब्रह्म उपलब्धि' शब्द है मगर बात वही है। जो महावीर को मोक्ष मे होती है, बुद्ध को निर्वाण में होती है, शकर को ब्रह्म-उपलब्धि मे होती है। शब्द अलग-अलग हैं। ज्ञान मे शब्द आ जाएगा। विशुद्धि गई, अशुद्धि आनी शुरू हुई। जो परम अनुभव था वह अब शाखाओं मे बटना शुरू हुआ। फिर भी ज्ञान तो सिर्फ शब्दो की वजह से अशुद्ध है। चरित्र तो

और भी नीचे उतरता है। चरित्र तो समाज, लोक व्यवहार, स्थिति, युग, नीति, व्यवस्था, राज्य—इन सब पर निर्भर होगा क्योकि जब मैं शुद्ध दर्शन मे हू तब न 'मैं' हू, न कोई और है—सिर्फ दर्शन है। जब मैं ज्ञान मे आया तो 'दर्शन' और 'मैं' भी आया वापिस। और जब मैं चरित्र मे आया तो समाज भी आया। चरित्र जो है वह समाज के साथ है। समाज की एक नीति है तो चरित्र मे प्रकट होनी शुरू होगी। अगर दूसरी नीति है तो दूसरी तरह से प्रकट होनी शुरू होगी। उनमे कोई भी मिथ्या नही है क्योकि लोक परिस्थिति सारी जगह अलग-अलग है। चरित्र मुझसे दूसरे का सम्बन्ध है। चरित्र मे मैं अकेला नही हू, आप भी है। इसलिए चरित्र प्राथमिक नही है। वह सबसे आखिरी प्रतिध्वनि है दर्शन की। लेकिन, हा चरित्र मे कुछ बातें प्रकट होगी। उसको दर्शन होगा। वह कुछ बाते हमारे ख्याल मे ले सकते हैं। लेकिन उनको बहुत बाधकर मत लेना, बाध लेने से मुश्किल हो जाती है। क्योकि वह किसी न किसी परिस्थिति मे ही प्रकट होगी। जैसे समझ ले कि सूरज की किरणे आ रही है और यह जो खिडकी लगी है, नीले काच की है। और यह जो खिडकी लगी है, पीले काच की है। तो पीले काच की खिडकी जो किरणे भीतर भेजेगी, वे पीली दिखाई पडेगी, नीले काच की किरणे नीली दिखाई पडेगी। अगर तुमने यह मान लिया कि सूरज नीले या पीले रग का होता है तो तुम गल्ती मे पड जाओगे। तुम इतना ही मानना जो ज्यादा आवश्यक है कि जब सूरज निकलता है वह अनेक रूपो मे प्रकट होता हे लेकिन प्रकाश होता है। तुम पीले और नीले मे भी ताल-मेल बिठा पाओगे। महावीर मे वह एक तरह से निकलता है क्योकि महावीर का व्यक्तित्व एक तरह का है। बुद्ध मे दूसरी तरह से निकलता है, क्राइस्ट मे तीसरी तरह से निकलता है, कृष्ण मे चौथी तरह से निकलता है। हजार तरह से वह निकलता है। यह सब काच है—व्यक्तित्व। प्रकाश तो एक है। फिर इनसे निकलता है। फिर तुम देखने वालो के बीच जिस समाज मे वह आदमी जी रहा है, वे देखने वाले भी सम्बन्धित हो जाते हैं। और सम्बन्ध तो तुमसे करना है उसे। प्रत्येक युग मे नीति बदल जाती है, व्यवस्था बदल जाती है, राज्य बदल जाता है।

प्रश्न—क्या बेसिक मोरेलिटी जैसी कोई चीज है ?

उत्तर—बिल्कुल नही है, बिल्कुल नही है।

प्रश्न—सत्य भी बेसिक मोरेलिटी नहीं है ?

उत्तर—सत्य मोरेलिटी का हिस्सा ही नही है। सत्य तो अनुभूति का,

दर्शन का हिस्सा है, चरित्र का नही।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य ?

उत्तर—नही, वह भी बेसिक नही है।

अरब को ले। वहा औरते चार पाच गुना ज्यादा है पुरुषो से। पुरुष एक है तो स्त्रिया छः हैं या पाच हैं। फिर भी वह लड़ाकू कबीला है, दिन-रात लडता है। पुरुष कट जाते है, स्त्रिया बच जाती है। समाज अनैतिक हुआ जा रहा है। क्योकि जहा स्त्रिया पाच हो, पुरुष एक हो, वहा अगर मुहम्मद ब्रह्मचर्य का उपदेश दे तो वह मुल्क सड जाएगा बिल्कुल। मर ही जाएगा मुल्क क्योकि ऐसी कठिनाई खडी हो गई कि चार स्त्रियो को पति ही नही मिल रहे है। और वे मजबूरी से व्यभिचार मे उतर रही है। इन चार स्त्रियों के व्यभिचार मे उतरने से पुरुष भी व्यभिचारी हो रहे है। इन चार स्त्रियो के लिए कोई व्यवस्था करनी जरूरी है; नही तो समाज बिल्कुल अनैतिक हो जाएगा। अगर महावीर भी वहा हो मुहम्मद की जगह, तो मैं मानता हू कि वह विवाह करेगे। क्योकि उस स्थिति मे उसके सिवाय कोई नैतिक तथ्य नही हो सकता। मुहम्मद कहते है कि चार विवाह प्रत्येक के लिए धर्म है, नीति है। चार तो प्रत्येक करे ही ताकि कोई स्त्री बिना पति के न रह जाए और कोई स्त्री बिना पति के पीडा न उठाए ? और बिना पति की स्त्री व्यभिचार को मजबूर न हो जाए; वह समाज को कुत्सित रोगो मे न फेर दे। मुहम्मद इसके लिए उदाहरण बनते हैं। वह नौ विवाह कर लेते हैं।

प्रश्न—चरित्र समाज से आएगा या सम्यक् दर्शन से ?

उत्तर : चरित्र आएगा सम्यक् दर्शन से लेकिन प्रकट होगा समाज मे। सम्यक् दर्शन जिसको प्राप्त हुआ है, उसे दृष्टि प्राप्त हुई है करुणा की, प्रेम की, दया की। अब समाज कैसा हो उस दृष्टि को प्रकट होने के लिए तो उपकरण खोजे गए। जैसे मुहम्मद के लिए यही करुणा है कि वह चार विवाह का इन्तजाम कर दे। और जो चार विवाह का इन्तजाम करता हो, अगर वह नौ विवाह खुद करके न बता सके तो चार का इन्तजाम करेगा कैसे ? मुहम्मद के लिए जो करुणा पूर्ण है, वह यही है। महावीर के लिए यह सवाल नही है। जिस युग मे वह है, जहां वह है, वहा की यह परिस्थिति नही है। यह कल्पना मे भी आना मुश्किल है महावीर को। मुहम्मद के लिए ब्रह्मचर्य की कल्पना बहुत मुश्किल है क्योंकि मुहम्मद अगर ब्रह्मचर्य की बात करे तो आप यह समझ लीजिए कि अरब मुल्क सदा के लिए नष्ट हो जाए, बुरी तरह नष्ट हो जाए।

सम्यक् दर्शन से करुणा आ जाएगी ही। वह क्या क्या रूप लेगी यह बिल्कुल अलग बात है। अब यह हो सकता है कि करुणा यह रूप ले कि एक आदमी की टांग सड़ रही है तो उसको काट दे। और दूसरा आदमी कहे कि तुमने टाग काट दी इस आदमी की, तुम्हारी कैसी करुणा? गाधी जी के आश्रम मे एक बछड़ा बीमार है और वह तड़फ रहा है, परेशान है। डाक्टर कहते है कि बचेगा नही, दो-तीन दिन मे वह मर जायेगा, उसको कैंसर हो गया है। गाधीजी कहते हैं, उसे जहर का इन्जेक्शन दे दें। इन्जेक्शन दे दिया गया है। सारे आश्रम के लोग संदिग्ध हो गए हैं। उन्होने कहा कि यह आप क्या करते हैं? बडे-बडे पडित गांधी जी के पास इकट्ठे हुए। उन्होने कहा कि यह तो हद हो गई। यह तो गो-हत्या हो गई। गाधी जी ने कहा कि उस गो-हत्या का पाप मैं झेल लूगा। लेकिन इस बछडे को कष्ट मे नही देख सकता। अब गो-हत्या नही होनी चाहिए, ऐसा मानने वाला जो जड-बुद्धि आदमी है वह कभी नही बर्दाश्त कर सकता क्योकि उसके पास अपनी कोई दृष्टि नही, सिर्फ बना हुआ नियम है। लेकिन जिसके पास अपनी बनी हुई दृष्टि है, वह उसका उपयोग करेगा, चाहे वह नियम के प्रतिकूल जाती हो। लेकिन यह विशेष परिस्थिति पर ही निर्भर करता है। गाधीजी किसी अच्छे बछडे को जहर नही पिला सकते। मेरा कहना है कि दृष्टि आपको होगी, परिस्थिति बाहर होगी। बछडा बीमार पडा है, कैंसर से पीडित है, आपको जहर पिलाना पड रहा है। करुणा आपसे आ रही है। करुणा क्या रूप लेगी यह कहना कठिन है। करुणा कभी तलवार उठा सकती है, कभी तलवार का निषेध कर सकती है। मुहम्मद की तलवार पर मुहम्मद ने लिखा हुआ है कि मैं शाति के लिए लड रहा हू। इस्लाम का मतलब है शाति। लेकिन मुहम्मद की परिस्थितियो मे और जिन लोगो से वे घिरे हैं, तलवार के सिवाय कोई दूसरी भाषा ही नही है।

प्रश्न—क्राइस्ट ने कोड़े मारे, वह करुणा है?

उत्तर—बिल्कुल ही करुणा है। क्राइस्ट जब पहली दफा यहूदियो के बडे त्यौहार पर गए तो वह जो बडा मन्दिर था यहूदियो का, वहा सारा देश इकट्ठा होता था, देश के बडे व्याजखोर इकट्ठे होते थे, व्याज पर पैसा देते थे और लेते थे। वह बड़ा खर्चीला त्यौहार था। गरीब आदमी भी उधार लेकर रुपए खर्च करता था और वह कई जन्मो तक भी न चुका पाता उन व्याजो को। व्याज की दूकानें मन्दिर के सामने लगी रहती। तख्तो पर लोग बैठे

रहते उधार देने वाले यात्रियो को। मन्दिर के सामने दिया गया उधार कोई साधारण उधार नहीं था। वह चुकाना ही पडेगा, नहीं तो नरक में जाओगे। जीसस वहां गए और उन्होने यह सब देखा कि करोडों लोगो का शोषण चल रहा है; मन्दिर के पुजारी के एजेंट उन तख्तो पर बैठे हुए हैं जो ब्याज पर पैसा दे रहे हैं और वह पैसा सब मन्दिर मे चढ़ाया जा रहा है और वह पैसा फिर ब्याज से दिया जा रहा है। यह जो चक्कर देखा तो उन्होंने उठाया कोडा, तख्ते उलट दिए और मारे कोड़े लोगों को। और कहा. भाग जाओ। इस मन्दिर को खाली करो। शत्रु को लगेगा कि यह आदमी कैसा है ? जो कहता है कि एक गाल पर कोई चाटा मारो तो दूसरा गाल सामने कर दो। यह कोडा उठा सकता है ? हा उठा सकता है, उठाने का हकदार है क्योंकि इसको निजी क्रोध का कोई कारण नही है। लेकिन महावीर को कोई ऐसा मौका नही, इसलिए कोडा नही उठाते। मैं जो कह रहा हूं वह यह कि दर्शन तो एक ही होगा, ज्ञान भिन्न होगा क्योंकि शब्द आ जाएगा, *और चरित्र भिन्न होगा क्योंकि समाज आ जाएगा, परिस्थिति आ जाएगी।* उसकी अभिव्यक्ति बदलती चली जाएगी, एकदम बदलती चली जाएगी। *मगर उसमे भी काम तो दर्शन ही करेगा।* *असल मे जिनके पास दर्शन नही* है उनका चरित्र जड होता है, नियमबद्ध होता है। परिस्थिति भी बदल जाती तो भी वह *नियमबद्ध चलता रहता है क्योंकि उसे कोई मतलब ही नहीं।* उसकी कोई अपनी दृष्टि ही नहीं। वह तो नियमबद्ध है।

लेकिन *चरित्र तीसरे वर्तुल पर आता है।* इसलिए मैं चरित्र को केन्द्र नही मानता, परिधि मानता हू। दर्शन को केन्द्र मानता हू। तो दर्शन-ज्ञान ही चरित्र है। मगर आपका साधु क्या कर रहा है ? वह चरित्र साध रहा है और सोच रहा है कि जब चरित्र पूरा हो जाएगा तब फिर ज्ञान होगा; जब ज्ञान पूरा हुआ तो दर्शन होगा। वह उल्टा चल पड़ा है। उससे कुछ नही होगा। वह सिर्फ उसकी आत्मवंचना है।

प्रश्न : महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर का दर्शन आज भी उपयोगी है। दर्शन बदलता नहीं है देश-काल के साथ, सम्यक् दर्शन बदलता नहीं। पर महावीर का चरित्र आज जिस रूप में प्रकट हो सकता है, क्या अभिव्यक्ति ले सकता है आज की परिस्थिति में ?

उत्तर—असल मे ऐसा सोचना ही नहीं चाहिए कि आज अगर महावीर

होते तो उनका आचरण क्या होता ? यह इसलिए नही सोचना चाहिए कि महावीर से कोई किसी का बन्धन थोडे ही है कि उनका जैसा आचरण होता है वैसा हमारा हो। जैसा महावीर का आचरण होता, वैसा हमारा हो ही सकता। जैसा हमारा हो सकता है, महावीर लाख उपाय करे तो वैसा उनका नही हो सकता। इसके कई कारण है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। यही अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के आत्मवान् होने का। इसलिए किसी के आचरण का हिसाब ही मत रखो। वह सम्यक् दृष्टि नही है। आचरण से प्रयोजन मत रखो, दर्शन कैसे उपलब्ध हो इसकी फिक्र करो। आचरण तो पीछे से आएगा। जैसे तुम यहा आए तो तुम फिक्र नही करते कि तुम्हारे पीछे तुम्हारी लम्बी छाया आ रही है कि छोटी छाया आ रही है। दुपहर मे आते तो कैसी छाया आती, साझ मे आते तो कैसी छाया आती, सुबह आते तो कैसी छाया आती, तुम यह फिक्र नही करते। तुम आते हो, छाया तुम्हारे पीछे आती है। वह लम्बी हो जाती है, छोटी हो जाती है, चौडी हो जाती है, जैसी होती रहे, तुम्हे फिक्र नही उसकी। सवाल तो गहरे दर्शन का है, चरित्र तो उसकी छाया है, जैसी धूप होगी वैसी होती रहेगी। उसमे कोई सम्बन्ध नही है, कोई प्रयोजन नही है यानी उसको सोचना ही नही है। मेरा कहना यह है कि चरित्र बिल्कुल ही अविचारणीय है। क्योकि दर्शन का हमे ख्याल नही रह गया इसलिए हम चरित्र का फिक्र करते है। विचारणीय है दर्शन। और दर्शन, काल एव परिस्थिति से आबद्ध नही है। दर्शन कालातीत, क्षेत्रातीत है। जब भी तुम्हे दर्शन होगा तो वही होगा जो किसी दूसरे को हुआ हो। महावीर से कुछ लेना-देना नही। किसी को भी हुआ हो, वह वही होगा। क्योकि दर्शन तभी होगा, जब न तुम होगे, न कुछ और होगा, सब मिट गया होगा, और जब वह दर्शन होगा तो अपने आप अपने को रूपान्तरित करेगा ज्ञान मे। ज्ञान अपने आप रूपान्तरित होगा चरित्र मे। उसकी चिन्ता ही नही करनी है। नही तो फिर दूसरा बन्धन शुरू हो जाता है। जैसा कि अगर मैं तुम्हे कहू कि महावीर ऐसा करते तो तुम शायद सोचो कि ऐसा हमे करना चाहिए। नही, तुम्हे करने का सवाल ही नही है क्योकि तुम्हे वह दर्शन नही है। वही तो जैन साधु और जैन मुनि कर रहा है बेचारा। वह कहता है कि वे ऐसा करते थे, तो हम भी ऐसा करते है।

मैं एक गाव मे गया। वह गाव था व्यावरी। वहा का कलेक्टर आया और मुझसे कहा कि मैं एकान्त मे बात करना चाहता हू। उसने दरवाजा बन्द कर

दिया बिल्कुल, सांकल लगा दी। अन्दर बैठकर मुझसे पूछा कि मुझे दो चार बातें पूछनी हैं। पहली तो यह कि आप जैसा चादर लपेटते हैं, ऐसा लपेटने से मुझे कुछ लाभ होगा ? वह बिल्कुल ठीक पूछ रहा था। हम उस पर हंसते हैं। लेकिन हमारा साधु क्या कर रहा है। महावीर कैसे खड़े हैं, कैसे बैठे हैं, कैसी पिच्छी लिए, कैसा कमण्डल लिए, मुह पर पट्टी बांधे, वह पक्का कर लेता है, फिर वैसा करना शुरू कर देता है। चूक गया वह बुनियादी बात। मैंने उससे कहा कि चादर से क्या सम्बन्ध है ? मेरी मौज आए तो मैं कोट-टाई पहन लू, उसमे क्या दिक्कत है। उससे 'मैं' मैं ही रहूगा, उससे क्या फर्क पडने वाला है। हा, तुम्हें फर्क पड सकता है मुझे देखकर। फिर तुम समझोगे कि इस आदमी के पास क्या होगा, यह तो कोट-टाई बाधे हुए है। लेकिन मुझे क्या फर्क पडने वाला है। मैं जैसे हू वैसा रहूगा और तुम जैसे हो वैसे रहोगे। चाहे चादर लपेटो, चाहे नग्न हो जाओ। इससे कुछ फर्क नही पडता। वह बुनियादी भूल है जो हम सोचते हैं कि बाहर से भीतर की तरफ जाता है जीवन। वास्तव मे जीवन सदा भीतर से बाहर की तरफ आता है। और अगर बाहर से किसी ने भीतर को बदलने की कोशिश की तो भीतर वही रह जाएगा, बाहर बदल जाएगा। और उस आदमी के भीतर द्वन्द्व पैदा होगा। जो आदमी आचरण से शुरू करेगा वह पाखण्डी हो जाएगा।

प्रश्न : क्या आज का ज्ञान भी पुराने ज्ञान से अलग होगा ?

उत्तर : दर्शन भर अलग नही होगा। वह शुद्धतम है। ज्ञान अलग होगा क्योंकि आज की भाषा बदल गई है, सोचने के ढग बदल गए है। इसीलिए मुश्किल हो जाती है पहचानने मे। पुराने को पकड लेने वाले के लिए नए को पहचानना मुश्किल हो जाता है। अगर मुझे दर्शन है तो भी मेरी भाषा वह नही हो सकती जो महावीर की होगी। महावीर को मानने वाला कहेगा कि इस आदमी से अपना कोई तालमेल नही। क्योकि यह आदमी न मालूम क्या कह रहा है। हमारे महावीर कहते नही। वह कह नही सकते क्योकि अढाई हजार साल का फासला हो गया है। अढाई हजार साल मे सब चीजो ने स्थिति बदल ली है। वह कही और पहुच गई है। सारी बात बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं, भाषा बदल गई है। सबके बदल जाने पर ज्ञान भिन्न होगा। पर दर्शन कभी भिन्न नही होगा क्योंकि दर्शन होता ही तब है जब हम सब छोड़कर अन्दर जाते हैं। भाषा, समाज, धर्म, शास्त्र, शब्द,

विचार सब छोड़ देते है। जहा सब छूट जाता है, वहा दर्शन होता है। इसलिए दर्शन तो हमेशा वही रहेगा क्योंकि कुछ भी छोड़े कोई, सब छोड़ना पड़ेगा। मुझे कुछ और छोडना पड़ेगा, महावीर को कुछ और छोडना पड़ेगा। महावीर ने डारविन को नही पढा था तो डारविन को नही छोडना पड़ा होगा। महावीर ने वेद छोड़े होगे, उपनिषद् छोड़े होंगे। मैंने डारविन को पढ़ा तो मुझे डारविन को, मैंने मार्क्स को पढ़ा तो मुझे मार्क्स को छोड़ना पड़ेगा। यह फर्क पड़ेगा। लेकिन जो भी मेरे पास हो वह छोडना पड़ेगा। छोड़कर दर्शन उपलब्ध होता है कभी भी। इसलिए दर्शन हर काल मे छोड़कर ही होगा क्योंकि उसका जोर उस पर है कि तुम जो भी जानते हो, तुमने जो भी सीखा है, जो भी पकडा है, उस सब को लीन कर दो। लेकिन, जब दर्शन हो जाएगा और जब आप ज्ञान बनाएगे उससे, तब आपको सब विद्वत्ता आजाएगी। अरविंद जब बोलेंगे तो उसमे डारविन मौजूद रहेगा। इससे अरविन्द की सारी भाषा बदल जाएगी। महावीर की वह भाषा नही हो सकती क्योंकि महावीर को डारविन का कोई पता नही है। महावीर डारविन की भाषा नही बोल सकते। अरविन्द बोलेगा तो डारविन की भाषा मे बोलेगा। अब जैसे महावीर मार्क्स की भाषा मे नही बोल सकते लेकिन अगर मै बोलूगा तो मार्क्स की भाषा बीच मे आएगी। मैं कहूगा शोषण पाप है, महावीर नही कह सकते यह। क्योंकि महावीर के युग मे शोषण के पाप होने की धारणा ही नही थी। उस वक्त जिसके पास धन था वह पुण्य था। धन शोषण है और चोरी है यह धारणा तीन सौ वर्षो मे पैदा हुई है। यह धारणा जब इतनी स्पष्ट हो गई तो आज अगर कोई कहेगा कि धन पुण्य है तो इस जगत मे उसका कोई अर्थ नही यानी वह अज्ञानी सिद्ध होने वाला है। इसलिए अक्सर यह दिक्कत हो जाती है। न तो हमे पीछे की तरफ लौट कर सोचना चाहिए और ना ही नई शब्दावलियो को पुराने पर थोपना चाहिए। महावीर को हम इसलिए कमजोर नही कह सकते कि उन्हे विकास की भाषा का पता नही था। वह भाषा थी ही नही। वह भाषा नई विकसित हुई है। आज से हजार साल बाद जो लोग दर्शन को उपलब्ध होगे, जो भाषा बोलेंगे उसकी हम कल्पना भी नही कर सकते क्योंकि एक हजार साल मे वह सब कुछ बदल जाएगा। इसी बदली हुई भाषा मे फिर ज्ञान प्रकट होगा। तब अभिव्यक्ति के माध्यम बदल जाएंगे। समझ ले कि आज से दो हजार, तीन हजार साल पहले भाषा नहीं थी, उसे सिवाय स्मृति मे रखने के कोई अन्य उपाय नही था। सारा ज्ञान स्मृति

मे ही संचित होता था। ज्ञान को इस ढंग से बताना पड़ता था कि वह स्मृति में हो जाए। इसलिए जो पुराने ग्रन्थ हैं, वे सब काव्य में हैं क्योंकि काव्य को स्मरण रखा जा सकता है, गद्य को स्मरण रखना मुश्किल है। कविता स्मरण रखी जा सकती है, सुविधा से, गद्य को नहीं रखा जा सकता। इसलिए जब कि स्मृति के सिवाय दूसरा उपकरण न था संरक्षित करने का तो सारे ज्ञान को पद्य में ही बोलना पड़ता था। उसको गद्य मे बोलना बेकार था। क्योंकि गद्य मे बोला तो उसको याद रखना ही बहुत मुश्किल था। उसको पद्य मे बोलने से स्मरण रखने मे सुविधा हो जाती थी। आप एक कविता स्मरण रख सकते है सरलता से बजाय एक निबन्ध के क्योकि उसमे एक तुकबदी है जो कि आपको गाने की सुविधा देती है। वह स्मृति में जल्दी बैठ जाती है। इसलिए पुराने ग्रथ पद्य मे है। गद्य बिल्कुल नई खोज है। जब लिखा जाने लगा तब पद्य की जरूरत न रही। तुक बदी जोड़ने में जो नहीं कहना वह भी मिलाना पडता था। सीधा गद्य मे लिखा जा सकता है तो फिर नए शब्द आए। इसलिए नई भाषाए काव्यात्मक नही हैं। पुरानी भाषाए ही काव्यात्मक हैं जैसे सस्कृत। आजकल की भाषा वैज्ञानिक है। आप कविता भी बोलो तो गणित का सवाल मालूम पडे। सारा फर्क पडता चला जाता है। जो उपकरण उपलब्ध होगे उनमे ज्ञान प्रकट हो जाएगा। नई कविता बिल्कुल गद्य है क्योकि उसे पद्य होने की जरूरत नही। पुराना गद्य भी पद्य है। नया पद्य भी गद्य है। और यह सब बदलते चले जाते हैं रोज-रोज। तो जो ज्ञान बनेगा, वह दर्शन से उतरेगा नीचे। दूसरी सीढ़ी पर खडा होगा और जो उस युग की ज्ञान-व्यवस्था है, उसका अग होगा तभी वह सार्थक होगा। फिर वह नीचे उतरेगा तभी चरित्र बनेगा। तो हमारे समाज का जो भीतरी सम्बन्ध है, वह उस पर निर्भर करेगा। आएगा दर्शन से, उतरेगा चरित्र तक। चरित्र सब से ज्यादा अशुद्ध रूप होगा क्योंकि उसमे दूसरे सब आ गए। ज्ञान और कम अशुद्ध होगा। दर्शन पूर्ण शुद्ध होगा। और दर्शन की उपलब्धि के रास्ते अलग होगे। चरित्र उसकी उपलब्धि का रास्ता नही है।

प्रश्न—महावीर की नग्नता चरित्र का अंग था, या दर्शन का ?

उत्तर—बहुत सी बाते है। असल मे महावीर को, जैसा मैंने कल रात को कहा, बहुत सी बातें करनी पड रही हैं जो हमारे ख्याल मे नही है। वह ख्याल में आ जाएं तो हमे पता चल जाएगा कि वह किस बात का अग

था। महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का अंग है, चरित्र का नही। ज्ञान का अग इसलिए है कि अगर किसी को विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड से, मूक जगत से सम्बन्धित होना है तो वस्त्र एक बाधा है। जितने वस्त्र पैदा होते जा रहे है, उतनी ज्यादा बाधाए हैं। नवीनतम वस्त्र चारो तरफ के वातावरण से आपके शरीर को तोड देते है। उनमे से बहुत कम भीतर जाता है, बहुत कम बाहर आता है। अलग-अलग वस्त्र अलग-अलग तरह से काम करता है। सूती वस्त्र अलग तरह से तोडता है, रेशमी वस्त्र अलग तरह से तोडता है, ऊनी वस्त्र अलग तरह से तोडता है। जिनमे प्लास्टिक मिला हुआ है या काच मिला हुआ है, वे वस्त्र और तरह से तोडते है। जिस व्यक्ति को ब्रह्माण्ड से सयुक्त होना है, उसके लिए किसी तरह के भी वस्त्र बाधा बन जाएगे। महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का हिस्सा नही है। उनको यह साफ समझ मे पड रहा है कि उन्हे जो कुछ अभिव्यक्त करना है वह ब्रह्माण्ड से एक होकर ही किया जा सकता है। जैसे हम जानते है कि कितनी छोटी-छोटी चीजो से फर्क पडता है। आप एक रेडियो लगाए हुए है। सब दरवाजे बद कर दे, हवा बिल्कुल न आए, एयर कण्डीशन कमरा हो तो आपका रेडियो बहुत मुश्किल से पकडने लगेगा क्योकि जो लहरे आ रही हैं उन पर बाधा पड रही है। एयर कण्डीशन कमरे मे उसको काम करना मुश्किल हो जाएगा क्योकि हवा बाहर से नही आ रही है, सब बद है। सम्पर्क बाहर की तरगो से टूट गया है। जितने खुले मे आप रख रहे हैं उतना उसका सम्पर्क बन रहा है। या तो उसे खुले मे रखे या एक एरियल बाहर खुले मे लगाए ताकि एरियल पकडे और भीतर तक खबर पहुचा दे। समझ लो कि हमे कोई ज्ञान न हो रेडियो शास्त्र का तो हम कहेगे कि यह क्या बात है? रेडियो को बाहर रखने की क्या जरूरत है, एरियल को बाहर लटकाने की क्या जरूरत है? अपने घर में रखो, अपने घर मे अन्दर एरियल लगा लो, सब तरफ द्वार दरवाजे बद कर लो।

मनुष्य के शरीर से प्रतिक्षण कम्पन बाहर जा रहे हैं और प्रतिक्षण कम्पन भीतर आ रहे है। महावीर नग्न होकर एक तरह का तादात्म्य साध रहे हैं उस सारे जगत से जहा वस्त्र भी बाधा बन सकता है। वस्त्र बाधा बनता है और प्रत्येक वस्त्र अलग तरह की बाधा और सुविधा देता है। जैसे रेशमी वस्त्र हैं। अब आपको यह जानकर हैरानी होगी कि यह जो रेशमी वस्त्र है, वह जल्दी आपके शरीर में कामवासना को पहुचाता है बजाय सूती

वस्त्र के। रेशमी वस्त्र पहने हुए स्त्री ज्यादा काम को उत्तेजित करेगी। उसी स्त्री को सूती या खादी पहना दो तो वह काम को कम उत्तेजित करेगी। रेशमी वस्त्र उसके शरीर मे, उसके शरीर से और शरीर के चारो तरफ से जो कामवासना की लहरें चल रही है, उनको जल्दी से जल्दी पकड रहा है। यह स्त्रियो को बहुत पहले समझ मे आ गया है कि रेशमी वस्त्र किस तरह उपयोगी है। ऊनी वस्त्र बहुत अद्भुत हैं। आप देखते हैं कि सूफी फकीर ऊन का वस्त्र ही पहनते हैं। सूफ का मतलब ऊन होता है। जो ऊन के कपडे पहनते है उन्हें सूफी कहते हैं। गरमी मे भी, सर्दी मे भी लपेटे हैं कम्बल को क्योकि ऊनी वस्त्र सब तरह की लहरो से सरक्षित करता है। वह ठड मे उपयोगी होता है। वह गरम नही है। वह सिर्फ आपके शरीर की गर्मी को बाहर नही जाने देता। ऊनी वस्त्र मे गर्मी जैसी कोई चीज नही है। सिर्फ आपका शरीर जो गर्मी को प्रवाहित करता है प्रतिपल, वह उसको बाहर नही निकलने देता। गर्मी उसके बाहर नही हो पाती, वह भीतर ही रुक जाती है। बस वह भीतर रुकी हुई गर्मी ऊनी वस्त्र को गर्म बना देती है। ऊनी वस्त्र मे गर्म होने जैसा कुछ भी नही है। सिर्फ आपके ही शरीर की गर्मी को बाहर नही होने देता और रोक देता है। सूफी सैकडो वर्षों से ऊनी वस्त्र का उपयोग कर रहे है। अनुभव यह है कि न केवल गर्मी को बल्कि और तरह के सूक्ष्म अनुभवो को भी ऊनी वस्त्र रोकने मे सहयोगी होता है। जिन लोगो को किसी गुह्य(एसोटेरिक) विज्ञान मे काम करना हो उनके लिए ऊनी वस्त्र बहुत उपयोगी है। वह कुछ चीजो को बिल्कुल भीतर रोक सकता है, जिनको वह प्रकट न करना चाहे।

महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का नही। लेकिन जो लोग चरित्र का हिस्सा समझकर नग्न खडे हो जाते हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। वह तो कुछ लहर है जिसे वह पहुचाना चाहते है सारे लोक मे। वह नग्न स्थिति मे ही पहुचाई जा सकती है। अगर शरीर मे उनकी तरगें पैदा होती हैं तो नग्न स्थिति मे पूरी की पूरी हवाए उन लहरो को लेकर यात्रा कर जाती है। कपडो मे वे लहरे भीतर रह जाती है। ऊनी वस्त्रों मे बिल्कुल भीतर रह जाती है। सूफी यह सब जानकर कह रहे है; महावीर भी जानकर नग्न खडे हुए हैं। लेकिन उस युग की चरित्र-व्यवस्था नग्न खडे होने की सुविधा देती थी। हर युग मे महावीर नग्न खडे नही हो सकते क्योकि जिस काम के लिए खडे हो रहे हैं अगर उस काम मे बाधा पड जाए नग्न

खड़े होने से तो नग्न होना व्यर्थ हो जाएगा। जैसे आज अगर न्यूयार्क में पैदा हों तो वे नग्न खडे नही हो सकते। बम्बई मे भी नग्न खड़े होना मुश्किल है। नग्न आदमी को सडक पर निकलने के लिए गवर्नर की अनुमति चाहिए। या फिर उसके भक्त उसको घेर कर चलें। वह बीच मे रहे। चारो तरफ भक्त घेरे रहे ताकि जिनको नग्न नही देखना, वे न देख पाए। न्यूयार्क मे नग्न व्यक्ति बिल्कुल पकड लिया जाएगा, बद कर दिया जाएगा। काम की बात अलग रही, काम मे बाधा पड जाएगी। तो कुछ और रास्ते खोजने पड़ेगे। नई परिस्थिति मे नए रास्ते खोजने पड़ेंगे। पुराने रास्ते काम नही देंगे। उस वक्त हिन्दुस्तान मे नग्नता बडी सरल बात थी। एक तो ऐसे ही आम आदमी अर्द्धनग्न था, एक लगोटी लगाए हुए था। नग्नता मे कुछ बहुत ज्यादा नही छोडना पडता था जैसा हम सोचते हैं अक्सर। वह तो राजपुत्र थे इसलिए सब कपडे थे। बाकी आदमी के पास कपडे कहा थे? एक लगोटी बहुत थी। आम आदमी भी लगोटी उतार कर स्नान कर लेता था। नग्नता बडी सरल, एकदम सहज बात थी। उसमे कुछ असहज जैसा नही था कि कोई बात नई हो रही है। हिस्सा तो ज्ञान का था, परिस्थिति मौका देती थी। और ज्ञानवान् आदमी वह है, जो ठीक परिस्थिति के मौके का पूरा से पूरा, ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर सके। वही ज्ञानवान् है, नही तो नासमझ है। यानी सिर्फ नगे की जिद्द कर ले और सब काम मे रुकावट पड जाए, कोई मतलब नही है उसका। काम के लिए कोई और रास्ते खोजने पड़ेंगे।

प्रश्न : कल आपने कहा था कि महावीर पिछले जन्म में सिंह थे और उन्हें पिछले जन्म मे अनुभूति हुई। तो क्या प्राणिमात्र को उस अवस्था की अनुभूति हो सकती है? या उनको अनुभूति उनके मनुष्य जन्म में हुई?

उत्तर : हा, मैंने 'पिछले जन्म' जो कहा, सीधे उसका यह मतलब नही कि उसके पहले जन्म मे। अनुभूति होना बहुत मुश्किल है दूसरे प्राणिजगत मे। हो सकती है किन्तु बहुत कठिन है। कठिन तो मनुष्य योनि मे भी है, सम्भव तो दूसरी योनि मे भी है। लेकिन अत्यधिक कठिन है, असम्भव के करीब है। मनुष्य योनि मे असम्भव के करीब है। कभी ही किसी को हो पाती है। पिछले जन्मो से मेरा मतलब अतीत जन्मों से है। महावीर को सत्य का जो अनुभव हुआ वह तो मनुष्य जन्म मे ही हुआ होगा। लेकिन सम्भावना का निषेध नही है। आज तक ऐसा ज्ञात भी नही है कि कोई पशु योनि मे मुक्त हुआ हो। लेकिन निषेध फिर भी नहीं है। यानी यह कभी हो सकता है।

और यह तब हो सकेगा जब मनुष्ययोनि बहुत विकसित हो जाए–इतनी ज्यादा कि मनुष्ययोनि मे मुक्ति बिल्कुल सरल हो जाए। तब सम्भव है कि जो अभी स्थिति मनुष्ययोनि की है, वह पिछली निम्न योनियो की हो जाए। मेरा मतलब है कि अभी मनुष्ययोनि में ही असम्भव की स्थिति है। कभी करोड दो करोड, अरब दो अरब, आदमियो मे एक आदमी उस स्थिति को उपलब्ध होता है। कभी ऐसा वक्त आ सकता है, और आना चाहिए विकास के दौर मे जबकि मनुष्य की योनि मे बडी सरल हो जाए यह बात तो इससे नीचे की योनियो मे भी एक-दो घटनाए होने लगें। मगर अब तक मनुष्ययोनि को छोडकर किसी दूसरी योनि मे नही घटी हैं।

प्रश्न—देवतायोनि मे ?

उत्तर--देवतायोनि मे कभी नही हो सकती। पशुयोनि मे कभी हो सकती है। निषेध नही है लेकिन देवयोनि मे बिल्कुल निषेध है। निषेध का कारण है कि देवयोनि मे एक तो शरीर नही है वहा किसी तरह का। दूसरा, देवयोनि मनोयोनि है। इस वजह से जैसे पशुयोनि मे चेतना का अभाव है वैसे देवयोनि मे शरीर का अभाव है। और शरीर भी साधना मे अनिवार्य कडी है। उसके बिना साधना करना बहुत मुश्किल है, असम्भव है। जैसे पशु मे बुद्धि न होने से मुश्किल हो गई है, ऐसा देव मे शरीर न होने से मुश्किल हो गई है। लेकिन पशु मे कभी भी बुद्धि विकसित हो सकती है, मगर देव मे कभी शरीर विकसित नही हो सकता। वह अशरीरयोनि है। देव को जब मुक्ति होती है तब उसको फिर मनुष्ययोनि मे वापस लौटना पडता है। यानी अब तक जो मुक्ति का द्वार रहा है वह मनुष्ययोनि के अतिरिक्त कोई योनि नही है। पशुओ को मनुष्य तक आना पड़ता है और देवताओ को पुन मनुष्य तक लौटना पडता है। इसलिए मैंने कल रात कहा था कि मनुष्य चौराहे पर खडा है। जैसे कि मैं आपके घर तक गया चौराहे से, फिर मुझे दूसरी तरफ जाना है तो मैं फिर चौराहे तक वापस आऊगा। तो देवयोनि बडी सुखद है, पशुयोनि बडी दुखद है। सुखद जरूर है वह देवयोनि लेकिन सुख अपने तरह के बन्धन रखता है, दुख अपने तरह के बंधन रखता है। और सुख से भी ऊब जाती है स्थिति जैसे वह दुख से ऊब जाती है। और बड़े मजे की बात है यह कि अगर बहुत सुख मे कोई आदमी हो तो वह अपने हाथ से दुख पैदा करना शुरू कर देता है। अब जैसे कि अमेरिका से आते हुए बीटल हैं, हिप्पी हैं। वे सब सुखी घरो के लड़के हैं, अत्यन्त सुखी

घरो के लडके है। अब उन्होने दुख अपनी तरफ से पैदा करना शुरू कर दिया है क्योकि सुख उबाने वाला हो गया है। मुझे बनारस मे एक हिप्पी मिला। वह सडक पर भीख माग रहा था। करोडपती घर का लडका है, वह दस पैसे माग रहा है और प्रसन्न है। झाड के नीचे सो जाएगा दस पैसे माग कर, कही होटल मे खाना खा लेगा। प्रसन्न है। क्यो प्रसन्न है? वह सुख भी उबाने वाला हो गया है जहा सब सुनिश्चित है। सब सुबह वक्त पर मिल जाता है, साझ वक्त पर मिल जाता है, और वह सो जाता है। सब सुनिश्चित है तो आदमी को कोई मौका नही रहा जिन्दगी अनुभव करने का वह सब तोडकर बाहर आ जाएगा। देवता बहुत सुख मे है लेकिन सुख उबाने वाला है। और हैरानी की बात है कि सुख दुख से ज्यादा उबाने वाला है। इसलिए दुखी आदमी को ऊब म आप कभी नही पाएगे। गरीब आदमी आपको ऊबा हुआ नही मिलेगा। अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। गरीब आदमी परेशान मिलेगा, ऊबा हुआ नही। लेकिन जिन्दगी मे उसको रस होगा। अमीर आदमी को रस भी नही होगा जिन्दगी म। तो देवताओ के जगत मे ऊब सबसे ज्यादा उपद्रव ह, मनुष्यो के जगत म चिन्ता सब से ज्यादा उपद्रव है। और यह जानकर आप हैरान होगे कि कोई पशु कभी ऊब मे नही होगा। आप किसी कुत्ते को ऊबा हुआ नही देखेगे, कोई पक्षी आपको ऊबा हुआ नही दिखेगा। न चिन्तित है, न ऊबा ह क्योकि चेतना ही नही है। जो बोध होना चाहिए इन चीजो का, वही नही है। गरीब आदमी चिन्तित मिलेगा, अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। ऊब ही उसकी चिन्ता है। तो देवताओ के जगत मे ऊब सबसे बडी समस्या है। चूकि शरीर नही है, मन की इच्छा करते ही पूरी हो जाती है। आपको कल्पना ही नही हो सकती कि आप मन मे इच्छा करे और वह तत्काल पूरी हो जाए। तो आप दो दिन बाद इतने ऊब जाएगे, जिसका कोई हिसाब नही। क्योकि आपने जो औरत चाही वह हाजिर हो गई, आपने जो भोजन चाहा वह हाजिर हो गया, जो मकान चाहा वह बन गया। और कुछ भी न करना पड़ा। 'चाह' काफी थी। चाह की आपने और वह पूरी हो गई। आप दो दिन बाद इतने घबडा जाएगे कि कहेगे "इतनी जल्दी नही, यह तो सब व्यर्थ हुआ जा रहा है।" क्योकि पाने का जो रस था, वह चला गया। उपलब्ध करने का, जीतने का, प्रतीक्षा करने का जो रस था, वह सब चला गया। वहा कुछ भी नही है। न प्रतीक्षा है, न उपलब्धि के लिए श्रम है, न चेष्टा है, न कुछ और है। आप बैठे हैं।

आपने जो चाहा वह हो गया। अमीर आदमी इसलिए ऊब जाता है कि वह बहुत सी चीजे चाहता है और वे तत्काल पूरी हो जाती हैं। गरीब आदमी नही ऊबता है क्योंकि वह चाहता है अभी और पचास साल बाद पूरी हो पाती हैं तो पचास साल वह रस मे रहता है अब पूरी होगी, अब पूरी होगी। देवयोनि सुख की है लेकिन ऊब की है। मनुष्य अभी तक चौराहे पर खडा है जहा से किसी को लौटना पडे। इसलिए मनुष्य को मैं योनि नही कहता। वह चौराहा है। पशु उधर आते है। देवता उधर आते हैं। सब उधर आते हैं। पौधे वहां आते है, पत्थर वहा आते हैं, सब वहा आते है। वह चौराहा है। कुछ लोग ऐसे है जो चौराहे पर ही रुके रहने का तय कर लेते है। तो वे चौराहे पर ही रुके रहते हैं। कुछ लोग ऐसे है जो कोई रास्ता चुन लेते हैं। वे देवता की तरफ भी जा सकते है, मुक्ति की तरफ भी जा सकते हैं।

प्रश्न—वापिस नहीं लौट सकते है ?

उत्तर वापिस नही लौट सकते। उसका कारण है। क्योंकि जो भी हमने जान लिया, जी लिया उसमे पीछे लौटने का उपाय नही रह जाता। जो आपने जान लिया उसको आप अनजाना नही कर सकते। उसे अनजाना करने का मामला असम्भव है। और आपकी चेतना जितनी विकसित हो गई, उससे नीचे उसे नही गिरा सकते। जैसे कि एक बच्चा पहली कक्षा मे पढ़ता है तो वह दूसरी कक्षा मे जा सकता है। पहली कक्षा मे रुक सकता है लेकिन नीचे नही उतर सकता। दूसरी कक्षा मे पढ़ता है, फेल हो जाय तो वह दूसरी मे रुक सकता है, पास हो जाए तो तीसरी मे जा सकता है। लेकिन पहली मे उतरने का कोई उपाय नही ? पहली पास हो चुका। पहली मे वापिस जाने का कोई उपाय नही। हम तो कर भी सकते हैं उपाय क्योंकि स्कूल हमारी कृत्रिम व्यवस्था है। लेकिन जीवन की जो व्यवस्था है, उसमे यह असम्भव है। जहा से हम पार हो गए, उत्तीर्ण हो गए वहा वापस लौटना नही।

प्रश्न : शास्त्रों मे ऐसा कैसे लिखा है कि अन्य योनियों मे रहना पड़ता है मनुष्य को ?

उत्तर : सिर्फ आपको भयभीत करने के लिए।

प्रश्न : तादात्म्य के सम्बन्ध में मैं अब तक ऐसा ही समझता रहा कि जिस व्यक्ति को ज्ञान होता है उसका तादात्म्य सम्पूर्ण जगत से युगपत् हो

जाता है, ऐसा नहीं कि स्थावर से कर लिया तो चेतन से नहीं, चेतन से कर लिया तो स्थावर से नहीं। पर आपके कहने से ऐसा लगा जैसे महावीर का तादात्म्य जब जड़ के साथ है, वृक्ष के साथ है तो मनुष्य के साथ नहीं है। अन्यथा जब उनके कान मे जो व्यक्ति कीले ठोक रहा था, वह कीले न ठोकता। तो मै यही मान रहा था अब तक कि तादात्म्य जब होता है तब युगपत् सबके साथ हो जाता है, एक-एक के साथ अलग-अलग नहीं होता है।

उत्तर : बिल्कुल ठीक। जब पूर्ण तादात्म्य होता है तो युगपत् हो जाता है। लेकिन वह मोक्ष मे ही होता है। और जो मैंने कहा कि महावीर उन लोगों मे से है जो परिपूर्ण मोक्ष पाने के पहले वापस लौट आए है। वह तादात्म्य तो होता है लेकिन तब महावीर मिल जाते है। पूर्ण तादात्म्य मे फिर महावीर नही रह जाते है। और सन्देह पहुचाने का भी उपाय नही रह जाता। इसलिए जो मुक्त हो जाता है वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा कोई सदश नही पहुचाता आपको। उसका तादात्म्य आपसे है। सन्देश पहुचाने के लिए महावीर लौट आए है वापिस। ज्ञान पूरा हो गया है लेकिन अभी डूब नही गए है सागर म। जैसे एक नदी पहुच गई है सागर के किनारे और डूबने के पहले ही लौटकर एक आवाज देती है। जिब्रान ने इस प्रतीक का उपयोग किया है कि मैं उस नदी की जाति हू जो सागर मे गिरने के करीब पहुच गई है और इसके पहले कि सागर मे गिर जाऊ उन सबका स्मरण आता है जो मार्ग मे पीछे छूट गए है। वे पथ, वे पहाड, वे झीले, वे तट, क्या एक बार लौट कर देखने की आज्ञा न मिलेगी? इसके पहले कि सागर मे गिर जाऊ एक बार लौट कर देख लू उन सबको, जिनके साथ मै रहा और अब कभी नही होऊगा। तो उस क्षण पर महावीर पहुच गये है, जहा से आगे सागर है, जहा पूर्ण तादात्म्य हो जाएगा, जहा महावीर नही रह जाएगे जैसे नदी सागर मे खो जाएगी। खबर पहुचानी है तो उसके पहले। फिर खबर पहुचाने का कोई उपाय नही है। किसको खबर पहुचानी है, कौन पहुचाएगा? इसलिए मैने कहा कि तीर्थंकर का मतलब है ऐसा व्यक्ति जो मोक्षद्वार स एक बार वापस लौट आया है उनके लिए जो पीछे रह गए है और उनको खबर देने आया है। इस हालत मे तादात्म्य सब मे नही होता है। वह जिससे तादात्म्य चाहेगा और व्यवस्था बनाए रहा तादात्म्य की तो उसमे तादात्म्य हो जाएगा। वह युगपत् नही होगा। वह एक

विशिष्ट दिशा मे एक साथ एक बार होगा । दूसरी दिशा मे दूसरी बार होगा । तीसरी दिशा मे तीसरी बार होगा । मोक्ष मे तो युगपत् हो जाएगा ।

प्रश्न · उनका कोई व्यक्तित्व इस समय है या नहीं ?

उत्तर · मोक्ष होते ही किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नही रह जाता लेकिन हमारा व्यक्तित्व है जो हम अमुक्त है । असल मे हमारी कठिनाई यह है कि हम एक ही तरह के व्यक्तित्व को जानते है । व्यक्तित्व शरीर का है, मन का है । एक व्यक्ति खो गया अनन्त मे । है मौजूद । अनन्त होकर मौजूद है । आप तो सीमित है । अगर आप सागर के तट पर भी जाएगे तो भी चुल्लू भर पानी भर सकते है । लेकिन जो नदी सागर मे खो गई है उसका पता लगाना मुश्किल है कि वह कहा खो गई है । गगा गिर गई है सागर मे । लेकिन गगा का कण-कण मौजूद है सागर मे । वह खो गई है सागर मे, मिट नही गई । जो था वह तो अब भी है । सीमा की जगह असीम हो गया है । ऐसी कुछ विधि है कि सागर के तट पर जब आप खड़े होकर गगा को पुकारे तो वे अणु जो अनन्त सागर मे खो गए है उस तट पर इकट्ठे हो जाएगे । आप चुल्लू भर गगा ले सकते है सागर से । मै उदाहरण के लिए कह रहा हू । यह पुकार है आपकी अणुओ का क्योकि अणु कही खो नही गया है । वह सब सागर मे मौजूद है । क्या कठिनाई है कि पुकार पर वे अणु आपके पास चले न आए और गगा का चुल्लू भर पानी आपको सागर से मिल जाए । कठिनाई नही है । इसी तरह चेतना के महासागर मे महावीर जैसा व्यक्ति खो गया है । लेकिन खोने के पहले ऐसा प्रत्येक व्यक्ति कुछ ऐसे सकेत छोड जाता है जो कभी भी उस अनन्त के किनारे खडे होकर पुकारे जाए तो उसके अणु आपको उत्तर देने के लिए समर्थ हो जाएगे । इस सबकी पूरी पूरी अपनी टेकनीक है । जैसे आपने कभी रास्ते पर देखा होगा कि एक मदारी खेल दिखा रहा है । एक लडके की छाती पर ताबीज रख दिया है, लडका बेहोश हो गया है और वह पूछता है कि अब आपकी घडी मे कितना बजा है ? लडका बताता है । वह आपके नोट के नम्बर बताता है, वह आपका नाम बताता है, और फिर वह मदारी ताबीज बेचना शुरू कर देता है कि यह छ-छ आने के ताबीज है । और ताबीज की यह शक्ति है जो आप देख रहे है अपनी आखो के सामने । आपको भी लगता है कि ताबीज की बडी भारी शक्ति है । छ आने देकर आप ताबीज खरीद लेते है । घर आते है । आप कुछ भी करिए ।

ताबीज से कुछ भी नही होगा। क्योकि ताबीज की शक्ति ही न थी। मामला बिल्कुल दूसरा था। उस लडके को बेहोश करके बहुत गहरी बेहोशी मे कहा गया है कि जब भी यह ताबीज तेरी छाती पर रखेंगे तू बेहोश हो जाएगा। इसको कहते है पोस्ट हिपनाटिक सजेशन। अभी बेहोश है वह। अभी उसको कह रहे हैं यह तावीज पहचान ले ठीक से। आख खोल ! वह बेहोश है। इतनी चौडाई का यह लाल रग का ताबीज जब भी तेरी छाती पर हम रखेगे तू तत्काल बेहोश हो जाएगा। ऐसा महीनो उसको बेहोश किया जाता है और वह ताबीज बता कर उसके मन मे यह सुझाव बैठाया जाता है।

वह ताबीज सकेत हो गया। जैसे ही उसकी छाती पर रखा कि वह बेहोश हो गया। अब उसको सबके सामने बेहोश नही करना पडता, नही तो बेहोश करने मे वक्त लगता है। बेहोश करने की शिक्षा पहले दे दी है। और ताबीज से एसोसिएशन जोड दिया है उसका। अब ताबीज जब भी छाती पर रखेंगे, वह बेहोश हो जाएगा। बेहोश होने से ही वह फैल गया सब मे। अब वह वही से पढ सकता है आपके खीसे के नोट के नम्बर। क्योकि चेतना बहुत फैली हुई है नीचे। इधर छोटे से चेहरे से दिखाई पड रही है, उधर पीछे फैलती चली गई है। अगर यहा से बेहोश कर दी जाए तो वह वहा पूरे से सम्बन्ध जोड लेगी। जैसा इस बहोश के साथ ताबीज का सम्बन्ध जोडा गया है, ऐसा प्रत्येक शिक्षक जो पीछे भी उपयोगी होना चाहता है और जो उसके पीछे भी उसका सहयोग मार्गदर्शन चाहेगे वह उनके लिए व्यवस्थित सूत्र छोड जाता है कि इन सूत्रो का प्रयोग करने से मै पुन उपस्थित हो जाऊगा।

दक्षिण मे एक योगी था—ब्रह्मयोगी। अभी कुछ वर्ष पहले ब्रटन उससे आकर मिला। तो उसने अपना एक फोटो दिया ब्रटन को। उसने कहा मैं आपको गुरु बना लेता हू लेकिन मै तो लदन चला जाऊगा। उसने कहा इससे क्या फर्क पडता है। लदन कोई बहुत दूर तो नही। तुम यह फोटो ले जाओ। तुम इस भाति इस आसन मे बैठकर, इस तरह इस फोटो को रखकर एक दो मिनट एकाग्र होकर फोटो को देखना। और तुम्हे जो प्रश्न पूछना हो, पूछना। उत्तर तुम्हे आ जाएगा। ब्रटन बहुत हैरान हुआ कि यह कैसे होगा लेकिन वह सारी व्यवस्था की जा सकती है। उसने कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर एकदम आ गया ठीक उसी ध्वनि मे, उसी शब्दावली मे जिसमे ब्रह्मयोगी बोलता है। उसने वह सब लिख रखा जब भी उसने जो जो पूछा। पीछे

आकर उसने ब्रह्मयोगी को पूछा कि मैने एक दफा यह पूछा था, आपने क्या कहा था। तो जो उसने लिखा था उसने बताया कि 'मैंने' यह कह दिया था। अब यह ऐसा उपाय है जिससे काल और क्षेत्र मिट जाते है, और सम्बन्ध हो जाता है। जो लोग बिल्कुल खो गए है अनन्त मे, वे ही पीछे उपाय छोड जाते है। सभी नही छोड जाते। यह उनकी मर्जी पर निर्भर है कि वे छोडे या न छोडे। कोई शिक्षक कुछ भी नही छोड जाते, कोई शिक्षक कुछ छोड जाते है। महावीर निश्चित छोड गए है कि इस उपाय से सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। महावीर का कोई व्यक्तित्व नही बनता लेकिन उस अनन्त से उत्तर आ जाता है। इसलिए मैने कहा कि महावीर मे अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। कुछ शिक्षको म सम्बन्ध स्थापित होना असम्भव है जैसे जरथुस्थ्र। उमस कोई सम्बन्ध स्थापित नही हो सकता क्योकि उसने कोई उपाय नही छोडा है। उसकी अपनी समझ है। वह कहता है कि पुराने शिक्षक की क्यो फिक्र करनी। नए शिक्षक आते रहेगे, तुम उनसे सम्बन्ध बनाना। जरथुस्थ् से क्या लेना-देना। उसकी अपनी समझ है। महावीर की अपनी समझ है, वह यह कि क्या फिक्र तुम्हे, मै ही काम पड सकता हू, मेरा उपयोग किया जा सकता है।

यह अपनी समझ की बात है। सम्बन्ध बिल्कुल स्थापित किए जा सकते है लेकिन जो शिक्षक उपाय छोड गया हो उसी से।

प्रश्न : महावीर के बाद किसी को इस सांकेतिक भाषा (कोड वर्ड) का पता है ?

उत्तर : हा, पता है लेकिन यह पता नही कि यह काहे के लिए है और इसकी क्या विधि है। यानी जैसे मै आपको लिखकर दे जाऊ, कुछ दिन तक उसका उपयोग होता रहे, शास्त्र न लिखे जाए। मगर जब उपयोग छूट जाएगा या कुछ लोग खो जाएगे जो जानते थे तब झगडे चलेगे। झगडे तो पीछे चलते ही है क्योकि फिर पूछना मुश्किल हो जाता है।

प्रश्न . आज महावीर से सम्पर्क बनाने वाला कोई नहीं है ?

उत्तर : नही, कोई नही है, मगर सम्पर्क आज भी हो सकता है। उनकी परम्परा मे कोई नही है लेकिन और लोगो ने सम्पर्क स्थापित किए है महावीर से। कुछ लोग निरन्तर श्रम कर रहे है। ब्लेवटस्की ने करीब-करीब सभी शिक्षको से सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की है। उनमे महावीर भी एक शिक्षक है।

ब्लेवटस्की एक रूसी महिला है। थियोसोफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री है। और उसके साथ अल्काट ने भी सम्बन्ध स्थापित किए है, एनी बेसेंट ने भी। ये सब मर चुके है। थियोसाफी मे आज कोई ऐसा नही रहा है। वह स्रोत सूख गया है। लेकिन थियोसोफिस्टो ने हजारो साल बडी मेहनत की और जो बडे से बडा काम किया वह यह कि सारे पुराने शिक्षको से सम्बन्ध स्थापित किया, ऐसे शिक्षकों से भी जिनकी कोई किताब भी नही बची थी।

प्रत्येक शिक्षक से सम्बन्ध स्थापित करने की अलग-अलग विधिया है। कुछ से सम्बन्ध स्थापित नही हो सका है। या तो विधि ठीक नही है या करने वाला ठीक नही कर पा रहा है। मै चाहता हू कि इधर कुछ लोग उत्सुक हो तो बराबर इस विधि पर काम करवाया जाए। इसमे कोई कठिनाई नही है।

प्रश्न : महावीर के सम्बन्ध मे आप जो कुछ कह रहे है वह बहुत मुश्किल और रहस्यवादी बनता चला जा रहा है। ऐसा जो सामान्य व्यक्ति की समझ मे आ जाए और करने लायक भी हो महावीर का वह सन्देश कहे। क्योंकि यह जो आप कह रहे है बहुत ही थोडे लोगों के पल्ले पड़ने वाली बात है।

उत्तर : बात ही ऐसी है। असल मे जिन्हे भी करना है, उन्हे असाधारण होने की तैयारी दिखानी पडती है। कोई सत्य साधारण होने को कभी तैयार नही है। व्यक्तियो को ही असाधारण होकर उसे झेलना पडता है और सत्य को साधारण किया तो असत्य से भी बदतर हो जाता है। यानी सत्य उतर कर तुम्हारे मकान के पास नही आएगा। तुम्हे ही जाकर सत्य की चोटी तक पहुचना होगा और सत्य अगर आ गया तुम्हारे मकान तक तो बाजार मे बिकने वाला हो जाएगा। उसका कोई मूल्य नही रहेगा।

पंचम प्रवचन
२१.६.६६ रात्रि

५

महावीर ने जो जाना उसे जीवन के भिन्न-भिन्न तलो तक पहुचाने की अथक चेष्टा की है। कल हम सोचते थे कि मनुष्य के नीचे जो मूक जगत है उस तक महावीर ने कैसे सवाद किया ? कैसे वह प्रतिध्वनित किया जो उन्हे अनुभव हुआ ? दो बाते छूट गई थी वह विचार कर लेनी चाहिए। एक तो मनुष्य से ऊपर के लोक की है। उन लोगो तक महावीर ने कैसे बात पहुचाई और मनुष्य तक पहुचाने के उन्होने क्या-क्या उपाय खोजे। देवलोक तक बात पहुचानी सर्वाधिक सरल है। मगर देव जैसी कोई चीज की स्वीकृति हमे बहुत कठिन मालूम पडती है। जो हमे दिखाई पडता है हमारे लिए वही सत्य है। जो नहीं दिखाई पडता है, वह असत्य हो जाता है। और देव उस अस्तित्व का नाम है जो हमे साधारणत दिखाई नही पडता लेकिन थोडा-सा भी श्रम किया जाए तो उस लोक के अस्तित्व को भी देखा जा सकता है। उससे सम्बद्ध भी हुआ जा सकता है। साधारणत यह ख्याल है कि देव कही और, प्रेत कही और, हम कही और जगह पर रहते है। यह बात एकदम ही गल्त है। जहा हम रह रहे हैं, ठीक वही देव भी हैं और प्रेत भी है। प्रेत वे आत्माए है जो इतनी निकृष्ट है कि मनुष्य होने की सामर्थ्य उन्होने खो दी है और नीचे उतरने का कोई उपाय नही रहा है। वे एक कठिनाई मे है। ऐसी आत्माए प्रतीक्षा करेगी जब तक उन्हे योग्य देह उपलब्ध हो जाए या उनके जीवन मे परिवर्तन हो जाए, रूपान्तरण हो जाए और वे जन्म ग्रहण कर सके। देव वे आत्माए है जो मनुष्य से ऊपर उठ गई है लेकिन उनमे मोक्ष को उपलब्ध करने की सामर्थ्य नही है। यह प्रतीक्षामय जीवन है। यह कही दूर दूसरी जगह नही, किसी चाद पर नही, ठीक हमारे साथ है। और हमे कठिनाई होती है कि अगर हमारे साथ है तो हमे स्पर्श करना चाहिए, हमे दिखाई पडना चाहिए। कभी-कभी हमे स्पर्श भी करती है और कभी-कभी किन्ही छाहो मे दिखाई भी पड़ती है। साधारणत नही। क्योंकि हमारे होने के ढग और उनके होने के ढग मे बुनियादी भेद है। इसलिए

दोनो एक ही जगह मौजूद होकर भी, एक दूसरे को काटने, एक-दूसरे की जगह घेरने का काम नही करती। जैसे इस कमरे मे दिए जल रहे हैं। और दियो के प्रकाश से कमरा भरा हुआ है, मै आऊ और एक सुगन्धित इत्र यहा छिडक दू तो कोई मुझसे कहे कि कमरा प्रकाश से बिल्कुल भरा हुआ है, इत्र के लिए जगह नही है। इत्र पूरे कमरे मे फैल कर सुगध भर दे अपनी। प्रकाश भी भरा था कमरे मे, सुगध भी भर गई कमरे मे। न सुगध प्रकाश को छूती है, न प्रकाश सुगध को छूता है। न एक-दूसरे को बाधा पडती है इसमे कि कमरा पहले से भरा है। उन दोनो का अलग अस्तित्व है। प्रकाश का अपना अस्तित्व है, सुगध का अपना अस्तित्व है। दोनो एक दूसरे को न काटते, न छूते। दोनो समानान्तर चलते है। फिर कोई तीसरा व्यक्ति आए और वीणा बजाकर गीत गाने लगे और हम उसमे कहे कि कमरा बिल्कुल भरा हुआ है, वीणा बज नही सकेगी। प्रकाश पूरा घेरे हुए है, सुगध पूरा घेरे हुए है। अब तुम्हारी ध्वनि के लिए जगह कहा है? लेकिन वह वीणा बजाने लगे और ध्वनि भी इस कमरे को भर ले। ध्वनि को जरा भी बाधा नही पडेगी इससे कि प्रकाश है कमरे मे, कि गध है कमरे मे। क्योकि ध्वनि का अपना अस्तित्व है ध्वनि अपनी स्पेस पैदा करती है अलग, ध्वनि का अपना आकाश है, गध का अपना आकाश है, प्रकाश का अपना आकाश है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक अस्तित्व का अपना आकाश है और दूसरे को काटता नही।

इसलिए जब हमे यह सवाल उठते हे कि कहा रहते है देवता, कहा जीते है प्रेत तो हम सदा ऐसा सोचते है कि 'हमसे कही दूर'। ऐसी बात ही गलत है। वे ठीक समानान्तर हमारे जी रहे है, हमारे साथ। और यह बडा उचित ही है कि साधारणत' वे हमे दिखाई नही पडते और साधारणत हम उनके स्पर्श मे नही आते है, नही तो जीवन बडा कठिन हो जाए। लेकिन किन्ही घडियो मे, किन्ही क्षणो मे वे दिखाई भी पड सकते है, उनका स्पर्श भी हो सकता है; उनसे सम्बन्ध भी हो सकता है। और महावीर या उस तरह के व्यक्तियो के जीवन मे निरन्तर उनका सम्बन्ध और सम्पर्क रहा है जिसे परम्पराए समझाने मे एकदम असमर्थ हैं। वे बातचीत ऐसे ही हो रही है जैसे दो व्यक्तियो के बीच हो रही है—महावीर की, इन्द्र की या और देवताओ की। उसमे कही भी ऐसा नही है कि कोई कल्पनालोक मे बात हो रही हो। यह अत्यन्त आमने-सामने बात हो रही है। और यह किसी एक के साथ ऐसा

नही हो रहा है। बुद्ध के साथ भी वैसा हो रहा है, जीसस के साथ भी, मुहम्मद के साथ भी। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे भीतर कुछ उनसे सम्बन्धित होने का मार्ग है लेकिन प्रसुप्त है। मनुष्य के मस्तिष्क का शायद एक तिहाई भाग काम कर रहा है। दो तिहाई भाग बिल्कुल काम नही करता। इससे वैज्ञानिक भी चिन्तित हैं। अगर हम एक आदमी की खोपडी को काटे तो एक तिहाई हिस्सा केवल सक्रिय है। बाकी दो-तिहाई हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय है। शरीर मे और सब चीजें सक्रिय है। वैज्ञानिको को यह ख्याल आना शुरू हुआ है कि यह दो तिहाई हिस्सा जीवन के किन्ही तलो को स्पर्श करता होगा, अगर सक्रिय हो जाए। अब जैसे आपकी आख देखती हैं क्योकि आख मे जुडा हुआ मस्तिष्क का हिस्सा सक्रिय है। अगर वह हिस्सा निष्क्रिय हो जाए, आपकी आख देखना बद कर देगी। यह भी हो सकता है कि आख बिल्कुल ठीक हो लेकिन मस्तिष्क का वह हिस्सा, जिससे आख सक्रिय होती है निष्क्रिय पडा हो तो बिल्कुल ठीक आख नही देख सकेगी। एक लडकी मेरे पास आती थी। उस लडकी का किसी से प्रेम था और घर के लोगो ने उस विवाह को इन्कार कर दिया और लडकी को उस युवक को देखने की भी मनाही कर दी। सख्त पाबन्दी लगा दी। उसे घर के भीतर बिल्कुल कैद कर दिया। वह लडकी दूसरे दिन अधी हो गई। सब चिकित्सको को दिखाया गया। उन्होने जाच-पडताल की और कहा, आख तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह भी पक्का है कि उसे दिखाई नही पडता। वह मित्र मुझे कहे कि बडी मुश्किल मे हम पड गए। पहले तो हमने समझा कि वह सिर्फ धोखा दे रही है क्योकि हमने उस पर रुकावट लगाई थी। लेकिन अब तो डाक्टर भी कहते है कि आख ठीक है लेकिन उसे दिखाई नही पड रहा। मानसिक अधापन है उसे। इसका मतलब यह है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा जो आख से जुडकर आख को दिखाने का काम करता है बद हो गया है। जैसे ही उस लडकी को कहा कि जिसे वह प्रेम करती है वह उसे अब नही देख सकेगी, हो सकता है उसके मस्तिष्क को यह ख्याल आया हो कि अब देखने का कोई अर्थ ही नही। जिसे हम प्रेम करते है उसे ही न देख सकें तो अब देखने की भी क्या जरूरत है। और मस्तिष्क का वह हिस्सा बद हो गया और आख ने देखना बद कर दिया। बहुत से प्राणी है, बहुत सी योनिया हैं, जिनके पास मस्तिष्क का वह हिस्सा है जो देख सकता है लेकिन निष्क्रिय है। तो उन प्राणियो मे आखें पैदा नही हो पाई हैं। ऐसे भी प्राणी हैं जिनके पास

कान नही हैं। वह हिस्सा है जो सुन सकता है लेकिन निष्क्रिय है। इसलिए कान पैदा नही हो पाए। मनुष्य की पाच इन्द्रिया है अभी क्योकि मस्तिष्क के पाच हिस्से सक्रिय है। शेष बहुत बडा हिस्सा निष्क्रिय पडा हुआ है। अब वैज्ञानिको को भी ख्याल मे आया है कि वह जो शेष हिस्सा निष्क्रिय पडा है उसमे से अगर कुछ भी सक्रिय हो जाए तो नई इन्द्रिया शुरू होगी। अब जिस आदमी ने कभी प्रकाश देखा ही नही है वह कल्पना ही नही कर सकता कि प्रकाश कैसा है और जिसने ध्वनि नही सुनी वह कल्पना भी नही कर सकता कि ध्वनि कैसी है ? हम समझ लें कि एक गाव हो जिसमे सब बहरे हो तो उस गाव मे ध्वनि की चर्चा भी नही होगी। और अगर उन बहरो को कोई किताब मिल जाए जिसमे लिखा हो कि ध्वनि होती थी, या कही ध्वनि होती है तो वे सब हसेगे कि यह कैसी बात है। ध्वनि, यानी क्या ? ध्वनि कहा है—किस जगह है ? हम कहा ध्वनि को पकडे, कहा ध्वनि हमे मिलेगी ? उनके सब प्रश्न सगत होते हुए भी व्यर्थ होगे। हमारे मस्तिष्क के बहुत से हिस्से है जो निष्क्रिय है। और अगर वे सक्रिय हो जाए तो जीवन और अस्तित्व की अनन्त सम्भावनाओ से हमारे सम्बन्ध जुडने शुरू हो जाएगे। जैसे कि तीसरी आख की बात निरन्तर हम सुनते है। वह अगर सक्रिय हो जाए, वह हिस्सा जो हमारी दोनो आखो के बीच का निष्क्रिय पडा है सक्रिय हो जाए तो हम कुछ ऐसी बाते देखना शुरू कर देंगे जिनकी हमे कल्पना ही नही है। हवाई जहाज मे अगर आप बैठकर इजन के पास गए हो तो आपने राडार देखा होगा जो सौ मील या डेढ सौ मील आगे तक के चित्र देता रहता है। इसलिए अब चालक को हवाई जहाज के भीतर बैठकर बाहर देखने की कोई जरूरत नही क्योकि हवाई जहाज इतनी गति से जा रहा है कि अगर चालक देख भी ले कि सामने हवाई जहाज है तो भी उसे बचाया नही जा सकता टकराने से। क्योकि जब तक वह बचाएगा तब तक टकरा ही जाएगा। गति इतनी तीव्र है। अब तो उसे डेढ सौ-दो सौ मील दूर की ही चीजे दिखाई पडनी चाहिए। दो सौ मील पर उसे दिखाई पडे कि बादल हैं तो तभी वह बचा सकता है। और बचाते-बचाते वह दो सौ मील पार कर जाएगा, तभी वह बचा पाएगा, और बादल के आगे, नीचे या ऊपर हो जाएगा। तो राडार है जो दो सौ मील दूर से देख रहा है कि उसके दो सौ मील आगे वर्षा हो रही है कि बादल जा रहे हैं कि हवाई जहाज है, कि दुश्मन है, कि क्या है ? वह सब चित्र आ रहा है।

मनुष्य की जो तीसरी प्राख है, वह राडार से भी अद्भुत है। उसमे कोई स्थान और काल का सवाल ही नही। वहा दो सौ मील का सवाल नही है। वह एक बार सक्रिय हो जाए तो कही भी क्या हो रहा है उसके प्रति ध्यानस्थ होकर उस होने को तत्काल पकड सकनी है। आगे क्या होगा, उसकी बहुत सी सम्भावनाए भी पकडी जा सकती है। पीछे क्या हुआ है, ये सम्भावनाए भी पकडी जा सकती है। मस्तिष्क का एक और हिस्सा है जो अगर सक्रिय हो जाए तो हम दूसरे के मन मे क्या विचार चल रहे हैं, उनकी झलक पा सकते है। और हमारे मन मे जो विचार चल रहे है अगर हम उन्हे बिना वाणी के दूसरे मे डालना चाहे तो वह भी हो सकता है। सवाल है कि मस्तिष्क के हमारे और हिस्से कैसे सक्रिय हो जाए? मस्तिष्क का एक हिस्सा है जो सक्रिय होने से देवलोक से जोड देता है। उस जुड जाने के बाद हम खुद भी मुश्किल मे पड जाएगे क्योकि हम दूसरे को बता नही सकते कि यह हो रहा है।

स्विडनबोर्ग एक अद्भुत व्यक्ति हुआ। आठ सौ मील दूर एक मकान मे आग लग गई है बारह बजे और वह किसी मित्र के घर ठहरा हुआ है। वह एकदम चिल्लाया है पानी लाओ, आग लगी है, भागा और बाल्टी भर पानी लेकर आ गया। मित्रो ने कहा, 'कहा आग लगी है।' उसने कहा, 'अरे, बडी भूल हो गई।' बाल्टी नीचे रख दी। आग तो बहुत दूर लगी है। लेकिन जब मुझे दिखी तो मुझे ऐसा लगा कि यही लगी है। वह तो आठ सौ मील दूर लगी है। वह तो वियना मे लगी है। फला-फला घर बिल्कुल जला जा रहा है। मित्रो ने कहा कि आठ सौ मील दूर का फासला है यहा से कैसे तुम्हे दिख सकता है? उसने कहा : मुझे दिखता है बिल्कुल जैसे कि यहा आग लगी हो। मुझे दिख रहा है। तीन दिन लग गए खबर लाने मे। लेकिन ठीक जिस जगह उसने बताया था वही तक आग लगी थी, आगे नही लगी थी। उसने देवताओ के सम्बन्ध मे बहुत अद्भुत बातें कही हैं। यूरोप मे देवलोक के बारे जानकारी रखने वाला वह पहला आदमी है। उसने एक किताब लिखी . स्वर्ग और नरक। और यह बडी अद्भुत किताब है। इसमे उसने आखो देखे वर्णन दिए हैं। लेकिन उन पर तो भरोसा करने की बात नही उठती क्योकि हमारे लिए वह सब निरर्थक है। स्विडनबोर्ग की जिन्दगी मे और ऐसी घटनाए थी जिनकी वजह से लोगो को मजबूर होना पडा कि जो वह कहता है ठीक होगा। यूरोप के एक सम्राट ने उसे अपने घर बुलाया और

कहा मेरी पत्नी मर गई है। तुम उससे सम्बन्ध स्थापित करके मुझे कहो कि वह क्या कहती है ? उसने दूसरे दिन आकर खबर दी कि तुम्हारी पत्नी कहती है कि फला-फलां अलमारी मे ताला पडा है। चाबी उसकी खो गई है। वह तुम्हारी पत्नी के वक्त मे ही खो गई थी, उसका ताला तोडना पडेगा। उसमे उसने तुम्हारे नाम एक पत्र लिखकर रखा है और उस पत्र मे उसने ये-ये लिखा है। पत्नी को मरे पन्द्रह साल हो गए हैं। वह अलमारी कभी खोली नही गई। बडा सम्राट है, बडा महल है। चाबी खोजी गई, चाबी नही मिल सकी। वह पत्नी के पास ही हुआ करती थी। फिर ताला तोडा गया है। निश्चित उसमे एक बद लिफाफे मे रखा हुआ पत्र मिला जो पन्द्रह साल पहले उसकी पत्नी ने लिखा था। उसे खोला गया और वही इबारत जो स्वीडनबोर्ग ने बताई थी उसमे मिली।

ये जो सम्भावनाए है मस्तिष्क के और तलो के मुक्त हो जाने की, महावीर ने इन पर अथक श्रम किया है अभिव्यक्ति के लिए। अगर देवलोक के साथ अभिव्यक्ति करनी है तो हमारे मस्तिष्क का एक विशेष झिल्ली टूट जाना चाहिए, एक द्वार खुल जाना चाहिए। वह द्वार न खुल जाए तो उस लोक तक हम कोई खबर नही पहुचा सकते। जैसे मनुष्य तक खबर पहुचानी हो तो शब्द का द्वार होना चाहिए, नही तो पहुचाना मुश्किल हो जाएगा। वैसे उस लोक से भी मस्तिष्क के कुछ द्वार खुलने चाहिए। और हमे कठिनाई यह होती है कि जो हमारी सीमा है इन्द्रियो की उसमे अन्यथा को स्वीकार करना मुश्किल हो जाता है।

एक आदमी पिछले दूसरे महायुद्ध मे ट्रेन से गिर पडा और ट्रेन से गिरने के बाद एक अद्भुत घटना घटी जो पहले कभी नही घटी थी जमीन पर। ऐसे बहुत लोगो ने कहा था लेकिन उसका वैज्ञानिक विश्लेषण नही हो सका था। गिर जाने से उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा, जो निष्क्रिय भाग है, सक्रिय हो गया। और उसे दिन मे आकाश मे तारे दिखाई पडने लगे। तारे लुप्त होते नही, वे तो रहते है, लेकिन सूरज के प्रकाश मे ढक जाते हैं। हमारी आख समर्थ नही है उनको देखने मे। लेकिन उस आदमी को दिन मे तारे दिखाई पड़ने लगे। पहले लोगो न समझा कि वह पागल हो गया है। लेकिन जो जो उसने सूचनाए दी वे बिल्कुल सही थी। और जब प्रयोगशालाओ ने सिद्ध कर दिया कि जहा जो बताता है, वहा वह है उस वक्त तब फिर बडा मुश्किल हो गया। लेकिन वह आदमी घबडा गया था और उस आदमी को बडी मुश्किल हो गई थी।

उस आदमी के सिर का आपरेशन करना पडा ताकि उसे दिन में तारे दिखाई पडना बंद हो जाए। एक आदमी दूसरे महायुद्ध में चोट खाया, अस्पताल मे भर्ती किया गया और उसे ऐसा लगा कि आस-पास कोई रेडियो चला रहा है। उसने सब तरफ देखा कि अस्पताल मे कोई रेडियो नही चल रहा है लेकिन उसे साफ सुनाई पड रहा है। चोट लगने से उसका कान इस भाति हो गया कि वह जिस नगर मे था, दस मील के आस-पास के किसी भी स्टेशन को उसका कान पकडने लगा और बंद करने का कोई उपाय नही था। उस आदमी के पागल होने की नौबत आ गई। और जब पकडने लगा वह ध्वनिया, पहले तो शक हुआ किन्तु जब नर्सों और डाक्टरो ने कहा कि तुम पागल तो नही हो गए हो, यहा तो कोई रेडियो नही, यह शान्त भूमि है, यहा कोई रेडियो बज ही नही सकता, यहा कोई यदि आवाज हो तो हमको भी आनी चाहिए। तब उसने कहा कि फला-फला गीन की कडी आ रही है। वे लोग आगे गए, जाकर सामने के होटल मे रेडियो खोला। कडिया आ रही थी। फिर उन्होने ताल-मेल बिठाया। जिस नगर मे हुई थी यह घटना वह उस नगर के स्टेशन को पकड लेता था। उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा सक्रिय हो गया था, जो हमारा सक्रिय नही है। तब उसका आपरेशन करना पडा। अगर उसका वह हिस्सा सक्रिय रहता तो उसकी जिन्दगी मुश्किल हो जाती। क्योंकि रेडियो को तो हम बद कर सकते हैं, लेकिन विचार को बन्द नही कर सकते। वह चलता चला जाएगा।

हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाए अनन्त हैं। लेकिन स्वभावत जितनी सम्भावनाए प्रकट हुई हैं उन सबके आगे अधकार मालूम पडता है। वह मालूम पडेगा ही। यह जो अभी रूस मे एक वैज्ञानिक है फैयादो उसने एक हजार मील दूर तक टेलीपैथिक सन्देश भेजकर नए चमत्कार उपस्थित किए हैं। और, रूस मे यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि रूस इस तरह की बातो पर अनायास विश्वास करने के लिए कतई तैयार नही है। फैयादो ने मास्को मे बैठकर एक हजार मील के फासले पर तिफिलस नगर के एक व्यक्ति से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है। उसके मित्र एक बगीचे की भाड़ी मे छिपे हुए हैं और वायरलेस से सम्बन्ध है उनका। वह मित्र फैयादो से कहते हैं कि दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है। तुम उसे मास्को से सुझाव देकर सुला दो। फैयादो कहता है कि मैं पांच मिनट में उसे सुला दूंगा। वह पांच मिनट तक मास्को मे बैठकर चित्त को एकाग्र करके एक

हजार मील दूर तिफलिस के फला बगीचे में दस नम्बर की बेंच पर जो आदमी बैठा हुआ है, उसकी तरफ तीव्र प्रवाह से विचार भेजता है। और वह आदमी पांच मिनट बाद सो जाता है, उसी बेंच पर। लेकिन उसके मित्र कहते हैं कि हो सकता है कि वह थका-मादा हो और अनायास सो गया हो। तुम उसे तीन मिनट के भीतर उठा दो अब वापिस। वह उसे फिर सुझाव भेजता है उठने के। वह आदमी तीन मिनट के भीतर उठ जाता है। मित्र उस आदमी के पास जाते हैं और उससे पूछते हैं कि तुम्हे कुछ लगा तो नही। उसने कहा सच में बडी हैरानी की बात है। कुछ लगा जरूर। पहले मैंने ख्याल नही किया। जैसे मैं बेंच पर आकर बैठा, कोई मेरे भीतर जोर से कहने लगा . सो जाओ। और मैं बिल्कुल थका-मादा नही था। मैं किसी की प्रतीक्षा करने इस बगीचे मे आकर बैठा हू। कोई आने वाला है, उसकी प्रतीक्षा कर रहा हू। लेकिन इतने जोर से आया सो जाने का ख्याल मुझे कि मैं सो गया। और अभी-अभी किसी ने मुझे जोर से कहा : 'उठो! उठो! तीन मिनट के भीतर उठ जाना!' मेरी समझ मे कुछ नही आया कि क्या बात हो गई है। फिर फैयादो ने बहुत प्रयोग करके बताए और सिद्ध किया कि विचार की तरगें सम्प्रेषित होती हैं बिना वाणी के।

सोहन यहा बैठी हुई है। उसके घर मे मैं पहली या दूसरी दफा मेहमान था। वह रात आकर मेरे बिस्तर के नीचे बिस्तर लगाकर सो गई। और उसने कहा कि मैं तो आपसे कभी कुछ पूछती नही। सिर्फ एक सवाल मुझे पूछना है · आपकी मा का नाम क्या है? उससे मैंने कहा कि यह भी कोई पूछने की बात है। तू आंख बद कर ले। तुझे जो पहला नाम आ जाए, बोल दे। अगर वह कहती कि इससे कैसे होगा, कैसे पता चलेगा तो फिर मैं उसे बता देता। क्योकि वैसा कहने वाला व्यक्ति फिर संवेदनशील नही हो सकता। मगर उसने बात मान ली। उसने कुछ नही पूछा; आख बद कर ली और कहा 'सरस्वती।' मैंने कहा कि वही मेरी मा का नाम है। पर उसे विश्वास न पड़ा। उसने कहा कि मै यह कैसे मानू? पता नही आप किसी भी नाम मे 'हा' भर दे। मैंने कहा कि यह तो कोई कठिन बात नही है। तू मेरी मां से भी मिल लेना और पता लग जाएगा। यह झूठ कितनी देर चल सकता है?

अब यह कैसे हुआ? वह जब दो मिनट शात होकर लेट गई थी तब मैं मन में 'सरस्वती, सरस्वती' दोहराता रहा। चूंकि वह उत्सुक थी जानने को,

इसलिए उसके विचार शांत हो गए थे और शब्द उसके मन में प्रतिध्वनित हो गए। उसने कहा 'सरस्वती।' मगर उसको पता नहीं कि यह कैसे आया। थोड़े से इसको प्रयोग करके देखिए। आप रास्ते पर जा रहे हैं और सामने एक आदमी जा रहा है। आप दोनो आंखो की पलकें बंद करके उसकी गर्दन पर देखते रहना थोडी देर, पीछे चलते रहना चुपचाप और देखते रहना। और फिर मन में जोर से कहना कि पीछे लौटकर देखो। सौ मे निन्यानवे आदमी लौटकर पीछे देखेगा कि क्या बात है? और उसे पता भी नही चलेगा कि उसने पीछे लौटकर क्यो देखा? ठीक उसकी गर्दन पर अगर आपकी आखे केन्द्रित हो तब कोई भी विचार एकदम से सम्प्रेषित हो जाता है उसके प्रति। लेकिन होना चाहिए आपके पास तीव्रता से सप्रेषण करना। यानी अगर आप साथ मे ऐसा कहे कि 'पता नही कि लौटकर देखेगा कि नही देखेगा' तो सब गडबड हो जाएगा। क्योकि साथ-साथ आपका सन्देह भी सम्प्रेषित हो जाएगा और वह भी आदमी को पहुच जाएगा और फिर वे दोनो कट जाएगे। वह आदमी सीधा चला जाएगा, लौटकर पीछे नही देखेगा।

हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाओ का हमे ठीक-ठीक बोध नही है। देव-लोक से सम्बन्धित होने के लिए मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा है जो सक्रिय होना जरूरी है। सक्रिय होने से हम दूसरी दुनिया मे प्रवेश कर गए। जैसे रात हम सपने मे प्रवेश कर जाते हैं, सुबह जागकर फिर एक नई दुनिया शुरू हो जाती है, ठीक वैसे ही हम एक नई दुनिया मे प्रवेश कर जाते हैं। यह प्रवेश उतना ही है जैसे कि आपने रेडियो खोला और जो ध्वनिया चल रही थी वे पकडाई जानी शुरू हो गई। कोई ऐसा नही है कि रेडियो खोलने के वक्त ध्वनिया आनी शुरू हो जाती है। ध्वनिया इस कमरे मे पहले से ही दौड रही हैं, सिर्फ खोलने पर पकडी जानी हैं। देवता प्रतिक्षण उपस्थित हैं ही, केवल आपके मस्तिष्क की एक व्यवस्था खुल जाने पर वे पकडे जाते हैं, देखे जाते हैं। यह निर्भर करता है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा कैसे टूट जाए? उसके लिए दो-तीन बातें ख्याल मे रखनी चाहिए। एक बात कि अगर कोई व्यक्ति समग्र चेतना से, सारे शरीर को छोडकर सिर्फ दोनो आखो के बीच मे आज्ञाचक्र पर ध्यान को स्थिर करता रहे तो जहा हमारा ध्यान स्थिर होता है, वही सोए हुए केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाते हैं। ध्यान सक्रियता का सूत्र है। शरीर मे किन्ही भी केन्द्रों पर ध्यान जाने से वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं। जैसे एक ही ख्याल हमे है सैक्स के सैन्टर का, जिसका लोगो को अनुभव है।

कभी आपने ख्याल किया कि जैसे ही आपका ध्यान सैक्स की तरफ जाएगा, सैक्स केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाएगा। जागते मे ही नही, सोते मे भी, स्वप्न में भी अगर सैक्स की तरफ ख्याल गया तो सैक्स केन्द्र फौरन सक्रिय हो जाएगा। सिर्फ ध्यान जाने से ही, सिर्फ जरा सी कल्पना उठने से ही सैक्स वासना का केन्द्र सक्रिय हो जाएगा। एक केन्द्र का हमे सामान्य ख्याल है, इसलिए मैं उदाहरण के लिए कहता हू। दूसरे केन्द्र का हमे सामान्यत बोध नही है। फिर भी एक-दो केन्द्रो का थोडा-थोडा हमे बोध है। ऐसा कोई आदमी नही मिलेगा जो प्रेम की बात करते वक्त सिर पर हाथ रखे, मगर हृदय पर हाथ रखने वाला आदमी मिलेगा। स्त्रिया जब प्रेम की बात करेंगी तब उनका हाथ हृदय पर चला जाएगा। वह एक केन्द्र है जो प्रेम का ध्यान आते ही सक्रिय हो जाता है। लेकिन जैसे कोई चिन्तित है और विचार मे सक्रिय है तब उसका हाथ सिर पर जा सकता है, माथे पर जा सकता है। क्योकि चिन्तित व्यक्ति को जहा विचार सक्रिय होता है उसी केन्द्र के आस-पास बोध हो जाएगा। आज्ञाचक्र वह जगह है जिसे दूसरे लोग 'तीसरी आख' (थर्ड आई) कहते है। अगर सारा ध्यान वहा केन्द्रित हो जाए तब करीब-करीब भीतर एक आख के बराबर का एक टुकडा बिल्कुल खुल जाता है। कोई ऊपर से खोजने जाएगा तो उसे पता नही चलेगा लेकिन भीतर अगर ध्यान केन्द्रित हो तो ध्यान मे व्यक्ति को निरन्तर पता चलेगा कि कोई चीज वहां टूट रही है, कोई छेद वहा हो रहा है। और जिस दिन उसे लगता है कि छेद हो गया उसी दिन उसे वे चीजें, जिन्हे हम देव कहे, प्रेत कहे, उनसे उसके सीधे सम्बन्ध स्थापित हो जाते है, जो हमारे सम्बन्ध नही है।

तो महावीर का बहुत समय जिसको हम साधनाकाल कह रहे है अभि-व्यक्ति के माध्यम खोजने का, इस तरह के केन्द्रो को सक्रिय करने और तोडने के लिए व्यतीत हुआ। इस तरह के केन्द्रो को तोडने मे जितना ज्यादा ध्यान बिना बाधा के दिया जा सके उतना उपयोगी है। क्योकि मामला वहा ऐसा है कि अगर आप पाच चोटे करके छोडकर चले गए तो दुबारा जब आप आएगे तब तक पाच चोटे विलीन हो चुकी होगी। यानी आपको फिर 'अ' 'ब' 'स' से शुरू करना होगा। यह वजह है कि महावीर को बहुत दिन तक के लिए खाना, पीना, निद्रा आदि सारे काम त्याग करने पडे। चोट सतत और सीधी होनी चाहिए। कोई भी बाधा बीच मे नही होनी चाहिए। क्योकि जब कोई दूसरी बात बीच मे आएगी ध्यान वहा जाएगा। और ध्यान दूसरी जगह

गया कि वहां से जो काम हुआ था वह अधूरा छूट जाएगा। वह अधूरा न छूट जाए इसलिए जीवन के सारे कामो से—जो बीच मे बाधाएं डाल सकते हैं—ध्यान हटाना पडेगा। तभी एक केन्द्र को पूरी तरह से सक्रिय किया जा सकता है। तो महावीर निरन्तर एकान्त मे खडे हैं, और यह ध्यान रहे कि महावीर का भी साधना का अधिकतम हिस्सा खडे-खडे व्यतीत हुआ है। दूसरे साधकों ने बैठकर साधना की है। महावीर की अधिकतम साधना खडे-खडे हुई है। महावीर के ध्यान का प्रयोग भी खडे-खडे करने के लिए है। कुछ कारण है उसमे। बैठा हुआ आदमी, लेटा हुआ आदमी सो सकता है। और अगर एक क्षण को भी वहा मे ध्यान हट जाए तो पहला काम एकदम विलीन हो जाएगा। उस चक्र पर तो सतत काम करना चाहिए। वह काम खड़े होकर ही किया जा सकता है क्योंकि खडे हुए आदमी की सोने की सम्भावना एकदम न्यून हो जाती है, क्षीण हो जाती है। निद्रा से बचने के कई उपाय किए उन्होने। और कोई कारण नही। सिर्फ कारण इतना है कि निद्रा मे उतनी देर के लिए ध्यान अलग हो जाएगा और तब हो सकता है कि उतना काम व्यर्थ हो जाए। निद्रा से बचने के लिए भोजन को छोड देना चाहिए क्योंकि नीद का पच्चहत्तर प्रतिशत भोजन से सम्बन्धित है। जैसे ही भोजन पेट मे गया, मस्तिष्क की सारी शक्ति पेट की तरफ आनी शुरू हो जाती है, भोजन को पचाने के लिए। इसलिए भोजन करने के बाद नीद का हमला शुरू हो जाता है कारण कि मस्तिष्क मे जो शक्ति काम कर रही है उसे पहले जरूरी है भोजन पचाना। क्योंकि ज्यादा देर वह बिना पचा रह जाए तो वह जहर हो जाएगा, ठडा हो जाएगा। इसलिए पेट सारे शरीर से एकदम सारी शक्ति को वापस बुला लेता है और मस्तिष्क की शक्ति उतर जाती है नीचे। आखे झपकने लगती है, नीद आने लगती है। अगर नीद को बिल्कुल ही तोड़ना हो तो पेट मे कुछ नही होना चाहिए। इसलिए उपवास के दिन आपको नीद आना मुश्किल है। क्योंकि उस शक्ति को नीचे आने का कोई उपाय ही नही रह जाता। और जो लोग आज्ञाचक्र पर काम कर रहे हैं, वहा ध्यान लगा है उनकी शक्ति नीचे नही आनी चाहिए। वह ऊपर ही लगी रहनी चाहिए तो ही वह चक्र खुल सकता है। सत्य की अनुभूति से वह चक्र नही खुल जाता। हां, उस अनुभूति को उस चक्र के माध्यम से प्रकट करना हो तो उसे खोलने की जरूरत पड़ती है। तिब्बत ने इस दिशा मे सर्वाधिक मेहनत की है, तीसरी आंख के सम्बन्ध मे। तोड़ने के लिए अथक

श्रम किया है। और तिब्बत में निरन्तर ऐसे लोग पैदा होते रहे जिन्होंने उसका पूरा उपयोग किया। आज्ञाचक्र टूट जाने के माध्यम से ही देवताओ से जुडा जा सकता है। वहा वाणी की कोई जरूरत नही रहती। भाव जो भीतर पैदा हो वह आज्ञाचक्र से प्रतिध्वनित हो जाता है और देव-चेतना तक प्रवेश कर जाता है।

यह मैंने दो बाते कही। जड से सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी शिथिल हो जानी चाहिए कि जड के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाए और मनुष्य से ऊपर की योनियो से सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी एकाग्र होनी चाहिए कि आज्ञाचक्र टूट जाए। सर्वाधिक कठिनाई मनुष्य के साथ है। मनुष्य से सबधित होने के लिए महावीर ने तीन प्रयोग किए हैं। पहला प्रयोग यह है कि किसी भी मनुष्य को सम्मोहन की हालत मे कोई भी सन्देश दिया जा सकता है। और उस वक्त सन्देश उसके प्राणो के आखिरी कोर तक सुना जाता है। और इस वक्त चूकि तर्क बिल्कुल काम नही करता, *विचार काम नही करता, चेतना काम नही करती इसलिए न वह विरोध* करता है, न विचार करता है। जो कहा जाता है उसे चुपचाप स्वीकार कर लेता है यहा तक कि अगर एक व्यक्ति को बेहोश करके कहा जाए कि तुम घोडे हो गए हो तो वह बराबर चारो हाथ-पैर से खडा हो जाएगा, घोडे की तरह आवाज करने लगेगा, वह यह मान लेगा। उसके बिल्कुल अचेतन तक अगर यह बात प्रविष्ट हो जाए तो हम जो उसे कहेगे, वह वही हो जाएगा। उसे कहा जाए कि तुम्हे लकवा लग गया है तो उसके शरीर को एकदम लकवा लग जाएगा। फिर वह हाथ पैर हिला नही सकेगा। सौ मे से तीस पुरुष, पचास स्त्रिया और पच्चहत्तर बच्चे सम्मोहित हो सकते है। जितना सरल चित्त हो उतनी शीघ्रता से सम्मोहन प्रवेश कर जाता है। महावीर वर्षों तक काम कर रहे है कि सम्मोहन के द्वारा कैसे सन्देश पहुचाया जाए। लेकिन अन्तत. उन्होने उस प्रक्रिया का उपयोग नही किया है क्योकि सम्मोहन के द्वारा सन्देश तो पहुच जाता है लेकिन कुछ सूक्ष्म नुकसान दूसरे को पहुच जाते हैं। जैसे उसकी तर्क शक्ति क्षीण हो जाती है, जैसे वह परवश हो जाता है और वह धीरे-धीरे दूसरे के हाथ मे जीने लगता है। मैंने भी इधर सम्मोहन पर बहुत प्रयोग किये हैं इसी दृष्टि से। क्योकि घटो मेहनत करे तब एक बात मुश्किल से समझाई जा सकती है। इधर दो मिनट बेहोश किया जाए तो वह बात उसमें प्रवेश कराई जा सकती है। लेकिन मैं भी इस नतीजे पर पहुंचा कि उस

व्यक्ति में कुछ बुनियादी नुकसान पहुंच जाते हैं। सन्देश पहुंच जाएगा लेकिन वह व्यक्ति ऐसे जीने लगेगा जैसे उसकी कोई स्वतन्त्रता नही रही; वह परवश है, कोई और उसे चला रहा है, ऐसा चलने लगेगा। रामकृष्ण ने विवेकानन्द को जो पहला सन्देश दिया वह सम्मोहन की विधि से दिया गया था जिसमें उनके स्पर्शमात्र से विवेकानन्द को समाधि हो गई। वह सम्मोहन के द्वारा दिया गया सन्देश है और इसीलिए विवेकानन्द सदा के लिए रामकृष्ण का अनुगत हो गया। और भी मजे की बात है कि रामकृष्ण ने जिस दिन स्पर्श द्वारा विवेकानन्द को सन्देश दिया उसी दिन से विवेकानन्द के भीतर एक शक्ति प्रकट हुई जो उसकी अपनी नही थी, किसी दूसरे के दबाव मे उसके भीतर आ गई थी। कमरे मे बैठे हुए हैं विवेकानन्द। और उस कमरे मे एक भक्त भी रहता था। गोपाल बाबू उसका नाम था। वह सब तरह की भगवान की मूर्तिया रखे हुए था अपने कमरे मे और दिन भर पूजा चलती थी क्योकि इतने भगवान थे कि उनकी उसे रोज दो तीन घटे पूजा करनी पडती थी। वह कभी साझ को भोजन कर पाता, कभी रात मे। इतने भगवान और एक भक्त ! बडी मुश्किल हो गई थी। विवेकानन्द ने कई बार उससे कहा तू क्या पत्थर इकट्ठे कर रहा है। जिस दिन विवेकानन्द को पहली बार रामकृष्ण से सम्मोहन का सन्देश मिला उस दिन वह कमरे मे जाकर बैठे और उन्हे एकदम से ख्याल आया कि इस वक्त अगर मैं गोपाल बाबू को कहू कि 'जा' ! सारी मूर्तियो को बाध कर गगा मे फेंक आ तो बराबर हो जाएगा।" इस वक्त उनके पास बड़ी तीव्र शक्ति है जिसको वह विस्तीर्ण कर सकते हैं। उन्होने यह कहा सिर्फ मजाक मे कि 'गोपाल बाबू ! सब भगवानो को बाधो और गगा मे फेक आओ।' गोपाल बाबू ने सब भगवान चद्दर मे बाधे और गगा मे फेकने चले। रामकृष्ण घाट पर मिले और कहा, 'खूब' ! गोपाल बाबू को कहा : 'वापस चलो' ! जाकर विवेकानन्द का दरवाजा खोला और कहा कि 'तेरी चाबी मैं अपने हाथ मे रखे लेता हू क्योकि तू तो कुछ भी उपद्रव कर सकता है। और जो तुझे आज अनुभव हुआ है अब वह तेरे मरने के तीन दिन पहले ही तुझे फिर हो सकेगा, उसके पहले नही।' और विवेकानन्द को जो समाधि का अनुभव हुआ रामकृष्ण के स्पर्श से फिर जिन्दगी भर तड़प रही, वह कभी नहीं हो सका। लेकिन मरने के तीन दिन पहले वह फिर अनुभव हुआ। वह भी विवेकानन्द का अपना नही है। वह भी सम्मोहन अवस्था में कहा गया है कि फला दिन तुझे फिर होगा। लेकिन चाबी

मेरे पास है तो फला दिन वह फिर हो जाएगा। मैं एक बच्चे पर सम्मोहन के बहुत से प्रयोग करता था। उससे मैंने कहा कि यह किताब सामने रखी है। इसके बारहवें पन्ने पर तुम पेंसिल उठा कर अपने दस्तखत कर देना। लेकिन आज नही, पन्द्रह दिन बाद ठीक ग्यारह बजे दोपहर! और कर ही देना; भूल मत जाना। बात खत्म हो गई। वह तो होश मे आ गया। स्कूल जाना था, स्कूल चला गया। पन्द्रह दिन बीत गए। किताब वही टेबिल पर पडी रही। लेकिन उसने कभी उस पर दस्तखत नही किए। पन्द्रहवे दिन उसका दस बजे स्कूल लगता था। उसने कहा : आज मेरा सिर कुछ भारी है। मैं स्कूल नही जाना चाहता हू। मैंने कहा सुबह तो तबियत ठीक थी। उसने कहा : बिल्कुल ठीक थी पर अभी मेरा सिर भारी है। मैंने कहा तुम्हारी मर्जी। मै उसी कमरे मे बैठा हू और टेबिल पर किताब रखी है, वह लडका भी वही लेटा हुआ है। ठीक ग्यारह बजे उठा है, पेन्सिल उठाई है जाकर। जो पन्ना मैंने कहा था उसने खोला है और अपने दस्तखत करने लगा है। मैंने उसको दस्तखत करते वक्त पकडा है कि तू यह क्या कर रहा है। उसने कहा "समझ मे नही आ रहा है कि मैं क्या कर रहा हू। न तो मेरा सिर दुख रहा है और न कुछ और। लेकिन सुबह से ऐसा लग रहा है कि आज स्कूल मत जाना, कोई जरूरी काम करना है। बस भीतर से यही चल रहा है। और जब मैंने दस्तखत कर दिए है तो मेरे भीतर से बोझ उतर गया है जैसे मेरा पहाड उतर गया हो। मेरा सिर बिल्कुल ठीक हो गया है। दस्तखत करके मै बिल्कुल हल्का हो गया हू। पता नही यह क्यो हुआ है कि दस्तखत मुझे करने हैं। यह पन्द्रह दिन पहले दिया गया संमोहन प्रयोग है।

रामकृष्ण ने जिस विधि का उपयोग किया है उस विधि को महावीर ने बहुत दूर तक विकसित किया है लेकिन छोड दिया, उसका प्रयोग नही किया और मैं यह जानता हू कि विवेकानन्द को नुकसान पहुचा। विवेकानन्द कुछ भी अपना काम नही कर सका। अपनी कमाई अभी बाकी रह गई है। यह हुआ है दूसरे के द्वारा। इसमे विवेकानन्द की अपनी कोई उपलब्धि नही है। इसलिए विवेकानन्द बहुत चिन्तित, दुखित और परेशान रहे क्योकि वे रामकृष्ण से बचे थे। आखिरी समय मे जो पत्र लिखे है उन्होने, वे बडे दुख के हैं, बडी पीडा के है, बहुत सन्ताप है उनमे। जैसे जिन्दगी एकदम व्यर्थ हो गई हो, कुछ भी नही पा सके। रामकृष्ण ने ऐसा क्यो किया! अगर महावीर ने इसका प्रयोग नही किया तो रामकृष्ण ने क्यों किया! कुछ

कारण हैं। महावीर वाणी मे समर्थ थे। रामकृष्ण वाणी मे असमर्थ थे। और वाणी के लिए विवेकानन्द को साधन की तरह उपयोग करना जरूरी हो गया, नही तो रामकृष्ण ने जो जाना था वह खो जाता। रामकृष्ण ने जो जाना था उसे जगत तक पहुचाने के लिए रामकृष्ण के पास वाणी नही थी। उस वाणी के लिए विवेकानन्द का उपयोग करना जरूरी था। विवेकानन्द सिर्फ रामकृष्ण के ध्वनि-विस्तारक यन्त्र हैं, इससे ज्यादा नही। और वह बिल्कुल सम्मोहित अवस्था मे सारे जगत मे घूम रहे हैं, बिल्कुल सोयी अवस्था मे। रामकृष्ण जो बुलवाना चाह रहे हैं, वे बोल रहे हैं। विवेकानन्द का उपयोग किया गया है एक साधन की भाति। यह जरूरी था रामकृष्ण के लिए। नही तो रामकृष्ण किसी को कुछ भी न दे पाते। यही विवेकानन्द से कहा है राम-कृष्ण ने "तुझे मैं समाधि मे नही जाने दूगा क्योकि तुझे अभी एक बहुत बडा काम करना है।" और जब भी विवेकानन्द ने उनसे पूछा "परमहस देव, उस दिन जो खुशी मिली थी, प्रकाश मिला था, आनन्द मिला था, वह फिर कब मिलेगा।" तो उन्होने बहुत जोर से उसे डाटा है, डपटा है, और कहा है कि तू बहुत लोभी है, स्वार्थी है, तू अपने ही आनन्द के पीछे पडा है। तुझे मैं एक बडा वृक्ष बनाना चाहता हू जिसके नीचे बहुत लोग छाया मे विश्राम करे। तुझे तो एक बडा काम करना है। वह कौन करेगा ? तू समाधि मे चला जाएगा तो वह कार्य कौन करेगा ? महावीर को यह कठिनाई नही है। महावीर के पास रामकृष्ण के अनुभव भी है। विवेकानन्द की सामर्थ्य भी है। इसलिए दो व्यक्तियो की जरूरत नही पडती। एक ही व्यक्ति काफी है।

अक्सर ऐसा हुआ है, जैसे गुरजियफ की मैं बात करता हू निरन्तर। गुरजियफ ने आस्पेंस्की का इसी तरह उपयोग किया है जैसा कि विवेकानन्द का रामकृष्ण ने। गुरजियफ के पास वाणी नही है, आस्पेंस्की के पास वाणी है, बुद्धि है, तर्क है। आस्पेंस्की का पूरा उपयोग किया है गुरजियफ ने। गुर-जियफ की आप किताब पढे तो समझ ही नही सकते हैं कुछ भी, क्योकि उसके पास वह अभिव्यक्ति है ही नही लेकिन आस्पेंस्की से उसने सब लिखवा लिया है जो उसने लिखवाना था। आस्पेंस्की की किताबें इतनी अद्भुत हैं जिन का कोई हिसाब नही। गुरजियफ को जो कहना था वह आस्पेंस्की से कहलवा लिया है। और यह बिना सम्मोहन प्रयोग के नही हो सकता है। महावीर के पास भी वह साधन है लेकिन उन्होने देखा कि वह साधन व्यक्ति को नुकसान पहुचाता है और सोचा कि किसी को अपने साधन की तरह उपयोग

करने का सवाल नही है; वह तो उसके भीतर संदेश भर पहुंचाने का सवाल है। इसलिए उसका प्रयोग तो उन्होंने बहुत किया, लेकिन किसी को अपने साधन की तरह उपयोग कभी नही किया। दूसरा रास्ता है कि दूसरा व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध हो जाए तो फिर मौन मे ही बात हो सकती है, फिर कोई जरूरत नही है उससे शब्दो का उपयोग करने की, क्योकि शब्द सब से असमर्थ चीज हैं। मौन मे जो कहा जाए वह पहुंच जाता है, जो कहा ही नही गया जो समझा जा सकता है वह भी पहुच जाता है।

इसलिए महावीर का जो भक्त है उसको कहते हैं श्रावक यानी ठीक से सुनने वाला। सुनते हम सभी है। हम सभी श्रावक हैं। लेकिन हम सभी श्रावक नही हैं। श्रावक वह है जो ध्यान की स्थिति मे बैठ कर सुन सके—उस स्थिति मे जहा उसके मन मे कोई विचार नही है, शब्द नही है, कुछ भी नही है, मौन मे बैठ कर जो सुन सके वह श्रावक है। यह शब्द का उपयोग आकस्मिक नही है। भक्त को श्रोता कहने से काम नही चलता क्योकि श्रोता का मतलब है सिर्फ सुनना। श्रावक का मतलब है सम्यक् श्रवण। हम सब सुनते है लेकिन हम श्रावक नही है। श्रावक हम तब होते है जब हम सिर्फ सुनते है और हमारे भीतर कुछ भी नही होता। गुरजियफ की मैं अभी बात कर रहा था। पहले कि वह सदेश दे आस्पेस्की को उसे श्रावक बनाना जरूरी है। वह सुन ले और सन्देश को ले जाए। तो गुरजियफ आस्पेस्की को जगल मे ले जाकर तीन महीने रहा। उस मकान मे तीस व्यक्तियो को वह लाया जिनको वह श्रावक बना रहा था। तीन महीने उन तीस लोगो को रखा एक ही बगले मे जो सब तरफ बद कर दिया गया, जिसमे बाहर जाने का कोई उपाय नही है और जिसमे गुरजियफ कभी बाहर से खोल कर भीतर आता है और जिसे बद कर बाहर जाता है। मकान सब तरफ से बद है। भोजन का इन्तजाम है। सारी व्यवस्था है। शर्त यह है कि तीन महीने न तो कोई कुछ पढ़ेगा, न कोई कुछ लिखेगा, न कोई किसी से बात करेगा। तीस आदमी एक मकान के भीतर हैं। गुरजियफ ने कहा कि तुम ऐसे समझना कि एक-एक ही वहा हो, तीस नही। उन्तीस यहा हैं ही नही तुम्हारे अलावा। आख के इशारे से भी मत बताना कि दूसरा है। सुबह तुम बैठोगे तो कोई जा रहा है तो जाने देना। तुम मत सोचना कि कोई जा रहा है। अगर कोई नमस्कार भी करे तो नमस्कार मत करना क्योकि कोई है ही नही जिसको तुम नमस्कार करो। आंख से भी मत पहचानना कि तुम हो। मुस्कराना भी मत, भाव भी मत

प्रकट करना। और जो आदमी इस तरह के भाव प्रकट करे उसे मैं बाहर निकाल दूंगा। पन्द्रह दिन मे 'छटाई' करूंगा। पन्द्रह दिन में सताईस आदमी उसने बाहर कर दिए। तीन आदमी रह गए। उनमे एक रूस का गणितज्ञ आस्पेंस्की भी था। आस्पेंस्की ने लिखा है कि पन्द्रह दिन बहुत कठिनाई के थे, दूसरे को न मानना बडा कठिन था। कभी सोचा भी नही था कि कठिनाई हो सकती है। लेकिन सघर्ष से, सकल्प से पन्द्रह दिन मे वह सीमा पार हो गई। दूसरे का ख्याल बद हो गया। आस्पेंस्की ने लिखा है कि जिस दिन दूसरे का ख्याल बंद हो गया उस दिन से पहली बार अपना ख्याल शुरू हुआ। अब हम सब अपना ख्याल करना चाहते हैं। मगर दूसरे का ख्याल मिटता नही है। अपना ख्याल कभी हो नही सकता। क्योकि जगह खाली नही। कहते हैं—आत्मस्मरण। मगर आत्म-स्मरण कैसे हो? आत्मस्मरण चौबीस घटे चल रहा है और उसी के बीच दूसरे का स्मरण भी हो रहा है और फिर हम आत्मस्मरण करना चाहते है। आस्पेंस्की ने लिखा है कि तब तक मैं समझा ही नही था कि आत्म-स्मरण का मतलब क्या होता है। और बहुत बार कोशिश की थी अपने को याद करने की। कुछ नही होता था। तब ख्याल मे आया पन्द्रह दिन के बाद कि वह जो दूसरा भीतर बैठा था बिदा हो गया है। जब भीतर खाली रह गया तो सिवाय अपने स्मरण के कोई मौका ही नही रहा। तब पहली बार मैं अपने प्रति जागा। सोलहवे दिन सुबह मैं उठा जैसा कि मैं जिन्दगी मे कभी नही उठा था। पहली बार मुझे बोध हुआ कि अब तक मैं दूसरे के बोध मे ही उठता था। सुबह उठने से दूसरे का बोध शुरू हो जाता था। अब अपना बोध चौबीस घटे घेरे रहने लगा क्योकि अब कोई उपाय न रहा। दूसरे को भरने की जगह न रही। एक महीना पूरा होते-होते, उसने लिखा है कि मैं हैरानी मे पड़ गया। दिन बीत जाते है, मुझे पता ही नही चलता कि जगत भी है, कोई व्यावहारिक संसार भी है, बाजार भी है, लोग भी हैं। दिन बीत जाते हैं, और पता नही चलता। सपने विलीन हो गए। जिस दिन दूसरा भूला उसी दिन सपने विलीन हो गए। क्योकि सब सपने बहुत गहरे में दूसरे से सम्बन्धित हैं। जिस दिन सपने विलीन हुए उस दिन मुझे रात मे भी अपना स्मरण रहने लगा। ऐसा नही है कि मैं रात मे सोया हुआ हू। रात मे भी सब सोये हैं और मैं जागा हुआ हू, ऐसा होने लगा। तीन महीने पूरे होने के तीन दिन पहले गुरजियफ ने दरवाजा खोला। आस्पेंस्की ने लिखा

है . उस दिन मैंने पहली बार देखा कि यह आदमी कैसा अद्भुत है । इतना खाली था कि अब मैं देख सकता था । भरी हुई आख क्या देखेगी ? गुरजियफ को मैंने पहली बार देखा · ओफ ! यह आदमी और इसके साथ होने का सौभाग्य ! पहले समझा था कि जैसे और लोग थे वैसा गुरजियफ था । खाली मे पहली बार गुरजियफ को देखा । आस्पेंस्की ने लिखा है, उस दिन मैंने जाना कि वह कौन है । गुरजियफ सामने बैठ गया और बोला आस्पेंस्की ! पहचाना मुझे ! मैंने चारो ओर चौक कर देखा : गुरजियफ चुप बैठा है । आवाज गुरजियफ की है । फिर भी मैं चुप रहा । फिर आवाज आई : आस्पेंस्की ! पहचाना नही, सुना नही । तब मैंने चौक कर गुरजियफ की ओर देखा । मैं बिल्कुल चुप बैठा था । मेरे मुह से कोई शब्द नही निकल रहा था । तब गुरजियफ खूब मुस्कराने लगा और फिर कहा : अब शब्द की कोई जरूरत नही है । बिना शब्द के भी बात हो सकती है । अब तू इतना चुप हो गया कि मै भीतर सोचू और तू सुन लेगा क्योंकि जितनी शाति है उतनी सूक्ष्म तरगे पकडी जा सकती हैं । तुम रास्ते से भागे चले जा रहे हो । तुम्हे किसी ने कहा है तुम्हारे मकान मे आग लग गई है । और मैं रास्ते मे तुम्हे मिलता हू और कहता हू नमस्कार ! तुमने सुना ? तुमने नही सुना । तुमने देखा ? तुमने नही देखा । तुम भागे चले जा रहे हो । तुम्हारे घर मे आग लग गई है । दूसरे दिन तुम मुझे मिलते हो । मैं कहता हू रास्ते मे मिला था, नमस्कार की थी, तुमने कोई जबाव नही दिया । तुम कहते हो मैने देखा ही नही । मेरे घर मे आग लग गई थी, मैं भागा जा रहा था । मुझे तुम नही दिखाई पडे । न मैंने देखा कि तुमने हाथ जोडे । न मै इस हालत मे था कि हाथ जोड सकता था । अगर मकान मे आग लग गई तो तुम्हारा चित्त इतने जोर से चलता है कि जोडे गए हाथ दिखेगे नही, किया हुआ नमस्कार सुनाई नही पडेगा । अगर चित्त का चक्र धीमा हो गया है, ठहर गया है तो जरूरी नही कि मैं बोलू । इतना ही काफी है कि मैं कुछ चाहू कि तुम पर चला जाए, वह एकदम चला जाएगा ।

विद्यासागर ने लिखा है कि बगाल का गवर्नर उन्हे एक पुरस्कार देना चाहता था । विद्यासागर एक गरीब आदमी थे, पुराने ढग से रहने के आदी थे । वही पुराना बगाली कुर्ता, पुरानी धोती है । डडा हाथ मे है । मित्रो ने कहा . इस वेष मे गवर्नर के दरबार मे जाना ठीक नही है । हम तुम्हे नए कपड़े बनवा देते हैं । विद्यासागर ने कहा कि मैं जैसा हू, ठीक हू । मित्र नही

माने। उन्होंने खूब कीमती कपडे बनवाए। कल सुबह जाना है विद्यासागर को गवर्नर के सामने और पुरस्कार लेना है। दरबार भरेगा। साझ को वह घूमने निकले। समुद्र के तट पर से घूमकर लौट रहे हैं। सामने ही एक मुसलमान मौलवी छडी लिए चुपचाप शान से चला जा रहा है। एक आदमी भागा हुआ आया है और मौलवी से कहा : मीर साहब ! तेजी से चलिए, आपके मकान मे आग लग गई है। मीर ने कहा ठीक है और फिर वह उसी चाल से चला। विद्यासागर हैरान हो गए क्योंकि सुना है उन्होंने, आदमी ने अभी आकर कहा है कि मकान मे आग लग गई है। मगर वह उसी चाल से चल रहा है। फिर, उस आदमी ने घबडाकर कहा है शायद आप समझे नही हैं। आपके मकान मे आग लग गई है। तो कहा मैंने समझ लिया है। फिर वह उसी चाल से चलने लगा है। तब विद्यासागर कदम बढा कर आगे गए और कहा : "सुनिए ! हद हो गई है। आपके मकान मे आग लग गई है और आप उसी चाल से चल रहे है।" उस आदमी ने कहा कि मेरी चाल से मकान का क्या सम्बन्ध है ? और मकान के पीछे चाल बदल दे जिन्दगी भर की ? लग गई है ठीक है, लग गई है। अब मै क्या करूगा ? विद्यासागर ने घर आकर कहा कि मुझे वे कपडे नही पहनने है। जिन्दगी भर की चाल छोड दू गवर्नर के लिए। एक आदमी जिसके मकान मे आग लग गई है उसी चाल से जा रहा है, एक कदम नही बढ़ा रहा है। लेकिन ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है और अगर मिल जाए तो वह श्रावक हो सकता है।

महावीर की सतत चेष्टा इसमे लगी कि कैसे मनुष्य श्रावक बने, कैसे सुनने वाला बने, कैसे सुन सके। और वह तभी सुन सकता है जब उसके चित्त की सारी विचार-परिक्रमा ठहर जाए। फिर बोलने की जरूरत नहीं। वह सुन लेगा। ऐसी जो न बोली लेकिन सुनी गई वाणी है, उसका नाम दिव्य ध्वनि है। बोली नही गई है लेकिन सुनी गई है। दी नही गई है लेकिन पहुच गई है। सिर्फ भीतर उठी है और सम्प्रेषित हो गई है। तो श्रावक बनाने की कला खोजने के लिए बडा श्रम करना पडा। अब तो हम किसी को भी श्रावक कहते है। जो महावीर को मानता है वह श्रावक है। मगर महावीर के मरने के बाद श्रावक होना ही मुश्किल हो गया। असल मे जो महावीर के सामने बैठा था वही श्रावक था। उसमें भी सभी श्रावक नही थे। बहुत से श्रोता थे। श्रोता कान से सुनता है, श्रावक प्राण से सुनता है। श्रोता को शब्द बोले जाए तो वह सुन ले, जरूरी नहीं है। वह शब्द बोले,

जरूरी नही है। महावीर ने श्रावक की कला को विकसित किया। यह बडी से बड़ी कला है जगत मे। क्योंकि जीसस लोगो को नही समझा पाए। उन्होने सिर्फ इसकी फिक्र की कि मैं ठीक-ठीक कहू। इसकी फिक्र ही नही की कि वह ठीक-ठीक सुन सकता है, या नही सुन सकता। मुहम्मद इसकी फिक्र नही कर रहे हैं कि वह सुन सकेगा या नही। वह इसकी फिक्र कर रहे हैं कि जो मैं कह रहा हूं वह ठीक होना चाहिए। वह बिल्कुल ठीक है। लेकिन कहना ही ठीक होने से कुछ नहीं होता; सुनने वाला भी ठीक होना चाहिए। नही तो कहना व्यर्थ हो जाएगा। तुम कहोगे कुछ, सुना कुछ जाएगा, समझा कुछ जाएगा।

इसलिए मैं महावीर की दूसरी बडी देनो मे से श्रावक बनने की कला को मानता हू। यह बडे से बडे योगदान मे से एक है कि आदमी श्रावक कैसे बने। और तभी उन्होने शब्द उठा दिया 'प्रतिक्रमण'। 'प्रतिक्रमण' शब्द श्रावक बनाने की कला का एक हिस्सा है। हमे ख्याल भी नही कि 'प्रतिक्रमण' का अर्थ क्या होता है ? 'आक्रमण' का अर्थ हम समझते हैं क्या होता है। आक्रमण से उल्टा मतलब होता है प्रतिक्रमण का। 'आक्रमण' का अर्थ होता है दूसरे पर हमला करना और प्रतिक्रमण का अर्थ होता है सब हमला लौटा लेना, वापिस लौट जाना। हमारी चेतना आक्रामक है साधारणत। प्रतिक्रमण का अर्थ है वापिस लौट आना, सारी चेतना को समेट लेना वापिस, जैसे सूर्य शाम को अपनी किरणो का जाल समेट लेता है ऐसे ही अपनी फैली हुई चेतना को मित्र के पास से, शत्रु के पास से, पत्नी के पास से, बेटे के पास से, मकान से और धन से वापिस बुला लेना है। जहा जहां हमारी चेतना ने खूटिया गाड दी है और फैल गई हैं, उस सारे फैलाव को वापिस बुला लेना है। प्रतिक्रमण का मतलब है वापिस लौट आना। जाना है आक्रमण, लौट आना है प्रतिक्रमण। जहा जहा चेतना गई है, वहा वहा से उसे वापिस पुकार लेना है कि 'आ जाओ'। बुद्ध ने एक कहानी कही है। साझ को नदी के तट पर कुछ बच्चे रेत के घर बना रहे है। बहुत से बच्चे हैं। कोई घर बनाता है, कोई गड्ढा खोदता है, किसी बच्चे का किसी के घर मे पैर लग जाता है। और जहा इतने बच्चे हो वहा पैर लग जाना भी सम्भव है। किसी का घर गिर जाता है, मारपीट होती है, गाली गलौज होती है, बच्चे चिल्लाते हैं : मेरा घर मिटा दिया। क्यो यहां पैर रख रहे हो। ये सब झगडते है, मारते हैं, पीटते है, फिर शान्त हो जाते

हैं। और नदी के तट से कुछ दूर घर-घर से बच्चों की मां पुकारती है "लौट आओ, लौट आओ। अब बहुत खेल हो गया" और बच्चे जो लडते थे इस पर कि मेरे घर पर लात मत मारना वे अब अपने ही घर को लात मार कर घर की ओर भागते हुए वापिस लौट गए हैं। घर पडे रह गए हैं टूटे-फूटे। नदी तट निर्जन हो गया है। बच्चे घर चले गए हैं अपने ही घर को लात मार कर जिस पर लडे थे कि मेरा तोड मत देना। बुद्ध कहते हैं : ऐसा एक क्षण आता है जीवन मे जब तुम रेत के घरो को लात मारकर खुद ही वापस लौट आते हो। इसका अर्थ है प्रतिक्रमण। और अगर इसका अभ्यास जारी रहे कि तुम रोज घडी भर को प्रतिक्रमण कर जाओ, सब तरफ से चेतनाओ को वापस बुला लो, सब रेत के घडो से आ जाओ वापस अपने भीतर, कही से सम्बन्ध न रखो, असग हो जाओ तो प्रतिक्रमण हुआ। प्रतिक्रमण ध्यान का पहला चरण है। क्योकि जब तुम लौटोगे ही नही, चेतनाओ को वापिस नही लाओगे तो ध्यान कौन लगाएगा ? अभी तो चेतना ही नही है मौजूद, वह तो घर के बाहर गई हुई है ; वह तो किसी दूसरे ओर भटक रही है, वह तो कही और जगह है। तुम चेतना को नही लौटाओगे तो ध्यान कैसे करोगे ?

प्रतिक्रमण है पहला चरण ध्यान का, सामायिक है दूसरा चरण। सामायिक अर्थात् ध्यान। सामायिक ध्यान से भी अद्भुत शब्द है। महावीर ने जो इस शब्द का उपयोग किया है, वह ध्यान से बेहतर है। ध्यान शब्द मे कही दूसरा छिपा हुआ है। जैसे हम कहते हैं 'ध्यान मे आओ' तो आदमी कहता है 'किसके ध्यान मे, किस पर ध्यान करें, कहा ध्यान लगाए।' ध्यान शब्द किसी न किसी रूप मे पर-केन्द्रित है। उससे सवाल हुआ है 'किसका ध्यान !' सामायिक को महावीर ने बिलकुल मुक्त कर दिया है। समय का मतलब होता है आत्मा और सामायिक का मतलब है आत्मा मे होना। प्रतिक्रमण है पहला हिस्सा कि दूसरे से लौट आओ, सामायिक है दूसरा हिस्सा अपने मे हो आओ। और जब तक दूसरे से न लौटोगे तब तक अपने मे होओगे कैसे ? इसलिए पहली सीढी प्रतिक्रमण और दूसरी सीढ़ी सामायिक है। लेकिन वह जो बकवास प्रतिक्रमण के नाम से चलता है, वह प्रतिक्रमण नही है। उससे कोई मतलब ही नही है कि कितने देवी-देवता हैं और कहा कौन बैठा है, कितने योजन, क्या दूर है—इससे कोई मतलब ही नही है। यह तो दूसरे के लिए भटकना है। प्रतिक्रमण बहुत अद्भुत

बात है। वह चेतना को सब तरफ से असबंधित कर देना है : पत्नी, अब पत्नी नहीं है; बेटा, अब बेटा नहीं है; मकान, अब मकान नहीं है। शरीर, अब शरीर नहीं है। प्रतिक्रमण है सब तरफ से लौटा लेना; सब तरफ से काटते चले आना। चेतना लौट आए अपने मे तो फिर दूसरी बात शुरू होती है कि अब अपने मे कैसे रम जाए क्योंकि न रम पाई तो फिर दूसरे में चली जाएगी। अगर बच्चे शाम घर भी लौट आए और अगर मा न रमा पाई तो बच्चे फिर लौट जाएगे नदी के तट पर। वे फिर रेत के घर बनाएगे। वे फिर खेलेगे और फिर लडेगे। लौट आना सिर्फ सूत्र है लेकिन लौट आते हैं तो रमे कैसे, ठहर कैसे जाए उसकी चिन्ता करनी है। अगर चिन्ता नहीं की तो लौट भी नहीं पाएगे। तो प्रतिक्रमण सिर्फ प्रक्रिया है, स्वभाव नहीं। इसलिए कोई प्रतिक्रमण मे ही रुकना चाहे तो वह नासमझी मे है। चेतना इतनी शीघ्रता से आती है और इतनी शीघ्रता से लौट जाती है कि पता ही नहीं चलता। एक दफा सोचती है कि कहा मकान? क्या मेरा? लौटती है एक क्षण को। लेकिन यहा ठहरने को जगह नहीं पाती। पुन: वहीं लौट जाती है। दूसरा सूत्र है सामायिक। वह हम कल बात करेंगे कि चेतना कैसे स्वय मे ठहर जाए। वह ख्याल मे आ गया तो सब ख्याल मे आ गया। महावीर का जो केन्द्र है वह सामायिक है। सामायिक बडा अद्भुत शब्द है। दुनिया मे बहुत शब्द लोगो ने उपयोग किए हैं लेकिन इससे अद्भुत शब्द का उपयोग नहीं हो सका कहीं भी। समय का अर्थ है आत्मा, सामायिक अर्थात् आत्मा मे होना। इसमे कोई यह नहीं पूछ सकता कि सामायिक किसकी। पूछोगे तो वह गल्त हो जाएगा। यह सवाल ही नहीं है। ध्यान हो सकता है किसी का। सामायिक किसकी होगी? किसी की भी नहीं होगी।

षष्ठ प्रवचन

२२.६.६६ प्रातः

६

महावीर की साधना पद्धति मे केन्द्रिय शब्द है—सामायिक । यह शब्द बना है समय से। पहले इस शब्द को थोडा-सा समझ लेना उपयोगी होगा।

पदार्थ का अस्तित्व है तीन आयामो मे : लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई। किसी भी पदार्थ मे तीन दिशाए है अर्थात् पदार्थ का अस्तित्व तीन दिशाओं मे फैला हुआ है। अगर आदमी मे हम इस पदार्थ को नापने जाए तो लम्बाई मिलेगी, चौडाई मिलेगी, ऊंचाई मिलेगी। अगर प्रयोगशाला मे आदमी की काट-पीट करे तो जो भी मिलेगा, लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई मे घटित हो जाएगा। लेकिन आदमी की आत्मा चूक जाएगी हाथ से। आदमी की आत्मा लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई की पकड मे नही आती है। तीन आयाम हैं पदार्थ के। आत्मा का चौथा आयाम है। लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई—ये तीन दिशाए हैं जिनमे सभी वस्तुए आ जाती हैं। लेकिन आत्मा की एक और दिशा है जो वस्तुओ मे नही है, जो चेतना की दिशा है। वह है समय जो अस्तित्व का चौथा आयाम है। वस्तु हो सकती है तीन आयामो मे लेकिन चेतना कभी भी तीन आयामो मे नही हो सकती। वह चौथे आयाम मे हो सकती है। जैसे अगर हम चेतना को अलग कर लें तो दुनिया मे सब कुछ होगा, सिर्फ समय नहीं होगा। समझ लें कि इस पहाड़ पर कोई चेतना नही है तो पत्थर होंगे, पहाड़ होगा, चाद निकलेगा, सूरज निकलेगा, दिन डूबेगा, उगेगा लेकिन समय जैसी कोई चीज नही होगी। क्योकि समय का बोध ही चेतना का हिस्सा है। चेतना के बिना समय जैसी कोई चीज नही है। और अगर समय न हो तो चेतना भी नही हो सकती। इसलिए वस्तु का अस्तित्व है लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई मे, और चेतना का अस्तित्व है काल मे, समय की धारा में। आइंस्टीन ने फिर बहुत अद्भुत काम किया है इस तरफ। और उसने यह चारो आयाम जोड़कर अस्तित्व की परिभाषा की है। काल और क्षेत्र दो अलग चीजें समझी जाती रही हैं सदा से। समय अलग है, क्षेत्र अलग है। आइंस्टीन ने कहा ये अलग चीजें नहीं हैं। ये दोनों इकट्ठी हैं और एक ही चीज के हिस्से

हैं। उसने काल और क्षेत्र को जोड दिया। ये अलग चीजें नही हैं। किसी भी चीज के अस्तित्व मे तीन चीजें हमे ऊपर से दिखाई पडती है—लम्बाई, चौडाई और ऊंचाई लेकिन अस्तित्व होगा ही नही। हम बता सकते हैं कि कौन सी चीज कहा है, किस जगह है। लेकिन अगर हम यह न बता सकें कि कब है तो उस वस्तु का हमे कोई पता नही चलेगा। तो आइस्टीन ने अस्तित्व की अनिवार्यता मान लिया समय को। इस बात का पहला बोध महावीर को हुआ है कि समय चेतना की दिशा है। चेतना का कोई अस्तित्व अनुभव मे भी नही आ सकता समय के बिना। समय का जो बोध है, जो भाव है, वह चेतना का अनिवार्य अग है। अत महावीर ने आत्मा को समय ही कह दिया।

इस बात मे और भी बाते अन्तर्निहित हैं। इस जगत मे सब चीजें परिवर्तनशील हैं। सब चीजे क्षणभगुर हैं। आज है, कल न होगी। सब चीजें समय की धारा मे बदलती हैं, मिटती है, बनती है। आज बनती है, कल बिखरती हैं, परसो बिदा हो जाती है। सिर्फ इस जगत की लम्बी धारा मे समय भर एक ऐसी चीज है जो नही बदलता, जो सदा है। इस पूरी धारा मे टाइम भर एक ऐसी चीज है जो कभी नही बदलता, जिसके भीतर सब बदलाहट होती है। जो न हो तो बदलाहट न हो सकेगी। अगर समय न हो तो बच्चा बच्चा रह जाएगा, जवान नही हो सकेगा; कली कली रह जाएगी, फूल नही हो सकती। क्योकि परिवर्तन की सारी सम्भावना समय मे है। जगत मे सब चीजे समय के भीतर है और परिवर्तनशील हैं लेकिन समय अकेला 'समय' के बाहर है और परिवर्तनशील नहीं है। समय अकेला शाश्वत सत्य है जो सदा था, सदा होगा। और ऐसा कभी भी नही हो सकता कि जो न हो। क्योकि किसी चीज के न होने के लिए भी समय जरूरी है। समय के बिना कोई चीज नही भी हो सकती। जैसे जन्म के लिए समय जरूरी है वैसे मृत्यु के लिए भी समय जरूरी है, बनने के लिए भी समय जरूरी है, मिटने के लिए भी समय जरूरी है। उदाहरण के लिए हम ऐसा समझे : यह कमरा है। इसमे से हम सब चीजें बाहर निकाल सकते हैं, या भीतर भर सकते है। लेकिन इस कमरे के भीतर जो जगह है उसे हम बाहर नही निकाल सकते। कोई उपाय नही है। चाहे मकान रहे, चाहे जाए, क्षेत्र तो रहेगा। मकान क्षेत्र में ही बनता है और क्षेत्र मे ही विलीन हो जाता है। लेकिन क्षेत्र रहेगा। ठीक ऐसे ही समझने की जरूरत है कि समय की जो धारा है, उस धारा मे सब चीजें बनेंगी, मिटेंगी। जो तत्त्व है, सदा से है और सदा है वह समय है। महावीर आत्मा को समय

का नाम इसलिए भी देना चाहते हैं क्योंकि वही तत्त्व शाश्वत, सनातन, अनादि, अनन्त, सदा से और सदा रहने वाला है। सब आएगा, जाएगा। वही भर सदा रहने वाला है। इस कारण भी वह आत्मा को समय का नाम देते हैं। और इस कारण से भी कि आमतौर से हमे ख्याल मे नही है यह बात कि महावीर की दृष्टि इस सम्बन्ध मे भी बहुत गहरी गई है। आमतौर से हम समय के तीन विभाग करते है अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन यह विभाजन बिल्कुल गल्त है। अतीत सिर्फ स्मृति मे है और कही भी नही। और भविष्य केवल कल्पना मे है और कही भी नही। है तो सिर्फ वर्तमान। इसलिए समय का एक ही अर्थ हो सकता है· वर्तमान। जो है वही समय है। लेकिन अगर कोई पूछे कितना है वर्तमान हमारे हाथ मे तो क्षण का कोई लाखो हिस्सा भी हमारे हाथ मे नही है। जो क्षण का अन्तिम हिस्सा हमारे हाथ मे है, उसको महावीर समय कहते है जैसे कि पदार्थ को वैज्ञानिको ने तोडकर अन्तिम परमाणु पर ला दिया है और अब परमाणु को भी तोड़ कर इलैक्ट्रोन पर ला दिया है। इलैक्ट्रोन वह हिस्सा है जो अन्तिम खण्ड है, जिसके आगे और खण्ड सम्भव नही है। क्योंकि वैज्ञानिक पदार्थ का विश्लेषण कर रहा है, इसलिए उसने पदार्थ के अन्तिम खण्ड को पकडने की कोशिश की है। और महावीर चेतना का विश्लेषण कर रहे है, इसलिए उन्होने चेतना के अन्तिम खड अणु को पकडने की कोशिश की है। उस अन्तिम अणु का नाम 'समय' है। 'समय' एक विभाजन है वर्तमान क्षण का जो हमारे हाथ मे होता है। लेकिन वह छोटा हिस्सा है। जैसे अणु दिखाई नही पडता है, परमाणु दिखाई नही पडता है, ऐसे ही क्षण का वह हिस्सा भी हमारे बोध मे नही आ पाता। जब वह हमारे बोध मे आता है तब तक वह जा चुका होता है। तो इतना बारीक हिस्सा है, इतना छोटा टुकडा है कि जब हम जागते है तब तक यह जा चुका होता है। यानी हमारे होश से भरने मे भी इतना समय लग जाता है कि समय जा चुका है। जैसे इस क्षण हमारे हाथ मे क्या है? अतीत नही, वह जा चुका। भविष्य अभी आया नही। दोनो के बीच मे एक बारीक बाल के हजारवे हिस्से का छोटा सा टुकडा हमारे हाथ मे होगा। लेकिन वह इतना छोटा टुकडा है कि जब हम बोध से भरेंगे उसके प्रति कि यह रहा वर्तमान तब तक वह जा चुका है, तब तक वह अतीत हो चुका है। तो महावीर आत्मा को 'समय' इस अर्थ में भी कह रहे हैं कि जिस दिन आप इतने शात हो जाए कि वर्तमान आपकी पकड मे आ जाए, उस

दिन आप सामायिक मे प्रवेश कर गए। इसका मतलब यह हुआ कि इतना शांत चित्त चाहिए, इतना शात, इतना निर्मल कि वर्तमान का जो कण है अत्यल्प, छोटा सा कण, वह भी झलक जाए। अगर वह भी झलक जाए तो समझना चाहिए कि हम सामायिक को उपलब्ध हुए। यानी समय के अनुभव को उपलब्ध हुए, समय को हमने जाना, देखा और अनुभव किया। अब तक हमने समय को अनुभव नही किया है। हम कहते है कि हमारे पास घडी है। हम समय नापते भी हैं। हम बताते भी हैं कि इस समय इतना बजा है। लेकिन जब हम कहते है—"इतना बजा है, वह बज चुका है।" जब हम कहते हैं कि इस वक्त आठ बजा है जितनी देर मे हमने यह कहा कि आठ बजा उतनी देर मे आठ बज चुका। घड़ी आगे जा चुकी। जरा कण भी सरक गई, आगे हो गई। यानी हम जब भी कुछ कह पाते हैं, अतीत का ही कह पाते हैं। जब भी पकड़ पाते हैं, अतीत को ही पकड पाते हैं। ठीक वर्तमान हमारे हाथ से चूक जाता है। और अतीत कल्पना स्मृति है सिर्फ। वह है नही यहा। है वर्तमान। जो है, अस्तित्व जो है, वह अभी एक समय का है। और उस एक समय का हमे कोई बोध नही क्योकि हम इतने व्यस्त हैं, इतने उलझे और अशात है कि उस छोटे से क्षण की हमारे मन पर कोई छाप नही बन पाती। न हमे वह दिखाई पडता है। उससे हम चूकते ही चले जाते हैं। समय से निरन्तर चूकते चले जाते हैं। तो हम अस्तित्व से परिचित कैसे होगे, क्योकि जो अस्तित्व है समय भी वही है, बाकी सब या तो हो चुका या अभी हुआ नही। जो है, उससे ही प्रवेश करना होगा। और उसका हमे बोध ही नही हो पाता, उसे हम पकड ही नही पाते। तो महावीर इसलिए भी आत्मा को समय कहते हैं कि तुम आत्मा को उपलब्ध तब हुए जब तुम समय का दर्शन कर लो। उसके पहले तुम आत्मा को उपलब्ध नही हो। क्योकि जब तुम अस्तित्व का ही अनुभव नही कर पाते तो तुम्हारे अस्तित्व का मतलब क्या है? आत्मा तो सब के भीतर है सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नही। जैसे एक बीज मे छुपा हुआ है वृक्ष—एक सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नही। बीज वृक्ष हो सकता है। हम भी आत्मा हो सकते हैं। जब हम कहते हैं कि सब के भीतर आत्मा है तो उसका मतलब सिर्फ इतना है कि हम भी आत्मा हो सकते हैं, अभी हैं नही। और हम उसी क्षण आत्मा हो जाएगे जिस दिन अस्तित्व आमने-सामने हमारे हो जाएगा, उसी क्षण जब हम अस्तित्व को देखने, जानने, पहचानने मे समर्थ हो जाएगे।

उसके पहले हम अस्तित्ववान नहीं हैं। इसे दूसरी तरह भी समझा जा सकता है · अतीत और भविष्य मन के हिस्से हैं, वर्तमान आत्मा का हिस्सा है। मन हमेशा अतीत और भविष्य मे रहता है, पीछे या आगे। यहां, इसी वक्त, अभी, अब---ऐसी कोई चीज मन मे नहीं होती। मन सग्रह है अतीत का और भविष्य की योजनाओ का। मन जीता है अतीत और भविष्य मे। अतीत और भविष्य के बीच मे एक अत्यन्त सूक्ष्म रेखा है जो दोनो को तोड़ती है। वह वर्तमान है। और वह इतनी बारीक है कि उस बारीक रेखा के अनुभव के लिए हमे अत्यन्त शात होना जरूरी है। जरा सा कम्पन हुआ कि हम चूक जाएगे। जरा सा भी कम्पन हुआ भीतर कि निकल जाएगी रेखा। हमारा कम्पन उसे पकड नही पाएगा। इसलिए अकम्प चेतना जिस दिन हो जाए, तब समय के क्षण का छोटा सा दर्शन भी हमे होगा। वह दर्शन हमे अस्तित्व मे उतार देता है यानी ऐसा समझे कि वर्तमान का क्षण ही द्वार है अस्तित्व मे प्रवेश का। ब्रह्म मे प्रवेश कहे, सत्य मे प्रवेश कहे, मोक्ष मे प्रवेश कहे, कुछ भी कहे, वर्तमान के क्षण से हम प्रविष्ट होते हैं। वही है द्वार। और वह चूक-चूक जाता है।

एक कहानी मैने सुनी। एक अधा आदमी एक बडे भारी राजभवन मे भटक गया है। बड़ा है भवन ! हजारो द्वार है उस भवन मे। लेकिन एक ही द्वार खुला है। सब द्वार बन्द है। वह अन्धा आदमी द्वारो को टटोलता-टटोलता भटक रहा है कि शायद कोई द्वार खुला मिल जाए। बस पहुचा जा रहा है खुले द्वार के करीब। ऐसे हजारो द्वार टटोलता-टटोलता वह थक गया है। और जब वह ठीक उस द्वार पर पहुचा है जो खुला है तो उसे खुजान उठ गई है। उसने माथे पर खुजाया है और वह द्वार फिर चूक गया है। अब फिर हजारो द्वार है और वह फिर टटोल रहा है। मीलो के चक्कर के बाद वह फिर उस द्वार पर आया है लेकिन इतना थक गया है टटोलते-टटोलते कि उसने टटोलना बद कर दिया है। वह ऊब गया है। वह टटोलना छोड़ देता है। आखिर है भी वह द्वार कि नही। लेकिन इतने मे वह द्वार फिर निकल गया है। लेकिन क्या करेगा अधा आदमी ? निकलना है तो ऊबे या न ऊबे। फिर टटोलना शुरू करता है। ऐसे वर्षों बीत जाते है और वह अन्धा आदमी बार-बार उस खुले द्वार के पास से आकर चूक जाता है।

यह एक कहानी है। हजारो जन्मो तक हम समय के द्वार को टटोलते हुए घूम रहे हैं कि कहा से द्वार मिल जाए मोक्ष का, कहा से द्वार मिल जाए

जीवन का, कहां से द्वार मिल जाए आनन्द का। टटोलते आते हैं मगर या तो हम बंद द्वार टटोलते है जो अतीत के हैं जो बन्द हो चुके हैं या हम भविष्य के द्वार टटोलते हैं जो हैं ही नही। जो हैं नही उनको हम टटोल नही सकते; जो नही हो गए हैं उनको भी हम टटोल नही सकते। लेकिन एक द्वार जो खुला है वर्तमान का, वह बार-बार चूक जाता है। उस वक्त या तो हम माथा खुजाने लगते हैं या कुछ और करने लगते हैं और वह चूक जाता है। मतलब यह कि जब भी उस द्वार पर हम आते हैं, हम किसी और चीज में व्यस्त होते हैं। वर्तमान के क्षण मे हम सदा व्यस्त हैं, इसलिए चूक जाते हैं। इसलिए सामायिक का अर्थ है अव्यस्त होना। कुछ भी नही कर रहे हैं, कुछ भी नही सोच रहे हैं तो ही उस समय को हम पकड पाएगे क्योंकि हम कुछ कर रहे हैं तो चूक जाएगे। उतनी देर मे तो वह निकल गया। वह निकलता ही चला जा रहा है।

महावीर ने यह नाम बडे गहरे प्रयोजन से दिया है। वह तो यही कहने लगे कि समय ही आत्मा है और समय को जान लो, समय मे खडे हो जाओ, समय को पहचान लो और देख लो तो तुम अपने को देख लोगे, अपने को पहचान लोगे। लेकिन समय को जानना ही बहुत मुश्किल बात है। सबसे ज्यादा कठिन है वर्तमान मे खड़े होना क्योंकि हमारी पूरी आदत या तो पीछे होने की होती है या आगे होने की होती है। एक आदमी को पूछो कि तुम क्या कर रहे हो। या तो तुम उसे अतीत मे पाओगे, या भविष्य मे पाओगे। या तो वह उन दृश्यो को देख रहा है जो आ चुके हैं या उन दृश्यो की सोच रहा है जो आएगे। लेकिन शायद ही कभी किसी व्यक्ति को पाओगे कि वह कहे कि मै कुछ भी नही कर रहा हू। ऐसा आदमी नही मिलेगा। ऐसा आदमी मिल जाए तो समझना कि वह सामायिक मे था उस वक्त। उस क्षण मे वह कही भी व्यस्त नही था। बस था। जब हम कुछ भी नही कर रहे हैं, बस हैं, कुछ भी नही कर रहे है, मत्र भी नही जप रहे है, श्वास भी नही देख रहे हैं, सामायिक मे हैं। जिसे मैं श्वास देखने के लिए कहता हूं वह सामायिक नही है। वह सिर्फ इसलिए कह रहा हू कि जिससे आपकी व्यर्थ की दूसरी व्यस्तताए छूट जाए। एक ही व्यस्तता रह जाए कम से कम तब मैं कहूगा कि इससे भी छलांग लगा जाए। इतनी बहुत सी व्यस्तताए छूट गईं। एक ही व्यस्तता रह गई कि स्वांस ही देखना है। अब यह ऐसी व्यस्तता है कि न इससे कोई धन कमाई का उपाय है, न इससे कोई लाभ है। यह एक ऐसी व्यस्तता है जिससे छलाग लगाने में कठिनाई नही

पड़ेगी। यह एक ऐसी व्यर्थ व्यस्तता है कि अगर आप सबसे छूट गए तो इससे छूटने मे देर नही लगेगी। जैसे मैं कहूगा 'छोडे!' आप तो तैयार ही थे कि अब इसको छोड़ें। यह अभी सामायिक नही है। यह सामायिक के पहले की सीढ़ी है—सिर्फ छलाग लगाने की। जैसे नदी का किनारा है। वहा तख्ता लगा हुआ है जिस पर खडे होकर छलाग लगाई जाती है। अगर आप यहा पहुच गए हैं तो अब एक ही छलाग मे आप सागर मे पहुच सकते हैं। जब तक हम कुछ भी कर रहे हैं तब तक हम चूकते जाएगे वर्तमान से। जब हम कुछ भी नही करते तब हम उतर जाएगे। लेकिन यह हमारी समझ से एकदम बाहर हो जाता है कि कोई ऐसा मौका भी हमे मिले जब हम कुछ भी नही कर रहे, बस है। और अगर यह समझ मे आ जाए तो कोई कठिनाई नही है। इसमे क्या कठिनाई है कि कुछ क्षणो के लिए आप 'बस' हो जाए और कुछ न करे? कमरे मे पडे हैं, कोने मे टिके हैं, सिर्फ हैं। कुछ भी नही कर रहे हैं। बस हैं। आखिर होना इतना कठिन क्या है? वृक्ष है, पत्थर है, पहाड है, चाद-तारे है, सब हैं और शायद वे इसीलिए सुन्दर है कि समय मे कही गहरे डूबे हुए हैं। हम शायद इसीलिए इतने कुरूप है, इतने परेशान, चिन्तित, दुखी और हैरान है क्योकि समय से भागे हुए है, समय के बाहर छिटक गए है। जैसे जीवन के मूल स्रोत से कही झटका लग गया है, जडे उखड गई है, हम कही और हैं।

दो तरह की क्रियाए है। एक तो हमारे शरीर की क्रियाए हैं जो हमारी निद्रा मे शिथिल हो जाती है, बेहोशी मे बद हो जाती है। शरीर की कियाओ को रोकना बहुत कठिन नही है। शरीर की क्रियाओ से कोई गहरी बाधा नही है। उसके भीतर हमारे मन की क्रियाए है। वही हैं असली बाधाए क्योकि वही हमे समय से चुकाती है। शरीर नही चुकवाता हमे समय से। शरीर का अस्तित्व तो निरन्तर वर्तमान मे है। यह ध्यान रहे कि लोग आम तौर पर साधक होने की स्थिति मे शरीर के दुश्मन हो जाते हैं जबकि शरीर बेचारे की कोई दुश्मनी ही नही है। शरीर तो निरन्तर समय मे है। शरीर तो एक क्षण भी न अतीत मे जाता, न भविष्य मे जाता है। शरीर वही है जहा है। शरीर ने कभी भी किसी आदमी को नही भटकाया है आज तक। भटकाता है मन क्योकि मन कही-कही जाता है। जहा नही है वहा जाता है। रात आप सोते हैं, शरीर होगा श्रीनगर मे, मन कही भी हो सकता है। आप दिन मे बैठे हैं, शरीर है चश्मेशाही[1] पर, मन कही हो सकता है। मगर शरीर सदा वही है

१. श्रीनगर का वह स्थान जहां आचार्य जी के ये प्रवचन हुए।

जहा है। लेकिन साधक ग्राम तौर से शरीर से दुश्मनी साध लेता है, जिसने कभी कोई नुकसान पहुचाया ही नही। साधक का गहरे अर्थों मे जो प्रयोग है वह होना चाहिए मन पर। किसी न किसी तरह उसे अ-मन की स्थिति मे पहुचना है। कबीर उसे कहते हैं 'अपनी' यानी ऐसी अवस्था मे पहुच जाना जहा मन नही है। अब यह बड़े मजे की बात है कि मन होगा तो क्रिया होगी, क्रिया होगी तो मन बना रहेगा। मन किसी भी तरह की क्रिया के लिए राजी है। आप कहे : दूकान करो। तो वह कहता है . ठीक है, दूकान करते है। आप कहे . दूकान नही, पूजा करनी है। तो वह कहता है चलो पूजा करो। मन कहता है कुछ भी करो, हम राजी हैं क्योंकि करने मात्र मे मन बच जाता है। आप कहते हैं कि मत्र जपो तो वह कहता है : चलो हम राजी हैं। कोई भी क्रिया करो तो मन राजी है। लेकिन मन से कहो कि हम कुछ भी नही करना चाहते, तो मन बिल्कुल राजी नही है। वह पूरी कोशिश करेगा आपको कुछ न कुछ करवाने की। वह कहेगा कि कम से कम इतना ही करो कि मन से लडो। विचारो को निकाल कर बाहर करो, उन्हे आने मत देना। मन कहेगा ध्यान करो। लेकिन कुछ करो जरूर क्योंकि बिना किए काम नही चल सकता।

जापान का एक सम्राट एक झेन मन्दिर को देखने गया। बडी मोनेस्ट्री है, बड़ा आश्रम है। पहाडो पर दूर तक फैले हुए भवन है। बीच मे बडा पगोडा है। सम्राट द्वार पर ही उस आश्रम के बूढ़े प्रधान भिक्षु को कहता है कि मैं देखने आया। हू आप कहा क्या करते हैं। एक-एक जगह मुझे दिखा दें कि कहा क्या करते हैं। वह बूढा ले जाता है जहा भिक्षु स्नान करते है। वह कहता है यहा भिक्षु स्नान करते हैं। सम्राट कहता है कि इन सब फिजूल की बातो को मुझे मत दिखाए। असली चीज जहा करते हो वह बताइए। फिर वह दूसरी ओर ले जाता है। और कहता है : भिक्षु यहा फला-फला काम करते हैं। सम्राट कहता है क्यो आप बेकार की बातो मे मेरा समय नष्ट कर रहे हैं। मैं पूछता हू कि भिक्षु कहा जरूरी चीजे करते है ? भिक्षु कहता है यहा हम अध्ययन करते है, यह पुस्तकालय है। यहा भोजन करते हैं, यह भोजन-शाला है। यहा व्यायाम करते हैं, यह व्यायामशाला है। सम्राट कहता है कि क्यो तुम फिजूल की बातो में मुझे भटका रहे हो ? बीच मे जो बडा भवन है, वहा क्या करते है ? जब सम्राट उससे यह पूछता है तो भिक्षु मौन हो जाता है जैसे कि वह बहरा हो। सुनता ही नही। दूसरी बातें बताने लगता

है। कहता है यहां बगीचा लगाते हैं, यहां शाम को टहलते हैं। फिर सम्राट पूछता है: यह सब मैं समझ गया। यह सब ठीक है। वहां क्या करते हैं, उस बडे भवन मे क्या करते हैं? तब भिक्षु चुप हो जाता है जैसे कोई प्रश्न पूछा ही नही। सम्राट उकता गया है, परेशान हो गया है, दरवाजे पर वापस आ गया है, अपने घोडे पर सवार हो गया है, और कहता है कि या मैं पागल हूं या तुम पागल हो। यह बड़ा भवन जो दिखाई पड रहा है इसमें क्या करते हो? बोलते क्यो नही? तो वह भिक्षु कहता है: आप मुझे बडी मुश्किल में डाल देते हैं। असल में वह जगह ऐसी है जहा हम कुछ नही करते और आप पूछते हैं क्या करते हो? अगर मैं कहूं कुछ करना, तो गल्ती हो जाए या मैं चुप रह जाऊ। क्योंकि आप करने की भाषा समझते हो इसलिए मैंने स्नानगृह दिखलाया, अध्ययनकक्ष दिखलाया, जहा हम कुछ करते हैं। आप पूछते हैं: वहां क्या करते हो? तो मैं एकदम चुप हो जाता हू क्योंकि वहां हम कुछ करते ही नही। जिसे करना है, उसको वहा जाने की मनाही है। वहा करने की भाषा नही चलती। वहा जब किसी को कुछ भी नही करना होता तो कोई चुपचाप चला जाता है। वह हमारा ध्यान भवन है। तो सम्राट कहता है: समझ गया। वहां तुम ध्यान करते हो। भिक्षु कहता है कि भूल हुई जाती है क्योंकि ध्यान का अर्थ ही है कुछ न करना। जब तक हम कुछ कर रहे हैं तब तक ध्यान नही हो सकता लेकिन 'ध्यान' शब्द मे भी क्रिया जुडी हुई है। 'सामायिक' शब्द मे वह क्रिया भी नही है। 'ध्यान' से लगता है कुछ करने की बात है। 'सामायिक' मे करने को कुछ नही रह जाता। 'सामायिक' का मतलब है—अपने मे होना, 'समय' मे होना। करना नही है वहा, होना है सिर्फ। हम सब हैं बाहर-बाहर। कुछ न कुछ कर रहे है। ऐसा कभी नही है जब हम कुछ भी न कर रहे हो। आकाश मे कभी देखा होगा चील को तैरते हुए। जब चील तैरती है तब पंख भी नही हिलाती। सिर्फ हवा पर रह जाती है वह। वैसा ही कुछ होता है हमारे भीतर भी, जब हम सिर्फ तुल जाते है, पख भी नही हिलाते, कुछ भी नही करते भीतर, सब सन्नाटा हो जाता है। वह केवल होने की स्थिति है, क्रिया की नहीं है। वहां हम सिर्फ होते है, कुछ भी नहीं करते। उस स्थिति का नाम है 'सामायिक'। इसलिए जब कोई पूछता है कि 'सामायिक' कैसे करें तो इससे और गल्त सवाल दूसरा नही पूछ सकता। इससे ज्यादा गल्त सवाल दूसरा नही हो सकता।

हमारी सारी भाषा बिल्सगा करने पर खड़ी है। न करने का हमे कोई

ख्याल ही नहीं है। लेकिन हम करने मे अपने स्वभाव को कभी नहीं जान सकेंगे ? क्योंकि 'करना' सदा दूसरे के साथ है। सूक्ष्मतम तलो पर, जब भी हम कुछ कर रहे हैं, सदा और के साथ कर रहे है। और जब हम कर्ता बन रहे हैं तब हम कुछ और बन रहे है जो हम नहीं हैं। तब हम कोई अभिनय अपने ऊपर ले रहे है जो हम नहीं है। जैसे एक आदमी दूकानदार बन रहा है। यह एक अभिनय है जो वह अपने ऊपर ले रहा है। दूकानदार होना जीवन के एक बडे नाटक मे उसका अभिनय है। एक आदमी शिक्षक है, एक आदमी नौकर है। यह अभिनय है जो आदमी ले रहे हैं। जिन्दगी के बडे नाटक मे हम यह भूल जाएगे कि हम कुछ और थे जिन्होने यह अभिनय स्वीकार किया था। धीरे-धीरे अभिनय से तादात्म्य हो जाएगा। दूकानदार को फिर बड़ा मुश्किल है दूकानदार न हो जाना एक क्षणभर भी।

मैं कलकत्ते मे एक घर मे मेहमान था। उस घर की पत्नी ने कहा कि उसका पति चीफ जस्टिस है हाईकोर्ट का। क्योंकि वह आपको सुनते हैं, समझने की कोशिश करते है, कृपा करके इतना उनसे कह दे कि कभी-कभी चीफ जस्टिस न हो जाए तो बडा अच्छा रहे। वे चौबीस घटे चीफ जस्टिस है। उनकी वजह से हम बडे परेशान है। वह घर मे घुसते हैं और घर एकदम अदालत हो जाता है। बच्चे सभल कर बैठ जाते है। काम व्यवस्थित रूप से होने लगता है चीफ जस्टिस आ गए। अब यह आदमी भूल गया है कि वह नाटक है। वह शान्त हो ही नहीं रहा कभी। हम जानते है भली भाति कि कपड़े का दूकानदार रात मे चादर भी फाड देता है सपने मे। ग्राहको को बेच देता है सामान। नीद खुलती है तब पता चलता है कि उसने चादर फाड दी। वह दिनभर कपडा काट रहा है, फाड रहा है। सपने मे भी वही कर रहा है। सपने मे हम वही होते है जो हम चौबीस घटे दिन मे है। हम करेगे क्या ? हमारी क्रिया ने हमारे सारे व्यक्तित्व को चारो ओर से घेरा हुआ है। ऐसा कभी नहीं, जबकि हम बिल्कुल शात हो, वही है जो हैं और कुछ अगीकार नहीं कर रहे, कुछ ग्रहण नहीं कर रहे क्योंकि जब भी हम कुछ करेगे, अभिनय शुरू हो जाएगा। और ध्यान रहे जब तक हम अभिनय मे है तब तक हम आत्मा मे नहीं हो सकते। आत्मा मे अगर होना है तो सब तरह के मचो से नीचे उतरना होगा। अभिनय बदल लेना आसान है। एक दूकानदार सन्यासी हो सकता है। तब वह एक नई दूकान खोल लेगा।

वह सन्यासी होने के अभिनय मे पड जाएगा। लेकिन समस्त अभिनयो से कभी घड़ी भर बाहर उतर आना, जब कि आत्मा न दूकानदार रहे, न सन्यासी रहे, न गृहस्थ रहे, न पिता रहे, न मा रहे, न बेटा रहे, न पति रहे, न पत्नी रहे और आप सब क्रिया और सब अभिनय को उतार कर एक तरफ रख देना और वही हो जाना जो आप थे जन्म के पहले और हो जाएगे मरने के बाद।

झेन फकीर लोगो से कहते हैं कि तुम आख बद करके एक काम करो; कोशिश करो खोजने की कि जब तुम जन्मे नही थे तुम्हारा चेहरा कैसा था? कहते हैं कि तुम उठकर एक अधेरे कमरे मे बैठ जाओ और इसकी खोज करो। वह आदमी जाता है, सोचता है, कोशिश करता है क्योकि हम सबको ख्याल है कि चेहरा हर हालत मे रहना ही चाहिए। और हमे यह ख्याल ही नही है कि कोई एक भीतर भी है जहा कोई चेहरा नही है। तो वह आदमी खोजता है कि मेरा मूल चेहरा क्या है, परेशान हो जाता है, थक जाता है कि मैं जब पैदा नही हुआ था तो मैं कौन था, मेरा चेहरा कैसा था। आकर बार-बार खबर देता है कि शायद ऐसा था तो झेन फकीर कहता है कि यह तो तुम इसी चेहरे की नकल बता रहे हो। यह तो इसी चेहरे से मिलता-जुलता है जो तुम कह रहे हो। यह कहां था मा के पेट मे? मा के पेट के पहले कहा था? जरा और खोजो। तब खोज चलती है। किसी दिन विस्फोट होता है और उमे ख्याल आता है कि मेरा भीतर कोई चेहरा है भी? चेहरे तो सब बाहर से लिए हुए हैं, सब मुखौटे है। बाजार से एक आदमी मुखौटा खरीद कर शेर बन जाता है तो हम उस पर हसते हैं। और हम मा-बाप से कहकर एक चेहरा ले आते है खरीद कर और बडे प्रसन्न हैं। और सोच रहे हैं यह चेहरा मेरा है। इसी तरह यह चेहरा भी गहरी दुनिया के बाजार से खरीदा गया है, ठेठ बाजार से नही लाया गया लेकिन फिर भी बाहर से लाया गया है। भीतर कोई चेहरा नही है, कोई नाम नही, कोई क्रिया नही, कोई अभिनय नही। तो अगर स्वभाव को जानना हो जो मैं हू, उसे ही जानना हो तो मुझे सारी क्रिया, सारे चेहरे, सारे अभिनय छोडकर थोड़ी देर बाहर खड़े हो जाना पडेगा। इस थोड़ी देर को बाहर खडे हो जाने का नाम सामायिक है। और एक बार मुझे पहचाना जाए कि मेरा कोई नाम नही, चेहरा नहीं, शरीर नही, कर्म नहीं, कोई अभिनय नही, मात्र होना है,

अस्तित्व मात्र मेरा स्वभाव है और जानना मात्र मेरी प्रकृति है तो एक मुक्ति, एक विस्फोट होगा। यह विस्फोट व्यक्ति को जीवन के समस्त चक्कर के बाहर तत्क्षण खड़ा करा देता है। और उसे लगता है कि मैं अभिनय में था और इसलिए यह एक चक्कर था, एक खेल था। अभिनय मे ऐसी भूल हो जाती है और कई बार ख्याल भी नहीं रहता क्योकि अभिनय को हम जन्म के साथ ही पकड लेते हैं। हमारी सारी सभ्यता, सारी सस्कृति, सारी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसका ठीक अभिनय देने की है। यानी एक-एक आदमी को उसका ठीक-ठीक अभिनय मिल जाए उसकी सारी व्यवस्था है। हमारी पूरी व्यवस्था ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक चेहरा मिल जाए, एक काम मिल जाए, एक अभिनय मिल जाए, नाटक मे काम करे, चेहरा निभाए और जिन्दगी गुजार दे। जिस आदमी को चेहरा न मिल पाए, अभिनय न मिल पाए हम कहते हैं वह आदमी भटक गया, खो गया है। उसके पास न कोई काम है, न कोई चेहरा है। वह क्या करता है, कुछ पता नहीं चलता। वह कौन है कुछ पता नही चलता। तो हम उन आदमियो को सफल कहते हैं जो आदमी इस अभिनय मे जितना तादात्म्य कर लेते हैं और जितने गहरे उतर जाते हैं।

एक चित्रकार था—गोगा। वह चालीस वर्ष की उम्र तक दलाल रहा। और खूब कमाया उसने। पत्नी थी, बच्चे थे और कभी किसी ने सोचा नही था कि गोगा एक रात घर से नदारद हो जाएगा। रात सोया था पत्नी को नमस्कार करके, बच्चो को प्रेम करके और आधी रात कब चला गया घर से, पता नही चला। न कभी उसे किसी दूसरी स्त्री में उत्सुक देखा गया था कि पत्नी यह विचार करे कि कही भाग गया किसी स्त्री के साथ। न किसी क्लब मे, न किसी शराब मे, न किसी जुए मे, उसे कोई उत्सुकता थी। बडा सीधा-साधा आदमी था। कमाता था, घर का काम करता था, बच्चो से प्रेम था, पत्नी से प्रेम था। कोई कभी झगडा नही हुआ था, कोई घटना न घटी थी। अचानक वह आदमी रात कहा नदारद हो गया, दो साल तक पता न चला। दो साल बाद पता चला कि वह पेरिस में एक चित्रकार के पास चित्रकला सीख रहा है। घर के लोग भागे गए। पत्नी भागी गई, कहा : तुम्हे क्या हो गया, तुम आए क्यों? तो उसने कहा कि ऐसा ख्याल आ गया कि क्या जिन्दगी भर दलाल होने का ही अभिनय करता रहूगा? उसकी पत्नी ने कहा यह मेरी कुछ समझ में नहीं आता। इसका क्या मतलब है? उसने कहा कि इसका मतलब

यह है कि मैंने सोचा कि यह कोई मेरा चेहरा तो नही है। यह तो ग्रहण किया हुआ चेहरा है। बदल लें चेहरे को। तो उन्होंने कहा कि 'हम बच्चे और पत्नी।' उसने कहा : "तुम्हारे लिए मैं इन्तजाम कर आया हू। लेकिन अब मैं किसी का पति नही हू, किसी का बाप नही हू।" कोई जिन्दगी भर बाप ही बना रहू और पति ही बना रहू ? किसी की समझ में नही आया और उन्होने समझा कि आदमी पागल हो गया है। दस वर्ष निरन्तर मेहनत करके वह दुनिया के श्रेष्ठतम चित्रकारो मे एक हो गया है। लेकिन एक दिन अचानक लोगो ने पाया कि जब उसके चित्र लाखो मे बिकने लगे तो वह छोडकर चला गया। किसी ने उससे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा हो गई है, इतना तुमने श्रम किया है। तो उसने कहा कि कोई भी अभिनय मेरा स्वभाव नही है। मैं अपने चेहरे की खोज मे लगा हू। मैं किसी नकली चेहरे को पकडना नही चाहता।

मैं आपसे यह नही कह रहा हू कि आप जो कर रहे हैं, उसे छोडकर भाग जाए। कह रहा हू कुल इतना कि जो चेहरा आपने सख्त मजबूती से पकड लिया है वही आप है इस भ्रम मे न पड़े। वह आपके होने का एक ढोग है। होना नहीं है। वह आपकी जीवन-पद्धति का, अभिनय का एक रूप है। जो आप कर रहे है, वह जरूरी है करेंगे। करना है। लेकिन आपकी न करने की भी कोई अवस्था होनी चाहिए जहा आप कुछ भी नही कर रहे हैं, जहा सारे सम्बन्ध, सारी क्रियाए, सारे अभिनय क्षीण हो गए है, आप ही रह गए हैं बस अपने होने मे। ऐसा जो क्षण उपलब्ध हो जाए तो समय का बोध शुरू होता है, और व्यक्ति स्वय मे स्थिर हो जाता है, रुक जाता है। और वह अनुभूति एक बार भी मिल जाए तो दुबारा कभी खोती नही। फिर आप कितना ही कुछ करते रहे, आप प्रत्येक करने मे जानते हैं कि यह अभिनय है। थोडी देर के बाद उतर कर घर चले जाना है। यह स्मृति इतनी साफ हो जाती है कि फिर आप अभिनेता होने से तादात्म्य नही कर लेते हैं अपना। अभिनय जीवन व्यवस्था का अग हो जाता है। लेकिन अभिनय के बाहर आपकी सत्ता की झलक मिलनी शुरू हो जाती हैं।

कृष्ण के जीवन व्यवहार को जो नाम दिया है, वह है 'लीला'। 'लीला का मतलब है खेल, नाटक जो सच्चा नहीं, माना हुआ है। जो व्यक्ति सामायिक को उपलब्ध हो जाएगा उसका जीवन लीला हो जाएगा। वह चरित्र नही रह

जाएगा। इसलिए राम के जीवन को हम 'लीला' नहीं कहते। वह एक चरित्र है। वहा नीति की पकड गहरी है। वहा अभिनय भारी है। लेकिन कृष्ण के मामले को हम कहते हैं—'लीला।' क्योकि वहा चीजें तरल हैं; पकड नही है। सब खेल है। और भीतर एक आदमी बाहर खडा है जो खेल के बिल्कुल बाहर है। क्या ऐसा कर सकते हैं आप कि क्षण भर खेल के बाहर उतर आएं, वे वस्त्र उतार दें जो नाटक के मच पर पहने थे, वे चेहरे भी निकाल दे, वह मेकअप भी हटा दें जो काम करता था मंच पर, और खाली घर लौट आए जैसे आप हैं? ऐसा अगर कर सके तो इसके पहले हिस्से का नाम प्रतिक्रमण है—इस लौटने का नाम। दूसरे का नाम है सामायिक जब आप अपने मे ठहर गए है, जैसे झींगुर बोल रहा है, वृक्षो मे पत्ते लग रहे हैं, आकाश मे चाद की किरणें गिर रही है, ऐसा ही किसी क्षण मे आप कुछ कर नही रहे हैं, जो हो रहा है हो रहा है; स्वास चल रही है चल रही है, आप चला नही रहे है, आख झपक रही है झपक रही है, आप झपका नही रहे हैं, पैर थक गया है, हिल गया है, आपने हिलाया नही है। और आप बिल्कुल ऐसे हो गए हैं जैसे हैं ही नही। उस क्षण मे आपको पता चल सकेगा कि मैं कौन हू, मेरी आत्मा क्या है, मेरा अस्तित्व क्या है और एक बार इसका पता चल जाए तो फिर जीवन दूसरा होगा, फिर जीवन वही कभी नही होगा जो था। इसे हम दो चार उदाहरणो से समझाने की कोशिश करें।

तिब्बत मे एक फकीर हुआ है मार्पा। वह अपने गुरु के पास गया। गुरु लेटा हुआ है। वह गुरु से कहता है आप इस समय क्या कर रहे हैं? गुरु कहता है: किसी समय मैंने कुछ नही किया। मार्पा कहता है कुछ तो कर ही रहे होगे? बिना किए कैसे हो सकते हैं? गुरु कहता है: करने वाला कभी हुआ है? किया कि गए। नही किया कि पाया। मार्पा कहता है कि कुछ समझ मे नही आया। गुरु कहता है: तुम समझने की कोशिश कर रहे हो इसलिए समझ मे कैसे आए? समझने की कोशिश न करो। देखो, जानो और पहचानो। एक जर्मन विचारक है हैरीगेल। वह जापान गया। वहा उसने बहुत सी तरकीबें खोजी जिनके माध्यम से वह 'सामायिक' मे ले जाना सिखाते हैं। उनमे फूल जमाने की कला भी एक है जिससे आप ध्यान को उपलब्ध हो जाते हैं। जिस दिन फूल जमाने की कला मे कोई निष्णात हो जाता है, गुरु पूछता है। जब वह कहता है कि बहुत अच्छे जमाए

फूल तो उसका गुरु कहता है उससे : ऐसा मत कह, तू कह कि फूल जम गए, मैंने कुछ किया नहीं है, फूल ऐसे जमना चाहते थे। मैंने फूल जमाए नहीं। मेरा उन्होंने उपयोग ले लिया और फूल जम गए। तो फूल जमाने से भी सिखाते हैं, तलवार चलाने से भी सिखाते हैं, तीर चलाने से भी सिखाते हैं। हैरीगेल जिस गुरु के पास गया वह धनुर्विद्या से ध्यान सिखाता था। तीन साल तक हैरीगेल ने धनुर्विद्या सीखी। उसके निशाने अचूक हो गए। लेकिन गुरु रोज कहता है : नही, अभी कुछ भी नही हुआ है। तो हैरीगेल कहता है कि मैं परेशान हो गया तीन साल मेहनत करते-करते। मेरा एक निशाना भी नहीं चूकता है और आप कहते हैं कुछ नही हुआ है। गुरु कहता है : निशाने से लेना-देना क्या है ? अभी तीर तू चलाता है, वह चलता नही है। निशाने से क्या मतलब ? निशाना लगे न लगे यह गौण बात है। और निशाना क्यो न लगेगा ? निशाना लगेगा। निशाने से कुछ लेना-देना नही है। लेकिन तू तीर चलाता है, तीर अभी चलता नहीं। तीन साल परेशान हो गया। जो भी देखने आता, वह कहता हैरीगेल अद्भुत हो तुम ! उसका कोई निशाना नही चूकता लेकिन उसका गुरु रोज कह देता 'नही, अभी कुछ नही हुआ है।' आखिर थक गया है हैरीगेल। और उसने कहा . अब क्षमा करें। अब मैं लौट जाऊ। लेकिन गुरु ने कहा सर्टिफिकेट नही दे सकूगा। इतना लिख सकता हू कि तीन साल मेरे पास रहा लेकिन असफल लौटता है। वह कहता है कि सब निशाने ठीक लगते हैं। गुरु ने कहा निशाने से हमे कोई मतलब ही नही। हम तुझे देख रहे हैं। तू ही ठीक नहीं है क्योकि तू अभी तक ऐसा नही हो पाया है कि तीर चले। अभी तू तीर चलाता है। हैरीगेल पश्चिमी आदमी है। उसकी समझ से बाहर है बिल्कुल ही यह बात। वह लिखता है अपनी किताब मे : मेरी समझ के ही बाहर है कि तीर चलेगा ही कैसे जब तक मैं न चलाऊगा। यह निपट बकवास मालूम पड़ती है कि तीर अपने आप चले। और वह कहता है ऐसा चलाओ जैसा कि तुमने न चलाया हो। बस तीर चल जाए। तुम बीच मे मत आओ, तुम क्रिया मत बनो, तुम कर्ता मत बनो। थक गया वह। आखिर तीन साल बाद उसने कहा कि मैं कल टिकट बुक करवा आया हूं। मैं वापस जा रहा हूं। गुरु ने कहा : जैसी तुम्हारी मर्जी। दूसरे दिन सांझ को हवाई जहाज चलना है। सुबह वह अन्तिम बिदा लेने गुरु के पास जाता है। गुरु दूसरे शिष्यो को तीर चलाना सिखा रहा है। हैरीगेल एक बेंच पर बैठ गया है। उसके गुरु ने तीर उठाया है। तीर

चलाया है। हैरीगेल एकदम से खड़ा हो गया है। गया है गुरु के पास बिना बोले। धनुष हाथ मे लिया है। तीर चलाया है। गुरु ने कहा ठीक . तीर चल गया। हैरीगेल ने कहा ' लेकिन इतने दिन मे क्यो नही हो सका। उसने कहा तू इतने दिन से कोशिश मे लगा रहा। आज तू कोशिश मे नही था। आज तू ऐसे आकर बैठा था कि बिदा लेनी है। हैरीगेल ने कहा 'हा, मैं आज तक देख ही नही सका आपको। आज मैंने पहली दफा देखा कि तीर चल रहा है और आदमी मौजूद नही है। फिर मैं उठा। मैं यह भी नही कह सकता कि क्यो उठा ? उठ गया। तीर हाथ मे आ गया। तीर चल गया।' गुरु ने कहा अब मैं तुझे लिखकर दे सकता हू। वैसे एक ही दिन काफी है। बात खत्म हो गई। तुझे समझ मे आ गया फर्क। न हम कर्ता हैं, न हम अकर्ता है। एक क्षण भी अकर्ता हो जाए तो बात खत्म हो गई। एक क्षण अकर्ता का ही 'सामायिक' का क्षण है। एक और घटना मुझे याद आती है।

चीन मे एक हुईहाई फकीर हुआ। वह अपने गुरु के पास जाकर कहता है कि मुझे मोक्ष पाना है, सत्य पाना है। गुरु कहता है जब तक पाना है तक तक कही और जा। जब पाना न हो तब मेरे पास आना। उसने कहा जब मुझे पाना नही होगा तो मैं आपके पास क्यो आऊगा ? गुरु कहता है 'मत आना।' लेकिन जब तक पाना है तब तक मुझसे क्या 'लेना-देना' क्योकि पाने की भाषा तनाव की भाषा है। जब तक तू कहता है 'पाना है तो पाना होगा भविष्य मे। तू होगा आज मे। और तेरा मन खिचेगा भविष्य तक। तनाव हो जाएगा'। वह गुरु से पूछता है आप कुछ पाने के लिए नही करते ? गुरु कहता है 'नही, जब तक हम पाने के लिए करते थे नही पाया। जिस दिन पाना छोड दिया, उस दिन पा लिया। मेरे बूढे गुरु ने मुझ से कहा था कि खोजो और खो दोगे। मत खोजो, और पा लो।' तब मैं भी नही समझता था कि मामला क्या है 'मत खोजो और पा लो।' 'खोजोगे और खो दोगे ?' गुरु ने जब मुझ से कहा था तो मैंने कहा कि यह तो बिल्कुल पागलपन की बात है। खोजेंगे नही तो पाएंगे कैसे ? गुरु ने मुझसे कहा था कि तुम खोजते हो इसीलिए खो रहे हो क्योकि जिसे तुम खोजते हो उसे तुम पाए ही हुए हो। एक क्षण तुम खोज को रोको, दौड को रोको, ताकि तुम देख सको कि तुम्हे क्या मिला हुआ है। तो गुरु ने कहा : 'मैं भी तुमसे कहता हू कि जब तक पाना हो तू कही और खोज ले। और जब न पाना हो तब आ जाना। वह युवक कई आश्रमो मे भटकता फिरा। कई जगह खोज की।

थक गया, परेशान हो गया, कहीं कुछ मिला नही, कही कुछ पाया नहीं। थका-मांदा वापस लौटा। तब गुरु ने पूछा : 'क्या इरादे हैं। और खोजो ?' वह कहता है : नही मैं बहुत थक गया। कुछ खोजना नही है। विश्राम के लिए आया हू। तब गुरु ने कहा आओ, स्वागत है। कभी-कभी जो श्रम से नही मिलता है, विश्राम मे मिल जाता है।

न भूत मे जाना, न भविष्य मे जाना, न कुछ पाना, न कही कुछ खोजना, बस जहा है वही रह जाना, तो सम्पूर्ण उमर बीत जाती है। बुद्ध को जिस दिन उपलब्धि हुई, उस दिन सुबह उनसे लोगो ने पूछा "आपको क्या मिला ?" बुद्ध ने कहा मिला कुछ भी नही। जो मिला ही हुआ था, वही मिल गया। कैसे मिला ? बुद्ध ने कहा 'कैसे की' बात मत पूछो। जब तक कैसे की भाषा मे मैं सोचता था, तब तक नही मिला। क्योकि जो मिला ही हुआ था, उसको मैं खोजता था। फिर मैंने सब खोज छोड दी। और जिस क्षण मैंने खोज छोडी, पाया कि जिसे मैं खोजता था वह है ही। असल मे स्वभाव का, स्वरूप का मतलब है जो है ही। खोज का मतलब है वह जो नही है, उसे हम खोज रहे हैं। इसलिए जब कोई आदमी आत्मा को खोजने लगता है तब वह पागलपन में लग गया है। क्योकि आत्मा को कौन खोजेगा ? कैसे खोजेगा ? वह तो है ही हमारे पास। जब हम खोज रहे हैं तब भी, जब नही खोज रहे हैं तब भी। फर्क इतना ही पडता है कि अब खोजने मे हम उलझ जाते है, चूक जाते हैं। नही खोजते हैं—दिख जाता है, मिल जाता है, उपलब्ध हो जाता है। अगर यह बात ठीक से ख्याल मे आ जाए कि सामायिक है अप्रयास, अ-खोज, कोई लक्ष्य नही है जो भविष्य मे है, यह है अभी, और यही, अगर हम लक्ष्य को खोजते हुए भटकते रहे तो हम चूकते चले जाएगे, अनन्त जन्मो तक, अगर आप इसी क्षण मे हो सकते हैं, और कुछ भी नही करते तो आप वही पहुच जाएगे जहा महावीर सदा से खडे हैं। लेकिन हमारा मन वही प्रश्न बार-बार उठाए जाता है : कैसे करें? क्या करें, कहा जाए? कहां खोजें? जो नही जानते हैं वे कहेंगे उसे जो खोजने की इच्छा कर रहा है 'खोजो'। जो जानते हैं कहेंगे : और कही मत खोजो, जहां से प्रश्न उठा है, वही उतर जाओ। वे कहेंगे कि जहा यह जो भीतर पूछ रहा है कि आत्मा को कैसे पाए, मोक्ष को कैसे पाए, इसी मे उतर जाओ। और इसी में उतरने से मोक्ष मिल जाएगा, आत्मा मिल जाएगी। यही है आत्मा; यही है मोक्ष। लेकिन कही कुछ मनुष्य के चित्त की पूरी यांत्रिकता में कुछ बुनियादी भूल है कि वह चूकता ही चला जाता है। एक बारीक सी

बात उसके ख्याल में नही आ पाती कि जो मुझे पाना है, वह मुझे किसी न किसी अर्थ मे मिला ही हुआ है। अगर यह स्पष्ट रूप से ख्याल मे आ जाए तो दूसरी बात ख्याल मे आ जाएगी कि हमे श्रम से नही पाना है इसे, विश्राम मे पाना है। तब यह भी समझ मे आ जाएगा कि पाने की भाषा ही गल्त है। जो पाया ही हुआ है उसका आविष्कार कर लेना है। इसलिए आत्मा उपलब्ध नही होती सिर्फ आत्म-आविष्कार होता है। कुछ ढका हुआ था, उसे उघाड लिया है। और ढका है हमारी खोज करने की प्रवृत्ति से, ढका है हमारे और कही होने की स्थिति से। हम कही और न हो तो उघड जाएगा, अपने से उघड जाएगा, अभी उघड जाएगा। सामायिक न तो कोई क्रिया है, न कोई अभ्यास है, न कोई प्रयत्न है, न कोई साधना है, न कोई साधन है।

मैं एक छोटी सी घटना मे समझा दू। मुछाला महावीर मे पहला शिविर हुआ। राजस्थान की एक वृद्ध महिला भूरबाई भी उस शिविर मे आई। उसके साथ उसके कुछ भक्त भी आए। फिर जब भी मै राजस्थान गया हू, निरन्तर प्रतिवर्ष हर जगह भूरबाई आती रही साथ कुछ लोगो को लेकर। सैकडो लोग पूजा करते हैं उसकी। सैकडो लोग पैर छूते है, सैकडो लोग उसे मानते हैं। और वह एक निपट साधारण, ग्रामीण स्त्री है। न कुछ बोलती, न कुछ बताती। लेकिन लोग पास बैठते है, उठते हैं, सेवा करते हैं और चले जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा वह प्रेम करती है लोगो को। उनको खिला देती है, उनकी सेवा कर देती है और उनको बिदा कर देती है लेकिन फिर भी, सैकडो लोग उसको प्रेम करते है, उसके पास आते है। तो वह आई। पहले दिन ही सुबह की बैठक मे मैंने समझाया कि ध्यान क्या है जैसे अभी आप से कहा कि 'सामायिक' क्या है और कहा कि ध्यान करना नही है, न करने मे डूब जाना है। उस भूरबाई के पास एक व्यक्ति पच्चीस वर्षों से उसकी सेवा करते है। वह कभी हाईकोर्ट के वकील थे। फिर सब छोड कर वे भूरबाई के दरवाजे पर बैठ गए। उसके कपडे धोते, उसके पैर दबाते और आनन्दित हैं। वह भी आये थे। जब साझ को सब ध्यान करने आए तो उन सज्जन ने मुझे आकर कहा कि बडी अजीब बात है। भूरबाई को हमने बहुत कहा कि ध्यान करने चलो। वह खूब हसती है। जब हम उससे बार-बार कहते है तो वह कहती है कि तुम जाओ। और जब हम नही माने तो उसने कहा कि तुम जाओ यहा से, तुम ध्यान करो। तो उसने मुझे आकर कहा कि मुझे बडी हैरानी हुई कि हम आए

किसलिए। वह तो आती नहीं कमरे को छोड़ कर। मैं इधर आया कि उसने दरवाजा बंद कर लिया। मैंने कहा कि कल जब वह सुबह आए तो उसके सामने ही मुझसे पूछना। सुबह वह बुढ़िया आई और मेरे पैर पकड़कर हंसने लगी और कहने लगी. रात बड़ा मजा हुआ। आपने सुबह कितना समझाया कि ध्यान करना नहीं है और हमारा यह वकील कहता है : ध्यान करने चलो। तो मैंने उससे कहा कि तू जल्दी से जा यहां से क्योंकि करने वाला रहेगा तो कुछ न कुछ गड़बड़ करेगा। तू जल्दी से जा यहां से। तू ध्यान कर। और जैसे ही यह बाहर आया मैंने दरवाजा बंद कर लिया और मैं ध्यान में चली गई। और आपने ठीक कहा। 'करने से' नहीं हुआ। वर्षों तक नहीं हुआ करने से और कल रात हुआ क्योंकि मैंने कुछ नहीं किया। बस मैं पड़ गई जैसे मर गई हूं। पड़ी रही, और हो गया। और यह कहता था ध्यान करने चलो। यह इधर ध्यान करने आया और मैं उधर ध्यान में गई और यह चूक गया। आप इसको समझाओ कि वह करने की बात भूल जाए।

करने की बात हमें नहीं भूलती, किसी को भी नहीं भूलती। इसलिए मुझे भी समझने में आप निरन्तर चूक जाते हैं कि मैं क्या कह रहा हूं। महावीर को समझने में भी लोग निरन्तर चूके हैं कि वे क्या कह रहे हैं। एक छोटी सी घटना है। लाओत्से एक जंगल में गुजर रहा है। उसके साथ उसके कुछ शिष्य हैं। किसी राजा का महल बन रहा है और जंगल में हर वृक्ष की शाखाएं काटी जा रही हैं, तने काटे जा रहे हैं, लकड़ियां काटी जा रही हैं। पूरा जंगल कट रहा है। सिर्फ एक वृक्ष है बहुत बड़ा जिसके नीचे हजार बैलगाड़ी ठहर सकती हैं। उस वृक्ष की किसी ने एक शाखा भी नहीं काटी है। लाओत्से ने अपने शिष्यों से कहा कि जरा जाओ, उस वृक्ष से पूछो कि इसका रहस्य क्या है। जब सारा जंगल कट रहा है तो यह वृक्ष कैसे बच गया है। इस वृक्ष के पास जरूर कोई रहस्य है। जाओ, जरा वृक्ष से पूछ कर आओ। शिष्य दरख्त का चक्कर लगा कर आते हैं और लौट कर कहते हैं कि हम चक्कर लगा आए मगर वृक्ष से क्या पूछें? यह बात जरूर है कि वृक्ष बड़ा भारी है, किसी ने नहीं काटा उसे। बड़ी छाया है उसकी, बड़े पत्ते हैं उसके। बड़ी दूर से आ आकर पक्षी विश्राम करते हैं। हजारों बैलगाड़ियां नीचे ठहर सकती हैं। लाओत्से ने कहा तो जाओ, उन लोगों से पूछो जो दूसरे वृक्षों को काट रहे हैं कि इसको क्यों नहीं काटते। रहस्य जरूर है उस वृक्ष के पास। तो वे गए हैं और एक बढ़ई से

उन्होंने पूछा है कि तुम इस वृक्ष को क्यो नही काटते । उस बढ़ई ने कहा है कि इस वृक्ष को काटना मुश्किल है । यह वृक्ष बिल्कुल लाम्रोत्से की भांति है तो उसके शिष्यो ने कहा कि हम लाम्रोत्से के शिष्य हैं । तब बढ़ई ने कहा यह वृक्ष लाम्रोत्से की भाति है, बिल्कुल बेकार है, किसी काम का नहीं, लकड़ी कोई सीधी नही, सब तिरछी हैं, किसी काम मे नही प्राती, जलाग्रो तो धुंग्रा देती है । इसे काटे भी कौन ? इसलिए बचा हुग्रा है । वे लौटे । उन्होंने लौटकर कहा बडी ग्रजीब बात हुई । बढई ने कहा है कि लाम्रोत्से की भाति है यह वृक्ष । लाम्रोत्से ने कहा : बिल्कुल ठीक इसी वृक्ष की भाति हो जाग्रो । न कुछ करो, न कुछ पाने की कोशिश करो । क्योकि जिन वृक्षो ने सीधा होने की कोशिश की, सुन्दर होने की कोशिश की, कुछ भी बनने की कोशिश की उनकी हालतें देख रहे हो । एक भर वह वृक्ष है जिसने कुछ भी बनने की कोशिश नही की, जो हो गया हो गया, तिरछा तो तिरछा, ग्राडा तो ग्राडा, धुग्रा निकलता है तो धुग्रा निकलता है । देखो वह कैसा बच गया है—बिल्कुल लाम्रोत्से जैसा । ग्रौर ऐसे ही हो जाग्रो ग्रगर बचना हो ग्रौर बडी छाया पानी हो । ग्रौर तुम्हारी शाखाग्रो मे बडे पक्षी विश्राम करे ग्रौर तुम्हे कभी कोई काटने न ग्राए । फिर शिष्यो ने कहा कि हम ठीक से नही समझे कि बात क्या है । यह तो एक पहेली हो गई । वृक्ष से तो नही पूछ सके लेकिन जब ग्राप कहते है कि मेरे ही भाति यह वृक्ष है तो हम ग्रापसे ही पूछते है कि रहस्य क्या है ? तब लाम्रोत्से ने कहा कि रहस्य यह है कि मुझे कभी कोई हरा नही सका क्योकि मैं पहले से ही हारा हुग्रा था । मुझे कभी कोई उठा नही सका क्योकि मैं सदा उस जगह बैठा जहां से कोई उठाने ग्राता ही नही । मैं जूतो के पास ही बैठा सदा । मेरा कभी कोई ग्रपमान नही कर सका क्योकि मैंने कभी मान की कामना नही की । मैंने कुछ होना नही चाहा, न धनी होना चाहा, न यशस्वी होना चाहा, न विद्वान होना चाहा, इसलिए मैं वही हो गया जो मैं हू यानी कुछ ग्रौर होना चाहता तो मैं चूक जाता । यह वृक्ष—ठीक कहते हैं वे लोग, मेरे जैसा इसने कुछ नही होना चाहा । इसलिए जो था, वही हो गया । ग्रौर परम ग्रानन्द है, वही हो जाना जो हम हैं, जो हम है उसी मे रम जाना मुक्ति है, जो हम हैं उसी को उपलब्ध कर लेना सत्य है । सामायिक को ग्रगर ऐसा देखेंगे तो समझ मे ग्रा जाएगा ग्रौर मन्दिरो मे जो सामायिक की जा रही है, ग्रगर वहा समझने गए तो फिर कभी समझ मे नहीं ग्राएगा । वे सब करने वाले लोग

हैं। वे वहा भी सामायिक कर रहे है, वहा भी व्यवस्था दे रहे हैं। मन्त्र है, जाप है, इन्तजाम है—सब कर रहे हैं। वह सब क्रिया है और क्रिया के पीछे लोग हैं। क्योकि ऐसी कोई क्रिया ही नही जिसके पीछे लोग न हो, पाने की कामना न हो। स्वर्ग है, मोक्ष है, आत्मा है, कुछ न कुछ उन्हें पाना है। उसके लिए वे क्रिया कर रहे है। और जिसके भी पाने की आकाक्षा है, सब पा लें सिर्फ स्वयं को नही पा सकते। क्योकि स्वय को पाने की आकाक्षा से नही पाया जा सकता। पाने की सब आकाक्षा स्वय के बाहर ले जाती है। जब पाने की कोई आकाक्षा नही रही तो आदमी स्वय मे वापस लौट आता है। यह जो वापिस लौट आना है और घर मे ही ठहर जाना है, इसका नाम 'सामायिक' है। महावीर ने अद्भुत व्यवस्था की है उस 'अक्रिया' मे उतर जाने की—होने मात्र मे उतर जाने की। जिसको समझ मे आ जाए उसे करने मात्र का सवाल नही है फिर। और जिसकी समझ मे न आए वह कुछ भी करता रहे, उसे कोई फर्क पडने वाला नही।

प्रश्न : अठतालीस मिनट का इसमें क्या हिसाब है ?

उत्तर : कुछ मतलब नही है। यहा मिनट का सवाल ही नही है। एक समय भर ठहर जाना काफी है। एक क्षण का जो हजारवा हिस्सा है, लाखवा हिस्सा है उसमे भी अगर तुम ठहर गए तो बात हो गई।

प्रश्न : यह सूत्र क्यो बनाए है सामायिक के ?

उत्तर : सूत्र अनुयायी बनाते है और बाधते है। महावीर को कोई सम्बन्ध नही है इन सूत्रो से। असल मे सदा ही यह कठिनाई रही है कि अनुयायी क्या करता है। यह बडा मुश्किल मामला है। वह जो कर सकता है करता है। और वह सब इन्तजाम कर देता है पूरा का पूरा। और उसमे जो महत्वपूर्ण था वह इन्तजाम मे ही खो जाता है। और अनुयायी प्रेम से इन्तजाम करता है। वह कहता हे कि सब व्यवस्थित कर दो। लोग पूछते हैं कि क्या करना चाहिए, कितनी देर करना चाहिए, कैसे करना चाहिए। कुछ इन्तजाम करें, नही तो लोग कैसे समझेंगे, सामान्य आदमी कैसे समझेगा। सामान्य आदमी के लिए अनुयायी इन्तजाम कर देता है। फिर वह इन्तजाम चलता है। सत्य का उससे कोई सम्बन्ध नही रह जाता। महावीर जैसे लोगो को समझना ही मुश्किल है। क्योकि वह जो बात कह रहे हैं, इतनी गहराई की है, और हम जहा खड़े है वह इतने उथलेपन मे है बल्कि उथलेपन मे भी तट पर खड़े हुए हैं और वहा से जो हमारी समझ मे आता

है, वह इन्तजाम हम कर लेते है। अनुयायी सारी व्यवस्था देता है, और कुछ व्यवस्थापरक मस्तिष्क होते हैं जो सदा व्यवस्था देते रहते हैं। वह किसी भी चीज को व्यवस्थित कर देते हैं। कुछ चीजें ऐसी हैं जो व्यवस्था मे ही मर जाती हैं। असल मे जीवनबोध की कोई भी चीज व्यवस्था मे ही मर जाती है। मेरा कहना है कि व्यवस्था मत देना। क्योकि व्यवस्था दी तो जिनके समझ मे भी कभी आ सकता था उनकी समझ मे भी कभी नही आएगा फिर। इसलिए उसको अव्यवस्थित ही छोड देना। जैसा है वैसा ही छोड देना।

प्रश्न—अगर कहना हो 'सामायिक' तो क्या कहेंगे ? सामायिक कहेंगे या नहीं ?

उत्तर—नही, बिल्कुल नही कहेगे।

उसका मतलब इतना है कि कुछ देर के लिए कुछ भी नही करना है। जो हो रहा है, होने देना है। विचार आते हैं, विचार आने दो। भाव आते है, आने दो। हाथ हिलते हैं, हिलने दो। करवट बदलना है, बदलने दो। सब होने दो। थोडी देर के लिए कर्ता मत रहो बस साक्षी रह जाओ। जो हो रहा है, होने दो, कुछ मत करो। जो व्यवस्था उत्पन्न होगी, वह सामायिक है। यानी सामायिक के लिए कुछ भी नही करना है। अगर आप कुछ भी न कर रहे हो थोड़ी देर तो हो ही जाएगा। सामायिक तब होगी जब आप बिल्कुल ही अप्रयास मे पडेगे। जैसे कभी आपने ख्याल किया हो किसी का नाम आप को भूल गया है और आप कोशिश कर रहे हैं याद करने की ओर वह याद नही आ रहा है, फिर आप ऊब गए और थक गए और आपने कोशिश छोड़ दी और आप दूसरे काम मे लग गए और अचानक वह नाम याद आ गया है। तो अब अगर कोई कहे कि हमे किसी का नाम भूल जाए और उसे याद करना हो तो हम क्या करें उससे हम यह कहेगे कि कम से कम नाम याद करने की कोशिश मत करना। तो वह कहेगा कि हमको नाम ही तो याद करना है और आप यह क्या कहते हैं ? तो उससे हम कहेगे कि नाम याद करने की कोशिश मत करना तो नाम याद आ जाएगा। और तुमने कोशिश की तो मुश्किल मे पड़ जाओगे क्योकि तुम्हारी कोशिश अशान्त कर देती है मस्तिष्क को। तो उसमे से जो आना चाहिए वह भी नहीं आ पाता। मस्तिष्क सख्त हो जाता है। जुजुत्सू एक

कला होती है युद्ध की, लडाई की, कुश्ती की । आम तौर से जब दो आदमियो को लडने के लिए हम सिखाते हैं, तो हम कहते हैं कि तुम दूसरे पर हमला करना । लेकिन जुजुत्सू मे वह सिखाते हैं कि तुम हमला मत करना । जब दूसरा तुम्हारी छाती मे घूसा मारे तो उसके घूसे के लिए जगह बना देना । बिल्कुल राजी होकर घूसे को पी जाना । तब उसके हाथ की हड्डी टूट जाएगी और तुम बच जाओगे । बहुत कठिन है यह क्योकि जब कोई आपकी छाती मे घूसा मारे तो आपकी छाती सख्त हो जाएगी फौरन । और सख्ती मे आपकी हड्डी टूट जाने वाली है । जैसे दो आदमी चल रहे हैं एक बैलगाडी मे बैठे हुए । एक शराब पिए हुए है । एक बिल्कुल शराब पिए हुए नही है । बैलगाडी उलट गई । तो जो शराब पिए हुए है उसको चोट लगने की सम्भावना कम है । जो शराब नही पिए है उसको चोट लगेगी । कारण कि वह शराब जो पिए है वह हर हालत मे राजी है । वह उलट गई तो वह उसी मे उलट गया । उसने बचाव का कोई उपाय नही किया । लेकिन वह जो होश मे है, बैलगाडी उलटी तो वह सजग हो गया । उसने कहा, 'मरे । बचाओ ।' तो वह सब सख्त हो गया । जो हड्डिया सख्त हो गईं, उन पर जरा सी चोट लगी कि 'टूटीं' । इसलिए शराब पीने वाला गिरता है सडको पर । कभी हड्डी टूटते देखी उस बेचारे की ? आप जरा गिर कर देखो । कारण कि वह ऐसा गिरता है जैसे बोरा गिर रहा है । उसमे कुछ है ही नही । गिर गया तो गिर गया, उसी के लिए राजी हो गया । उसको चोट नही लगती । तो जुजुत्सू कहता है कि अगर चोट न खानी हो तो ऐसे गिरना कि जैसे गिरे ही हुए हो । यानी तुम नही गिरना है इसका ऐसा ख्याल ही मत करना ।

प्रश्न : गिरना भी नहीं है ?

उत्तर : हा, गिरना भी नही है, तो चोट नही खाओगे । दूसरा जब हमला करे तो तुम पी जाना उसके हमले को । तुम राजी हो जाना । ठीक सामायिक का मतलब भी यही है कि चारो तरफ से चित्त पर बहुत तरह के हमले हो रहे हैं । विचार हमला कर रहा है, क्रोध हमला कर रहा है, वासना हमला कर रही है । सबके लिए राजी हो जाना; कुछ करना ही मत । जो हो रहा है, होने देना । और चुपचाप पड़े रहना । एक क्षण को भी अगर यह हो जाए तो सब हो गया । मगर हम करने को इतने आतुर हैं कि विचार आया नही

कि हम उस पर सवार हुए। या उसके साथ गए, या उसके विरोध में गए। हम बिल्कुल तैयार ही हैं लड़ने को। मैं जब समझाना चाहूं तो यही कह सकता हूं कि कुछ मत करना। जो हो रहा हो उसको एक घडी भर देखना। तेईस घंटे हम कुछ करते ही हैं। एक घटा कर लेना कि कुछ नही करेंगे, बैठे रहेंगे, जो होगा होने देंगे। देखेंगे कि यह हो रहा है। इसे सिर्फ देखना है। साक्षी रह जाना है। साक्षी भाव ही सामायिक मे प्रवेश दिला देता है।

प्रश्नोत्तर

(२२-६-६६) रात्रि

प्रश्न : आप जो कुछ जैन दृष्टि के बारे मे कह रहे है उसमे मुझे ऐसा लगा कि दो तिहाई बातों से सभी लोग सहमत हो जाएंगे। किन्तु एक तिहाई अंश ऐसा है जिससे सहमति कठिन है। पहली बात आप कहते हैं सम्यक् दर्शन की। जिसने थोड़ा भी शास्त्र पढ़ा है वह यह जानता है कि सम्यक् दर्शन के बिना चरित्र का कोई अर्थ नहीं। सम्यक् दर्शन के बिना जो कुछ होता है, वह चरित्र कहलाता ही नहीं। यह दृष्टि बहुत स्पष्ट है। यह भी स्पष्ट है कि चरित्र का और कोई अर्थ नहीं है अतिरिक्त 'आत्मस्थिति' के। आत्मा में स्थित हो जाना, यही चारित्र का अर्थ है। इन दोनों अर्थों मे आपसी सहमति लगती है। पर, सम्यक् दर्शन होने के बाद और 'आत्मस्थिति' मे पूर्ण स्थिति होने के पहले जो बीच का अन्तराल है, उसमे आपकी दृष्टि परम्परागत दृष्टि से कुछ भिन्न नजर आती है। परम्परा मे ऐसा मानते हैं लोग कि एक चरित्र का क्रमिक विकास है। उस चरित्र का बाह्य स्वरूप भी है जिसे त्रिगुप्ति और पचसमिति नाम से अष्टप्रवचनमातृका कहते हैं। जैसे कि मन, वचन, कार्य का सयम और आहार व्यवहार मे विवेक। यही चरित्र का स्वरूप मानते है। पर यह जो अष्टप्रवचनमातृका है, यह पच व्रतों की रक्षा करने के लिए है। इस पंचव्रत और अष्टप्रवचनमातृका का भी एक सुनिश्चित स्थान जैन आचार मीमांसा में है। अब आप उस सम्बन्ध मे क्या कहेंगे ? यदि यहां आपकी सम्मति कुछ बने और परम्परा से मिल सके तो शतप्रतिशत सहमति हो जाए। पर यदि न मिल सके तो मुझे लगता है कि दो तिहाई तो सहमति हो पाएगी, एक तिहाई अंश में नहीं।

उत्तर : यदि हो पाएगी तो पूरी हो पाएगी। नही हो पाएगी तो बिल्कुल

न हो पाएगी। क्योकि चरित्र की जैसी धारणा रही है उस धारणा से मैं बिल्कुल असहमत हू। और वैसी धारणा महावीर की भी नही थी, ऐसा भी मैं कहता हू। एक दृष्टि है बाह्य आचरण को व्यवस्थित करने की। असल मे बाह्य आचरण को व्यवस्थित नही कर सकता है वह जिसके पास अन्तर्विवेक नही है। अन्तर्विवेक हो तो बाह्य आचरण स्वय व्यवस्थित हो जाता है, करना नही पड़ता। जिसे करना पडता है वह इस बात की खबर देता है कि उसके पास अन्तर्विवेक नही है। अन्तर्विवेक की अनुपस्थिति मे बाह्य आचरण अधा है चाहे हम उसे अच्छा कहे या बुरा कहे, नैतिक कहे या अनैतिक कहे। निश्चित ही समाज को फर्क पडेगा। एक को समाज अच्छा आचरण कहता है, एक को बुरा कहता है। समाज अच्छा आचरण उसे कहता है जिससे समाज के जीवन मे सुविधा बनती है। बुरा आचरण उसे कहता है जिससे असुविधा बनती है। समाज को व्यक्ति की आत्मा से कोई मतलब नही है, सिर्फ व्यक्ति के व्यवहार से मतलब है क्योकि समाज व्यवहार से बनता है, आत्माओ से नही बनता। समाज की चिन्ता यह है कि आप सच बोले। यह चिन्ता नही है कि आप सत्य हो। आप झूठ हो कोई चिन्ता नही, पर बोले सच। आप मन मे झूठ को गढे, कोई चिन्ता नही लेकिन प्रकट करे सच को। आपका जो चेहरा प्रकट होता है समाज को मतलब है उससे। आपकी आत्मा जो अप्रकट रह जाती है, उससे कोई मतलब नही। समाज इसकी चिन्ता ही नही करता कि भीतर आप कैसे हैं। समाज कहता है बाहर आप कैसे है? बस हमारी बात पूरी हो जाती है। बाहर आप ऐसा व्यवहार करे जो समाज के लिए अनुकूल है, समाज के जीवन के लिए सुविधापूर्ण है, जो सबके साथ रहने मे व्यवस्था लाता है। समाज की चिन्ता आपके आचरण से है, धर्म की चिन्ता आपकी आत्मा से है। इसलिए समाज इतना फिक्र भर कर लेता है कि आदमी बाह्य रूप से ठीक हो जाए। बस इसके बाद वह फिक्र छोड देता है। बाह्य रूप को ठीक करने के लिए वह जो उपाय लाता है वे उपाय भय के है। या तो पुलिस है, अदालत है, कानून है, या पाप-पुण्य का डर है, स्वर्ग है, नरक है। ये सारे भय के रूप उपयोग मे लाता है। अब यह बडे मजे की बात है कि समाज के द्वारा आचरण की जो व्यवस्था है वह भय पर आधारित है और बाहर तक समाप्त हो जाती है। परिणाम मे समाज व्यक्ति को केवल पाखण्डी बना पाता है या अनैतिक—नैतिक कभी नही। पाखण्डी इन अर्थों मे कि भीतर व्यक्ति कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। और जो व्यक्ति पाखण्डी हो गया उसके धार्मिक

होने की सम्भावना अनैतिक व्यक्ति से भी कम हो जाती है। इसे समझ लेना जरूरी होगा। समाज की दृष्टि मे वह आदृत होगा, साधु होगा, सन्यासी होगा लेकिन पाखण्डी हो जाने के बाद वह अनैतिक व्यक्ति से भी बुरी दशा मे पड जाता है। क्योकि अनैतिक व्यक्ति कम से कम सीधा है, सरल है, साफ है। उसके भीतर गाली उठती है तो गाली देता है और क्रोध उठता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर मे कोई फर्क नही है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर मे फर्क नही होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी भी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच मे एक पाखण्डी व्यक्ति का मतलब है कि बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है और भीतर अज्ञानी जैसा होता है। उसके भीतर गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिसा उठती है। मगर बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, "अहिसा परमो धर्म" की तख्ती लगाकर बैठता है, चरित्रवान दिखाई पडता है, नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर का व्यक्तित्व वह ज्ञानी से उधार लेता है और भीतर का व्यक्तित्व वह अज्ञानी से उधार लेता है। यह पाखण्डी व्यक्ति, जिसको समाज नैतिक कहती है, कभी भी उस दिशा से उपलब्ध नही होगा जहा धर्म है। अनैतिक व्यक्ति उपलब्ध हो भी सकता है। अक्सर ऐसा होता है कि पापी पहुच जाते है और पुण्यात्मा भटक जाते है। क्योकि पापी के दोहरे कारण हैं पहुच जाने के। एक तो पाप दुखदायी है। उसकी पीडा है जो रूपान्तरण लाती है। दूसरी बात यह है कि पाप करने के लिए, समाज के विपरीत जाने के लिए भी साहस चाहिए। जो पाखण्डी लोग हैं वे मध्यम (मीडियाकर) है। उनमे साहस नही है। साहस न होने की वजह से वे चेहरा वैसा बना लेते हैं जैसा समाज कहती है, समाज के डर के कारण। और भीतर वैसे रहे आते हैं, जैसे वे है। अनैतिक व्यक्ति के पास एक साहस है जो कि आध्यात्मिक गुण है और पाप की पीडा है। यह दो बाते है उसके पास। पाप उसे पीडा और दुख मे ले जाएगा। दुख और पीडा मे कोई व्यक्ति नही रहना चाहता। और साहस है उसके पास कि जिस दिन भी वह साहस कर ले वह उस दिन बाहर हो जाए। मैं एक छोटी सी कहानी से समझाऊ। एक ईसाई पादरी एक स्कूल मे बच्चो को समझा रहा है कि नैतिक साहस क्या होता है। एक बच्चा पूछता है कि उदाहरण से समझाइए। वह कहता है कि समझ लो कि तुम तीस बच्चे हो, तुम पिकनिक के लिए

पहाड़ पर गए। दिन भर के थक गए हो, नींद आ रही है। सर्द रात है। उन्तीस बच्चे जल्दी से बिस्तर मे कम्बल ओढ़कर सो जाते हैं। लेकिन एक बच्चा कोने में घुटने टेक कर परमात्मा की प्रार्थना करता है। पादरी कहता है कि उस लडके मे नैतिक साहस है। जब उन्तीस बिस्तर मे सो गए हैं, सर्द रात है, दिन भर की थकान है जबकि प्रलोभन पूरा है कि 'मैं भी सो जाऊ' तब भी वह हिम्मत जुटाता है और एक कोने मे भगवान की प्रार्थना करता है सर्द रात मे। तब सोता है जब प्रार्थना पूरी कर लेता है। महीने भर बाद, वह पादरी वापिस आया है। उसने फिर नैतिक साहस पर कुछ बाते की हैं और उसने कहा है कि अब मैं तुमसे समझना चाहूगा कि नैतिक साहस क्या है। तो एक लडके ने कहा है कि मैं—जैसा उदाहरण आपने दिया था वैसा ही उदाहरण देकर समझाता हू। तीस पादरी हैं। एक पहाड पर पिकनिक को गए हुए हैं। दिन भर के थके मादे लौटते हैं, सर्द रात है। उन्तीस पादरी प्रार्थना करने बैठ जाते है। एक पादरी कम्बल ओढ कर सो जाता है तो जो आदमी कम्बल के भीतर सो जाता है, वह नैतिक साहस का उदाहरण है। और आपने जो उदाहरण दिया था उससे यह ज्यादा अच्छा है कि जब उन्तीस पादरी प्रार्थना कर रहे हो और कह रहे हो कि नरक जाओगे अगर तुम बिस्तर मे सोवोगे तब एक आदमी चुपचाप बिस्तर मे सो जाता है।

नैतिक साहस होता ही नही उनमे जिन्हे हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। उनकी नैतिकता साहस की कमी के कारण होती है, साहस के कारण नही। एक आदमी चोरी नही करता। आमतौर से हम उसकी प्रशसा करते हैं। मगर चोरी न करना ही अचोर होने का लक्षण नही है। चोरी न करने का कुल कारण इतना हो सकता है कि आदमी तो चोर है लेकिन चोरी करने का साहस नही जुटा पाता। सौ मे निन्यानवें मौको पर ऐसा होता है कि चोरी सब करना चाहते हैं। लेकिन साहस नही जुटा पाते। चोरी करना साधारण साहस की बात नही है। अधेरी रात मे, दूसरे के घर मे अपने घर जैसा व्यवहार करना बहुत मुश्किल बात है। तो जिनको हम नैतिक कहते हैं अक्सर वे साहस-हीन लोग होते हैं। और धर्म एक साहस की यात्रा है। साहसहीन लोग इसलिए नैतिक होते है कि उनमे साहस नही है। बुरे लोगो मे एक गुण स्पष्ट है कि वे पूरे समाज के विरोध मे साहसी हैं। जब उन्तीस लोग प्रार्थना कर रहे हैं तब वे सोने चले गए हैं। अब सवाल यह है कि उनका साहस पाप की ओर से हटकर पुण्य की ओर कैसे जाए? आपको ले जाने की जरूरत नहीं है। पाप

की पीडा ही अपने आप मे इतनी सघन है कि वह आदमी को इससे उठने के लिए मजबूर कर देती है। आज नही, कल वह आदमी उठता है। तो मेरी दृष्टि यह है कि पापी की सम्भावनाए धर्म के निकट पहुचने की ज्यादा हैं अपेक्षाकृत उसके जिसको हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। और जिस दिन पापी धर्म की दुनिया मे पहुचता है वह उतनी ही तीव्रता मे पहुचता है जितनी तीव्रता से वह पाप मे गया था। नीत्से ने लिखा है जब मैंने वृक्षो को आकाश छूते देखा तो मैंने खोजबीन की। मुझे पता चला कि जिस वृक्ष को आकाश छूना हो उस वृक्ष की जडो को पाताल छूना पडता है। उसने लिखा है कि तब मुझे ख्याल आया कि जिस व्यक्ति को पुण्य की ऊचाइया छूनी हो उस व्यक्ति के भीतर पाप की गहराइयो को छूने की क्षमता चाहिए। अगर कोई पाप का पाताल छूने मे असमर्थ है तो वह पुण्य का आकाश भी नही छू सकता क्योकि ऊपर शिखर उतना ही जाता है जितना नीचे जडे जा सकती हैं। यह हमेशा अनुपात में जाता है। जिस घास की जड़े भीतर बहुत गहरी नही जाती वह घास उतना ही ऊपर आता है जितनी जडे जाती है। तो पापी की गति बुरे की तरफ है लेकिन वह अच्छे की तरफ भी जा सकता है। तो मेरी दृष्टि मे झूठी नैतिकता बाहर से थोपी गई है। परिणाम यह हुआ कि दुनिया मे धर्म कम होता चला गया। अच्छा तो यही है कि आदमी सीधा हो चाहे वह पापी हो। बजाय झूठे, व्यर्थ के आडम्बर थोपने के वैसा ही हो जैसा है। इस आपसी बदलाहट की बडी सम्भावना है कि जैसा वह है, अगर वह दुखद है तो बदलेगा। करेगा क्या? लेकिन पाखण्डी आदमी ने तो व्यवस्था कर ली है। जैसा है वह छिपा लिया है। जैसा नही है वह व्यवस्था कर ली है उसने। समाज से आदर भी पाता है, सुख भी पाता है, सम्मान भी पाता है और जैसा है वैसा वह है। इसलिए जो गल्त होने की पीडा है, वह भी नही भोग पाता। वही पीडा मुक्तिदायी है। तो मेरी दृष्टि मे पाखण्डी समाज से सीधा ऐन्द्रिक समाज ज्यादा अच्छा है। और इसलिए मैं कहता हू कि पश्चिम मे धर्म के उदय की सम्भावना है, पूरब मे नही है। इसको मैं भविष्यवाणी कह सकता हू कि आने वाले सौ वर्षों में पश्चिम मे धर्म का उदय होगा और पूरब मे धर्म प्रतिदिन क्षीण होता चला जाएगा क्योकि पूरब पाखण्डी है और पश्चिम साफ है। पश्चिम बुरा है मगर साफ है। यह साफ बुरा होना पीडा देने वाला है। और उस पीडा मे उसको बाहर भी निकलना पडेगा। पाखंडी का झूठा अच्छा होना पीडा भी नहीं बनता। और वह कही बाहर भी नही निकल

सकता। पाखण्डी आदमी कुनकुनी हालत मे होता है—कभी भाप नही बनता, बर्फ भी नही बनता। पापी आदमी बर्फ भी बन सकता है, भाप भी बन सकता है क्योकि वह कुनकुनी हालत मे कभी होता ही नही। मेरा मानना है कि समाज ने नैतिक शिक्षा देकर समाज को किसी प्रकार सुव्यवस्थित तो कर लिया है मगर व्यक्ति की आत्मा को भारी नुकसान पहुचाया है। और यह भी मेरा मानना है कि समाज व्यवस्थित है, यह सिर्फ दिखाई पडता है। अगर व्यक्ति झूठे है तो व्यवस्था सच्ची कैसे हो सकती है। क्योकि जो व्यक्ति झूठा है वह पीछे के रास्ते से कर ही रहा होगा, जो सामने के रास्ते से नही कर रहा है। समाज ज्यादा से ज्यादा एक मकान के दो दरवाजे ही कर देता है। एक सामने का दरवाजा है जिसमे प्रार्थनाए, भजन-कीर्तन चलते हैं। एक पीछे का दरवाजा है जिसमे गाली-गलौज चलती है। वह पीछे का दरवाजा भी समाज का ही हिस्सा है, वह जाएगा कहा ? वह उबल-उबल कर बाहर आता रहता है।

गाली गलौच जो है वह गूजती ही रहती है क्योकि वह जाएगी कहा ? झूठे चेहरे कैसे जिए जा सकते है ? और जो सब आदमी झूठे चेहरे बना लेते हो और सब को यह पता हो कि सब चेहरे झूठे हैं तो समाज एक मिथ्या हो जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि एक धार्मिक व्यक्ति को असामाजिक होना पडा है क्योकि इस झूठ समाज मे वह राजी नही हो सकता। तो बुद्ध अपने भिक्षुओ को जो नाम देते हैं वह है 'अनागरिक'। उसे नागरिकता छोड़ देनी पडी, उसे मिथ्या समाज की व्यवस्था छोड देनी पडी। वह नागरिक नही रहा। असल मे भिक्षु, साधु, सन्यासी का मतलब ही यह है कि वह किसी अर्थ मे असामाजिक हो गया है। समाज से उसने नाता तोड लिया है क्योकि समाज पाखण्ड और झूठी नैतिकता का गढ है। जब झूठी नैतिकता बहुत जोर पकड लेती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी जोर पकड लेती है। झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। जब झूठी नैतिकता को तोडने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते है तो अराजकता आती है, स्वच्छन्दता आती है। जब स्वच्छन्दता तेजी को पकड जाती है तो फिर झूठी नैतिकता को समर्थन देने वाले लोग खडे हो जाते हैं। वे कहते हैं स्वच्छन्दता बुरी है, नैतिकता लाओ। यानी मेरा मानना है कि समाज का अब तक का इतिहास, झूठी नैतिकता, झूठी व्यवस्था और अराजकता के बीच डोलता रहा है। झूठी नैतिकता उतनी ही खतरनाक है जितनी स्वच्छन्दता। और सच तो यह है कि झूठी नैतिकता ही स्वच्छदता पैदा करने का कारण है। अब बहुत दिन हो गये इसके बीच

डोलते-डोलते। अब इस बात की चिन्ता हमें करनी चाहिए कि या तो सच्ची नैतिकता स्वीकार कर लें कि आदमी अनैतिक है तो अनैतिक होकर कैसे जिएं, उसका इन्तजाम कर लें। या बजाय आदमी को झूठा बनाने के, सच्चे होने की पहली आधारशिला रख दे। और जो नीति कहती है कि सत्य कीमती है, वह भी अगर आदमी को झूठा बनाने का उपाय करती है तो वह कैसी नीति है? मेरा कहना है कि अगर आदमी अनैतिक ही है तो इसे हम स्वीकार कर लें और अनैतिक आदमी कैसे जिए, इसका इन्तजाम कर लें। यह ज्यादा अच्छा होगा और सरलता से धर्म की तरफ ले जाने वाला होगा। क्योकि अनैतिकता दुख देगी ही। पाप सुख दे ही नहीं सकता।

प्रश्न : एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है मगर झूठा पाखण्ड है वह ब्रह्मचर्य। आप उस व्यक्ति को यह मार्ग नहीं दिखलाते कि वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य से सत्य ब्रह्मचर्य को कैसे प्राप्त हो? आप उसको यह मार्ग दिखला दें तो वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य को छोड़ ही दे। आप उसे उलटी ओर ले जा रहे हैं अपनी ओर उसको ले जाइए।

उत्तर : नही, मैं उसे ठीक ओर ही ले जा रहा हू क्योकि काम-वासना उतनी खतरनाक नही है जितना पाखण्ड खतरनाक है। पाखण्ड मनुष्य की ईजाद है और काम-वासना परमात्मा की। तो जो आदमी झूठे ब्रह्मचर्य मे है, आप सोचते हैं कि मैं उसको ब्रह्मचर्य से भिन्न ले जा रहा हू। पाखण्डी ब्रह्मचर्य जैसा ब्रह्मचर्य होता ही नही। पाखण्डी ब्रह्मचर्य वाले मनुष्य के भीतर तो गहरी कामुकता होती है।

प्रश्न : उसे काम-वासना के माध्यम से ही सत्य तक पहुंचना होगा?

उत्तर : हा, पाखण्ड से कैसे सत्य तक पहुच सकता है? सत्य से ही सत्य तक पहुच सकता है। काम-वासना सत्य है तो काम वासना से ब्रह्मचर्य तक पहुचा जा सकता है। सत्य जो है वह कामवासना की समझ से ही उत्पन्न अन्तिम अनुभूति है। लेकिन पाखण्डी ब्रह्मचर्य जिसने पहले ही थोप लिया है वह सत्य तक कभी नही पहुच पाता। पाखण्ड छोडो तो ही सत्य तक पहुच सकते हो। ये दो बातें समझने जैसी है। काम-वासना व्यक्ति के जीवन का सत्य है। इस सत्य को समझने से हम और बडे सत्य को उपलब्ध हो सकते हैं। यानी ब्रह्मचर्य जो है वह वासना की ही अन्तिम समझ से हुई निष्पत्ति है। वह वासना के विरुद्ध लड़ी गई बात नही है। वासना को जिसने ठीक से समझा है, पहचाना है, वह धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जिस

वासना को पहचानने से इन्कार कर दिया है और झूठा ब्रह्मचर्य ऊपर से थोप लिया है वह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता। पहले उसे झूठे ब्रह्मचर्य से छुड़ाना होगा और सच-सच बताना होगा कि तुम कहां हो क्योंकि कोई भी यात्रा तभी हो सकती है जब हम पहले जान लें कि हम कहां खड़े हैं। अगर हम इस भ्रम में हैं कि मैं हूं तो श्रीनगर में, और मैं समझूं कि मैं बैठा हूं हिमालय पर तो हिमालय से यात्रा शुरू नहीं हो सकती। यात्रा वहीं से शुरू होगी जहां मैं हूं। तो इस व्यक्ति को जिसका पाखण्डी ब्रह्मचर्य है पहले समझाना पड़ेगा कि पाखण्डी ब्रह्मचर्य के भ्रम को तू तोड़। अगर तूने कल्पना में ऐसा मान रखा है कि तू ब्रह्मचर्य को पहुंच चुका है तब और ब्रह्मचर्य को पहुंचने का क्या उपाय है? पाखण्ड का मतलब है कि आदमी जहां नहीं पहुंचा है, जान रहा है कि वहां पहुंच गया है और जहां है वहां से इन्कार कर रहा है कि वहां मैं नहीं हूं। अब मैं साधु सन्यासियों को मिलता हूं तो हैरान हो जाता हूं। सबके सामने तो वे आत्मा-परमात्मा की बातें करते हैं, ब्रह्मचर्य के गुण गाते है। एकान्त में वे पूछते हैं कि सेक्स से कैसे छुटकारा हो। अभी तक मैं किसी साधु-साध्वी को नहीं मिला हूं जिसने एकान्त में सेक्स के लिए न पूछा हो कि इससे कैसे छुटकारा हो। हम जले जा रहे हैं इस आग में। लेकिन व्याख्यान ब्रह्मचर्य का कर रहे हैं और लोगों को समझा रहे हैं ब्रह्मचर्य की बातें। और जिस ब्रह्मचर्य को समझा रहे हैं, उसे कहीं भी, कहीं से भी नहीं छुपा रहे हैं कि वह ब्रह्मचर्य कहां है? उसका कारण है कि पहले तो हमारे व्यक्तित्व का जो सत्य है, हम उसे पकड़ें, उसे समझें। जो आदमी सेक्स को ठीक से समझ ले, वह ब्रह्मचर्य हुए बिना रह नहीं सकता। उसे ब्रह्मचर्य की ओर जाना ही होगा। यानी उसे ले जाएगा नहीं कोई। उसकी समझ उसकी यात्रा बन जाती है। तो मैं उल्टे नहीं ले जा रहा हूं। उल्टे रास्ते वह जा रहा है जो उसको ब्रह्मचर्य समझा रहा है। वह उसे कभी भी ब्रह्मचर्य की ओर नहीं ला सकता। अगर ब्रह्मचर्य की ओर लाना हो तो उसे कामवासना की पूरी समझ देनी होगी। और कामवासना के जितने निहित और गहरे छुपे हुए तथ्य हैं वे सब उसे उघाड़ने पड़ेंगे। उसे उस सम्मोहन को तोड़ना पड़ेगा जो कामवासना उसे दे रही है। वह सम्मोहन नहीं टूटता तो वह बाहर से ब्रह्मचारी हो जाएगा मगर भीतर से कामुकता सघन हो जाएगी। यह जानकर हैरानी होगी तुम्हें कि साधारण रूप से कामुक व्यक्ति इतना कामुक नहीं होता। उसकी कामवासना कभी होती है,

कभी नही होती। लेकिन जो व्यक्ति ऊपर से ब्रह्मचर्य थोप लेता है वह चौबीस घटे कामुक होता है। वह एक क्षण भी काम से छुटकारा नही पा सकता क्योकि जो उसने दबाया है, वह भीतर से निकलने के हजार उपाय खोज लेगा, वह उसके सारे चित्त को घेर लेगा, उसके पूरे चित्त के रग-रेशे मे प्रविष्ट हो जाएगा। अब यह ध्यान देने की बात है कि सेक्स का अपना एक सुनिश्चित केन्द्र है। अगर कोई व्यक्ति सामान्य रूप से सेक्स जीवन से गुजर रहा है तो उसके मस्तिष्क मे सेक्स कभी नही घुसता। लेकिन जो व्यक्ति पाखण्डी ब्रह्मचर्य को धारण कर लेता है वह सेक्स के केन्द्र पर इतना दमन डालता है कि सेक्स की प्रवृत्ति दूसरे केन्द्र मे प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् वह उसके मन और चेतना तक मे चली जाती है। यह ऐसा ही मामला है जैसा कि आपके घर मे एक रसोई है, और रसोई मे धुआ उठता है तो आपने धुआ निकलने की व्यवस्था की हुई है। और एक आदमी धुआ निकलने का विरोधी हो जाए और रसोई से धुआ निकलने की चिमनी बद कर दे तो धुआ मिटना बद हो जाएगा। रसोई है तो धुआ होगा। अब यह धुआ बैठक खाने मे भी घूमेगा, घर के दूसरे कमरो मे भी प्रवेश करेगा क्योकि रसोई से निकलने का मार्ग तो उसने बद कर दिया। परिणाम यह होगा कि वह पूर्ण घर रसोई जैसा हो जाएगा। सारी दीवारें काली हो जाएगी। और जितना यह धुआ बढ़ेगा उतना वह घबराएगा। उतना वह जाकर चिमनी को बद करेगा क्योकि वह कहेगा कि इसको दबाना जरूरी है, यह तो धुआ और बढ़ता चला जा रहा है। उसे पता नही कि दबाने से ही बढता चला जा रहा है। पशु इतने कामुक नही हैं आदमी के मुकाबले। और मजे की बात है कि पशु एक वक्त पर ही कामुक होता है। शेष वक्त पर वह भूल जाता है। कारण कि पशु के चित्त मे काम का दमन नही है। इसलिए जब वह उसे भोगता है, पूर्ण भोग लेता है। फिर शिथिल हो जाता है, शान्त हो जाता है। आदमी जो भोग रहे हैं काम को, जिनके बच्चे भी पैदा हो रहे है फिर भी भोग नही पा रहे।

और जो अभोगा छूट जाता है, वह भोग की माग करता रहता है। सिर्फ मनुष्य ही चौबीस घटे साल भर कामुक रहता है। कोई जानवर चौबीस घटे साल भर कामुक नही रहते। फिर भी जो लोग काम को भोग रहे हैं, कुछ क्षण के लिए शिथिल भी हो जाते हैं। एक दफा काम का भोग किया तो कम से कम चौबीस घटे के लिए वे विस्मृत हो जाते हैं। लेकिन साधु सन्यासी

उस घटे मे भी विस्मृत नही हो पाते । वे चौबीस घंटे उसी रस में डूबे हुए हैं । मैं उन्हे ब्रह्मचर्य की ओर ले जाने की बात कर रहा हू । मैं कह रहा हू कि सत्य को समझो, इससे भागो मत, डरो मत, भयभीत मत हो, इसे पहचानो, जागो । जागोगे, पहचानोगे, समझोगे तो यह क्षीण होगा और एक घड़ी ऐसी आती है कि पूर्ण समझ की स्थिति मे सेक्स रूपान्तरित हो जाता है । उसकी सारी शक्ति नए मार्गों से उठनी शुरू हो जाती है । और जब वह नए मार्गों से उठती है तो वह शक्ति व्यक्ति का परम अनुभव हो जाता है । सेक्स शक्ति के विसर्जन का सबसे नीचे का केन्द्र है । उसके ऊपर और केन्द्र है जिसे हम ब्रह्मरध्र कहते हैं । वह सेक्स की ही ऊर्जा के विसर्जित होने का अन्तिम श्रेष्ठतम केन्द्र है । नीचे से सेक्स विसर्जित होता है तो प्रकृति मे ले जाता है । और जब ब्रह्मरध्र से सेक्स की शक्ति विसर्जित होती है तो वह परमात्मा मे ले जाती है । और इन दोनो के बीच की जो यात्रा है, वह यात्रा वही व्यक्ति कर सकता है जो समझपूर्वक सेक्स की ऊर्जा को ऊपर उठाने के प्रयोग मे लग जाए । मेरा कहना है कि ब्रह्मचर्य की साधना मे सेक्स पहला कदम है, विरोध नही । जिस ऊर्जा को हमे ऊपर उठाना हो, उसे लड़कर हम ऊपर नही उठा सकते । उसे समझकर हम प्रेमपूर्ण आमत्रण से ही ऊपर उठा सकते हैं क्योकि लड़कर तो हम दो हिस्सो मे टूट जाते हैं । और दो हिस्सो में टूटे कि हम गए । पाखण्डी व्यक्ति खड-खड हो जाता है । कई खड उसमे हो जाते है । और मैं चाहता हू कि व्यक्ति हो अखण्ड क्योकि अखण्ड व्यक्ति ही कुछ रूपान्तरण ला सकता है । ब्रह्मचर्य सरल है अगर थोपा न जाए । ब्रह्मचर्य कठिन है अगर थोप लिया जाए । तो मैं कहता हू कि समाज को सिखाओ वासना, ठीक से । समाज को सम्यक् वासना सिखाओ, सम्यक् काम सिखाओ ।

प्रश्न : महावीर भी यही कहना चाहते थे ?

उत्तर : बिल्कुल कहेगे ही । इसके सिवाय उपाय ही नही है, क्योकि महावीर भी जिस ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए हैं, वह जन्म जन्मान्तरो की वासना की समझ का ही परिणाम है ।

प्रश्न : वह भोगकर आएगी या बिना भोग के भी आ सकती है ?

उत्तर : बिना भोग के नहीं आ सकती । जिस चीज को मैंने जाना ही नही, जिया ही नही, उसको मैं समझूंगा कैसे ? समझने के लिए मुझे गुजरना

पड़ेगा उस मार्ग से। वहा कभी भी कोई गुजरा हो, यह सवाल नही है। लेकिन बिना गुजरे कभी भी समझ मे नही ग्रा सकती यह बात। ग्रौर बिना गुजरने की जो ग्राकाक्षा है हमारे मन मे वह भय है। वह समझ नही ग्राने देता। वह डर है। वह कहता है जाग्रो मत उधर। लेकिन जब जाएगे नही तो जानेंगे कैसे? जीवन मे जो भी हम जानते हैं वह हम जाकर ही जानते हैं। बिना जाए हम कभी नही जानते ग्रौर ग्रगर बिना जाए कोई रुक गया तो किसी दिन वह जाने की इच्छा ही मुसीबत बन जाएगी।

प्रश्न : भोगने से समझ को प्राप्त हो सकता है?

उत्तर बिल्कुल प्राप्त हो सकता है। कोई सवाल ही नही है। हम जब भोग रहे हैं तभी हम समझपूर्वक भोग सकते हैं। गैर समझपूर्वक भी भोग सकते हैं। ग्रगर हम समझपूर्वक भोगते है तो हम ब्रह्मचर्य की ग्रोर जाते है। ग्रगर गैर समझपूर्वक भोगते हैं तो हम उसी मे घूमते रहते हैं। सवाल भोगने का नही है, सवाल जागे हुए भोगने का है। ग्रब सेक्स के साथ बडा मजा है कि लोग उसे जन्म-जन्मान्तरो मे भोगते है लेकिन सोए हुए भोगते है। इसलिए कभी भी ग्रनुभव हाथ मे नही ग्रा पाता कुछ भी। सेक्स के क्षण मे ग्रादमी मूर्च्छित हो जाता है, होश ही खो देता है। बाहर ग्राता है, जब होश मे ग्राता है तो वह क्षण निकल चुका होता है। फिर उस क्षण की माग शुरू हो जाती है। तो ब्रह्मचर्य की साधना की प्रक्रिया का सूत्र यह है कि सेक्स के क्षण मे जागे हुए कैसे रहे। ग्रौर ग्रगर ग्राप दूसरे क्षणो मे जागे हुए होने का ग्रभ्यास कर रहे है तभी ग्राप सेक्स के क्षण मे भी जागे हुए हो सकते है। ठीक ऐसा ही मृत्यु का मामला है। हम बहुत बार मरे लेकिन हमे कोई पता नही कि हम पहले कभी मरे। उसका कारण है कि हर बार मरने के पहले हम मूर्च्छित हो गए है। मृत्यु का भय इतना ज्यादा है कि मृत्यु को हम जागे हुए नही भोग पाते। ग्रौर एक दफा कोई मृत्यु मे जागे हुए गुजर जाए, मृत्यु खत्म हो गई, क्योकि वह जानता है कि यह तो ग्रमृत हो गया, मरा तो कुछ भी नही, सिर्फ शरीर छूटा है ग्रौर सब खत्म हो गया। लेकिन हम मरते हैं कई बार, हर बार बेहोश हो जाते हैं। ग्रौर जब हम होश में ग्राते हैं तब तक नया जन्म हो चुका है। वह जो बीच की ग्रवधि है मृत्यु से गुजरने की, उसकी हमारे मन मे कोई स्मृति नही बनती। स्मृति तो तब बनेगी जब हम जागे हुए हो। जैसे एक ग्रादमी को बेहोशी में हम श्रीनगर घुमा ले जाएं।

वह मूर्च्छित पड़ा है। उसको हमने क्लोरोफार्म सुंघाया हुआ है। श्रीनगर पूरा घुमाये, हवाई जहाज से दिल्ली वापस पहुचा दें और वह दिल्ली मे फिर जगे और हम उससे कहे तुम श्रीनगर होकर आए हो। वह कहे . क्या पागलपन की बाते हैं ! मैं यहीं सोया था, यही जगा हू। सिर्फ श्रीनगर से गुजर जाना काफी नही है, होश से गुजर जाना जरूरी है। नही तो वह आदमी क्लोरोफार्म की हालत मे श्रीनगर घूम भी गया और फिर दिल्ली पहुच कर कहेगा कि मैंने श्रीनगर देखा ही नही। मेरे मन मे लालसा रह गई श्रीनगर को देखने की। वह मैं देख नही पाया। वह कैसा है श्रीनगर ? इसी तरह हम मृत्यु से मूर्च्छित गुजरते हैं, इसलिए मृत्यु से अपरिचित रह जाते हैं। जो मृत्यु से परिचित हो जाए वह आत्मा के अमर स्वरूप को जान लेता है। हम सेक्स से मूर्च्छित गुजरते है, इसलिए हम सेक्स से अपरिचित रह जाते हैं। जो सेक्स से परिचित हो जाए, वह ब्रह्मचर्य को जान लेता है। तो मेरा कहना है कि किसी भी स्थिति से अगर हम जागे हुए गुजरे है तो सब बदल जाएगा क्योंकि जो हम जानेंगे, वह बदलाहट लाएगा। अगर आपने एक बार किसी का हाथ पकड कर चूमा है और बहुत आनन्दित हुए हैं तो दुबारा फिर उस हाथ को होश से चूमे, जागे हुए चूमे और देखे कि आनन्द कहा आ रहा है, कैसा आ रहा है, आ रहा है कि नही आ रहा है। एक दिन बुद्ध एक सडक से गुजर रहे हैं। एक मक्खी उनके कधे पर बैठ गई है। आनन्द से बातें कर रहे है। मक्खी को उडा दिया है। फिर रुक गए है। मक्खी तो उड गई। आनन्द चोक कर खडा हो गया कि वह क्यो रुक गए ? फिर, बहुत धीरे से हाथ को ले गए कधे पर। आनन्द ने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं, मक्खी तो उड चुकी है। बुद्ध ने कहा कि वह जरा गल्त ढग से उडा दी मैंने। मै तुम्हारी बातो मे लगा रहा और बेहोशी में मक्खी उडा दी मैंने। अब मैं जागे हुए ऐसे उडा रहा हू जैसे उडाना चाहिए था। यह मक्खी के साथ दुर्व्यवहार हो गया। मैं मूर्च्छित था, इसलिए दुर्व्यवहार हो गया। अब मैं जाग कर उडा रहा हू। तो किसी का हाथ चूमा, और बहुत आनन्द आया। फिर दुबारा हाथ पकड़ लें और पूर्ण होशपूर्वक चूमे और देखें कि कौनसा आनन्द कहा आ रहा है तब बहुत हैरान हो जाएगे। तब देखेंगे कि हाथ है, होठ है, चुम्बन है मगर आनन्द कहा? और यह जो अनुभव जागा हुआ होगा, यह जो हाथ का पागल आकर्षण होगा वह विलीन हो सकता है, बिल्कुल विलीन हो सकता है।

एक बार किसी भी अनुभव से होशपूर्वक गुजर जाए तो उस अनुभव की

पकड आप पर वही नही हो सकती जो आपकी बेहोशी में थी। तरकीब यह है प्रकृति की कि उसने सब कीमती अनुभव आपको बेहोशी मे गुजरवाने का इन्तजाम किया है। क्योकि नही तो आप फिर नही गुजरेंगे उससे। और सेक्स प्रकृति की गहरी जरूरत है। वह सन्तति उत्पादन की व्यवस्था है। वह नही चाहती कि आप उसको छुए, उसमे कुछ गड़बड करें। वहा ले जाकर वह आपको एकदम बेहोशी की हालत मे कर देती है। जिसको आप आमतौर से प्रेम आदि कहते है, वह सब बेहोश होने की तरकीबे है, और कुछ भी नही। आपको वेश्या के साथ सम्भोग करने मे वह सुख नही मिलता जो अपनी प्रेयसी से सम्भोग करने मे मिलता है। कारण कि वेश्या के पास आपकी मूर्च्छा कभी गहरी नही हो पाती क्योकि यह धन्धा सौदे का काम है। दस रुपया फेक कर सम्बन्ध बनाया। कोई सम्मोहित होने का सवाल नही है बडा। इसलिए वेश्या वह तृप्ति नही दे पाती जो प्रेयसी देती है। वह पत्नी भी नही दे पाती क्योकि पत्नी के पास रोज-रोज गुजरने मे मूर्च्छित होने का कारण नही रह जाता। वह सम्बन्ध बिल्कुल यान्त्रिक हो गया है। लेकिन प्रेयसी के पास आपको पहले मूर्च्छित होना पडता है, उसे मूर्च्छित करना पड़ता है। प्रेमक्रीडा से गुजरने के पहले सारा गोरख-धधा एक दूसरे को मूर्च्छित करने का उपाय है, चूमना है, चाटना है, गले मिलना है, कविताए सुनाना है, गीत गाना है, अच्छी-अच्छी बाते करना है, एक दूसरे की तारीफ करना है, एक दूसरे को सम्मोहित करना है। जब वे दोनो समोहन मे आ गए तब फिर ठीक है। तब वे बेहोश गुजर सकते है।

यह जो मेरा कहना है वह कुल इतना है कि ऐसी किसी भी क्रिया से जिससे हम मुक्त होना चाहते हो कभी भी हम मूर्च्छित हाल मे मुक्त नही हो सकते। और पाखण्ड मूर्च्छित हालत को थोडे ही तोडता है, उल्टा भ्रम पैदा करवा देता है। और गलत चीजे हमे पकडा देता है। लेकिन हम पकडते ऐसे ढग से हैं कि हमे ख्याल मे नही आता। जैसे महावीर हैं। अगर महावीर स्त्रियों को छोडकर जगल चले गए हैं तो हमे लगता है कि हम भी स्त्रियो को छोड़ें और जगल चले जाए। हम महावीर की बुनियादी बात समझना भूल गए हैं। महावीर इसलिए जंगल नही चले गए हैं कि स्त्रियो को छोडे जा रहे हैं। वे इसलिए जंगल चले गए हैं कि स्त्रियो मे कोई रस नही रहा है। वे जब जगल जा रहे हैं तो पीछे स्त्रियो की स्मृति नही है उनके मन मे। और आप भी जंगल जा रहे हैं स्त्रियो को छोड़कर लेकिन जितनी स्मृति कभी घर पर नही

थी, उतनी जगल में आपको घेरे हुए है। और आप समझ रहे हैं कि आप वही काम कर रहे है जो महावीर कर रहे हैं। आप भी जगल मे जाकर बैठ जाएगे। मगर महावीर बैठेंगे तो स्वय मे खो जाएगे। आप बैठेंगे तो स्त्रियो मे खो जाएगे। आप कहेगे कि यह तो महावीर ने भी किया जो हम कर रहे हैं। हमारी कठिनाई यह है कि ऊपर का रूप हमे दिखाई पडता है। महावीर जगल जाते दिखाई पडते है। उनके भीतर क्या घटी है, यह हमे दिखाई ही नही पड़ता। और अगर वह हमे दिखाई पड जाए तो बिल्कुल बात और ही हो जाएगी। बिना अनुभव के कोई मुक्ति नही है। पाप के अनुभव के बिना पाप से भी मुक्ति नही है। इसलिए भयभीत होकर जो पाप से रुका हुआ है, वह पाप से मुक्त नही होगा। वह सिर्फ पाप करने की शक्ति अर्जित कर रहा है। और आज नही, कल वह पाप करेगा ही। और पाप करके पछताएगा। स्वयं पछता कर वह फिर दमन करने लगेगा। दमन करके वह फिर पाप करेगा और फिर पछताएगा और यह एक बुरा चक्र है पाप पश्चात्ताप, पाप पश्चात्ताप। मैं कहता हू पश्चात्ताप भूल कर भी मत करना। पश्चात्ताप की जरूरत ही नही है। पश्चात्ताप का मतलब है कि पाप पहले हो गया है, पीछे फिर आप पश्चात्ताप कर रहे है। मैं कहता हू जानकर पाप करना, पूरे जागे हुए पाप करना। जो भी करना पूरे जागे हुए करना। किसी को गाली भी देना तो पूरे जागे हुए देना। शायद दुबारा गाली देने का मौका न आए और पश्चात्ताप की भी जरूरत न पडे।

एक फकीर ने लिखा है कि उसका बाप मर रहा था। बूढे बाप के पास वह बैठा था। उसकी उम्र कोई पन्द्रह-सोलह साल की थी। मरते हुए बाप ने उसके कान में कहा कि तू एक ही ध्यान रखना किसी भी बात का जवाब चौबीस घटे से पहले मत देना। और जिन्दगी भर का अनुभव मै तुझे एक ही सूत्र मे कहे देना हू · किसी भी बात का जवाब चौबीस घटे के पहले देना ही मत। वह फकीर बडी शाति को उपलब्ध हुआ और जब लोगो ने उससे पूछा कि तुम्हारी शान्ति का रहस्य क्या है तो उसने कहा कि रहस्य बडा अद्भुत है। मेरा बाप मर रहा था और उसने कहा था कि चौबीस घटे से पहले तुम किसी का जवाब ही मत देना। अगर किसी स्त्री ने मुझसे कहा कि मैं तुझे बहुत प्रेम करती हू तो मै चौबीस घटे चुप ही रहा। चौबीस घंटे के बाद सब खत्म ही हो चुका था क्योकि यह स्त्री बिदा ही हो चुकी थी दिमाग से उसके। उसने कहा · यह क्या बात है। हम जब कहे तब तो तुम कुछ उत्तर ही नही देते।

अब आए हो जब नशा ही जा चुका है। किसी ने गाली दी तो वह चौबीस घंटे बाद जवाब देने गया कि जो तुमने गाली दी थी उसका हम जवाब देने आए हैं। उस आदमी ने कहा : लेकिन अब तो सब बात ही खत्म हो गई। अब क्या फायदा ? अब तुम क्या जवाब दे रहे हो। उस आदमी ने लिखा है कि मैं जब भी चौबीस घंटे बाद गया मैंने पाया कि मैं हमेशा लेट पहुचता हू, ट्रेन छूट चुकी है। वह तो उसी वक्त हो सकता था और उसी वक्त अगर होता तो मूर्च्छित होता। और चौबीस घटे सोच-विचार के बाद हुआ तो वह बडा जागृत था। कई दफे तो मैं यह कहने गया कि तुमने गाली बिल्कुल ठीक दी थी। चौबीस घटे सोचा तो पाया कि तुमने जो कहा था, बिल्कुल ही ठीक कहा था कि मैं बेईमान हू। दबाने की बात नही है। अगर दबाया चौबीस घटे तब तो गाली और मजबूत होकर आएगी। चौबीस घटे समझने की कोशिश की कि क्या उत्तर देना है उस आदमी को तो बात बदल जाएगी। उसके बाप ने कहा है कि कोई अगर तुम्हे गाली दे तो मैं मना नही करता कि तू गाली मत देना और अगर बाप यह कहता कि तू गाली मत देना चौबीस घटे, बाद क्षमा मागना तो बात उल्टी हो जाती। तब वह गाली को दबाता। उसके बाप ने कहा कि गाली जरूर देना, मगर चौबीस घटे बाद देना। लेकिन चौबीस घटे समझ लेना कि कौन-सी गाली देनी है, कितने वजन की देनी है, देनी है कि नही देनी है, उसकी गाली का मतलब क्या है ? अगर बाप यह कहता कि चौबीस घटे बाद क्षमा मागने जाना तो शायद वह दमन करता। उसने कहा था कि तू गाली देना मजे से लेकिन चौबीस घंटे बाद। इतना अन्तराल छोड देना और यह बडे मजे की बात है कि कोई भी बुरा काम अन्तराल पर नही किया जा सकता, तत्काल ही किया जा सकता है क्योंकि अन्तराल मे समझ आ जाती है, ख्याल आ जाता है।

डेल कार्नेगी ने एक अनुभव लिखा है कि लिकन पर उसने भाषण दिया रेडियो से और जन्मतिथि गल्त बोल गया। उसके पास कई पत्र पहुचे गुस्से के कि तुमको जन्मतिथि तक मालूम नही है, तुमने भाषण किसके लिए दिया और एक स्त्री ने उसको बहुत ही सख्त पत्र लिखा और उसमे वह जितनी गालिया दे सकती थी दी। बडा क्रोध आया कार्नेगी को। उसने उसी वक्त रात को उठकर जवाब लिखा। जैसी गालिया उसने दी, उसने दुगुने वजन की गालिया दी। लेकिन रात को देर हो गई थी और नौकर चला गया था। उसने चिट्ठी दबाकर रख दी। सुबह उठा, सोचा कि एकबार चिट्ठी को पढ

लू। लेकिन अब बारह घटे का फर्क पड गया था। चिट्ठी पढ़ी तो लगा कि ज्यादती हो गई है चिट्ठी मे। उस स्त्री की चिट्ठी को दुबारा पढ़ा तो वह उतनी सख्त नही मालूम पड़ी जितनी बारह घटे पहले मालूम पडी थी क्योकि अब दुबारा पढ़ी थी। और अपनी चिट्ठी पढ़ी तो लगा कि जरा सख्त उत्तर हो गया है। दूसरा उत्तर लिखा। वह पहले से ज्यादा विनम्र था। लिखते वक्त उसे ख्याल आया कि बारह घटे और रुककर देखू कि कोई फर्क पडता है क्या? यह जो बारह घटे मे इतना फर्क पड गया तो उसने पहली चिट्ठी फाड कर फेंक दी, दूसरी चिट्ठी दबा कर रख दी। साझ को जब दफ्तर से लौटा, उस पत्र को पढा। उसने कहा अभी भी उसमें कुछ बाकी रह गई है चोट। फिर पत्र तीसरा लिखा। पर उसने कहा : इतनी जल्दी भी क्या? औरत ने माग तो की नही। कल सुबह तक और प्रतीक्षा कर ले। वह सात दिन तक निरन्तर यह करता रहा। सातवे दिन उसने जो पत्र लिखा वह पहले पत्र से बिल्कुल ही उल्टा था। पहला पत्र सख्त दुश्मनी का था। सातवें दिन पत्र मैत्री का था। वह पत्र उसने भेजा। लौटती डाक से उत्तर आया। उस स्त्री ने क्षमा मागी क्योकि उसको भी समय गुजर गया था। अगर वह गालिया देता तो उसको क्षमा मागने का मौका ही न मिलता। वह फिर गाली देती। डेल कार्नेगी ने लिखा है कि तब से मैने नियम बना लिया कि किसी पत्र का उत्तर सात दिन से पहले देना ही नही है। उसमे होता क्या है? समय के बीत जाने पर आपके दिमाग का पागलपन क्षीण हो जाता है। बर्नार्ड शा कहता था कि मै पन्द्रह दिन के पहले किसी पत्र का उत्तर देता नही हू। यह सवाल नही है कि आप सात ही दिन प्रतीक्षा करेंगे। एक अन्तराल चाहिए बीच मे। एक विचार का मौका चाहिए। नही तो हम बिना विचार के उत्तर दे रहे है।

प्रश्न : किसी के साथ ऐसा चौबीस घटे मे भी हो सकता है ?

उत्तर . हो सकता है। बिल्कुल हो सकता है। उसमें सिर्फ तय यह करना है कि तत्काल उत्तर नही देना है। तत्काल उत्तर मूर्च्छा से आ सकता है ऐसा कोई जरूरी नही है। अगर आदमी जागृत हो तो तत्काल उत्तर मूर्च्छा से नही आता है। लेकिन चूंकि हम जागृत नही हैं, इसलिए अन्तराल का सवाल है।

मैं बर्नार्ड शा के सम्बन्ध मे कह रहा था कि वह निरन्तर पन्द्रह दिन तक उत्तर ही नहीं देता था। पन्द्रह दिन तक उत्तर न देने पर कुछ पत्र अपना

जवाब खुद ही वे देते हैं। इस तरह कुछ से छुटकारा हो जाता है। फिर बहुत कम बचते हैं, जिनका उत्तर देने की जरूरत पड़ती है। मेरा मतलब केवल इतना है कि हमारा कोई भी अनुभव जितना जागरूक हो सके उतना अच्छा है। दमन का सवाल नही है। मेरी निरन्तर यह धारणा रही है कि अनैतिक व्यक्ति को जितना बुरा कहा गया है, वह कहना गल्त है। नैतिक व्यक्ति को जितना भला कहा गया है, वह कहना भी गल्त है। मेरी समझ मे जीवन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति को सरल और सहज होने का उपाय और मौका हो, न उसकी निन्दा हो, न उसका दमन हो, न उसको जबर-दस्ती ढालने-बदलने की चेष्टा हो। लेकिन समाज उसे समझने का विज्ञान और व्यवस्था देता हो, शिक्षा उसे समझने का मौका देती हो। एक बच्चा स्कूल मे गया। हम उससे कहते है क्रोध मत करो, क्रोध बुरा है। हम दमन सिखा रहे हैं। सच्चा और अच्छा स्कूल उसे सिखाएगा क्रोध करो लेकिन जागे हुए। कैसे करो, हम इसकी विधि बताते है। क्रोध जरूर करो, लेकिन जागे हुए, जानते हुए, पहचानते हुए करो। हम क्रोध का दुश्मन तुम्हे नही बनाते। केवल तुम्हे हम समझदार क्रोध करना सिखाते है। अगर ऐसी व्यवस्था हो तो व्यक्ति धीरे-धीरे क्रोध के बाहर हो जाएगा क्योकि समझपूर्वक कोई कभी क्रोध नही कर सकता है।

मेरी बात कई दफा उल्टी दिखती है। कई दफा ऐसा लगता है कि इससे स्वच्छदता फैल जाएगी, अराजकता फैल जाएगी। लेकिन अराजकता फैली हुई है, स्वच्छदता फैली हुई है। मैं जो कह रहा हू उससे स्वच्छदता मिटेगी, अराजकता मिटेगी। मेरी बातो से कई दफा ऐसा हो सकता है कि साधारण आदमी भ्रान्त हो जाए, गल्त रास्ते पर चला जाए। इस सब मे एक बात तुम मान कर चले हो कि साधारण आदमी ठीक रास्ते पर है। अगर यह मानकर चलोगे तो हो सकता है कि साधारण आदमी इसलिए साधारण बना है कि वह गल्त रास्ते पर है। नही तो कोई आदमी ऐसा नही जो असाधारण न हो जाए। लेकिन जिन रास्तो पर वह चल रहा है, वे रास्ते ही उसे साधारण बना रहे है। मैं जानता हू कि रास्ते साधारण या असाधारण बनाते हैं। जिन रास्तो पर हम चल रहे हैं, वे रास्ते हमे साधारण बना देते हैं। ऐसे रास्ते भी है जो हमे असाधारण बना सकते है पर उन पर हम चलेंगे तभी। समाज चाहता नही कि व्यक्ति असाधारण बने। समाज साधारण व्यक्ति चाहता है क्योकि साधारण व्यक्ति खतरनाक नही होते, विद्रोही नही होते, अद्वितीय नही होते,

व्यक्ति ही नही होते, सिर्फ भीड़ होते हैं। समाज चाहता है भीड़, नेता चाहते हैं भीड़, गुरु चाहते हैं भीड़, शोषक चाहते हैं भीड जिसमे कोई व्यक्तित्व न हो। उस भीड़ का शोषण किया जा सकता है। और मैं कहता हू कि चाहिए व्यक्ति क्योकि भीड की कभी आत्मा नही होती। और एक ऐसी दुनिया, एक ऐसा समाज बनाने की जरूरत है जहा व्यक्ति हो। व्यक्ति अलग-अलग होगे, अलग-अलग रास्तो पर चलेंगे। लेकिन यही व्यवस्था होनी चाहिए कि अलग-अलग रास्तो पर चलने वाले लोग, अलग-अलग व्यक्तित्व वाले लोग एक-दूसरे के प्रति प्रेमपूर्वक रह सकें।

पोलपरे के खिलाफ एक आदमी था और उसने पोलपरे को इतनी गालिया दी, और उसके खिलाफ किताबें लिखी कि पोलपरे को नाराज हो जाना चाहिए था। वह एक दिन रास्ते मे पोलपरे को मिला और कहा कि महाशय, आप चाहते होगे कि मेरी गर्दन कटवा दें क्योकि मैं आपके खिलाफ ऐसी बातें कर रहा हू। पोलपरे ने कहा नही, अगर तुम मुझसे पूछोगे तो तुम जो कह रहे हो उसे कहने का तुम्हे हक है। और इस हक को बचाने के लिए अगर जरूरत पड़े तो मैं अपनी जान गवा दूगा हालाकि तुम जो कह रहे हो, वह गल्त है। हमारा भिन्न-भिन्न होने का सवाल नही है। सवाल हमारी भिन्नता की स्वीकृति का है। अभी जो समाज हमने पैदा किया है, वह भिन्नता को स्वीकार नही करता। वह या तो भिन्नता का अपमान करता है या उसका सम्मान करता है। और यदि वह भिन्नता को नही मानेगा और भिन्न रहता ही चला जाएगा तो वह कहेगा : भगवान है मगर कभी स्वीकार नही करेगा कि हमारे बीच मे हैं। अच्छी दुनिया वह होगी जहा भिन्नता स्वीकृत होगी, एक-एक व्यक्ति का अद्वितीय होना स्वीकृत होगा। और हम दूसरे की भिन्नता को आदर देना सीखेंगे। अभी हम यह कहते हैं कि जो हमसे राजी है वह ठीक है, जो हमसे राजी नही, वह गल्त है। यह बडी अजीब बात है ? यह बहुत हिंसक भाव है कि जो मुझसे राजी है वह ठीक है। जो मुझसे राजी है इसका मतलब यह हुआ कि जिसका कोई व्यक्तित्व नही है, मैं जिसको पी गया पूरी तरह, वह ठीक है। और जो मुझसे राजी नही, वह गल्त है। यह बहुत ही शोषक वृत्ति है। इसको मैं हिसा मानता हू। और जो गुरु अनुयायियो को इकट्ठे करते फिरते हैं, वे हिंसक वृत्ति के लोग है। वे कहते हैं कि हमारे साथ एक हजार लोग राजी हैं; एक हजार लोग हमे मानते हैं। यानी एक हजार लोगो को उन्होने मिटा दिया है। दस हजार लोग हो तो उनको और

मजा आए, करोड़ हैं तो और, क्योंकि इतने लोगों को उन्होंने बिल्कुल पोछकर मिटा दिया है। ये खतरनाक लोग हैं। अच्छा आदमी यह नहीं चाहता कि आप उससे राजी हों। अच्छा आदमी चाहता है कि आप सोचना शुरू करें। हो सकता है कि सोचना आपको मुझसे बिल्कुल भिन्न ले जाए। मैं यह नही कहता कि जो मैं कहता हू वह आप मान लें। मेरा जोर यह है कि आप भी इस भाति सोचना शुरू करें। हो सकता है सोचकर आप उस जगह पहुचे जहा मैं कभी आपसे राजी न हू या आप मुझसे राजी न हो। लेकिन आप सोचना शुरू करे। जीवन मे सोचना शुरू हो, जागना शुरू हो, दमन बन्द हो, अनुगमन बंद हो तब प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा मिलनी शुरू होगी और आत्मा प्रत्येक को असाधारण बना देती है। मुझे इससे चिन्ता नही कि साधारण आदमी भटक जाएगा क्योंकि मैं मानता हू कि साधारण आदमी भटका ही हुआ है। अब उसके और भटकने का कोई उपाय नही है। वह क्या भटकेगा और ? उसे हम अगर और भटका दे तो शायद वह ठीक रास्ते पर पहुच जाए।

प्रश्न : अब जो आपने कहा, क्या उसका यह अर्थ होगा कि जो लोग आपका विचार पढ़ें या सुनें और उनमें जो जैन श्रावक के व्रतों का, या जैन साधु के व्रतों का पालन कर रहे हो, उन्हें सत्य की प्राप्ति के लिए पहले अपने व्रत छोड़ देने होंगे, तभी कुछ हो पाएगा ? यानी सारा जैन समाज, जो श्रावक वर्ग और साधु वर्ग का है, पहले अपने व्रतों को छोड़ दे तभी वह सत्य को पाएगा। इसी के साथ जुड़ा हुआ यह भी प्रश्न है कि क्या इन अढ़ाई हजार वर्षों में जिन्होंने इन व्रतों का पालन किया, श्रावक या साधु, वे सबके सब पाखण्डी थे, उनमे कोई सत्य की सम्भावना नहीं थी।

उत्तर—नही, कभी भी सम्भावना नही थी।

असल मे व्रत पालने वाला कभी भी पाखण्डी होने से नही बच सकता है। व्रती पाखण्डी होगा ही। सवाल यह है कि व्रत पकड़ता वही है जो भीतर सोया हुआ है। जो भीतर जग गया है, वह व्रत को नही पकड़ता है। व्रत आते हैं उसके जीवन मे।

प्रश्न . कोई व्रती पाखंडी न रहा हो, यह सम्भव नहीं क्या ?

उत्तर : नहीं, असम्भव है यह। यह तो ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति आख फोड ले और फिर सोचे कि उसे दिखाई पड सकता है कि नहीं। मेरी बात समझ लें। मैं यह कहूंगा कि चाहे अढाई हजार साल तक कोई फोड़े आंखें,

चाहे हजार साल तक फोडे, भ्राख फोडकर दिखाई नही पडेगा। भ्रौर भ्रांख फोड़ता ही वही है जिसे दिखाई पडने से डर पैदा हो गया है, देखना नही चाहता।

व्रत का मतलब क्या है ? व्रत का मतलब है चित्त की वह दशा जिसके विपरीत भ्राप व्रत ले रहे है। व्रत है दमन का नियम। मैं कामवासना से भरा हू, ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हू। हिंसा से भरा हू, भ्रहिंसा का व्रत लेता हू। परिग्रह से भरा हू, भ्रपरिग्रह का व्रत लेता हू। परिग्रह का व्रत नही लेना पडता किसी को, न हिंसा का लेना पड़ता है, न कामवासना का लेना पडता है। क्योकि जो हम हैं उसका व्रत नहीं लेना पडता। जो हम नही हैं उसका व्रत लेना पडता है। तो व्रत का मतलब हुभ्रा कि जो मैं हू, वह उलटा हू भ्रौर उससे ठीक भिन्न उलटा व्रत ले रहा हू। उस व्रत को बाधकर मैं भ्रपने को बदलने की कोशिश करूगा। निश्चित ही व्रत दमन लाएगा, मेरा भाव है लोभ का कि मैं करोडो रुपए कमा लू भ्रौर व्रत लेता हू कि मैं एक लाख रुपए की ही सीमा बाधता हू। मेरा मन है करोड वाला तो मैं करोड वाले मन को लाख वाले मन की सीमा मे बाधने की चेष्टा करूगा। चेष्टा का एक ही परिणाम हो सकता है कि मेरा लाभ दूसरी जगह से प्रकट होना शुरू हो। मेरा मन कहे कि लाख पर भ्रगर तुम रुक गए तो स्वर्ग मे तुम्हे जगह मिलेगी। यह लोभ का नया रूप हुभ्रा। लोभ करोड का था। लाख पर बाधने की कोशिश की तो उसकी धाराए टूट गईं। भ्रब वह स्वर्ग मे लोभ करने लगा कि वहा भ्रप्सराए कैसे मिलेंगी, कल्पवृक्ष कैसा मिलेगा, मकान कैसा होगा, भगवान के पास होगा कि दूर होगा ?

प्रश्न : व्रती को निःशल्य तो होना ही है क्योंकि यह तो उसकी शर्त है।

उत्तर : न, नही। भ्रसल मे व्रती निःशल्य हो ही नही सकता क्योकि व्रत ही एक शल्य है। भ्रव्रती निःशल्य हो सकता है। व्रती निःशल्य नही हो सकता। शल्य तो लगी है पीछे। काटा चुभा है छाती मे। एक स्त्री निकल रही है, वह भ्रपनी पत्नी नही है, तो उसको देखना नही है, वह चाहे कैसी भी हो। भ्रौर जो चुपचाप देख लेता है, वह शायद कम शल्य से भरा हुभ्रा है। काटा कम है उसके चित्त मे। लेकिन जो भ्रांख बंद करके एक तरफ बैठ जाता है कि हमने व्रत लिया है कि हमे पत्नी के सिवाय किसी का चेहरा नही देखना है तो उसको एक कांटा चुभा ही हुभ्रा है चौबीस घटे। व्रती तो निःशल्य

हो ही नहीं सकता। अव्रती निःशल्य हो सकता है लेकिन मैं यह नही कह रहा हू कि अव्रती होने से ही कोई नि.शल्य हो जाएगा। अव्रती होना हमारे जीवन की स्थिति है। अव्रती दशा मे जागना हमारी साधना है। अव्रती स्थिति मे दो विकल्प है या तो अव्रती स्थिति को व्रत लेकर तोड़ो। लेकिन तब भीतर जागने की कोई जरूरत नही पडती। दूसरा रास्ता यह है कि अव्रती स्थिति के प्रति जागो ताकि अव्रती स्थिति विदा हो जाए। तब व्रत से तुम जो माग करते थे, वह आएगा। वह तुम्हे लाना नही पडेगा। जैसे मैंने उदाहरण के लिए अभी कहा कि सेक्स हमारी स्थिति है, ब्रह्मचर्य हमारा व्रत है। सेक्स के प्रति जागना साधना है। जो व्यक्ति सेक्स की स्थिति को अस्वीकार करेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर उसका सेक्स कभी मिटने वाला नही। व्रत बाहर खड़ा रहेगा, सेक्स भीतर खडा हो जाएगा। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का व्रत नही लेता, सिर्फ सेक्स की वस्तुस्थिति को समझने की साधना का प्रयोग करता है, उसका धीरे-धीरे सेक्स विदा होता है और ब्रह्मचर्य आता है। यानी ब्रह्मचर्य तुम्हारे व्रत की तरह कभी नही आता, वह तुम्हारी समझ की छाया की तरह आता है। और जब आता है तो तुम्हे कसम नही खानी पडती किसी मन्दिर मे जाकर कि मैं ब्रह्मचर्य धारण रखूगा। क्योकि कोई सवाल ही नही है। आ गया है। इसके लिए कोई कसम की जरूरत नही है और जिसकी तुम कसम खाते हो उससे तुम सदा उलटे होते हो। और जो तुम होते हो उसकी तुम्हे कभी कसम नही खानी पडती।

प्रश्न : पर इतने लम्बे काल मे जो साधक हुए, उनमे कोई ऐसा साधक नहीं जिसका सहज फलित ब्रह्मचर्य हो ?

उत्तर : वह बिल्कुल अलग बात है। मगर उसको मैं व्रती नही कह रहा। तुम जो कह रहे हो कि अढाई हजार साल मे व्रती...व्रती तो कभी नही पहुचता। अढ़ाई हजार साल या पच्चीस हजार साल हो उसका कोई सवाल नही उठता। व्रती तो कभी नही पहुचता। जो पहुचता है वह सदा अव्रती, प्रज्ञावान् व्यक्ति होता है। पर इनमे कुछ लोग ऐसे है जैसे कुन्दकुन्द। कुन्दकुन्द वैसा ही व्यक्ति है जैसा महावीर। कुन्दकुन्द कोई व्रत नही पाल रहा है। वह समझ को जगा रहा है। जो समझ रहा है, वह छूटता जा रहा है। जो व्यर्थ है, वह फिकता चला जा रहा है। लेकिन है वह अव्रती व्यक्ति। और वह जो व्रती व्यक्ति है, वह सदा झूठ है, निपट पाखण्ड है। व्रत पालना बिल्कुल सरल है। इसमे क्या कठिनाई है? क्योकि यह सिर्फ वासनाओ को

दबाना है। लेकिन व्रत पालने से कोई कभी कहीं नहीं पहुचा। महावीर को भी मैं अव्रती कहता हूं। कुन्दकुन्द भी अव्रती है। ऐसा है उमास्वाति। ऐसे कुछ और लोग भी हैं। लेकिन जब तुम कहते हो 'जैन श्रावक', 'जैन साधु' तो न तो कुन्दकुन्द जैन है, न उमास्वाति जैन हैं। मतलब यह है कि जिनको जैन होने का कोई पागलपन नहीं है। जिनको जैने होने का पागलपन है, वे कभी नहीं पहुचते। क्योंकि जैन होने का भ्रम व्रत आदि से होता है कि मैं रात को खाना नहीं खाता इसलिए मैं जैन हूं, कि मैं पानी छानकर पीता हू इसलिए मैं जैन हू, कि मैंने अणुव्रत लिए हुए हैं इसलिए मैं जैन हू, कि मैं सामायिक करता हू, इसलिए मैं जैन हू। यानी उसका जैन होना व्रतो पर ही निर्भर है। वह श्रावक है, तो श्रावक के व्रत हैं। साधु है तो साधु के व्रत है। अव्रती बात ही अलग है। सब अव्रती है। लेकिन अव्रती स्थिति मे जो प्रज्ञा को जगाता है तो वह अव्रती सम्यक् हो जाता है।

प्रश्न : मैं समझता हूं कि जैसा शास्त्र कह ही रहे हैं कि जो व्यक्ति व्रत, अव्रत दोनों से ऊपर हो जाता है वही बात आप कह रहे हैं।

उत्तर : वह तो पीछे होगा। लेकिन व्रत पालनेवाला, व्रत बाधनेवाला कभी नहीं हो पाएगा। समझ आएगी तो चीजें मिट जाती हैं। उदाहरण के लिए, अगर समझ आएगी तो हिंसा मिट जाती है। शेष रह जाती है अहिंसा। लेकिन व्रती की हिंसा भीतर होती है और वह अहिंसा थोपता है। व्रती की अहिसा हिंसा के विरोध मे तैयार करनी पडती है। प्रज्ञावान की हिंसा विदा हो जाती है, शेष रह जाती है अहिंसा। प्रज्ञावान की अहिंसा हिंसा का विरोध नहीं है, वह हिसा का अभाव है। व्रती की अहिसा हिंसा का विरोध है, अभाव नहीं। और जिसका विरोध है, वह सदा मौजूद रहता है। वह कभी नहीं मिटता।

प्रश्न : व्रत निरर्थक है। यह व्रत पालने से मालूम पड़ेगा ?

उत्तर : हा, बिल्कुल पडेगा। और जितने व्रती है, उनको जितने जोर से मालूम पडता है, उतना आपको नहीं मालूम पडता। अगर वे भी सेक्स की तरह इसमे मूर्च्छित ही लगे हो कि रोज सुबह मन्दिर चले जाते हैं मूर्च्छित और कभी जाग कर नहीं देखा कि क्या मिला, यह प्रश्न ही अगर न पूछा तो जन्म जन्मान्तर तक व्रत मानते रहेगे। यह प्रश्न पूछ लिया हो तो अभी टूट जाएगा इसी वक्त। अगर व्रती समझ ले मेरी बात को तो उसको जल्दी समझ मे आ जाएगी बजाए आपके। क्योंकि उसको व्रत की व्यर्थता का अनुभव भी है।

लेकिन वह अनुभव को देखना नहीं चाहता, मूर्च्छा की तरह चला जाता है। वह कहता है अभी नही हुआ तो कल होगा, कल नही हुआ तो परसो होगा और कुछ तो हो ही रहा है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि मैं इतने दिन से णमोकार का पाठ कर रहा हू तो मैं पूछता हू उससे क्या हुआ? वह कहता है, बडा अच्छा लग रहा है, शाति लग रही है। फिर थोडी देर मे मुझ से पूछता है : शाति का कोई उपाय बताइए ? मैं कहता हू : अब मैं कैसे बताऊ तुम्हे जब मिल ही रही है शाति। वह कहता है · नही, अभी कुछ खास नही मिल रही। मैं कहता हू · तुम मुझे बिल्कुल साफ-साफ कहो। अगर थोडा-थोडा लगता है तो करते चले जाओ, धीरे-धीरे ज्यादा लगने लगेगा फिर मुझसे मत पूछो। तुम बिल्कुल ईमानदारी से कहो कि सच मे कुछ हुआ है। वह कहता है कुछ हुआ तो नही है। यानी वह जो कह रहा था उसकी भी उसे होश नही थी कि वह क्या कह रहा है। एक आदमी कहता है कि मैं मन्दिर जाता हू रोज। वह फिर भी पूछता है . "शान्ति चाहिए"। उसको पूछो तो वह कहता है कि मन्दिर जाने से शाति मिलती है। मिलती है तो फिर अब और क्या शाति चाहिए ? ठीक है, जाओ। वह कभी जागा हुआ ही नही है कि वह क्या कह रहा है, क्या कर रहा है, वह भी सुनी-सुनाई बातें दोहरा रहा है। यानी मन्दिर जाने से शाति मिलती है, यह उसने सुना है और वह मन्दिर जाता है। अब वह भी कह रहा है कि बड़ी शाति मिलती है। अगर जगे कोई व्रती तो व्रत से एकदम मुक्त हो जाए। अव्रती भी समझ ले तो उसके भी समझ मे आ सकता है, क्योकि ऐसे हम अव्रती भले हो, चाहे हमने कभी कसम खाकर व्रत न लिए हो लेकिन वैसे किसी न किसी रूप मे हम सब व्रती है। जैसे कि आपने शादी की तो पत्नीव्रत या पतिव्रत लिया। आपको ख्याल मे नही है। मन्दिर मे जाकर नहीं लिया जाता, वह तो हम चौबीस घटे जो भी कर रहे हैं, उसमे व्रत पकड रहे हैं। और अगर हम जाग जाए तो हमको पता चले कि कुछ हुआ नही है उस व्रत से। चीजें कही बदली नही हैं। और चित्त वैसा ही रह गया है जैसा था। चित्त की वही दौड है, वही भाग है। वह तो सभी चीज अनुभव से आती हैं लेकिन जिन्दगी मे व्रत चल ही रहे हैं चौबीस घटे। जैसे एक व्यक्ति है जो कहता है . "मेरे पिता हैं, इसलिए मैं उनकी सेवा कर रहा हूं।" यह व्रत ले रहा है सेवा का। इसको पिता की सेवा करने में कोई आनन्द नही है। यह कह रहा है · "कर्तव्य है"। यह व्रती आदमी है। पिता की

सेवा भी कर रहा है और पूरे वक्त क्रोध से भी भरा हुआ है कि कब छुटकारा हो जाए, यह पैर दबाने से कब छुटकारा मिले? लेकिन यह व्रतपूर्वक, नियमपूर्वक कर रहा है। पिता है इसलिए कर रहा है। अब सच बात तो यह है कि इसको कभी आनन्द नही मिलेगा। यानी 'पिता है', इसलिए पैर दबाऊ, अगर यह कर्त्तव्य भाव है तो आनन्द कभी नही मिलेगा। और अगर इसे आनन्द आ रहा है पैर दबाने मे तो फिर व्रत नही रह गया। फिर इसकी एक समझ है, एक प्रेम है, एक दूसरी बात है। एक नर्स है। वह एक बच्चे को व्रतपूर्वक पाल रही है। एक मा है। वह अपने बच्चे को आनन्दपूर्वक पाल रही है। और अगर कोई उस मा से पूछेगा कि 'तूने अपने बेटे के लिए बहुत किया तो वह कहेगी कि कुछ भी नही कर पाई। जो कपडे देने थे नही दे पाई, जो खाना देना था नही दे पाई। लेकिन कोई नर्स से पूछे: 'तुमने फला लडके के लिए बहुत किया।' वह कहेगी 'बहुत किया। पाच बजे सुबह से काम पर जाती थी, पाच बजे शाम को लौटती थी। बहुत किया।'

कर्त्तव्य, व्रत की भाषा है, व्रत की बात है। प्रेम, अव्रत की भाषा है, अव्रत की बात है। लेकिन अव्रत अकेला काफी नही है। अव्रत और जागरण। वह कोई भी करे, जैन करे, मुसलमान करे, ईसाई करे, पुरुष करे, स्त्री करे, इससे कोई सम्बन्ध नही है। घटना उस करने से घटती है। लेकिन होता क्या है: परम्पराए धीरे-धीरे जड नियम बन जाती हैं और जड नियम थोपने की प्रवृत्ति शुरू हो जाती है और जब जड-नियम थोप दिए जाते हैं और लोग उन्हे स्वीकार कर लेते हैं तो वे जड नियम भी लोगो को जड करते हैं। इसलिए व्रती व्यक्ति जड होता चला जाता है धीरे-धीरे।

प्रश्न : महावीर का पौरुष या व्रती का जागरण जल्दी फलित होगा या अव्रती का जागरण जल्दी फलित होगा ?

उत्तर : जागरण, चाहे वह अव्रती का हो या व्रती का हो, फलीभूत होता है। आप जिस स्थिति मे हों, वही जाग जाए। हम किसी न किसी स्थिति मे हैं ही, किन्ही-न-किन्ही सीमाओ मे बधे हैं, कुछ न कुछ कर रहे है। कोई दूकान चला रहा है, कोई मन्दिर मे पूजा कर रहा है, कोई मकान बना रहा है, कोई मन्दिर बनवा रहा है, कोई उपवास कर रहा है, कोई खाना खा रहा है। हम कुछ न कुछ कर रहे है। हम जो भी कर रहे है उसके प्रति जागरण फलीभूत होता है। हम जो भी कर रहे है इससे कोई सम्बन्ध नही। एक आदमी चोरी कर रहा है और एक आदमी पूजा कर रहा है। करने के प्रति जागने

से फल आना शुरू हो जाता है। चोरी करने वाला चोरी के प्रति जाग जाए तो वही फल लाएगा। जागरण के पीछे बल होगा अवश्य।

प्रश्न : व्रती का ज्यादा होगा या अव्रती का ?

उत्तर : असल बात यह है कि यह होगा। यह बड़ी बात है। बडी इसलिए है कि कौन सा व्रत ? एक आदमी व्रत लिए है पांच बार माला फेर लेना। एक आदमी चोरी करने जा रहा है। यह प्रत्येक घटना पर निर्भर करेगा कि क्या व्रत या क्या अव्रत ? लेकिन कुल कीमत की बात इतनी है कि आदमी जो भी कर रहा है, उसके प्रति उसे जागकर करना है। वह मन्दिर जा रहा हो तो भी जागना है, वेश्यालय जा रहा हो तो भी जागना है। जो भी करे उसे होशपूर्वक करना है। होशपूर्वक करने से जो शेष रह जाएगा वह धर्म है। जो मिट जाएगा, वह अधर्म है।

प्रश्न : महावीर क्या इसी जागरूकता को पौरुष और क्षात्रधर्म मान रहे हैं या कोई और पौरुष है ?

उत्तर : इसको ही, इससे बडा और कोई पौरुष नही है। नीद तोडने से बडा कोई पौरुष नही है।

प्रश्न : पर आपने यह भेद किया कि एक मार्ग आत्मसमर्पण का है, दूसरा पौरुष का है।

उत्तर : हा, हा, नीद तोडना दोनो मे बराबर है। मगर बिल्कुल ही अलग-अलग रास्ते से नीद टूटेगी। समर्पण करने वाले की नीद अगर थोडा भी पौरुष हुआ तो नही टूटेगी। क्योकि समर्पण करने मे एकदम स्त्रीभाव चाहिए। यानी समर्पण करने मे यही पौरुष होगा कि पौरुष बिल्कुल न हो। और पौरुष करने वाले मे यही पौरुष होगा कि उसमे समर्पण का भाव न हो जरा भी। महावीर के हाथ तुम किसी के प्रति नही जुडवा सकते हो। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते हो कि यह आदमी हाथ जोडे हुए खडा हो कही।

प्रश्न : वह अपने आन्तरिक शत्रुओं से लड़ा, यह पौरुष नहीं है ?

उत्तर : नही, नही, कोई आन्तरिक शत्रु नही है सिवाय निद्रा के, मूर्च्छा के, प्रमाद के। इसलिए महावीर से कोई पूछे: धर्म क्या है ? वह कहेगे . अप्रमाद। और अधर्म क्या है ? वह कहेगे प्रमाद। कोई पूछे कि साधुता क्या है ? वह कहेगे . अमूर्च्छा। असाधुता क्या है ? वह कहेगे मूर्च्छा। और सारी साधना का सूत्र है विवेक। कैसे कोई जागे, कैसे कोई होश से भरा हुआ हो तो महा-

वीर का पौरुष काम, क्रोध, लोभ से लड़ने मे नही है। क्योंकि ये तो लक्षण हैं सिर्फ। इनसे पागल लड़ेगा। इनसे महावीर नही लड सकता। मूर्च्छा है मूल वस्तु। काम, क्रोध, लोभ, सब उससे पैदा होते हैं। जैसे कि तुम्हें बुखार चढ़ा। अगर कोई बुद्धिहीन वैद्य मिल गया तो वह तुम्हारे शरीर की गर्मी से लड़ेगा। ठडा पानी डालेगा तुम्हारे ऊपर शरीर की गर्मी को कम करने के लिए। लेकिन बुद्धिमान वैद्य कहेगा कि गर्मी बुखार नही है। गर्मी केवल खबर देती है कि भीतर कोई बीमारी है। यह केवल सूचना है, यह लक्षण है। इसमे लडे तो मरीज मरेगा। बीमारी से लडो ताकि यह लक्षण विदा हो जाए। बीमारी विदा हुई तो शरीर से ताप विदा हो जाएगा। लेकिन शरीर से ताप विदा करने की कोशिश की तो बीमारी का विदा होना जरूरी नही। आदमी मर भी सकता है। तो काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये लक्षण है कि भीतर आदमी मूर्च्छित है। ये सिर्फ खबरें हैं; मूर्च्छा टूटेगी तो ये विदा हो जाएगे। और अगर मूर्च्छा से बचते हुए व्रत लेकर इनको खत्म करने की कोशिश की तो ये कभी खत्म नही होंगे क्योंकि मूर्च्छा भीतर जारी है। वह नए नए रूपो मे इनको पैदा करती रहेगी। सिर्फ रूप बदल जाएगे ज्यादा से ज्यादा। एक कोने से न निकल कर दूसरे दरवाजें से झरना निकलेगा। महावीर तो बहुत स्पष्ट हैं कि साधना यानी अमूर्च्छा, सघर्ष यानी मूर्च्छा, सकल्प यानी जागरण। इसके अतिरिक्त और कोई सवाल ही नही है उनके लिए।

प्रश्न : आचारांग का एक वाक्य है। उसका अर्थ यह है कि 'तू बाह्य शत्रुओं से क्यों लड़ता है, अपनी आत्मा के शत्रुओं से ही लड़।' यह वाक्य आपके विचार में किसी ढंग से व्याख्येय है, या अशुद्ध ही है।

उत्तर : मैं तो फिक्र नही करता सूत्रो की। क्योंकि जो लोग उन्हे सगृहीत करते है वे कोई बहुत समझदार लोग नही है। इनकी मैं फिक्र नही करता। इनसे कोई ताल-मेल बैठाने का सवाल नही है। बैठ जाए, वह आकस्मिक बात है। न बैठे, उसकी कोई जरूरत नही है। 'आन्तरिक शत्रुओ से लड' यह कही न कहीं बुनियादी भूल हो गई क्योंकि 'शत्रुओ' शब्द बहुवचन मे है। 'आन्तरिक शत्रु से लड'—यह ठीक बात रही होगी क्योंकि 'शत्रु' एक-वचन मे है। आन्तरिक शत्रु सिर्फ मूर्च्छा है। महावीर हजार बार दोहरा कर यह कह रहे हैं। इसलिए बहुत शत्रु नही हैं भीतर। शत्रु एक ही है और मित्र भी एक ही है। 'जागरण' मित्र है, मूर्च्छा शत्रु है। इसलिए सुनने वाले ने कही न कही भूलकर दी है। आन्तरिक शत्रुओ से लडने मे वह फिर काम,

क्रोध, और लोभ वाली दुनिया में उतर आया है। वह इन्हीं की बात कर रहा है फिर क्योंकि शत्रुओं का प्रयोग उसने बहुवचन में किया है। एकवचन में होता तो मैं राजी हो जाता कि बिल्कुल ठीक है। भूल हो गई बुनियादी। फिर वह इन्ही को शत्रु समझ रहा है। ये शत्रु हैं ही नही। शत्रु कोई और है। ये उसकी फौजें हो सकती हैं। यानी इनसे लडने का कोई मतलब नहीं है। मालिक कोई और है। वह मालिक नई फौजें भेजता रहेगा। अगर पुरानी तुमने हटा भी दी तो नई फौजें आती रहेगी। 'आन्तरिक शत्रु' से लडना है, 'शत्रुओ' से नही। अक्सर ऐसा हो जाता है कि हमारी जो समझ होती है वह भटक जाती है। इसको यह ख्याल मे नही आता कि शत्रु एक है। हमारे ख्याल मे आता है कि शत्रु बहुत हैं। मगर शत्रु एक ही है और इसलिए जो बहुत शत्रुओ से लड रहा है, वह बुनियादी भूल कर रहा है क्योंकि मजा यह है कि अगर काम चला जाए तो लोभ चला जाता है, क्रोध चला जाता है, मोह चला जाता है। इनमें से एक को बिदा कर दो, बाकी तीन को बचा लो तो मैं समझू कि यह अलग है। अगर कोई यह कहता हो कि मैंने लोभ बिदा कर दिया, लेकिन अभी काम बचा हुआ है तो यह असम्भव है। क्योकि काम के साथ अनिवार्य लोभ है। यानी वे चार जो तुम्हे दिखाई पड रहे हैं—काम, क्रोध, लोभ और मोह—वे सयुक्त हैं और उन सब का सयुक्त जो तना है नीचे, वह मूर्च्छा है। वहा से शाखाएं निकलती रहती हैं। अब सब लोग इस उलटे काम मे लग जाते हैं। कोई लड रहा है क्रोध से कि मुझे क्रोध जीतना है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते है कि हमे क्रोध बहुत ज्यादा है, क्रोध से बचने का उपाय बताइए। वे समझ रहे हैं, क्रोध उनका शत्रु है। क्रोध शत्रु नही है। क्योंकि बाकी अगर तीन की वे फिक्र नही कर रहे है तो इस क्रोध मे कुछ हल नही होगा। तब चारो की एक साथ फिक्र करनी होगी। जैसे कि एक वृक्ष है, उसमे कई शाखाए हैं। एक आदमी एक शाखा काट रहा है, दूसरा आदमी दूसरी शाखा काट रहा है और नीचे के तने पर आदमी पानी सीचते हैं सुबह उठ कर। नीचे के तने पर पानी सीचते हैं रोज और रोज वृक्ष पर चढ कर शाखाए काटते हैं। एक शाखा कटती है तो दो पैदा हो जाती हैं, दो कटती हैं तो चार पैदा हो जाती है। और नीचे के तने पर पानी दिए चले जाते हैं। मजा यह है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह से हम लडते हैं और मूर्च्छा पर पानी दिए चले जाते है। और मूर्च्छा से वे सब पैदा होते हैं। तो जो थोड़ा भी गहराई मे उतरेगा वह कहेगा : "मूर्च्छा से लड़ना

है।" और लड़ना क्या है जागना है। वह लडना ही नहीं, जागना होगा। कभी जागा हुआ आदमी लोभी नही पाया गया, और सोया हुआ आदमी कभी अलोभी नही हुआ, अकामी नही हुआ। इसलिए मेरे हिसाब मे, काम, क्रोध, लोभ सोए हुए आदमी के लक्षण हैं। जब ये बाहर दिखाई पडते हो तो भीतर आदमी सोया हुआ है। जब ये बाहर दिखाई नही पडते तो भीतर आदमी जागा हुआ है। लेकिन कोई इससे उलटी तरकीब मे लग जाए कि इनको दिखाई न पडने दें तो कोई फर्क नही पडता। व्रती यही कर रहा है कि क्रोध को दिखाई न पडने देंगे तो हो सकता है दिखाई न पडे। दबा ले तरकीबो से। लेकिन फिर भी वह पहचाना जा सकता है। और उसके भीतर तो रहेगा ही। अगर कोई ढग से उसको उकसाए तो क्रोध निकाला जा सकता है। यानी उसके क्रोध नए-नए रूप लेंगे और हो सकता है कि कई बार हम उसको उकसा भी न पाए क्योकि उसको उकसाने की तरकीब हमे पता न हो। उस तरकीब को अगर हम पकड ले तो फौरन उसको उकसाया जा सकता है। व्रत से कभी कुछ नही मिटता क्योकि व्रत शाखाओ से लडाई है। और कभी भी कोई व्यक्ति मुक्त हुआ हो तो वह दमन से मुक्त नही हुआ होगा। वह जब भी मुक्त हुआ होगा जागरण से ही मुक्त हुआ होगा। यह दूसरी बात है कि उस दिन की भाषा साफ न हो, अभिव्यक्ति साफ न हो। मगर अभिव्यक्ति निरन्तर साफ होती चली जाती है। जैसे समझ ले कि न्यूटन ने खबर बताई कि चीजे गिरती है क्योकि जमीन मे गुरुत्वाकर्षण है। कोई हमसे पूछे कि न्यूटन के पहले जो चीजे गिरती रही, वे भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थी। न्यूटन ने तो अभी तीन सौ साल पहले कहा कि चीजे ऊपर मे नीचे गिरती है क्योकि जमीन खीचती है, गुरुत्वाकर्षण है। कोई आदमी हमसे पूछ सकता है कि क्या न्यूटन के पहले चीजे नीचे नही गिरती थी और अगर गिरती थी तो वह भी क्या गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थी। तो हम कहेगे कि वह भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थी। जब भी कोई चीज गिरी है, गुरुत्वाकर्षण से ही गिरी है। खबर अभी न्यूटन ने ही दी है। न्यूटन ने सिर्फ नियम बनाया है। चीजे गिर ही रही थी सदा से। लेकिन इसको न्यूटन ने पहली बार स्पष्ट किया है। महावीर मुक्त हुए हो, कि कृष्ण मुक्त हुए हो, दमन से नही, सदा जागरण से हुए होगे। यह बात फ्रायड ने पहली बार स्पष्ट की है। इस नियम को पहली बार ठीक-ठीक वैज्ञानिक ढग से कहा है। और इसलिए अब जो लोग महावीर को समझने के लिए फ्रायड के पूर्व की भाषा का

उपयोग कर रहे हैं, वे महावीर को कभी भी आज के युग के लिए उपयोगी नही बनने देंगे क्योंकि वह बुनियादी गल्त बाते और गल्त शब्द उपयोग करते रहेंगे। यह भूल निरन्तर होती रही है, क्योंकि महावीर के साथ अनिवार्य रूप से अढ़ाई हजार साल पुरानी शब्दावली जुडी हुई है, जब न फ्रायड हुआ है, न मार्क्स हुआ है, न आइस्टीन हुआ है। और अगर उसी को पकड कर अनुयायी शोर मचाना चाहता है तो वह कभी भी उसको उपयोगी नही बना सकता। वह तो जैसे-जैसे शब्द बदलते जाते हैं, नए-नए शब्द आते जाते हैं, उनको हमे समझपूर्वक उपयोग करना चाहिए। वैसी घटना जब भी घटी होग दमन से कभी नही घटी होगी। यानी वह वैज्ञानिक असम्भावना है। उसका महावीर से कोई लेना-देना नही है। यानी दो ही उपाय है। अगर कोई कहे कि दमन से महावीर उपलब्ध हुए है तो फिर महावीर उपलब्ध न हुए होगे। दूसरा उपाय है कि अगर वह उपलब्ध हुए तो उन्होंने दमन न किया होगा। यानी इसके सिवाए कोई मार्ग ही नही है। मैं मानता हू कि वह उपलब्ध हुए क्योकि जैसी शाति, जैसा आनन्द और जैसी ज्योति उनके व्यक्तित्व मे आई, वह कभी दमित व्यक्ति को आ ही नही सकती। दमित व्यक्ति के चेहरे पर, मन पर सब ओर तनाव होता है क्योंकि जो दबाया है, वह दिक्कत देता रहता है। सिर्फ विमुक्त आदमी के मन मे ऐसी शाति हो सकती है जैसी महावीर के मन मे है। जिसने कुछ भी नही दबाया, वह मुक्त हो गया। मुक्ति और दमन उल्टे शब्द है—यह हमे ख्याल मे नही। दमन का मतलब है भीतर दबाया गया, मुक्ति का मतलब है छूट गया, विसर्जित हो गया। क्रोध बिदा ही हो गया है, चला ही गया हे, दबाया नही गया।

प्रश्न : आपने कहा कि जागृति आती है तो मूर्च्छा चली जाती है। मूर्च्छा के प्रति जागृत होना चाहिए, उसकी शाखा से लड़ने की जरूरत नहीं ?

उत्तर : कोई जरूरत नही।

प्रश्न : आपका मतलब है कि अव्रत की अकेले जरूरत नहीं। साथ में जागृति की भी जरूरत है।

उत्तर : मेरा कहना है कि जागृति आ जाएगी तो अव्रत आ ही जाएगा। अव्रत है ही हमारा। व्रती का मतलब है कि जो नियम बाधकर जी रहा है। अव्रती का मतलब है जो नियम बाधकर नही जी रहा है। अव्रती हम हैं ही। उसे लाने का सवाल नहीं है।

कुछ हम मे व्रती हैं मन्दिर जाने वाले, मस्जिद जाने वाले, पूजा-पाठ करने

वाले, नियम-धर्म से जीने वाले। बाकी लोग अव्रती हैं। व्रती को व्रत के प्रति जाग जाना चाहिए और अव्रती को अव्रत के प्रति। जो हम कर रहे हैं उसी के प्रति जाग जाना चाहिए। जागने से वह आ ही जाएगा। जो व्रती चेष्टा कर रहा है व्रत से लाने की वह अपने आप आ जाएगा।

प्रश्न : जागरण के साथ विशेषण विवेक का होना जरूरी है अथवा नहीं ? क्योंकि अविवेक हो तो जागरण कैसे हो सकता है ?

उत्तर : नही, अविवेकपूर्ण जागरण नही हो सकता। जागरण अनिवार्य रूप से विवेकपूर्ण होता है। असल मे जागरण और विवेक एक ही अर्थ रखते हैं। जैसे हम यह नही कह सकते "जीवित मुर्दा" वैसे ही हम अविवेकपूर्ण जागरण नही कह सकते। ये विपरीत शब्द हैं। विवेक यानी जागरण। विवेक से आम ख्याल होता है कि यह गल्त है और यह सही है।

लेकिन ऐसा विवेक आप जब तक करते हैं, और कहते हैं कि यह ठीक मानू, यह गल्त मानू तब तक आपको विवेक नही होता। तब तक विवेकशील लोगों ने जिसको ठीक जिया है, और जिसको गल्त माना है, वह आपने पकड लिया है। जिस दिन आपका विवेक होगा उस दिन यह तय नही करना पडता है कि यह गल्त है या सही है। जो सही है वह होता है; जो गल्त है वह नही होता है। सही होता है जागे हुए व्यक्ति से। गल्त होता है सोये हुए व्यक्ति मे। जागे हुए व्यक्ति से गल्त नही होता, सोए हुए व्यक्ति से सही नही होता। असत्य है यह बात कि कोई अविवेकपूर्ण जागरण होता है क्योकि जागरण है तो अविवेक टिकेगा कहा, ठहरेगा कहा ?

प्रश्न : परतन्त्रता, स्वच्छंदता और स्वतन्त्रता में क्या फर्क है ?

उत्तर : बहुत फर्क है।

परतत्रता का मतलब है जो हमसे करवाया जा रहा हो हम वही करे। स्वच्छन्दता का मतलब होता है जो हमसे करवाया जा रहा हो, वह भर हम नही कर रहे, हम उससे विपरीत करते हैं। विद्रोह भी परतत्रता है यानी विद्रोह मे चली गई परतत्रता। जैसे कि बाप ने कहा कि "मदिर जाना" मगर लडका मन्दिर नही जा रहा है।

एक परतंत्र है, एक स्वच्छद। लेकिन जो स्वच्छद है वह परतंत्रता के खिलाफ है इसलिए वह विद्रोही परतन्त्र है। इन दोनो से भिन्न स्वतन्त्रता है जिसका मतलब है कि वह न इसलिए जाता है मन्दिर कि बाप कहता है और न इसलिए नही जाता है कि बाप कहता है। वह सोचता है, समझता है।

ठीक लगता है तो जाता है, ठीक नही लगता तो नहीं जाता। मगर वह न तो परतंत्र है, न स्वच्छंद।

प्रश्न : आपने पीछे कहा कि देवताओं के पास, भूत-प्रेतों के पास वाणी नहीं होती। और कल आपने कहा कि आर्मस्ट्रोंग और उसके साथी जब लौट रहे थे, नीचे रिसीव करने वाले स्टेशनों पर दस मिनट तक जैसे हजारों भूत-प्रेत रो रहे हों, हंस रहे हों, चिल्ला रहे हों, ऐसी आवाजें पकड़ी गई। इन की कोई व्याख्या नही हो सकी कि वे कैसे आई। तो जब भूत-प्रेतों की वाणी नहीं होती तो वे आवाजें कैसे पैदा हुई?

उत्तर : इसे थोडा समझना पडेगा। पिछले महायुद्ध मे एक आदमी के अगूठे मे चोट लगी बम के गिरने से। उसे बेहोश हालत मे अस्पताल मे लाया गया। बीच-बीच मे, जब भी वह होश मे आता वह चिल्लाता कि मेरा अगूठा बहुत जल रहा है, आग पड रही है मेरे अगूठे मे। रात उसको बेहोश करके उसका पूरा पैर काट दिया गया क्योकि पूरा पैर खराब हो गया था; उसको बचाने का कोई उपाय न था और इतनी असह्य वेदना थी कि पूरे शरीर मे जहर फैल जाने का डर था। उसका घुटने से लेकर नीचे तक का पैर काट दिया गया। सुबह जब वह होश मे आया तो उसने चीख पुकार मचानी शुरू की कि मेरे अगूठे मे बहुत दर्द हो रहा है। आस-पास के डाक्टरो ने उसे गौर से देखा क्योकि अगूठा अब था ही नही। अगूठे मे दर्द कैसे हो सकता है जब अगूठा ही नही है। तब लोगो ने कहा तुम्हारा दिमाग तो खराब नही है, ठीक से सोचकर कहो। अभी उसको बताया नही कि उसका पैर कटा हुआ है। उसने कहा क्या ठीक से सोचे। मेरा अगूठा जला जा रहा है, आग पड रही है। उन्होने उसका कम्बल उघाडा और कहा तुम्हारा पैर तो रात साफ कर दिया, अगूठा तो है नही। उसने देखा और कहा मुझे भी दिखाई पड रहा है अगूठा नही है लेकिन दर्द मेरा अगूठे मे हो रहा है, इसको मैं कैसे इन्कार करू। तब उसकी जाच-परख की गई। और जाच-परख से एक बहुत नया सत्य हाथ मे आया जो कभी ख्याल मे नही था। जाच-परख से यह सत्य पकड मे आया कि अगूठे मे जो दर्द होता है, उससे सिर तक खबर पहुचाने वाले जो स्नायु तन्तु हैं, वे हिलते हैं। अंगूठा सिर मे तो है नही। अगूठा तो छः फुट दूर है। दर्द अगूठे मे होता है, सिर मे पता चलता है। पता लाने के लिए जो तन्तु हैं, वे हिलते हैं बीच में। उन तन्तुओ के खास ढग से हिलने से दर्द पता चलता है। अगूठा तो कट गया, वे तन्तु

उसी खास ढंग से हिले जा रहे हैं। वे तन्तु जो आगे के हैं उसी तरह से कांप रहे है जिस तरह दर्द में कांपना चाहिए। दर्द का पता चल रहा है और अगूठे मे पता चल रहा है जो है ही नही। क्योंकि वह अगूठे के दर्द की खबर लाने वाला तन्तु है। इसके बाद तो फिर बडी काम की चीजें हाथ लगी। फिर तो यह पता चला कि आपके कान के पीछे जो तन्तु हैं उनमे खास तरह की चोट करके आपके भीतर खास तरह की ध्वनिया पैदा की जा सकती हैं। जैसे मैंने कहा : राम ! तो आपके कान के भीतर का तन्तु एक खास ढग से हिला। कोई राम बाहर न कहे मगर सिर्फ उस तन्तु को आपके कान के पीछे इस तरह से हिला दे जैसे राम बोलते वक्त हिलता है तो आपके भीतर राम सुनाई पडेगा। जैसे आपकी आख है, उससे रोशनी भीतर जाती है। तन्तु एक तरह से हिलते हैं। आपकी आख बद कर दी जाए और सिर के भीतर इलेक्ट्रोड डालकर आख के तन्तु इस प्रकार हिला दिए जाए जैसा कि वे प्रकाश के वक्त हिलते हैं, आपको भीतर प्रकाश दिखाई पडेगा और आप अधेरे मे बैठे है। यह मै इसलिए कह रहा हू कि भूत, प्रेत, देवताओ के लिए दो उपाय हैं जिससे वे वाणी पैदा कर सके। एक उपाय यह है कि वे किसी मनुष्य के शरीर का उपयोग करें जैसा कि आमतौर पर वे करते है। तब वे बोल सकते है। क्योंकि वे आपके कठ का, आपके बोलने के यत्र का उपयोग कर लेते है। दूसरा उपाय यह है कि आपके रिसीविंग सेन्टर पर, आपके रेडियो स्टेशन पर तरगे पैदा की जा सकें तो आपका रिसीविग सेंटर कहेगा कि आवाज हो रही है। इसलिए उस दस मिनट मे जो आवाजें पकडी गई उनमे कोई शब्द नही पकडे गए। सिर्फ रोने, हसने, शोरगुल की आवाजे थी वे। कोई शब्द नही है स्पष्ट। शब्द स्पष्ट पैदा करना बहुत कठिन है। लेकिन इस तरह की तरगे पैदा की जा सकती है कि वे रोने, चिल्लाने, शोर-गुल की आवाजें पैदा कर दे। वे तरगे ही पैदा की गई हैं। वे तरगे पैदा करने के लिए वाणी की जरूरत नही है। तरगें पैदा करने के दो ही उपाय हैं। या सीधी तरगे पैदा कर दी जाए या किसी मनुष्य के यत्र का उपयोग किया जाए। आम तौर से मनुष्य के यत्र का उपयोग किया जाता है लेकिन तरगें भी पैदा की जा सकती हैं। वहा बोलने वाले की जरूरत नही है। बोलने से जो तरगें मडल मे पैदा होती हैं वे पैदा कर दी जाएं तो वे जो भी मनोकामना करे, पैदा हो जाती है। वह अगर शोरगुल की मनोकामना करें तो शोरगुल पैदा हो जाए। और जैसा मैंने कहा कि देव या प्रेत योनि मे जो सबसे बडी

अद्भुत खूबी की बात है, वह यह है कि वहा कठ की जरूरत नही, वाणी की जरूरत नही, सिर्फ मनोकामना पर्याप्त है।

प्रश्नोत्तर

(२३-६-७०) प्रात

प्रश्न : आपने कहा कि सामायिक आत्म-स्थिति है। लेकिन जिसे आप सामायिक या आत्म-स्थिति कह रहे हैं क्या वह वीतरागता ही नहीं ? और जब व्यक्ति आत्म-स्थिति में यानी चेतना-स्थिति में हो गया है तो फिर वह जीवन-व्यवहार मे आकर क्या आत्म-स्थिति को नहीं खो देगा ?

उत्तर : नही, नही खो देगा। जैसे कि आप श्वास ले रहे है, तो चाहे जगे, चाहे सोए, चाहे काम करे, चाहे न करे, श्वास चलती रहेगी क्योंकि वह जीवन की स्थिति है। ऐसी ही चेतना की स्थिति है। और एक बार वह हमारे ख्याल मे आ जाए तो फिर वह मिटती नही। यानी जीवन-व्यवहार मे उसका ध्यान नही रखना पडता कि वह बनी रहे, वह बनी ही रहती है। जैसे एक आदमी धनपति है और उसे पता है कि मेरे पास धन है तो उसे चौबीस घटे याद नही रखना पडता कि वह धनपति है। लेकिन वह धनपति होने की स्थिति उसकी बनी रहती है चौबीस घटे। चाहे वह कुछ भी कर रहा हो, वह सडक पर चल रहा है, काम कर रहा है, उठ रहा है, बैठ रहा है इससे कोई मतलब नही। एक भिखारी है, वह कुछ भी कर रहा है। उसकी वह स्थिति भिखारी होने की बनी ही रहती है। हमारी स्थितिया हमारे साथ ही चलती है। होनी चाहिए बस यह है बडा सवाल। तो एक पल के हजारवें हिस्से मे भी अगर हमे अनुभव मे आया है तो वह बना रहेगा क्योंकि हमारे पास पल के हजारवें हिस्से से बडा कोई समय होता ही नही। उतना ही समय होता है हमेशा। जब भी होगा, उतना ही होगा। वह हमे दिखाई पड गया तो बना रहेगा। गीता मे जिसे स्थितप्रज्ञ कह रहे है, वह वही बात है। उसमे कुछ फर्क नही। सामायिक और वीतराग मे जो समानता दिखाई पड़ती है उसका मतलब कुल इतना है कि 'सामायिक' है मार्ग, 'वीतरागता' है उपलब्धि। इससे जाना है, वहा पहुच जाना है। तो दोनो मे मेल होगा ही।

यहां थोडा सा समझ लेना उपयोगी है। सामायिक के लिए मैंने जो कहा, वीतरागता के लिए जो कहा, वह बिल्कुल समान प्रतीत होगा क्योंकि 'सामायिक' मार्ग है, वीतरागता मंजिल है। सामायिक द्वार है, वीतरागता उपलब्धि है। साधन और साध्य अन्ततः अलग-अलग नही हैं। क्योंकि साधन ही विकसित होते-होते साध्य हो जाता है। तो वीतरागता मे परम उपलब्धि होगी उसकी जिसे सामायिक मे धीरे-धीरे उपलब्ध किया जाता है। सामायिक मे पूरी तरह स्थिर हो जाना वीतरागता मे प्रवेश करना है। कृष्ण ने जिसे 'स्थिर' या 'स्थितप्रज्ञ' कहा है, वह वही है जो वीतराग है। निश्चित ही वह वही है। दोनो शब्द बहुमूल्य है। वीतराग वह है जो सब द्वन्द्वो के पार चला गया है, सब दो के पार चला गया है, जो एक मे ही पहुच गया है। अब ध्यान रहे कि स्थिर या स्थितप्रज्ञ का अर्थ है जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, जिसकी प्रज्ञा कापती नही। प्रज्ञा उसकी कापती है जो द्वन्द्व मे जीता है, दो के बीच मे जीता है। वह कापता रहता है, कभी इधर कभी उधर। जहा द्वन्द्व है, वहा कम्पन है। जैसे कि एक दिया जल रहा है। तो दिए की लौ कापती है क्योंकि हवा कभी पूरब झुका देती है, कभी पश्चिम झुका देती है। दिया कापता रहता है। दिए का कपन तभी मिटेगा जब हवा के झोके न हो, यानी जब इस तरफ, उस तरफ जाने का उपाय न रह जाए, दिया वही रह जाए जहा है। तो कृष्ण उदाहरण देते है कि जैसे किसी बन्द भवन मे जहा हवा का कोई झोका न जाता हो दिया स्थिर हो जाता है ऐसे ही जब प्रज्ञा, विवेक, बुद्धि स्थिर हो जाती है और कापती नही, डोलती नही तब वैसा व्यक्ति 'स्थितधी' है, 'स्थितप्रज्ञ' है। वीतराग का भी यही मतलब है कि जहा राग और विराग खो गया, जहा द्वन्द्व खो गया वहा कापने का उपाय खो गया और जब चित्त कापता नही है तो वह स्थिर हो जाता है, ठहर जाता है। महावीर ने द्वन्द्व के निषेध पर जोर दिया है इसलिए वीतराग शब्द का उपयोग किया है। द्वन्द्व के निषेध पर जोर है, द्वन्द्व न रह जाए। कृष्ण ने द्वन्द्व की बात ही नही की, स्थिरता पर जोर दिया है। एक ही चीज को दो तरफ से पकडने की कोशिश की है दोनो ने। कृष्ण पकड रहे हैं दिए की स्थिरता से, महावीर पकड रहे हैं द्वन्द्व के निषेध से। लेकिन द्वन्द्व का निषेध हो तो प्रज्ञा स्थिर हो जाती है, प्रज्ञा स्थिर हो जाए तो द्वन्द्व का निषेध हो जाता है। ये दोनो एक ही अर्थ रखते है। इनमे जरा भी फर्क नहीं है। और आपने पूछा है कि एक क्षण मे, एक क्षण के हजारवे हिस्से

में जिसे समय कहते हैं अगर ज्ञान उपलब्ध हो गया, दर्शन हुआ तो क्या जीवन व्यवहार मे वह स्थिर रहेगा ? असल मे जीवन व्यवहार आता कहां से है ? जीवन व्यवहार आता है हमसे ! तो जो हम हैं, गहरे मे, जीवन व्यवहार वही से आता है। अगर झरना जहर से भरा है, अगर मूल स्रोत जहर से भरा है तो जो लहरे छलकती हैं, जो बिन्दु फिरते हैं, और बूदे उचटती हैं उनमे जहर होगा। अगर मूल स्रोत अमृत से भर गया तो फिर उन्ही बूदो मे, उन्ही लहरो मे अमृत हो जाता है। जीवन व्यवहार हमसे निकलता है। हम जैसे है वैसा ही हो जाता है। हम मूच्छित है तो जीवन व्यवहार मूच्छित होता है। जो हम करते हैं, उसमे मूर्च्छा होती है। हम अज्ञान मे हैं तो जीवन-व्यवहार अज्ञान से भरा होता है। और अगर हम ज्ञान मे पहुच गए तो जीवन व्यवहार ज्ञान से भर जाता है।

जैसे यह कमरा अंधेरे से भरा हो तो हम घिर उठते हैं और निकलने की कोशिश करते हैं। कभी द्वार से टकरा जाते है, कभी दीवार से टकरा जाते है, कभी फर्नीचर से टकरा जाते है। बिना टकराए निकलना मुश्किल होता है। और कई बार ऐसा हुआ है कि टकराते ही रहते है और नही निकल पाते। निकल भी जाते है तो टकराए बिना नही निकल पाते हैं। फिर कोई व्यक्ति हमसे कहे कि एक दिया जला लो तो हम उससे कहेगे कि दिया जला लेंगे। लेकिन क्या दिए के जल जाने पर हम बिना टकराए निकल सकेंगे ? क्या फिर टकराना नही पडेगा ? क्या फिर सदा ही हमारा टकराने का जो व्यवहार था बन्द हो जाएगा ? तो वह कहेगा कि तुम दिया जलाओ और देखो। क्योकि दिया जलाने पर तुम टकराओगे कैसे ? टकराते थे अंधेरे के कारण। टकराना भी चाहो तो न टकराओगे क्योकि चाह कर कभी कोई टकराया है और द्वार जब दिखलाई पडेगा तो तुम दीवार से क्यो निकलोगे ? दीवार से भी निकलने की कोशिश चलती थी क्योंकि द्वार दिखाई नही पड़ता था। ज्योति जल जाये भीतर तो वह ऐसी नही है कि क्षण भर जले और फिर बुझ जाए, दिया हम जलाए, वह फिर बुझ सकता है, हम फिर टकरा सकते हैं। दिए का तेल चुक सकता है, दिए की बाती बुझ सकती है, हवा का झोंका आ सकता है, हजारो घटनाए घट सकती है। जला हुआ दिया भी जरूरी नहीं कि जलता ही रहे। बुझ भी सकता है। लेकिन जिस अन्तर्ज्योति की हम बात कर रहे हैं, वह ऐसी ज्योति नही है जो कभी बुझती है। अभी भी वह जल रही है। अभी भी जब हम उसके प्रति जागे नहीं वह जल रही है।

सिर्फ हम पीठ किए हैं। वह कभी बुझी नहीं क्योंकि वह हमारी चेतना का अन्तिम हिस्सा है, वह हमारा स्वभाव है। पीठ फेरेंगे; लौट कर देखेंगे तो उसे जली हुई पाएगे। जलेगी नही वह, जली हुई थी ही, सिर्फ हमारी पीठ बदलेगी। हम पाएगे कि वह जली है और ऐसी ज्योति जो कभी बुझी नही, जो कभी बुझती नही, न तेल है, न बाती है, जहा जो हमारे अन्तर्जीवन की अनिवार्य क्षमता है, उसको हमने एक बार देख लिया तो बात खत्म हो गई। एक बार हमे पता चल गया कि ज्योति पीछे है फिर हम चाहें भी कि हम पीठ करके चलें ज्योति की तरफ तो हम न चल पाएगे क्योंकि ज्योति की तरफ पीठ करके कौन चल पाया है ? कौन चलेगा ? एक बार जान लें। न जाने तो बात अलग है। इसलिए एक क्षण को भी उसकी उपलब्धि हो जाती है तो वह उपलब्धि सदा के लिए स्थायी हो गई और उसके अनुपात मे हमारा जीवन-व्यवहार बदलना शुरू हो जाएगा। एकदम ही बदल जाएगा क्योंकि कल जो हम करते थे, वे आज हम कैसे कर सकेंगे ? वह करते थे अघेरे के कारण। अब है प्रकाश इसलिए वह करना असम्भव है।

प्रश्न : एक प्रश्न जो मन मे उठता है वह है पुनर्जन्म वाली बात। क्या अन्य प्राणी मनुष्य योनि के अन्दर आ सकते हैं ? और आ सकते हैं तो स्वतः आते हैं या वह उनकी उपलब्धि है ?

उत्तर : कर्म के सम्बन्ध मे बहुत कुछ समझना जरूरी है क्योंकि जितनी इस बात के सम्बन्ध मे नासमझी है, उतनी शायद किसी बात के सम्बन्ध मे नही। इतनी आमूल भ्रान्तिया परम्पराओं ने पकड ली है कि देख कर आश्चर्य होता है कि किसी सत्य-चिन्तन के आस-पास असत्य की कितनी दीवारे खड़ी हो सकती हैं। साधारणत. कर्मवाद ऐसा कहता हुआ प्रतीत होता है कि जो हमने किया है, वह हमे भोगना पड़ेगा। हमारे कर्म और हमारे भोग मे एक अनिवार्य कार्य-कारण सम्बन्ध है। यह बिल्कुल सत्य है कि जो हम करेंगे, हम उससे अन्यथा नही भोगते हैं। भोग भी नही सकते। कर्म भोग की तैयारी है। असल में, कर्म भोग का प्रारम्भिक बीज है। फिर वही बीज भोग मे वृक्ष बन जाता है। जो हम करते है, वही हम भोगते हैं। यह बात तो ठीक है लेकिन कर्मवाद का जो सिद्धान्त प्रचलित मालूम पड़ता है, उसमे ठीक बात को भी इस ढंग से रखा गया है कि वह बिल्कुल गैर ठीक हो गई है। उस सिद्धान्त में ऐसी बात न मालूम किन कारणो से प्रविष्ट हो गई है और वह यह है कि

कर्म तो हम अभी करेंगे और भोगेंगे अगले जन्म मे। अब कार्य-कारण के बीच कभी अन्तराल नही होता। अन्तराल हो ही नही सकता। अगर अन्तराल बीच में आ जाएगा तो कार्य-कारण विच्छिन्न हो जाएंगे। उनका सम्बन्ध टूट जाएगा। मै अभी आग मे हाथ डालूगा तो अगले जन्म मे जलूगा। अगर मुझसे कोई कहे तो यह समझ के बाहर बात हो जाएगी क्योंकि हाथ मैंने अभी डाला और जलूगा अगले जन्म मे। कारण तो अभी है और कार्य होगा अगले जन्म मे। यह अन्तराल किसी भाति समझाया नही जा सकता। और कार्य-कारण मे अन्तराल होता ही नही। कार्य और कारण एक ही प्रक्रिया के दो रूप है, जुडे हुए और सयुक्त। इस छोर पर जो कारण है उसी छोर पर वह कार्य है। और यह पूरी सख्या जुडी हुई है। इसमे कही क्षण भर के लिए भी अगर अन्तराल हो गया तो शृ खला टूट जाएगी। लेकिन इस तरह के सिद्धान्त की, इस तरह की भ्रान्ति की कुछ वजह थी और वह यह कि जीवन मे हम देखते है कि एक आदमी भला है और दुख उठाता हुआ मालूम पडता है। एक आदमी बुरा है और सुख उठाता हुआ मालूम पड़ता है। इस घटना ने कर्मवाद के पूरे सिद्धान्त की गल्त व्याख्या को जन्म दिया है। इस घटना को कैसे समझाया जाए ? अगर प्रतिपल हमारे कार्य और कारण जुड़े हुए है तो फिर इसे कैसे बताया जाए ? एक आदमी भला है, सच्चरित्र है, ईमानदार है और दुख भोग रहा है, कष्ट पा रहा है, और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, बदमाश है और सुख पा रहा है, पद पा रहा है, यश पा रहा है, धन पा रहा है। इस घटना को कैसे समझाया जाए ? अगर अच्छे कार्य तत्काल फल लाते है तो अच्छे आदमी को सुख भोगना चाहिए। और अगर बुरे कार्य तत्काल बुरा लाते हैं, तो बुरे आदमी को दुख भोगना चाहिए। लेकिन यह तो दिखता नही। भला आदमी परेशान दिखता है, बुरा आदमी परेशान नही दिखता। तो इसको कैसे समझाए ? इसको समझाने के पागलपन मे गडबड़ हो गई। तब रास्ता एक ही मिला कि जो अच्छा आदमी दुख भोग रहा है, वह अपने पिछले बुरे कार्यों के कारण और जो बुरा आदमी सुख भोग रहा है वह अपने पिछले अच्छे कर्मों के कारण। हमे एक-एक जीवन का अन्तराल खडा करना पडा इस स्थिति को सुलझाने के लिए। लेकिन इस स्थिति को सुलझाने के दूसरे उपाय हो सकते थे और असल में दूसरे उपाय ही सच हैं। यह स्थिति इस तरह सुलझाई नही गई बल्कि कर्मवाद का पूरा सिद्धान्त विकृत हो गया है और कर्मवाद की उपादेयता भी नष्ट हो गई है।

कर्मवाद की उपादेयता थी कि हम प्रत्येक व्यक्ति को कह सकें कि तुम जो कर रहे हो, वही तुम भोग रहे हो। इसलिए तुम ऐसा करो कि तुम सुख भोग सको, आनन्द भोग सको। उपादेयता यह थी। उसका जो गहरे से गहरा परिणाम होना चाहिए था व्यक्ति के चित्त पर वह यह था कि तुम जो कर रहे हो वही तुम भोग रहे हो। अगर तुम क्रोध करोगे तो दुख भोगोगे, भोग ही रहे हो। इसके पीछे ही वह आ रहा है छाया की तरह। अगर तुम प्रेम कर रहे हो, शान्ति से जी रहे हो, दूसरे को शान्ति दे रहे हो तो तुम शान्ति अर्जित कर रहे हो जो आ रही है पीछे उसके, जो तुम्हे मिल जाएगी, मिल ही गई है। यह तो अर्थ था उसका। लेकिन इस सिद्धान्त का इस तरह से उपयोग करना जीवन की इस घटना को समझने के लिए उस अर्थ को नष्ट कर देगा। क्योंकि कोई भी व्यक्ति इतना दूरगामी चित्त का नही होता कि वह अभी कर्म करे और अगले जन्म मे मिलने वाले फल से चिन्तित हो। होता ही नही इतना दूरगामी चित्त। अगला जन्म अधेरे मे खो जाता है। क्या पक्का भरोसा है अगले जन्म मे। पहले तो यही पक्का नही कि अगला जन्म होगा। दूसरा यह पक्का नही कि जो कर्म अभी फल नही दे पा रहा, वह अगले जन्म मे देगा। अगर एक जन्म तक रोका जा सकता है फल को तो अनेक जन्मो तक क्यो नही रोका जा सकता ? फिर दूसरी बात यह है कि मनुष्य का चित्त तत्कालजीवी है। चित्त की यह क्षमता ही नही है कि वह इतनी देर तक की व्यवस्था को पकड सके। वह जीता तत्काल है। वह कहता है, ठीक है, अगले जन्म मे जो होगा, होगा। अभी जो हो रहा है, वह हो रहा है। अभी मैं सुख से जी रहा हू। अभी मैं क्यो चिन्ता करू अगले जन्म की। जो उपादेयता थी वह भी नष्ट हो गई, जो सत्य था वह भी नष्ट हो गया। सत्य है कार्य-कारण सिद्धान्त जिस पर सारा विज्ञान खडा हुआ है। और अगर कार्य-कारण सिद्धान्त को हटा दो तो सारा विज्ञान का भवन गिर जाएगा।

ह्यूम ने इग्लैण्ड मे इस बात की कोशिश की कि कार्य-कारण का सिद्धान्त गल्त सिद्ध हो जाए। वह बहुत कुशल और अद्भुत विचारक था। उसने कहा कि तुमने कार्य-कारण देखा कब है। तुमने देखा है कि एक आदमी ने आग मे हाथ डाला और उसका हाथ जल गया। लेकिन तुम यह कैसे कहते हो कि आग मे डालने से हाथ जल गया। दो घटनाए तुमने देखी। आग मे हाथ डाला यह देखा। हाथ जला हुआ निकला यह देखा। लेकिन आग मे डालने से जला, इस बीच के सूत्र तुम कैसे पहचान गए ? तुम्हें यह कहा से पता चला ?

हो सकता है कि ये दोनो घटनाए कार्य-कारण न हो, सिर्फ सहगामी घटनाए हो। जैसे ह्यूम ने कहा कि दो घडिया हमने बना ली। दो घडिया लटका ली दीवार पर जिनमे भीतर कोई सम्बन्ध नही। लेकिन, ऐसी व्यवस्था की कि एक घडी मे जब बारह बजेंगे तो दूसरी घडी बारह के घंटे बजाएगी। यह व्यवस्था हो सकती है। इसमे क्या तकलीफ है? एक घडी में जब बारह पर काटा जाएगा तो दूसरी घडी बारह के घंटे बजा देगी। कार्य-कारण सिद्धान्त मानने वाला कहेगा कि जब इसमे बारह बजते हैं तब इसमे बारह के घंटे बजते है। इनके बीच कार्य-कारण का सम्बन्ध है जबकि वे सिर्फ समानान्तर चल रही हैं। कोई सम्बन्ध वगैरह है ही नही। तो ह्यूम ने कहा कि हो सकता है कि प्रकृति मे कुछ घटनाए समानान्तर चल रही हो। यानी इधर तुम आग मे हाथ डालते हो उधर हाथ जल जाता है और दोनो के बीच कोई सम्बन्ध नही रहता। क्योकि सम्बन्ध कभी देखा नही गया। घटनाए देखी गई। तुम दोनो का सम्बन्ध कैसे जोडते हो? तो ह्यूम ने बड़ी चेष्टा की कार्य-कारण सिद्धान्त को गलत सिद्ध करने की। अगर ह्यूम जीत जाता तो पश्चिम मे साइस खडी न हो सकती। क्योकि साइस खडी हो रही है इस आधार पर कि चीजो के सम्बन्ध जोडे जा सकते हैं। एक आदमी क्षयग्रस्त है, तो हम कारण-कार्य के हिसाब से इलाज कर पाते है कि उसको जो कीटाणु हैं, वे दवा देने से मर जाएगे। यह दवा उनकी मृत्यु का कारण बनेगी और मृत्यु कार्य हो जाएगी। तो हम इलाज कर लेते है। फला बम पटकने से आग पैदा होगी, लोग मर जाएगे तो बम बन जाता है।

धर्म भी विज्ञान है और वह भी कार्य-कारण सिद्धान्त पर खडा है। अगर चार्वाक जीत जाए तो धर्म गिर जाए पूरा का पूरा। जो ह्यूम विज्ञान के खिलाफ कह रहा है, वही चार्वाको ने धर्म के खिलाफ कहा है. "खाओ, पिओ, मौज करो क्योकि कोई भरोसा नही है कि जो बुरा करता है, उसको बुरा ही मिलता है, देखो एक आदमी बुरा कर रहा है और भला भोग रहा है। कहा कोई कारण का सम्बन्ध है इसमे? एक आदमी भला कर रहा है और पीड़ा झेल रहा है। कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नही है।" इसलिए चार्वाको ने कहा: "ऋण कृत्वा, घृत पिबेत्।" अगर ऋण लेकर भी घी पीने को मिले तो पिओ क्योकि ऋण चुकाने की जरूरत क्या है? सवाल असली में घी मिलने का है। वह कैसे मिलता है, यह सवाल ही नही है। और तुमने ऋण मे लिया और नही चुकाया, तो इसका बुरा फल मिलेगा,

यह सब पागलपन की बातें हैं। कहां फल मिल रहे हैं ? ऋण लेने वाले मजा कर रहे हैं; न लेने वाले दुख उठा रहे हैं। कोई कार्य-कारण का सिद्धान्त नहीं है। ह्यूम ने इंग्लैंड मे विज्ञान के खिलाफ जो बात कही, अगर ह्यूम जीत जाता तो विज्ञान का जन्म नही होता। अगर चार्वाक जीत जाता तो धर्म का जन्म नही होता क्योकि चार्वाक ने भी यही कहा कि इनमे कोई क्रम नहीं है। असम्बद्ध क्रम है घटनाओ का। चोर मजा कर सकता है, अचोर दुख उठा सकता है। क्रोधी आनन्द कर सकता है, अक्रोधी पीड़ा उठा सकता है। जीवन के सभी कर्म असम्बद्ध हैं। इनमें कोई सम्बन्ध ही नही है। और यदि कही कोई सम्बन्ध दिखाई पड़ता है तो वह समानान्तरता की भूल है। वह सिर्फ इसलिए दिखाई पड जाता है कि चीजें समानान्तर कभी-कभी घट जाती हैं। बस और कोई मतलब नही है। लेकिन बुद्धिमान आदमी इस चक्कर में नही पडता है, चार्वाक ने कहा। बुद्धिमान आदमी जानता है कि किसी कर्म का किसी फल से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए जो सुखद है, वह करता है चाहे लोग उसे बुरा कहे चाहे भला कहे क्योकि दुबारा लौटना नही है, दुबारा कोई जन्म नही है। चार्वाक के विरोध मे ही महावीर का कर्म सिद्धान्त है। इस विरोध मे ही कि न तो वस्तु-जगत मे और न चेतना-जगत मे कार्य-कारण के बिना कुछ हो रहा है। विज्ञान मे तो स्थापित हो गई बात। ह्यूम हार गया और विज्ञान का भवन खड़ा हो गया। लेकिन धर्म के जगत में अब भी स्थापित नहीं हो सकी यह बात। और न होने का बड़े से बड़ा जो कारण बना वह यह कि विज्ञान कहता है. अभी कारण, अभी कार्य; तथाकथित धार्मिक कहते हैं : अभी कारण, कार्य अगले जन्म में। इससे सब गड़बड़ हो गया। यानी धर्म का भवन खड़ा नही हो सका। इस अन्तराल में सब बेईमानी हो गई। क्योकि यह अतराल एकदम झूठ है। कार्य और कारण में अगर कोई सम्बन्ध है तो उसके बीच मे अन्तराल नही हो सकता क्योंकि अन्तराल हो गया तो सम्बन्ध क्या रहा ? चीजें असम्बद्ध हो गईं, अलग-अलग हो गईं। फिर, कोई सम्बन्ध न रहा। और यह व्याख्या नैतिक लोगों ने खोज ली क्योकि वे समझा नहीं सके जीवन को। तो जीवन की पहली बात मैं आपको समझा दूं जिसकी वजह से यह अन्तराल टूटे। मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक कर्म तत्काल फलदायी है। जैसे मैंने क्रोध किया तो मैं क्रोध करने के क्षण से ही क्रोध को भोगना शुरू करता हूं। ऐसा नहीं कि अगले जन्म में क्रोध का फल भोगूं। क्रोध करता हूं और क्रोध का दुख भोगता हूं। क्रोध

का करना और दुख का भोगना साथ-साथ चल रहा है। क्रोध बिदा हो जाता है लेकिन दुख का सिलसिला देर तक चलता है। तो पहला हिस्सा कारण हो गया, दूसरा हिस्सा कार्य हो गया। यह असम्भव है कि कोई आदमी क्रोध करे और दुख न झेले। यह भी असम्भव है कि कोई आदमी प्रेम करे और आनन्द का अनुभव न करे। क्योंकि प्रेम की क्रिया मे ही आनन्द का झरना शुरू हो जाता है। एक आदमी रास्ते पर गिरे हुए किसी आदमी को उठाए, उठाए अभी और अगले जन्म तक आनन्द की प्रतीक्षा करे, ऐसा नहीं। उठाने के क्षण मे ही भरपूर आनन्द उसके हृदय को भर जाता है। ऐसा नही है कि उठाने का कृत्य कही अलग है और फिर आनन्द कही दूसरी जगह प्रतीक्षा करेगा। तो कही कोई हिसाब-किताब रखने की जरूरत नही। इसलिए महावीर, भगवान को बिदा कर सके। अगर हिसाब-किताब रखना है जन्म-जन्मान्तर का तो फिर नियन्ता की व्यवस्था जरूरी है।

नियन्ता की जरूरत वहा होती है जहा नियम का लेखा-जोखा रखना पडता है। क्रोध मैं अभी करू और फल मुझे किसी दूसरे जन्म मे मिले तो इसका हिसाब कहा रहेगा ? यह कहा लिखा रहेगा कि मैंने क्रोध किया था और मुझे यह-यह फल मिलना चाहिए और कितना क्रोध किया था, कितना फल मिलना चाहिए ? अगर सारे व्यक्तियो के कर्मों की कोई इस तरह की व्यवस्था हो कि अभी हम कर्म करेगे फिर कभी अनन्तकाल मे भोगेंगे तो बडे हिसाब-किताब की जरूरत पडेगी, बडे खाते-बहियो की। नही तो कैसे होगा यह ? फिर इस सब इन्तजाम के लिए एक महालिपिक की भी जरूरत पडेगी जो हिसाब किताब रखता हो। और परमात्मा को बहुत से लोगो ने महालिपिक की तरह ही सोचा हुआ है। तो इनके विचार मे वह नियन्ता है, सारे नियम की देखरेख रखता है कि नियम पूरे हो रहे हैं या नही।

महावीर ने बडी वैज्ञानिक बात कही है। उन्होने कहा : नियम पर्याप्त हैं, नियन्ता की जरूरत नही है क्योकि नियम स्वय वह काम करता है। जैसे आग मे हाथ डालते हैं, हाथ जल जाता है। यह आग का स्वभाव है कि वह जलाती है। यह हाथ का स्वभाव है कि वह जलता है। अब डालने की बात है। डालने से सयोग हो जाता है। डालना कर्म बन जाता है और पीछे जो भोगना है वह फल बन जाता है। इसमे किसी को भी व्यवस्थित होकर खडे होने की जरूरत नही। आग को कहने की जरूरत नही कि तू अब जला, यह आदमी हाथ डालता

है। हाथ डालना और जलना यह बिल्कुल ही स्वयभू नियम के अन्तर्गत हैं। नियम है, नियन्ता नही। क्योकि महावीर कहते हैं कि अगर नियन्ता हो तो नियम मे गड़बड़ होने की सम्भावना रहती है। क्योकि प्रार्थना करें, खुशामद करें, हाथ जोड़ें नियन्ता को। नियन्ता किसी पर खुश हो जाए, किसी पर नाराज हो जाए तो कभी आग मे हाथ जले, कभी न जले। कभी प्रह्लाद जैसे भक्त आग मे न जलें क्योकि भगवान उन पर प्रसन्न है। तो महावीर कहते हैं कि अगर ऐसा कोई नियन्ता है तो नियम सदा गडबड होगा क्योकि वह जो नियन्ता है वह एक व्यर्थ की परेशानी खडी करता है। अब प्रह्लाद उसका भक्त है तो वह उसको जलाता नही। पहाड से गिराओ तो उसके पैर नही टूटते। और दूसरे किसी को गिराओ तो उसके पैर टूट जाते हैं। तो फिर पक्षपात शुरू होगा। प्रह्लाद की कथा पक्षपात की कथा है। उसमें अपने आदमी की फिक्र की जा रही है। उसमे अपने व्यक्ति के लिए विशेष सुविधाए और अपवाद दिए जा रहे हैं। महावीर कहते हैं कि अगर ऐसे अपवाद हैं तो फिर धर्म नही हो सकता। धर्म का बहुत गहरे से गहरा मतलब होता है नियम। और कोई मतलब नही होता। और नियम के ऊपर अगर कोई नियन्ता भी है तो फिर सब गडबड हो जाएगी। कभी ऐसा हो सकता है कि क्षय के कीटाणु किसी दवा से मरें। और कभी ऐसा हो सकता है कि क्षय के कीटाणु भी प्रह्लाद की तरह भगवान के भक्त हो और दवा कोई काम न करे। इसमे क्या कठिनाई है। फिर नियम नही हो सकता। अगर नियम है तो नियन्ता मे बाधा पडेगी। इसलिए महावीर नियम के पक्ष मे नियन्ता को बिदा करते हैं। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है नियम के पक्ष मे नियन्ता को बिदा करने की। वे कहते हैं नियम काफी है और नियम अखण्ड है। नियम से, प्रार्थना, पूजा, पाठ से बचने का कोई उपाय नही है। नियम से बचने का एक ही उपाय है कि नियम को समझ लो कि आग मे हाथ डालने से हाथ जलना है, इसलिए हाथ मत डालो। इसको समझ लेना जरूरी है। अगर नियन्ता है तो फिर यह भी हो सकता है कि नियन्ता को राजी कर लो फिर हाथ डालो। क्योकि नियन्ता उपाय कर देगा कि तुम न जला! "अच्छा ठहरो", आग को कह देगा . "रुको अभी! इस आदमी को जलाना मत।" महावीर कहते है कि चार्वाक को अगर मान लिया जाए तो भी जीवन अव्यवस्थित हो जाता है क्योंकि वह कहता है कि दो वर्गों के बीच कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही है। महावीर कहते है कि अगर नियन्ता के मानने वालों को मान लिया जाए तो

वे भी यह कहते हैं कि अनिवार्य सम्बन्ध के बीच मे एक व्यक्ति है जो अनिवार्य सम्बन्धो को शिथिल भी कर सकता है। इसलिए वह कहते हैं कि चार्वाक भी अव्यवस्था मे ले जाता है, नियन्ता को मानने वाला भी अव्यवस्था मे ले जाता है। यह दोनो एक ही तरह के लोग है। चार्वाक नियम को तोड़कर अव्यवस्था पैदा कर देता है और नियन्ता को मानने वाला भी नियम के ऊपर किसी नियन्ता को स्थापित करके। महावीर पूछते हैं कि वह भगवान् नियम के अन्तर्गत चलता है या नही। अगर नियम के अन्तर्गत चलता है तो उसकी जरूरत क्या है? यानी अगर भगवान् आग मे हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा कि नही? अगर जलता है तो वह भी वैसा ही है जैसे हम हैं और अगर नही जलता है तो ऐसा भगवान् खतरनाक है। क्योंकि हम भगवान् से दोस्ती बनाएगे तो हम आग मे हाथ भी डालेगे और शीतल होने का उपाय भी कर लेंगे। इसलिए महावीर कहते हैं कि हम नियम को इन्कार नही करते क्योंकि नियम का इन्कार करना अवैज्ञानिक है। नियम तो है मगर हम नियन्ता को स्वीकार नही करते क्योंकि नियन्ता की स्वीकृति नियम मे बाधा डाल देती है। तो जो विज्ञान ने अभी पश्चिम मे तीन सौ वर्षों मे उपलब्ध किया है वह यह है कि विज्ञान सीधे नियम पर निर्धारित है, सीधे नियम की खोज पर। विज्ञान कहता है कि किसी भगवान् से हमे कुछ लेना-देना नही। हम तो प्रकृति का नियम खोजते है। ठीक यही बात अढाई हजार साल पहले महावीर ने चेतना के जगत मे कही है कि नियन्ता को हम विदा करते हैं, चार्वाक को हम मान नही सकते। वह सिर्फ अव्यवस्था है, अराजकता है। दोनो के बीच मे एक उपाय है वह यह कि हम मान लें कि नियम शाश्वत है, अखण्ड है और अपरिवर्तनीय है। उस अपरिवर्तनीय नियम पर ही धर्म का विज्ञान खड़ा हो सकता है। लेकिन उस अपरिवर्तनीय नियम मे पीछे के व्याख्याकारों ने जो जन्मो का फासला किया, उसने फिर गडबड़ पैदा कर दी। यह तीसरी गडबड थी। पहली गडबड थी चार्वाक की, दूसरी गड़बड़ थी भगवान के भक्त की, तीसरी गडबड थी दो जन्मो के बीच में अन्तराल पैदा करने वाले लोगो की। महावीर को फिर झुठला दिया गया। यह असम्भव ही है कि एक कर्म अभी हो और फल फिर कभी हो। फल इसी कर्म की शृखला का हिस्सा होगा जो इसी कर्म के साथ मिलना शुरू हो जाएगा। हम जो भी करते हैं उसे भोग लेते हैं। और अगर यह हमें पूरी सघनता मे स्मरण हो जाए कि हमारे जीवन मे और हमारे कर्म में अनिवार्य अन्तर नहीं

पड़ने वाला है, मैं जो भी कर रहा हूं वही भोग रहा हू, या मैं जो भोग रहा हूं, वही मैं जरूर कर रहा हू तो बात स्पष्ट हो जाती है। एक आदमी दुखी है, एक आदमी अशान्त है और वह आपके पास आता है और पूछता है : शान्ति का रास्ता चाहिए। अशान्त है तो वह सोचता है कि किसी पिछले जन्म का कर्मफल भोग रहा हूं। तो उसके पास अनकिया करने का कोई उपाय नही है। मगर सही बात यह है कि जो मैं अभी कर रहा हूं उसे अनकिया करने की अभी मेरी सामर्थ्य है। अगर मैं आग में हाथ डाल रहा हू और मेरा हाथ जल रहा है, और अगर मेरी मान्यता यह है कि पिछले जन्म के किसी पाप का फल भोग रहा हू तो मैं हाथ डाले चला जाऊंगा क्योकि पिछले जन्म के कर्म को मैं बदल कैसे सकता हू ? इधर आग मे हाथ डालूंगा और जलूगा और गुरुओ से पूछूंगा : शान्ति का उपाय बताइए, क्योकि हाथ बहुत जल रहा है। और वे गुरु जो यह मानते हैं कि पिछले जन्म के फल के कारण जल रहा है वे यह नही कहेगे कि हाथ बाहर खीचो क्योकि हाथ जल रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि हाथ अभी डाला जा रहा है और अभी डाला गया हाथ बाहर भी खीचा जा सकता है लेकिन पिछले जन्म मे डाला गया हाथ आज कैसे बाहर खींचा जा सकता है ? तो हमारी व्याख्या ने कि अनन्त जन्मो मे फल का भोग चलता है मनुष्य को एकदम परतन्त्र कर दिया है। परतन्त्रता पूरी हो गई क्योकि पीछा उसका बंधा हुआ हो गया। अब उसमे कुछ किया नही जा सकता। किन्तु मेरा मानना है कि सब कुछ किया जा सकता है इसी वक्त, क्योंकि जो हम कर रहे हैं, वही हम भोग रहे हैं।

एक मित्र मेरे पास आए कोई दो या तीन वर्ष हुए। उसने कहा कि मैं बहुत अशान्त हू। मैं अरविन्द आश्रम गया, वहां भी शान्ति नही मिली। मैं रमण आश्रम गया, वहां भी शान्ति नहीं मिली। मैं शिवानन्द के यहां गया, वहाँ भी शान्ति नही मिली। सब धोखा-धडी है, सब बातचीत है, कही शांति नही मिलती। पाण्डीचेरी मे किसी ने आपका नाम लिया तो वहां से सीधा यही चला आ रहा हू। तो मैंने कहा : अब तुम सीधे एकदम मकान से बाहर हो जाओ इसके पहले कि तुम जाकर कहीं कहो कि वहा भी शांति नही मिली। फिर मैंने उससे पूछा कि तुम अपनी अशांति खोजने किससे पूछ कर गए थे ? तुमने किस से सलाह ली थी। कौन है गुरु तुम्हारा ? उसने कहा : कोई गुरु नही। अशांति खोजने के लिए मैंने किसी से नहीं पूछा। मैंने कहा, इस अशांति के लिए तुम खुद ही गुरु हो, पर्याप्त हो और शांति का हमने ठेका लिया हुआ

है तुम्हारे लिए ? शांति तुम हमसे पूछोगे ? न मिले तो हम धोखा सिद्ध हुए । मजा यह है कि अशांति तुम पैदा करो, शांति मैं तुम्हे दू और न दे पाऊ तो धोखा मैं हू । मैंने उससे कहा कि कृपा करके इतना ही खोजो कि तुम्हे अशांति कैसे मिल रही है, बस । जिस ढग से तुम अशांति पा रहे हो, उस ढग को बदलो । वह ढग अशांति देने वाला है वह कारण है तुम्हारी अशांति का । उसको तो तुम देखना नही चाहते । वह आदमी कहता है कि वह अशान्ति का ढग तो जन्म-जन्मान्तरो का है । मैंने कहा कि तब जन्म-जन्मान्तर मे कोशिश करनी पडेगी शांति के लिए । फिर यह इतना जल्दी होने वाला भी नही । पर मैं तुमसे कहता हू कि हो सकता है क्योकि यह जन्म-जन्मान्तर की बात नही, तुम अभी कर रहे हो अशांति के लिए सब उपाय ।

मैंने कहा कि तुम दो-तीन दिन रुक जाओ कृपा करके । तुम अपनी अशांति की चर्चा करो मुझसे । क्या अशांति है ? कैसे पैदा हो रही है ? क्या हो रहा है ? तीन दिन वह आदमी रुका था । चूकि मै शांति की कोई तरकीब बता ही नही रहा था, उसको अपनी अशांति की ही बात करनी पडी । धीरे-धीरे उसकी बात खुली । वह लखपति आदमी है, बडा ठेकेदार है । एक ही लडका है उसका और उस लडके ने, जिस लडकी से बाप नही चाहता था कि उसकी शादी हो, शादी कर ली । तो दरवाजे पर बन्दूक लेकर खडा हो गया जब वे दोनो आए । और कहा कि सिर्फ लाश अन्दर जा सकती है तुम्हारी, वापिस लौट जाओ । अब मुझसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है । मैंने उससे पूछा . उस लडकी मे कोई खराबी है । उसने कहा कि नहीं, लडकी मे कोई खराबी नही है । लडकी तो एकदम ठीक है । मैंने कहा कि उस लड़की और लडके के सम्बन्ध मे कोई पाप है, उसने कहा वह भी नही है । मैंने कहा मामला क्या है ? आपकी नाराजगी क्या है ? सिर्फ इतनी ही कि आपके अहकार को तृप्ति न मिली, लडके ने आपकी आज्ञा नही मानी । और अहकार अशांति लाता है । अब उस लडके को बाहर निकाल दिया है । बडे आदमी का लड़का था । पढा-लिखा भी नही था ठीक से । वह दिल्ली मे नब्बे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है । अब बाप तड़प रहा है । यह कभी अरविन्द आश्रम जा रहा है, कभी इधर जा रहा है, कभी उधर जा रहा है । मैंने कहा कि तुम्हे कही जाने की जरूरत नही । लडके से जाकर क्षमा मागो । तुम्हारा अहकार तुम्हे दुख दे रहा है । और अहकार दुख देता है । और तुम्हारा अहंकार से किया गया कृत्य अशांति ला रहा है । मैंने कहा कि तुम अपने दिल की बात

कहो कि तुम्हारा मन लडके को वापस लाने का है या नहीं। उसने कहा : बिल्कुल है। वही मेरा एक लड़का है। अब मैं कितना पछता रहा हू। हम बुड्ढे-बुड्ढी हैं दोनो, मरने के करीब है। यह सब उसका है और जब हमे पता चलता है कि वह नब्बे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है दिल्ली में तो हमारी नीद उचट जाती है। अब यह भी लगता है कि उस लडकी का भी क्या कसूर है? मैंने कहा कि इसमे तो कोई बात नही। तुम जब बन्दूक लेकर खड़े हो सकते थे तो जाकर क्षमा भी माग सकते हो। तुम प्रेम का निमन्त्रण करोगे। तुम्हारा लडका है। तुमने बीच मे बाधा डाली है इसलिए तुम दुख भोग रहे हो। मैंने कहा कि तुम अब सीधे चले जाओ दिल्ली और उस लडके से क्षमा माग लो। बात उसकी समझ मे आ गई। वह आदमी दिल्ली गया। उसने क्षमा मागी। पन्द्रह दिन बाद उसका पत्र आया कि मैं हैरान हू। आपने ठीक कहा था। वह लडका और बहू घर आ गए हैं और मैं इतना आनन्दित हू जितना मै कभी भी नही था। इतना शान्त हू जितना मैं कभी नही था।

अब हमारी कठिनाई यह है कि हम जो कर रहे है, वही अशाति ला रहा है। कुछ बदलाहट लाई जा सकती है इसी वक्त। अगर कभी कुछ किया था वह अशाति ला रहा है तब तो बदलाहट का कोई उपाय नहीं। और यह जो पैदा करना पडा सिद्धान्त जिन्दगी की विषमता को समझाने के लिए उसका कारण दूसरा है। जैसे मेरी अपनी समझ मे एक बुरा आदमी सफल होता है, सुखी होता है तो बुरा आदमी एक बहुत बडी जटिल घटना है। हो सकता है वह झूठ बोलता है, बेईमानी करता है लेकिन उसमे कुछ और गुण हैं जो हमे दिखाई नही पडते। वह साहसी हो सकता है, पहल करने वाला हो सकता है, बुद्धिमान् हो सकता है, एक-एक कदम को समझ कर उठाने वाला हो सकता है। बेईमान हो सकता है, चोर हो सकता है। बुरा आदमी बड़ी घटना है। उसके एक पहलू को ही कि वह बेईमान है, देख कर आपने निर्णय करना चाहा, तो आप गल्ती मे पड़ जाएगे। और एक अच्छा आदमी भी एक बडी घटना है। हो सकता है कि अच्छा आदमी चोरी भी न करता हो बेईमानी भी न करता हो लेकिन वह बहुत भयभीत आदमी हो। शायद इसलिए चोरी और बेईमानी न करता हो कि उसमे बिल्कुल साहस की कमी हो, जोखिम उठा न पाता हो, बुद्धिमान् न हो, बुद्धिहीन हो क्योकि अच्छा होने के लिए कोई बुद्धिमान् होना जरूरी नही। बल्कि अक्सर ऐसा होता है कि बुद्धिमान् आदमी का अच्छा होना मुश्किल हो जाता है। बुद्धि हीन आदमी अच्छा होने

के लिए मजबूर होता है। कोई बचने का उपाय नही होता क्योंकि बुद्धिहीनता बुरे होने में फौरन फंसा देती है। लेकिन हम इन सब बातो को नही तोलेंगे। हम तो कहेंगे : आदमी अच्छा है, मन्दिर जाता है, इसको सफलता मिलनी चाहिए। मेरी मान्यता है कि सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी साहसी है तो सफलता ले आएगा। अच्छा आदमी अगर साहसी है तो बुरे आदमी से हजार गुनी सफलता लाएगा। लेकिन सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी भी साहसी है तो सफलता ले आएगा। सफलता मिलती है बुद्धिमानी से। अगर बुरा आदमी बुद्धिमान है तो सफलता हो जाएगी। अगर अच्छा आदमी बुद्धिमान है तो हजार गुना सफल हो जाएगा। लेकिन सफलता अच्छे भर होने से नही आती। सफलता आती है बुद्धिमानी से, विचार से, विवेक से। मगर हम क्या करते हैं। हम पकड लेते हैं एक-एक गुण। देखो कि यह आदमी कितना अच्छा है, मन्दिर जाता है, प्रार्थना करता है लेकिन इसके पास बिल्कुल पैसा नही है। अब मन्दिर जाने से और प्रार्थना करने से पैसा होने का क्या सम्बन्ध है? पैसा कमाना पडेगा और अगर वह नही कमा रहा तो भटक जाएगा। अगर वह सच मे अच्छा आदमी है मगर पैसा नही कमा पाया तो यह पीड़ा उसके मन मे नही होगी। वह सोचेगा कि मैं नही कमा पाया तो नही कमा पाया। बात खत्म हो गई। और इसके मन मे द्वेष भी नही होगा कि फला आदमी बुरा है और वह कमा रहा है। अगर कोई अच्छा आदमी यह कह रहा है कि मैं सुखी नही हू क्योकि मैं अच्छा हू और वह दूसरा आदमी सुखी है क्योकि वह बुरा है तो वह आदमी बुरे होने का सबूत दे रहा है। वह ईर्ष्या से भरा हुआ आदमी है। वह बुरे आदमी को जो-जो मिला है सब पाना चाहता है और अच्छा रह कर पाना चाहता है। यानी उसकी आकाक्षा ही बड़ी बेहूदी है। एक तो वह बुरा भी नहीं। वह बेचारा बुरा भी हो, बुरे होकर उसने दस लाख रुपये कमा लिए तो दस लाख रुपये कमाने मे बुरे होने का सौदा चुकाया है, बुरे होने की पीड़ा झेली है, बुरे होने का दंश भी झेला है, काटा भी झेला है। यह जो अच्छा आदमी है वह इन कामों को भी नही करना चाहता। न बुरा होना चाहता है, न बुरे होने का दश झेलना चाहता है, न स्वर्ग बिगाड़ना चाहता है। यह आदमी मन्दिर मे पूजा करना चाहता है, घर में बैठना चाहता है, बुरे आदमी को जो दस लाख रुपये मिले हैं, वह भी चाहता है। और जब इसको नही मिलते तो यह कहता है कि मैं अपने पिछले जन्मों के बुरे कर्मों का फल भोग रहा हू और वह आदमी किसी पिछले

जन्म के अच्छे कर्मों का फल भोग रहा है। अभी जो वह कर रहा है, वह उसको अच्छा फल देने वाला नही है, अगले जन्म मे वह कष्ट पाएगा, नरक भोगेगा, ऐसे वह सान्त्वना भी दे रहा है अपने को। इस आदमी को अगले जन्म मे नरक भेज कर सुख भी पा रहा है कि चलो कोई बात नही। आज हम दुख भोग रहे हैं, अगले जन्म मे हम स्वर्ग मे होंगे, तुम नरक मे होगे। मेरा मानना है कि कर्म का फल तत्काल है लेकिन कर्म बहुत जटिल बात है। साहस भी कर्म है। उसका भी फल है। साहसहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिमानी भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। पहल करना, जोखिम उठाना भी कर्म है, उसका भी फल है। जोखिम न उठाना, घर मे बैठे रहना भी एक कर्म है, उसका भी फल है। और इन सारे कर्मों का इकट्ठा फल होता है। इकट्ठे फल को हम किसी एक कारण से जोड़ेंगे तो हम मुश्किल मे पड़ जाएंगे। इकट्ठे फल को किसी एक कारण से नही जोडा जा सकता। बुरे आदमी सफल हो सकते हैं कि सफलता के कोई कारण उनके भीतर होगे। अच्छे आदमी असफल हो सकते हैं क्योंकि असफलता के कोई कारण उनके भीतर होंगे। बुरे आदमी सुखी भी हो सकते हैं क्योंकि सुख के भी कोई कारण उनके भीतर होगे। और अच्छे आदमी दुखी भी हो सकते हैं क्योंकि दुख के भी कोई कारण उनके भीतर होगे। जैसे ईर्ष्या दुख देती है और अच्छा आदमी ईर्ष्यालु है तो वह दुख पाएगा। और हो सकता है कि बुरा आदमी ईर्ष्यालु न हो और सुख पाए। अब इसमे कैसे उससे सुख छीना जा सकता है? अच्छा आदमी, हो सकता है, स्वार्थी हो और दुख पाए और बुरा आदमी स्वार्थी न हो और सुख पाए।

मेरे एक प्रोफेसर थे, उन्हे शराब पीने की आदत थी और यूनिवर्सिटी मे उनसे ज्यादा बुरे आदमी का किसी को ख्याल ही न था। कितनी स्त्रियो से उनका सम्बन्ध रहा, इसका कुछ ठिकाना नही। शराब पीते थे, जुआ खेलते थे। लेकिन मेरा उनसे दोस्ताना था। मुझे कभी-कभी अपने घर ले जाते और घर सुलाते थे। मैंने देखा कि कभी शराब अकेले न पीते। दस-पाच मित्रो को इकट्ठा न कर लें तो शराब न पिए। दस-पांच मित्रों को बुला न लाएं तो शाम का खाना न खाएं, उस दिन उपवास ही हो जाए। मैंने उनसे कहा कि यह क्या है? उन्होंने कहा : अकेले भी क्या खायें? दस मित्र होते हैं तभी खाने

का सुख आता है । यह आदमी शराब पीता है और शराब पीने के जो दुःख हैं, वह भोगेगा, भोगता है । लेकिन यह आदमी बड़े अद्भुत अर्थों में निस्वार्थी है । उनके पास कभी पैसा नहीं बचता । दस-पन्द्रह तारीख तक उनका पैसा खत्म हो जाता है । क्योंकि अकेले खाना नहीं खाना है, अकेले शराब नहीं पीनी है, अकेले कुछ करना ही नहीं है । वह कहते हैं कि मैं सोच ही नहीं सकता कि कोई आदमी अकेला बैठ कर खाना खा सकता है । यह बात ही सोचने की नहीं है क्योंकि अगर हम खाने में ही साझीदार नहीं बना सकते तो जिन्दगी बेकार है । मैं जितने दिन उनके घर रुका उन्होंने शराब न पी । तो मैंने उनसे कहा कि मैं आपके घर न रुकूंगा क्योंकि मेरे कारण आप शराब पीने से रुकते हैं । उन्होंने कहा : नहीं, नहीं ! तुम्हारे होने से मुझे इतना आनन्द मिलता है कि शराब पीने का ख्याल ही नहीं आता । वह तो पीता ही तब हूं जब कोई आनन्द नहीं जिन्दगी में । तुम जब मेरे पास होते हो, मैं इतना आनंदित होता हूं कि शराब पीने का सवाल ही नहीं है । अब यह जो आदमी है, कई अर्थों में सुखी है । लेकिन इसके सुख के अपने कारण थे । यह कई अर्थों में दुखी था लेकिन दुख तो हम किसी का देखने नहीं जाते । यह भी ध्यान रखना एक जरूरी बात है । दुख तो हमें किसी का दिखता नहीं, दुख सिर्फ अपना दिखता है और सुख सदा दूसरे का दिखता है । ऐसे ही, शुभ कर्म हमें अपना दिखता है और अशुभ कर्म दूसरे का दिखता है क्योंकि हमारा अहंकार कभी मान नहीं पाता कि हम अशुभ कर्म कर रहे हैं । हमारे अहंकार को भी सुविधा मिलती है कि अगर अशुभ कर्म किए होंगे तो किसी और जन्म में किए होंगे । अभी तो मैं एकदम शुभ कर्म कर रहा हूं और दुख भोग रहा हूं । अब यह समझ लेने जैसी बात है । मामला है सिर्फ मनोवैज्ञानिक कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म को शुभ मानता है क्योंकि उसके अहंकार को इससे तृप्ति मिलती है । और वह अपने दुखों की गिनती करता है, सुखों की गिनती नहीं करता । क्योंकि जो सुख हमें मिल जाता है, उसकी गिनती ही भूल जाती है । जो सुख नहीं मिल पाता वह हमारी गिनती में होता है । जो मकान हमारे पास है हमें कभी नहीं लगता कि इसमें हमें कोई बड़ा सुख मिल रहा है । सड़क पर एक भिखमंगा निकलता है और कहता है : देखो वह आदमी कितना सुखी है । मगर उस मकान वाले को कभी पता भी नहीं चलता है कि मैं सुखी हूं । वह आदमी भी जब एक बड़े महल के पास से निकलता है तो कहता है कि कितना सुखी है यह आदमी? कैसा मकान है? कैसा महल है? उस महल में रहने वाले को कोई पता

नहीं अपने सुख का। सुख के हम आदी हो जाते हैं। दुख के कभी हम आदी नहीं हो पाते। दुख दिखता ही रहता है, सुख दिखना बंद हो जाता है। दुख दिखता है और शुभ कर्म दिखते हैं कि मैंने यह-यह अच्छा किया। क्योंकि अहंकार अपने गल्त कर्म को छिपा देता है, मिटा देता है। और अपने अच्छे कर्मों की लम्बी कतार बढा कर खडी कर लेता है। और तब एक मुश्किल खडी हो जाती है; दूसरे के अशुभ कर्म दिखाई पडते हैं क्योंकि दूसरे को शुभ मानना भी हमारे अहंकार को दुख देना है कि हमसे भी कोई अच्छा हो सकता है। साधारण आदमी को छोड दें। बडे से बडे साधु से कहे कि आप से भी बडा साधु एक गांव में आ गया है। वह और भी पवित्र आदमी है। आग लग जाएगी क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे ज्यादा पवित्र कोई आदमी हो? तो दूसरे की अपवित्रता को हम खोजते रहते है निरन्तर, इसीलिए निन्दा मे इतना रस है। शायद उससे गहरा कोई रस ही नही है। न संगीत मे आदमी को उतना आनन्द आता है, न सौन्दर्य मे, जितना निन्दा मे आता है। सौन्दर्य छोड सकता है, सगीत छोड़ सकता है, सब छोड सकता है। अगर जरूरी निन्दा का मौका मिल जाए तो उस रस को वह नही चूकेगा। अगर हम दूसरो की बातचीत पता लगाने जाए तो सौ मै से नब्बे प्रतिशत बातचीत किसी भी निन्दा से सम्बन्धित होगी। निन्दा मे रस है क्योकि दूसरे को छोटा दिखाने मे अपने बडा होने का ख्याल है। इसलिए हर आदमी दूसरे को छोटा दिखाने की कोशिश मे लगा है। अगर कोई हमसे आकर कहे कि फला आदमी बहुत अच्छा है तो हम एकदम से नही मान लेते हैं। हम कहेगे : यह आपकी बात सुनी, जाच-पडताल करेगे, खोजबीन करेगे क्योकि ऐसा हो नही सकता कि आदमी इतना अच्छा हो। कहा इतने अच्छे आदमी होते हैं? ये सब बाते हैं। सब दिखते हैं ऊपर से अच्छे। भीतर कोई अच्छा होता नही। लेकिन एक आदमी हमसे आकर कहता है कि फला आदमी बिल्कुल चोर है। हम कभी नही कहते कि हम खोज-बीन करेंगे। हम कहते है कि बिल्कुल होगा ही। यह तो होता ही है। सब चोर हैं ही। जब कोई किसी की बुराई करता है तो हम बिना खोज-बीन के मान लेते हैं, तर्क भी नही करते, विवाद भी नही करते, लेकिन जब कोई किसी की अच्छाई की बात करता है तो हम बडे सचेत हो जाते हैं। हजार तर्क करते हैं; फिर भी भीतर सन्देह बना हुआ है। और जाच रखते हैं जारी कि कही कोई मौका मिल जाए और हम बता दे : "देखो! वह तुम गल्त कहते थे कि यह आदमी अच्छा था। इस आदमी में ये-ये चीजे दिखाई पड़ गई।"

हम दूसरे को छोटा दिखाना चाहते हैं। दूसरे को बडा मानना बडी मजबूरी में होता है। अत्यन्त कष्टपूर्ण है किसी को बडा मानना। किसी को हम बड़ा भी मान लें अगर मजबूरी मे तो भी हम अपने मन मे जांच-पडताल जारी रखते हैं कि कोई मौका मिल जाए तो इसको छोटा सिद्ध कर दें।

तो आदमी दूसरे का देखता है अशुभ और सुख; वह अपना देखता है शुभ और दुख। उपद्रव हो गया तो वह कर्मवाद के सिद्धान्त मे ही घुस गया। मेरी मान्यता यह है कि अगर वह सुख भोग रहा है तो वह कुछ ऐसा जरूर कर रहा है जो सुख का कारण है क्योकि बिना कारण के कुछ भी नही हो सकता। अगर एक डाकू सुखी है तो उसमे कोई कारण है उसके सुखी होने का। और अगर एक साधु सुखी नही है तो उसमे कोई कारण है दुखी होने का। अब अगर दस डाकू साथ होगे तो उनमे इतना भाई चारा होगा जितना दस साधुओ मे कभी सुना ही नही गया। लेकिन दस डाकुओ मे मित्रता है तो वे मित्रता के सुख भोगेगे। साधु कैसे भोगेगा उस सुख को ? डाकू कभी एक दूसरे से झूठ नही बोलेगे लेकिन साधु एक दूसरे से बिल्कुल झूठ बोलते रहेगे। सच बोलने का जो सुख है वह साधु नही भोग सकता।

प्रश्न : अकस्मात् जो घटनाए हो जाती है, उसकी क्या वजह है ?

उत्तर : कोई घटना अकस्मात् नही होती। असल मे उस घटना को हम अकस्मात् कहते हैं जिसका हम कारण नही खोज पाते। ऐसी घटनाए होती हैं जिनका कारण हमारी समझ मे नही आता। लेकिन कोई घटना अकस्मात् नही होती।

प्रश्न लाटरी कैसे निकलती है ?

उत्तर : अकस्मात् नही है वह भी। सिर्फ हमे दिखता है कि वह अकस्मात् है। मैं एक घटना बताऊ। मेरे एक मित्र पुगलिया जी ने चार-पाच वर्ष पहले एक गाडी ली और वे मुझे लेने नासिक आए। लेकिन उनकी लडकी ने कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि वे आपकी गाडी मे आएगे नही। पर इस बात का कोई मतलब न था। शायद उसने सोचा होगा कि मैं किसीदू सरी गाड़ी मे आ जाऊ या कुछ हो जाए। बात खत्म हो गई। वे मुझे लेने नासिक आए।

सुबह बारह बजे के करीब हम निकले वहा से। नया ड्राइवर था। वह इतनी तेजी से भगा रहा था कि मुझे मन मे लगा कि यह कही भी गाडी उलटेगी। लेकिन ऐसी कोई बात नही थी। रास्ते मे हम एक बगाली डाक्टर की गाडी को पार किए। उस गाडी मे जो महिला बैठी थी उसको भी लगा कि यह गाडी कही गिरेगी। एक दो मिनट बाद ही जाकर दुर्घटना हो गयी। वह गाड़ी उतर गई नीचे और रेत मे उल्टी हो गई। चारो पहिए ऊपर हो गए। मेरे एक दूसरे मित्र मानक बाबू ने पूना मे रात को सपना देखा कि मेरे हाथ मे बहुत चोट आ गई है। तो फिर वे मुझे लेने आए। पुगलिया की लडकी को जो ख्याल हुआ था कि मैं उनकी गाड़ी मे नही आऊगा सही हो गया। हमारी गाडी उलट गई और मानक बाबू की गाडी मे हमे आना पडा। लेकिन यह घटना एकदम अकस्मात् नही है। और अगर इस बात का थोड़ा विज्ञान समझ मे आ जाए तो कारण भी समझ मे आ सकेंगे। जैसे कि सोवियत रूस के कुछ हिस्सो मे बाकू के इलाके मे हजारो साल से बडा मेला लगता था। यहा एक देवी का मन्दिर है और वर्ष के एक खास दिन मे उसमे अपने-आप ज्वाला प्रज्वलित होती है। कोई आग लगानी नही पडती, ईधन डालना नही पडता। पर जब ज्वाला प्रज्ज्वलित होती है तो आठ दिन तक जलती है और आठ दस दिन वहा मेला भरता है। करोडो लोग इकट्ठे होते हैं। यह एक बडी चमत्कारपूर्ण घटना थी और कोई कारण समझ मे नही आता था, क्योकि न कोई ईधन है, न कोई दूसरी वजह है। फिर कम्यूनिस्ट वहा आए। उन्होने मन्दिर उखाड दिया, मेला बद कर दिया और खुदाई करवाई। वहां तेल के गहरे झरने निकले, मिट्टी के तेल के। लेकिन सवाल यह था कि खास दिन पर वर्ष मे क्यो आग लगती है। तेल के झरने से गैस बनती है। गैस जल भी सकती है घर्षण से। लेकिन वह कभी भी जल सकती है। तब खोज-बीन से पता चला कि पृथ्वी जब एक खास कोण पर होती है तभी वह गैस घर्षण कर पाती है। इसलिए खास दिन आग जल जाती है। जब बात साफ हो गई तो मेला बन्द हो गया। अग्नि देवता बिदा हो गए। अब वहा कोई नहीं जाता। अब भी वहा जलती है आग। अब भी खास दिन पर जब पृथ्वी एक खास कोण पर होती है तो वह गैस जो इकट्ठी हो जाती है वर्ष भर में, फूट पड़ती है। तब तक वह अकस्मात् था। अब वह अकस्मात् नही है। अब हमें कारण का पता चल गया है।

प्रश्न : वह जो गाड़ी उलट गई आप सब बच गए उसमें, तो सबका

कहना है कि आप उसमें थे इसलिए बच गए।

उत्तर : नही। असल मे होता यह है कि हम सब बचना चाहते हैं और बचने के लिए बच जाए तो भी कोई कारण खोज लेंगे। न बच जाए तो भी कोई कारण खोज लेंगे। कारण हम स्थापित कर ले यह एक बात है और कारण की खोज बिल्कुल दूसरी बात है। यानी एक तो यह होता है कि हम जो होना चाहते है उसके लिए भी हम कोई कारण खोज लेते हैं। और इसके पीछे भी एक बुनियादी बात है और वह यह है कि बिना कारण के कोई भी चीज कैसे होगी? यह बुनियादी सिद्धान्त हमारे भीतर काम कर रहा है। अगर चारो आदमी बच गए और जरा भी चोट नही पहुची तो इसका कोई कारण होना चाहिए। अगर ठीक से समझे इतनी दूर तक तो वैज्ञानिक है यह मामला। क्योकि अकारण यह भी नही हो सकता लेकिन कारण क्या होगा? हम कुछ भी कल्पित कर लेते हैं कि गाडी मे एक अच्छा आदमी था इसलिए बच गए। और अगर मान लो न बचते तो भी हम कोई कारण खोज लेते कि एक बुरा आदमी वहां था इसलिए मर गए। इसमे एक ही बात पता चलती है वह यह कि आदमी अकारण किसी बात को मानने के लिए राजी नही है। और यह बात ठीक है। लेकिन हमसे वह जो कारण बताता है वह कारण ठीक हो यह जरूरी नही। कारणो की वैज्ञानिक परीक्षा होनी चाहिए। जैसे कि मुझे बैठाल कर दो चार बार गाडी गिरानी चाहिए। और अगर मेरे साथ दो चार दफे गिराने से जो भी गिरे, वे सब बच जाएं तो फिर जरा पक्का होगा। और अगर न बचे तो बात खत्म हो गई। मेरा मतलब यह है कि वैज्ञानिक परीक्षण के बिना कोई उपाय नही है। और एक बात ठीक है कि अकारण कोई आदमी किसी बात को मानने के लिए राजी नही है और होना भी नही चाहिए। लेकिन दूसरी बात ठीक नही है। तब हमे कोई कल्पित कारण नही मान लेना चाहिए। उतना फिर हमे ध्यान मे रखना चाहिए कि कारण को भी हम फिर स्थापित करने के लिए प्रयोग करे। क्योकि अगर कारण सही है तो वह निरपवाद सही हो जाएगा। दो चार दस बार मुझे गिरा कर देखेंगे तो उससे पता चलेगा कि सबको चोट लगती है या नही लगती। और मजे की बात यह है कि चोट अगर लगी तो थोड़ी सी सिर्फ मुझको ही लगी थी उसमे, बाकी किसी को बिल्कुल नही लगी थी। थोडा सा जो भी लगा था, वह मेरे पैर मे ही लगा था। बाकी तो किसी को भी नही लगा था। अगर बुरा आदमी कोई था भी उसमे तो मैं ही था।

बाकी जो हम कल्पित आरोपण करते हैं उनका कोई मूल्य नही है। लेकिन अकस्मात् कुछ भी नही होता है। क्योकि अकस्मात् अगर हम मान लें तो कार्य कारण का सिद्धान्त गया, एकदम गया। एक बात भी अगर इस जगत मे अकस्मात् होती है तो सारा सिद्धान्त गया। फिर कोई सवाल नही है उसके बचने का। अकस्मात् कुछ होता ही नही क्योकि होने के पीछे कारण के बिना उपाय नही है। कारण होगा ही। अब जैसे एक आदमी है। उसको लाटरी मिल जाती है तो यह बिल्कुल ही अकस्मात् बात है क्योकि इसमे तो हम कोई कारण खोज नही सकते है। लेकिन एक लाख आदमियो ने अगर लाटरियो के टिकट भरे हैं और एक आदमी को मिल गई है तो किसी दिन अगर वैज्ञानिक क्षमता हमारी बढ़ और एक लाख लोगो के चित्तो का विश्लेषण हो सके तो मैं आपको कहता हू कि कारण मिल जाएगा आदमी को लाटरी मिलने का। और हो सकता है कि एक लाख लोगों मे सबसे ज्यादा सकल्प का आदमी यही है, सबसे ज्यादा सुनिश्चित इसी ने मान लिया है कि लाटरी मुझे मिलने वाली है। एक उदाहरण दे रहा हू। और हजार कारण हो सकते हैं। इन लाख लोगो मे सबसे सकल्पवान आदमी जो है, इच्छा-शक्ति का आदमी जो है, उसको मिलने की सम्भावना ज्यादा है, क्योकि उसके पास एक कारण है जो दूसरो के पास नही है।

अभी इस पर बहुत प्रयोग चलते है। अगर हम एक मशीन से ताश के पत्ते फेंके या मशीन से हम पासे फेंके तो मशीन मे कोई इच्छाशक्ति नही होती है। मशीन पासें फेंक देती है। अगर सौ बार पासे फेंकती है तो समझ लीजिए दो बार बारह का अक आता है। तो यह अनुपात हुआ मशीन के द्वारा फेंकने का। मशीन की कोई इच्छाशक्ति नही है। मशीन सिर्फ फेंक देती है पासे, हिला देती है और फेंक देती है। सौ बार फेंकने मे दो बार बारह का अक आता है। अब एक दूसरा आदमी है जो हाथ से पासे फेंकता है और हर बार भावना करके फेंकता है कि बारह का अक आए। वह सौ मे बीस बार बारह का अक ले आता है। आख बद है उसकी। वह देख नही सकता कि पांसा कैसा है, क्या है? और वह बीस बार ले आता है। एक तीसरा आदमी है जो कितने ही उपाय करता है कि बारह का आकडा आ जाए लेकिन सौ मे दो बार भी नही ला पाता। यानी दो बार जो कि मशीन भी ले आती है, जो कि बिल्कुल ही गणना का सवाल है। यह जो बीस बार लाता

है, इस आदमी से हम दुबारा प्रयोग करवाते हैं कि तू इस बार पक्का कर कि बारह का आंकड़ा नही आने देना। वह पासा फेंकता है, बीस बार नही आता। समझे, पाच बार आता है, तीन बार आता है, दो बार आता है। अब सवाल होगा यह कि भीतर की इच्छाशक्ति काम करती है। इस पर हजारो प्रयोग किए गए हैं और यह निर्णीत हो गया है कि भीतर का संकल्प पासे तक को प्रभावित करता है, ताश के पत्तो तक को प्रभावित करता है, घटनाओ को बाधता है, प्रभावित करता है, और हजारो आदमियो के अनुभवो और कारणो का परिणाम होता है। वह भी आकस्मिक नही है कि किसी आदमी को भीतरी सकल्प मिल गया है। भीतरी सकल्प भी उसके हजारों उन अनुभवो और कारणो का फल होता है जिनसे वह गुजरा है। समझ लीजिए कि एक आदमी है और उसने तय किया है कि मैं बारह घटे तक आख नही खोलूगा और वह आदमी बैठ गया है और बारह घटे मे उसने तीन ही घटे बाद आख खोल दी है तो इस आदमी का भावी सकल्प क्षीण हो जाएगा। इस आदमी के सकल्प की शक्ति क्षीण हो जाएगी। अगर वह बारह घटे तक आख बद किए बैठा ही रहा, कोई उपाय नही किए गए कि वह आख खोले बारह घटे मे तो यह आदमी एक कर्म कर रहा है जिसका फल होगा, उसका भीतर सकल्प मजबूत हो जाएगा।

जीवन बहुत जटिल है। उसमे कोई बात कैसे घटित हो रही है यह कहना एकदम मुश्किल है लेकिन इतना कहना निश्चित है कि जो घटना हो रही है उसके पीछे कारण होगा, चाहे वह ज्ञात हो, चाहे अज्ञात हो।

दक्षिण मे एक बूढे सगीतज्ञ का जन्म दिन मनाया जा रहा है। उसके हजारो शिष्य हैं। वे सब भेंटें चढ़ाते है क्योकि हो सकता है कि अगले वर्ष वह जिए भी नही। उसके हजारो भक्त हैं, प्रेमी है, वे सब भेंटें चढ़ाने आए हैं। रात दो बजे तक भेंटे चढती रही। लाखों रुपयो की भेंटे चढ़ गई हैं। राजा है, रानिया हैं। जिन्होने उससे सीखा है, वे सब भेंटें देने आए हैं। आखिर में दो बजे एक भिखारी जैसा आदमी तम्बूरा लिए हुए द्वार पर आया है। सिपाही ने कहा है कि तुम कहा जाते हो? उसने कहा है कि मैं भी कुछ भेंट कर जाऊ। उसने कहा कि तुम्हारे पास तो कुछ दिखाई नही पड़ता। तो उस भिखारी ने कहा कि जरूरी नही कि जो दिखाई पडे, वही भेंट किया जाए। जो नही दिखाई पडता है, वह भी भेंट किया जा सकता है। तम्बूरा भी उसने सिपाही के पास रख दिया और भीतर गया। भीतर जाकर उसने गुरु के पैर पर सिर रखा।

उस भिखारी की उम्र मुश्किल से तीस-बत्तीस वर्ष है। बूढ़ा गुरु उसे पहचान भी नहीं सका। उसने कहा . तुमने कब मुझसे सीखा मुझे याद नही पडता। भिखारी ने कहा कि मैंने कभी आपसे नहीं सीखा। मैं एक भिखारी का लड़का हू। लेकिन महल के भीतर आप गाते-बजाते थे, मैं बाहर बैठ कर सुनता था और वही मैं भी कुछ सीखता रहा। लेकिन अब आज धन्यवाद देने तो आना ही चाहिए। सीखा तो आपसे ही है। द्वार की सीढी के बाहर बैठ कर ही सीखा; कभी भीतर नही आ सका क्योकि भीतर आने का कोई उपाय नही था। आज भी आना बडी मुश्किल से हुआ है। एक छोटी सी भेंट लाया हू —अंगीकार करेंगे, इन्कार तो न करेंगे। गुरु ने सहज कहा नही, नही, इन्कार कैसे करूगा? पर देखा कि उस पर कुछ है तो नही। हाथ खाली है, कपडे फटे हैं। कहा की भेंट है, कैसी भेंट है? कहा : नही, नहीं, इन्कार कैसे कर दूगा? तुम जो दोगे, जरूर ले लूगा। भिखारी ने आख बद की और ऊपर जोर से कहा . "भगवान, मेरी शेष आयु मेरे गुरु को दे दो क्योकि मैं जीकर भी क्या करूगा?" यह कहते ही वह आदमी मर गया। यह ऐतिहासिक घटना है। अगर इतना प्रबल सकल्प किसी आदमी का है तो वह पूरा हो सकता है। यह बहुत कठिन बात नही है। और वह गुरु पन्द्रह वर्ष और जिया जिसकी एक ही साल मे मर जाने की आशा थी। ऐसा व्यक्ति अगर लाटरी पर नम्बर लगाये और लाटरी निकल आए तो इसे सयोग कहा जाएगा क्योकि हमे कारण तो दिखाई पडते नही। वही तो ह्यूम कहता है कि सब संयोग है। क्योकि कारण कहा दिखाई पड़ रहे हैं? जिसमे हमे दिखाई पड़ जाते है उसमे तो हम राजी हो जाते है। जिसमे दिखाई नही पडते, सयोग मालूम पडता है। लेकिन सयोग बडा अद्भुत है। एक आदमी कहे कि मेरी उम्र चली जाए और उसी वक्त उसकी उम्र चली जाए। इतना एकदम आसान नही है सयोग। हो सकता है लेकिन यह होना एकदम आसान नही मालूम पडता। इतने सकल्प का आदमी अगर लाटरी का नम्बर लगा दे तो बहुत कठिन नही है कि निकल आए। बहुत से कारण हैं जो हमे दिखाई नही पडते हैं। और हमको लगता है कि यह आकस्मिक हुआ है मगर आकस्मिक कुछ भी नही है।

प्रश्न : किसी एक को लाटरी मिलनी है, इसलिए उसको मिल गई है। क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता?

उत्तर : अब यह जो मामला है इसकी भी भविष्यवाणी की जा सकती है। ऐसे लोग भी हैं जो बता सकें कि लाटरी किसको मिलेगी, तब क्या कहोगे?

तब समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा। हिटलर की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। गाधी की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। चीन किस दिन हमला करेगा भारत पर, इसको बताने वाले लोग भी है। एक अर्थ मे हम कह सकते हैं कि यह सब सयोग है।

प्रश्न : लेकिन हिरोशिमा में दो लाख व्यक्ति एकसाथ कैसे मर गए ?

उत्तर : हा, मरे। दो लाख व्यक्ति भी एकसाथ मर सकते हैं क्योंकि हमे ऐसा लगता है कि किसी न किसी दिन सारी पृथ्वी एकसाथ मरेगी। हमे लगता है कि यह कितना आकस्मिक है कि दो लाख आदमी एक साथ मर गए क्योकि इन दो लाख व्यक्तियो के भीतर हमारा कोई प्रवेश नही है। और ऊपर से ऐसा दिखता है कि बिल्कुल आकस्मिक है कि एटम गिरा। लेकिन कोई पूछे कि हिरोशिमा पर क्यो गिरा ? हिरोशिमा कोई महत्वपूर्ण नगर न था। टोकियो पर गिर सकता था। नागासाकी पर क्यो गिरा ? जब तक हम पूरा भीतर प्रवेश न कर पाये कारणो के, जब तक हम हिरोशिमा के लोगो के भीतर न घुस सके तब तक हम कुछ नही कह सकते। कोई नही कह सकता कि हिरोशिमा मे जापान मे सबसे ज्यादा आत्म-घातेच्छुक लोग हो कि इसलिए हिरोशिमा एटम को आकर्षित करता हो।

एक मोटर एक्सीडेंट हो जाए, एक एयरोप्लेन एक्सीडेंट हो जाए तो कोई नही कह सकता कि उस मोटर मे, उस हवाई जहाज मे बैठे हुए लोगो के चित्त मे क्या चल रहा है और वह किस भाति परिणाम ला सकता है। मेहरबाबा की जिन्दगी मे दो-तीन घटनाए बडी अद्भुत है। एक मकान उनके लिए बनाया गया। उस मकान मे वह प्रवेश करने गए। प्रवेश का उत्सव मनाया जा रहा है, फूल-झाड लगाए गए हैं, दिए लगाए गए है। दरवाजे पर वह दो मिनट रुके और वापस लौट आए। उन्होने कहा इस मकान मे मैं नही जाऊगा। लोगो ने कहा . क्या मतलब है आपका इस मकान मे न जाने से। उन्होने कहा और मुझे कुछ नही लगता लेकिन दरवाजे पर मैं एकदम ठिठका इसलिए मैं मकान मे नही जाता। वह मकान उसी रात गिर गया। इस आदमी को भी साफ नही है कि क्या हुआ लेकिन सीढी पर उसको एकदम झिझक मालूम हुई और उसने इन्कार कर दिया। यही मेहरबाबा एक बार हिन्दुस्तान से यूरोप जाते हैं हवाई जहाज से। और अदन मे जहाज पर चढने से इन्कार कर देते हैं। उनकी टिकट है आगे तक की। अदन पर जहाज रुका है। वह एयर पोर्ट पर उतरे हैं और उसके बाद वह एकदम

इन्कार कर देते हैं कि मैं जहाज पर नही चढ़ सकता और वह जहाज गिर जाता है। जापान में एक घटना घटी। पिछले महायुद्ध मे एक अमेरिकी जनरल जा रहा है एक हवाई जहाज से, किसी सैनिक कार्य से, किसी दूसरे सैनिक कैम्प मे। वह घर से निकल गया है सुबह आठ बजे। उसकी टाइ-पिस्ट भागी हुई उसके घर पहुची है कोई सवा आठ बजे और उसकी पत्नी से कहा है कि जनरल कहा हैं? उसकी पत्नी ने कहा : क्यो? उसने कहा : रात मैंने एक सपना देखा है। मैं उनको वह दूं। मैं बहुत डर गई हू। पहले मैंने सोचा कि कहना है कि नही, इसलिए देर हो गई। क्या सपना देखा है, उसकी पत्नी ने पूछा। तो वह अपना सपना बताती है कि जनरल जिस हवाई जहाज से आज जा रहे है, वह टकरा जाता है बीच मे। उसमे जनरल है, चालक है और एक औरत है। हवाई जहाज टकरा जाता है हालाकि मरता कोई नही है। तीनो बच जाते हैं। तो उसकी पत्नी ने कहा कि तुम्हारा सपना यही से गलत हो गया क्योकि जनरल और चालक दो ही जा रहे हैं। उसमे कोई औरत नही है। और वह तो निकल चुके हैं। फिर भी, पत्नी और वह, दोनो कार से एयरपोर्ट पर पहुचते हैं। तब तक जनरल जा चुका है। लेकिन एयरपोर्ट पर पता चला कि एक औरत भी गई है। एक औरत ने वही आकर कहा कि मेरा पति बीमार है। और मुझे इस वक्त कोई जाने का उपाय नही है। मुझे आप साथ ले चले तो कृपा होगी। जनरल ने कहा कि हवाई जहाज खाली है, कोई बात नही है, तुम चलो। वह औरत साथ गई है। तब उसकी पत्नी घबडा गई है। वह एयरपोर्ट पर ही है कि खबर मिलती है कि वह जहाज टकरा गया है लेकिन मरा कोई नही है। और उस लड़की ने जिसको सपना आया है कहा है कि कितनी बड़ी चट्टान है जिससे वह जहाज टकराता है, कैसी जगह है, और वहा कैसे दरख्त हैं। वह सब शब्द-शब्द सही निकला है। लेकिन अगर यह सपना नही है तो बात अकस्मात् है। लेकिन अगर यह सपना है तो बात अकस्मात् नही है। कुछ कारण काम कर रहे है जिनका तालमेल आधा घटा या घटा भर बाद उस जहाज को गिरा देने वाला है। जिन्दगी जैसी हम देखते हैं उतनी सरल नही है। सब चीजे समझ मे नही आती हैं। लेकिन इतनी बात समझ मे आती ही है कि अकारण कुछ भी नही है। कर्म के सिद्धान्त का बुनियादी आधार यह है कि अकारण कुछ भी नही है। दूसरा बुनियादी आधार यह है कि जो हम कर रहे हैं वही हम भोग रहे हैं। और उसमे जन्मो

के फासले नहीं हैं। और जो हम भोग रहे है, हमे जानना चाहिए कि हम उस भोगने के लिए जरूर कुछ उपाय कर रहे है, चाहे सुख हो, चाहे दुख हो, चाहे शान्ति हो, चाहे अशान्ति हो।

प्रश्न : जो बच्चे अंगहीन पैदा हो जाते हैं या अन्धे पैदा हो जाते हैं या अस्वस्थ पैदा हो जाते हैं, उसमें उन्होंने कौन सा कर्म किया है जिसकी वजह से वे वैसे हैं।

उत्तर : हा, बहुत से कारण है। अब यह बात समझने जैसी है असल मे। एक बच्चा अधा पैदा होता है तो घटनाए घट रही है। अगर वैज्ञानिक से पूछेगे तो वह कहेगा कि इसमे मा-बाप के जो अणु मिले उनमे अधेपन की गुंजाइश थी। वैज्ञानिक यहा समझाएगा। वह भी अकारण नही मानता इसको। लेकिन वह विज्ञान के कारण खोजेगा। वह कहेगा कि जो मां-बाप के अणु मिले उन अणुओ से अधा बच्चा ही पैदा हो सकता था। अधा बच्चा पैदा हो गया। उन अणुओ मे कोई रसायनिक कमी थी जिससे कि आख नही बन पायी। लेकिन धार्मिक कहेगा कि बात इतनी ही नही है। इसके पीछे और भी कारण हैं। विज्ञान के लिए तो आदमी सिर्फ जन्मता है। जन्म के पहले कुछ भी नही है। लेकिन वह इस बात को इन्कार कैसे कर सकता है कि पैदा होने के पीछे भी कारण है, सिर्फ अन्धा होने के पीछे ही नही। यानी वह इतना तो मानता है कि अन्धा पैदा हो गया क्योकि अणुओ मे कुछ ऐसा कारण है जिससे अधा पैदा होना है। लेकिन पैदा ही क्यो होगा यह आदमी? बस वह अणुओ के मिलने पर शुरूआत मानता है। धर्म कहता है उसके पीछे भी कोई कारण की शृंखला है, उसको अभी तोडा नही जा सकता। धर्म कहता है कि जो आदमी मरा, मरते वक्त तक ऐसी स्थितियां हो सकती हैं कि वह आदमी खुद भी आख न चाहे। या उसके कर्मों का पूरा योग हो सकता है उस क्षण मे कि आख सम्भव न रहे। और ऐसा आदमी अगर मरे तो ऐसी आत्मा उसी मा-बाप के शरीर मे प्रवेश कर सकेगी, जहा अन्धे होने का सयोग जुड गया है। यानी ये दोहरे कारण है। अब जैसे मैं उदाहरण के लिए कहू। एक लडकी को मैं जानता हू जिसकी आख चली गई सिर्फ इसलिए कि उसके प्रेमी से उसको मिलने के लिए मना कर दिया गया। उसके मन मे भाव इतना गहरा हो गया इस बात का कि जब प्रेमी को ही नही देखना है तो फिर देखना भी क्या है? यह भाव इतना सकल्पपूर्ण हो गया कि आख चली गई। और किसी इलाज से आख नही लौटाई जा सकी जब तक कि उसको प्रेमी से मिलने नहीं

दिया गया। मिलने से प्राण वापस लौट आई। उसके मन ने ही प्राण का साथ छोड़ दिया था। तो मरते क्षण मे, मरते वक्त मे आत्मा के पूरे के पूरे जीवन की व्यवस्था, उसका चित्त, उसका सकल्प, उसकी भावनाएं सब काम कर रही हैं। इन सारे सकल्पो, इन सारी भावनाओ, इस सारे कर्म शरीर को, इस सारे सकल्प शरीर को लेकर वह इस शरीर को छोडती है। नया शरीर हर कोई ग्रहण नही कर लिया जाएगा। वह उसी शरीर की ओर सहज नियम से आकर्षित होगी जहा उसकी इच्छाए, उसकी भावनाए उपलब्ध हो सकेंगी। दो कारण-परम्पराए यहा मिल रही हैं। एक शरीर के अणुओ की, एक आत्मा की। शरीर के अणुओ से बनेगा शरीर। लेकिन उस शरीर को चुनेगा कौन? यहा हम पचास मकान, पचास ढग के बनाएं। आप मकान खरीदने आए। आप पचास मे से हर कोई मकान नही चुन लेते। आप खोजते हैं, फिर आप एक मकान चुन लेते है। आपके भीतर उसके चुनाव के कारण होते हैं। हो सकता है कि आपके ख्याल सौन्दर्यरुचि वाले हों कि बड़ा सुन्दर मकान चाहिए। हो सकता है कि सुविधा के ख्याल हो कि सुविधापूर्ण मकान चाहिए। बडा चाहिए, छोटा चाहिए, कैसा चाहिए? वह आपके भीतर है। तो दोहरे कारण हैं। एक तो इजीनियर मकान बना रहा है। उसके भी मकान पचास बन गये हैं। उसके भी कारण है पचास मकान बनाने के। वह भी हर कुछ नही बना देगा। उसके अपने भीतरी कारण हैं, अपनी दृष्टि है, अपने विचार है, अपनी धारणाए है। फिर आप चुनाव करते है। पचास मे से आपने एक चुना। तो यहा दोहरी कारण-शृखलाओ का मिलन हुआ। एक इजीनियर की कारण-शृखला और दूसरी आपकी अपनी कारणशृखला। हो सकता है कि आप पचास मे से कोई भी न चुनें, वापस चले जाए कि यहा मुझे कुछ पसद नही पड़ता। इन दोनो ने काम किया और आपने खास मकान चुना। जो शरीर हमने चुना है, वह हमने चुना है। वह हमारा चुनाव है, चाहे वह अचेतन हो, चाहे वह चेतन हो। लेकिन जो शरीर हमने चुना है उसमे भी कर्म का प्रभाव है क्योकि कार्य-कारण से अन्यथा कुछ हो ही नही सकता।

प्रश्न : एक गांव है। उसमें जो बच्चे हैं वे तीस प्रतिशत दो साल बाद मर जाते हैं। लेकिन क्या ऐसी व्यवस्था है कि सौ के सौ ही जिन्दा रह जाएं? क्या नस्ल सुधारी जा सकती है?

उत्तर : हा बिल्कुल सुधारी जा सकती है। बिल्कुल सुधारी जा सकती

है। फिर वे बच्चे पैदा नहीं होगे उस गाव मे जो दो साल मे मरते हैं। एक और गांव है जिसमें दो साल मे हर दस मे से आठ बच्चे मर जाते हैं। इस गांव मे वे ही बच्चे आकर्षित होते हैं जिनकी दो माल से ज्यादा जीने की सम्भावना नही। अगर इस गाव की नस्ल सुधार दी जाए तो इसका मतलब हुआ कि इजीनियर ने दूसरे मकान बनाए जिनमे वे ही यात्री आकर्षित होगे जो अभी आकर्षित नही हुए थे। इस गाव मे अब वे बच्चे पैदा होगे जो सौ वर्ष जिन्दा रहने के लिए आए हुए है।

प्रश्न : लेकिन क्या सब गांव मे ऐसा किया जा सकता है ?

उत्तर : सब गाव मे किया जा सकता है, तो नक्षत्र बदल जाएगे। इससे कोई फर्क नही पडता। यानी एक गाव बदलता है या दूसरा गाव यह सवाल नही। अगर पूरी पृथ्वी पर हम सौ साल की उम्र तय कर लें तो इस पृथ्वी पर सौ साल से कम पैदा होने वालो का उपाय बन्द हो जाएगा। उनको दूसरे नक्षत्र चुनने पडेगे।

प्रश्न : तब तो फिर दूसरे जन्म तक कर्म गया ?

उत्तर : मेरा मतलब नही समझे। दूसरे जन्म तक तुम जाओगे और तुमने जो किया है, तुमने जो भोगा है उसी से तुम निर्मित हुए हो इसको भी ठीक समझ लेना जरूरी है। समझ लो मैंने पानी बहाया इस कमरे मे। एक गिलास पानी लुढका दिया। पानी बहा, उसने एक रास्ता बनाया, दरवाजे से निकल गया। फिर पानी बिल्कुल चला गया। धूप आई। सब सूख गया। सिर्फ एक सूखी रेखा रह गई। पानी नही है बिल्कुल अब। लेकिन पानी जिस मार्ग से गया था वह मार्ग रह गया है। आपने दूसरा पानी उलटाया। अब इस दूसरे पानी की हजार सम्भावनाओ मे निन्यानवें सम्भावनाए यह हैं कि वह उसी मार्ग को पकड ले क्योकि उसमे न्यूनतम प्रतिरोध है, झगडा ज्यादा नही है। दूसरा मार्ग बनाना हो तो फिर धूल हटानी पड़ेगी, कचरा हटाना पडेगा तब पानी मार्ग बना पाएगा। बना हुआ मार्ग है। यह पानी उस मार्ग को पकड लेगा और उसी मार्ग से बह जाएगा। पुराना पानी नही रह गया था सिर्फ सूखी रेखा रह गई थी। मेरा कहना है कि एक जन्म से दूसरे जन्म मे कर्म के फल नहीं जाते। लेकिन कर्म और फल जो हमने किए और भोगे, उनकी एक सूखी रेखा हमारे साथ रह जाती है। उसको मैं सस्कार कहता हू। कर्म फल दूसरे जन्म मे नही जाते। मैंने पिछले जन्म गाली दी थी तो फल वही भोग लिया था। लेकिन गाली दी थी मैंने और तुमने नही दी थी

तो मैंने गाली का फल भोगा, तुमने वह फल भी नही भोगा। तो मैं एक और तरह का व्यक्ति हू। मेरे पास एक सूखी रेखा है गाली देने और गाली का फल भोगने की। वह सूखी रेखा मेरे साथ है। इस जन्म मे मेरे साथ सम्भावना है कि कोई गाली दे तो मैं फिर गाली दू क्योंकि वह सूखी रेखा जो है, न्यूनतम प्रतिरोध की वजह से मैं फौरन उसे पकड लूगा। कल रात हम सब लोग सो जाए। आप अलग ढग से जिए। मैं अलग ढग से जिया। जो मैं जिया वह गया। आप जो जिए वह भी गया। लेकिन उसकी सूखी रेखाए साथ रह गई।

प्रश्न : मरने के बाद तो कोई श्रीमन्त के यहां जन्मता है, कोई गरीब के यहां जन्मता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर : हा सही है। यहा भी हमारी सूखी रेखाए ही काम कर रही हैं। हमारा जो चित्त है, उसके जो आकर्षण है, हमने जो किया और भोगा है उसने हमे एक खास परिस्थिति दी है, एक खास सस्कारबद्धता दी है। वह खास सस्कारबद्धता हमे खास मार्गों पर प्रवाहित करती है। वे खास मार्ग सब रूपों मे कारण से बधे होगे। चाहे वह समृद्ध के घर पैदा हो, चाहे गरीब के घर मे, चाहे हिन्दुस्तान मे पैदा हो, चाहे अमेरिका मे, चाहे सुन्दर हो, चाहे कुरूप हो, चाहे जल्दी मरने वाला हो या देर तक जीने वाला हो इन सारी चीजो मे उस आदमी ने जो किया है और भोगा है, उसकी सस्कारशीलता काम करेगी ही। अकारण यह कुछ भी नही है।

प्रश्न : कल जब समाजवाद आ जाएगा, कारण और कार्य दोनो खत्म नहीं होगे उस वक्त ?

उत्तर : कारण और कार्य खत्म हो गए। जैसे आपने आग मे हाथ डाले फिर आपने हाथ बाहर निकाल लिए तो डालना खत्म हो गया। आपका हाथ जला वह भी खत्म हो गया। हाथ की जलन भी खत्म हो गई लेकिन आग मे डालने से जला हुआ हाथ पास रह गया।

प्रश्न : किसी के कर्म का जो अन्तिम फल है वही तो चला अगले जन्म में ?

उत्तर : फल नही चलने वाला है। फल तो खत्म हो गया।

प्रश्न—आग जलने के कारण हाथ पर कुछ निशान रह गए ?

उत्तर—हां ये जो निशान हैं न तो ये जलन है, न आग है। फल जलन था, वह तुमने भोग लिया। अब तुम्हारा हाथ जल गया है।

प्रश्न : यह भी तो एक प्रकार का फल ही है कि हाथ कुरूप हो जाए ?

उत्तर : यह सूखी रेखा है। सिर्फ चिह्न रह गया है कि तुम्हारा हाथ जला था।

प्रश्न : फल तो उसी का है ?

उत्तर : नही, तुम फल का मतलब ही नही समझते। फल का मतलब होता है जलन। कारण था आपका हाथ डालना, फल था हाथ का जलना। यह एक घटना थी। इस घटना के सूखे सस्कार पीछे रह जाएगे कि इस आदमी ने आग मे हाथ डाला था। इस बात को मैं सस्कार कहता हू, फल नही कहता। फल तो जलन थी जो भोग लिया तुमने। प्रत्यक व्यक्ति अपने-अपने भोगने की खबर को लिए हुए है अपने साथ। ये खबरें भी हमे प्रभावित करती है। वे हमे न्यूनतम प्रतिरोध का मार्ग सुझाती हैं। जिस आदमी ने पिछले दस जन्मो मे हत्या की है बार-बार उसकी बहुत सम्भावना इस जन्म मे भी हत्या करने की है। कारण कि दस जन्मो से हत्या करने की उसकी जो वृत्ति है, जो भाव है, जो सस्कार है, वह निरन्तर गहरा होता चला गया है और जब उससे झगडा होता है तो पहली बात उसको यही सूझती है कि मार डालो। दूसरी बात नही सूझती उसको। यह निकटतम रास्ता है जिस पर सूखी रेखा बनी है। वृत्ति सिर्फ सूखी है, उसमे कोई प्राण नही है। अगर आप बदलना चाहे तो बदल सकते है। लेकिन अगर आप कहते हैं फल तो फल सूखा नही, फल हरा है। फल भोगना पडेगा, आप उसे बदल नही सकते। जैसे कोई आग मे हाथ डालता है तो उसे उसी वक्त जलना पडेगा जब कि वह हाथ डालता है लेकिन मेरा कहना है कि यह आदमी आग मे हाथ डालने की वृत्ति वाला है। दूसरे जन्म मे भी इससे डर है कि कही वह आग मे हाथ डाल दे। क्योकि इसकी बार-बार आग मे हाथ डालने की आदत भय पैदा करती है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि यह आग मे हाथ डालने को बधा है। यह चाहे तो न डाले। इसका मतलब यह होता है अन्तत कि कर्मों की निर्जरा नही करनी है आपको। कर्मों की निर्जरा हर कर्म के साथ होती ही चली जाती है। पीछे सूखी रेखा रह जाती है। इसी सूखी रेखा से आपको ज्ञान हो जाना काफी है। इसलिए मोक्ष या निर्वाण तत्काल हो सकता है। पुरानी धारणा मे वह तत्काल नहीं हो सकता क्योकि आपने जितने कर्म किए हैं उनके फल आपको भोगने ही पड़ेंगे। जब आप सारे फल भोग लेंगे तभी आपकी मुक्ति हो

सकती है। और इन फलों को भोगने मे फिर आपने कुछ कर्म कर लिए तो आप फिर बन्ध जाएगे और यह अन्तहीन शृखला होगी। यानी मैं कह रहा हू कि आप प्रतिबार कर्म करके फल भोग लेते हैं। निर्जरा वही हो जाती है, रह जाती है सिर्फ सूखी रेखा, कर्म नही, फल नहीं। अगर आप होश से मर जाते हैं तो वह अभी विदा हो जाती है।

प्रश्न : सूखी रेखा रहने की जरूरत क्या थी ?

उत्तर : उसकी जरूरत है।

प्रश्न : सूखी रेखा का सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर : सिद्धान्त की जरूरत नही। तथ्य है यह। जैसे समझ लो कि आज दिन भर मैंने क्रोध किया, दुख भोगा, गाली खाई, झगडा हुआ, उपद्रव हुआ, अशान्त हुआ। फिर मैं सो गया आज रात को। आपने दिन भर क्रोध नही किया, प्रेम से लोगो से मिले जुले, आनन्दित रहे। आप भी सो गए। सुबह हम दोनो एक ही कमरे मे सोकर उठे। मेरी चप्पल मेरे बिस्तर के पास नही मिली मुझे। आपकी भी नही मिली। आपकी सम्भावना बहुत कम है कि आप क्रोध मे आ जाए। मेरी सम्भावना बहुत ज्यादा है कि मै क्रोध मे आ जाऊ। वह जो कल का दिन था उसकी सूखी रेखा मेरे साथ है। कल दिन भर जो क्रोध किया तो आज सुबह से ही उपद्रव शुरू हो गया। कहा है मेरी चप्पल ? कल जो मैंने गाली दी थी, वह भी गई, जो गाली का दुख था, वह भी गया। लेकिन गाली देने वाला आदमी जिसने दिन भर गालिया दी वह तो शेष है। मुझमे और आप मे कोई फर्क तो होना चाहिए क्योकि आपने गाली नही दी और मैंने दिन भर गाली दी। और सुबह फिर ऐसा हो जाए कि कोई भेद न रह जाए तब तो फिर व्यवस्था गई। भेद तो रहेगा ही मुझ मे और आप में। क्योकि हम अलग ढग से जिए। मैं क्रोध मे जिया, आप प्रेम मे जिए। तो हम मे भेद रहेगा। वह भेद वृत्ति का होगा, फल का नही। फल तो गया। अब हमारे साथ रह जाएगा वह जो समग्र सस्कार है हमारा। इस समग्र सस्कार के प्रति हमारी मूर्च्छा कारण होगी इसको चलाने का। जैसे समझ लें कि कल मैंने क्रोध किया दिन भर और सुबह सोचूं कि बहुत क्रोध किया, बहुत दुख पाया और जाग जाऊ तो जरूरी नहीं कि मैं फिर क्रोध करूं यानी मेरे भीतर क्रोध करने की अनिवार्यता नही है। सिर्फ मूर्च्छा मे ही अनिवार्यता है। अगर मैं सोए-सोए कल जैसा व्यवहार करू तो क्रोध चलेगा।

अगर जाग जाऊ तो क्रोध टूट जाएगा। इसलिए अन्तत. मेरी दृष्टि मे कर्म की निर्जरा तो हो चुकी है लेकिन कर्म की सूखी रेखा रह गई है। और वह सूखी रेखा हमारी मूर्च्छा है। अगर हम मूर्च्छित रहे तो हम वैसे ही काम करेंगे। अगर हम जाग जाए तो काम इसी वक्त बद हो जाए। इसलिए मैं कहता हू कि एक क्षण मे मुक्ति हो सकती है। करोड जन्मो मे आपने क्या किया है, इससे मुझे कुछ लेना देना नही। सिर्फ आप जाग जाए। इससे ज्यादा कोई शर्त नही। यह मेरी व्यक्तिगत दृष्टि है क्योकि मै ऐसी व्याख्या कर रहा हू, जिसका बुनियादी अन्तर पड़ेगा आपकी व्याख्या से। आपकी व्याख्या का मतलब यह है कि अगर करोड जन्म आपने कर्म किए तो आपको फल भोगने के लिए शेष है अभी। वह जब तक आप नही भोग लेते तब तक कोई उपाय नही। और उनको भोगने मे काल व्यतीत होगा। भोगने मे भी नए कर्म होगे क्योकि आप बचेंगे कैसे ? अगर पुरानी व्याख्या सही है तो मैं मानता हू कि कोई कभी मुक्त हो ही नही सकता। कारण कि कल मैंने कितने पाप किए, कितनी बुराइया की, उनका फल भोगना है। और वह मैं कैसे भोगूगा ? जब मुझे कोई गाली देने आएगा क्योकि मैंने पिछले जन्म मे उसे गाली दी थी तो फिर कर्म शुरू होगा। वह फिर मुझे गाली देगा। और जब मैने पिछले जन्म मे गाली दी थी तो गाली देने की मेरी वृत्ति तो है ही। और अब अगर वह मुझे फिर गाली देगा तो फिर गाली का सिलसिला जारी रहेगा। और सिलसिले का अन्त क्या है ? क्योकि अगर एक कर्म भी शेष रह गया तो उसको भोगने में फिर नए कर्म निर्मित होते चले जाएगे। और अगर एक भी शेष रहा तो यह निर्मिति कैसे बन्द होगी ? और अगर यह बात सही है तो दुनिया मे कोई कभी मुक्त हुआ ही नही। लेकिन दुनिया मे मुक्त लोग हुए हैं और वे इसलिए मुक्त हो सके हैं कि कर्म आगे के लिए शेष नही रह जाते। कर्म पीछे ही चुकता हो जाते है। सिर्फ रह जाती है सोयी हुई वृत्ति और अगर आदमी सोया ही रहे, तो उन्ही कर्मों को दोहराता चला जाएगा। जाग जाए तो दुहराना बन्द कर देगा। यानी मुझे कोई मजबूर नही कर रहा है कि मैं क्रोध करू सिवाय मेरी मूर्च्छा के। और अगर मैं जाग गया हू तो मैं कहता हू कि ठीक है, इस रास्ते से बहुत बार जा चुके, बहुत दुख उठा चुके। इसलिए महावीर ने बडी कोशिश की प्रत्येक व्यक्ति को पिछले जन्मों के स्मरण कराने की ताकि यह पता चल जाए कि तुम क्या-क्या कर चुके हो; क्या-क्या भोग चुके हो, तुम कितनी बार गुजर चुके हो? और अगर स्मरण आ जाए किसी व्यक्ति

को उसके दो चार जन्मो का तो वह जानेगा कि उसने बहुत बार धन कमाया, कई बार बेईमानी से और बहुत बार प्रेम किया, क्रोध किया, यश कमाया, अपमान सहा, मान सहा। सब कर चुका वह जो अब फिर कर रहा है। और अगर उसको यह दिखाई पड़ जाए कि यह मैं बहुत बार कर चुका तो यह निरर्थक हो जाए। और यह चोट अगर उसको पड़ जाए तो वह अभी जाग जाए और कहे कि अब मैं बहुत कर चुका यह। अब दूसरे करने का क्या मतलब ? कितनी बार धन कमाया, फिर उसका हुआ क्या? तो यह जागरण, उसकी सूखी रेखा को तोड़ने का कारण बन जाएगा। इसलिए इसमे तत्काल बोध की सम्भावना है। सच तो यह है कि जब भी कभी मुक्ति होती है वह तत्काल होती है।

प्रश्न : फिर यह जो सुधार करना चाहते हैं समाज में, वह व्यर्थ हो गया। जैसे सतीप्रथा थी जो स्त्रियो को जबरदस्ती आग में ढकेल देते थे।

उत्तर : यह बडा अच्छा सवाल है। सच मे अन्याय कुछ भी नही है। क्योकि जो हम कर रहे है, वह हम भोग रहे हैं। एक बात और समझ लेनी जरूरी है। पुराना ख्याल था कि अगर मैं किसी को चाटा मारू तो किसी जन्म मे वह मुझको चाटा मारेगा। कर्म सिद्धान्त का ऐसा ख्याल है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैंने किसी को चाटा मार दिया तो जब तक वह मुझे चाटा न मार ले, तब तक वह भी मुक्त नहीं हो सकता। यानी मेरा कृत्य भी उसकी अमुक्ति का कारण बन जाएगा। समझ लीजिए कि मैंने किसी को चाटा मारा और वह इसी जन्म मे मुक्त हो सकता था। मगर अब नही हो सकता जब तक वह मुझे चांटा न मार ले। क्योकि मुझे चांटा कौन मारेगा ? हिसाब कैसे पूरा होगा ? उसे अगला जन्म लेना पडेगा और वह भी मेरे कारण जो कि बिल्कुल ही व्यर्थ बात है। नही, मेरा कहना यह है कि मैं जब उसको चाटा मारता हूं तो वह मुझे चाटा मारेगा ऐसा फल नहीं होता। मैं चांटा मारता हू। मेरे चाटा मारने मे जिस वृत्ति से मैं गुजरता हू, वह मुझे दुख दे जाती है। उससे कुछ चाटा लौटने का सवाल नही है। हा, मैंने उसे चांटा मारा। अगर चांटे को वह साक्षी भाव से देखता रहा, तो वह नया कर्म नही बांधता है क्योंकि वह सिर्फ साक्षी रहता है। मैंने चाटा मारा, उसने देखा। वह कुछ भी नहीं कर रहा है। अगर वह मेरे चाटा मारने से मुझे चाटा मारे तो वह मेरे चांटा मारने का फल नही है। वह उसका कर्म है

जिसका फल उसको भोगना पडेगा। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। मैंने चाटा मारा है उसको और अगर वह चुपचाप खडा रहे और समझे कि यह विचारा पागल है, चाटा मारता है और कुछ न करे और समझे, अपने रास्ते बढ़ जाए तो उसने कोई कर्मबन्ध नही किया। मैंने कर्म किया और उसका फल भोगा। मेरे इस कर्मबन्ध की शृखला से उसने कोई सम्बन्ध नही जोडा। लेकिन अगर वह मुझे चाटा मारे उत्तर मे तो वह मेरे चाटे का उत्तर नही है। मेरे चाटे का उत्तर तो मैं ही भोग रहा हू। उसके चाटे का उत्तर वही भोगने वाला है। यह उसकी कर्म-शृखला है। इससे मुझे कुछ लेना-देना नही है। इसमे अन्याय कुछ भी नही है। मैं चाटा मारता हू तो मैं दुख भोग लेता हू।

प्रश्न : आपका दृष्टिकोण है कि चांटा मारने से दुख होगा। लेकिन ऐसी भी वृत्ति होती है कि मै चांटा भी मारू और आनन्द भी लू और जिसे चांटा मारा उसको दुख नहीं है क्या ?

उत्तर : समझें थोडा इसे। मैंने चाटा मारा किसी को तो मैने कर्म किया, दुख भोगा, फल भोगा। लेकिन जिसको मैंने चाटा मारा उसके साथ अन्याय हो गया। और मै कहता हू कि अन्याय कुछ भी नही है। मेरा कहना है कि मेरा चाटा मारना आधा हिस्सा है। और चाटा भी मैं उसी को मारता हू जो चाटे को आकर्षित करता है। वह दूसरा हिस्सा है जो हमे दिखाई नही पड़ता। यह असम्भव है कि मैं उसको चाटा मार दू जो चाटे को आकर्षित नही करता। जो चाटे को आकर्षित करता है उसी को चाटा पडता है। आकर्षित करने की वजह से वह दुख उठाता है। आकर्षण उसका हिस्सा है। यानी अकेला कोई आदमी इस दुनिया मे मालिक नही होता। गुलाम भी उसके साथ गुलाम होना चाहता है। नही तो यह सम्बन्ध बन ही नही सकता है। हम तो मालिक को थोप देते है कि तुमने गुलाम बनाया है इस आदमी को। लेकिन हमने यह कभी नही पूछा कि यह आदमी गुलाम बनना चाहता है। अगर यह नही बनना चाहता तो असम्भव है इसे गुलाम बनाना।

एक फकीर हुआ है डायोजनीज। रास्ते से गुजर रहा था, नगा फकीर था। उसे कुछ लोगो ने पकड लिया। उसने पूछा कहा ले जाते हो मुझे पकड़ कर। लोगो ने कहा कि हम गुलामो को पकड़ कर बेचते हैं बाजारो में। डायोजनीज ने कहा बहुत बढिया, चलो, चलते हैं। पर

लोग बहुत हैरान हुए क्योकि कोई आदमी को पकडो गुलामी के लिए तो वह भागता है, बचना चाहता है। डायोजनीज़ ने कहा कि हाथ-पाव छोड दो क्योकि मैं खुद ही चलता हू। जो तुम्हारे साथ नही जाना चाहता उसे तुम जजीर बाधकर भी नही ले जा सकते। मैं तो चलता ही हू। जजीरें अलग कर लो। वे उसे ले गए। वह उनके साथ चला गया। उसे जाकर खडा कर दिया गया। बहुत तगडा फकीर था, बडा स्वस्थ आदमी था। वैसा ही नग्न रहता और वैसा ही सुन्दर था। उसे चौखटे पर खडा कर दिया जहां नीलाम-बिक्री होती थी गुलामो की। और बेचनेवाले ने चिल्लाया : कौन इस गुलाम को खरीदता है। उसने कहा : चुप! यह मत कहना। आवाज मै ही लगा देता हू। उस आदमी ने चौखटे पर खडे होकर कहा कि किसी को मालिक खरीदना हो तो आ जाए। लोग बडे चौके। और भीड लग गई। उन्होने कहा कि क्या मजाक की बात है? डायोजनीज़ ने कहा मैं हर हालत मे मालिक ही रहूगा। ये लोग मुझे पकड कर भी लाए तो मैंने कहा . हटाओ ये जजीरे। तो इन्होने जल्दी से हटा ली। क्योकि मैंने कहा कि मैं ऐसे ही चलता हू क्योकि मैं मालिक हू। इनसे पूछो कि मैं इन्हें कितना डाटता-डपटता ला रहा हू। यह जो मुझे पकड कर लाए हैं इनका कितना सुधार किया है, इनको कितना ठीक किया है मैंने। इनसे पूछो। और हालत सच मे यही थी कि जो उसको पकड कर लाए थे, बहुत डरे हुए थे। वह आदमी बडी अकड से भरा हुआ था। उसने कहा कि कोई गुलाम समझ कर मुझे मत खरीद लेना क्योंकि जो गुलाम होना चाहे वही गुलाम हो सकता है। हम तो मालिक ही हैं। किसी को मालिक खरीदना हो तो खरीद ले। एक राजा को क्रोध आ गया। उसने कहा यह क्या बात करता है? उसने उसे खरीद लिया और घर ले जाकर कहा कि इसकी टाग तोड डालो। डायोजनीज ने टाग आगे कर दी। राजा ने कहा तुड़वा रहे हैं तुम्हारी टाग। उसने कहा तुम क्या तुड़वा रहे हो हम खुद ही आगे कर रहे हैं। हम मालिक हैं। तुडवाओगे तुम तब जब हम बचाए। तोडो लेकिन ध्यान मे रहे कि नुकसान मे पड जाओगे। लेकिन जो खरीदा है मुझको फिर मैं किसी काम का न रह जाऊगा। टाग टूट गई फिर मैं काम का नही रहूगा। तुम्हारी मर्जी। राजा को भी ख्याल आया कि बात तो सच है। अगर इसकी टाग तुडवा दी तो यह और बोझ बन जाएगा। राजा ने कहा कि रहने दो, इस आदमी की टाग मत तोडो। डायोजनीज ने कहा : देखते हो तुम, मालकियत किसकी चल रही है।

तो मैं कह रहा हू कि जब एक आदमी गुलाम होता है तो किसी न किसी रूप मे वह गुलामी को आमत्रित करता है। जब मालिक होने की प्रवृत्ति वाले और गुलाम होने की प्रवृत्ति वाले आदमी मिल जाते है तो ताल-मेल बैठ जाता है। एक गुलाम बन जाता है, एक मालिक हो जाता है। इसे ऐसा समझना चाहिए कि जैसे हम एक प्लग लगाते है तो उसमे हम जो पिनें लगा रहे हैं वही मतलब नही रखती। उसमे जो छेद हैं वे भी मतलब रखते हैं। जब मैं किसी को चाटा मारता हू तो इतना ही काफी नही कि मैंने चाटा मारा। वह आदमी किसी न किसी ढग से छेद का कार्य कर रहा है, चाटे को निमत्रित कर रहा है। नही तो यह असम्भव है। इसीलिए मैं कह रहा हू कि अन्याय असम्भव है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि हमे अन्याय मिटाने की कोशिश नही करनी चाहिए। नही, वह कोशिश हमे करनी चाहिए। क्यो? उसका कारण है। हमे एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जहा न कोई चाटे को आकर्षित करता हो, न कोई चाटा मारने को उत्सुक होता हो। अन्याय कभी भी नही है। अन्याय का कुल मतलब इतना हो सकता है कि अभी ऐसे लोग हैं दुनिया मे जो चाटा मारने को भी उत्सुक हैं और चाटा खाने को भी उत्सुक है। अन्याय घटना मे नही है, घटना तो हमारी न्यायसगति है। जो हो रहा है, वैसा ही होता है। वैसा ही हो सकता था। जैसे सतिया होती थी। वे इसलिए होती थी कि कुछ स्त्रिया मरने को राजी थी आग मे। नियम चलता था। अन्याय कुछ भी नही था। जो स्त्रिया जलने को राजी नही थी, वे उस दिन भी नही जलाई गई। जो स्त्रिया जलने को आज भी राजी है वे स्टोव से आग लगा लेती हैं, जहर खा लेती हैं, कुछ भी करती है। यानी मेरा कहना यह है कि उस समय भी सारी स्त्रियां तो सती नही हो जाती थी। कुछ ही स्त्रिया सती होती थी। और अगर तुम हिसाब लगाते जाओ तो जितनी औरतें आज आग लगाकर मरती हैं, वह अनुपात कम नही पाओगे। यह सोचने जैसा मामला है। सती की व्यवस्था आग मे जलने वाली औरतों के लिए एक सुविधा थी। कुछ लोग जलाने वाले भी है। वे अब भी जलाने का इन्तजाम करते हैं।

प्रश्न : किसी को ढकेल कर भी मार सकते हैं। ढकेल कर भी सती कर सकते हैं ?

उत्तर : ढकेल कर भी सती कर सकते हैं। हा, हां। ढकेल कर भी सती किया जाता था। लेकिन जिसको ढकेल कर सती किया जाता था उसके भी

ढकेले जाने की पूरी मनोवृत्ति होती थी। यानी मैं यह कह रहा हू कि घटना जब भी घटती है उसके दो पहलू होते हैं। उसमें हम एक ही पहलू को जिम्मेदार ठहराते हैं। वह हमारी गल्ती है। दूसरा पहलू भी उतना ही जिम्मेदार होता है। जैसे हम कहते हैं कि अगरेजो ने आकर हमको गुलाम बना लिया, यह आधा हिस्सा है। हम गुलाम होने की तैयारी मे थे, यह दूसरा हिस्सा है जो हमे ख्याल में नही आता। और जब तक हम गुलाम होने की तैयारी मे हैं, हम गुलाम रहते हैं। यह दूसरी बात थी कि अंगरेज बनाते, कि हूण बनाते, कि फ्रैंच बनाते। लेकिन गुलामी घटती। तो वह गुलामी की तैयारी थी। लेकिन इसका मतलब यह नही कि सती की प्रथा जारी रहनी चाहिए। मैं कहता हू प्रथा तो गल्त है। प्रथा इसलिए गल्त है कि जलाने वाला भी गल्त कार्य कर रहा है, जलाया जाने वाला भी गल्त कार्य कर रहा है। दोनो आदमी गल्त हैं। दुनिया ऐसी होनी चाहिए जहा न कोई जलाने को उत्सुक हो, न कोई जलने को उत्सुक हो। ऐसी अच्छी दुनिया हमे बनानी चाहिए। लेकिन जो हो रहा है, वह न्याययुक्त है। जीवन और चेतना बदले तो कुछ और होना शुरू हो जाए। अन्याय सिर्फ यह है कि जो हमारी जीवन-व्यवस्था है, वह हमे बहुत दुख मे डाल रही है। और दुखी हम ही बन रहे हैं ; कोई बना नही रहा है। इससे बेहतर जीवन व्यवस्था हो सकती है जो ज्यादा हमे सुख मे ले जाए, आनन्द मे ले जाए। और ऐसी व्यवस्था के लिए हमे सचेष्ट होना चाहिए व्यक्तिगत रूप से भी, सामूहिक रूप से भी।

जैसे रूस मे समाजवाद है। वहा सारे लोगो की सम्पत्ति बराबर हो गई है। लोग पूछते हैं कि जहा सम्पत्ति बराबर नही है, वहा तो अन्याय हो रहा है। वहा सम्पत्ति बराबर होने की कोई कर्म रेखा, कोई सस्कार उस मुल्क की चेतना मे नही है क्या ? अगर है तो क्यो अन्याय हो रहा है ? जिस मुल्क मे समानता का सस्कार अर्जित नहीं हुआ है चेतना मे वहीं असमानता है और वह न्यायसगत है इन अर्थों मे कि जो हमारी चेतना है, वह हमारा फल है। अगर रूस की चेतना उस जगह पहुच गई है सामूहिक रूप से जहां कि सम्पत्ति की समानता सस्कार का हिस्सा हो गई तो ठीक है उन्होंने समानता स्थापित कर ली। और इसका परिणाम यह होगा कि रूस मे वे आत्माए जन्म लेने लगेंगी जिनमे समानता का उदय हुआ है; असमानता के भाव की आत्माएं रूस मे जन्म लेना बद कर देंगी। हमे सिर्फ एक तरफ से देखने पर कठिनाई मालूम पड़ती है। अगर हम दोनो तरफ से देखेंगे तो कोई कठिनाई

नही रह जाती ।

प्रश्न : जब से दुनिया बनी है तभी से शुरू हुई है समानता पैदा होनी या जब से यह समाजवाद आया रूस मे ?

उत्तर : चेतना के विकास मे समानता बहुत विकसित चेतना की स्थिति है। असमानता सामान्य स्थिति है। दूसरे के साथ अपने को समान मानने के लिए तैयार होना भी बडी उपलब्धि है। चित्त नही मानता कि यह मेरे समान हो। असमानता सहज वृत्ति है। विषमता पैदा करना इसलिए सामान्य रहा। समानता पैदा करने वाली जो चेतनाए पैदा हुई महावीर उनमे से एक हैं। लेकिन वे चेतनाए व्यक्तिगत थी। तब धीरे-धीरे उनकी सघनता बढ़ी और सघनता उस जगह पर पहुच गई कि अब समान करने वाली चेतनाओ का भी एक बडा अश पृथ्वी पर है। जिस दिन असमान वृत्ति वाली चेतनाए क्षीण होती जाएगी उस दिन सारी पृथ्वी पर समानता हो जाएगी। लम्बा वक्त लगता है। लेकिन लम्बा वक्त हमको दिखता है क्योकि हमारे वक्त का हिसाब ही छोटा सा है। मनुष्य को हुए मुश्किल से दस लाख वर्ष हुए। और जिसको हम मनुष्य कहते हैं उसको तो मुश्किल से दस हजार साल हुए। पृथ्वी को बने दो अरब वर्ष हुए और पृथ्वी बडी नई चीज है। कोई बहुत पुरानी चीज नही। तारे हैं, उनका भी कोई हिसाब लगाना मुश्किल नही है कि कितने पुराने हैं। और जहा अन्तहीन समय की धारा है, वहा दस-पाच हजार वर्ष का क्या मतलब होता है ? मनुष्य अभी भी बिल्कुल ही बचपन मे है। विकास की व्यवस्था मे अभी हम बिल्कुल बच्चो की तरह है। अभी हम जवान भी नहीं हुए। बूढा होना तो बहुत दूर की बात है। अभी कई बाते प्रकट होनी शुरू हुई हैं। जैसे कि एक बच्चा है। वह चौदह साल का हुआ है और उसमे सेक्स का भाव उठा। और लोग कहे कि चौदह साल से यह क्या कर रहा था। चौदह साल से पहले उसे सेक्स का भाव क्यो नही उठा? चौदह साल गुजर गए। लेकिन एक अवस्था है बच्चे की। वह चौदह, पन्द्रह, सोलह साल का हो जाए तो प्रकृति उसको मानती है इस योग्य कि अब वह सेक्स की वृत्ति मे उतरे। मनुष्य जाति की भी एक अवस्था होगी जहा आकर प्रकृति मानेगी कि अब तुम समान हो सकते हो, अब तुम उस योग्यता के हो गए। दस हजार वर्ष लग जाए, बीस हजार वर्ष लग जाए कोई बात नही क्योकि वह पूरी मानव-जाति का सवाल है, एक व्यक्ति का सवाल नही है। हा, एक व्यक्ति तो कभी भी समान होने की वृत्ति को उपलब्ध हो सकता है। उसी को हम सम्यक् कहते हैं।

समता कहते हैं। मन से भेद ही मिट गया है कि कौन नीचा है, कौन ऊंचा है। यह सवाल ही चला गया है। तो कोई महावीर, कोई बुद्ध इसको उपलब्ध हो इसमें अड़चन नहीं है। लेकिन मनुष्य-जाति इस तल पर आने मे हजारो वर्ष लेती है। अन्याय नहीं है इस अर्थ मे कि प्रत्येक चीज अपने कारणो से न्याययुक्त है। अन्याय इस अर्थ मे है कि जिन्दगी इससे भी ज्यादा आनन्दपूर्ण, ज्यादा शांति की, ज्यादा सौन्दर्य की हो सकती है। उस दिशा मे हमे कोशिश करनी चाहिए। तुम कहो कि फिर हम कोशिश भी क्यो करे? लेकिन तुम यह मान लेते हो कि कोशिश जैसे हम कर रहे हैं, वह कोशिश करना भी हमारे कर्म के सस्कार की पूरी व्यवस्था का हिस्सा होता है। वह न करने का तुम्हारा सवाल भी व्यर्थ है।

प्रश्न : कोशिश करने का भी कारण होता है ?

उत्तर : हा कारण है। कारण यही है कि तुम दुख को नही झेल सकते, नहीं देख सकते और उसको बदलने की कोशिश करते हो। तो हम जब यह सोचने लगते हैं कि न करें तब हम गल्ती मे पड जाते हैं। न करने के लिए कारण जुटाना बहुत मुश्किल है। और नहीं तो न करने का जिस दिन कारण जुटा लोगे उस दिन सामायिक हो जाएगी और मोक्ष हो जाएगा। यानी मेरा मतलब समझे आप ? करने का कारण ही हमने जुटाया है सब। जिस दिन हम उस हालत मे आ जाएगे कि हम कह सके कि न करना भी काफी है, अब कुछ नही करते तो नियम के हम बाहर हो जाएगे। उस स्थिति का नाम ही मोक्ष है जो करने के बाहर हो गया है। लेकिन जो करने के भीतर है, वह कुछ न कुछ करता ही रहेगा। दूसरी बात यह भी समझ लेनी चाहिए। एक आदमी, हो सकता है कि चाटा मारने मे दुख न उठाए, आनन्दित हो। हम को लगेगा कि फिर उसके साथ क्या होगा ? लेकिन हमें ख्याल नही है कि जो आदमी चांटा मारने मे आनन्दित है वह आदमी नही रह गया है। वह आदमी से बहुत नीचे उतर गया है। और उसने चाटा मारने मे इतना खोया जितना कि चांटा मार कर दुखी होने वाला नही खोता है। इस बात को जरा ख्याल मे रखे। जो चाटा मार कर दुखी होता है, वह बहुत थोडा फल भोगता है लेकिन जो चांटा मार कर आनन्दित होता है उसने तो भारी फल भोग लिया। उसका तो विकास तल एकदम नीचे चला गया। वह तो एकदम जंगली हो गया। उसने दस हजार, बीस हजार, पचीस हजार साल मे जो विकास किया, सब खो दिया। उसका विकास तो इतना पिछड गया कि उसको

जन्म-जन्मान्तरो का चक्कर हो गया जिसमे कि वह वापस उस जगह भ्राए जहा कि चाटा मारने से दुख होता है। मेरा मतलब समझे भ्राप ? फल वह भी भोग रहा है। बहुत भारी फल भोग रहा है। उसका फल बहुत गहरा है, बहुत गहरा है।

प्रश्न : भ्रापने जो कहा कि जीवनग्रस्त कर्म की जो सूखी रेखा भ्रंकित होती है, उससे पुनर्जन्म का सिद्धान्त फलित होता है। भ्रापने कहा कि एक भ्रादमी हत्या करता है दस-बारह जन्मों तक तो उसके हत्यारा होने की सम्भावना बनी रहती है। पहले भ्रापने कहा था कि जो पहले जन्म में वेश्या होती है दूसरे जन्म मे उसकी वृत्ति दमन की होती है। कर्मों की सूखी रेखा से तो उसे वेश्या ही होना चाहिए।

उत्तर : ठीक कहते हैं। साधारणत: तुम समझते हो कि दमन कर्म नही है। भ्रसल मे दमन कर्म है, भोग भी कर्म है, वेश्या होना भी एक कर्म है।

प्रश्न : भ्रौर दमन भी कर्म है ?

उत्तर: हा दमन भी कर्म है। दमन की भी सूखी रेखा रह जाती है। सन्यासी है एक, साध्वी है एक। हजारो सूखी रेखाए है। हजारो हमारे कर्म हैं, हजारो रेखाभ्रो का जाल है। उस सब जाल की निष्पत्ति हम है। एक वेश्या, प्रतिदिन जब भी वह वेश्या के काम से गुजरती है, दुखी होती है। सामने उसके एक सन्यासिनी रहती है भ्रौर वेश्या दिन-रात सोचती है कि कैसा भ्रद्भुत जीवन है उसका। कैसा भ्रच्छा होता कि मैं सन्यासिनी हो जाती। तो दोहरी रेखाए पड रही हैं। वह वेश्या होने का कर्म कर रही है, यह उसकी एक रेखा है लेकिन उसमे भी प्रबल एक रेखा है कि वह वेश्या होने से पीड़ित है भ्रौर वह सन्यासिनी होना चाहती है। सामने जो सन्यासिनी रह रही है वह सुबह से साझ तक ब्रह्मचर्य साध रही है। लेकिन जब भी वेश्या के घर मे दिया जलता है, सुगधि निकलती है भ्रौर सगीत बजने लगता है तब उसका मन डावाडोल हो जाता है। भ्रौर वह सोचती है कि पता नही वेश्या कैसा भ्रानन्द लूट रही होगी। तो साध्वी भी दो रेखाए बना रही है। एक रेखा बना रही है वह साध्वी होने की भ्रौर दूसरी रेखा बना रही है वह वेश्या होने के भ्राकर्षण की। भ्रब इन सबके तालमेल पर निर्भर करेगा भ्रन्तत: कि साध्वी वेश्या हो जाए या वेश्या साध्वी हो जाए। मेरा मतलब है कि जिन्दगी मे हजार-हजार रेखाए काम कर रही हैं। सीधी रेखा नही है कोई, सीधा रास्ता नही है कोई। हजार-पगडडिया कट रही हैं। भ्रौर वे बहुकारणात्मक

हैं। और तुम खुद कभी थोड़ी देर गिर जाते हो, फिर थोड़ी देर उठ जाते हो। तुम कोई सीधी रेखा में नहीं चले जा रहे हो। कभी तुम अच्छे आदमी होने की रेखा में दो कदम चलते हो, दस कदम बुरे आदमी के होने मे हट आते हो। तुम्हारी जिन्दगी भी कोई ऐसी नहीं है कि तुम एक रास्ते पर सीधे चले जा रहे हो। तुम बार-बार चौराहे पर लौट आते हो। पीछे जाते हो, आगे जाते हो, बाए-दांए जाते हो। सब ओर तुम घूम रहे हो। इस सबका समूचा हिसाब होगा। तुम्हारे चित्त पर इस सब के सस्कार होंगे।

सप्तम प्रवचन

२३.६.१९७० रात्रि

७

थोड़ी सी बातें पिछले प्रश्नों के सम्बन्ध मे हो लें फिर...

यह जरूर पूछा जा सकता है कि यदि पता हो कि एक दुर्घटना होने वाली है तो क्या रुक जाना चाहिए। मगर क्यों रुक जाना चाहिए ? मैंने जो मेहर बाबा का उदाहरण दिया वह सिर्फ इस बात को समझाने के लिए कि क्या होने वाला है इसे भी जानने की पूर्ण सम्भावना है। लेकिन जो उन्होंने किया मैं उसके पक्ष मे नही हू। उनका हवाई जहाज से उतर जाना या मकान मे न ठहरना, इसके मै पक्ष मे नहीं हू। मेरी मान्यता यह है कि जीवन मे अगर पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति उपलब्ध करनी है तो स्वय को प्रवाह मे ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे किसी ने नदी मे अपने को छोड़ दिया हो, जो तैरता नहीं, सिर्फ बहता है, जो हो रहा हो, उसमे सहज बहता है। जीसस को जिस दिन सूली लगी उससे एक क्षण पहले उसने जोर से चिल्ला कर कहा, 'हे, परमात्मा ! यह क्या करवा रहा है ?' शिकायत आ गई और परमात्मा गलत कर रहा है यह भी आ गया। और जीसस परमात्मा से ज्यादा जानते हैं यह भी आ गया। लेकिन तत्क्षण जीसस की समझ मे आ गई बात कि कहने मे भूल हो गई है। तो दूसरा वाक्य उन्होने कहा "मुझे क्षमा करो ! मैं क्या जानता हू ? तेरी मर्जी पूरी हो।" फिर इसके बाद आखिरी वचन जो उन्होंने बोला उसमे कहा कि इन सब लोगो को माफ कर देना क्योकि ये लोग नही जानते कि ये क्या कर रहे हैं। वह उन लोगो की ओर इशारा कर रहा था जो उमे सूली दे रहे थे। और मेरी अपनी समझ यह है कि जिस क्षण जीसस ने कहा कि 'हे परमात्मा ! यह क्या कर रहा है, यह क्या करवा रहा है, यह क्या दिखला रहा है, तब तक वह जीसस ही थे और जैसे ही उन्होंने समग्र मन से यह कहा कि 'तेरी मर्जी पूरी हो, क्षमा कर' उसी क्षण वह क्राइस्ट हो गए। तो मैंने जो यह कहा कि मेहर बाबा लौट गया मकान से या हवाई जहाज से उतर गया, इसका बहुत गहरा अर्थ यह है कि व्यक्ति का अहकार अभी सुरक्षित है। अभी विश्व के प्रवाह मे वह अलग होने को, पृथक् होने को, अपने को बचाने को आतुर और उत्सुक है। मैंने यह नहीं कहा कि जो किया

वह ठीक किया। मैंने कुल इतना कहा कि इस बात की सम्भावना है कि बातें पहले से जानी जा सकती हैं। लेकिन परम स्थिति यह है कि जीवन एक बहाव हो, तैरना भी न रह जाए। जिन्दगी जहा ले जाए और जो हो उसके साथ चुपचाप राजी हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति को ही मैं आस्तिकता कहता हू। मैं कहूगा मेहर बाबा आस्तिक नही है। जरा मुश्किल होगी यह समझने मे। आस्तिकता का मतलब यह है कि मृत्यु भी आ जाए तो वह वैसे ही स्वीकृत है जैसा जीवन स्वीकृत था। भेद क्या है मृत्यु और जीवन मे? मकान के बचने मे और गिरने मे फर्क क्या है? जैसे पौधे अकुरित होते है, फूल बनते है इतना ही शात और चुपचाप बहाव होना चाहिए जिसमे अहकार कोई अवरोध ही नही डालता, कोई बाधा ही नही डालता। तभी मुक्ति पूरे अर्थों मे सम्भव है तो इसलिए मैं वैसा करने को गलत ही कहता हू। दूसरी बात पूछी जा सकती है कि यदि सकल्प से सब हो सकता है तो फिर कुछ भी किया जा सकता है, धन भी, यश भी कुछ भी इकट्ठा किया जा सकता है, चाहे वह परोपकार के लिए हो, चाहे स्वार्थ के लिए हो—हा निश्चित ही किया जा सकता है। इसमे कोई कठिनाई नही है। लेकिन वही कर सकेगा जो अभी धन के लिए जीता है, यश के लिए जीता है। अभी कल ही बात हो रही थी कि रामकृष्ण को कैंसर हो गया और रामकृष्ण के भक्त उनसे कहने लगे कि आप एक बार क्यो नही कह देते हैं मा को कि कैंसर ठीक करो। रामकृष्ण ने कहा कि दो बातें हैं। एक तो जब मैं उनके सामने होता हू तो मैं कैंसर भूल जाता हू। यानी ये दो बातें एकसाथ नही होनी है। जब मैं उस दशा मे होता हू तब कैंसर होना ही नही। और जब कैंसर होता है तब मैं उस दशा मे नही होता। इन दोनो का कभी ताल-मेल नही होता। और अगर हो भी जाए तो मैं परमात्मा से कहू कि कैंसर ठीक कर दे तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं परमात्मा से ज्यादा जानता हू। इसलिए जो हो रहा है, उसे सहज स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही है। विवेकानन्द बहुत गरीब थे। उनके पिता जब मरे तो बहुत कर्ज छोड गए। कई लोगो ने विवेकानन्द को कहा कि रामकृष्ण के पास जाते हो, उनसे पूछ लो कोई तरकीब, कोई रास्ता जिससे धन उपलब्ध हो जाए, कर्ज चुका दो। ऐसी हालतें थी कि दिन-दिन विवेकानन्द भूखे घूमते रहते, खाने को नही था। या घर मे इतना कम होता कि मा अकेला खा सकती या विवेकानन्द खा सकते। तो वह कहते कि आज मैं मित्र के घर निमन्त्रित हू तुम खाना

खा लो, मैं खाना खाकर लौटूगा। और वह भूखे हसते हुए घर आ जाते कि बहुत ही बढ़िया खाना आज मित्र के घर मिला। इतना भी नही था घर मे उपाय, इन्तजाम। एक मित्र ने कहा कि रामकृष्ण से पूछ लो। रामकृष्ण के पास विवेकानन्द गए और कहा कि क्या करूं, गरीबी है। उन्होने कहा कि इसमे कहने की क्या बात है? सुबह प्रार्थना के बाद 'मा' को कह देना कि ठीक कर दे, सब इन्तजाम कर दे। विवेकानन्द गए, प्रार्थना करके वापस लौटे। रामकृष्ण ने पूछा 'कहा? विवेकानन्द ने कहा "मुह ही न खुला। क्योकि यह बात ही अशोभन मालूम पडी कि प्रार्थना से भरे चित्त मे पैसे को लाया जाए।" फिर दूसरे दिन, फिर तीसरे दिन ऐसा ही हुआ। भूखे हैं, रोटी नही मिल रही है, कर्जदार पीछे पडे हैं। रामकृष्ण रोज-रोज पूछते हैं : 'क्यो? आज कहा? तो वह लौटकर कहते है नही, परमहस देव, यह नही हो सकेगा। क्योकि जब मैं प्रार्थना मे होता हू तो इतना धनी हो जाता हू कि निर्धनता कहा? कैसी? कौन निर्धन? और जब प्रार्थना के बाहर आता हू तो फिर वही निर्धन हो जाता हू जो था। तब मन करने लगता है कि कह दू। लेकिन जब प्रार्थना मे होता हू तो मुझसे धनी कोई होता ही नही।

सकल्प जितना-जितना प्रगाढ होता चला जाएगा, उतना ही उसका उपयोग कम होता चला जाएगा। यह समझने जैसी बात है। असल मे सकल्प के उपयोग की जो हमारी चित्तवृत्ति है वह सकल्प के न होने के कारण ही है। जैसे-जैसे सकल्प होता जाएगा घना वैसे-वैसे संकल्प का उपयोग बन्द होता चला जाएगा। इस जगत मे सिर्फ शक्तिहीन ही शक्ति के उपयोग की बात सोचते हैं। जिनके पास शक्ति है वे कभी उसका उपयोग करते ही नही। क्योकि शक्ति की उपलब्धि में ही शक्ति के अनुपयोग की सम्भावना छिपी है। आकस्मिक, अनायास कुछ हो जाए तो हो जाए लेकिन सोचते, विचारते, शक्ति का कोई उपयोग नही होता। मगर हमे ऐसा लगता है क्योकि हम धन को मूल्यवान् समझते हैं। एक छोटा बच्चा है। उसके लिए खिलौना मूल्यवान् है। उसका पिता उससे कहता है कि भगवान् से मैं जो भी प्रार्थना करू हो जाता है। तो बच्चा कहता है कि मेरे लिए एक खिलौना क्यो नही माग लेते। बाप कहता है। पागल, खिलौना मागकर भी क्या करेंगे? क्योकि बाप के लिए खिलौने बेकार हो गए हैं और यह कल्पना के बाहर है कि परमात्मा से खिलौने मांगे जाए। लेकिन बच्चे की समझ से यह बाहर है कि खिलौने जैसी बढ़िया चीज भगवान् से क्यो नहीं मांग लेते। सबूत हो जाएगा कि

कैसा भगवान् है ? कैसी शक्ति है ? खिलौने जब तक हमे सार्थक है तब तक हमें लगता है कि अगर भगवान् मिल जाए तो हम खिलौने ही मांग ले। अगर सकल्प जग जाए तो धन ही ले ले। मगर यह भी ध्यान रहे कि ऐसे चित्त में संकल्प जगेगा भी नही। और फिर भी ऐसा नही है कि तुम एकहरा व्यक्तित्व लेकर पैदा होते हो। अनन्त सम्भावनाए लेकर तुम पैदा होते हो। एक बच्चा पैदा हुआ। उसके सन्यासी होने की सम्भावना है क्योकि उसने सन्यासी होने की भी एक रेखा डाली हुई है। उसके बदमाश होने की भी सम्भावना है क्योकि उसने वह भी रेखा बाधी हुई है। वह अनन्त सम्भावनाए लेकर पैदा हुआ है। अनन्त सुखी रेखाए उसे आमन्त्रित करेगी। अब जो रेखा प्रबल सिद्ध हो जाएगी उसमे वह जाएगा। तो हमारी सारी कठिनाई यह है कि नियम जो हैं, उन्हे जब समझाता है कोई तो वे सीधी रेखा मे होते है। और जिन्दगी जो है, वह बहुत सी रेखाओ की काट-पीट है। जब मै समझाने बैठता हू और जब तुम एक नियम समझ लेते हो तब तत्काल तुमको दूसरा ख्याल आ जाता है कि उसका क्या होगा। और उपाय नही है कोई सा भी इकट्ठा समझाने का। अगर मैं क्रोध समझाऊगा तो क्रोध समझाऊगा, घृणा समझाऊगा तो घृणा समझाऊगा, प्रेम समझाऊ गा तो प्रेम समझाऊ गा, दया समझाऊ गा तो दया समझाऊ गा और तुम एक साथ सब हो—दया भी, प्रेम भी, घृणा भी, क्रोध भी। टुम्हारी सब सम्भावनाए है। कोई तुम्हे प्रेम से बात करेगा, तुम प्रेमपूर्ण हो जाओगे। कोई छुरी दिखाएगा, तुम क्रोधपूर्ण हो जाओगे। तुम सब हो। क्योकि व्यक्ति है अनन्त कारणो से भरा हुआ। और जब हम समझाने बैठते है तो एक ही कारण को चुनना पडता है। भाषा रेखाबद्ध है। जिन्दगी अनन्त रेखाओ का जाल है। इसलिए भाषा मे बहुत भूल होती है क्योकि भाषा सीधी जाती है एक रेखा मे। मैं करुणा समझाऊंगा तो करुणा समझाता चला जाऊ गा। अब करुणा के साथ ही साथ एकदम से क्रोध कैसे समझाऊ, घृणा कैसे समझाऊ ? वह समझाना मुश्किल है। फिर उनको अलग-अलग समझाऊ गा। ये सब अलग-अलग रेखाए बन जाएगी। व्यक्ति मे ये सब रेखाए अलग-अलग नही है, सब इकट्ठी जुड़ी खडी हैं।

प्रश्न : अगर कोई बलवान रेखा है उसके कर्म करने की, अब उससे जो कमजोर रेखा है उसकी छाया उसमें साथ आएगी या नहीं ?

उत्तर हा बिल्कुल साथ आएगी।

प्रश्न : एक कमरा है, मच्छर हैं, चीटियां हैं, मक्खियां हैं तो एक मन आता है फिल्ट लगा दो। एक मन आता है फिल्ट न लगाओ। इसमें मन की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो जाती है। तो उसमें क्या उचित है ?

उत्तर : उचित वही है जो आप कर सकोगे और करोगे। उचित मानकर आप चले तो मुश्किल मे पड़ जाओगे। अगर मैंने कह दिया कि फिल्ट लगाना उचित नही है तो रात भर मुझको गाली दोगे क्योकि मच्छर काटेंगे। या मेने कह दिया कि फिल्ट लगाना उचित है तो आप समझेंगे कि हिंसा मैंने की। फल उसका मै भोगूंगा। यह उचित, अनुचित का सवाल नही है। आप सोचो और जिओ। जो ठीक लगे, करो।

सकल्प जग सकता है मगर तभी जब चित्त की धारणाए चली जाए। सकल्प जग जाए तो फिर इनके प्रयोग का कोई मतलब नही क्योकि जब धारणाए छूटे तभी सकल्प जगता ह। यानी कठिनाई कुछ ऐसी है जैसा बेंक के सम्बन्ध मे कहा जाता है। बैंक उस आदमी को पैसे उधार देता है जिसको पैसे की कोई जरूरत नही। और जिस आदमी को जरूरत है उसे बैंक पैसा उधार नही देता क्योकि जिसे जरूरत है उससे लौटने की सम्भावना नही। बेंक पक्का पता लगा लेता है कि इस आदमी को पैसे की जरूरत नही है। फिर बैंक जितना चाहे उतना उधार देता है। और पक्का पता लग जाए कि इस आदमी को पैसे की जरूरत है तो बेंक हाथ खीच लेता है, पैसे नही देता है। यह बडा उल्टा है नियम। होना तो ऐसा चाहिए था कि जिसे पैसे की जरूरत हो उसे बैंक पैसा दे लेकिन बेंक उसको पैसा नही देता। बैंक सिर्फ उसी को पैसा देता है जिसको कोई जरूरत नही है।

तो मेरा कहना है कि परमात्मा की विराट शक्ति उन्ही को उपलब्ध होती है जिन्हे कोई जरूरत नही। और जिन्हे जरूरत है उन्हे उपलब्ध नही होती। जीसस का कहना है कि जो अपने को बचाएगा वह नष्ट हो जाएगा और जो अपने को खोने के लिए राजी है उसे कोई भी नष्ट नही कर सकता। जो मांगेगा उससे छीन लिया जाएगा और जो छोडकर भागने लगेगा उसे दे दिया जाएगा। असल मे मागने वाला चित्त सकल्प ही नही कर सकता। उसका कारण है क्योंकि मांगने वाला चित्त दीन और दरिद्र होता है कि सकल्प जैसी सम्पदा उसके पास नही हो सकती। असल मे न मांगने वाला संकल्प कर सकता है। लेकिन हम संकल्प भी इसीलिए करते हैं कि कुछ मांग

लेंगे। तब सारी कठिनाई हो जाती है, सारी असुविधा हो जाती है। तो इसकी बात भी तनिक कर लेनी चाहिए।

जैसा मैंने कहा कि महावीर को कोई फर्क नही पडता शादी हो या न हो। एक सीमा पर सब बराबर है और जहा सब बराबर है, वहीं मुक्ति है। और जहा तक भेद है वहा तक मुक्ति नही है। जहा तक शर्त है कि ऐसा होगा तो ठीक, और ऐसा न होगा तो गलत हो जाएगा वहा तक हम बंधे हुए हैं। यह चुनाव ही बाधता है। मै कहता हू ' बस ऐसा, तो शात रहूगा, आनन्दित रहूगा। ऐसा न हुआ तो फिर अशान्त हो जाऊगा। शाति और अशाति, आनन्द और निरानन्द बधे हुए हैं कहीं। मैं मुक्त नही हू। ऐसा नहीं है कि मैं हर हालत मे आनन्दित रहू। जो आदमी हर हालत मे आनन्दित है उसको कोई शर्त नही है। उसकी तो यह भी शर्त नही कि बीमार रहे कि स्वस्थ, जिन्दा रहे कि मर जाए, शादी हो कि न हो, मकान हो कि न हो। उसे कोई शर्त ही नही। वह बेशर्त जीता है, जो भी हो जीता है।

मै अपना ही उदाहरण देता हू। शादी के लिए मैंने कभी मना किया ही नही। क्योकि मना भी वही करता है जिसके मन मे कही 'हा' छिपा हो। 'हा' छिपा हो तभी 'न' सार्थक होती है। और कई बार तो 'न' का मतलब ही 'हा' होता है, यानी 'न' सिर्फ ऊपर की होती है, हा, पीछे होती है। मैं विश्वविद्यालय मे लौटा तो घर के लोग चिन्तित थे। शादी की बडी चिन्ता थी। मुझसे पहली रात मेरी मा ने पूछा कि शादी के सम्बन्ध मे क्या ख्याल है। मैने उससे कहा कि दो-तीन बाते समझने जैसी है। पहली तो यह कि मैंने अब तक शादी नही की इसलिए मुझे कोई अनुभव नही। तो मेरे 'हा' और 'न' दोनो गैर-अनुभवी के होगे। दूसरा यह कि तुमने शादी की है। तुम्हारा जिन्दगी का अनुभव है। तुम पन्द्रह दिन सोच लो और फिर मुझे कहना कि तुमने शादी करने के बाद कोई ऐसा आनन्द पाया जिससे तुम्हारा बेटा वचित न रह जाए तो मैं शादी कर लूगा। और अगर तुम्हे लगा कि शादी करके तुमने कोई आनन्द नही पाया और तुम्हे शादी के बाद कई बार ऐसा ख्याल आया कि न ही की होती तो अच्छा था तो मुझे सचेत कर देना कि कही मैं कर न बैठू। मेरी ओर से न 'न' है, न 'हा' है। मेरी ओर से कोई शर्त ही नही है। मैंने बात सीधी सामने रख दी क्योकि मेरा कोई अनुभव ही नही है। अभी मैंने शादी नही की है, कर सकता हू। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जो मुझे प्रेम करते हैं उनको इतना तो मेरे लिए सोचना ही चाहिए कि उन्होंने जो अनुभव

किया है वह अगर ऐसे किसी आनन्द का है जिससे मैं वंचित रहूं तो उन्हें दुख होगा तो मैं शादी कर लूंगा। फिर मुझसे पूछना ही मत। और अगर कहीं तुम्हारा ऐसा अनुभव हो कि तुमने दुख पाया तो तुम्हारा पहला काम होगा मुझे सचेत कर देना ताकि कहीं मैं भूल-चूक से भी शादी न कर लूं। पन्द्रह दिन बाद मां ने मुझे कहा कि मुश्किल मे डाल दिया है। क्योंकि खोजने गई हूं तो कैसा आनन्द ? अब मैं नही कह सकती हूं कि तुम शादी करो। वैसे तुम्हारी मर्जी। मैंने कहा अब जब मेरी मर्जी होगी मैं तुमसे कहूंगा। यानी तब तक के लिए बात स्थगित हो गई और वह मर्जी नही हुई। न मैंने कभी नहीं कहा है, न कभी हां कहा है। यहां भी कोई समझाने-बुझाने वाला आ जाए तो मैं राजी हो सकता हूं। इसमे कोई तकलीफ की बात नही है, इसमे कोई अड़चन नहीं है। मेरे पिता के एक मित्र थे। बड़े वकील थे बड़े तार्किक थे। दूसरे गांव मे रहते थे। पिता ने उनको कहा कि आप आकर समझाएं। वे आए, रात आकर रुके। आते ही उन्होंने मुझ से कहा कि चाहे कितने भी दिन मुझे रुकना पड़े मैं यह सिद्ध करके जाने वाला हूं कि शादी बहुत उपयोगी है। मैंने कहा कि इसमे देर की जरूरत ही नहीं। आज ही आप मुझे समझा दें, आज ही मैं राजी हो जाऊं। लेकिन ध्यान रहे यह एक तरफा नहीं रहेगा मामला। उन्होंने कहा . क्या मतलब ? मैंने कहा आप समझाएंगे तो मुझे भी कुछ बोलने का हक होगा। और अगर सिद्ध कर दिया कि शादी करना आनन्दपूर्ण है तो मैं कल सुबह हां भर दूंगा। और अगर सिद्ध हो गया कि आनन्दपूर्ण नहीं है तो आपका क्या इरादा है ? क्या आप शादी छोड़ने को राजी है ? क्योंकि अकेला एकतरफा मामला ठीक नहीं है। यह अन्याय हो जाएगा। यानी मैं दांव लगाऊं जिन्दगी और आप बिना दांव के लड़ें तो फिर मजा नही आएगा। उन्होंने कहा कि तुम ठहर जाओ। मैं सुबह तुमसे बात करूंगा। मेरे उठने के पहले वह जा ही चुके थे। पिता से कह गए थे कि मैं इस झंझट मे नही पड़ता। इस झंझट से मुझे कोई जरूरत नहीं।

संदिग्ध हमारा मन है भीतर तो हम किसी को क्या समझायेंगे ? फिर बहुत वर्ष बाद जब वे मुझे मिले तो उन्होंने कहा : "तुमने मुझे बहुत चिन्ता मे डाल दिया। मैं रात-भर सो नहीं सका। फिर मैंने कहा कि यह ज्यादती होगी क्योंकि मै खुद ही छोड़ने की हालत मे बैठा हूं। मैंने कहा इस बात मे मुझे पड़ना ही नहीं है। और मै हार जाता क्योंकि मै भीतर से ही कमजोर था। यानी मैं खुद ही इस पक्ष का हूं कि बहुत गल्ती हो गई लेकिन अब

कोई उपाय नही।" लेकिन मैंने मना नही किया। अभी तक कोई समझाने वाला नही आया। क्या करें, कोई उपाय नही है। इसलिए उसकी चिन्ता नही लेनी चाहिए।

कर्म के सम्बन्ध मे आप पूछते हैं कि यह जो विकास हो रहा है जिसमे ये जो पशु-पक्षी हैं मनुष्य योनि तक आ गए हैं क्या अपने आप चल रहा है या उनकी सचेत चेष्टा भी इसमे सहयोगी है। मेरा कहना है कि विकास दो तलो पर चल रहा है। डार्विन की खोज बडी गहरी है लेकिन एकदम अधूरी है। डार्विन ने शरीर के विकास पर सारा सिद्धान्त निर्धारित किया है। ऐसा मालूम पडता है कि कभी न कभी कुछ लाख वर्ष पहले, बन्दर के ही शरीर से मनुष्य के शरीर की गति हुई होगी। बन्दर के शरीर की व्यवस्था, उसके मस्तिष्क, उसकी हड्डी, मास-पेशिया सब खबर देती हैं कि उससे ही मनुष्य का शरीर आया होगा और खोज करते-करते कहा जा सकता है कि किसी न किसी रूप मे मछली से जीवन-यात्रा शुरू हुई होगी और मछली भी किसी न किसी प्रकार के पौधे से ही आई होगी। इस सब के लिए लम्बा वैज्ञानिक अन्वेषण हुआ है। और यह बात तय हो गई है कि इस तरह का क्रमिक विकास शरीर मे हो रहा है। लेकिन चूकि विज्ञान आत्मा की फिक्र ही नही करता, इसलिए बात अधूरी है और आधे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होते है क्योकि आधे सत्यो मे पूर्ण सत्य होने का भ्रम पैदा होता है। यह विकास का एक आधा हिस्सा है। दूसरा हिस्सा वह है जिसके लिए महावीर जैसे लोगो की खोज कीमती है। वह कहते है कि चेतना भी विकसित हो रही है। अगर शरीर ही अकेला है बस तब सब विकास परिस्थितिगत है और प्रकृति के नियम के अनुकूल है। क्योकि अगर शरीर अकेला हो तो इच्छा का सवाल ही नही उठता। लेकिन अगर चेतना भी है तो विकास सहज हालत मे नही हो सकता क्योकि चेतना का मतलब ही है कि जो यान्त्रिक नही है। एक पखा चल रहा है। पखें का चलना बिल्कुल यात्रिक है। पखे की कोई इच्छा काम नहीं कर रही। लेकिन अगर पखे की आत्मा हो तो पखा कभी भी कह सकता है कि आज बहुत सर्दी है, नहीं चलते। या आज बहुत थक गए हैं, आज चलने का मन नही है। कभी तेजी से भी चल सकता है अगर प्रेमी पास आ जाए। दुश्मन आ जाए तो बद भी हो सकता है। मगर पंखे के पास कोई चेतना नही है। किन्तु जहा चेतना है वहा विकास स्वचालित नही हो सकता। उसमे चेतना सक्रिय रूप से भाग लेगी। लेकिन जो हमे विकास दिख रहा है वह

मालूम पड़ रहा है और सचेष्ट विकास की यात्रा बहुत कम नजर आती है तो हम कहते हैं कि विकास शायद निन्यानबे प्रतिशत स्वचालित है। एक आध प्रतिशत विकास स्वेच्छा से होता है। लकिन जैसे-जैसे हम ऊपर की तरफ आते हैं विकास सचेष्ट मालूम होता है। मनुष्य के साथ यह मामला है कि उस के साथ जो विकास होगा वह निन्यानवें प्रतिशत स्वेच्छा से होगा, नही तो विकास होगा ही नही। और इसलिए मनुष्य कोई पचास हजार वर्षों से ठहर गया है। अब उस मे कोई विकास लक्षित नही होता। दस लाख वर्ष के भी जो शरीर मिले हैं उनमे भी कोई विकास हुआ नही दिखता। उनमे और हमारे अस्थि-पजर मे कोई बुनियादी फर्क नही पडा है, न हमारे मस्तिष्क मे कोई बुनियादी फर्क पडा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मे निन्यानवे प्रतिशत स्वेच्छा पर निर्भर करेगा। कोई बुद्ध, कोई महावीर—यह स्वेच्छा का विकास है और अगर हम स्वचालित विकास से प्रतीक्षा करते रहे तो एक ही प्रतिशत विकास की सम्भावना है जो बहुत ही धीरे-धीरे घिसटती रहेगी। जितने पीछे हम जाते हैं, उतनी स्वेच्छा कम है, यात्रिकता ज्यादा है। मनुष्य तक आते हैं तो स्वेच्छा ज्यादा है, यात्रिकता कम है। लेकिन निम्नतम योनि मे भी एक अश स्वेच्छा का है जो कि उसे चेतन बनाता है। नही तो चेतन होने का कोई अर्थ नही। यानी चेतन होने का अर्थ यही है कि विकास मे हम भागीदार हैं और पतन मे हम जिम्मेदार हैं। चेतना का मतलब यही है कि हमारा दायित्व है, हमारी जिम्मेदारी है। जो भी हो रहा है उसमे, हम जो हो सकते है उसमे अन्ततः हम जिम्मेदार हैं। सारा विकास—चाहे पशु, पक्षी, मछली, कीड़-मकोडे, पौधा—कोई भी विकसित हो रहा हो उसकी इच्छा सक्रिय होकर काम कर रही है। पहचानना मुश्किल है। हम कैसे पहचाने कि पशु पक्षी मानव योनियो मे प्रवेश कर रहे हैं। कई रास्ते हो सकते है लेकिन सरलतम रास्ता एक ही है। और वह यह कि जो मनुष्य चेतनाए आज हैं अगर हम उन्हे उनके पिछले जन्मो मे उतार सकें तो हम पा जाएंगे पता इस बात का कि वे पिछले जन्मों में पशुओं और पौधो से भी होकर आई हैं। जातीय स्मरण के गहरे प्रयोग महावीर ने किए हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो उनके निकट आता वह उसे जातीय स्मरण के प्रयोग मे ले जाते ताकि वह जान सके कि उसकी पिछली यात्रा क्या है। यहा तक भी वह जान सके कि वह पशु कब था, कैसा पशु था, और पशु होने में उसने कौन सा कर्म किया कि वह मनुष्य हो सका। और अगर यह उसे पता चल जाए कि पशु होने मे उसने

कुछ किया जिससे वह मनुष्य बना तो उसे ख्याल में हो सकता है कि मनुष्य होने मे कुछ करे तो वह और ऊपर जा सकता है। महावीर एक व्यक्ति को समझा रहे थे। रात है। महावीर का संघ ठहरा है। हजारो साधु, सन्यासी ठहरे हुए हैं। एक बडी धर्मशाला मे निवास है। एक राजकुमार भी दीक्षित है। पुराने साधुओ को ज्यादा ठीक जगह मिल गयी। मगर राजकुमार वह जो बीच का रास्ता है धर्मशाला का, उस पर सोया हुआ है। रात भर उसे बड़ी तकलीफ हुई है, बडा कष्ट हुआ है। यह ऐसा अपमान ! वह राजकुमार था, कभी जमीन पर चला नही था, आज गलियारे मे सोया है। वृद्ध साधुओ को कमरे मिल गए हैं, वह गलियारे मे पडा हुआ है। रात भर कोई गलियारे से निकलता है, तो उसकी नीद टूट जाती है। वह बार-बार सोचने लगा कि बेहतर है मैं लौट जाऊ। जो था वही ठीक था। यह क्या पागलपन मे मैं पड गया हू। ऐसा गलियारो मे पडे-पड़े तो मौत हो जाएगी। यह मैंने क्या भूल कर दी। सुबह महावीर ने उसे बुलाया और कहा · तुझे पता है कि पिछले जन्म मे तू कौन था ? उसने जवाब दिया कि मुझे कुछ पता नही। तो महावीर उससे उसके पिछले जन्म की कथा कहते हैं : पिछले जन्म मे तू हाथी था। जगल मे आग लगी। सारे पशु, सारे पक्षी भागे। तू भी भागा। जब तू पैर उठा रहा था और सोच रहा था कि किधर को जाऊ तभी तूने देखा कि एक छोटा-सा खरगोश तेरे पैर के नीचे आकर बैठ गया है। उसने समझा कि पैर छाया है, बचाव हो जाएगा और तू इतना हिम्मतवर था कि तूने नीचे देखा कि खरगोश है तो तूने फिर पैर नीचे नही रखा। तू फिर पैर ऊचा ही किए खडा रहा। आग लग गई, तू मर गया लेकिन तूने खरगोश को बचाने की मरते दम तक चेष्टा की। उस कृत्य की वजह से तू आदमी हुआ है। उस कृत्य ने तुझे मनुष्य होने का अधिकार दिया है। और आज तू इतना कमजोर है कि रात भर गलियारे मे सो नही सका और भागने की सोचने लगा। तो उसे याद आती है अपने पिछले जन्म की और पता चलता है कि ऐसा था। तब सब बदल जाता है। भागने की, पलायन की, छोड़ने की, भयभीत होने की सारी बात खत्म हो जाती है। अब वह दृढ़ सकल्प पर खडा हो जाता है। अब एक नई भूमि उसे मिल जाती है।

एक रास्ता यह है कि हम व्यक्तियो को उनके पिछले जन्मो में ले जाएं। उससे पता चलेगा कि वे किस योनि से कैसे विकसित हुए, कौन-सी घटना थी जिसने उन्हे मूलत. हकदार बनाया कि वे ऊपर की जिन्दगी मे चले जाएं।

यही सरलतम रास्ता है दूसरा रास्ता कठिन है बहुत । और वह यह है कि हम दस बीस पशुओ के निकट रहे और उनसे आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करे । हमे पता चलेगा कि उनमे भी अच्छे, बुरे हैं । वे जो दस कुत्ते हमे दिखाई पड रहे हैं, वे सब एक जैसे कुत्ते नही है । उनका अपना-अपना व्यक्तित्व है ।

स्विटजरलैंड के एक स्टेशन पर एक कुत्ते का स्मारक बना हुआ है । वह दुनिया मे अकेला स्मारक है कुत्ते के लिए । सन् १६३० या १६३२ की घटना है । एक आदमी के पास एक कुत्ता है । हर रोज जब वह आदमी दफ्तर जाता है सुबह दस बजे की ट्रेन पकडकर तो वह कुत्ता उसे स्टेशन छोडने जाता है । जब ट्रेन छूटती है तब वह कुत्ता खडा हुआ उसे बिदा देता रहता है । ठीक पाच बजे जब वह लौटता है तो कुत्ता स्टेशन पर खड़ा रहता है जहा उसका मालिक उतरता है । ऐसा हर रोज चलता है । ऐसा कभी नही हुआ कि वह सुबह छोडने न आया हो । ऐसा भी कभी नही हुआ कि वह ठीक पाच बजे शाम अपने मालिक को लेने न आया हो । लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि मालिक गया और नही लौटा । एक दुर्घटना हुई शहर मे और मालिक मर गया । पाच बजे कुत्ता लेने आया । गाडी खड़ी हो गई लेकिन मालिक नही उतरा । तो फिर उसने एक-एक डिब्बे मे जाकर झाका, चिल्लाया, पुकारा । लेकिन मालिक नही है । फिर स्टेशन के लोगो ने उसे भगाने की कोशिश की लेकिन किसी भी हालत मे वह भगा नही और जो भी ट्रेन आती उस पर मालिक को खोजता । ऐसे पन्द्रह दिन उसने पानी नही पिया, खाना नही खाया और वह भी उसी जगह खडा हुआ मर गया जहा उसका मालिक उसे रोज पाच बजे की ट्रेन से आकर मिलता था । सब तरह के उपाय किए गए कि वह एक टुकडा रोटी का खा ले लेकिन उसने इन्कार कर दिया । स्विटजरलैंड के अखबारो मे सब तरफ चर्चा हो गई । उस कुत्ते के बड़े-बडे फोटो छपे । लेकिन उस कुत्ते ने हटने से इन्कार कर दिया । उसको वहा से भगाओ, वह फिर पाच-दस मिनट बाद वहा हाजिर । उसने स्टेशन का पीछा नही छोडा और जब तक जिन्दा रहा, हर गाड़ी पर चिल्लाता रहा, रोता रहा । उसकी आख से आसू टपकते । वह एक-एक डिब्बे मे झाकता । कमजोर हो गया । चल नही सकता । वह अपनी जगह पर ही बैठा है और रो रहा है। आखिर वही वह मर गया है, जहा मालिक को उसे मिलना था । अब ऐसा कुत्ता कोई साधारण कुत्ता नही । इसके व्यक्तित्व मे कुछ ऐसा है जो कि मनुष्य तक मे कम होता है । यह गति कर जाएगा । इसकी गति निश्चित

है। यह उस जगह से ऊपर उठने वाला है। इसकी चेतना ने कदम उठा लिया है जो इसे आगे ले जाएगी। उसका स्मारक बना है। वह स्मारक के लायक कुत्ता था। कई आदमी भी स्मारक के लायक नहीं होते जिनके स्मारक बने हुए हैं।

दूसरा रास्ता यह है कि हम पशु-पक्षियों के निकट जाकर उनको जानें, पहचानें। इसके भी बहुत से प्रयोग किए गए हैं और इनके आधार पर कहा जा सकता है कि विकास स्वेच्छा से हो रहा है। इसलिए सारे प्राणी विकसित नही हो पाते। जो श्रम करते है विकसित हो जाते हैं। जो श्रम नही करते वे पुनरुक्ति करते रहते हैं उसी योनि मे। अनन्त पुनरुक्तिया भी हो सकती हैं। लेकिन कभी न कभी वह क्षण आ जाता है कि पुनरुक्ति ऊबा देती है और ऊपर उठने की आकाक्षा पैदा कर देती है। तो विकास किया हुआ है, चेतना श्रम कर रही है विकास मे। वह जितनी विकसित होती चली जाती है, उतने विकसित शरीर भी निर्णय कर लेती है। इसलिए शरीर मे जो विकास हो रहा है वह भी, जैसा डार्विन समझता है कि स्वचालित है, वैसा नही है। जितनी चेतना तीव्र विकास कर लेती है उतना शरीर के तल पर भी विकास होना अनिवार्य हो जाता है। लेकिन वह होता है पीछे, पहले नही होता। यानी बन्दर का शरीर अगर कभी आदमी का शरीर बनता है तो तभी जब किसी बन्दर की आत्मा इसके पूर्व आदमी की आत्मा का कदम उठा चुकी होती है। उस आत्मा की जरूरत के लिए ही पीछे मे शरीर भी विकसित होता है। आत्मा का विकास पहले है, शरीर का विकास पीछे है। शरीर सिर्फ अवसर बनता है। जितनी आत्मा विकसित होती चली जाती है उतना विकसित शरीर को भी बनना पडता है। मनुष्य आगे भी गति कर सकता है और ऐसी चेतना विकसित हो सकती है जो मनुष्य से श्रेष्ठतर शरीरो को जन्म दे सके। इसमे कोई कठिनाई नही है। लेकिन मनुष्य तक आ जाना कोई साधारण घटना नही है। लेकिन जो मनुष्य है उसे यह ख्याल नही आता। हम जिन्दगी ऐसे गवाते है जैसे कि मुफ्त मे मिल गई हो। मनुष्य हो जाना असाधारण घटना है। लंबी प्रक्रियाओ, लंबी चेष्टाओ, लबे श्रम और लंबी यात्रा से मनुष्य की चेतना-स्थिति उपलब्ध होती है। लेकिन अगर हमने ऐसा मान लिया कि यह मुफ्त में मिल गई है, और अक्सर ऐसा होता है कि अमीर बाप का बेटा जब घर मे पैदा होता है तो वह घर की सम्पत्ति को मुफ्त में हुआ ही मान लेता है। वह एक ही काम करता है कि बाप की

अमीरी कैसे विसर्जित हो। बाप कमाता है, बेटा गंवाता है। क्योंकि बेटे को अमीरी जन्म से उपलब्ध हुई है। उसे लगता है कि यह तो है ही। उसे कभी ख्याल भी नहीं होता कि कितने श्रम से वह अमीरी खडी की गई है। फोर्ड एक दफा इग्लेंड आया। स्टेशन से उतर कर उसने इक्वायरी आफिस मे जाकर पूछा कि लन्दन मे सबसे सस्ता होटल कौन-सा है। सयोग से इन्क्वायरी वाला आदमी फोर्ड को पहचानता था। उसने कहा "आप सस्ते होटल पूछते हैं। आप फोर्ड ही हैं!" उसने कहा, "हा, मैं फोर्ड ही हू। सस्ता होटल कौन सा है सबसे ज्यादा?" उसने कहा "मुझे हैरानी मे डालते हैं आप। आपका बेटा आता है तो वह पूछता है कि सबसे महगा होटल कौन सा है?" फोर्ड ने कहा · "वह फोर्ड का बेटा है। मैं फोर्ड हू। मैं गरीब आदमी था, श्रम करके पैसा कमा पाया हू। यह अमीर आदमी पैदा हुआ है, श्रम करके गरीब होने की कोशिश करेगा। मैं गरीब आदमी था। मैं सचेत हू पूरी तरह कि कैसे कमा पाया हू। वह अमीर का बेटा है। हैनरी फोर्ड का बेटा है। उसको ठहरना ही चाहिए महगी से महगी जगह। लेकिन मैं ठहरा हैनरी फोर्ड।" यह हैनरी फोर्ड एक पुराना कोट पहने रहता था वर्षों से। वह कभी बदलता ही नहीं था उसको। कोट फट गया तो सिलवा लेता, ठीक करवा लेता। किसी मित्र ने कहा कि आपको यह कोट शोभा नहीं देता। तो हैनरी फोर्ड ने कहा कि लोग मुझे ठीक-ठीक पहचानते है कि मैं हैनरी फोर्ड हू। मैं चाहे कोई भी कोट पहन लू इससे कोई फर्क नहीं पडता। यह तो मेरे बच्चो के लिए है कि वे शानदार कोट पहने ताकि लोग पहचान सकें कि हैनरी फोर्ड के लड़के हैं।

तो हम एक जन्म मे जो कमाते हैं दूसरे जन्म मे वह हमारी सहज उपलब्धि होती है। यानी दूसरे जन्म मे वह हमे सम्पत्ति की तरह मिलती है और पिछला जन्म हमें भूल जाता है जैसे कि बेटे को बाप का श्रम भूल जाता है। पिछले जन्म मे जो हमने कमाया है उसे हम इस जन्म मे भूल जाते हैं और हम उसे अक्सर गवाना शुरू करते हैं। धन के बाबत ही नहीं, पुण्य के बाबत, ज्ञान के बाबत, चेतना के बाबत भी यही होता है। अवसर का उपयोग और बढ़े इसके लिए हम आगे और कुछ भी नहीं कर पाते। जो हो गया है वही हम भटक जाते है। इसीलिए लोग एक ही योनि मे बार-बार पुनरुक्त होते हैं। लाख बार भी पुनरुक्त हो सकते हैं। नीचे कोई नहीं जाता। नीचे जाने का कोई उपाय नहीं है। पीछे कोई लौट नहीं सकता। लेकिन

जहां है वही पुनरुक्त हो सकता है या आगे जा सकता है। दो ही उपाय हैं : या तो आप आगे जाए या जहा हैं वही भटकते रह जाए। और जहा हैं अगर आप वही भटकते रहते हैं तो विकास अवरुद्ध हो जाएगा और अगर आप आगे जाते हैं तो विकास फलित होगा। विकास चेष्टा पर निर्भर है, सकल्प पर निर्भर है, साधना पर निर्भर है। इसीलिए इतने बडे प्राणीजगत मे मनुष्यो की संख्या बहुत कम है। बढ़ती भी है तो बहुत धीरे-धीरे बढ़ती है। आज हमे लगता है कि बहुत जोर से बढ़ रही है तो वह भी हम सिर्फ मनुष्य को सोचते हैं, इसलिए ऐसा लगता है। अगर हम प्राणीजगत को देखे तो मनुष्य से ज्यादा छोटी सख्या का कोई प्राणी नही है जगत मे। एक घर मे इतने मच्छर हो सकते है जितनी पूरी मनुष्य जाति। और करोडो योनियां हैं। एक-एक योनि मे कितने असख्य व्यक्ति है। इतने थोडे है लोग। जैसे कोई एक मन्दिर बनाए और बडी भारी नीव भरे, फिर उठते-उठते, आखिर मीनार पर एक छोटी सी कलगी उठी रह जाए। ऐसा बडा भवन है जीवन का, उससे मनुष्य की कलगी बडी छोटी-सी ऊपर उठी रह गई है। अगर हम सारे प्राणीजगत को देखे तो हमारी कोई सख्या ही नही है। हम एक बडे समुद्र मे एक छोटी बूद से ज्यादा नही हैं। लेकिन अगर हम मनुष्य को देखे तो हमे बहुत ज्यादा मालूम पडता है कि साढे तीन अरब आदमी हैं और हमे चिन्ता हो गई है कि हम कैसे बचाएगे इतने आदमियो को, कैसे खाना जुटाएगे, कैसे मकान बनाएगे, कैसे क्या करेगे? लेकिन यह कोई बडी सख्या नही है। और ध्यान रहे, मेरी अपनी यह समझ है कि जब जरूरत पैदा होती है तब नए उपाय तत्काल विकसित हो जाते है जैसे आने वाले पचास वर्षों मे होने वाला है। आदमी के जन्म को, जीवन को रोकने की सभी चेष्टाओ से कुल इतना ही हो सकता है कि जितनी तीव्रता से गति हो रही है, वह शायद न हो। लेकिन इन आने वाले पचास वर्षो मे भोजन के नए रूप विकसित हो जाएगे। जैसे कि हम समुद्र के पानी से भोजन निकाल सकेंगे, हवा और सूरज की किरणो से सीधा भोजन लिया जा सकेगा। आने वाले पचास वर्षों मे भोजन के नए रूप विकसित होगे जो कभी नही थे पृथ्वी पर।

दूसरी बात जो मैं समझता हू बहुत कीमत की है। जैसे बड़ी चेष्टा चली चाद पर जाने की, मंगल पर जाने की। यह चेष्टा पृथ्वी पर संख्या के अधिक बढ़ जाने का आन्तरिक परिणाम है। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि रूस और अमेरिका मे दौड लगी हुई है चांद पर जाने की। लेकिन बहुत

गहरे में आने वाले सौ वर्षों में मनुष्य की संख्या का तीव्रता से बढ़ने का जो भय है उससे नई जमीन की खोज शुरू हो गई है, जहा हम आदमी को पहुचा सकें। एक जमाना था जबकि आदमी एक जगह से दूसरी जगह भटकता रहता था क्योकि एक जगह का खाना खत्म हो जाता था। फल टूट गए तो दूसरी जगह चला जाता था। फिर आदमी इतने हो गए कि एक जगह के फल नही टूटे, सभी जगह के फल एकसाथ टूटने लगे तो दूसरी जगह कहा जाओ। फिर हमे जमीन पर पैदावार करनी पड़ी। फिर खेती भी पर्याप्त नही साबित हुई। तब हमे औद्योगिक व्यवस्था करनी पड़ी। अब वह भी पर्याप्त साबित नही होगी तो हमे नई व्यवस्थाए करनी पड़ेगी। पृथ्वी इतनी भारग्रस्त हो जाए, इतनी बडी सख्या में नीचे की योनियो से मनुष्य मे प्राणी आ जाये तो कही दूसरी जगह हमको खोजनी पडेगी। वह जगह हम किन्ही दूसरे कारणो से खोजते रहेगे, यह दूसरी बात है; क्योकि हमे बहुत कुछ साफ नही है कि क्या होता है भीतर। लेकिन भीतर अचेतन शक्ति धक्के देती रहती है कि पृथ्वी के बाहर जगह खोजो क्योकि आज नही कल, पृथ्वी के बाहर बसने की जरूरत पडेगी। जैसा मैंने कहा कि जब नई चेतना विकसित होती है तब नए शरीर लेने पडते हैं। जब एक चेतन समाज की सख्या बढ़ती है तब नए ग्रह-उपग्रह बसाने पडते है। पहला जीवन जो पृथ्वी पर आया है, वह भी वैज्ञानिक नही बता पाते कि कैसे आया। वैज्ञानिक विकास बता पाते हैं। लेकिन विकास तो उसी चीज का होता है, जो हो। विकास तो बाद की बात है। जीवन आया कहा से? कैसे आया? विकास तो ठीक है कि मछली आदमी बन गई। लेकिन मछली? वह प्राण कहा से आया? कोई कहे कि पौधा मछली बन गया। पौधे मे वह प्राण कहा से आया? यानी प्राण को कही न कही से आने की जरूरत पड़ी है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हू दूसरी बात— वह यह कि जब एक मा गर्भ के योग्य होती है तो एक आत्मा उसमे प्रवेश करती है। जब एक पृथ्वी या एक उपग्रह जीवन के योग्य होता है तो दूसरे ग्रहो-उपग्रहो से वहां जीवन प्रवेश करता है। और कोई उपाय नहीं। यानी जो पहला जीवाणु है, यह सदा प्रसार करता है। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि वह किसी दूसरे ग्रह से आएगा। हो सकता है उस ग्रह पर जीवन समाप्त होने के करीब आ गया हो। इस सम्बन्ध मे यह भी समझ लेना जरूरी है कि बुद्ध या महावीर, या मैं या कोई भी जब इतना श्रम करते हैं कि लोग विकसित हो तो कही ऐसा कभी हुआ है? ऐसा बहुत बार हुआ है मगर हमारी दृष्टि बहुत

छोटी है और हम बहुत कम जानते हैं। अगर आदमी का इतिहास हम जानते हैं व्यवस्थित रूप से तो मुश्किल से जीसस के बाद का। इतिहास जीसस से शुरू होता है। तभी तो हम लिखते हैं ईसा के बाद और ईसा के पहले। ईसा के बाद इतिहास व्यवस्थित है और उससे पहले सब धूमिल है। फिर हम बहुत खीचें तो पाच हजार साल से पहले का हमे कुछ अन्दाज नही बैठता। पृथ्वी पर आदमी दस लाख वर्षों से है। पृथ्वी दो अरब वर्षों से है। लेकिन पृथ्वी बहुत नया जन्म है। सूरज पृथ्वी से कई हजार अरब वर्ष पहले से है। लेकिन हमारा सूरज सारे जगत मे सब से नया सूरज है। और जो चारो तरफ हमे तारे दिखाई पडते हैं, वह महासूर्य है जिनमे हमारा सूरज बहुत छोटा है। पृथ्वी से सूरज साठ हजार गुना बडा है। लेकिन यह सबसे छोटा तारा है। इससे करोड़, दो करोड गुने बडे तारे हैं। वे हमे छोटे-छोटे दिखाई पड़ते हैं क्योकि फासला अन्तहीन है। सूरज से हम तक किरण आने मे दस मिनट लगते है और किरण की गति होती है एक सैकेंड मे १ लाख ८६ हजार मील। दस मिनट सूरज से आने मे लगते हैं। जो सूरज के बाद निकटतम तारा है उससे चार वर्ष लगते हैं हम तक किरण के आने मे। गति वही है एक लाख छयासी हजार मील प्रति सैकेंड। रोशनी चलेगी आज, आएगी चार वर्ष बाद। इतना हमारा फासला है। लेकिन वह निकटतम तारा है। उसके बाद जो तारा है उससे आठ वर्ष लग जाते हैं हम तक किरण के आने मे। और उसके बाद फासले बढते चले जाते है। ऐसे तारे भी हैं कि जब पृथ्वी बनी थी यानी दो अरब वर्ष पहले तब की उनकी रोशनी चली है, अब आ पाई है। और ऐसे तारे भी हैं कि उनकी रोशनी अभी तक नही पहुची। और ऐसे तारे होगे जिनकी रोशनी कभी नही पहुचेगी। उनकी चली हुई रोशनी जब तक आएगी तब तक पृथ्वी बन कर जा चुकी होगी। यह जो अन्तहीन विस्तार है इसके अनन्त विस्तार में अनन्त पृथ्विया हैं। अनेक पृथ्वियो पर जीवन है। उन जीवनो ने अनेक बार अन्तिम स्थिति भी पाई है। असल मे बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट जैसे लोग न केवल मनुष्य जाति के अतीत मे प्रवेश करते हैं बल्कि जीवन की समस्त सम्भावनाओ में, समस्त लोकों मे, प्रवेश करते हैं और वही से आश्वासन पाते हैं इस बात का कि पूर्णता बहुत बार हो चुकी है। वह आश्वासन आकस्मिक नही है। लेकिन हमारी दृष्टि बहुत छोटी है। एक कीडा है जो वर्षा मे पैदा होता है, फिर वर्षा मे मर जाता है। उससे कोई कहे कि वर्षा फिर आएगी, वह कहेगा कभी सुना नही, कभी आई नही। न

मेरे मां-बाप ने कहा, न मेरे पुरखों ने लिखा। वर्षा एक ही बार आती है क्योंकि किसी भी कीडे ने दो बार वर्षा नही देखी क्योंकि वह कीडा तो वर्षा मे ही पैदा होता है, वर्षा ही में मर जाता है। अनुभूति का कोई सवाल नहीं है और स्मृति लिखने का और स्मृति बनाने का कोई सवाल नही है।

हम पृथ्वी पर ही जीते हैं और पृथ्वी पर ही मर जाते हैं। जानने की सीमा इतनी छोटी है कि हमे पता नही है कि अंतहीन विस्तार में, इस पूरे ब्रह्माड मे कितने-कितने लोगो मे जीवन सम्भव है। उस जीवन से भी सम्बन्ध स्थापित करने की निरन्तर चेष्टाए की गई हैं। वैज्ञानिक चेष्टाए चल रही हैं। धार्मिक चेष्टा बहुत पुरानी है और सम्बन्ध किए गए हैं। उन्ही सम्बन्धो ने बडे आश्वासन दिए है और उन आश्वासनो ने भरोसा दिया है कि अगर कही जीवन और गहराई मे विकसित हुआ है, और आनन्द मे विकसित हुआ है कि मनुष्य दिव्य हो गया है कही, तो यहा भी हो सकता है। कोई बाधा नही है। फिर, दूसरा और बडा आश्वासन यह है कि जो व्यक्ति इस तरह कोशिश कर रहा है वह तो उपलब्ध हो ही गया है। और जिस दिन उसने जान लिया है कि यह हो सकता है, उस दिन सम्भावना खुल गई है कि यह सबके लिए हो सकता है। कोई बाधा नही है। अगर हम बाधा न बनें तो वह सम्भावना खुल सकती है पृथ्वी पर भी। वह होगी अवश्य किन्तु देर लग सकती है। लेकिन समय के इतने बडे प्रवाह मे देर का कोई अर्थ ही नही होगा। बस देर हमारे छोटे मापदड की वजह से है। नापने का मापदड बहुत छोटा है। उससे हम नापते हैं तो बहुत लम्बा मालूम पडता है। अभी महावीर को हुए वक्त ही कितना हुआ। ढाई हजार वर्ष हुए। हमारे लिए यह बडा लम्बा फासला है। लेकिन जिस विस्तार की मैं बात कर रहा हूं उसमें ढाई हजार वर्ष का क्या मतलब? हमने नाप की बात की है। एक चीटी एक आदमी के ऊपर चढ जाती है तो समझती है कि हिमालय पर पहुंच गई हू। इसमे कोई झूठ भी नही क्योंकि चीटी और आदमी का अनुपात है। चीटी का नाप कितना? हमारा नाप कितना? बहुत छोटा नाप है और वह छोटा नाप हमारे जीवन के साथ है। जीवन को हम सौ साल की अवधि से नापते हैं। लेकिन जिन व्यक्तियो की अतीत में उतरने की सम्भावना है, या जिन व्यक्तियो ने अतीत मे उतरने की चेष्टा की है वह अलग बात है। उन्होंने जीवन को पूरा जान लिया है कि एक है पृथ्वी का जीवन। यह पृथ्वी का जीवन जहा से आता है, जिन लोगों से आता है, उन लोगो की इस जीवन के

भीतर कहीं-न-कहीं स्मृति भी होती है। उन लोगो मे भी इस स्मृति से प्रवेश हो सकता है—विज्ञान शायद प्रवेश नही कर पाएगा। क्योंकि चांद पर विज्ञान पहुंचा, बडी कीमती घटना घटी लेकिन अब अगर मंगल पर पहुचता है तो एक वर्ष जाने मे और एक वर्ष आने मे लगेगा और सूर्य के जितने उप-ग्रह हैं उनमे किसी पर जीवन नही है पृथ्वी को छोडकर। सूर्य के उपग्रह छोडकर अगर किसी दूसरे उपग्रह पर जाना है तो मनुष्य की उम्र का अंत ही नहीं। अगर दो सौ वर्ष आने-जाने मे लगे तो कोई उपाय नही। जिस तारे से चार वर्ष लगते है प्रकाश आने में तो जिस दिन हम प्रकाश की गति को वाहन बना लेंगे, उस दिन चार वर्ष लगेगे हमको जाने मे, चार वर्ष लगेगे आने मे। लेकिन प्रकाश की गति का वाहन कभी हो सकेगा ? क्योकि कठि-नाई यह है कि प्रकाश की गति जिस चीज मे भी हो जाय वही प्रकाश हो जाएगा। यानी किरण ही हो जाएगी वह चीज। यानी उतनी गति पर अगर किसी चीज को चलाया तो वह ताप की वजह से किरण हो जाएगी। तो प्रकाश की गति असम्भव मालूम पडती है। क्योंकि प्रकाश की गति पर हवाई जहाज चला तो जैसे ही वह उतनी गति पकडेगा वह पिघलेगा और प्रकाश हो जाएगा, क्योंकि उतनी गति पर उतना ताप पैदा हो जाता है और उतने ताप पर किरण बन जाती है। प्रकाश की गति पर किसी दिन वाहन ले जाया जा सकेगा, यह असम्भव है। तो विज्ञान हमारे सभी जीवनो से सम्बन्ध बना सकेगा, यह करीब-करीब असम्भव बात है। लेकिन इतना हो सकता है कि विज्ञान की इस सारी खोज-बीन के बाद हमे यह ख्याल मे आ सके कि धर्म यह सम्बन्ध बना सकता है। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि जैसे ही अन्तरिक्ष की यात्रा शुरू हुई है, रूस और अमेरिका दोनो ही योग मे उत्सुक हो गए है। अमरीका ने कमीशन बिठाई तीन-चार वैज्ञानिको का। सारी दुनिया का चक्कर लगाओ और इसकी खबर लाओ कि क्या विचार का सम्प्रेषण बिना माध्यम के हो सकता है, खबरें लाई गई हैं। क्योकि इस बात का डर है कि अन्तरिक्ष मे यात्री जाए, उसका यत्र बिगड जाए और वह कोई खबर न दे सके। वह अन्तहीन मे खो जाएगा। उसका हमे दुबारा कभी पता भी नही लगेगा कि वह कहा गया ? तो एक व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर यत्र भी खो जाए तो वह सीधा विचार के सम्प्रेषण से खबर दे सके। अगर विचार का सम्प्रेषण सीधा हो सके तभी यह सम्भावना है कि हम दूसरे लोगो के जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर सकें। क्योंकि तब विचार की गति का

सवाल ही नही। विचार में समय लगता ही नही। यानी अगर मैं विचार सम्प्रेषित कर सकता हू तो मैंने विचार सम्प्रेषित किया और आपने पाया, इसके बीच में पल भी नही लगता। जिसको महावीर समय कहते है, पल का भी लाखवां हिस्सा, वह भी नही लगता। विचार समयातीत सम्प्रेषित होता है। तो उसी दिन विचार के सम्प्रेषण से ही दूसरे जीवनो से सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। महावीर, बुद्ध, जीसस, ऐसे जीवन की तलाश मे हैं। सम्बन्ध स्थापित करने की पूरी कोशिश की गई है और कुछ बातें खोज भी ली गई हैं कि वह सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, हुआ है। उस सम्बन्ध के आधार पर कामना बनती है, आशा बनती है कि पृथ्वी पर भी यह हो सकता है, इसमे कोई कठिनाई नही है।

कल जो मैंने कहा उससे स्पष्ट हुआ होगा कि एक ही जन्म नही है। जन्मो की एक लम्बी यात्रा है। हम जो आज हैं, वह हम एकदम आज के ही नही हैं। हम कल भी थे, परसो भी थे। एक अर्थ मे हम सदा थे किन्ही भी रूपो मे। कभी पक्षी मे, कभी पत्थर मे, कभी खनिज में, कभी इस ग्रह पर, कभी उस ग्रह पर। हम सदा थे। होने के साथ हम एक हैं। अस्तित्व मे हमारी प्रतिध्वनि सदा थी। लेकिन मूर्च्छित से मूर्च्छित थी। अमूर्च्छित होती चली गई है, जागृत होती चली गई है। हममे से सभी थे। जरूरी नही कि महावीर से सम्बन्धित हुए, जरूरी नही कि महावीर के पास थे, जरूरी नही कि महावीर के प्रदेश मे थे। लेकिन सब थे। कही होगे, इससे कोई फर्क नही पडता। यह भी हो सकता है कि हममे से कोई महावीर के निकट भी रहा हो, उस गाव मे भी रहा हो जहा से महावीर गुजरे हो। जरूरी नही कि हम मिलने गए हो। क्योकि महावीर गांव से गुजरे तो कितने लोग मिलने जाते हैं इसकी कोई आवश्यकता नही। महावीर गांव मे ठहरे भी हो और दस-बीस लोग भी मिले हो तो ठीक है। न मिले हो तब भी जरूरी नही। हम सदा थे और हम सदा रहेगे। मूर्च्छित या अमूर्च्छित दो बाते हो सकती हैं। अगर मूर्च्छित रहे हो तो हमारा होना न होना बराबर था। जब से हम अमूर्च्छित होते हैं, जागते हैं, चेतन होते हैं, तभी से हमारे होने मे कोई अर्थ है। और जितने हम चेतन होते चले जाते हैं उतना ही हमारा होना गहरा होता जाता है। उतना ही हमारा अस्तित्व प्रगाढ, समृद्ध होता चला जाता है। शायद उस अर्थ मे होना हमारा अभी भी नही। अभी भी बस हम हैं। यह जो होने की लम्बी यात्रा है, इसमें बहुत बार शरीर बदलने जरूरी हैं।

क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है, उसकी सीमा है। वह चूक जाता है। असल मे कोई भी पदार्थ से निर्मित वस्तु शाश्वत नही हो सकती। पदार्थ से जो भी निर्मित होगा वह बिखरेगा, जो बनेगा वह मिटेगा। शरीर बनता है मिटता है। लेकिन पीछे जो जीवन है, वह न बनता है न मिटता है। वह सदा नए-नए बनाव लेता है। पुराने बनाव नष्ट हो जाते हैं, फिर नए बनाव लेता है। यह नया बनाव उसके सस्कार, उसने क्या दिया, क्या भोगा, क्या किया, क्या जाना—इन सब का इकट्ठा सार है। इसे समझने के लिए दो तीन बातें समझ लेनी चाहिए। एक शरीर हमे दिखाई पडता है जो हमारा ऊपर का है। एक और शरीर है ठीक इसके ही जैसी आकृति का जो इस शरीर मे व्याप्त है। उसे सूक्ष्म शरीर कहे, कर्म शरीर कहे, मनोशरीर कहे, कुछ भी नाम दे—काम चलेगा। इस शरीर से मिलता हुआ, ठीक बिल्कुल ऐसा ही अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओ से निर्मित सूक्ष्म देह है। जब यह शरीर गिर जाता है तब भी वह शरीर नही गिरता है। वह शरीर आत्मा के साथ ही यात्रा करता है। उस शरीर की खूबी है कि आत्मा की जैसी मनोकामना होती है, वैसा ही आकार ले लेता है। पहले वह शरीर आकार लेता है और तब उस आकार के शरीर मे आत्मा प्रवेश करती है। अगर एक सिंह मरे तो उसके शरीर के पीछे जो छुपा हुआ सूक्ष्म शरीर है, वह सिंह का होगा। लेकिन वह मनोकाया है। मनोकाया का मतलब यह है कि जैसे हम एक गिलास मे पानी डालें, उस गिलास का हो जाए रूप उसका, बर्तन मे डालें बर्तन जैसा हो जाए, बोतल मे भरे, बोतल जैसा हो जाए। हमारा स्थूल शरीर सख्त है और हमारा सूक्ष्म शरीर तरल है। वह किसी भी आकार को ले सकता है तत्काल। अगर एक सिंह मरे और उसकी आत्मा विकसित होकर मनुष्य बनना चाहे तो मनुष्य शरीर ग्रहण करने के पहले उसका सूक्ष्म शरीर मनुष्य की आकृति को ग्रहण कर लेता है। वह उसकी मनोआकृति है। सुन्दर, कुरूप, अन्धा, लगडा, स्वस्थ, बीमार—वह उसकी मनोआकृति है जो उसके शरीर को पकड जाती है। सूक्ष्म शरीर जैसे ही देह ग्रहण कर लेता है, मनोआकृति बन जाता है। वैसे ही उसकी खोज शुरू हो जाती है गर्भ के लिए। अब यह भी समझना जरूरी है कि व्यक्ति स्त्री या पुरुष जीवन मे अनेक सम्भोग करते हैं लेकिन सभी सम्भोग गर्भ नही बनते। और यह भी जानकर हैरानी होगी कि एक सम्भोग मे एक व्यक्ति के इतने वीर्य अणु नष्ट होते हैं जिससे अन्दाजन एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। यानी एक पुरुष अगर जिन्दगी मे साधारणत: आम तौर से कोई तीन हजार से लेकर चार हजार

सम्भोग करता है और एक सम्भोग मे अन्दाजन एक करोड़ बच्चे के सम्भावना-बीज हैं तो अगर एक पुरुष के सारे अणु प्रयुक्त हो सकें और वास्तविक बन सकें तो एक पुरुष अन्दाजन चालीस करोड बच्चो का पिता बन सकता है। स्त्री की यह सम्भावना नही है क्योकि उसका महीने में एक ही बीज परिपक्व होता है। वह महीने मे सिर्फ एक व्यक्ति को जन्म दे सकती है। लेकिन एक को भी नही दे पाती क्योंकि नौ महीने सिर्फ एक व्यक्ति उसके व्यक्तित्व को रोक लेता है। सभी सम्भोग सार्थक नही होते। और उसका कारण है जो कि अभी तक वैज्ञानिक नही सोच पाए। स्त्री का बीज मौजूद है। उस पर पुरुष के एक करोड बीज एकदम से हमला करते हैं। और ध्यान रहे कि जो बाद मे प्रकट होते है गुण वह बीज मे ही छिपे होते है। पुरुष के सारे बीजाणु हमलावर होते हैं, तेजी से हमला करते है। स्त्री का बीज प्रतीक्षा करता है वह हमला नही करता। यह जो एक करोड वीर्याणु है बहुत तेजी से गति करते हैं। यह जानकर आप हैरान होगे कि प्रतियोगिता शुरू हो जाती है। वहा जो प्रतियोगिता मे आगे निकल जाता है, वह जाकर स्त्रीअणु से एक हो जाता है। जो पीछे छूट जाता है, वह हट जाता है, मर जाता है, समाप्त हो जाता है। लेकिन प्रत्येक बार सम्भोग से गर्भ नही बनता। उसका वैज्ञानिक कारण नही खोज पाये अब तक। और नही खोज पायेगे। उसका कारण यह है कि गर्भ तभी बन सकता है जब वैसी आत्मा प्रवेश करने के लिए आतुर हो। वह हमे दिखाई नही पडता। दो अणु मिलते हैं, इतना हमे दिखाई पडता है। स्त्री और पुरुष के अणुओ का मिलन सिर्फ जन्म नही है, यह है सिर्फ अवसर भर जिसमे एक आत्मा उतर सकती है।

प्रश्न : लेकिन अब तो सम्भावना है बगैर सम्भोग के ही ?

उत्तर सम्भोग से कोई सम्बन्ध ही नही है सम्भावना का। सम्बन्ध तो सिर्फ दो अणुओ के मिलन का है। वह मिलन सम्भोग के द्वारा हो रहा है, यह प्रकृति की व्यवस्था है। कल सिरिंज के द्वारा हो सकता है, वह विज्ञान की व्यवस्था होगी।

प्रश्न : इसमें से हर एक अणु ही उसमे इस्तेमाल हो सकते हैं ?

उत्तर : हा, हो सकते हैं और वह तभी हो सकेंगे जब इतनी आत्माएं जन्म लेने के लिए आतुर हो जाए कि गर्भ व्यर्थ हो जाए। और इसलिए मैं कह रहा हूं कि सब जरूरतें अनुकूल तैयार होती हैं, यह हमारे ख्याल मे नही आता। यानी अब तक, इस बात की जरूरत ही नहीं पड़ी थी कि हम वीर्य

अणु को प्रयोगशाला में ले जाकर बच्चा पैदा करें। लेकिन अब जरूरत पड जाएगी इसलिए क्योकि स्त्री की सम्भावना समाप्त होने के करीब आ गई है। वह एक बच्चे को नौ महीनों मे जन्म दे सकती है। वह कितने ही बच्चो को जन्म दे, बीस-पचीस बच्चो से ज्यादा जन्म नही दे सकती। अधिकतम जन्म देने वाली स्त्री ने छब्बीस बच्चो को जन्म दिया है। उसकी सम्भावना इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन अगर मनुष्य आत्माओ का तीव्र आगमन होने लगे तो फौरन उपाय करने पडेगे। वह हमको दिखता नही अभी कि आखिर हम यह उपाय किसलिये कर रहे हैं या यह कभी सम्भव हो सकता है। और तब तो एक व्यक्ति के पूरे के पूरे चालीस करोड़ बीजाणुओ का भी गर्भधारण हो सकता है। लेकिन वह होगा तभी जब आत्मा उतरने को आतुर हो। और मेरा मानना है कि यह जो एक करोड की सम्भावना है एक सम्भोग मे और चालीस करोड की सम्भावना है एक व्यक्ति के जीवन मे वह इसलिए है कि आज नही कल, हजार वर्ष बाद, दस हजार वर्ष बाद इतनी जीव-आत्माए मुक्त होगी कि इन सब अणुओ की जरूरत पडने वाली है। नही तो इसका कोई मतलब नही है। और प्रकृति बे-मतलब कोई काम नही करती। जो भी शरीर मे है, उसकी कोई गहरी सार्थकता है, वह हमे पता हो, या न हो। और अगर आज उसकी सार्थकता नही तो कल उसकी सार्थकता हो सकती है। एक मा और एक बाप के व्यक्तित्व से निर्मित जो बीजाणु हैं, वह सम्भावना बनते हैं एक ऐसे व्यक्ति को जन्म देने की जो इन दोनो की सम्भावनाओ से तालमेल खाता हो। इसलिए जो लोग समझ सकते है इस विज्ञान को वे यह भी निश्चित करवा सकते हैं बहुत गहरे मे कि कैसे बच्चे उनको पैदा हो। सम्भोग के क्षण मे यह उनकी मनोदशा, उनके मनोभाव, उनकी चित्तस्थिति निर्धारित करेगी।

प्रश्न—ये जो महावीर और बुद्ध के सम्बन्ध में हमे ढेर कहानियां प्रचलित मिलती हैं, वह किस अर्थ में सार्थक हैं? जैसे महावीर के सम्बन्ध में है कि इतने स्वप्न आते हैं या बुद्ध के सम्बन्ध मे है कि इतने स्वप्न आते हैं?

उत्तर: स्वप्न आते है, या नही आते हैं यह महत्त्वपूर्ण नही है। महत्त्वपूर्ण सिर्फ इतना है कि ऐसे स्वप्न जिस चित्त मे आते हो, उस चित्त की एक विशिष्ट अवस्था होगी तो ये स्वप्न आएगे। सब स्वप्न सबको नहीं आते। चित्त की अवस्था पर स्वप्न निर्भर करते हैं। एक आदमी क्रोधी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिनमे क्रोध होगा। एक आदमी कामी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिनमे काम होगा। एक आदमी लोभी है तो वह ऐसे

स्वप्न देखता है जिनमें लोभ होगा। स्वप्न वे ही हैं जो व्यक्ति के चित्त की अवस्थाए हैं। महावीर जैसा व्यक्ति पैदा होना है तो वह साधारण मनोदशा में पैदा नहीं हो जाता। उसके माता पिता के भीतर चित्त की, शरीर की एक विशिष्ट अवस्था जरूरी है तभी वैसी आत्मा प्रवेश कर सकती है। और उसके पहले के लक्षण भी जरूरी हैं। वे लक्षण भी होने चाहिएं। प्रतीक हैं वे लक्षण। वे इस बात की खबर देते है कि चित्त कैसा है। फ्रायड कहता है कि अगर कोई आदमी स्वप्न मे मछली देखता है तो वह सेक्स का प्रतीक है। हजारो स्वप्नों का अध्ययन करने के बाद यह नतीजा निकाला गया कि स्वप्न मे मछली देखना सेक्स से सम्बन्धित है। मछली जननेन्द्रिय का प्रतीक है। गलत भी हो सकता है उसका ख्याल। लेकिन हजार स्वप्न अध्ययन किए हैं जिसने उसे ऐसा लगता है कि यह हो सकता है। अभी तक महावीर के स्वप्नो या बुद्ध के स्वप्नो का कोई मनोवैज्ञानिक अध्ययन नही हुआ। उनकी माताओ के स्वप्नो का अध्ययन हो सकता है। लेकिन बडी कठिनाई यह है कि ऐसे व्यक्ति बडी सख्या मे पैदा नही हुए। इसलिए तालमेल बिठाने के लिए उपाय नही हं हमारे पास। तोल नही बिठाई जा सकती। कहा जाता है कि महावीर की मा को स्वप्न मे सफेद हाथी दिखाई पडे। साधारणत सफेद हाथी दिखाई नही पडते। आप इतने लोग यहा बैठे है शायद ही किसी को स्वप्न मे हाथी दिखाई पडा हो। और सफेद हाथी दिखाई पडे तो यह सम्भावना और न्यून हो जाती है। महावीर की मा को अगर सफेद हाथी दिखाई पड़ा है तो यह अपवाद ही है। अगर इस तरह के सौ-दो सौ स्वप्न अध्ययन न किए जा सके तो सफेद हाथी किस बात का प्रतीक है, यह तय करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन फ्रायड ने ही पहली बार यह काम नही किया है। जैनो के चौबीस तीर्थंकरो की माताओ के स्वप्नो मे जो ताल-मेल है इस बात की भी फिक्र की जाती रही है कि जब तीर्थंकर पैदा होता है तो उसकी मा को क्या स्वप्न आते है। उसके जन्म के पहले उसकी चित्तदशा क्या है? शात है, अशात है, आनन्दपूर्ण है, प्रेमपूर्ण है, घृणापूर्ण है, क्रोधपूर्ण है, पवित्र है, दिव्य है, साधारण है, क्षुद्र है, कैसी है? यह बिल्कुल ठीक है कि चित्त की विशिष्ट दशा मे ही ऐसी आत्मा उतर सकती है। चगेजखां या तैमूरलग पैदा हो तो भी फिक्र की जानी चाहिए कि उनकी माताए कैसे स्वप्न देखती हैं। फिक्र नहीं की गई है। हिटलर पैदा हो, स्टालिन पैदा हो, तो कैसे स्वप्न उनकी माताएं देखती रही हैं इसकी भी फिक्र की जानी

चाहिए। तो शायद हमे यह साफ हो सके कि चित्त की एक विशिष्ट दशा में ऐसी आत्मा प्रविष्ट होती है। इतना तो तथ्य है कि हर दशा में हर आत्मा प्रविष्ट नहो होती। मां-बाप सिर्फ अवसर बनते है आत्मा के उतरने के, अवतरण के। आत्मा एक शरीर को छोड़ती है। जैसे ही मरती है मूच्छित हो जाती है। और दूसरे जन्म तक मूच्छित ही रहती है। यानी मा के पेट के नौ महीनो मे भी मूच्छित ही रहती है। लेकिन कुछ आत्माए सचेत मरती हैं वे मा के पेट मे भी सचेत हो सकती हैं। जो सचेत मरेगा, वह मां के पेट मे भी सचेत होगा। तो यह कहानियां आकस्मिक नही हैं कि मा के पेट मे भी कुछ सीखा जा सके और बाहर की बातें सुनी जा सकें, या बाहर के अर्थ ग्रहण किए जा सके। यह असम्भव नहीं है। अगर कोई आत्मा मरते वक्त पूर्ण चेतन थी, होश नही खोया था, शरीर होशपूर्वक छोड़ा था तो वह आत्मा होशपूर्वक शरीर लेगी। लाओत्से के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वह बूढा ही पैदा हुआ क्योकि पैदा होते ही उसने ऐसे लक्षण दिखाए जो कि अत्यन्त वृद्ध ज्ञानी मे होने चाहिए। और बचपन से उसमे ऐसी बाते दिखाई पडने लगी जो कि बडे अनुभव के बाद ही हो सकती है। सचेतन रूप से मरा हुआ व्यक्ति सचेतन रूप से पैदा हो सकता है। तो मा के पेट मे महावीर के सकल्प करने की बात अर्थ रखती है। "मैं अपने माता-पिता को दुख नही दूगा, उनके जीते सन्यास नही लूगा" इस बात का सकल्प गर्भ मे किया गया है। लेकिन सामान्यतः हम मरते समय बेहोश हो जाते हैं और दूसरे जन्म तक यह बेहोशी जारी रहती है। असल में प्रकृति की यह व्यवस्था है मूर्च्छा करने की। जैसा हम आपरेशन करते है एक आदमी का तो हम उसे मूच्छित कर देते हैं ताकि मूर्च्छा मे जो भी हो उसे पता न चल सके। क्योकि पता चलना बहुत घबराने वाला भी हो सकता है। इसलिए प्रकृति की व्यवस्था है मरने के पहले मूच्छित करने की और दूसरे जन्म तक मूर्च्छा ही रहती है। और इस मूर्च्छा मे जो भी होगा—जैसा कि मैंने कहा कि आत्मा शरीर ग्रहण करेगी तो वह बिल्कुल स्वाभाविक है। स्वाभाविक का मतलब यह है कि आत्मा रुझान जैसी है अचेतन, वह उस तरफ यात्रा कर जाएगी। सचेतन रूप से जन्म बहुत कम लोग लेते हैं। सचेतन रूप से वही लोग जन्म ले सकते हैं जिन्होने पिछले जीवन मे चेतना की बडी गहरी उपलब्धि की है। और तब वे जानते है पिछले जन्मो को, मृत्यु को, मरने के बाद को।

तिब्बत मे एक प्रयोग होता है—बारदो। दुनिया मे जिन लोगो ने खोज

की है मृत्यु के बाबत उनमे सबसे ज्यादा लोग तिब्बत के हैं। बारदो एक अद्भुत प्रयोग है। आदमी मरता है तो भिक्षु उसके आस-पास खड़े होकर बारदो का प्रयोग करते हैं। जब वह मर रहा होता है तब वे उसे चिल्लाकर कहते हैं कि होश रख, होश रख, सभल, बेहोश मत हो जाना क्योंकि बड़ा मौका आया है जैसा कि मरने का मौका फिर सौ वर्ष के बाद आया हो। वे उसे हिलाते हैं, जगाते है। आप हैरान होगे। ओस्पेन्सी नाम का एक अद्भुत विचारक चलते-चलते मरा, लेटा नही। अभी मरा दस-पन्द्रह साल पहले। और उसने अपने सारे शिष्यो को इकट्ठा कर लिया मरने से पहले। वह चलता ही रहा। उसने कहा कि मैं होश मे ही मरूगा। मैं लेटना भी नहीं चाहता कि कही झपकी न लग जाए। चलता ही रहा। जो लोग मौजूद थे उन्होंने लिखा है कि जो अनुभव हमे उस दिन हुआ वह कभी नहीं हुआ कि कोई आदमी इतने होश से मर सकता है। टहलता ही रहा और कहता रहा कि बस, अब यह होता है, अब यह होता है। अब मैं यहा डूब रहा हूं, अब मै इस जगह पहुच रहा हू, अब बस इतने सैकेंड मे स्वास चली जाएगी। वह एक-एक चीज को नाप कर बोलता रहा। और पूरा सचेत मरा। मरा तब सचेत खडा था। बारदो मे उस आदमी को चिल्ला चिल्लाकर सचेत करते हैं कि जागे रहना, सो मत जाना। देखो—ऐसा, ऐसा होगा, घबराओ मत। बेहोश मत हो जाना। और फिर अगर वह आदमी होश मे रह जाता है तो "बारदो" की प्रक्रिया आगे चलती है। फिर उसको बताते हैं अब ऐसा होगा, देख, गौर से देख भीतर कि अब ऐसा होगा, अब ऐसा होगा। अब शरीर से प्राण इस तरह छूटेगा। अब शरीर छूट गया, तू घबराना मत। तू मर नही गया है। शरीर छूट गया है। लेकिन देख तेरे पास देह है, गौर से देख, घबडा मत। वह पूरे प्रयोग करवाएगे मरते वक्त। और मरने की प्रक्रिया बहुत कीमती है। अगर उस वक्त किसी को सचेत किया जा सके तो उसके जीवन में एक क्रान्ति हो गई जो बहुत अद्भुत है। लेकिन सचेत उसको रखा जा सकता है जो जीवन मे सचेत होने का प्रयोग कर रहा हो। मैं जिस श्वास के अभ्यास के लिए आपसे कह रहा हू अगर वह आप जारी रखें तो मृत्यु के वक्त मे कोई सम्पत्ति काम नहीं आएगी, कोई मित्र काम नही आएगा, श्वास की जागरूकता ही सिर्फ काम मे आती है। क्योंकि जो श्वास के प्रति जागरूक है उसकी श्वास जब डूबने लगती है, वह अपनी जागरूकता जारी रखती है। और श्वास के डूबने के साथ वह

देखता है कि मृत्यु उतरने लगी है। और उसने श्वास की जागरूकता का इतना अभ्यास किया है कि जब श्वास बिल्कुल नही रह जाती तब भी वह जागा रहता है। बस वही कोण है जहा से उसकी नई यात्रा शुरू हो गई जागरण की। तब फिर उसका जन्म एकदम जागरूक जन्म है। तो 'बारदो' मे बडी चेष्टा करते हैं। मैं चाहता हू कि 'बारदो' जैसी स्थिति इस मुल्क मे पैदा की जाए, जो कभी नही हो सकी। यहां मरने के नाम से फिजूल मूर्खतापूर्ण बाते प्रचलित हो गई हैं जिनका कोई देना-लेना नही है। कोई मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नही जगा पाया कि मरते हुए आदमी के लिए हम सहयोगी हो जाए। सहयोगी हम हो सकते है और उसी माध्यम से वह व्यक्ति जब दुबारा जन्म लेगा तो उसके जन्म की पिछली यात्रा उसके सामने रहेगी सदा। वह आदमी दूसरे ढग का हो जाएगा। उसके दूसरे जन्म मे साधना अनिवार्य हो जाएगी। अब वह दूसरा जन्म खोने को तैयार नही हो सकता। वह जो सूक्ष्म शरीर है, जिसकी मैने बात कही, उसी सूक्ष्म शरीर मे वे सूखी रेखाए बनती है जो कल मैंने कही। वे कर्म जो हमने किए, वे फल जो हमने भोगे और वह जो हम जिए उस सबकी सूक्ष्म रेखाए उस सूक्ष्म शरीर पर बनती हैं। इसलिए वह जो सूक्ष्म शरीर है उसका एक नाम महावीर ने रखा कार्मण शरीर। महावीर का ख्याल है कि जो भी हमने जिया और भोगा उस भोग के कारण विशेष प्रकार के परमाणु हमारे शरीर से जुड जाते है। जैसे एक क्रोधी आदमी है तो वह एक विशेष प्रकार के परमाणु अपने सूक्ष्म शरीर मे जोड़ लेता है। अब तो साइस बहुत तरह की बाते कहती है कि जब आप क्रोध मे होते है तो आपके खून मे एक तरह का जहर छूट जाता है। जब आप प्रेम मे होते हैं तो आपके खून मे एक तरह का अमृत छूट जाता है। जब एक आदमी किसी स्त्री के प्रति और कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रति पागल हो जाती है प्रेम मे तो उसके खून मे अमृत के फव्वारे छूट जाते हैं जिनकी वजह से सम्मोहन पैदा हो जाता है और स्त्री सुन्दर दिखाई पडने लगती है जितनी वह है नही। अगर आपको किसी स्त्री से प्रेम नही है तो एल. एस. डी का इजैक्शन लगाकर उस स्त्री को देखें जिससे आपको प्रेम नहीं तो आप एकदम दीवाने हो जाएगे क्योंकि वह इन्जैक्शन आपके शरीर मे अमृत छोड देता है जिससे कोई भी स्त्री आपको अपूर्व सुन्दरी दिखाई पडे। यह सवाल नहीं है कि फला स्त्री। एक साधारण सी स्त्री भी अद्वितीय दिखाई पड़ेगी। एक साधारण सा फूल सुन्दर और अलौकिक दिखाई पड़ेगा। जब हम क्रोध करते

हैं तब एक तरह का जहर, और प्रेम करते हैं तो एक तरह का अमृत—इस तरह सारे के सारे रस शरीर मे छूटते रहते हैं। यह तो स्थूल शरीर के तल पर हो रहा है लेकिन सूक्ष्म शरीर के तल पर भी यह हो रहा है। जब आप क्रोध कर रहे हैं तो सूक्ष्म शरीर के साथ विशेष तरह के परमाणु सम्बन्धित हो रहे है। जब आप प्रेम कर रहे हैं तो विशेष प्रकार के परमाणु सम्बन्धित हो रहे हैं। इस शरीर के छूट जाने पर वह सूक्ष्म शरीर ही सूखी रेखाओ की तरह आपके भोगे गए जीवन को लेकर नई यात्रा शुरू करता है। और वह सूक्ष्म शरीर ही नए शरीर ग्रहण करता है। वह अन्धा हो सकता है; वह लंगडा हो सकता है; बुद्धिमान हो सकता है। प्रत्येक मृत्यु मे स्थूल देह मरती है। फिर अन्तिम मृत्यु है महामृत्यु, जिसे हम मोक्ष कहते हैं। उसमें सूक्ष्म शरीर भी मर जाता है। जिस दिन सूक्ष्म शरीर मर जाता है, उस दिन व्यक्ति का मोक्ष हो गया। स्थूल शरीर तो हर बार मरता है। मगर भीतर का शरीर हर बार नही मरता। वह तभी मरता है जब उस शरीर के रहने का कोई अर्थ नही रह जाता। जब व्यक्ति न कुछ करता है, न भोगता है, न कर्ता बनता है, न किसी कर्म को ऊपर लेता है, न कोई प्रतिक्रिया करता है। जब व्यक्ति केवल साक्षी मात्र रह जाता है तब सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है, बिखरने लगता है। साक्षी की जो प्रक्रिया है, वह सूक्ष्म शरीर को ऐसे पिघला देती है जैसे सूरज निकले और बर्फ पिघलने लगे। साक्षी के निकलते ही सूक्ष्म शरीर के परमाणु पिघल कर बहने लगते हैं। और यह पिघलना ऐसा अनुभव होता है जैसे रात को सर्दी से जुकाम पकड गया हो। और जुकाम उतर रहा है तो आप अनुभव करते हैं, किसी को बता नही सकते कि अब जुकाम नीचे उतर रहा है। सूक्ष्म शरीर का पिघलना साक्षी को इसी तरह पता चलता है कि कोई चीज भीतर पिघल कर बहती चली जा रही है। और जिस दिन सूक्ष्म शरीर पिघल जाता है, आत्मा और शरीर पृथक् दिखाई देते हैं। सूक्ष्म शरीर जोड है। वह पृथक् नही दिखाई पडने देता। वह दोनो को जोड़कर रखता है। और जिस दिन वे दोनो पृथक् दिखाई पड जाते हैं, वह आदमी कह देता है कि यह आखिरी यात्रा है। अब इसके बाद लौटना नही। बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ, बुद्ध ने कहा कि वह घर गिर गया जो सदियो से नही गिरा था। तो वे घर के बनाने वाले बिदा हो गए जो सदा उस घर को बनाते थे। अब मेरे लौटने की कोई उम्मीद नही रही क्योकि कहां लौटूंगा ? अब वह घर ही न रहा, जिसमे सदा लौटता था। और वह घर जो है, वह सूक्ष्म शरीर का घर, उस पर हमारे

सारे कर्म, हमारे सारे कर्मों के फल, हमारा भोग, हमारा जिया हुआ जीवन —वह सब वैसा बन जाता है जैसे स्लेट की पट्टी पर रेखाए बन जाती हैं। उस सूक्ष्म शरीर को गलाना ही साधना है। अगर मुझसे कोई पूछे कि तपश्चर्या का क्या मतलब तो मैं कहूगा कि सूक्ष्म शरीर को गलाना ही तपश्चर्या है। तप का मतलब होता है—तीव्र गर्मी, सूर्य की गर्मी। ऐसी गर्मी भीतर साक्षी से पैदा करनी है कि सूक्ष्म शरीर पिघल जाए और बह जाए। तप का यही मतलब है। तप का मतलब धूप मे खडे होना नही है। वह आदमी पागल है जो धूप मे खडा होकर तप कर रहा है। जब महावीर को कहते हैं महातपस्वी तो उसका मतलब यह नही है कि वह धूप में खडे होकर शरीर को सता रहे है। और जब महावीर को कहते हैं 'काया को मिटाने वाला' तो उस काया का इस काया से कोई मतलब नही है। उस काया का मतलब है भीतर की काया से जो असली काया है। बाहरी काया तो बार-बार मिलती है। आप इस कमीज को अपनी काया नही कह सकते। क्योंकि आप रोज उसे बदल लेते है। आप शरीर को काया कहते है क्योकि जिन्दगी भर उसे नही बदलते। महावीर भली भाति जानते हैं कि यह शरीर भी तो कई बार बदला जाता है लेकिन एक और काया है जो कभी नही बदलती, बस एक ही बार खत्म होती है, बदलती नही। तो उस काया के पिघलाने मे लगा हुआ जो श्रम है वही तपश्चर्या है। और उस काया को पिघलाने की जो प्रक्रिया है वही साक्षीभाव, सामायिक या ध्यान है। और वह स्मरण मे आ जाए और उसके प्रयोग से हम गुजर जाए तो फिर कोई पुनर्जन्म नही है। पुनर्जन्म रहेगा, सदा रहेगा अगर हम कुछ न करे। लेकिन ऐसा हो सकता है कि पुनर्जन्म न हो। हम विराट जीवन के साथ एक हो जाए। ऐसा नही कि हम मिट जाते हैं, ऐसा नही कि हम खत्म हो जाते है। बस ऐसा ही हो जाते हैं जैसे बूंद सागर हो जाती है। वह मिटती नही, लेकिन मिट भी जाती है, बूद की तरह मिट जाती है, सागर की तरह रह जाती है। इसलिए महावीर कहते हैं कि आत्मा ही परमात्मा हो जाता है। लेकिन नही समझे लोग कि इसका क्या मतलब है। मतलब यह है कि आत्मा की बूद खो जाती है परमात्मा मे और एक हो जाती है। उस एकता मे, उस परम अद्वैत मे परम आनन्द है, परम शाति है, परम सौन्दर्य है।

पहलगांव

वर्षा : एक

२४.६.६६ रात्रि

१

प्रश्न : ऐसा कोई व्यक्ति क्यों नहीं मिल सका जिसके चरणों में महावीर आत्मसमर्पण कर सकें ? महावीर क्या खोज रहे हैं जिसकी वजह से वे किसी गुरु के पास नहीं गए ? इस सम्बन्ध में महावीर क्या कहते हैं ?

उत्तर : जीवन में बहुत कुछ है जो दूसरे से नही मिल सकता और जो भी श्रेष्ठ है जो भी सत्य है, सुन्दर है, उसे दूसरे से पाने का कोई भी उपाय नही है। जो दूसरे से पाया जा सकता है, उसका कोई महत्त्व नही। क्योंकि जिसे हम दूसरे से पा लेते हैं वह हमारे प्राणो से विकसित हुआ नही होता। वह ऐसा ही है जैसे कागज के फूल कोई बाजार से ले आए और घर को सजा ले। वृक्षो से आए हुए फूलो की बात दूसरी है। वे जीवन्त हैं। मगर वे भी मृत हो जाते है। थोडी देर गुलदस्ते मे धोखा दे सकते हैं जीवित होने का। लेकिन फिर भी वे जीवित नही हैं। सत्य के फूल कभी उधार नही मिलते। इसलिए जो भी सत्य को खोजने निकला हो, वह गुरु को खोजने नही निकलता है। हा, असत्य को खोजने कोई निकला हो तो गुरु की खोज बहुत जरूरी है। सत्य की खोज मे गुरु एकदम अनावश्यक है। लेकिन शिष्यत्व यानी सीखने की क्षमता बहुत आवश्यक है। असली सवाल सीखने की क्षमता का है और जिसके पास सीखने की क्षमता है वह गुरु नही बनाता, सीखता चला जाता है। गुरु बनाना एक तरह का बन्धन निर्मित करना है। वह इस बात की चेष्टा है कि सत्य पाएगे तो इस व्यक्ति से और कही से नही। मेरा मानना है कि सत्य कोई ऐसी चीज नही है जो किसी एक व्यक्ति से प्रवाहित हो। सत्य पूरे जीवन पर छाया हुआ है। अगर हम सीखने को उत्सुक हैं, तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है। गुरु लाख समझाए कि जिन्दगी असार है, कल मौत आ जाएगी, चेत जाओ और अगर हम सीख न सकते हों तो आवाज कान मे सुनाई पडेगी और समाप्त हो जाएगी। और अगर कोई सीख सकता है तो एक वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्ते को देखकर भी सीख सकता है कि जिन्दगी असार है और अभी जो हरा था, वह अभी सूख गया; कल जो जन्मा था, आज मर गया है। और एक सूखा

पत्ता गिरता हुआ भी एक व्यक्ति को जीवन की सारी व्यर्थता का बोध करा सकता है। लेकिन सीखने की क्षमता न हो तो यह बोध कोई भी नही करा सकता। महावीर मे सीखने की अद्भुत क्षमता है, इसलिए उन्होने कोई गुरु नही बनाया। गुरु खोजा भी नही। बस सीखने निकल पडे, खोजने निकल पडे, बीच में किसी व्यक्ति को लेना नही चाहा क्योकि उधार ज्ञान लेने की उनकी कोई आकाक्षा नही। उधार भी कभी ज्ञान हो सकता है? सब चीजें उधार हो सकती हैं, ज्ञान उधार नही हो सकता। ज्ञान उसका ही होता है, जो पाता है। वह दूसरे को देते ही व्यर्थ हो जाता है।

गुरुओ की कमी न थी, सब तरफ गुरु मौजूद थे। शास्त्रो की कमी न थी, शास्त्र मौजूद थे। सिद्धान्तो की कमी न थी, सिद्धान्त मौजूद थे। लेकिन महावीर ने सबकी ओर पीठ कर दी क्योकि शास्त्र की ओर मुह करना या सिद्धान्त की ओर या गुरु की ओर—बासे और उधार के लिए उत्सुक होना है। वह निपट अपनी खोज पर चले गए। स्वय ही पा लेना है। और जो स्वय न मिले वह दूसरे से माग कर मिल भी कैसे सकता है? मिलने का मार्ग भी क्या है? रास्ता भी क्या है? दूसरे से ज्यादा से ज्यादा शब्द मिल सकते हैं, सिद्धान्त मिल सकते हैं, लेकिन सत्य नही मिल सकता। इसलिए महावीर ने किसी गुरु के प्रति समर्पण नही किया। यह भी समझ लेने जैसी बात है कि समर्पण ही करना हो तो क्षुद्र के प्रति, सीमित के प्रति क्या? समस्त के प्रति क्यो नही? सच तो यह है कि एक के प्रति समर्पण असल मे समर्पण नही है। एक के प्रति समर्पण मे शर्त है। जब मैं कहता हू कि फला व्यक्ति के प्रति मैं समर्पण करूगा, और फला के प्रति नही तो मैं शर्त रख रहा हूं क्योकि मैं मानता हू कि एक ठीक है, दूसरा गलत है। यह पा लिया है, दूसरा नही पाया है। इससे मिलेगा, दूसरे से नही मिलेगा। यह दे सकता है, दूसरा नही दे सकता। तब समर्पण कैसा हुआ? यह तो सौदा हुआ। जिससे हमें मिलेगा, जिससे हम पा सकते हैं, उसकी आकाक्षा को ध्यान मे रखकर अगर समर्पण किया गया तो समर्पण कैसा हुआ? वह सौदा हुआ, लेन-देन हुआ। समर्पण का अर्थ यह है कि बिना शर्त, बिना आकाक्षा के स्वय को छोड़ देना। तब कोई किसी व्यक्ति के प्रति कभी समर्पित नही हो सकता। समर्पित हो सकता है सिर्फ परमात्मा के प्रति। और परमात्मा का मतलब है समस्त। अगर परमात्मा भी एक व्यक्ति है तो भी समर्पण नहीं हो सकता। जैसे अगर किसी ने परमात्मा को राम मान लिया है तो राम के प्रति उसका समर्पण है,

कृष्ण के प्रति समर्पण नहीं है।

एक बड़े रामभक्त सन्त के जीवन मे उल्लेख है कि उन्हें कृष्ण के मन्दिर मे ले जाया गया। तो बासुरी बजाते कृष्ण की मूर्ति को उन्होंने नमस्कार करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं तो धनुर्धारी राम के प्रति ही झुकता हू। और अगर चाहते हो कि मैं झुकू तो इनके हाथ मे धनुषबाण दे दो। यानी झुकने वाला शर्त लगाएगा। वह यह भी शर्त लगाएगा कि तुम कैसे खड़े हो? धनुषबाण लेकर कि बासुरी लेकर। तुम्हारी कैसी शक्ल हो, तुम्हारी कैसी आंखें हो, वह सब शर्तें लगाएगा। और इस तरह समर्पण मे शर्त हो सकती है। यानी कोई यह कहे कि तुम ऐसे हो जाओ तो मैं समर्पण करूगा तो क्या समर्पण रहा? समर्पण का तो अर्थ ही सदा बेशर्त है। मैं मानता हू कि महावीर का समर्पण है लेकिन किसी व्यक्ति के प्रति नही, समस्त के प्रति। और समस्त के प्रति जिनका समर्पण है उनका हमे पता नही चलता। क्योंकि पता कैसे चलेगा? हम तो व्यक्तियो के ही समर्पण को समझ पाते हैं कि यह आदमी फला आदमी के प्रति समर्पित है। लेकिन एक आदमी समस्त के प्रति समर्पित है, उस पत्थर के प्रति भी जो सडक पर पडा है, आकाश के तारे के प्रति भी, आदमी के प्रति भी, और बच्चे के प्रति भी और जानवर के प्रति भी। जो समस्त के प्रति समर्पित है, उसका समर्पण हमारी पहचान मे नही आएगा क्योंकि हमारा मापदण्ड सीमित सौदे का है। अगर मैं एक व्यक्ति को प्रेम करू तो समझ मे आ सकता है कि मैं प्रेम करता हू। लेकिन अगर मेरा समस्त के प्रति प्रेम हो तो समझ मे आना मुश्किल हो जाएगा क्योंकि हम प्रेम को पहचान ही तब पाते हैं जब वह व्यक्ति से बध जाए। अगर वह फैला हो, असीम हो तो हम नही पहचान पाते उसे। इसलिए महावीर को समझने वाले सोचते रहे है कि महावीर ने किसी एक के प्रति इसीलिए समर्पण नहीं किया कि एक के प्रति समर्पण करने से शेष के प्रति असमर्पण हो जाता है। अगर पूर्ण समर्पण है तो पूर्ण के प्रति, असीमित के प्रति ही हो सकता है। अपूर्ण के प्रति, सीमित के प्रति समर्पण नही हो सकता। अब तक किसी ने भी इस तरह नही सोचा है महावीर के प्रति कि वह समर्पित व्यक्ति है। मेरा मानना है कि वे बिल्कुल ही पूर्ण समर्पित व्यक्ति है। लेकिन पूर्ण समर्पित व्यक्ति किसी एक के प्रति समर्पित नही होता। वह किसी एक के आगे सिर नही झुकाता, इसलिए नही कि अहकार है, बल्कि इसलिए कि उसका सिर झुका ही हुआ है सब ओर। अब वह कैसे अलग-अलग खोजने जाए कि इसके प्रति

झुको, उसके प्रति न झुको। उसके किसी एक के प्रति झुकने का सवाल ही नही, और ध्यान रहे जो व्यक्ति किसी एक के प्रति झुकता है, वह दूसरे के प्रति सदा अकड़ा रहता है। और जो व्यक्ति किसी एक के चरण छूता है, वह किसी से चरण छुवाने को आतुर है।

मैं एक बड़े सन्यासी के आश्रम मे गया। बड़े मच पर सन्यासी बैठे हुए हैं। उनके मंच के नीचे एक छोटा तख्त है, उस पर एक दूसरे सन्यासी बैठे हैं। उस तख्त के नीचे और सन्यासी बैठे हुए है। उस बड़े सन्यासी ने मुझसे कहा कि आप देखते हैं मेरे बगल मे कौन बैठा है? मैंने कहा मुझे देखने की जरूरत नही। कोई बैठा है जरूर। उन्होने कहा, शायद आपको पता नही। वह हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस है, साधारण आदमी नही हैं। लेकिन बड़े विनम्र है, कभी मेरे साथ तख्त पर नही बैठते हैं। मैंने कहा कि वह मुझे दिखाई पड रहा है। लेकिन उनसे भी नीचे तख्त पर कुछ लोग बैठे हुए है। और वे आपके मरने की प्रतीक्षा कर रहे है कि जब आप मरो तो वे इस तख्त पर बैठे, और आपने जो कहा कि यह आदमी विनम्र है क्योकि आपके साथ नही बैठता तो यह भी सोचना जरूरी है कि आप कैसे आदमी है। आप बड़े अहकारी आदमी मालूम होते हैं। आप कैसे आदमी हैं जो कोई आपके साथ बैठ तो आप अविनय समझते हैं, नीचे बैठे तो विनय समझते हैं। लेकिन वे जो चेले नीचे बैठे है प्रतीक्षा करते हैं कि वे कब गुरु हो जाए। वे जो है किसी के प्रति समर्पित व्यक्ति वे दूसरो के समर्पण की माग करते है क्योकि जो वे इधर देते है, वह दूसरे से माग करते हैं। निरन्तर आपने देखा होगा कि जो आदमी किसी की खुशामद करेगा वह अपने से पीछे वाले लोगो से खुशामद मागेगा। जो आदमी किसी की खुशामद नही करेगा वह खुशामद भी नही मागेगा। दोनों बातें एकसाथ चलती हैं। जो आदमी नम्रता दिखलाएगा वह दूसरो से नम्रता की माग करेगा। महावीर को समझना इस अर्थ मे कठिन हो जाता है। न वह किसी के प्रति समर्पित है, न कोई उनका गुरु है, न वे किसी के चरण छूते हैं, न वे किसी के चरणो मे बैठते है, न वे किसी के पीछे चलते है। तो उन्हे समझना कठिन हो जाता है। लेकिन मेरी अपनी दृष्टि मे यह है कि वह इतने समर्पित व्यक्ति हैं, समस्त के प्रति और इस भांति झुके हुए है कि अब और किसके लिए झुकना है और क्यो झुकना है। एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि आप फला-फला आदमी को महात्मा मानते हैं कि नही। मैंने कहा कि अगर

तुम मुझसे कहते कि आदमी को महात्मा मानते हैं कि नही तो मैं जल्दी से राजी हो जाता। तुम कहते हो फला-फला व्यक्ति। अब इसमें यह बात छिपी है कि मैं एक व्यक्ति को महात्मा मानू तो दूसरो को हीनात्मा मानूं इसके सिवाय कोई चारा नही है। एक को महात्मा मानने मे दूसरे को हीनात्मा मानना पडेगा। नही तो उसे महात्मा कहने का कोई अर्थ नही रह जाता। मैंने कहा कि मैं किसी को हीनात्मा मानने में राजी नही हू इसलिए महात्मा भी विदा हो जाता है। मेरे लिए कोई महात्मा नहीं क्योकि कोई हीनात्मा नही है। और एक को महात्मा बनाओ तो हजार, लाख करोड को हीनात्मा बनाना जरूरी है, नही तो काम चलता नही। यानी एक महात्मा की रेखा खीचने के लिए करोड़ हीनात्माओ का घेरा खडा करना पडता है, तब एक महात्मा बन सकता है, बनाया जा सकता है। लेकिन एक आदमी को महात्मा मानने मे हम करोडो आदमियो को हीनात्मा की दृष्टि से देखना शुरू कर देते है। महावीर किसी को न महात्मा मानते है, न हीनात्मा मानते हैं। महावीर इस विचार मे ही नही पडते। वह एक-एक की गिनती नही कर रहे है समस्त जीवन का सीधा समर्पण है। व्यक्ति बीच मे आता ही नही। इस प्रश्न से सम्बन्धित दूसरी बात भी मैं आपको याद दिला दू कि चूकि महावीर ने किसी को गुरु नही बनाया इसलिए जितने लोगो ने महावीर को गुरु बनाया उन सबने महावीर के साथ अन्याय किया है। वे समझ ही नही पाए महावीर को। यानी जिस आदमी ने किसी को कभी गुरु नही बनाया है, वह कभी किसी को शिष्य बनाने की बात भी नही सोच सकता। दोनो सयुक्त बाते हैं। क्योकि जब वह अपने लिए यह ठीक नही मानता है कि किसी को गुरु की तरह स्थापित करे, तो वह कैसे मान सकता है कि कोई उसे गुरु की तरह स्थापित करे। इसलिए जो अपने को महावीर के शिष्य और अनुयायी समझते हैं, वे महावीर के साथ एक बुनियादी अन्याय कर रहे हैं। वे उस आदमी को समझ ही नही पाए। जिस महावीर ने अपने से पहले चले आए किसी शास्त्र को नही माना उस महावीर का शास्त्र बना लेना उसके साथ अन्याय करना है। महावीर ने अपने से पहले हुए किसी भी व्यक्ति को ऐसा नही कहा है कि उससे मुझे मिल जाएगा या वह मुझे देने वाला हो सकता है। बात ही नही उठाई इसकी। उस महावीर के पीछे लाखों लोग हैं जो यह कहते है : "तुम्ही हमे पहुचा दो, तुम्ही हमे मिला दो, तुम्ही हमारा कल्याण करो। जो कुछ हो तुम्ही हो।" यह सब कहना महावीर के

प्रति अशोभन है लेकिन ख्याल में नहीं आता।

यह भी पूछा जा सकता है कि महावीर ऐसा क्या खोज रहे है जिसकी वजह से वह किसी गुरु के पास नही गए। निश्चित ही वह कोई ऐसी चीज खोज रहे थे जो किसी गुरु से कभी किसी को नही मिली। हां, कुछ चीजें हैं जो गुरु से मिल जाती हैं। असल मे जीवन का बाह्य ज्ञान सदा गुरु से ही मिलता है। गणित सीखना है, भूगोल सीखना है। इन सब का स्वय ज्ञान नही होता। ऐसा नही कि एक आदमी आख बद करके बैठ जाए और भूगोल सीख जाए। असल मे जो चीजें जीवन के बाहरी फैलाव से सम्बन्धित हैं, वे सबकी सब किसी से सीखनी पडती है। लेकिन कुछ बाते ऐसी भी हैं जो बाहर के फैलाव से सम्बन्धित ही नही हैं। जो मेरी अन्तस् चेतना मे ही छिपी हैं, उन्हे कभी किसी गुरु से नही सीखना पडता। जैसे कोई आदमी सोचता हो कि मैं आख बन्द करके अन्तर्यात्रा करू और जगत की भूगोल जान लू। जैसी गल्ती वह आदमी करेगा ऐसी ही गल्ती वह आदमी भी करेगा जो अन्तर्यात्रा के लिए और अन्तर्दर्शन के लिए किसी गुरु के पास चला जाता है। कुछ है जो दूसरे से सीखा जाता है। और कुछ है जो स्वय ही सीखा जाता है और दूसरे से कभी भी नही सीखा जा सकता। महावीर उसी परम शक्ति की खोज मे थे। इसलिए वह किसी के पास नही गए। उन्होने किसी को बीच मे लेना नही चाहा क्योंकि बीच मे लेने से शुद्धता नष्ट हो जाती है। अगर मैं प्रेम की खोज मे हू तो मैं किसी को बीच मे नही लेना चाहूगा। अगर मैं सत्य की खोज मे हू तो भी मैं किसी को बीच मे नही लेना चाहूगा। अगर मैं सौन्दर्य की खोज मे हू तो भी मैं अपनी आखो से सौन्दर्य देखना चाहूगा। मैं दूसरे की आखें उधार नही लेना चाहूगा क्योंकि वे आखें दूसरो की होगी, अनुभव दूसरो का होगा। इसलिए महावीर उस सत्य की खोज मे है जो स्वय में ही छिपा रहता है। किसी के पास जाकर मागने से, हाथ जोडने से, प्रार्थना करने से नही मिलता। इससे कोई ऐसा न समझ ले कि वे बहुत अहकारी व्यक्ति रहे होंगे। क्योकि साधारणत हमारा ख्याल यह है कि जो किसी के प्रति सिर नही झुकाता, किसी के चरणो मे नहीं बैठता, किसी को आदर नही देता, किसी को सम्मान नही देता, वह आदमी बडा अहकारी है। जो आदमी किसी को सम्मान नही देता, जो आदमी किसी को आदर नहीं देता, वह आदमी किसी से आदर मागता है, किसी से सम्मान मागता है तो अहंकार की खबर मिलती है। लेकिन जो आदमी न आदर देता, न मागता उसे कैसे अहंकारी कहेगे? जो न गुरु

बनाता, न बनता, जो न शास्त्र मानता, न रचता, उसे कैसे अहंकारी कहोगे? तो महावीर अत्यन्त विनम्र व्यक्ति हैं; सीधी खोज पर अपना सीधा रास्ता खोज रहे हैं। किसी को साथ नही लेना चाहते। कोई साथ हो भी नही सकता। अकेले के रास्ते हैं, अकेले की यात्राए हैं।

लुटिनस ने एक किताब लिखी है और उस किताब मे कहा है : बहुत सी यात्राए की जो सबके साथ हुई, बहुत सी खोजें की जिसमे मित्र थे, बहुत सी सम्पत्ति थी जिसमे साथी-सहयोगी थे। फिर एक ऐसी खोज आई, जहा न मित्र थे, न सगी था, न कोई साथी था। अकेले की उडान थी अकेले की तरफ। बीच मे कोई न था। जरा भी बीच मे ले लेते तो बस भटकन शुरू हो जाती क्योकि उडान थी अकेले की अकेले की तरफ। इसलिए महावीर बहुत सचेत है। महावीर को प्रेम करने वाले, बुद्ध को प्रम करने वाले, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले लोग भी अगर इतने ही सचेत होते तो दुनिया ज्यादा बेहतर होती। तब दुनिया मे विशुद्ध धर्म होता, कोई जैन न होता, हिन्दू न होता, मुसलमान न होता, ईसाई न होता। क्योकि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जन गुरुओ से बची हुई धारणा मे पैदा होते है। अगर गुरु की धारणा ही टूट जाए तो दुनिया मे आदमियत होगी, धर्म होगा लेकिन पथ न होगे। और तब सारी वसीयत हमारी हो जाएगी। आज एक ईसाई के लिए महावीर अपने नही मालूम पडते क्योकि कुछ दूसरे लोगो ने उन्हे अपना बना रखा है। और जब कुछ लोग किसी को अपना बना लेते हैं तो शेष लोगो के लिए वह पराया हो जाता है। आज क्राइस्ट जैनियो के लिए अपने नही मालूम पड़ते क्योकि कुछ लोगो ने उन्हे अपना बना लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग किसी बडे सत्य को अपना बनाने का दावा करते है, वे शेष मनुष्य जाति को वचित कर देते हैं उस सत्य की सम्पदा से, उसकी वसीयत से।

अगर गुरु के आस-पास पागलपन पैदा न हो, श्रद्धा पैदा न हो, अन्धभक्ति पैदा न हो, तो सम्प्रदाय बिदा हो जाए। तब क्राइस्ट भी हमारे हो, मुहम्मद भी हमारे हों, बुद्ध भी हमारे हो, सारी दुनिया की समस्त जागृत चेतनाए भी हमारी हो और तब हम इतने समृद्ध हो जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हम दरिद्र हैं, और हम दरिद्र अपने हाथो से है। महावीर ने दरिद्र होना नही चाहा इसलिए उन्होने किसी को नही पकडा। जो किसी को पकड़ेगा, वह दरिद्र हो जाएगा। वह पूर्ण समृद्ध हो गए क्योकि सब कुछ उनका था। ऐसा कुछ भी न था जिसका निषेध करना है, ऐसा भी कुछ न था जिसको

पकड़ना है। जो एक को पकडेगा वह दूसरे को छोड़ने की जिद् करेगा। महावीर समग्र के प्रति समर्पित व्यक्ति हैं; कोई गुरु नही, कोई शास्त्र नहीं, कोई मान्यता नही।

प्रश्न : महावीर की उन शर्तों का क्या अभिप्राय है कि ऐसा कोई खास व्यक्ति होगा तो ही भिक्षा लूंगा, नहीं तो नहीं लूंगा ?

उत्तर : जैसा मैंने कहा कि खोज पूरी हो चुकी थी पहले ही जन्म मे। इस जन्म मे वह सिर्फ बाटने आए हैं। इसलिए उन्होने यह प्रयोग किया कि अगर मैं बाटने ही आया हू और मेरा स्वार्थ नही है तो अगर विश्वसत्ता मुझे भोजन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे तो मैं भोजन भी क्यो लू। अगर विश्व सत्ता मुझे जीवन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे तो मेरे जीवन का भी क्या अर्थ है ? अब महावीर का कोई निजी स्वार्थ नही है। उनमे जिजीविषा नही है। इसलिए उन्होने अनूठे काम किए है। भोजन लेने निकलते तो वह अपने मन में सकल्प बना लेते कि आज मैं ऐसे घर मे भोजन लूगा जिस घर के सामने दो गाए लड़ती हो। गायो का रग काला हो, स्त्री खडी हो, उसका एक पैर बाहर हो, दूसरा पैर भीतर हो, आख से आसू बहते हो, होठो पर हसी हो। वह एक ऐसी धारणा बना लेते सुबह, और तब वह भिक्षा मागने निकलते। अगर यह धारणा पूरी हो जाती कही तो वह भिक्षा ले लेते, नही तो वह वापस लौट आते। इसका मतलब बहुत गहरा है। महावीर कह रहे हैं कि अगर अब विश्व की समग्र सत्ता की इच्छा हो तो ही मैं जीता हूं, अपनी तरफ से मैं जीता ही नही। अगर भोजन देना हो तो ठीक, नही तो मैं मागने नही जा रहा हू। कोई मुझे दे रहा है इसलिए भी मैं नही लूगा। अब मैं किसी का अनुग्रह भी नही मान रहा हू। अगर पूर्ण जगत की सत्ता ही मुझे भोजन देना चाहती हो तो ठीक, अन्यथा मैं वापिस लौट आता हू। लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा कि विश्व की सत्ता ने मुझे भोजन दिया। तो मैं एक शर्त बना लेता हू। वह शर्त विश्व की सत्ता पूरी कर दे तो मैं समझूं कि भोजन उससे आया। मैं देने वाले को धन्यवाद नही दूंगा क्योकि देने वाले का कोई सवाल ही न रहा। न मैं अनुगृहीत हू किसी का। और गहरी बात यह है कि जो व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हुआ लौट आया है उसके लिए कर्म जैसी कोई चीज नही। कर्म होता है इच्छा से और कर्म का जन्म होता है आकांक्षा से। महावीर कहते हैं कि मैं यह भी इच्छा नही करता कि भोजन मुझे मिलना ही चाहिए। मैं यह भी विश्व की सत्ता पर छोड़ देता हूं।

यह पूरे के प्रति समर्पण है। अगर पूरी हवाएं, पहाड़, पत्थर, मानवीय चेतना, पशु, देवी-देवता जो भी हैं, अगर उस पूरे की आकांक्षा है कि महावीर एक दिन और जी जाए तो इन्तजाम करो, अन्यथा अपना कोई इन्तजाम नही। मैं इसलिए शर्त लगा देता हूं क्योकि मुझे पता कैसे चलेगा कि किसी एक व्यक्ति ने मुझे भोजन दिया या पूरे जगत के अस्तित्व ने मुझे भोजन दिया। तो महावीर बड़ी पेचीदा शर्तं लगाते हैं जिसका पूरा होना मुश्किल मालूम होता है कि अब एक स्त्री एक पैर बाहर किए हो, दूसरा पैर भीतर किए हो। राजकुमारी हो, हाथ मे हथकडिया पडी हो, आंख से आंसू गिरते हों, मुंह से हसी आती हो। ऐसा किसी द्वार पर कोई मिल जाए तो उस द्वार पर ही मैं भोजन कर लूंगा। फिर जरूरी नही कि उस द्वार पर भोजन देनेवाला हो। ऐसा द्वार मिल जाए आज, यह भी जरूरी नही। ऐसी स्थिति बने, यह भी जरूरी नही। महावीर बिल्कुल ही अनहोनी की कल्पना करके घर से निकलते हैं, अपनी भिक्षा के लिए निकलते हैं। यह अनहोनी अगर पूरी हो जाए तो महावीर अपने मन मे समझ लेते हैं कि विश्व की सत्ता ने एक दिन जीने के लिए और दिया है। यानी मैं अपनी तरफ से, अपनी जिद् से नही टिका हू। जरूरत है अस्तित्व को तो मैं आ रहा हू। नही तो मैं एक दिन भी जीने की इच्छा नही करता। अपनी ओर से जीने का कोई अर्थ नही है, और ऐसा प्रयोग कभी किसी ने नही किया है जगत मे। बहुत अनूठा है यह प्रयोग। आज भी जैन मुनि ऐसा करते है लेकिन श्रावक उनको पहले ही बता जाते हैं : ऐसा ऐसा कर लेना या वे श्रावको को बता देते हैं। और कुछ बधे हुए इन्तजाम कर रखे है उन्होने। एक घर के सामने दो केले लटके है तो वहां वे भोजन ले लेगे। दस-पाच घरों मे लोग अपने घर के सामने केला लटका देते हैं। एक, दो स्त्रिया बच्चे को लेकर खडी हो जाती हैं। ऐसे दस-पांच बधे हुए नियम हैं उनके। वे बधे हुए नियम दस घरों मे पूरे कर दिए जाते हैं। यह अब भी चलता है। जैन मुनि वैसा ही करता है रोज भोजन लेने के पहले। पच्चीस चौके सज जाते हैं, पच्चीस चौकों के सामने वह घूमता है। पच्चीस चौकों में उसकी बात पूरी हो जाती है। लेकिन महावीर ने जो प्रयोग किया वह बहुत ही अनूठा था। वह ऐसी धारणा लेकर चलते थे कि जिसमें उपाय कम ही था कि वह अपने आप घट जाए जब तक कि विश्वसत्ता राजी न हो। महावीर एक-एक दिन जी रहे हैं, अपने लिए नही, अगर जरूरत है परमात्मा को तो ही। और उनका पूरा

जीवन इस बात का प्रमाण है कि विश्वसत्ता को जिस व्यक्ति की जरूरत है, वह उसके लिए आयोजन करती है। जिसकी स्वास से, जिसके होने से, जिसके जीने से, जिसकी आंख से, जिसके चलने से कुछ घटित हो रहा है, जो कि कल्प-कल्प बीत जाए तो दुबारा घटित मुश्किल से होता है विश्वसत्ता को जरूरत है उसके अस्तित्व की तो वह उसके लिए आयोजन करती है। तो एक-एक दिन के लिए महावीर जी रहे हैं। ऐसा भी नहीं है कि इकट्ठा एक दिन तय कर लिया तो बारह साल के लिए काफी हो गया। इस आदमी को अपनी ओर से जीने का कोई मोह नहीं रह गया। बहुत कीमती है यह बात कि कोई व्यक्ति चाहे तो बराबर वैसा जी सकता है लेकिन तभी जब उसे अपने जीवन का मोह बिदा हो गया हो। तब पूरा अस्तित्व उसके प्रति मोह-पूर्ण हो जाता है। और उसे बचाने के उपाय करने लगता है, और उसके ढग की, बेढग की शर्तें भी स्वीकार करने लगता है। फिर वह क्या कहता है क्या नहीं कहता, कैसा उठता है कैसा बैठता है सबकी स्वीकृति हो जाती है। सारा जगत एक गहरे प्रेम से उसे घेर लेता है और उसके लिए जो भी किया जा सके, करने लगता है।

बुद्ध के गृहत्याग की कथा प्रचलित है। बुद्ध घर से चले आधी रात को। उनके घोडे के पैरो की टाप ऐसी है कि वह बारह कोस तक सुनी जाती है। बुद्ध उस घोडे पर सवार होकर चले हैं। घोडे की टाप इतनी होगी कि सारा महल जग जाए। कहानी कहती है कि घोडे के टाप के नीचे देवता फूल रखते चले जाते हैं। टाप फूलो पर पडती है ताकि गाव मे कोई जग न जाए। क्योकि बहुत कल्पो के बाद ही कभी कोई व्यक्ति महाअभिनिष्क्रमण करता है। जब वे नगर के द्वार पर पहुचते हैं तो बडी-बडी कीले है वहा जिन्हें पागल हाथी भी धक्के मारे तो खुल नही सकती। और जब द्वार खुलते हैं तो उनकी इतनी आवाज होती है कि पूरा नगर सुनता है मगर जब बुद्ध वहा पहुचते हैं तो देवता द्वार को ऐसा खोल देते हैं जैसे वह बद ही न था। यह सारी कहानिया निर्मित है। लेकिन साथ-साथ ही ये इस बात की भी सूचक है कि ऐसे व्यक्ति के लिए सारा जगत, सारा अस्तित्व सुविधा देने लगता है क्योंकि इस सारे जगत को, इस सारे अस्तित्व को इस आदमी की जरूरत है। मगर हम सबके लिए अस्तित्व की आवश्यकता रहती है। श्वास चले इसलिए हवा की जरूरत है, प्यास बुझे इसलिए पानी की जरूरत है, गर्मी मिले इसलिए सूरज की जरूरत है। सारे अस्तित्व की हमे जरूरत है अपने लिए। लेकिन

कभी-कभी ऐसा व्यक्ति भी पैदा हो जाता है जिसके लिए अस्तित्व को उसकी जरूरत है कि वह हो जाए तो थोड़ी देर रह जाए, और उसके लिए कोई असुविधा न हो। और महावीर इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि अगर हमे जिन्दा रखना हो तो आज ऐसा इन्तजाम हो जाए; नही तो हम वापस लौट जाएंगे। न कोई शिकायत है पीछे लौटने से, न कोई नाराजगी है। इतनी ही खबर जरूरी है कि अस्तित्व कहता है अब तुम्हारी जरूरत नही। वह हम स्वीकार कर लेंगे और बिदा हो जाएगे। इस वजह से वे वैसा भाव लेकर चलते हैं। लेकिन उसको नही समझा जा सका। ऐसा आदमी चुनौती दे रहा है विश्वसत्ता को कि रखना हो तो रखो अन्यथा हम जाते हैं।

प्रश्न : महावीर को पारिवारिक या सामाजिक कौन-सा असंतोष था ? क्या उनका गृहत्याग जवाबदारियों से पलायन नहीं है ?

उत्तर : पहली बात यह है कि महावीर को न तो कोई पारिवारिक असतोष था, और न कोई सामाजिक असंतोष था। इस जन्म मे तो कोई व्यक्तिगत असतोष भी नही था। आम तौर से तीन तरह के असतोष होते हैं। पारिवारिक असतोष, सामाजिक असतोष, या वैयक्तिक असतोष। पारिवारिक असतोष आर्थिक हो सकता है, विवाह-दाम्पत्य का हो सकता है, शरीर की सुविधा-असुविधा का हो सकता है। वैसा असतोष जिसे है वह आदमी कभी धार्मिक नही हो सकता। क्योकि वैसा आदमी उस असतोष को मिटाने मे लगा रहता है। वैसा आदमी अत्यधिक भौतिक होता है। फिर सामाजिक असंतोष है। व्यवस्था है, समाज की नीति है, नियम है, शोषण है, धन है, राज्य है, सम्पत्ति है, वितरण है। यह सब है। ऐसा असतोष भी होता है। ऐसा सामाजिक, क्रान्तिकारी, सुधारक व्यक्ति भी धार्मिक नही होता। धार्मिक होता है वह व्यक्ति जिसके असन्तोष का न समाज से कोई सम्बन्ध है, न परिवार से कोई सम्बन्ध है, न सम्पत्ति से कोई सम्बन्ध है, न शरीर से कोई सम्बन्ध है, जिसके असन्तोष का एक ही अर्थ है कि मेरा होना मात्र अभी ऐसा नहीं है कि जिससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊ, जिसकी आखिरी चिन्ता इस बात की है कि मैं जैसा हूं क्या ऐसा ही होना काफी है, पर्याप्त है ? अगर हिंसक हू तो हिंसक होना ही काफी है, पर्याप्त है ? अगर क्रोधी हू तो क्रोधित होना ही काफी है, पर्याप्त है ? अशान्त हूं तो अशान्त होना ही ठीक है ? दुखी हू, अज्ञानी हू, सत्य का कोई पता नही, प्रेम का कोई अनुभव नही, क्या ऐसा होना ही काफी है ? एक ऐसा असन्तोष है जो इस भीतरी जगत से उठता है

जहां व्यक्ति कहता है कि जहां अज्ञान नही, अंधकार नही, दुख नहीं, अशांति नही, क्रोध नही, घृणा नही, द्वेष नही, मैं ऐसा जीवन चाहता हूं। इस आन्तरिक असन्तोष से धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है। इस जीवन मे महावीर को यह असन्तोष भी नही है क्योंकि धार्मिक व्यक्ति का जन्म हो चुका है लेकिन पिछले जन्मो मे जो उनका नितान्त असन्तोष है वह आध्यात्मिक है; वह सामाजिक या पारिवारिक नहीं है। आध्यात्मिक असन्तोष बहुत कीमती चीज है और वह जिसमें नही है वह व्यक्ति कभी उस यात्रा पर जाएगा ही नही जहा आध्यात्मिक सन्तोष उपलब्ध हो जाए। जिस असन्तोष से हम गुजरते है उसी तल का सन्तोष हमे उपलब्ध हो सकता है। अगर धन का असन्तोष है तो ज्यादा से ज्यादा धन मिलने का सन्तोष उपलब्ध हो सकता है। लेकिन बडे मजे की बात है कि जिस तल पर हमारा असन्तोष होगा उसी तल पर हमारा जीवन होगा। प्रत्येक व्यक्ति को खोज लेना चाहिए कि मैं किस बात से असन्तुष्ट हू तो उसे पता चल जाएगा कि वह किस तल पर जी रहा है। अब यह हो सकता है कि एक आदमी महल मे जी रहा है, विलास मे, भोग मे। और एक आदमी लगोटी बाध कर सन्यासी की तरह खड़ा है— नगा, धूप मे, सर्दी मे, वर्षा मे। इससे कुछ पता नही चलता कि कौन धार्मिक है। पता चलेगा यह जानकर कि इस व्यक्ति के भीतर असन्तोष क्या है। हो सकता है कि महल मे जो व्यक्ति है उसके मन मे यह असन्तोष हो कि यह महल किस मतलब का है, यह धन किस मतलब का है। और उसे यह असन्तोष पकडे हुए है कि मैं उसे कैसे पाऊ जो मेरा स्वरूप है, जो मेरा अन्तिम आनन्द है। सोता है महल मे लेकिन उसका असन्तोष उस तल पर चल रहा है। तो वह व्यक्ति आध्यात्मिक है, धार्मिक है। पर एक आदमी लगोटी बाधे सड़क पर खड़ा है, मन्दिर मे प्रार्थना कर रहा है, पूजा कर रहा है। लेकिन प्रार्थना मे माग कर रहा है कि आज अच्छा भोजन मिल जाए, ठहरने को अच्छी जगह मिल जाए, इज्जत मिल जाए, अनुयायी मिल जाए, भक्त मिल जाएं, आश्रम मिल जाए। अगर वह इसी तरह की प्रार्थना मन्दिर में भी कर रहा है तो वह धार्मिक नही है। हमारा असन्तोष ही हमारी खबर देता है कि हम कहा हैं ?

महावीर इस जीवन मे किसी असन्तोष मे नही है लेकिन पिछले सारे जन्मो में उनके असन्तोष की एक लम्बी यात्रा है। वह निरन्तर यही है कि मेरा अस्तित्व, मेरा सत्य, मेरी वह स्थिति जहां मैं परम मुक्त हो जाऊ, न

कोई सीमा रहे, न कोई बंधन रहे, कहां है ? वह कैसे मिले, उसकी खोज जारी है। ऐसी खोज वाला व्यक्ति भी दूसरों के पारिवारिक असन्तोष को मिटाने के लिए उत्सुक हो सकता है, दूसरो के सामाजिक असन्तोष को मिटाने के लिए भी उत्सुक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति निपट सन्त भी रह सकता है, क्रान्तिकारी भी बन सकता है, सुधारक भी बन सकता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति की स्वयं की चिन्ता इन तलों पर नही है। उसकी चिन्ता एक अलग ही तल पर है। और बहुत कम लोग हैं जिनके जीवन में आध्यात्मिक असन्तोष होता है। अगर हम, लोगों के सिर खोल कर देख सकें तो हम बहुत हैरान हो जाएगे। उनके असन्तोष बहुत ही नीचे तल के होते हैं और जिस तरह के असन्तोष होते हैं उस तल पर व्यक्ति होता है।

नीत्से ने कहा है कि अभागा होगा वह दिन जिस दिन आदमी अपने से सन्तुष्ट हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन जिस दिन मनुष्य की आकांक्षा का तीर पृथ्वी के अतिरिक्त और किन्हीं तारो की ओर न मुडेगा। हम सबकी आकाक्षाओं के तीर पृथ्वी से भिन्न कही भी नहीं जाते। हम सब चीजों से अतृप्त होते हैं, सिर्फ अपने को छोडकर। एक आदमी मकान से अतृप्त होगा कि मकान ठीक नही, दूसरा बडा मकान बनाऊ। एक आदमी अतृप्त होगा कि पत्नी ठीक नही है दूसरी पत्नी चाहिए, बेटा ठीक नहीं है दूसरा बेटा चाहिए, कपड़े ठीक नहीं हैं दूसरे कपडे चाहिएं। लेकिन अगर हम खोजने जाए तो ऐसा आदमी मुश्किल से मिलता है जो न मकान से अतृप्त है, न कपड़ों से, न पत्नी से, न बेटों से, जो अपने से अतृप्त है। और जो कहता है कि मैं स्वयं ठीक नही हू, मुझे और तरह का आदमी होना चाहिए। जब आदमी अपने प्रति ही असन्तुष्ट हो जाता है तब उसके जीवन मे धर्म की यात्रा शुरू होती है। महावीर जरूर असन्तुष्ट रहे। वही यात्रा उन्हे वहां तक लाई है जहां तृप्ति और सन्तोष उपलब्ध होता है। क्योंकि जिस दिन व्यक्ति अपने को रूपान्तरित करके उसे पा लेता है जो वह वस्तुत: है उस दिन परम तृप्ति का क्षण आ जाता है। उसके बाद फिर कोई अतृप्ति नहीं। अगर वह फिर जीता है एक क्षण भी तो वह दूसरो के लिए ताकि वह उन्हें तृप्ति के मार्ग की दिशा दे सके, पर उसकी अपनी यात्रा समाप्त हो जाती है।

आपने पूछा है कि क्या उनका गृहत्याग दायित्व से पलायन नही है। मेरा कहना है कि महावीर ने कभी गृहत्याग किया ही नहीं। गृहत्याग वे लोग करते हैं जिन्हे गृह के साथ आसक्ति होती है। महावीर ने तो वही

छोड़ा है जो घर नहीं था। हमे यह ख्याल मे आना जरा मुश्किल होता है क्योंकि हम मिट्टी, पत्थर के घरो को घर समझे हुए है। इसलिए गृहत्याग का शब्द ही भ्रान्त है। असल मे महावीर घर की खोज मे निकले हैं। जो घर नहीं था उसे छोडा है और जो घर है उसकी खोज मे गए हैं। और हम जो घर नही है, उसे पकडे बैठे हैं और जो घर हो सकता है उसकी ओर आंख बद किए हुए हैं। हम पलायनवादी हैं। पलायन का क्या मतलब होता है? एक आदमी ककड़ पत्थरो को पकड ले और हीरो की तरफ आख बद कर ले। दूसरा आदमी ककड-पत्थर छोड दे और हीरो की खोज पर निकल जाए। पलायनवादी कौन है? क्या आनन्द की खोज पलायन है? क्या ज्ञान की खोज पलायन है? क्या परम जीवन की खोज पलायन है? तो महावीर ने कोई गृहत्याग नही किया। वह गृह की खोज मे ही गए हैं। आमतौर से आदमी सोचता है कि जो आदमी जिम्मेदारी से भागता है वह पलायनवादी है। लेकिन क्या पक्का पता है कि यही जिम्मेदारी है? महावीर जैसा आदमी दूकान पर बैठ कर दूकान चलाता है, क्या यही दायित्व होगा उसका जगत के प्रति, जीवन के प्रति? महावीर जैसा व्यक्ति घर मे बैठ कर बाल-बच्चो को बडा करता रहे, क्या यही दायित्व होगा उसका? महावीर जैसे व्यक्ति के लिए इस तरह के क्षुद्रतम घेरे मे खड़े होकर सब खो देने से अधिक दायित्व-हीनता और क्या हो सकती है। बडे दायित्व जब पुकारते हैं छोटे दायित्व तब छोड देने पडते हैं। बडे दायित्व की पुकार चूकि हमारे जीवन मे नही है, इसलिए हमे देखकर बडी मुश्किल होती है कि वह आदमी जिम्मेदारिया छोड़कर जा रहा है। यह आदमी कितनी बड़ी जिम्मेदारियां ले रहा है, यह हमारे ख्याल मे नही आता। आदमी एक घर को छोडता है तो करोड़ो घर उसके हो जाते है। घर के आगन को छोडता है तो सारा आकाश उसका आंगन हो जाता है। पत्नी को, बेटे को, प्रियजन को छोडता है तो सारा जगत उसका प्रियजन, और मित्र हो जाता है। लेकिन हमने हमेशा उसने जो छोड़ा है, उस भाषा मे सोचा है। जिस विस्तार पर वह फैला है, वह हमने नही सोचा। और जो उस एक घर को छोडकर गया, उसे भी छोडकर कहा गया? बुद्ध के जीवन में एक मधुर घटना है। बुद्ध लौटे हैं घर बारह वर्ष बाद। पत्नी नाराज है। बुद्ध का बेटा एक दिन का था जब वह घर छोडकर चले गए थे। वह अब बारह वर्ष का हो गया है। पत्नी उसे सामने कर देती है व्यंग्य में, मजाक मे और कहती है कि यह तुम्हारे पिता हैं, पहचान लो। पूछ लो तुम्हारे लिए

क्या कमाई इन्होने छोड़ी है, तुम्हारा दायित्व क्या निभाया है ? यही रहे तुम्हारे पिता। यह जो भिक्षापात्र लिए खड़े हैं यही सज्जन तुम्हे जन्म देकर एक ही रात बाद भाग गए थे। इन्होंने जगाकर भी मुझे नही कहा था कि मैं जाता हू। अब तुम इनसे अपने दाय का भाग माग लो। यह तुम्हारे पिता है। भिक्षु यह सुनकर सन्नाटे मे आ गए। आनन्द घबड़ाने लगा कि इस पागल को पता नही किससे क्या कह रही है ? तब बुद्ध ने आनन्दित होकर राहुल से कहा कि बेटा निश्चिन ही मैं तेरा पिता हू। हाथ फैला कि जो सम्पत्ति मैंने तेरे लिए इकट्ठी की वह तुझे दे दू। बुद्ध का हाथ तो खाली है तो भी राहुल ने हाथ फैला दिया है। बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र उसके हाथ मे दे दिया और कहा कि तू दीक्षित हुआ। क्योंकि बुद्ध जैसा पिता तुझे ऐसी ही सम्पदा दे सकता है जो तुझे भी बुद्ध बना दे। मैं तो बहुत दिन भटका, अब तुझे क्यो भटकाऊ ? यशोधरा रोने लगी है। लोग चिल्लाने लगे है कि यह क्या पागलपन हो रहा है ? एक बेटा छोडकर गए थे उसे भी लिए जाते हैं। तो बुद्ध कहते हैं कि और भी जिनको चलना हो, उनको भी मैं ले जाने को तैयार हू। क्योंकि जो मैंने वहा पाया है, अपने बेटे को कैसे वचित रखू उससे? जिन हीरो की खदान है वहा अपने बेटे को कैसे न ले जाऊ ?

हमे लगता है कि दायित्व छोड कर बुद्ध भाग गए। लेकिन मै कहता हू कि जैसा बुद्ध थे, वैसा ही रहकर क्या दायित्व पूरा कर लेते ? कितने बाप हुए हैं कितने बेटे हुए हैं, किसने क्या दायित्व पूरा किया है ? एक बाप जो कर सकता था ज्यादा से ज्यादा बेटे के लिए वह बुद्ध ने किया है। और जो कुछ जाना था, जो कुछ पाया था उसके सामने खोल दिया है। शायद इस दायित्व को समझना हमे मुश्किल हो जाए। अपने दुख के भार को दूसरे पर लादना ही हम दायित्व समझते है। अज्ञान की यात्रा को गति देना ही हम दायित्व समझते हैं। पलायन वह करता है जो दुखी हो। भागता वह है जो दुखी हो, डरता हो, भयभीत हो, जिसे शक हो कि जीत न सकूगा। ऐसा आदमी हमे भागता दिखता है। घर मे आग लगी हो और एक आदमी घर के बाहर निकले उसे आप भागने वाला तो न कहेगे। कोई यह तो नही कहेगा कि घर मे आग लगी थी और यह आदमी बाहर निकल आया। कोई नही कहेगा कि यह पलायनवादी है क्योंकि वहा भागने का सवाल ही नही है। विवेक की बात है कि कोई बाहर हो जाए। महावीर जैसे व्यक्ति जहा से भी हटते हैं, भागते नही—जहा, जहा आग है, हटते हैं। हटना एकदम विवेक-

पूर्ण है। और इसलिए भी हटते हैं कि जहां-जहा दुख जन्मता है, जहां-जहां दुख बढता है और फैलता है, वहा खडे रहने का क्या प्रयोजन है ? वहां से वे हटते हैं सिर्फ इसलिए कि और बेहतर जगह हैं जहा आग नहीं है। जैसे कि आप बीमार पड़े हैं, आप इलाज कराने चले जाए और डाक्टर आपसे कहे कि आप बडे पलायनवादी है, बीमारी से भागते हैं। वह आदमी कहेगा कि मैं बीमारी से नही भागता। लेकिन बीमारी मे खडे रहने में न तो कोई बुद्धिमत्ता है, न कोई अर्थ है। मैं स्वास्थ्य की खोज मे जाता हू। हम बीमार आदमी को कभी नही कहते कि तुम डाक्टर के यहा मत जाओ। एक अंधेरे मे खडा आदमी सूरज की तरफ आता है तो हम नही कहते कि तुम पलायनवादी हो। लेकिन हम महावीर जैसे लोगो को पलायनवादी कहना चाहते हैं। उसका कारण सिर्फ यह है कि अगर हम महावीर जैसे लोगो को सिद्ध कर देते हैं पलायनवादी तो हम जहा खडे हैं वहां से हटने की हमें जरूरत नही रह जाती। हम निश्चिन्त हो जाते है कि यह आदमी गडबड है, हम जहां खडे हैं, हम बिल्कुल ठीक हैं। हम सब मिलकर तय कर दें कि यह आदमी सिर्फ भगोड़ा है और हम बहादुर लोग हैं। हम जिन्दगी मे खडे हैं उस जिन्दगी मे जहां जिन्दगी है ही नही। और बहादुरी क्या है ? और उस बहादुरी से हमे क्या उपलब्ध हो रहा है ? जिन लोगों ने महावीर को 'महावीर' नाम दिया, उन लोगों ने महावीर को पलायनवादी नही समझा था। शायद कारण यह है कि हम अपनी कमजोरी की वजह से जहा से नही हट सकते हैं, वहां से महावीर अपने साहस की वजह से हट जाते हैं। लेकिन हम अपनी कमजोरी को भी छिपाते हैं, हम उसके लिए कोई न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं और कोई नही मानना चाहता कि हम कमजोर हैं। और तब हमारे बीच से अगर एक बहादुर आदमी हटता हो—बडी मुश्किल है हिम्मत जुटाना तो क्या वह पलायन है ? घर में आग लगी हो और घर मे पचास आदमी हो और हर आदमी मानता ही न हो कि घर मे आग लगी है तो जिस आदमी को आग लगी दिखाई पड़ती हो वह घर के बाहर निकलता हो तो लोग कहेंगे कि यह पलायनवादी है। हमने दुनिया के श्रेष्ठतम लोगो को सदा पलायनवादी कहा है। स्टीफेन जूड ने आत्महत्या की। लेकिन आत्महत्या करने के पहले उसने एक पत्र में लिखा कि ध्यान रहे, कोई यह न समझे कि मैं पलायनवादी हू। और यह भी ध्यान रहे कि मैं कायर नही हूं। बल्कि मेरा नतीजा तो यह है जिन्दगी भर का कि लोग चूंकि मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, इसलिए जिन्दा रहे चले जाते हैं। मैं भी बहुत

दिन तक हिम्मत नहीं जुटा पाया इसलिए जिन्दा रहा। इतना मुझे साफ दिखाई पड़ गया है कि इस तरह की जिन्दगी अगर रोज जीनी है तो मैं इसे तोड़ दूं। और ध्यान रहे कि मैं तोड़ता हूं तो सिर्फ इसलिए कि मैं हिम्मतवर हूं और तुम नही तोड़ते हो क्योंकि तुम हिम्मतवर नही हो। लेकिन मैं जानता हू कि मेरे मरने के बाद लोग कहेंगे कि वह कायर था, पलायनवादी था, मर गया, भाग गया जिन्दगी से।

यह आदमी बहुत कीमती बात कह रहा है। यह उस जगह खड़ा है जहां से आदमी या तो आत्महत्या करता है, या आत्मसाधना मे जाता है। यह उस जगह खड़ा है जहा जिन्दगी व्यर्थ हो गई है, वही रोज सुबह का उठना, वही रोज शाम सो जाना, वही काम, वही क्रोध, वही लोभ। वही रोज-रोज सब एक मशीन की तरह हम घूमते चले जाते हैं। कोई उस जगह पहुंच गया है जहा वह कहता है कि अगर यही जिन्दगी है तो मैं खत्म करता हू अपने को। और ध्यान रहे कि मैं कायर नही। मेरा भी मानना है कि वह कायर नही। वह गल्ती करता है, वह चूक गया है एक बिन्दु को जिसको महावीर नही चूकते। तो महावीर उस जगह तक पहुचते हैं जहां दुनिया के सभी लोग जिनकी जिन्दगी मे क्रान्ति घटित होती है, एक दिन पहुचते हैं, जहा या तो आत्म-हत्या या साधना—दूसरा विकल्प नही रह जाता। या तो जैसे हम हैं उसको खत्म करो, शरीर से मिटा दो, या जैसे हम हैं, उसे बदलो आत्मिक अर्थों मे ताकि हम दूसरे हो जाए। जो आत्महत्या कर लेता है वह कायर नही है। है तो बहादुर ही, लेकिन वह भूल से मरा है, क्योंकि आत्महत्या से क्या होगा? जीवन की आकांक्षा फिर नये जीवन बना देगी। महावीर जैसे व्यक्ति आत्महत्या नही करते। आत्मा को ही रूपान्तरित करने में लग जाते हैं। आत्महत्या करने से क्या होगा? आत्मा को ही बदल डालें, नया जीवन कर लें लेकिन हमें दोनो ही भागे हुए लग सकते हैं। और इसके पीछे कारण भी हैं क्योंकि सौ मे से निन्यानबें लोग निश्चित ही भागते हैं। सौ संन्यासियों में से निन्यानबें संन्यासी पलायनवादी ही होते हैं। और उन निन्यानबें के कारण सौ को यह मानना मुश्किल हो जाता है। निन्यानबें तो इसलिए भागते हैं कि बीमारी है, झगडा है, पत्नी मर गई है, दिवाला निकल गया है। कुछ ऐसे कारण हैं जो उन्हे कहते हैं कि इस झंझट से दूर हो जाओ। लेकिन ऐसे आदमी अगर झंझट से भागते हैं तो नई झंझटें खड़ी कर लेते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आदमी वहीं का वहीं रहा। वह नई झंझटें निर्मित

कर लेता है। ऐसा आदमी पलायनवादी कहा जा सकता है। लेकिन महावीर ऐसे पलायनवादी नही हैं। क्योकि वह कोई नई झझट खड़ी नही कर रहे हैं। और किसी भय से नही भाग रहे हैं। अगर कोई आदमी किसी ज्ञानपूर्ण चेतना मे सीढी बदल देता है, दूसरी सीढी पर चला जाता है तो यह पलायन नही है। अगर कोई आदमी भाग रहा हो किसी से डर कर तो एक बात, और एक आदमी भाग रहा हो कुछ पाने के लिए तो वह बिल्कुल दूसरी बात। वह आदमी भी भाग रहा है जिसके पीछे बन्दूक लगी हो और वह आदमी भी दौड़ता है जिसको हीरो की खदान दिखाई पड गई है। लेकिन एक के पीछे बन्दूक का भय है, इसलिए भागता है, एक को हीरो की खदान दिख गई है, इसलिए भागता है। दूसरे आदमी को आप भागने वाला नही कह सकते, उसे गतिवान कह सकते है, क्योकि वह किसी चीज से भाग नही रहा है। उसकी दृष्टि का जोर है जहा वह जा रहा है, जहा से वह जा रहा है वहा नही। दोनो हालतो मे वह जगह छूट जाती है। लेकिन दोनो हालतो मे बुनियादी फर्क है। महावीर कही से भी भागे हुए नही है लेकिन निन्यानवें भागे हुए सन्यासियो मे से एक गया हुआ सन्यासी पहचानना मुश्किल हो जाता है। और वह मुश्किल हमारी समझ मे ऐसी बाधाए खड़ी कर देती है कि उसके दो ही रास्ते हैं। या तो हम उन सन्यासियो को गया हुआ मान लेते हैं, और या हम उन्हे भागा हुआ मान लेते है। जबकि जरूरत इस बात की है कि हम जाच-पड़ताल करे कि कोई आदमी पाने गया है, या कोई आदमी सिर्फ छोड़कर भागा है।

पाने गया हो तो जरूर कुछ चीजें छूट जाती हैं। आप सीढिया चढ़ रहे हैं। दूसरी सीढी पर पैर रखते हैं, पहली सीढ़ी छूट जाती है, पहली सीढी से आप भागते नही, सिर्फ पहली सीढी छूटती है क्योकि दूसरी सीढी पर पैर रखना जरूरी है। जो लोग ऊची सीढियो पर पैर रखते हैं, नीची सीढ़िया छूट जाती हैं। नीची सीढियो से जो डरता है वह ऊची सीढ़ी पर नही पहुच पाता, वह नीचे की सीढियों पर उतर आता है क्योकि वह डरा हुआ है। उसका भागना सिर्फ उसे और नीचे की सीढियो पर ले आता है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक गृहस्थ भाग कर सन्यासी हो जाए तो वह महागृहस्थ हो जाता है। उसकी चाल गृहस्थी की चाल से और भी ज्यादा पाखण्डी हो जाती है। वह फिर भी पैसा इकट्ठा करता है। कल वह कमा कर इकट्ठा करता था, आज वह कमाने वालों को फसा कर इकट्ठा करता है। अब उसका

जाल जरा गहरा, सूक्ष्म, चालाकी का हो जाता है। कल भी वह मकान बनाता था, अब भी बनाता है। कल बनाए हुए मकानों को मकान कहता था, अब उनको आश्रम, मन्दिर ऐसे नाम देता है। कल जो कहता था, वही अब करता है। कल भी अदालत मे लडता था, अब भी अदालत में लडता है। लड़ने का आधार कल व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, आज आश्रम की सम्पत्ति है। भागा हुआ व्यक्ति नीची सीढ़ियो पर उतर जाता है। लेकिन ऊपर की सीढ़ी पर जो जाएगा उसकी भी सीढी टूटती है। यह बारीक है पहचान और यह हमे समझ में तब आएगी जब हम अपनी जिन्दगी में इसकी पहचान करें कि हम कही से भागे हैं, या कही गए है। यहा आप सब मित्र आए हैं। कोई आ भी सकता है, कोई भागा हुआ भी आ सकता है। एक आदमी बेचैन हो गया है, परेशान हो गया है, पत्नी सिर खाए जाती है, दफ्तर मे मुश्किल है, काम ठीक नही चलता, चलो पन्द्रह दिन के लिए सब भूल जाओ। ऐसा भी आदमी आ सकता है। वह भागा हुआ दिखाई पडेगा और वह बच नही सकता क्योंकि जिससे वह भागा है वह उसका पीछा करेगा। वह सब भय, वे सब चिन्ताए इस पहाड पर भी उसे घेरे रहेगी। हा, थोडी, देर के लिए बातचीत मे भूल जाएगा लेकिन लौट कर फिर सब पकड़ लेगा। और पन्द्रह दिन पहले जिस उलझन से वह भाग आया था, वह उलझन पन्द्रह दिन मे कम नही होने वाली है, पन्द्रह दिन मे और बढ गई होगी। पन्द्रह दिन बाद वह फिर उसी उलझन मे खडा हो जाएगा, दुगुनी परेशानी लेकर वही पहुच जाएगा। लेकिन कोई आदमी आया हुआ भी हो सकता है, कही से भागा हुआ नही है। वह कही कोई ऐसी बात न थी जिससे वह भाग रहा है बल्कि कही कुछ पाने जैसा लगा है, इसलिए चला आया है। यह आदमी आ सकेगा सच मे और आकर पीछे को सब भूल जाएगा क्योंकि कही से आया है, कही से भागा नही है। और यहां से लौटकर दूसरा आदमी होकर भी जा सकता है। और आदमी बदल जाए तो सारी परिस्थितिया बदल जाती हैं। मैं महावीर को पलायन-वादी नही कहता हू।

चर्चा : दो

२५.६.६६ प्रातः

२

प्रश्न : महावीर ने न नियन्ता को स्वीकार किया है, न समर्पण को, न गुरु को, न शास्त्र को, न परम्परा को। तो क्या यह महावीर का घोर अहंकार नहीं था ? क्या महावीर अहवादी नहीं थे ?

उत्तर : यह प्रश्न स्वाभाविक है और जो व्यक्ति नियन्ता को स्वीकार करता है, नियन्ता के प्रति समर्पण करता है, गुरु को स्वीकार करता है, गुरु के प्रति समर्पण करता है, शास्त्र-परम्परा के प्रति झुकता है, वह साधारणतः हमे विनम्र, विनीत, निरहकारी मालूम पड़ेगा ? इन दोनो बातो को ठीक से समझ लेना जरूरी है। पहली बात यह कि परमात्मा के प्रति झुकने वाला भी अहकारी हो सकता है। और यह अहकार की चरम घोषणा हो सकती है उसकी कि मैं परमात्मा से एक हो गया हू। 'अह ब्रह्मास्मि' की घोषणा अहकार की चरम घोषणा है। यानी मैं साधारण आदमी होने को राजी नही हू। मैं परमात्मा होने की घोषणा के बिना राजी ही नही हो सकता हू। नीत्से ने कहा है कि यदि ईश्वर है तो फिर एक ही उपाय है कि मैं ईश्वर हू। और यदि ईश्वर नहीं है तो बात चल सकती है। ईश्वर के प्रति समर्पण भी ईश्वर होने की अहम्मता से पैदा हो सकता है। दूसरी बात यह कि समर्पण मे अहकार सदा मौजूद है, समर्पण करने वाला मौजूद है। समर्पण कृत्य ही अहकार का है। एक आदमी कहता है कि मैंने परमात्मा के प्रति स्वय को समर्पित कर दिया है। यहा हमे लगता है कि परमात्मा ऊपर हो गया है और यह नीचे। यह हमारी भूल है। समर्पण करने वाला भी नीचा नही हो सकता क्योकि कल चाहे तो समर्पण वापस लौटा सकता है। कल कहता है कि अब मैं समर्पण नही करता हू। असल मे कर्ता कैसे नीचे हो सकता है ? समर्पण मे भी कर्ता सदा ऊपर है। वह कहता है मैंने समर्पण किया है परमात्मा के प्रति। और अगर मैं नही हू तो समर्पण कोई कैसे करेगा, किसके प्रति करेगा। इसे समझ ले तो महावीर की स्थिति समझ मे आ सकती है। महावीर नितान्त ही निरहकार हैं। यानी उतना भी अहंकार नही हैं कि 'मैं' समर्पण

करूं। वह 'मैं' तो चाहिए समर्पण के लिए। वह समर्पण कराने का कर्त्तव्य-भाव चाहिए। और जैसा मैंने कहा कि जो व्यक्ति समर्पण करता है, वह समर्पण मांगता है। यह माग एक ही सिक्के का हिस्सा है दूसरा। लेकिन महावीर ने समर्पण किया भी नही, मागा भी नही। मेरी दृष्टि में यह परम निरहंकारिता हो सकती है। यानी समर्पण करने योग्य भी तो निरहकार चाहिए। आखिर मैं ही समर्पित होऊंगा, नियन्ता को मैं ही स्वीकृत करूंगा, महावीर के अस्वीकार मे ऐसा नही है कि 'नियन्ता' नही है। अस्वीकार का कुल मतलब इतना ही है कि स्वीकार नही है। 'अस्वीकार' पर जोर नही है। महावीर सिद्ध करते नही, घूम रहे हैं कि परमात्मा नही है, ईश्वर नही है। उनके अस्वीकार का कुल मतलब इतना है कि वह सिद्ध करते नही, घूम रहे हैं कि ईश्वर है, नियन्ता है। अस्वीकार फलित है, अस्वीकार घोषणा नहीं। वह सिर्फ स्वीकृति की बात नही कर रहे, न समर्पण की बात कर रहे हैं। न वे यह कह रहे हैं कि कोई गुरु नही है, कोई शास्त्र नही है। वह यह भी नही कह रहे हैं कि वे गुरु के प्रति समर्पित नही हैं, शास्त्र के प्रति समर्पित नही हैं। यह फलित है जो हमे दिखाई पडता है कि वे समर्पित नहीं है। लेकिन समर्पण के लिए भी अहकार चाहिए। अगर कोई व्यक्ति नितान्त अहकार-शून्य हो जाए तो समर्पण कैसा? कौन करेगा? समर्पण? समर्पण कृत्य है, कृत्य के लिए कर्ता चाहिए और अगर कर्ता नही है तो समर्पण जैसा कृत्य भी असम्भव है। फिर जब कोई कहता है कि मैंने समर्पण किया तो समर्पण से भी 'मैं' को ही भरता है। समर्पण भी उसके 'मैं' का ही पोषण है। वह समझता है कि 'मैं' कोई साधारण नही हू, मैं ईश्वर के प्रति समर्पित हू।

एक सन्त के पास—तथाकथित सन्त कहना चाहिए—सम्राट् अकबर ने खबर भेजी : बडा उत्सुक हू आपके दर्शन को, मिलने को, सुनने को। तथाकथित सन्त ने खबर भिजवाई वापिस कि हम तो सिर्फ राम के दरबार मे झुकते हैं। हम आदमियो के दरबार मे नही झुका करते। यह व्यक्ति क्या कह रहा है? यह कह रहा है कि हम तो सिर्फ राम के सामने झुकते हैं, आदमियों के सामने नही झुका करते। और हम राम के दरबार के दरबारी हो गए। ऊपर से लगता है यह आदमी कितनी बढ़िया बात कह रहा है। लेकिन बड़े गहरे अहकार से निकली बात मालूम पड़ती है। अभी इसे आदमी और राम में फर्क है और यह निरन्तर यह भी कहे चला जा रहा है कि सब मे राम है। अकबर भर को छोड देता है, अकबर मे 'राम' नही है। सब में 'राम' देखे

चला आ रहा है और अकबर में अटक जाता है, और वहां उसका अहंकार घोषणा कर देता है कि 'मैं कोई ऐसा आदमी थोड़े ही हू कि आदमियो के दरबारो मे बैठू; मैं तो राम के दरबार का दरबारी हू। यह घोषणा बहुत गहरे अहंकार की सूचना है। इससे यह मत समझ लेना कि जिन्होंने भगवान को स्वीकार किया है, वे अहकार-शून्य होंगे। हो सकता है यह अहकार की अन्तिम चेष्टा हो। अहकार भगवान को भी मुट्ठी मे लेना चाहता है। उसकी तृप्ति नही होती। संसार को मुट्ठी मे ले लेने से आखिर में भगवान को भी ले लेना चाहता है।

महावीर के पास एक सम्राट् गया। और सम्राट् ने कहा : सब है आपकी कृपा से। राज्य है, सम्पदा है, अन्तहीन विस्तार है, सैनिक हैं, सुख है, सुविधा है, शक्ति है, सब है। लेकिन इधर मैंने सुना है कि मोक्ष जैसी भी कोई चीज है। तो मैं उसको भी विजय करना चाहता हू। क्या उपाय है ? कितना खर्च पड़ेगा ? हसे होंगे महावीर। सम्राट् है, सब जीतना चाहता है। उसने बहुत इन्तजाम कर लिया है। अब इधर खबर मिली है कि मोक्ष जैसी भी एक चीज है, और ध्यान जैसी भी एक अनुभूति है तो उसके लिए भी खर्च करने को तैयार है। यानी ऐसा न रह जाए कि कोई कहे कि इस आदमी को मोक्ष भी नही मिला, ध्यान भी नही मिला। महावीर ने उससे कहा कि खरीदने को ही निकले हो तो जो तुम्हारे ही गाव मे एक श्रावक है उसके पास चले जाना। उससे पूछ लेना कि एक सामायिक कितने मे बेचेगा, एक ध्यान कितने मे बेचेगा। खरीद लेना, उसको उपलब्ध हो गया है। तो नासमझ सम्राट् उस आदमी के घर पहुचा और हैरान हुआ देखकर कि वह बहुत दरिद्र आदमी है। उसने सोचा कि इसको तो पूरा ही खरीद लेंगे। सामायिक का क्या सवाल है। यानी इसमे कोई झंझट ही नही है। पूरे आदमी को चुकता खरीदा जा सकता है। यह तो बड़ी सरल बात है। तो उसने कहा कि महावीर ने कहा है कि सामायिक खरीद लो उस आदमी से जाकर। तो वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि चाहो तो मुझे खरीद लो लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नही। सामायिक पाई जा सकती है, उसे खरीदा नहीं जा सकता। लेकिन अहंकार उसको भी खरीदना चाहता है, भगवान को भी खरीदना चाहता है। ऐसा कोई न कहे कि बस तुम्हारे पास धन ही धन है और कुछ भी नहीं। अहंकार धर्म को भी खरीदने जाता है। लेकिन हमें यह दिखाई पड़ना बहुत मुश्किल होता है। असल में कठिनाई क्या है ? हमारे मन मे दो चीजें हैं : अहकार

या नम्रता। नम्रता अहंकार का ही रूप है, यह हमारे ख्याल मे नही है।

अहंकार एक विधायक घोषणा है. नम्रता अहंकार की निषेधात्मक घोषणा है। महावीर नियन्ता के प्रति, गुरु के प्रति, परम्परा के प्रति न नम्र है, न अनम्र है। दोनो बाते असगत है महावीर के लिए। इनसे कुछ लेना-देना नही है। मैं एक बडे वृक्ष के पास निकलू और नमस्कार न करू तो आप मुझे अनम्र न कहेगे। लेकिन एक महात्मा के पास से निकलू और नमस्कार न करू तो आप कहेगे अनम्र है। लेकिन यह भी हो सकता है कि मेरे लिए महात्मा और वृक्ष दोनो बराबर हो। मेरे लिए दोनो असगत हो, इस बात से ही मुझे कुछ लेना-देना न हो। लेकिन आपकी तोल मे एक स्थिति मे मैं नम्र हो गया और एक स्थिति मे अनम्र हो गया जबकि मुझे इसका कुल पता ही नही।

एक फकीर एक गाव से निकल रहा है। एक आदमी एक लकडी उठा कर उसको मार रहा है पीछे से। चोट लगने पर लकडी उसके हाथ से छूट गई है और एक तरफ गिर गई है। उस फकीर ने पीछे लौट कर देखा, लकडी उठा कर उसके हाथ मे दे दी और अपने रास्ते चला गया। एक दूकानदार यह सब देख रहा है, उसने फकीर को बुलाया और कहा कि तुम कैसे पागल हो? तुम्हे उसने लकड़ी मारी, उसकी लकडी छूट गई तो तुमने सिर्फ इतना ही किया कि उसकी लकडी उसको उठाकर वापस देदी और तुम अपने रास्ते चले गए। उस फकीर ने कहा कि एक दिन मैं एक झाड के नीचे से गुजर रहा था। उसकी एक शाखा गिर पडी मेरे ऊपर तो मैंने कुछ नही किया। मैंने कहा कि सयोग की बात है कि जब शाखा गिरी तो मैं उसके नीचे आ गया। मैं शाखा को रास्ते के किनारे सरका कर चला गया। सयोग की बात होगी कि उस आदमी को लकडी मारनी होगी हम पर तो इसकी लकड़ी छूट गई, उसको उठाकर देदी, और हम क्या कर सकते थे? हम अपने रास्ते चल पडे। जो मैंने वृक्ष के साथ व्यवहार किया था वही मैने इस आदमी के साथ भी किया।

एक स्थिति ऐसी हो सकती है कि हमारे प्रश्न असगत हो जाते हैं। क्योकि हम जब सोचते हैं तो दो ही मे सोच सकते हैं। और यह समझना गलत हो जाता है। क्योकि जिस तल पर हम समझ सकते थे, उस तल पर उनका कोई भी रूप नही बनता है कि वे कैसे आदमी हैं। महावीर अनम्र हैं या विनम्र हैं यह तय करना मुश्किल है क्योकि ऐसा कोई प्रमाण ही नही जिसमें वह कोई भी घोषणा करते हो। तब हमारे ऊपर ही निर्भर रह जाता है कि हम निर्णय कर लें और

हमारा निर्णय वही होने वाला है जो हमारी तोल है, जो हमारा मापदण्ड है। महावीर उस तोल के बाहर हैं।

इसलिए मैं कहता हूं कि महावीर से ज्यादा निरहकारी थोड़े ही लोग हुए हैं। हां, महावीर से ज्यादा नम्र कई लोग हुए हैं। महावीर से ज्यादा अहकारी लोग भी हुए हैं लेकिन महावीर से ज्यादा निरहकारी लोग मुश्किल से हुए हैं। महावीर से ज्यादा नम्र आदमी मिल जाएगा जो झुक-झुक कर नमस्कार करेगा। महावीर झुकेंगे नही, क्योकि कौन झुके ? किसके लिए झुके ? फिर जब कोई आदमी झुकता है तो हम कहते हैं कि वह नम्र है लेकिन वह किसलिए झुकता है ? किसी अहकार की पूजा मे, किसी अहकार के पोषण मे वह झुकता है। और महावीर कहते हैं कि मेरा अहकार तो बुरा है ही, किसी का भी अहकार बुरा है। मैं झुकू और आपकी बीमारी बढ़ाऊं ? मैं झुकू आपके चरणो मे और आपके दिमाग को फिराऊ ? मैं झुकूगा तो आपको बडा रस आएगा कि यह आदमी बडा नम्र है। लेकिन रस इसीलिए आएगा कि आपके अहकार को तृप्ति मिलती चली जाएगी। महावीर मे कोई पूछे तो वह कहेगे कि देवताओ का दिमाग भी आदमियो ने ही खराब किया है। अगर कही भगवान भी है तो अब तक पागल हो गया होगा। यह जो झुकना चल रहा है दूसरे के अहकार का पोषण करता है। निरहकारी न तो अहकार मे जीता है न अहकार को पोषण देता है। इसलिए उसके जीवन का तल, उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल बदल जाती है। उसे पकड पाना मुश्किल हो जाता है कि हम उसे कहा पकडें, और कहा तोले। महावीर के साथ भी यही कठिनाई मालूम होती है।

प्रश्न : प्रेम में भी कोई शर्त है क्या ? तो फिर महावीर की शर्त क्यों ?

उत्तर : मैं कहता हू कि प्रेम सदा बेशर्त है, क्योकि जहा शर्त है वहा सौदा है। जहां हम कहते हैं कि मैं तब प्रेम करूंगा जब ऐसा हो; या तुम ऐसे हो जाओ या ऐसे बनो, तब मैं तुम्हें प्रेम करूगा ऐसा आदमी प्रेम को शर्त से बाध रहा है और प्रेम को खो रहा है। महावीर की शर्तों की बात प्रेम के सम्बन्ध मे नही है। महावीर ऐसा नही कहते कि जगत ऐसा करे तो मैं प्रेम करूगा, जगत मुझे भोजन दे तो मैं प्रेम करूगा। नही, यह तो बात ही नही है. प्रेम का मामला ही नहीं है। महावीर तो यह कहते हैं कि अगर जगत को प्रेम हो, अगर अस्तित्व को मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे कैसे पता चले। मैं कैसे जानू कि

सारा अस्तित्व मुझे बचाना चाह रहा है, और उपयोगी मान रहा है और समझ रहा है कि मैं जिऊं एकक्षण ताकि उसके लिए फायदा हो जाए। तो महावीर कहते हैं कि मैं कुछ शर्तें लगा देता हूं जिनकी पूर्ति मुझे खबर दे देगी कि अभी जीना है या नहीं। महावीर यह नहीं कह रहे कि अगर जगत मेरी शर्तें पूरी करेगा तो मैं प्रेम करूंगा। जगत के प्रति प्रेम है तो शर्त का कोई सवाल ही नहीं है। शर्त प्रेम पाने के लिए नहीं बांधी जा रही है, सिर्फ इस बात की जानकारी पाने के लिए बांधी जा रही है कि अगर मुझे जिलाना हो तो जगत मुझे जिलाए, नहीं तो कोई बात नहीं। महावीर कह रहे है कि मैं अपनी तरफ से जीने का उपक्रम नहीं करूंगा। यह मेरी चेष्टा नहीं होगी कि मैं जिऊं। असल मे हो भी यही सकता है कि जिसका 'मैं' ही मिट गया हो अब उसे जीने की लालसा क्या हो सकती है? अब तो यही हो सकता है कि अगर जरूरत हो तो ठीक है। जैसे समझो कि मैं बोल रहा हूं। बोलने के दो कारण हो सकते हैं। या तो बोलना मेरी भीतर वासना हो कि मैं बिना बोले न रह सकूं यानी मुझे बोलना ही पड़े। अगर कमरे मे कोई भी न हो तो दीवार से बोलना पड़े। तब बोलना मेरी विवशता होगी। क्योंकि तब बोलने, न बोलने से मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं। मैं भीतर बेचैन हूं और मुझे कुछ बोलना है, जैसे कोई पागल बोलता है रास्ते पर, अकेले मे भी बोलता है, दीवार से भी बोलता है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि सुनने वाले बैठे हो या नहीं। जरूरी नहीं कि बोलने वाला आदमी पागल न हो। यह तो तब पता चलेगा जब हम उसे अकेला दीवार के पास छोड़ दें और वह न बोले। तो अगर बोलना भीतरी पागलपन है तो सुनने वाला फिर बहाना है। उसको जबर्दस्ती थोपा जा रहा है। लेकिन अगर बोलना भीतरी पागलपन नहीं है और मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है और मुझे लगता है कि तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे काम आ जाऊं तब मैं शर्तें लगाऊंगा ताकि मुझे पता चल जाए कि तुम्हारे लिए बोल रहा हूं। मैं कहूंगा चुप बैठना तो ही मैं बोलूंगा। यानी मुझे यह तो पता चल जाए कि तुम सुनने को तैयार हो, तुम सुनने को आए हो। अगर तुम सुनने को तैयार नहीं हो, और तब भी मैं बोले चला जा रहा हूं तब वह मेरा भीतरी पागलपन हो गया। तो मैं एक शर्त लगा दूंगा कि तुम चुप होकर सुनना, तुम बैठकर सुनना तो ही मैं बोलूंगा। और जिस क्षण तुम खड़े हो जाओ, या बोलने लगो, मैं बोलना बंद कर दूंगा और विदा हो जाऊंगा। मेरा मतलब समझे आप। यानी महावीर यह कह रहे हैं कि अगर पूरे अस्तित्व को मेरी जरूरत

है, दरख्तों को, हवाओं को, सूरज को, चांद-तारों को, परमात्मा को, [परमात्मा महावीर के लिए व्यक्ति नहीं है]—समग्र को अगर जरूरत है मेरी, तो मैं चलता चला जाऊंगा। जिस दिन तुम कह दोगे कि जरूरत नहीं है, तो मैं एक इंच भी आगे नहीं जाऊंगा। तो महावीर की शर्त प्रेम के लिए लगाई गई शर्त नहीं है। वह शर्त अपने होने के लिए लगाई गई है कि मैं अभी लौट जाऊं इसी क्षण। एक क्षण भी मैं नहीं कहूंगा कि और मुझे ठहरने दो, अभी मुझे कुछ कहना है। यह सवाल नहीं है। तुम्हारी खबर आ जाए तो मैं अभी लौट जाऊंगा।

प्रश्न : दुबारा उनका आना भी जगत की जरूरत है क्या ?

उत्तर : बिल्कुल ही जगत की जरूरत है। लेकिन जैसे ही किसी व्यक्ति को आनन्द उपलब्ध होता है, वैसे ही सारे जगत के प्राणी उससे पुकार करने लगते हैं कि बांटो, क्योंकि जगत इतने कष्ट मे है, इतनी पीड़ा मे है कि जब भी कोई एक व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो जाता है तो सारे जगत के प्राणियो की पुकार घूम घूम कर उसके पास पहुचने लगती है कि बांटो। वह बाटना ही लौटाता है। वह बांटने का जो चारो तरफ से उठा हुआ दबाव है, वही उसे लौटाता है। यह एकदम से हमे दिखाई नही पडता। 'लोग पूछते हैं कि आप किसलिए बोलते हैं ?' तो उनका सवाल ठीक ही है क्योंकि बोलता मैं हू तो सवाल मुझसे पूछा जाएगा। यह ध्यान मे आना कठिन है कि कोई सुनने को आतुर हो गया है इसलिए मैं बोलता हूं। जगत की स्थिति मे तो घटनाए उल्टी घटेंगी। मैं बोलूंगा तब सुनने वाला आएगा। लेकिन अन्तर्जगत् मे घटनाएं बिल्कुल भिन्न हैं। कोई सुनने वाला पुकारेगा तभी मैं बोलूंगा। जैसे कि हम नदी के किनारे पर खड़े हो जाए तो नदी में दिखाई पड़ता है कि सिर नीचे है और पैर ऊपर हैं। लेकिन वस्तुतः जो किनारे पर खड़ा है उसका सिर ऊपर और पैर नीचे हैं। नदी में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वह उल्टा बनता है। जीवन मे जो प्रतिबिम्ब बनते हैं, वे उल्टे बनते हैं। अन्तस्तल के जो प्रतिबिम्ब हैं, बिल्कुल उल्टे हैं। अन्तस्तल मे सुनने वाला पहले मौजूद हो जाता है, तब बोलने वाला आता है। बाहर के जगत मे बोलने वाला पहले दिखाई पड़ता है तब सुनने वाले इकट्ठे होते हैं। महावीर को नहीं कह सकोगे जाकर कि आप फिर बोल रहे हो। क्योंकि महावीर कहेंगे कि तुम क्यों सुन रहे हो ? तुम सुनने के लिए पहले आ गए तब मैं बोलने आया हूं। मगर

हमें यह दिखाई नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस जगत पर हम जीते हैं, वह छाया का, प्रतिफलन का जगत है। वहा चीजे सीधी नहीं हैं, वहा चीजें उल्टी हैं, और हम उसी हिसाब से सोचते हुए चलते हैं। महावीर तुम्हारे गाव में भी आएंगे तो तुम कहोगे कि क्यो आए हैं आप यहा ? और मजा यह है कि तुम्हीने बुलाया था। लेकिन तुम्हारे बुलाने के प्रति तो तुम सचेतन नहीं हो। महावीर को यह पीडा भी झेलनी पडेगी कि तुम्हीने बुलाया था और तुम्ही पूछोगे कि कैसे आप आए हो यहा ?

बुद्ध एक गाव मे जा रहे है। सुबह का वक्त है और वह उस गांव मे प्रवेश करने को हैं। एक किसान लड़की अपने पति के लिए भोजन लेकर खेत की ओर जा रही है। रास्ते मे बुद्ध को कहती है कि मैं जब तक न लौट आऊ, बोलना शुरू मत करना। बुद्ध कहते हैं कि तेरे लिए ही तो मैं आ रहा हू भागा हुआ। अगर तू न होगी तो बोलना शुरू होकर भी क्या करूगा ? आनन्द बहुत मुश्किल मे पड जाता है, वह पूछता है कि आप यह क्या कह रहे हैं कि इस लडकी के लिए भागे चले आ रहे हैं दूसरे गाव से। वह कहते हैं : हा इसी लडकी के लिए। देखो वही लडकी मुझसे कहती है कि बोलना शुरू मत करना जब तक मैं न आ जाऊ। मैं उसी के लिए आ रहा हू। फिर वह लडकी चली गई है। गाव मे बुद्ध आए हैं, भीड इकट्ठी हो गई है। लोग कहते हैं : अब आप बोलें, आप शुरू करें। बुद्ध चारो ओर देख रहे हैं, लड़की नजर नहीं आती। आनन्द कहते हैं कि लोग क्या कहेंगे कि आप उस लडकी के लिए रुके हैं। आप बोले। तो बुद्ध ने कहा कि मैं जिसके लिए आया हूं और जो रास्ते मे मुझे कह भी गई है कि रुकना यह कैसे हो सकता है कि मैं बोलू। साझ होने लगी, लोग बिदा होने लगे। तब वह लडकी भागी हुई आई और कहा कि बड़ी मुश्किल मे पड गई हूं। पति बीमार हो गया है, उसे कोई कीड़ा काट गया है और मैं वहा उलझ गई। और मैं बडी परेशान थी कि कहीं आप बोलना शुरू न कर दें। बुद्ध ने कहा कि तेरे बिना बोल के करता भी क्या ? तेरे लिए भागा हुआ आया। तूने मुझे पहले बुलाया है, मैं पीछे चला हू। लेकिन हमारी दुनिया मे जहां हम जीते हैं, वहां चीजें बिल्कुल उल्टी हैं। वहां बुद्ध पहले आए हैं, लडकी पीछे सुनती है।

हमारे सब सवाल उल्टे हैं क्योंकि हमारे सब सवाल जहां से उठते हैं वहां चीजें बिल्कुल उल्टी हैं। महावीर के प्रेम में कोई शर्त नहीं है। शायद उतना बेशर्त प्रेम ही कभी नहीं हुआ। बिल्कुल बेशर्त है प्रेम। लेकिन

महावीर अपने अस्तित्व के लिए शर्तें बांध रहे हैं । वे जो शर्तें हैं अपने अस्तित्व के लिए हैं, तुम्हारे प्रेम के लिए नहीं हैं । वह इसलिए कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम विदा हो चुका हो, और अस्तित्व को जरूरत न हो और मैं जिए चला जाऊं । तब बेमानी हो जाएगी बात । एक क्षण भी नहीं रुकना, मुझे खबर देना, और किसी परमात्मा को महावीर मानते नहीं जो कि खबर कर दें। कोई भगवान् नहीं जो कह दे, बस लौट आओ। यह तो समग्र अस्तित्व ही खबर करे तो ही पता चलने वाला है और कोई उपाय नहीं । अगर भगवान् हो तो वह कह देंगे कि मुझे बता देना, मैं विदा हो जाऊं । लेकिन यह समग्र अस्तित्व कैसे कहेगा ? हवाएं कैसे कहेंगी ? फूल कैसे कहेंगे? वृक्ष कैसे कहेंगे ? चांद-तारे कैसे कहेंगे ? महावीर कहते हैं कि मैं शर्त लगा लेता हूं ताकि मुझे पता चलता जाए कि अब इसके आगे नहीं जाना । अब बात खत्म हो गई; मेरी जरूरत विदा हो गई, मैं चुकता हो गया । इस करुणा को हम नहीं समझ सकते कि वह एक क्षण भी हम पर बोझ की तरह नहीं जीना चाहते क्योंकि जो मुक्ति बनने की कामना लेकर खड़ा हो, वह बोझ नहीं बन सकता है। शर्त जो है, वह अपने अस्तित्व के लिए है, प्रेम के लिए नहीं है । प्रेम तो सदा बेशर्त है परन्तु अपना अस्तित्व सदा सशर्त होना चाहिए । अपना अस्तित्व बेशर्त हो जाए तो बहुत मुश्किल की बात है । यह प्रेम के ऊपर बोझ पड़ेगा, बहुत भारी बोझ पड़ेगा ।

प्रश्न : आप मेहरबाबा की बात बता रहे थे कि दो बार जब दुर्घटना होने लगी वह बच गए । उन्हें पहले पता चल गया । लेकिन आप पत्ते की भांति अपने आपको खुला छोड़ना चाहते हैं । और जब लामा तिब्बत से आए तो आपने उनको ठीक कहा । यह कैसे ?

उत्तर : असल मे मेहरबाबा को मैं कहूंगा गलत क्योंकि बचना चाहते हैं वह खुद ।

प्रश्न : मेहरबाबा के अन्दर जो प्रेरणा उठी, वह परमात्मा की थी ?

उत्तर : प्रेरणा अगर परमात्मा की होती तो वह उस हवाई जहाज मे किसी को भी न बैठने देते । वह हवाई जहाज तो गिरा ही, मेहरबाबा ही बच गए । उस हवाई जहाज के लोग मरे ही । प्रेरणा परमात्मा की होती तो वह कहते कि मैं हवाई जहाज को नहीं जाने दूंगा चाहे मुझे मार डालो । प्रेरणा अपने ही जीवन अस्तित्व की है । खुद तो बच गए हैं, हवाई जहाज तो चला

गया। उस मकान मे जिसमे वह ठहरने गए थे, खुद तो नहीं ठहरे लेकिन किसी को नही कहा कि इसमे मत ठहरो, मकान रात को गिर जाएगा। मेहर बाबा को मैं गल्त कहूगा क्योकि उन्हे बचने की आकाक्षा है और दलाई को मैं गल्त नही कहूगा क्योकि उन्हे बचने की आकाक्षा ही नही है। दलाई के लिए बचने का यही सरल उपाय होता कि वह वही रह जाता और चीनियो के साथ हो जाता। दलाई मुश्किल मे पड़ गया और बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। इसमे फर्क समझ लेना। मेहर बाबा बच रहे हैं खुद, दलाई बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। और उस बचाने मे दलाई अपनी जान को दाव पर लगा रहा है। दलाई का भागना दाव पर लगाना है अपने को। और एक अर्थ मे शायद वह कभी नही लौट सकेगा अब। वह रुक भी जाता, सुलह कर लेता और वह राजा भी बना रह सकता था। लेकिन जहा तक सबके हित मे आने वाली कोई बात हो, और कुछ ऐसी सम्पदा हो जो मेरे होने, न होने से सम्बन्धित नही है और जो पीछे भी काम पड सकती है उसके बचाने के लिए जरूर कुछ श्रम किया जा सकता है।

महावीर भी यही श्रम कर रहे है। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम अपने स्वार्थ के लिए उपयोग कर रहे हो या तुम्हारा कोई स्वार्थ नही है। इस दृष्टि से मैं एक को गल्त और दूसरे को सही कहूगा। निर्णायक बात यह है कि व्यक्ति का कोई अपना स्वार्थ निहित है या नही। दलाई को कोई छुरा मार दे तो दिक्कत नही है, कठिनाई नही है। लेकिन जो उसके पास है और निश्चित ही एक ऐसा गुह्य विज्ञान उसके पास है वह इस समय पृथ्वी के दो-चार लोगो की समझ मे आ सकता हे। क्योकि पिछले डेढ़-दो हजार वर्षों से, सारी दुनिया से अलग, तिब्बत एक प्रयोग कर रहा है। दूसरा महायुद्ध हुआ। दूसरा महा-युद्ध जर्मन जीत सकता था। सिर्फ एक आदमी जर्मनी छोड़कर भाग गया और जर्मनी को हारना पड़ा। वह आइस्टीन था। जर्मनी के हारने का दूसरा कारण नही था। लेकिन जो रहस्य थे, वह एक आदमी के हाथ में थे— आइस्टीन के हाथ मे थे। और वह था यहूदी। और यहूदियो के सताए जाने के कारण आइस्टीन ने जर्मनी को छोड़ा था। जो एटम बम अमेरिका में बना, वह बर्लिन मे बना होता। रहस्य एक आदमी के पास था। वह रहस्य अमेरिका मे उपयोगी हुआ। एटम बम बना, हीरोशिमा पर गिरा। हो सकता था कि लन्दन पर गिरता, न्यूयार्क पर गिरता, मास्को पर गिरता। एक बात पक्की थी कि आइस्टीन के बिना वह कही भी न गिर सकता था। जहा

आइस्टीन होता वह वही उसके काम मे आने वाला था। आज दुनिया मे दस-बारह वैज्ञानिकों की इतनी कीमत है कि अरबों रुपये देकर एक वैज्ञानिक को चुरा लेना काफी बडी बात है। खरबो खर्च हो जाए, कोई फिक्र नही है। वैज्ञानिक से रहस्य लेना काफी बडी बात है क्योंकि वह सिर्फ दस-बारह लोगो के हाथ में है। जिस तरह से पदार्थ-विज्ञान के सम्बन्ध मे यह स्थिति हो गई है, ठीक वैसी स्थिति ही आज अध्यात्म-विज्ञान की है। मुश्किल से दुनिया में दो-चार लोग हैं जो उस गहराई पर समझते हैं। लेकिन उनके पास भी हजारो वर्षों के अनुभव का सार नहीं है।

एक आदमी था गुरजियफ। उसने अपनी जिन्दगी के पहले वर्ष एक अद्भुत खोज मे लगाए, जैसा इस सदी के किसी आदमी ने नही किया, पिछली सदियो मे भी किसी ने नही किया। पन्द्रह-बीस मित्रो ने यह निर्णय लिया कि वे दुनिया के कोने-कोने मे, जहा भी आध्यात्मिक सत्य छिपे हैं, चले जाए और उन सत्यो को खोजकर लौट आए और मिलकर अपने अनुभव बता दें ताकि एक सुनिश्चित विज्ञान बन सके। यह बीस आदमी दुनिया के कोने-कोने में चले गए; कोई तिब्बत मे, कोई भारत मे, कोई ईरान मे, कोई ईजिप्ट मे, कोई यूनान मे, कोई चीन मे, कोई जापान मे। ये सारी दुनिया मे फैल गए। इन बीसो आदमियो ने बडी खोज की, पूरी जिन्दगी लगा दी क्योंकि आदमी की जिन्दगी बहुत छोटी है, जो जानने को है वह बहुत ज्यादा है। अब अगर एक आदमी सूफियो के पास सीखने को जाये तो पूरी जिन्दगी लग जाती है क्योकि व्यवस्था के अनुसार एक फकीर एक सूत्र सिखाएगा, वर्ष लगा देगा, दो वर्ष लगा देगा, फिर कहेगा कि अब तुम फला आदमी के पास चले जाओ। अब तुम दूसरे फकीर के पास चले जाओ और वर्ष भर सेवा करो उसकी। हाथ-पैर दाबो उसके। वह जो कहे मानो क्योंकि कुछ बाते ऐसी हैं कि वे तुम्हें तभी दी जा सकती हैं जब तुम धैर्य दिखलाओ, नही तो तुम उसके योग्य नही। अगर तुम धैर्यहीन हो गए तो वे चीजें तुम्हे नहीं दी जा सकती। उन बीस लोगो ने सारी दुनिया मे खोज-बीन की और वे बीस लोग बूढ़े होते-होते लौटकर मिले। उनमे से कुछ मर गए, कुछ लौटे नही। कहा खो गए, पता नहीं चला। लेकिन उनमे से चार लौटे। उन्होंने जो सूचनाएं दीं उनके आधार पर गुरजियफ ने एक पूरी साइंस खड़ी की। उसमें उन सूत्रो की पकड़ उसके हाथो मे आई जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं। आध्यात्मिक विज्ञान के सम्बन्ध में तिब्बत के पास सबसे बड़ी सम्पदा है। और दलाई लामा के लिए

उपयोगी यही है कि वह सब की फिक्र छोड़ दे, तिब्बत की फिक्र छोड़ दे। तिब्बत का बनना मिटना उतना कीमती नही है। तिब्बत के लोग इस राज्य में रहते हैं या उस राज्य में, यह कोई बड़े मूल्य की बात नही है। वे किस तरह की व्यवस्था बनाते हैं समाज की, शासन की, वह भी मूल्यवान नही है। मूल्यवान यह है कि इन डेढ़ हजार वर्षों मे एक प्रयोगशाला की तरह तिब्बत ने जो काम किया है वे सूत्र नष्ट न हो जाए, उनको भाग कर बचाना जरूरी है। न मेहर बाबा से कोई मतलब है मुझे, न दलाई लामा से कोई मतलब है। मेरा मतलब कुल इतना है कि एक दिशा वह है जहा हम परम कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं और एक दिशा वह है जहा हम अपने कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं। दोनो मे फर्क करना जरूरी है।

प्रश्न : महावीर ने किसी की शारीरिक सहायता क्यों नहीं की ?

उत्तर : अहिंसा शब्द से ही निषेध का, नकारात्मक का बोध होता है। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। महावीर ने क्यो उस शब्द को चुना ? वह 'प्रेम' शब्द भी चुन सकते थे। 'प्रेम' विधायक शब्द है, प्रेम का मतलब होता है किसी को सुख देना। अहिंसा का मतलब होता है किसी को दुख न देना। यानी अगर मैंने आपको दुख नही दिया तो मैं अहिंसक हो गया। मगर इतने से ही बात हल नही होती। मैंने आपको सुख दिया कि नही ? अगर सुख दिया तो ही प्रेम पूरा होता है। 'प्रेम' तो विधायक शब्द है और जीसस ने प्रेम शब्द का प्रयोग किया है। अहिंसा निषेधात्मक शब्द है और महावीर ने अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। यह समझना बहुत जरूरी है। महावीर क्यो ऐसा प्रयोग करते हैं? इसमे बड़ी गहराइया छिपी हुई हैं। ऊपर से देखने से यही लगेगा कि 'प्रेम' शब्द का प्रयोग ही ठीक होता और जहा तक समाज का सबध है, शायद ज्यादा ही ठीक होता। क्योकि जिन लोगो ने महावीर का अनुगमन किया उन लोगो ने 'किसी को दुख नही देना' यह सूत्र बना लिया। इसी कारण वे सिकुड़ते चले गए क्योकि 'किसी को दुख नही देना' इतना ही उनका विचार रहा; सुख देने की तो बात नही। चीटी पैर से न दबे इतना काफी हो गया। चींटी भूखी मर जाए इसकी चिन्ता नही। यानी चीटी कर्मों का फल भोगती है। वह भूखी मर जाए, इससे कोई प्रयोजन नही है हमारा। हमने चींटी को पैर से दबा कर नहीं मारा, हमारा काम पूरा हो गया। महावीर का 'अहिंसा' शब्द समाज के लिए महगा पड़ा क्योंकि अहिंसा का अर्थ पकड़ा गया कि किसी को दुख नहीं देना है बस बात खत्म हो गई। अपने को इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं

है। और प्रयोजन तब बनता है जब हम किसी को सुख देने जाएं। अच्छा होता कि महावीर प्रेम शब्द का प्रयोग करते। लेकिन महावीर ने प्रेम का प्रयोग नहीं किया। यह बहुत कीमती बात है। और महावीर की दृष्टि बहुत गहरी है। अहिंसा शब्द के प्रयोग करने मे कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि किसी को दुख नहीं देना। यह कोई साधारण बात नही है। इसका मतलब इतना ही नहीं होता कि हम किसी को चोट न पहुचाए। अगर बहुत गहरे में देखें तो किसी क्षण में किसी को सुख न देना भी उसको दुख देना है। उतने दूर तक अनुयायी की पकड़ नहीं हो सकी। मैं आपको दुख न दू यह तो ठीक है। बहुत मोटा सूत्र हुआ कि आपको चोट न पहुचाऊ, आपको हिंसा न करू, तलवार न मारू। लेकिन किसी क्षण यह भी हो सकता है कि मैं आपको सुख न पहुचाऊ तो निश्चित रूप से आपको दुख पहुंचे। लेकिन यह पकड में आना साधारणत मुश्किल था। महावीर इसको साफ कह सकते थे। लेकिन उन्होने साफ नही कहा और उसके भी कारण हैं। क्योकि महावीर की गहरी समझ यह है कि कभी-कभी किसी को सुख पहुचाने से भी उसको दुख पहुच जाता है। यानी कभी-कभी आक्रामक रूप से किसी को सुख पहुचाने की चेष्टा भी उसको दुख पहुचा सकती है। यह जरूरी नही कि आप सुख पहुचाना चाहते हो इससे दूसरे को सुख पहुच जाए। सुख पहुचाने मे भी दुख पहुचाया जा सकता है। सच तो यह है कि अगर कोई कोशिश करे किसी को सुख पहुचाने की तो उसको दुख पहुचाता ही है। अगर बाप अपने बेटे को सुख पहुचाने की कोशिश में लग जाए, उसके सुधार, उसकी नीति की व्यवस्था करने लगे और सोचे कि इससे उसे सुख पहुचेगा तो सम्भावना इस बात की है कि बेटे को दुख पहुंचेगा, और बाप जो भी चाहता है बेटा उसके विपरीत जाएगा इसलिए अच्छे बाप अच्छे बेटो को पैदा नही कर पाते। बुरे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा भी हो सकता है। अच्छे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा होना अपवाद है। अच्छा बाप बेटे को अनिवार्यत· बिगाडने का कारण बनता है। क्योंकि वह उसे इतना सुख पहुंचाना चाहता है और इतना शुभ बनाना चाहता है कि बेटे पर उसका यह सुख बोझ हो जाता है। यह बडे मजे की बात है कि हम यदि किसी से सुख लेना चाहें तो ही ले सकते हैं। सुख इतनी सूक्ष्म चित्त दशा है कि कोई मुझे पहुंचाना चाहे तो नहीं पहुंचा सकता। मैं लेना चाहू तो ही ले सकता हूं। इसलिए महावीर ने पहुचाने पर जोर ही नहीं दिया, बात ही छोड़ दी। हां, जो लेना चाहे, उसे दे देना क्योंकि नहीं

दोगे तो उसे दुख मत पहुचाना। अगर कोई तुमसे सुख लेना चाहे तो दे देना, वह भी सिर्फ इसीलिए कि अगर तुम न दोगे तो उसे दुख पहुचेगा। लेकिन तुम सुख पहुचाने मत चले जाना। क्योकि अगर तुम सुख पहुचाने गए तो सिवाय दुख पहुचाने के कुछ भी नही कर पाओगे। आकामक सुख पहुचाने वाला आदमी दुख ही पहुचाता है। अगर जबरदस्ती हम किसी को सुखी करना चाहेंगे तो हम उसे दुखी कर देगे। जबरदस्ती मे किसी को भी सुखी नही किया जा सकता है। जबरदस्ती मे हिंसा शुरू हो जाती है। तो महावीर की पकड बहुत गहरी है।

और भी एक गहराई है जो कि आज तक महावीर को समझने वाले लोगो की समझ मे नही आई। और वह यह है कि अन्तत· परम स्थिति मे जहा अहिंसा पूर्ण रूप से प्रकट होती है, या प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट होता है—कोई भी नाम दे—उस परम स्थिति मे न विधेय है, न निषेध है। परम स्थिति मे दोनो नही हैं।

यह प्रश्न भी पूछा है आपने कि उन्होने कभी किसी के शरीर को सहायता क्यो नही पहुचाई ? गिरे हुए को क्यो नही उठाया ? प्यासे को पानी क्यो नही पिलाया ? भूखे को रोटी क्यो नही खिलाई ? बीमार के पैर क्यो नही दाबे ? किसी के शरीर की सेवा क्यो नहीं की ? सवाल तो पूछने जैसा है। उसका भी कारण है। परम अहिंसा की स्थिति मे व्यक्ति किसी को दुख तो पहुचाना ही नही चाहता, सुख भी पहुचाना नही चाहता। क्योकि बहुत गहरे में देखने पर सुख और दुख एक ही चीज के दो रूप हैं। जिसे हम सुख कहते हैं वह दुख का ही एक रूप है और जिसे हम दुख कहते हैं, वह भी सुख का ही एक रूप है। बहुत गहरे मे जो देखेगा वह पाएगा कि जिसे हम सुख कहते हैं उसकी यात्रा अगर थोडी बढ़ा दी जाए तो वह दुख मे बदल जाता है। आप भोजन कर रहे हैं, बड़ा सुखद है। और आप ज्यादा भोजन करते चले जाए तो सुख दुख मे बदल जाता है। आप मुझे प्रेम से आकर मिले, मैंने आपको गले लगा लिया। बड़ा सुखद है एक क्षण, दो क्षण। लेकिन मैं छोड़ता ही नही तब आप तड़फने लगेंगे कि बाहो से कैसे छूट जाएं। पांच मिनट और तब सुख दुख मे बदल जाता है। और अगर आधा घंटा हो गया तो आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं कि 'मुझे बचाइये यह आदमी मुझे छोड़ता नहीं।' किस क्षण पर सुख दुख मे बदल गया, बताना बहुत मुश्किल है। एक क्षण तक झलक थी सुख की, दूसरे क्षण में दुख शुरू हो गया। एक प्रेमी है, एक प्रेयसी है।

दोनों बड़ी भर मिलते हैं। बड़ा सुखद है। फिर पति-पत्नी हो जाते हैं और बड़ा दुखद हो जाता है। पश्चिम में जहां प्रेम-विवाह प्रचलित है वहां एक अनुभव हुआ कि प्रेमी जितना प्रेयसी को सुखी करता है उतना ही दुखी कर देता है। यह बड़ी अजीब बात है। सुख कब दुख मे बदल जाता है कहना मुश्किल है। सब सुख दुख में बदल सकते हैं और ऐसा कोई दुख नही जो सुख में न बदल सके। सब दुख भी सुख मे बदल सकते हैं। कितना ही गहरा दुख है उसमें भी आप सम्भावनाएं देख सकते हैं सुख की। एक मा है। वह नौ महीने पेट मे बच्चे को रखती है। दुख ही उठाती है। प्रसव है, बच्चे का जन्म है। असह्य दुख उठाती है लेकिन सब दुख सुख मे बदल जाता है। आगे की सुख की आशा दुख को झेलने में समर्थ बना देती है। प्रसवपीडा भी एक सुख की तरह आती है। बच्चे का बोझ भी सुख की तरह आता है। और उसे बच्चे को बड़ा करना लम्बे दुख की प्रक्रिया है। लेकिन मां का मन उसे सुख बना लेता है। दुख को हम सुख बना सकते हैं। अगर आशा, सम्भावना, आकाक्षा, कामना तीव्र हो तो दुख सुख बन जाता है। सुख को भी हम दुख बना सकते हैं। अगर सुख मे सब आशा, सब सम्भावना क्षीण हो जाए तो सुख दुख बन जाता है। यानी इसका मतलब यह हुआ कि सुख और दुख में कोई मौलिक भेद नही है, हमारी दृष्टि का भेद है। हम कैसे देखते हैं इस पर सब निर्भर करता है। हमारे देखने पर ही सुख दुख का रूपान्तरण हो जाता है। एक आदमी के पैर में घाव है और डाक्टर आपरेशन करता है। आपरेशन का दुख भी सुख बन जाता है क्योंकि वहां पीड़ा से छुटकारे की आशा काम कर रही है। आदमी जहरीली से जहरीली दवाई, कड़वी से कडवी दवाई पी जाता है क्योंकि वहा बीमारी से दूर होने की आशा काम करती है। आशा हो तो दुख को सुख बनाया जा सकता है। और आशा क्षीण हो जाए तो सब सुख फिर दुख हो जाते हैं। महावीर कहते हैं कि न तो तुम किसी को सुख पहुचाओ, न तुम किसी को दुख पहुचाओ। जिस दिन कोई व्यक्ति उस स्थिति में पहुंच जाता है जहां वह न किसी को सुख पहुचाना चाहता है, न किसी को दुख पहुंचाना चाहता है वहीं से वह व्यक्ति सबको आनन्द पहुंचाने का कारण बन जाता है। इसे समझ लेना जरूरी है। आनन्द पहुंचाने का कारण ही तभी कोई व्यक्ति बनता है जब वह सुख और दुख के चक्कर से मुक्त होता है और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है जहां सुख और दुख का कोई मूल्य नही रह जाता। पर आनन्द को हम जानते नहीं। हमें कोई दुख पहुंचाए तो हम

पहचान जाते हैं कि यह आदमी बुरा है। हमे कोई सुख पहुचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी अच्छा है। लेकिन हमे कोई आनन्द पहुचाए तो हम बिल्कुल नही पहचान पाते कि यह आदमी कैसा है क्योकि हम आनन्द को पहचान ही नही पाते, पकड ही नही पाते। आनन्द उस चेतना से सहज ही विकीर्ण होने लगता है जो चेतना सुख और दुख के द्वद्व के पार चली जाती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सहज ही आनन्द की किरणे चारो तरफ फैलने लगती हैं। निश्चित ही जिनके पास आखे होती है, वे उस आनन्द को देख लेते हैं। जिनके पास आखे नही होती है, वे नही देख पाते। लेकिन सूरज को चाहे कोई देख पाए, चाहे न देख पाए, जो देखता है उसको भी सूरज गर्मी पहुचाता है, और जो नही देखता है उसको भी गर्मी पहुचाता है। फर्क इतना ही है कि नही देखने वाला कहता है . कैसा सूरज? कहा का सूरज ? गर्मी मे फर्क नही पडता। जो जीवन अधे को मिलता है, वही आख वाले को भी मिलता है, उसमें कोई फर्क नही है। लेकिन अंधा कहता है कैसा सूरज? किस सूरज को धन्यवाद दू, कोई सूरज कभी देखा नही, किसी ने कभी कोई गर्मी पहुचाई नही। गर्मी अगर पहुची है तो वह मेरी अपनी है क्योकि सूरज का कोई पता नही। आख वाला जानता है कि गर्मी सूरज से आई है और इसलिए अनुगृहीत भी है, धन्यवाद भी करता है, कृतज्ञ भी है। लेकिन अन्धे को समझना बहुत मुश्किल है। महावीर किसी के पैर दाब रहे हो तो हमे समझ मे आसकता है कि वह किसी की सेवा कर रहे है। यह ऐसा ही है कि जैसे घर मे छोटे बच्चे होते हैं और अगर एक भिखमगा आए और मैं उसे सौ का नोट उठाकर दे दू, और वह बच्चा बाद मे मुझसे पूछे कि आपने एक भी पैसा उसे नही दिया क्योकि सौ के नोट का उसे कोई अर्थ ही नही होता। वह पहचानता है पैसों को। वह कहता है कि एक पैसा भी उसको नही दिया, आप कैसे कठोर हैं ? आया था मागने, कागज पकडा दिया। भूखा था, कागज से क्या होगा ? एक पैसा दे देते कम से कम। और वह लड़का जाकर गाव मे कहे कि बडी कठोरता है मेरे घर मे। एक भिखमंगा आया था तो उसको कागज का टुकड़ा पकडा दिया। कागज के टुकडे से किसी की भूख मिटी है क्या ? एक पैसा ही दे देते कम से कम। लेकिन पैसे का सिक्का बच्चा पहचानता है, रुपये के सिक्के से उसे कोई मतलब नही, और सौ के नोट का कोई अर्थ नही। महावीर निकल रहे हैं एक रास्ते से। एक आदमी किनारे पर लंगडा होकर पडा है। अगर महावीर उसके पैर दबाए तो हम पैसे के सिक्के पहचानने वाले लोग, एक फोटो

निकाल देंगे, अखबार मे छाप देंगे कि बड़ा अद्भुत सेवक है महावीर। लेकिन महावीर चुपचाप चले गए हैं। वह जो लगडा पड़ा है किनारे पर, जरूर ही यह कहेगा कि यह कैसा आदमी है। मैं यहां लगड़ा पड़ा हूं और यह चुपचाप चला जा रहा है। लेकिन उनके चुपचाप चलने मे इतनी किरणें झर सकती हैं, इतनी तरगे पैदा हो सकती हैं, इतना दान हो सकता है जितना कि हाथ का प्रयोग करने से नही। क्योकि महावीर की गहरी से गहरी दृष्टि यह है कि जो शरीर नही है उसे शरीर से कोई सहायता नहीं पहुचाई जा सकती। वह जो लंगडा पड़ा है वह पैर से लंगडा है। लेकिन हमें ख्याल नही है इस बात का कि दुख पैर के लंगडे होने से नही पहुचता। मैं पैर से लंगड़ा हू, इस चित्त के भाव से, इस आत्मभाव से पहुचता है और जरूरी नही है कि उस लगडे का आप पैर ठीक कर दें तो कोई लाभ हो जायगा। महावीर को क्या जरूरी है, यह वह जानते हैं। जानने का मतलब यह है कि वे जितनी करुणा उस पर फेंक सकते हैं, फेंक कर चले जाएगे।

मैंने सुना है कि एक सूफी फकीर को एक रात किसी फरिश्ते ने दर्शन दिए और कहा कि परमात्मा तुम पर बहुत खुश है और कुछ माग लो तो वह वरदान दे देगा। पर उसने कहा कि जब परमात्मा खुश है तो इससे बड़ा वरदान और क्या हो सकता है। बात खत्म हो गई, मिल गया जो मिलना था। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा · "नही, ऐसे काम नही चलेगा ? कुछ मागो।" तो उसने कहा कि अब कोई कमी ही न रही, जब परमात्मा खुश है तो कमी क्या रही? और जब परमात्मा ही खुश है तब खुशी ही खुशी है, दुख आएगा कहा से? तो अब मैं मागू क्या ? अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब तो मैं सम्राट हो गया। अगर तुम नही मानते हो तो तुम्ही दे जाओ जो तुम्हारी इच्छा है। उस फरिश्ते ने कहा कि मैं तुम्हें वरदान देता हू कि तुम जिसको छू दो, मरा हो तो जिन्दा हो जाए, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाए, सूखा वृक्ष हो तो हरे पत्ते निकल आए, हरे फूल निकल आए। उसने कहा कि यह देते हो तो ठीक है लेकिन सीधा मुझे मत दो, कहीं मुझे ऐसा न लगने लगे कि मेरे हाथ कोई बीमार ठीक हुआ, क्योकि बीमार को तो फायदा हो जाएगा किन्तु मुझे नुकसान हो जाएगा। तब फरिश्ते ने कहा कि और क्या उपाय हो सकता है। उस फकीर ने कहा कि मेरी छाया को दे दो कि मैं जहां से निकलू, अगर छाया पड़ जाए किसी वृक्ष पर और वह सूखा हो तो हरा हो जाए लेकिन मुझे दिखाई भी न पड़े क्योंकि मैं तब तक निकल ही चुका हूंगा। मैंने सूखा ही वृक्ष देखा था। मुझे पता भी नहीं चलेगा

कि कब हरा हो गया। अगर किसी मरीज पर छाया पड जाए तो वह स्वस्थ हो जाएगा लेकिन मुझे पता भी न चले। मै 'मैं' की झंझट मे ही नही पड़ना चाहता। फिर कहते है उस फरिश्ते ने उसे वरदान दिया। फिर वह सूखे खेतो के पास से निकलता तो वे हरे हो जाते, और सूखे वृक्षो पर उसकी छाया पड जाती तो उनमे पत्ते निकल आते, और बीमार ठीक हो जाते, मुर्दे जिन्दा हो जाते, अन्धे को आख मिल जाती, बहरे को कान मिल जाते। ये सब उसके आस-पास घटित होने लगा। लेकिन उसे कभी पता नही चला। उसे पता चलने का कारण भी न था क्योकि उसकी छाया से यह घटित होते थे। उसका कोई सीधा सम्बन्ध नही था। असल मे जो परम स्थिति को उपलब्ध होते है, उनका होना मात्र करुणा है। उनकी मौजूदगी मात्र काफी है। जो भी होता है उनकी छाया से होता है। उन्हे कुछ सीधा नही करना पडता। जिनके पास ऐसी छाया नही है उन्हे कुछ सीधा करना पडता है। लेकिन वह पैसे के सिक्के है। हमे हिसाब मिल जाता है कि इन्होंने कितनी सेवा की, कितने कोढियो की मालिश की, कितने बीमारो का इलाज किया, कितने अस्पताल खोले। ये बिल्कुल कौडियो की बाते है। इनका कोई भी मूल्य नहीं है बहुत गहरे मे।

श्री अरविन्द आजादी के शुरू दिनो मे आतुर थे और शायद उनसे अधिक प्रतिभाशाली कोई व्यक्ति हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन मे कभी नही आया। लेकिन अचानक एक मुकदमे के बाद वह सब छोडकर चले गए। मित्र घबराये कि जिनसे प्रेरणा मिलती थी, वह आदमी चला गया। जाकर अरविन्द से कहा कि आप भाग आए। अरविन्द ने कहा, मैं भाग नही आया। पैसे कौडी का काम तुम्ही कर लो, वह तुम कर सकोगे। मैं कुछ और बडे काम मे लगा हू जो मैं कर सकता हू। और इस मुल्क मे, भारत की स्वतंन्त्रता के लिए जितना काम अरविन्द ने किया उतना किसी ने भी नही किया। लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास मे अरविन्द का नाम शायद ही लिखा जाए। क्योकि अरबिन्द ने जो काम किया उसका हिसाब कौडियो का हिसाब रखने वाले नही रख सकते। वह आदमी चौबीस घटे जागकर सारे प्राणो से इस मुल्क को जिस भाति आन्दोलित करने की चेष्टा करता रहा उसका हम कोई हिसाब नही रख सकते। यह हो सकता है कि गांधी मे जो बल था, वह बल अरविन्द का था, सुभाष में जो ताकत थी, वह अरविन्द की थी। हिन्दुस्तान के विद्रोह और स्वतन्त्रता के इतिहास में जो सबसे बड़ा कीमती आदमी है,

हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के इतिहास में कभी उसका उल्लेख नहीं होगा, यह पक्का मानिए। लेकिन वह उस तल पर काम कर रहा है जिस तल पर हमारी कोई पकड नही है। वह उन तरंगो को पैदा करने की कोशिश कर रहा है जो मुल्क की सोई हुई तन्द्रा को तोड़ दें, जो विद्रोह के भाव को जगाए, क्रान्ति की हवा लाए। लेकिन हमे ख्याल भी नही। और जिस दिन कभी हजार दो हजार साल बाद विज्ञान समर्थ होगा इन सूक्ष्म तरगो को पकडने मे, शायद उस दिन हमे इतिहास बिल्कुल बदल कर लिखना पडे। जो लोग हमे बहुत बड़े दिखाई पडते है इतिहास मे वह दो कौडी के हो सकते हैं। और जिन्हे हम कभी नही गिनते थे, वे एकदम परम मूल्य पा सकते हैं। क्योकि जब तक सौ रुपये का नोट पहचान मे न आए तब तक बडी कठिनाई है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक फूल खिल रहा है, माली पानी डाल देता है, खाद डाल देता है और चला जाता है और एक सगीतज्ञ उसीके पास बैठ कर वीणा बजाता है, कल जब बडे-बडे फूल खिलेंगे तो सगीतज्ञ को कौन धन्यवाद देगा। सगीतज्ञ से मतलब क्या है फूल का। माली को लोग पकडेंगे कि तूने इतना बडा फूल खिला दिया, तेरे खाद, पानी और तेरी सेवा ने। लेकिन ध्वनि-शास्त्र कहता है कि माली जो कुछ भी कर सकता है उसके करने का कोई बडा मूल्य नही है। लेकिन अगर व्यवस्था से सगीत पैदा किया जाए तो फूल उतना बडा हो जाएगा जितना कभी नही हुआ था। ऐसा सगीत भी बजाया जा सकता है कि फूल सुकड कर छोटा रह जाए और वह सिर्फ ध्वनियों का खेल है। जब ध्वनिया फूलो को बडा कर सकती है तो कोई वजह नही कि विशिष्ट चित्त की तरगें देश की चेतना को ऊपर न उठाती हों।

अभी रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक इस चेष्टा मे सलग्न हैं कि क्या इस तरह की ध्वनि तरंगें पैदा की जा सकती हैं कि पूरे मुल्क में आलस्य छा जाए। और इसमे वे काफी हद तक सफल होते चले जा रहे हैं। कोई कठिनाई नहीं है कि आने वाले युद्ध बमो का युद्ध ही न हो, वे सिर्फ ध्वनि तरगो के युद्ध हों, आलस्य छा जाए। यानी रूस के रेडियो स्टेशन इस तरह की ध्वनि-लहरियां पूरे भारत पर फेंक दें कि पूरे भारत का आदमी एकदम आलस्य से भर जाए। यानी उसको कुछ लडने का सवाल ही न रहे, कोई भाव ही न रहे, सैनिक एकदम सो जाए और हमारी समझ मे कुछ न आए कि यह क्या हो गया। हमारे भीतर जो सक्रियता है, वह सारी की सारी छीन ली जाए। इस पर बड़ा काम चल रहा है क्योकि आखिर चारों ओर

ध्वनि-तरंगें हमें घेरे हुए हैं। यह उन पर निर्भर है कि हम क्या करें? लेकिन उससे भी गहरी तरंगे हैं जिनका अभी विज्ञान को ठीक-ठीक पता नही हो पाया। उन तरगो पर काम करने वाले लोग हैं। महावीर ने कभी किसी की सेवा नही की और यह एक उनके ऊपर इल्जाम रहेगा। लेकिन तब तक यह इल्जाम रहेगा जब तक हम पैसे के सिक्के पहचानते हैं। जिस दिन हम सौ रुपए के नोट पहचानना शुरू कर देंगे उस दिन यह इल्जाम नही रह जाएगा बल्कि इसका पता चलेगा कि जो पैर दबा रहे थे, इसलिए दबा रहे थे कि वे और बड़ा कुछ नही कर सकते थे। इसलिए पैर दबा कर तृप्ति पा रहे थे। लेकिन पैर दबाने से होता क्या है?

महावीर की अहिंसा उस तल पर है जिस तल पर सुख-दुख पहुंचाने का भाव बिदा हो गया है, जहा सिर्फ महावीर जीते हैं। विज्ञान मे इन्ही तत्त्वो को कैटेलेटिक एजेन्ट कहते हैं जिनकी मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है। जो खुद कुछ नही करते हैं अब जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन। इन दोनो को आप पास ले आए तो वे मिलते नही, अलग-अलग ही रहते हैं। लेकिन बीच से बिजली चमक जाए तो वे दोनो मिल जाते हैं और पानी बन जाता है। बिजली की चमक कोई योगदान नही करती। उन दोनो के मिलाने मे उसका कोई योगदान नहीं है। सिर्फ उसकी मौजूदगी मे वे मिल जाते हैं। उससे न कुछ जाता है, न कुछ आता है, न कुछ मिलता है, न कुछ छूटता है। बस वह मौजूद हो जाती है और वे मिल जाते हैं। जिस भाति भौतिक तल पर कैटेलेटिक एजेन्ट हैं, वैसे ही आध्यात्मिक तल पर कुछ लोगो ने उनकी स्थिति को छुआ है, जहां उनकी मौजूदगी सिर्फ काम करती है, जहा वे कुछ भी नही करते। यानी महावीर की मौजूदगी ही काम कर देगी इस जगत मे जब वे मौजूद हैं। महावीर और कुछ भी नही करेंगे, वह सिर्फ हो जाएगे। उनका होना काफी है। चेतना के बल पर उनकी मौजूदगी हजारों, लाखो चेतनाओं को जगा देगी, स्वस्थ कर देगी, लेकिन अभी इसकी खोज-बीन होना बाकी है वैज्ञानिक तल पर। आध्यात्मिक तल पर तो खोज-बीन पुरानी है। लेकिन विज्ञान की भाषा में अध्यात्म को समझाया जा सके यह कभी किसी ने सोचा ही नही है। यह कभी आप सोचते ही नहीं हैं कि आप हर हालत में वही नही होते। आप हर स्थिति में बदल जाते हैं। अगर आप मेरे सामने हैं तो आप वही आदमी नहीं हैं जो आप घड़ी भर पहले थे। आपके भीतर कुछ ऐसा उठ आएगा जो आपके भीतर कभी नहीं उठा था। और उसमें कुछ मैं

भी नही कर रहा हू। वह उठ सकता है मेरी मौजूदगी मे। तो बहुत गहरे तल पर काम करने वाले लोग हैं, बहुत गहरे तल पर सेवा है। लेकिन चूकि हम पैसो के सिक्के पहचानते हैं, इसलिए कठिनाई हो जाती है। महावीर पर यह इल्जाम रहेगा। इसको मिटाया नहीं जा सकता। जिस दिन यह मिटेगा, उस दिन वे जिनकी वजह से यह इल्जाम था, दो कौडी के हो जाने वाले हैं। तब महावीर एक नये अर्थ में प्रकट होगे जिसका हिसाब लगाना अभी मुश्किल है। अरविन्द ने जरूर एक चेष्टा की है इस युग मे, भारी चेष्टा की है, बड़ा श्रम उठाया है इस दिशा मे लेकिन उनको भी पहचानना मुश्किल पड़ रहा है और उनको भी सहयोग नही मिल पाता। यह हमारी कल्पना के ही बाहर है कि एक गाव में एक आदमी के हट जाने से पूरा गाव बदल जाता है। वह कुछ भी नही करता था, बस वह था। तो भी उसके बदल जाने से पूरा गाव बदल जाता है।

जबलपुर मे एक फकीर थे मग्घा बाबा। वह ऐसे अद्भुत आदमी है कि उनकी चोरी भी हो जाती है। उन्हे अगर कोई उठाकर ले जाए तो वह चले जाते हैं। उनकी कई बार चोरी हो चुकी है। वह वर्षों के लिए खो जाते है। क्योकि कोई गाव उनको चुराकर ले जाता है क्योकि उनकी मौजूदगी के भी परिणाम हैं। अभी वह दो साल से चोरी चले गए हैं। पता नही कौन ले गया है उनको उठाकर। ऐसा कई दफा हो चुका है। उनको किसी ने उठा कर गाड़ी मे रख लिया तो वह यह भी नहीं कहेगे कि क्या कर रहा है, कहा ले जा रहा है, क्यो ले जा रहा है? मगर उनकी मौजूदगी के कुछ अच्छे परिणाम है जो लोगो को पता चल गये हैं। तो लोग उनको चुराकर ले जाते हैं। और जिस गाव मे वह होते हैं, जिस घर में वह होते है, वहा की सब हवा बदल जाती है। वहा कुछ भी नही रहता। और वह पड़े रहते, सोये रहते हैं ज्यादातर। वह कुछ नही बोलते। लोग आकर उनकी सेवा करते रहते हैं। ऐसा अक्सर हो जाता है कि उनको चौबीस घटे ही नहीं सोने देते। दिन-रात उनकी सेवा करते हैं। एक रात मैं उनके पास से गुजरा, कोई दो बजे थे। उन्होंने मुझसे कहा : मुझ पर कुछ कृपा करो। लोगो को समझाओ। चौबीस घटे दबाते रहते हैं। कभी दो-चार आदमी इकट्ठे दबा रहे हैं। तो वह बूढ़ा आदमी बेचारा लेटा है और कोई आदमी पैर दबा रहा है, कोई सिर दबा रहा है। उनकी सेवा का आनन्द है और उनके पास होने मे आनन्द है। कोई जरूरत नही कि वह कुछ करें।

प्रश्न : बहुत विशाल पृथ्वी है, इस विशाल पृथ्वी पर छोटे से भारत में और वहां भी दो-तीन प्रदेशों में ही चौबीस तीर्थंकर क्यों हुए ? हर कहीं क्यों नहीं हुए ?

उत्तर : यह हर कही नही हो सकते। क्योकि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने की हवा पैदा करती है। यह एक शृखला है इसमे वह एक जो मौजूद था उसने उस क्षेत्र की, उस प्रदेश की, चेतना को एकदम ऊचा उठा दिया। इस ऊची उठी हुई चेतना मे ही दूसरा तीर्थंकर पैदा हो सकता है। एक शृखला है उसमे। और यह भी जानकर आप हैरान होगे कि जब दुनिया मे महापुरुष पैदा होते है तो करीब, करीब एक शृखला की तरह सारी पृथ्वी को घेर लेते हैं। महावीर, बुद्ध, गोशाल, अजित, सजय, पूर्ण काश्यप—ये सब हुए पाच सौ वर्ष के बीच मे बिहार मे। उन्ही पाच सौ वर्षों मे एथेन्स मे सुकरात, अरस्तू, प्लेटो हुए हैं। यानी पाच सौ वर्षों मे सारी पृथ्वी पर एक शृंखला घूम गई जिसे कि अब विज्ञान समझता है शृखलाबद्ध विस्फोट। अगर हम एक हाइड्रोजन बम के अणु को फोड दे तो उसकी गर्मी से पड़ोस का दूसरा हाइड्रोजन बम फूट जाएगा और उसकी गर्मी से तीसरा और उसकी गर्मी से चौथा। और एक हाइड्रोजन बम के फूटने पर पृथ्वी नही बचेगी क्योकि शृखला मे पृथ्वी के सारे हाइड्रोजनेशन टूटने लगेंगे। सूरज इसी तरह गर्मी दे रहा है। सिर्फ पहली बार हाइड्रोजनेशन कभी अरबो, खरबो वर्ष पहले टूटा होगा। और वह भी हुआ होगा किसी बड़े तारे की मौजूदगी से जो करीब से गुजर गया होगा। इतना गर्म रहा होगा वह तारा कि उसके करीब से गुजरने से एक अणु टूट गया होगा। उसके टूटने से उसके पडोस का अणु टूटा होगा, उसके टूटने से उसके पडोस का और तब से सूरज के आस-पास जो हीलियम की गैस इकट्ठी है उसके अणु टूटते चले जा रहे हैं। उन्ही से हमे गर्मी मिल रही है। इसीलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल बाद सूरज ठडा हो जाएगा क्योकि अब जितने अणु बचे हैं वे चार हजार साल मे खत्म हो जाएगे। यह एक शृखला चल रही है।

जैसा पदार्थ के तल पर शृ खलाबद्ध स्फोट (एक्सप्लोजन) होता है वैसे ही अध्यात्म के तल पर शृंखलाबद्ध स्फोट होता है। जैसे एक मकान में आग लग गई तो पड़ोस के मकान मे आग लग जाए, पड़ोस के मकान मे लग गई तो उसके पड़ोस में लग जाए, और इस प्रकार पूरा गाव जल जाए वैसे ही एक आदमी महावीर की कीमत का पैदा होता है तो सम्भावना पैदा कर देता है उस कीमत

के सैकड़ों लोगो के पैदा होने की। ऊपर से दिखता है कि महावीर और बुद्ध दुश्मन हैं। लेकिन महावीर के विस्फोट का फल हैं बुद्ध। फल इन अर्थों मे कि अगर महावीर न हो तो बुद्ध का होना मुश्किल है। ऊपर से लगता है कि अजित, पूर्ण काश्यप, गोशाल सब विरोधी हैं। लेकिन किसी को ख्याल नहीं है इस बात का कि वे सब एक ही शृंखला के हिस्से हैं। एक का विस्फोट हुआ है तो हवा बन गई है। उसकी उपस्थिति ने सारी चेतनाओं को इकट्ठा कर दिया है और आग पकड़ गई है। अब इस आग पकड़ने मे जिनकी संभावना ज्यादा होगी वह उतनी तीव्रता से फूट जाएंगे। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक युग में एक तरह के लोग पैदा हो जाते हैं। एक वक्त मे, एक प्रदेश मे, एकदम से प्रतिभा प्रकट होती है। इस प्रतिभा के भी आन्तरिक नियम और कारण है। तो चौबीस तीर्थंकरों का पैदा होना सीमित क्षेत्र मे और वहीं-वहीं, एक ही देश मे उसका कारण है। उस तरह की प्रतिभा के विस्फोट के लिए हवा चाहिए।

प्रश्न . शृङ्खला मे चौबीस व्यक्ति ही क्यों होते हैं ? पच्चीस क्यों नहीं होते, तीस क्यो नहीं होते ?

उत्तर : हां उसका भी कारण है। उसका सख्या से कोई सम्बन्ध नही है। असल मे पच्चीस होते हैं, छब्बीस होते हैं, सत्ताईस होते हैं, कितने ही होते हैं इसका सख्या से कोई सम्बन्ध नही है। लेकिन जब एक शृखला मे एक बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाता है जैसे कि चौबीस तीर्थंकरों की शृखला मे महावीर सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली व्यक्ति है तब हमे परम बात उपलब्ध हो जाती है। जो जानना था, वह जान लिया गया है, जो पहचानना था, वह पहचान लिया गया है। जो कहना था, वह कह दिया गया है। और अनुयायी को हमेशा डर होता है कि अगर प्रतिभा के लिए आगे द्वार खुले तो प्रतिभा हमेशा अस्त-व्यस्त कर देती है क्योंकि वह विद्रोही है और अराजक है। तो अनुयायी भयभीत होता है। वह अपनी सुरक्षा के लिए व्यवस्था कर लेता है। वह कहता है कि अब बस ठीक है।

प्रश्न : बीस तक क्या कम हैं ?

उत्तर : हां, कम ही हैं। इन चौबीस तीर्थंकरों मे महावीर केन्द्र हैं। इनके मुकाबले में कोई आदमी नही है। ज्ञान तो बराबर उपलब्ध होता है सबको। लेकिन महावीर के बराबर कोई अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है, कोई समझा नही पाता है, कोई खबर नही पहुचा पाता है।

प्रश्न : आपकी राय में कोई पच्चीसवां तीर्थंकर हो सकता है ?

उत्तर : होता ही रहता है। जैन मना कर देते है तो पच्चीसवां तीर्थंकर नबर एक बन जाता है किसी दूसरी शृखला का। अगर पच्चीसवा होता तो बुद्ध को अलग शृखला की जरूरत न पडती। बुद्ध पच्चीसवे हो जाते। कठिनाई यह है कि जब भी कोई परम्परा अपने अन्तिम पुरुष को पा लेती है तो फिर वह उसके बाद दूसरो के लिए द्वार बन्द कर देती है स्वाभाविक रूप से क्योकि फिर वह उपद्रव नही लाना चाहती क्योकि नई प्रतिभा नया उपद्रव लाती है। इसलिए वह सुनिश्चित हो जाती है कि हमारी बात पूरी हो गई, हमारा शास्त्र पूरा हो गया है, अब हम शृङ्खलाबद्ध हो जाते हैं, अब हम दूसरे को मौका नही देगे। इसीलिए फिर पच्चीसवे को नई शृङ्खला का पहला होना पडता है। बुद्ध पच्चीसवे हो गए होते। कोई बाधा न थी। अगर इन्होंने द्वार खोल रखे होते। लेकिन एक और कारण हो गया कि बुद्ध मौजूद थे उसी वक्त। और द्वार बन्द कर देने एकदम जरूरी हो गए। क्योकि अगर बुद्ध आते हैं तो सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। जो महावीर कह रहे हैं उसको अस्त-व्यस्त कर देगे, नई व्यवस्था देगे। वह नई व्यवस्था मुश्किल मे डाल देगी। इस वजह से एकदम दरवाजा बन्द कर दिया गया कि चौबीस से ज्यादा हो ही नही सकते और चौबीसवा हमारा हो चुका है।

प्रश्न : यह अनुयायियों ने किया ?

उत्तर यह अनुयायियो की व्यवस्था है सारी। अनुयायी बहुत भयभीत हैं, एकदम भयभीत हैं। समझ ले कि आप मुझे प्रेम करने लगें और मेरी बात आपको ठीक लगने लगे तो आप एक दिन दरवाजा बन्द कर देंगे क्योकि आपको लगेगा कि दूसरा आदमी अगर आता है और फिर वह उनकी सब बातें गडबड कर देता है तो आपको पीड़ा होगी उससे। आप दरवाजा ही बन्द कर देगे कि बस अब कोई जरूरत नही है। इसलिए मुहम्मद के बाद मुसलमानो ने दरवाजा बन्द कर दिया। जीसस के बाद ईसाइयो ने दरवाजा बन्द कर दिया। बुद्ध के बाद बौद्धो ने दरवाजा बद कर दिया। एक मैत्रेय की कल्पना चलती है कि कभी बुद्ध एक और अवतार लेंगे मैत्रेय का। लेकिन वह भी बुद्ध ही लेगे, कोई दूसरा आदमी नही लेगा।

यहा सबसे ज्यादा प्रभावशाली आदमी इन दो-तीन सौ वर्षों मे रमण और कृष्णमूर्ति हैं। लेकिन न तो रमण के पीछे शृंखला बन सकी और न कृष्णमूर्ति के पीछे बनेगी। कृष्णमूर्ति बनाने के विरोध मे हैं और रमण के

पीछे बन नहीं सकी। उस कीमत का आदमी नहीं मिला जो बढ़ा सके आगे बात को। रामकृष्ण को विवेकानन्द मिले। विवेकानन्द बहुत शक्तिशाली व्यक्ति थे, अनुभवी नहीं। शक्तिशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया लेकिन चक्र मे ज्यादा जान नही है। इसलिए वह जाने वाला नही है। रामकृष्ण बहुत अनुभवी हैं लेकिन शिक्षक होने की, तीर्थंकर होने की कोई स्थिति नहीं है उनकी। शिक्षक वह नही हो सकते। इसलिए ऐसा कई बार होता है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षक नही हो सकता तो वह दूसरे व्यक्ति के कधे पर हाथ रखकर शिक्षण का कार्य करता है। तो रामकृष्ण ने विवेकानन्द के कधे पर हाथ रखकर शिक्षक का कार्य विवेकानन्द से लिया। लेकिन गडबड़ हो गई। रामकृष्ण अपने आप शिक्षक नही हो सकते और विवेकानन्द अनुभवी नही है। इसलिए सब गडबड हो गई। अस्त-व्यस्त हो गया सब मामला और फिर रामकृष्ण की मृत्यु हो गई। फिर विवेकानन्द रह गए। विवेकानन्द ने जो शक्ल दी उस व्यवस्था को, वह विवेकानन्द की है। विवेकानन्द एक बहुत बडे व्यवस्थापक है। अगर विवेकानन्द को अनुभव होता तो एक शृखला शुरू हो जाती। लेकिन वह नही हो सकी क्योकि विवेकानन्द को कोई अनुभव नही था। और जिसको अनुभव है वह व्यवस्थापक नही। रमण के साथ हो सकती थी घटना क्योकि वह उसी कीमत के आदमी है जिस कीमत के बुद्ध या महावीर है लेकिन वह नही हो सका क्योकि कोई आदमी नही उपलब्ध हो सका। कृष्णमूर्ति उसके विरोध मे है इसलिए कोई सवाल उठता नही।

प्रश्न : पश्चिम मे भी क्या यह शृङ्खला है ?

उत्तर : पश्चिम मे भी यह शृखला है। पश्चिम मे भी फकीरो की शृखला है। जैसे जीसस की शृखला चली थोडे दिनों तक। फिर शृखला का द्वार बद हो गया। उसके बाद दूसरी शृंखला चली। जर्मनी में एकहार्ट नाम का एक बहुत कीमत का आदमी हुआ। लेकिन वह शृखला नही पकड़ सका क्योकि वह कोई शिक्षक नही था। जो बातें कहता है वे बेबूझ हो जाती हैं। समझाने की समझ न हो तो समझाया नहीं जा सकता। कुछ बातें एकदम विरोधी मालूम होती हैं। समझ लो तो ही उनके विरोधाभास को मिटाया जा सकता है और समझ के करीब लाया जा सकता है। बोहमेव हुआ जर्मनी मे। वह भी एक शृङ्खला बन सकता था लेकिन नही बन सका। सब शृखलाए धीरे-धीरे मर जाती हैं। जैसे जापान में ज़ेन शृखला चलती है। उसमे अभी भी एक प्रतिभाशाली आदमी था सुजूकी। लेकिन वह मर गया। उसने बडी कोशिश

की कि वह गति दे दे लेकिन वह गति नही हो पाई। और फिर होता क्या है ? जब कोई महापुरुष एक शृंखला को जन्म दे जाता है अगर उसके बाद छोटे-छोटे लोग इकट्ठे हो जाए और वे उसके दावेदार हो जाएं तो दोहरा नुकसान पहुचता है। एक तो वे कुछ चला नही सकते और दूसरा जब कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति उस शृंखला मे पैदा भी हो जाए तो उसे उस शृंखला के बाहर कर देते हैं। वह नासमझो की भीड उसे एकदम बाहर कर देती है। असल मे जीसस यहूदी शृंखला का हिस्सा हो सकता था। लेकिन यहूदी भीड़ जीसस को बर्दाश्त न कर सकी। उस भीड ने बाहर कर दिया उसको। यहूदियो का बेटा यहूदियो के बाहर हो गया और ईसाइयत शुरू हो गई। अब ईसाइयत के बीच जो भी कीमती आदमी पैदा होता है, ईसाइयत उसको बाहर कर देती है फौरन। होता क्या है कि वह जो नासमझो की भीड़ इकट्ठी हो जाती है, वह फिर किसी प्रतिभा को बर्दाश्त नही कर सकती। और जो प्रतिभा शृङ्खला को जिन्दा रख सकती है, उसको वह बाहर कर देती है। तब नई शृङ्खलाए शुरू हो जाती है। दुनिया मे सिर्फ कोई पचास शृखलाए चली है, थोडी-बहुत चली, टूट गई और मिट गई। मेरा कहना है कि दुनिया को जितना आध्यात्मिक लाभ पहुच सकता था इन सबसे वह नही पहुंच पाया। और अब हमे चाहिए कि हम सारी व्यवस्था तोड दें सम्प्रदाय की ताकि प्रतिभा को बाहर निकालने का उपाय ही न रह जाए कही से भी। जैसे थियोसाफी की शृङ्खला थी बडी कीमती। उसे ब्लेवटस्की ने शुरू किया और वह कृष्णमूर्ति तक आई। लेकिन कृष्णमूर्ति इतने साहसी साबित हुए कि थियोसोफिस्ट बर्दाश्त नही कर सके। थियोसोफिस्टो ने कृष्णमूर्ति को बाहर कर दिया। थियोसोफिस्ट शृङ्खला मर गई। वह मर गई इसलिए कि जो कीमती आदमी उसे गति दे सकता था उसको तो बाहर निकाल दिया।

अगर दुनिया से सम्प्रदाय मिट जाए, सीमाए मिट जाए, तो विस्फोट छू नही पाता। जैसे इस मकान मे आग लगी तो पडोस के मकान मे इसलिए आग लग सकती है कि वह उससे जुड़ा हुआ है। अगर बीच मे एक गली है तो आग नही लग सकती। अब अगर रमण पैदा भी हो जाएं तो ईसाइयत से उनका कोई सम्बन्ध नही जुडता क्योकि मकान अलग-अलग हैं। तो शृङ्खला बहुत दफा पैदा होती है। लेकिन वे जो अलग-अलग टुकड़े बनाकर रखे हुए हैं वह उन्ही मे भटक कर मर जाती है। बाहर जाने का कोई उपाय नही। और अगर दुबारा कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाय तो वह भीड़ उसे

निकाल बाहर कर देती है कि हमारे घरो मे इसे रहने नहीं देना, यह प्राग लगवा देगा, और उसको फिर नया घर बनाना पडता है, और नया घर बनाना मुश्किल है। मतलब यह कि वह मुश्किल से जिन्दगी भर मे थोड़े बहुत लोग इकट्ठा कर पाता है। तो अब तक आध्यात्मिक जगत मे जो नुकसान पहुचता रहा है मनुष्य को वह इसलिए कि जो सम्प्रदाय हैं, सीमाए हैं वे बहुत सख्त और मजबूत हो जाती हैं। पच्चीसवां तीर्थंकर पैदा हो सकता है निरन्तर। इसमे कोई कठिनाई नही है। छब्बीसवा होगा, इसमें कोई सवाल ही नही है, कोई सीमा नही, कोई सख्या नही।

प्रश्न : महावीर का कुछ काम बाकी रहे तब पच्चीसवां हो सकता है ?

उत्तर : काम तो कभी खत्म होता ही नही। महावीर का थोडे ही कोई काम है ? काम तो यहां ज्ञान और अज्ञान की लडाई का है, मूर्च्छा और अमूर्च्छा का है। महावीर का थोड़े ही कोई काम है।

प्रश्न : मुसलमानों मे भी फकीर हुए हैं क्या मुहम्मद के बाद ?

उत्तर : हा, मुहम्मद के बाद बहुत लोग हुए है लेकिन उन्हे निकाल दिया मुसलमानो ने बाहर। जैसे बायजिद हुआ। उसे बाहर निकाल दिया फौरन। जैसे मन्सूर हुआ। गर्दन उडा दी उसकी। मुहम्मद के बाद जो भी कीमती आदमी हुए वे अलग हिस्सा हो गए सूफियो का। मुसलमान फिक्र नही करता उनको मानने की और सूफियो मे भी सिलसिले बढते चले गए।

प्रश्न : सूफी किसे कहते हैं मोटे तौर पर ?

उत्तर : सूफी मुसलमानो के बीच मे क्रान्तिकारी रहस्यवादियो का एक वर्ग है जैसा कि बौद्धो मे ज़ेन फकीरो का एक वर्ग है, जैसा यहूदियो मे 'हसीत' फकीरो का एक वर्ग है। यह सब बगावती लोग हैं जो परम्परा में पैदा होते हैं लेकिन इतने कीमती है कि उनको बगावत करनी पडती है। अब जैसे कि मुहम्मद के पीछे नियम बना कि एक ही अल्लाह है और उस अल्लाह का एक ही पैगम्बर है मुहम्मद। सूफियो ने कहा कि एक अल्लाह है, यह तो बिल्कुल सच है लेकिन पैगम्बर हजारो हैं। बस झगडा शुरू हो गया। मुसलमान जब मस्जिद मे नमाज पढ़ता है तो वह कहता है कि एक ही परमात्मा है और एक ही उसका पैगम्बर है मुहम्मद। सूफी भी मस्जिद मे नमाज पढ़ता है लेकिन वह कहता है कि एक ही परमात्मा है लेकिन पैगम्बर अर्थात् सन्देश लाने वाले तो हजारों हैं। क्योंकि वह कहता है कि महावीर भी ठीक, बुद्ध भी ठीक, जीसस

भी ठीक, यह सभी पैगम्बर हैं। एक ही खबर लाने वाले ये अनेक लोग हैं। मगर यह मुसलमान की बरदाश्त के बाहर है। अभी मेरा एक वक्तव्य छपा। उसमे मैंने महावीर के साथ मुहम्मद और ईसा का नाम लिया। तो एक बडे जैन मुनि हैं, जिनके बडे भक्त हैं, उनको वह किताब किसीने दे दी तो उन्होंने उसे उठाकर फेंक दिया और कहा कि महावीर का नाम मुहम्मद के साथ! कहा मुहम्मद कहा महावीर ! महावीर सर्वज्ञ तीर्थंकर और मुहम्मद साधारण अज्ञानी। कहा मेल बैठा दिया। दोनो का नाम साथ दिया, यही पाप हो गया। फिर उन्होंने कहा कि इसको मै पढ ही नही सकता। तो वही मुहम्मद को मानने वाला भी कहेगा कि मुहम्मद का नाम महावीर के साथ लिख दिया। कहा पैगम्बर मुहम्मद और कहा महावीर ? क्या रखा है महावीर मे। तो वह जो सूफी कहेगा कि सब पैगम्बर है उसी के, वह बरदाश्त के बाहर हो जाएगा। अज्ञानियो की भीड मे ज्ञान सदा बरदाश्त के बाहर हो जाता है, इसलिए कठिनाई हो जाती है। सबकी चेतना समान है किन्तु अभिव्यक्ति बिल्कुल अलग-अलग है। मुहम्मद मुहम्मद है, महावीर महावीर है। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। मुहम्मद जो बोलेंगे, वह मुहम्मद का बोलना है। अपनी भाषा होगी, अपनी परम्परा के शब्द होंगे। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। अनुभूति बिल्कुल एक है।

प्रश्न : सबकी एक-एक अभिव्यक्ति है तो उनके सुनने वाले समझ कर साधना मे लग जाते हैं। फिर आपने सब अभिव्यक्तियो की अलग अलग बात की है तो आपके सुनने वालो का क्या होगा ?

उत्तर : मेरे सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है क्योकि अगर मैं कोई एक ही बात कहता तब बहुत आसान था मेरे पीछे चलना। पहली बात कि मैं पीछे नही चलाना चाहता किसी को। जरूरत ही नही मेरे पीछे चलने की। दूसरी बात मैं चीजो को इतना आसान भी बनाना नही चाहता क्योकि आसान बनाकर नुकसान हुआ है। सम्प्रदाय इसीलिए बने। मैं तो उन सारी धाराओ की बात करूंगा, उन सारे नियमो की बात करूगा और उन सारी पद्धतियो की, उन सारे रास्तो की जो मनुष्य ने कभी भी अख्तियार किए हैं। शायद इस तरह की कोशिश कभी नही की गई। रामकृष्ण ने थोड़ी-सी कोशिश की थी। उन्होंने सभी साधना-पद्धतियो का प्रयोग किया और वे इस नतीजे पर पहुचे कि सब रास्ते अलग हैं किन्तु पहाड़ की चोटी पर सब एक हो जाते है। लेकिन उनके पास कोई उपाय नही था कि वह कह सकते। फिर

उन्होंने वही साधना-पद्धति अपनाई जो बंगाल में उन्हें उपलब्ध थी। सारे जगत के बाबत उनका विचार विस्तीर्ण नहीं था। मैं एक प्रयोग करना चाहता हूं कि सारी दुनिया में अब तक जो किया गया है परम जीवन को पाने का, उसकी सार्थकता को एक साथ इकट्ठा ले आऊं। निश्चित ही मैं कोई सम्प्रदाय नही बनाना चाहता। लेकिन मैं चाहता हूं कि सम्प्रदाय मिट जाए। मैं अनुयायी भी नही बना सकता क्योकि मैं चाहता हू कि अनुयायी हो ही नही। मेरी चाह यह है कि मनुष्य ने जो अब तक खोजा है वह एकदम निकट आ जाए। इसलिए मेरी बातो मे बहुत बार विरोधाभास मिलेगा। क्योकि जब मैं किसी मार्ग की बात कर रहा होता हू तो मैं उसी मार्ग की बात कर रहा होता हू। जब दूसरे मार्ग की बात कर रहा होता हूं तो उस मार्ग की बात कर रहा होता हू। और इन दोनो मार्गों पर अलग-अलग वृक्ष मिलते हैं, अलग-अलग चौराहे मिलते हैं। इन दोनो मार्गों पर अलग-अलग मन्दिर का आभास है। इन दोनो मार्गों पर अलग-अलग रास्ते की अनुभूतियां हैं मगर परम अनुभूति समान है। वह तो मैं जिन्दगी भर बोलता रहूगा, धीरे-धीरे जब तुम्हे सब साफ हो जाएगा कि मैं हजार रास्तो की बातें कर रहा हू तब तुम्हे ख्याल मे आएगा और फिर तुम्हे जो ठीक रास्ता लगे चलना। लेकिन एक फर्क पडेगा। मेरी बात समझकर जो गति करेगा वह किसी भी रास्ते पर जाए तो वह उसे अनुकूल होगा। वह दूसरे मार्ग की दुश्मनी की बात नही करेगा। वह इतना ही कहेगा कि मेरे लिए अनुकूल है यही रास्ता। तब हो सकता है कि पति सूफियो को मानता हो, पत्नी मीरा के रास्ते पर जाती हो, बेटा हिन्दू हो, जैन हो या बौद्ध हो। तब एक परम स्वतन्त्रता होगी रास्तों की। और हर घर मे रास्तो के बाबत थोडा-सा परिचय होगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए रास्ता चुन सके कि उसके लिए क्या उचित हो सकता है। अभी कठिनाई यह है कि एक आदमी जैन घराने मे पैदा हो जाता है। और हो सकता है कि उसके लिए महावीर का रास्ता अनुकूल न हो। मगर वह कभी कृष्ण के रास्ते पर नही जाएगा जो कि उसके लिए अनुकूल हो सकता था। एक आदमी कृष्ण को मानने वाले घर मे पैदा हो गया तो वह महावीर के बारे मे कभी सोचेगा ही नही। और हो सकता है कि उसे कृष्ण का रास्ता बिल्कुल अनुकूल न हो और वह महावीर के रास्ते जा सकता था। तो मेरा काम ही यह है कि मैं सारे रास्तों को निकट खड़ा कर दू ताकि एक दृष्टि में वे दिखाई पड़ने लगें, एक झलक में आदमी उन्हे देख सके, पहचान सके और

निष्पक्ष होकर सोच सके अपनी स्थिति के साथ तोल करके कि कौन-सा रास्ता मेरे लिए उपयोगी है। लेकिन तब वह दूसरे की दुश्मनी नही है। तुमने जो कपड़े पहने हुए हैं वह तुम्हारी मौज है।

प्रश्न : रास्तों का भी विश्लेषण किसी वक्त हो सके ?

उत्तर : ऐसा तो होता ही चला जाता है। अब जैसे मैंने महावीर की बात की तो इसमे महावीर के रास्ते का पूरा विश्लेषण हो जाएगा। कल मुहम्मद की बात करूगा तो उनका हो जाएगा। परसो क्राइस्ट की बात करूगा तो उनका हो जाएगा, कृष्ण की बात करूगा तो उनका हो जाएगा। वह होता चला जाएगा। व्यक्तियो को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हू और फिर शास्त्र को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हू। जैसे गीता को, कुरान को, बाइबिल को। उनको भी चुनकर बात कर लेना चाहता हू। अगर पूरी जिन्दगी मे इतना भी काम हो सका तो बड़ा तृप्तिदायी है।

प्रश्न : जिन्दगी सीमित है। कहीं ऐसा न हो कि जो आप सोच रहे हैं वह अधूरा रह जाए। इसे किसी दूसरे को देने वाली बात भी आपके ध्यान में रहनी चाहिए।

उत्तर : आप ठीक कहते है कि जिन्दगी का कोई भरोसा नही और यह भी बात ठीक है कि इतने बड़े काम को एक आदमी जिन्दगी मे कर पाए, न कर पाए। भरोसा एक ही है कि काम मे मेरा कोई स्वार्थ नही है। अगर जिन्दगी की मर्जी होगी तो पूरा काम ले लेगी, नही होगी तो नही लेगी। यानी उससे मुझे कोई जिद् भी नही कि वह पूरा होना ही चाहिए। वे लोग जो धीरे-धीरे मेरे करीब आते है निश्चित ही उनसे काम लिया जा सकता है। और वह भी जिन्दगी को लेना होगा तो ही। उसका भी मेरे मन मे कल के लिए हिसाब नही है। कल आएगा तो जो काम जिन्दगी को लेना होगा, ले लेगी। नही लेना होगा तो कल नही आएगा। इसमे मेरा कोई आग्रह नही है। इसलिए मैं निश्चिन्त हू। कोई तनाव भी नही है उसका। अब जैसे मैं महावीर के सम्बन्ध मे जो कह रहा हू उसे कभी मैंने बैठकर सोचा भी नही है। आप से बात होती है तो सोचता चलता हू। कल क्राइस्ट के बाबत क्या कहूगा, यह मुझे खुद पता नही है। सोचता चलूगा। इधर मेरी अपनी भीतरी स्थिति यह है कि बिल्कुल सब छोड़ा हुआ है। जहां परमात्मा ले जाए, जहा बहा दे, जो करवाना है करवा दे, न करवाना है न करवा दे तो उसकी मर्जी। उसमे भी मेरी ओर से कोई आग्रह नही है किसी तरह का। और उसे काम

लेना होता है तो हजार तरह से काम ले लेता है, हजार तरह से पूरा करवा लेता है। वह भी उसके हाथ की बात है।

प्रश्न : आपने कहा कि इसलिए कि शृङ्खला न चले, सम्प्रदाय न रहें, मैं हर धर्म को सामने पेश करूंगा किन्तु इसमें तो सम्प्रदाय खड़ा रहेगा। मगर परिवार के अन्दर जब कर्त्तव्य वाले आदमी होंगे तो सत्य का स्वरूप स्वयं प्रकट होगा, सत्य अपने आप आ जाएगा। इस पर आप जोर क्यों नहीं देते ?

उत्तर : अगर सब धर्मों को समझने की सद्‌बुद्धि हममे आ जाए तो सत्य का स्वरूप स्वय प्रकट हो जाएगा। उस पर जोर देने की जरूरत नहीं है। यानी अभी तक जो झगड़ा है वह इसी बात का है कि प्रत्येक धर्म वाला व्यक्ति यह समझता है कि सत्य का मेरा ठेका है और बाकी सब असत्य हैं। अगर मैं सबके भीतर सत्य को बता सकू तो यह बात टूट जाती है। इसको जोर देने की जरूरत नही है। यह तो सुनते-सुनते टूट जाएगी और तुम उस जगह पर पहुच जाओगे कि यह कहना मुश्किल हो जाएगा कि मैं हिन्दू हू कि मैं मुसलमान हू कि मैं ईसाई हू। अगर तुम सुनते-सुनते न पहुच जाओ और मुझे जोर देना पड़े तो वह जोर जबरदस्ती हो जाएगी। यानी मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बात सुनते-सुनते तुम करीब पहुच गए तो ठीक। पीछे से जोर देना पड़े तो फिर ठीक नही है।

प्रश्न : क्या उपयोगी दृष्टि से पशुहिंसा न्यायसंगत है ?

उत्तर : सिर्फ उपयोगी दृष्टि से ही पशुहिंसा न्यायसगत नही है, बाकी सब दृष्टियो से न्यायसगत है। इसलिए मनुष्य से नीचे तलो पर हम पशुहिंसा को अन्याय नही कहते क्योकि उन तलो पर जीवन ही सब कुछ है और जीवन के लिए जो कुछ किया जा रहा है, सब ठीक है। पशु और मनुष्य में एक ही फर्क है कि मनुष्य सचेत है, जागृत है, स्वचेतन है। उसने चीजो मे देखना शुरू किया है। उसके लिए भोजन इतना महत्त्वपूर्ण नही जितना भोजन का साधन महत्त्वपूर्ण है। एक बार वह भोजन से चूक सकता है, लेकिन मनुष्यता से नही चूक सकता।

मैंने एक कहानी पढ़ी है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बटवारा हुआ। एक गांव में उपद्रव हो गया, दगा हो गया। एक परिवार भागा। पति है, साथ मे पत्नी है, बच्चा है। दो बच्चे कहीं खो गए। गाएं थी, भैसें थी वह सब खो गईं। सिर्फ एक गाय बचा पाए। लेकिन उस गाय का बछड़ा था, वह भी खो

गया। वे सब जगल मे छिपे हैं। दुश्मन आस-पास हैं, मशालें दिखाई पड रही हैं। बच्चा रोना शुरू करता है। मा घबडा जाती है। वह पहले उसका मुंह बद करती है, उसे दबाती है, रोकती है। लेकिन वह जितना दबाती है वह उतना रोता है। फिर मां-बाप उसकी गर्दन दबाते है क्योंकि जान बचाने के लिए दूसरा कोई उपाय नही है। वह चिल्लाता है तो अभी दुश्मन आवाज सुन लेगा और मौत हो जाएगी। लेकिन तभी उस गाय के बछडे की आवाज कही दूसरे दरख्तो के पास से सुनाई पडती है और वह गाय जोर-जोर से चिल्लाने लगती है। गाय को चिल्लाते सुनकर दुश्मन पास आ जाता है। बच्चे की गर्दन दबानी आसान थी, गाय की गर्दन भी नही दबती। गाय को मारो कैसे ! कोई उपाय भी नही है मारने का। तो वह औरत अपने पति से कहती है कि तुमसे कितना कहा कि इस हैवान को साथ मत ले चलो। लेकिन पति कहता है कि मैं यह विचार कर रहा हू कि पशु कौन है ? हम या यह गाय ? हमने अपने बच्चे को मार डाला है अपने को बचाने के लिए तो हैवान कौन है ? मैं इस चिन्ता मे पड गया हू। दुश्मनो की मशालें करीब आती चली जाती हैं। गाय भागती है क्योंकि उसी तरफ उसके बछडे की आवाज आ रही है। वह दुश्मनो के बीच घुस जाती है। लोग उसे आग लगा देते हैं। वह जल जाती है लेकिन बछडे के लिए चिल्लाती रहती है। तो वह पति कहता है कि मैं पूछता हू कि पशु कौन है, आज मेरे तरफ मे पहली दफा जिन्दगी मे ख्याल उठा है कि किसको हम मनुष्य कहे, किसको हम पशु कहे ? उपयोगी दृष्टि से शायद यह जरूरी है कि मनुष्य पशुओ को मारे, नही तो मनुष्य नही बच सकेगा। यह बात इस अर्थ मे बिल्कुल ठीक है कि मनुष्य अगर शरीर के तल पर ही बचना चाहता तो शायद पशुओ को मारता ही रहता। लेकिन मनुष्य अगर मनुष्यता के आत्मिक तल पर बचना चाहता हो तो पशुओ को मारकर कभी नही बच सकता। एक बार हमे यह ख्याल मे आ जाए कि सिर्फ मनुष्य के शरीर को बचाना है या मनुष्यता को बचाना है, तो सवाल बिल्कुल अलग-अलग हो जाएगे। देहधारी मनुष्य को बचाते हैं तो हम हैवान से ऊपर नही है। और अगर हम उसके भीतर की मनुष्यता को बचाने के लिए सोचते हैं तो शायद पशुहिंसा किसी भी तरह ठीक नही ठहराई जा सकती। लेकिन कहा जाएगा कि फिर आदमी बचेगा कैसे ? मेरा कहना है कि आदमी बचने के उपाय खोज लेता है जैसे कृत्रिम खाद्य बनाए जा सकते हैं। जितना पृथ्वी भोजन देती है उससे करोड़ गुना भोजन समुद्र के पानी से निकाला जा सकता है,

हवाओ से सीधा भोजन पाया जा सकता है। एक बार यह तय हो जाए कि मनुष्यता मर रही है तो फिर हम मनुष्य को बचाने के हजार उपाय खोज सकते हैं। यह तय न हो तो हम मनुष्य को बचा लेते हैं—देहधारी दिखाई पड़ने वाले मनुष्य को, लेकिन भीतर कुछ गहरा तत्त्व हो जाता है। वह गहरा तत्त्व तभी खो जाता है जब हम किसी को दुख देने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। किसी को दुख देने का जो भाव है, वही हमे नीचे गिरा देता है। तो किसी को हम दुख दे और मनुष्य बने रहे, इन दोनो बातो मे कठिनाई है। यह बात सच है कि आज तक ऐसी स्थिति नही बन सकी कि एकदम से मासाहार बद कर दिया जाए, एकदम से पशुहिसा बन्द कर दी जाए तो आदमी बच जाए। लेकिन नही बन सकी तो इसलिए नही बन सकी कि हमने उस बात को ख्याल मे नही लिया, अन्यथा बन सकती है। क्योकि अब हमारे पास वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो गए है जिनसे पशुओ को मारने की कोई जरूरत नही। अब तो कृत्रिम मास भी बनाया जा सकता है। आखिर गाय घास खाकर मास बनाती है। मशीन भी हो सकती है जो घास खाए और मास बनाए। इसमे कोई कठिनाई नही है। दूध कृत्रिम बन सकता है, मास कृत्रिम बन सकता है, सब कृत्रिम बन सकता है। मैं अतीत की बात छोड देता हू जबकि सब नही बन सकता था। लेकिन अब, जबकि सब बन सकता है तो मनुष्य के सामने एक नया चुनाव खडा हो गया है और वह चुनाव यह है कि अब जब सब बन सकता है तब पशुहिसा का क्या मतलब ? पीछे कठिनाइया थी। आदमी को बचाना मुश्किल था। शायद अतीत मे शरीर ही नही बचाया जा सकता था। जब शरीर ही नही बचता था तो आत्मा को क्या बचाते आप ? शरीर बिल्कुल सारभूत था जिसे बचाए तो पीछे आत्मा भी बच सकती थी, मनुष्यता भी बच सकती थी। इसलिए बुद्ध ने समझौता किया कि मरे हुए पशु का मांस खाया जा सकता है। यह सिर्फ उस स्थिति का समझौता था। लेकिन इस कारण बुद्ध पशु जगत से सम्बन्ध स्थापित करने मे असमर्थ हो गए। महावीर इस समझौते के लिए राजी नही हुए क्योंकि अगर पशु जगत तक सन्देश पहुचाना था तो समझौता अमान्य था।

प्रश्न : गहरे में वनस्पतिजीवन और पशुजीवन में क्या अन्तर है ?

उत्तर : बहुत अन्तर है। पशु विकसित है, बहुत विकसित है पौधे से। विकास के दो हिस्से उसने पूरे कर लिए हैं। एक तो पौधों में गति नही है, थोड़े से पौधो को छोड़कर जो पशुओं और पौधों के बीच में हैं। कुछ पौधे हैं

जो जमीन में चलते हैं, जो जगह बदल लेते हैं, जो आज यहां हैं, तो कल सरक जाएगे थोड़ा । साल भर बाद आप उनको उस जगह न पाएगे जहां साल भर पहले पाया था । साल भर मे वह यात्रा कर लेंगे थोडी सी । पर वे पौधे सिर्फ दलदली जमीन मे होते हैं । जैसे अफ्रीका के कुछ दलदलो मे कुछ पौधे हैं जो रास्ता बनाते हैं अपना, चलते हैं, अपने भोजन की तलाश मे इधर-उधर जाते हैं । नही तो पौधा ठहरा हुआ है । ठहरे हुए होने के कारण बहुत गहरे बन्धन उसपर लग गए हैं और वह कोई खोज नही कर सकता, किसी चीज की । जो आ जाए बस वही ठीक है । अन्यथा कोई उपाय नही है उसके पास । पानी नीचे हो तो ठीक, हवा ऊपर हो तो ठीक, सूरज निकले तो ठीक, नही तो गया वह । यह जो उसकी जड स्थिति है उसमे प्राण तो प्रकट हुआ है—जैसा पत्थर मे उतना प्रकट नही हुआ । वैसे पत्थर भी बढता है, बडा होता है । दुख की सवेदना पत्थर को भी किसी तल पर होती है । लेकिन पौधे को दुख की सवेदना बहुत बढ गई है । चोट भी खाता है तो दुखी होता है । शायद प्रेम भी करता है, शायद करुणा भी करता है । लेकिन बधा है जमीन से । तो परतत्रता बहुत गहरी है । और उस परतत्रता के कारण चेतना विकसित नही हो सकती । अब हमे ख्याल मे नही है कि गति से चेतना विकसित होती है । जितनी हम गति कर सकते हैं स्वतत्रता से, उतनी चेतना को नई चुनौतिया मिलती है, नये अवसर, नये मौके, नये दुख, नये सुख, उतनी चेतना जगती है । नये का साक्षात्कार करना पडता है । वृक्ष के पास इतनी चेतना नही है तो वृक्ष करीब उस हालत मे है जिस हालत मे आप क्लोरोफार्म मे हो जाते हैं । आप चल-फिर नहीं सकते । आप हाथ नही उठा सकते । कोई गरदन काट जाए तो कुछ कर नही सकते । प्रकृति उतनी ही चेतना देती है जितना आप कर सकते हैं । अगर पौधे को इतनी चेतना दे दी जाए कि उसकी कोई गरदन काटे तो वह उतना ही दुखी हो जितना आदमी होता है तो पौधा बडी मुश्किल मे पड़ जाएगा । चूकि गरदन कोई रोज काटेगा उसकी, इस लिए उसे इतनी मूर्च्छा चाहिए क्लोरोफार्म वाली कि कोई गरदन भी काटे तो भी पता न चले ।

पशु पौधे के आगे का रूप है जहा पशु ने गति ले ली है । अब उसकी गरदन काटो तो वह उस हालत मे नही है जिसमे कि पौधा है । उसकी पीडा बढ़ गई है, सवेदना बढ गई है, सुख बढ गया है । और गति ने उसको विकसित किया है । लेकिन वह भी एक तरह की निद्रा मे चलता रहा है । क्लोरोफार्म

की हालत नहीं है लेकिन एक निद्रा की हालत है। उसे अपना कोई पता ही नही है। जैसे एक कुत्ता है। उसको आपने झिड़का तो वह भाग जाता है। आपका झिड़कना ही महत्त्वपूर्ण है, उसका भागना सिर्फ प्रत्युत्तर है। आपने रोटी डाली तो खा लेता है, आपने प्रेम किया तो पूछ हिलाता है। वह कोई कर्म नही करता, वह प्रतिकर्म करता है। जो होता रहता है, उसमे वह भागी-दार है। भूख लगती है, प्यास लगती है तो घूमने लगता है। भूख न लगे तो वह कुछ खाता नही। अगर वह बीमार है तो उस दिन वह कुछ नही खाएगा। वह घास खाकर उल्टी भी कर देगा। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति नही है तो वह कुछ नही खाएगा। आदमी खाने की स्थिति में नही है तो भी खा सकता है। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति है तो उपवास नही कर सकता। करना पड़े तो वह बात दूसरी है। आदमी पूरा भूखा है तो भी उपवास कर सकता है। यानी इसका मतलब यह हुआ कि आदमी कर्म कर सकता है, कुत्ता सिर्फ प्रतिक्रिया करता है। लेकिन सभी आदमी कर्म भी नहीं करते। इसलिए बहुत कम आदमी आदमी की हैसियत मे हैं; अधिकतर आदमी प्रतिकर्म ही करते हैं। यानी किसी ने आपको प्रेम किया तो आप प्रेम करते हैं तो यह प्रतिकर्म हुआ और किसी ने गाली दी तो फिर आप प्रेम करें तो कर्म हुआ। यह वैसा ही हुआ जैसे कुत्ता पूछ हिलाता है उसको रोटी डालो तो। कोई बुनियादी फर्क नही है दोनों मे। तो मैं कह रहा हू कि कुछ पौधे सरकने लगे हैं। वह जानवर की दिशा मे प्रवेश कर रहे है। जानवर भी थोडा-बहुत आदमी की दिशा मे सरक रहे है। कुछ आदमी भी चेतनालोको की तरफ सरक रहे हैं। फर्क है स्वतन्त्रता का। पत्थर सबसे ज्यादा परतत्र है, पौधा उससे कम, पशु उससे कम, तथाकथित मनुष्य उससे कम। महावीर, बुद्ध जैसे लोग बिल्कुल कम। अगर हम ठीक से समझें तो सारे विकास को हम स्वतन्त्रता के हिसाब से नाप सकते है और इसलिए मेरा निरन्तर जोर स्वतन्त्रता पर है। कोई व्यक्ति जितनी स्वतन्त्रता अर्जित करे जीवन में उतना चेतना की तरफ जाता है और स्वतन्त्रता बहुत प्रकार की है: गति की स्वतन्त्रता, विचार की स्वतन्त्रता, कर्म की स्वतन्त्रता, चेतना की स्वतन्त्रता। यह जितनी पूर्ण होती चली जाती है उतना मोक्ष की तरफ बढा जा रहा है। कर्म की भाषा मे कहें तो जीवन मुक्त होने की तरफ जा रहा है। जितना हम नीचे जाते हैं उतना हम अमुक्त हैं। पत्थर कितना अमुक्त है। एक ठोकर आपने मार दी तो कुछ भी नही कर सकता, प्रतिक्रिया भी नहीं कर सकता। जहा पड़ गया

वहीं पड़ गया। कोई उपाय नही है उसके पास। सबसे ज्यादा बद्ध अवस्था मे है वह। महावीर प्रबुद्ध आत्मा हैं, मुक्त आत्मा हैं।

प्रबुद्ध होने से मुक्त होने तक की यात्रा मे कई तल है। तो मोटी सीढ़ियां बांट ली हैं हमने लेकिन सब सीढियो पर अपवाद हैं। जैसे समझ लें पचास सीढ़ियां हैं और आदमी चढ़ रहे है। कोई आदमी पहली सीढी पर खडा है, कोई दूसरी सीढी पर खडा है, पहली सीढी से उठ गया है लेकिन अभी दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा नही है, अभी बीच मे है। कोई आदमी तीसरी सीढ़ी पर खड़ा है। कोई आदमी दूसरी से पैर उठा लिया है, तीसरी पर अभी रखा नही है। इस तरह स्थूल रूप मे देखें तो हम को ऐसा लगता है कि पत्थर है, पौधा है। कुछ पत्थर पौधे की हालत मे पहुच रहे है। कुछ पत्थर बिल्कुल पौधे जैसे हैं। उनकी डिजाइन, उनके पत्ते, उनकी शाखाए बिल्कुल पौधे जैसी हैं। वे पौधे की तरफ बढ रहे है। कुछ पौधे बिल्कुल पशुओ जैसे है। कुछ पौधे अपना शिकार भी खोजते हैं। पक्षी उड रहा है आकाश मे तो वे चारो तरफ से पत्ते बद कर लेते है और फास लेते है उसे। कुछ पौधे प्रलोभन भी डालते है। अपनी कलियो पर बहुत मीठा, बहुत सुगधित रस भर लेते है ताकि पक्षी आकर्षित हो जाए और ज्योहि पक्षी उस पर बैठते है कि चारो तरफ के पत्ते बन्द हो जाते हैं। कुछ पौधे अपने पत्तो को पक्षियो के शरीर मे प्रवेश कर वहा से खून खीच लेते है। वे पौधे अब पौधे की हालत मे नही रहे। वे पशु की तरफ गति कर रहे हैं। कुछ पशु मनुष्य की तरफ गति कर रहे हैं। बहुत से कुत्तो मे, घोडो मे, हाथियो मे, गायो मे, मनुष्य जैसी बाते दिखाई पड़ती है। जिन-जिन जानवरो से मनुष्य सम्बन्ध बनाता है, उन-उन जानवरो से सम्बन्ध बनाने का कारण ही यही है। सभी जानवरो से मनुष्य सम्बन्ध नही बनाता। जिनको हम पालतू पशु कहते है वे कही, किसी तल पर हमसे मेल खाते हैं। लेकिन फिर भी उसी जाति के सभी पशु एक तल पर नही होते। कुछ आगे बढे होते हैं, कुछ पीछे हटे होते हैं।

प्रश्न : जो लोग शाकाहारी नहीं होते हैं उनमें करुणा की भावना, मनुष्यता की भावना अधिक होती है जैसा कि पश्चिमी देशों में। लेकिन हम हिन्दुस्तान में आम तौर से शाकाहारी हैं तो भी हम मे करुणा की भावना, मनुष्यता की भावना रह ही नहीं गई। यह कैसे ?

उत्तर : हा उसके कारण हैं क्योकि अगर आप करुणा के कारण शाकाहारी हुए हैं तब तो बात अलग है और अगर जन्म के कारण शाकाहारी हैं तो

इससे कोई सम्बन्ध ही नही है करुणा का। यानी आप क्या खाते हैं, इससे करुणा का सम्बन्ध नही है। आपकी करुणा क्या है, इससे आपका सम्बन्ध हो सकता है। तो इस मुल्क मे जो शाकाहारी है वह जबरदस्ती शाकाहारी है। उसके चित्त में शाकाहार नही है। उसके चित्त मे कोई करुणा नही है। फिर जो मासाहारी है उसके मन की कठोरता बहुत कुछ उसके भोजन, उसकी जीवन-व्यवस्था मे निकल जाती है और वह मनुष्य के प्रति ज्यादा सह्य हो सकता है। और आप शाकाहारी हैं तो आपको वह भी मौका नही है। यानी मेरा कहना यह है कि एक शाकाहारी आदमी मे आधा पाव कठोरता है और एक मासाहारी आदमी मे भी आधा पाव कठोरता है तो वह मासाहारी आदमी ज्यादा करुणावान सिद्ध होगा बजाय शाकाहारी के क्योकि वह जो आधा पाव कठोरता है उसकी वह और दिशाओ मे बह जाती है। और आपकी आधा पाव कठोरता का कही बहने का उपाय नही है। वह सिर्फ आदमी की तरफ ही बहती है, वह सिर्फ आदमी को ही चूसती है। इसलिए पूरब के मुल्क मे जहां शाकाहार बहुत है वहा बडा शोषण है, बडी कठोरता है और आदमी के आपसी सम्बन्ध बहुत तनावपूर्ण हैं। और आदमी आदमी के प्रति इतना दुष्ट मालूम पडता है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और बाकी मामलों मे वह बडा हिसाब लगाता है कि कही चीटी पर पैर न पड़ जाये, पानी छान कर पीता है। वह जो कठोरता के बहने के इतर उपाय थे बंद हो जाते हैं। फिर एक ही उपाय रह जाता है। आदमी-आदमी का सम्बन्ध बिगड जाता है। तो मैं शाकाहार का पक्षपाती हूं, इसलिए नही कि आप शाकाहारी हो बल्कि इसलिए कि आप करुणावान् हो और आप उस चित्त-दशा मे पहुचे हुए हो जहा से जीवन के प्रति कठोरता क्षीण हो जाती है। जब कठोरता क्षीण होगी तो वह पशु के प्रति भी क्षीण होगी, मनुष्य के प्रति भी क्षीण होगी। मगर जन्म के साथ शाकाहारी हो जाता है आदमी और कठोरता क्षीण नही होती। क्योकि जीवन एक तरह से बहुत सी शक्तियो का ताल-मेल है, उसमे अगर कुछ शक्तियां भीतर पडी रह जाती हैं तो मुश्किल पड जाती है। जैसे उदाहरण के लिए इंग्लेड भर मे विद्यार्थियो का कोई विद्रोह नही और उसका कुल कारण इतना है कि इग्लेंड के बच्चों को तीन घटे से कम खेल नहीं खेलना पडता। तीन घंटे हाकी, फुटबाल—इस तरह थका डालते हैं कि तीन घंटो मे उसकी सारी की सारी उपद्रव की प्रवृत्ति निकास पा जाती है। तो वह घर शात होकर लौट आता है। इंग्लेंड के लड़के को उपद्रव के लिए कहो तो वह

उपद्रव की हालत मे नही है । जिन मुल्को मे खेल बिल्कुल नही है — जैसे हमारा मुल्क है, जैसे फ्रांस है खेल करीब-करीब न के बराबर है—उपद्रव बहुत ज्यादा हैं। अब वह ख्याल मे नही आता कि एक नियत व्यवस्था है कि एक लडके को कितना उपद्रव करना जरूरी है। खेल का मतलब है व्यवस्थित उपद्रव। लट्ठ मार रहा है गेंद में एक आदमी। वह उतना ही है जैसे कोई खोपडी मे लट्ठ मारे। व्यवस्थित उपद्रव अगर करवाते हैं तो उपद्रव कम हो जाएगा। और व्यवस्थित उपद्रव नहीं करवाते तो फिर अव्यवस्थित उपद्रव बढेगा। इन सबके भीतरी हमारी एक निश्चित मात्रा है जो निकलनी चाहिए एक उम्र मे। उसका निकलना बहुत जरूरी है। अब जैसे एक आदमी जंगल मे लकड़ी काटता है। यह आदमी एक दुकान मे बैठे हुए आदमी से ज्यादा करुणावान हो सकता है। कारण कि काटने पीटने का इतना काम करता है वह कि काटने पीटने की वृत्ति मुक्त हो जाती है। वह ज्यादा दयालु मालूम पडेगा। एक दुकान पर बैठा हुआ आदमी दयालु नही हो सकता क्योंकि उसके काटने-पीटने की वृत्ति मुक्त नही हुई। जगल का एक चरवाहा है। वह भेडो को चरा रहा है। उसके चेहरे पर कैसी शांति प्रकट होगी। कारण कि वह जानवरो के साथ जो व्यवहार कर रहा है—डडा मार रहा है, गाली दे रहा है, कुछ भी कर रहा है—वह व्यवहार आप भी करना चाहते हैं लेकिन कोई नही मिलता, किससे करें। पत्नी से करते हैं, बेटे से करते हैं, नये-नये बहाने खोजते हैं कि बेटे का सुधार कर रहे हैं, लेकिन भीतरी कारण बहुत दूसरे हैं। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि गाव का किसान ज्यादा शांत मालूम पडता है। उसका कारण है कि काट-पीट के इतने काम उसको मिल जाते हैं, दिन भर मे वृक्षो को काट रहा है, पौधो को काट रहा है, जानवरो को मार रहा है कि वह शान्त हो जाता है। काट-पीट के इतने काम आपको भी मिल जाए तो आप भी शान्त हो जाएगे। मगर आपको नये रास्ते निकालने पडते हैं इसके लिए। आप भी किसी को कोडा मारना चाहते हैं। मारें कैसे ? तो हमारे मन की वृत्तिया फिर नये-नये रास्ते खोजती हैं। और वे नये उपाय खतरनाक सिद्ध होते हैं। इसलिए मेरा कहना है कि वृत्तिया जाननी चाहिए, आचरण बदलने का जोर गल्त है। मैं किसी को नहीं कहता कि कोई शाकाहारी हो। मैं कहता हू : अगर मांसाहार करना है तो मांसाहार करो। इतना जरूर कहूगा कि यह कोई बहुत ऊचे चित्त की अवस्था नही है। कुछ और ऊचे चित्त की अवस्थाएं हैं जिनके खोजने से मांसाहार छूट सकता है।

लेकिन मांसाहार छूट जाए और आपकी स्थिति वही रहे तो आप दूसरे तरह के मांसाहार करेंगे जो ज्यादा मंहगे साबित होने वाले हैं। तो हिन्दुस्तान कठोर हो गया है और हिन्दुस्तान में जो लोग गैर मांसाहारी हैं, वे बहुत कठोर हो गए हैं। एक आदमी कभी दो-चार साल में एक बार कठोर हो जाए तो ठीक है। मगर एक आदमी चौबीस घंटे कठोर रहे तो वह ज्यादा मंहगा पड़ जायेगा। इसलिए बड़े आश्चर्य की बात है कि बर्बर मनुष्य भी हैं जो कच्चे आदमी को खा जाए, लेकिन बड़े सरल हैं। आप जाकर कारागृह में देखें कैदियो को। कैदी एकदम सरल मालूम पड़ता है बजाय उन लोगों के जो मजिस्ट्रेट बने बैठे हैं। एक मजिस्ट्रेट की शक्ल देखें और उसके सामने कारागृह मे जिसको उसने दस साल की सजा दे दी है, उस आदमी की शक्ल देखें तो अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। अब हो सकता है कि दस साल की सजा देने मे इस आदमी के भीतर रस हो—कानून तो ठीक ही है, कानून सिर्फ बहाना हो, तरकीब हो, खूटी हो। मानो वह आदमियों को सताने के यह उपाय खोज रहा है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी मजिस्ट्रेट नही होता; हर आदमी शिक्षक नही होता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक वे लोग होना चाहते हैं जो बच्चो को सताना चाहते हैं। उनके भीतर बच्चो को सताने की वृत्ति है। तीस बच्चे मुफ्त मिल जाते हैं, तनख्वाह भी मिलती है। और बच्चों को ढंग से सताते हैं और वे बच्चे कुछ कर भी नही सकते। बिल्कुल निहत्थे वे हैं। सौ मे से सत्तर शिक्षक सताने वाले मिलेंगे। यानी जिनको अगर आप शिक्षक न होने देते तो वे और कही सताते। दिन भर सता कर शिक्षक बहुत सीधा-सादा हो जायेगा। जब वह लौटता है घर तो वह बहुत अच्छा आदमी, बहुत भला आदमी मालूम पड़ता है। वह कितना भला आदमी है क्योंकि वह अपना बुरा मन तो निकाल लेता है।

चर्चा : तीन
२५.६.६६ रात्रि

३

आपने पूछा है कि इस जगत का, इस जीवन का प्रारम्भ कब हुआ, कैसे हुआ ? महावीर के प्रसंग मे भी यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। महावीर उन थोड़े से चिन्तको मे से एक हैं जिन्होने प्रारम्भ की बात को ही स्वीकार नहीं किया। महावीर कहते हैं कि प्रारम्भ सम्भव ही नही है। अस्तित्व का कोई प्रारम्भ नही हो सकता। अस्तित्व सदा से है। और कभी ऐसा नहीं हो सकता कि अस्तित्व न रह जाए। प्रारम्भ की और अन्त की बात ही वह इन्कार करते हैं। और मैं भी उनसे सहमत हूं। प्रारम्भ की धारणा ही हमारी नासमझी से पैदा होती है। क्योंकि हमारा प्रारम्भ होता है और अन्त होता है इसलिए हमे लगता है कि सब चीजो का प्रारम्भ होगा और अन्त होगा। लेकिन अगर हम अपने भीतर गहरे मे प्रवेश कर जाए तो हमें पता चलेगा कि हमारा भी कोई प्रारम्भ नही, कोई अन्त नही। एक चीज बनती है, मिटती है तो हमे ख्याल हो जाता है कि जो भी बनता है वह मिटता है। लेकिन बनना और मिटना प्रारम्भ और अन्त नहीं है। क्योकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप मे मौजूद होती है और जो चीज मिटती है वह मिटने के बाद फिर किसी दूसरे रूप में मौजूद होती है। महावीर कहते हैं कि जीवन मे सिर्फ रूपान्तरण होता है। न तो प्रारम्भ है और न कोई अन्त है। प्रारम्भ असम्भव है क्योकि अगर हम यह माने कि कभी प्रारम्भ हुआ तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारम्भ कैसे होगा? अगर उसके पहले कुछ भी न हो तो प्रारम्भ होने का उपाय भी नही। अगर हम यह मान लें कि कुछ भी नही था, समय भी नही था, स्थान भी नही था तो प्रारम्भ कैसे हुआ ? प्रारम्भ होने के लिए कम से कम समय तो पहले चाहिए ही ताकि प्रारम्भ हो सके। और अगर समय पहले है, स्थान पहले है तो सब पहले हो गया। क्योकि इस जगत मे मौलिक रूप से दो ही तत्त्व हैं गहराई में—समय और स्थान। महावीर कहते हैं कि प्रारम्भ की बात ही हमारी नासमझी से उठी है। अस्तित्व का कभी कोई प्रारम्भ नही हुआ और जिसका

कभी कोई प्रारम्भ न हुआ हो उन्ही कारणो से उसका कभी अन्त भी नही हो सकता। क्योकि अन्त होने का मतलब होगा कि एक दिन कुछ भी न बचे। यह कैसे होगा? अस्तित्व अनादि है और अनन्त है। न कभी शुरू हुआ है, न कभी अन्त होगा। सदा है, सनातन है। लेकिन रूपान्तरण रोज होता है। कल जो रेत था वह आज पहाड है, आज जो पहाड है वह कल रेत हो जाएगा। लेकिन होना नही मिट जाएगा। रेत मे भी वही था, पहाड़ मे भी वही होगा। आज जो बच्चा है, कल जवान होगा, परसो बूढा होगा। बाद बिदा हो जाएगा। लेकिन जो बच्चे मे था वही जवान मे होगा, वही बुढ़ापे मे होगा, वही मृत्यु के क्षण मे बिदा भी ले रहा होगा। वह जो था, वह निरन्तर होगा। अस्तित्व का अनास्तित्व होना असम्भव है और अनास्तित्व से भी अस्तित्व नही आता है। इसलिए महावीर ने स्रष्टा की धारणा ही इन्कार कर दी है। महावीर ने कहा कि जब सृष्टि शुरूआत ही नही होती तो शुरूआत करने वाले की धारणा को क्यो बीच मे लाना है? जब शुरूआत ही नही होती तो स्रष्टा की कोई जरूरत नही है। यह बडे साहस की बात थी उन दिनो। महावीर ने कहा सृष्टि है और स्रष्टा नही है। क्योकि अगर स्रष्टा होगा तो प्रारम्भ मानना पडेगा और महावीर कहते है कि स्रष्टा भी हो तो भी शून्य से प्रारम्भ नही हो सकता। और फिर मजे की बात यह है कि अगर स्रष्टा था तो फिर शून्य कहना व्यर्थ है। तब था ही कुछ। और उस होने से कुछ होता रहेगा। जैसे साधारणतः हम जिसको आस्तिक कहते हैं वस्तुतः वह आस्तिक नही होता। साधारणत. आस्तिक की दलील यह है कि कोई चीजो को बनाने वाला है तो परमात्मा भी होना चाहिए। लेकिन नास्तिको ने और गहरा सवाल पूछा कि अगर सब चीजो का बनाने वाला है तो फिर परमात्मा को बनाने वाला भी होना चाहिए। और तब बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। अगर परमात्मा का स्रष्टा भी मान ले तो फिर अन्तहीन विवाद खडा हो जाएगा। क्योकि फिर उसका बनाने वाला चाहिए, फिर उसका, फिर उसका, इसका अन्त कहा होगा? किसी भी कडी पर यही सवाल उठेगा : इसका बनाने वाला कौन है? तो महावीर कहते हैं कि आस्तिक भूल मे है और इस-लिए नास्तिक को उत्तर नही दे पा रहा है क्योकि आस्तिक बुनियादी भूल कर रहा है। महावीर परम आस्तिक हैं खुद भी। लेकिन वह कहते हैं कि बनाने वाले को बीच मे लाने की जरूरत नही है। अस्तित्व पर्याप्त है। कोई बनाने वाला नही है। इसलिए यह भी सवाल नही है कि उसके बनाने वाला

कहां है ? महावीर के परमात्मा स्रष्टा की धारणा अस्तित्व की गहराइयों से निकलती है अस्तित्व के बाहर से नही आती। अस्तित्व अलग और परमात्मा अलग बैठकर उसको बना रहा है जैसे कि कुम्हार घडा बना रहा हो, ऐसा नही है कोई परमात्मा। इसी अस्तित्व मे जो सारभूत विकसित होते-होते अन्तिम क्षणो तक विकास को उपलब्ध हो जाता है, वही परमात्मा है। परमात्मा की धारणा मे महावीर के लिए विकास है यानी परमात्मा की धारणा अस्तित्व का सारभूत अश है जो विकसित हो रहा है। साधारण आस्तिक की धारणा है कि परमात्मा अलग बैठा है और जगत को बना रहा है। तब प्रारम्भ की बात आ जाती है। उसी आस्तिक की नासमझी को वैज्ञानिक भी पकडे हुए चला जाता है। हालाकि वह ईश्वर से इन्कार कर देता है। लेकिन फिर वह सोचता है कि प्रारम्भ कब हुआ? हा, यह हो सकता है कि इस पृथ्वी का प्रारम्भ कब हुआ इसका पता चल जाएगा। इस पृथ्वी का कब अन्त होगा, यह भी पता चल जाएगा लेकिन पृथ्वी जीवन नही है, जीवन का एक रूप है। जैसे मैं कब पैदा हुआ, पता चल जाएगा। मैं कब मर जाऊंगा, पता चल जाएगा। लेकिन मैं जीवन नही हू, जीवन का सिर्फ एक रूप हू। जैसे हम एक सागर मे जाए। एक लहर कब पैदा हुई पता चल जाएगा। एक लहर कब गिरी यह भी पता चल जाएगा। लेकिन लहर सिर्फ एकरूप है सागर का। सागर कब शुरू हुआ? सागर का कब अन्त होगा ? और अगर सागर का पता चल जाए तो फिर सागर की एक लहर है बडे विस्तार की। अन्तत: जो है गहराई मे वह सदा से है। उसके ऊपर की लहरे आई हैं, गई हैं, बदली हैं। आएंगी, जाएगी, बदलेंगी। पर जो गहराई मे है, जो केन्द्र मे है, वह सदा से है। और यह हमारे ख्याल मे आ जाए तो प्रारम्भ का प्रश्न समाप्त हो जाता है, अन्त का प्रश्न भी समाप्त हो जाता है। सूरज ठडा होगा क्योकि सूरज गर्म हुआ है। जो गर्म होगा, वह ठडा होगा। वक्त कितना लगता है, यह दूसरी बात है। एक दिन सूरज ठडा था, एक दिन सूरज फिर ठडा हो जाएगा। एक दिन पृथ्वी ठडी होगी। इनके भी जीवन हैं। असल मे हमें ख्याल भी नही है कि पृथ्वी भी जीवित है। इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। हम कहते हैं कि मैं जीवित हू लेकिन हम कभी ख्याल भी नही करते कि हमारे शरीर मे करोड़ो कीटाणु भी जीवित हैं। उन कीटाणुओं का अपना जीवन है और उन कीटाणुओं से मिले हुए जीवन में एक और भी जीवन है जो हमारा है। पृथ्वी का अपना एक जीवन है। इसलिए महावीर कहते है कि पृथ्वी काया है जीवन की। इस

पृथ्वी पर पौधो, पक्षियों, मनुष्यो का अपना जीवन है। लेकिन पृथ्वी का अपना जीवन है। पृथ्वी की अपनी जीवनधारा है। उसका जन्म हुआ है। वह मरेगी। सूरज का अपना जीवन है। चाद का अपना जीवन है। वह भी शुरू हुआ है, उसका भी अन्त होगा। लेकिन जीवन का, अस्तित्व का कोई अन्त नही है। ऐसा ही समझ ले कि अस्तित्व एक सागर है, उस पर लहरें उठती हैं, आती हैं, जाती हैं, लेकिन पूरे अस्तित्व का कभी प्रारम्भ हुआ हो, न ऐसा है, न ऐसा हो सकता है। इसे ऐसा समझना चाहिए। हमारे सारे तर्क एक सीमा पर जाकर व्यर्थ हो जाते हैं। हम यहा लकडी के तख्तो पर बैठे हुए हैं। कोई हमसे पूछ सकता है कि आपको कौन सभाले हुए हैं तो हम कहेगे—लकडी के तख्ते। फिर वह पूछ सकता है कि लकड़ी के तख्तो को कौन सभाले हुए है तो हम कहेगे—जमीन। फिर वह पूछ सकता है कि जमीन को कौन सभाले हुए है तो हम कहेगे कि ग्रहो-उपग्रहो का गुरुत्वाकर्षण। फिर वह पूछ सकता है कि ग्रहो-उपग्रहो को कौन सभाले हुए हैं? तो शायद हम और खोजते चले जाए। लेकिन अन्तत: कोई पूछे कि इस समग्र को, इस पूरे को, जिसमे ग्रह, उपग्रह, तारे, पृथ्वी सब आ गए हैं इस सबको कौन सभाले हुए है तो हम उससे कहेगे कि अब बात जरा ज्यादा हो गई है। इस सबको कौन सभाले हुए है, यह प्रश्न असगत है क्योकि हमने पूछा कि सबको कौन सभाले हुए है? अगर सम्भालने वाले को हम बाहर रखते हैं तो सब अभी हुआ नही। और अगर उसे भीतर कर लेते है तो बाहर कोई बचता नही जो उसे संभाले। सबको कोई भी नही सभाले हुए है। सब स्वय सभला हुआ है। एक-एक चीज को एक-एक दूसरा संभाले हुए है। लेकिन समग्र को कोई भी नही सभाले हुए है। वह खुद सभला हुआ है। वह स्वय है। इसीलिए महावीर कहते हैं कि जीवन स्वयभू है। न इसका बनाने वाला है, न इसका मिटाने वाला है। यह स्वय है। जैसा कि वे कहते हैं कि इससे क्या फायदा कि तुम एक आदमी को लाओ बीच मे। फिर कल यही सवाल उठे कि उसको कौन बनाने वाला है फिर तुम किसी और को लाओ, फिर वही सवाल उठे। फिर परमात्मा का प्रारम्भ कब हुआ, यह सवाल उठे। और फिर परमात्मा की मृत्यु कब होगी, यह सवाल उठे। हमे सवालों मे जाने का कोई अर्थ नही है तो महावीर उस परिकल्पना को एकदम इन्कार कर देते हैं। और मेरी अपनी समझ है कि जो लोग अस्तित्व की गहराइयो मे गए हैं, वह स्रष्टा की धारणा को इन्कार ही कर देंगे। उनकी परमात्मा की धारणा, स्रष्टा की

धारणा नहीं होगी। उनकी परमात्मा की धारणा जीवन के विकास की चरम बिन्दु की धारणा होगी। यानी सामान्यतः जिसको हम आस्तिक कहते हैं उसका परमात्मा पहले है। महावीर की जो आस्तिकता है उसमे परमात्मा चरम विकास है। और इसलिए रोज होता रहेगा। एक लहर गिर जाएगी और सागर हो जाएगी। लेकिन दूसरी लहर उठती रहेगी तो इसलिए कोई कभी अन्त नही होगा। लहरें उठती रहेंगी, गिरती रहेंगी। सागर सदा होगा। इसलिए आस्तिक वह है जो लहरो पर ध्यान न दे, उस सागर पर ध्यान दे जो सदा है। आस्तिक वह है जो बदलाहट पर ध्यान न दे, उस पर ध्यान दे जो सदा से है।

एक आदमी मर रहा है। उससे हम पूछे कि सच मे वह तूने किया ही था या कोई सपना देखा था तो मरते आदमी को तय करना बहुत मुश्किल है कि जिन्दगी मे जो उसने लाखो कमाए थे, वे कमाए ही थे, या कि कोई सपना था। बर्टेड रसल ने एक मजाक की है कि मरते वक्त मैं यह नही तय कर पाऊगा कि जो हुआ वह सच मे हुआ या कि मैने एक सपना देखा। और कैसे तय करूगा, दोनो मे फर्क क्या करूगा कि वह सच मे हुआ था। आप ही पीछे लौटकर देखिए कि जो बचपन गुजर गया वह आपका एक सपना था या कि सचमुच था। आज तो आपके पास सिवाय एक स्मृति के और कुछ नही रह गया। मजे की बात यह है कि जिसे हम जीवन कहते है उसकी स्मृति भी वैसे ही बनती है जैसे कि सपने की बनती है। इसलिए छोटे बच्चे तय भी नही कर पाते कि यह सपना है। छोटा बच्चा अगर रात मे सपना देख लेता है कि उसकी गुड्डी किसी ने तोड़ दी है तो वह सुबह रोता हुआ उठता है, पूछता है मेरी गुड्डी तोड डाली गई है। उसे अभी साफ नही है। उसने जो सपना देखा उसमे और जागकर जो गुड्डी देखी उसमें फर्क है। लेकिन उसे अभी फर्क नही मालूम पडता। इसलिए हो सकता है कि वह सपने मे डरा हो और जागकर रोता रहे। और समझाना मुश्किल हो जाए क्योकि हमे पता ही नही उसके कारण का कि वह डरा किस वजह से है। हो सकता है कि सपने मे किसी ने उसे मार दिया हो और वह रोता चला जा रहा है जागकर। उसके लिए फासला नही है अभी। जो लोग जीवन की गहराइयो पर उतरते हैं वे अन्त में फिर उस जगह पर पहुंच जाते हैं जहां फासले खो जाते हैं।

चीन मे च्वांग नाम का एक अद्भुत विचारक हुआ है। एक रात सपना देखा

उसने, सुबह उठा। वह बडा परेशान था। मित्रो ने पूछा कि आप इतने परेशान क्यो हैं। हमारी परेशानी होती है, हम आपसे सलाह लेते हैं। आज आप परेशान हैं? क्या हो गया आपको? उसने कहा : मैं बडी मुश्किल मे पड गया हू। रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हू और फूल-फूल पर भटक रहा हू। तो मित्रो ने कहा, इसमे क्या परेशान होने की बात है? सपने सभी देखते हैं। उसने कहा : नही, इससे परेशान होने की बात नही है। अब मैं इस चिन्ता मे पड़ गया हू कि अगर रात च्वाग नाम का आदमी सोया और तितली हो गया सपने मे तो कही ऐसा तो नही है कि वह सपने की तितली अब सो गई है और अब सपना देख रही है च्वाग हो जाने का। क्योंकि जब आदमी सपने मे तितली हो सकता है तो तितली सपने मे आदमी हो सकती है। अब मैं सच मे च्वाग हू या फिर तितली सपना देख रही है। वह जिन्दगी भर लोगो से पूछता रहा कि कैसे तय हो इस बात का। जैसे ही कोई आदमी गहरे जीवन मे उतरेगा तो उसे पता चलेगा कि वही से सपने आते है, वही से जीवन आता है, वही मे सब लहरे आती है। इसलिए सब लहरें एक अर्थ मे समानार्थक होती है। तब सुख और दुख बेमानी है। तब आरम्भ और अन्त बेमानी हैं, तब ऐसा होना और वैसा होना बेमानी है। तब सब स्थितियो मे आदमी राजी है। लेकिन चूकि हम लहरो का हिसाब रखते है इसलिए हम परम सत्य की बाबत भी पूछना चाहते है वह कब शुरू हुआ, कब अन्त होगा। सूरज बनेगा, मिटेगा। वह भी एक लहर है जो जरा देर तक चलने वाली है। पृथ्वी दो अरब वर्ष चलेगी। वह भी मिटेगी, बनेगी। वह भी एक लहर है। हजारो पृथ्विया बनी हैं और मिटी है। हजारो सूरज बने हैं और मिटे हैं। और प्रतिदिन कही, किसी कोने पर कोई सूरज ठडा हो रहा है। और किसी कोने पर सूरज जन्म ले रहा है। इस वक्त भी, अभी जब हम यहा बैठे हैं तो कोई सूरज बूढा हो रहा है। कोई सूरज अभी मरा होगा। कोई सूरज नया जन्म ले रहा होगा। कोई सूरज बच्चा है अभी, कोई जवान हो रहा है। हमारा सूरज भी बूढा होने के करीब पहुच रहा है। उसकी उम्र ज्यादा नही है। वह चार-पाच हजार वर्ष लेगा ठडा होने मे। हमारी पृथ्वी भी बूढी होती चली जा रही है। एक छोटी सी इल्ली है, वह वर्षा मे ही पैदा होती है, वर्षा में ही मर जाती है। वह वृक्ष पर चढ रही है। वृक्ष उसको सनातन मालूम पड़ता है। उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे। यह वृक्ष कभी मिटता हुआ नही दिखता। इल्ली की हजारों पीढ़िया गुजर जाती हैं और यह वृक्ष है कि ऐसा ही खड़ा

रह जाता है। इल्लिया सोचती होंगी कि वृक्ष न कभी पैदा होते हैं न कभी मरते हैं। इल्लिया पैदा होती हैं और मर जाती हैं। वृक्ष की उम्र है दो सौ वर्ष और इल्ली एक मौसम भर जीती है। उसकी दो सौ पीढिया एक वृक्ष पर गुजर जाती हैं। हमारी दो सौ पीढियों में कितना लम्बा फासला है। महावीर से हमारा कितना फासला है ? पच्चीस सौ वर्ष ही न ? अगर हम पचास वर्ष की भी एक पीढी मान ले तो कितना फासला है ? कितनी पीढ़िया गुजरी हैं ? कोई बहुत ज्यादा नही।

तो न कोई प्रारम्भ है, न कोई अन्त है। और जिसका प्रारम्भ है और अन्त है, वह केवल एक-रूप है, एक-आकार है। आकार बनेंगे और बिगड़ेंगे, आकृति उठेगी और गिरेगी। सपने पैदा होगे और खोएगे। लेकिन जो सत्य है वह सदा है। उसे हम कभी ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह था। उसके लिए ऐसा भी नही कह सकते कि वह होगा। उसके लिए तो एक ही बात कह सकते है कि वह है और अगर बहुत गहरे मे कोई जाता है तो वह पाता है कि यह कहना भी गलत है कि सत्य है। क्योकि जो है वही सत्य है। सत्य के साथ 'है' को भी जोडना बेमानी है क्योकि 'है' उसके साथ जोडा जा सकता है। जो नही है, हो सकता हो। कह सकते हैं कि यह मकान है क्योकि मकान 'नही' है यह भी हो सकता है। लेकिन 'सत्य है' इसके कहने मे कठिनाई है थोडी। क्योकि सत्य 'नही है' कभी नही हो सकता। इसलिए सत्य और 'है' पर्यायवाची हैं। इनका दोहरा उपयोग करना एक साथ पुनरुक्ति है। 'सत्य है', इसका मतलब है, जो है वह है।

इस दृष्टि का थोडा सा ख्याल आ जाए तो सब बदल जाता है। तब पूजा और प्रार्थना नही उठती। तब मस्जिद और मन्दिर नही खड़े होते, लेकिन सब बदल जाता है। आदमी मन्दिर बन जाता है। आदमी का उठना, चलना, बैठना, सब पूजा और प्रार्थना हो जाती है। क्योकि अब जो विस्तार का बोध आता है तो अपनी क्षुद्रता खो जाने का अर्थ लगने लगता है। फिर उसका कोई मतलब नही रह जाता। 'मैं' 'हू'—इसका कोई अर्थ नही। 'मैं था'—इसका कोई अर्थ नही। 'मैं होऊगा'—इसका कोई अर्थ नही। लेकिन मेरे भीतर जो सदा है, वही सार्थक है। और वह सब के भीतर है और वह एक ही है। तो व्यक्ति खो जाता है, अहंकार खो जाता है। तब जिसका जन्म होता है उसी को हम कहेगे 'बदला हुआ चित्त', बदली हुई चेतना जो भी नाम देना चाहें, हम दे सकते हैं।

प्रश्न : जड़ और चेतना दो पृथक चीजें हैं या एक ही वस्तु के दो रूप ?

उत्तर : ये पृथक् चीजें नही हैं । पृथक् दिखाई पड़ती हैं । जड़ का मतलब है इतना कम चेतन कि हम अभी उसे चेतन नही कह पाते । चेतन का मतलब है इतना कम जड़ कि अब हम उसे जड नही कह पाते । वह एक ही चीज के दो छोर है । जडता चेतन होती चली जा रही है, जडता में भीतर कही चेतन छिपा है । फर्क सिर्फ प्रकट और अप्रकट का है । और जिसको हम जड कहते है, वह अप्रकट चेतन है यानी जिसकी अभी चेतना प्रकट नही हुई है । जिसको हम चेतन कहते हैं, वह प्रकट हो गया है । जैसे कि एक बीज रखा है और एक वृक्ष खडा है । कौन कहेगा कि बीज और वृक्ष एक ही हैं ? क्योकि कहा वृक्ष ? और कहा बीज? लेकिन बीज मे वृक्ष अप्रकट है । बस इतना ही फर्क है । दो दिखाई पडते हैं; दो हैं नही । और जहा-जहा हमे दो दिखाई पडते हैं, वहा-वहा दो नही हैं । 'है' तो एक ही लेकिन हमारे देखने की क्षमता इतनी सीमित है कि हम दो मे ही देख सकते हैं । यह हुआ है हमारी सीमित क्षमता के कारण क्योकि जड मे हमे चेतन दिखाई नही पड़ता और चेतन को हम कैसे जड़ कहे । इसलिए जो झगडा चलता आ रहा है वह एकदम बेमानी है । जिन लोगो ने कहा कि यह पदार्थ ही है, वे भी ठीक कहते है । क्योकि सब पदार्थ मे ही तो आ रहा है तो कहा जा सकता है कि पदार्थ है ही । इसमे झगड़ा कहा है ? लेकिन कोई कहता है कि पदार्थ है ही नही । बस, चेतन ही है । वह भी ठीक कहता है । वे ऐसे ही लोग है जैसे एक कमरे मे आधा भरा गिलास रखा हो और एक आदमी बाहर आए और कहे कि गिलास आधा खाली है । और फिर दूसरा आदमी बाहर आए और कहे 'गलत बोलते हो बिल्कुल ! गिलास आधा भरा है । और दोनो विवाद करें । और तब दो सम्प्रदाय बन जाएगे । और ऐसे लोगो के सम्प्रदाय बनते हैं जो भीतर कभी जाते नही दीखते कि गिलास कैसा है ? मकान के बाहर ही निर्णय कर लेते हैं । दो आदमी खबर लाए और एक कहे कि मकान के भीतर जो गिलास है वह आधा खाली है और दूसरा कहे कि वह आधा भरा है । दोनो ही ठीक कहते हैं । सिर्फ उनका जोर भिन्न है । एक खाली पर जोर देकर चला है; एक भरे पर । जो लोग पदार्थ पर जोर दे रहे हैं, वे भी ठीक हैं । और जो अध्यात्म पर जोर दे रहे हैं वे भी ठीक हैं क्योकि पदार्थ और चेतन दो चीजें नही हैं । पदार्थ चेतन की अप्रकट स्थिति है और चेतन पदार्थ की प्रकट स्थिति है । तो

मेरी दृष्टि में जिस दिन दुनिया और ज्यादा सम्प्रदायों से उठकर देखना शुरू करेगी उस दिन भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में कोई झगड़ा नहीं रहेगा। वह आधे गिलास का झगडा है। हा, फिर भी मैं पसद करूगा कि जोर इस तथ्य पर दिया जाए कि सब चेतन है। पसद इसलिए करूगा कि जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है तो हमारी चेतना के प्रकट होने में बाधा पड़ती है। दूसरी ओर जब हम इस बात पर बल देते हैं कि सब चेतन है तो हमारी चेतना पर बल पड़ता है और विकास की सम्भावना उद्भूत होती है। इसलिए अध्यात्मवाद में और पदार्थवाद में बुनियादी भेद नहीं हैं। भेद सिर्फ इस बात का है कि पदार्थवाद आदमी को रोक सकता है विकास से। क्योंकि जब सब पदार्थ ही है तो बात खत्म हो गई। और अध्यात्मवाद विकासशील बना सकता है आदमी को। लेकिन जब कोई पहुंचता है जीवन के सत्य पर तो वह पाता है कि दोनों बातें ठीक हैं। बातों मे कोई झगड़ा न था लेकिन जोर में फर्क पडता था और फर्क उपयोगी था।

भोज के जीवन मे एक उल्लेख है कि उसके दरबार में एक ज्योतिषी आया। भोज का हाथ देखा और कहा, "तुम बड़े अभागे हो। तुम अपनी पत्नी को भी मरघट पहुचाओगे, अपने बेटो को भी मरघट पहुचाओगे। तुम्हें घर के एक-एक सदस्य को मरघट पहुचाना पडेगा। बाद मे तुम मरोगे।" भोज बहुत नाराज हो गया और उसने ज्योतिषी को हथकड़िया डलवा दी और कहा इसे बन्द कर दो। यह आदमी कैसी अपशकुन की बातें बोल रहा है? कालिदास चुपचाप बैठा था। वह खूब हसने लगा। उसने कहा ज्योतिषी कुछ अपशकुन नहीं बोलता। सिर्फ बोलने की समझ नही है। जोर गल्त चीज पर देता है। भोज ने पूछा: क्या मतलब? कालिदास ने कहा कि मैं आपका हाथ देखूं और हाथ देखकर कहूं, "बहुत धन्यभागी हैं आप। आपकी उम्र बहुत ज्यादा है। और धन्यभागी इन अर्थों मे हैं कि न तो आपकी मृत्यु से आपकी पत्नी कभी दुखी होगी, न आपकी मृत्यु से आपके बेटे कभी दुखी होगे। न कोई संबंधी दुखी होगा। आप बड़े धन्यभागी हैं।" और भोज ने कहा कि जितना इनाम चाहिए लो, ऐसे शकुन की बात करनी चाहिए, अपशकुन की नही। यह जो जोर का फर्क है चित्त पर इसके परिणाम भिन्न होते हैं। पहली बात बड़ा उदास कर देगी। दूसरी बात बड़ा प्रसन्न कर देगी। और बात बिल्कुल एक ही है। लेकिन उनके कहने का ढग, उनका जोर बदल गया है। पदार्थवाद मनुष्य को एकदम उदास कर देता है। अध्यात्मवाद एक गति देता है, विकास के द्वार खोलता

है, कुछ होने की सम्भावना प्रकट करता है । बात वही है । इसलिए मैं फिर भी कहता हू कि अध्यात्मवाद ही ठीक कहता है, यद्यपि भौतिकवाद गलत नही कहता है ।

प्रश्न : क्या यह मानवज्ञान की सीमा नहीं है कि वह सृष्टि के आदि को नहीं जान सकता ?

उत्तर : नही, यह मनुष्य के ज्ञान की सीमा का सवाल नही है । मनुष्य का ज्ञान कितना ही असीम हो जाए, तो भी प्रारम्भ की सम्भावना नही है ।

प्रश्न : जानने की सम्भावना नहीं ?

उत्तर : नही, जानने की बात नही । बात है प्रारम्भ होने की । जानने का सवाल नही है । अगर प्रारम्भ है तो जाना जा सकता है । जो है वह जाना जा सकता है । अब जो नही है, उसके लिए क्या करेंगे ? प्रारम्भ असम्भव है । ज्ञान की सीमा का सवाल ही नही है । यानी ऐसा नही है कि महावीर यह कहते हैं कि मुझे पता नही कि प्रारम्भ है या नही । मैं भी ऐसा नही कह रहा हू कि यह हमारे ज्ञान की सीमा है कि हमे पता नही चल सकता कि प्रारम्भ कब हुआ? नही, यह सवाल नही है । सवाल यह है कि प्रारम्भ की अवधारणा असम्भव है क्योकि प्रारम्भ के लिये भी पहले कुछ सदा से होना चाहिए, नही तो प्रारम्भ हो ही नही सकता । यानी प्रारम्भ के सम्भव होने के लिए भी प्रारम्भ के पहले अस्तित्व चाहिए । और जब पहले अस्तित्व चाहिए तो वह प्रारम्भ नही रह गया और फिर इसको आप पीछे खीचते चले जाए । जैसे कोई आदमी कहे कि दुनिया की एक सीमा है और हम कहे कि हमे तो सीमा का कोई पता नही । कोई कहे कि अस्तित्व एक जगह जाकर समाप्त हो जाता है, जिसके आगे कुछ भी नही है तो हम कहे हमे पता नही है । हो सकता है कि एक दिन आदमी उस जगह पहुच जाए जहा जगत समाप्त हो जाता है । क्योकि हमारा ज्ञान अभी सीमित है, हम बहुत थोड़ा सा ही जानते है, अभी चाद पर ही पहुच पाये हैं, मुश्किल से । और जगत का अस्तित्व तो बहुत विस्तीर्ण है । कभी हम पहुच पाएगे, यह नही कह सकते । इसलिए अन्त के सम्बन्ध मे हम कैसे कहे ? लेकिन मैं कहता हू कि अन्त नही हो सकता, अन्त असम्भव है । अन्त इसलिए असम्भव है कि किसी चीज का अन्त सदा दूसरे का प्रारम्भ होता है । यानी अगर हम किसी दिन ऐसी जगह पहुच जाए जहां एक रेखा आ जाती हो और हम कह

सकें कि यह जगत का अन्त हुआ तो यह कैसे सम्भव है ? रेखा बनेगी कैसे ? रेखा बनती है दो के अस्तित्व से। एक शुरू होता है और एक अन्त होता है। जहां आपका मकान खत्म होता है वहा पड़ोसी का मकान शुरू हो जाता है। इसीलिए जहां कुछ अन्त होता है, वहीं प्रारम्भ होता है। यानी प्रत्येक अन्त प्रारम्भ को जन्म देता है और प्रत्येक प्रारम्भ अन्त को जन्म देता है। जहां ऐसी स्थिति हो, वहा हम बिना किसी दिक्कत के कह सकते हैं कि चाहे कितना ही कही मनुष्य पहुंच जाए ऐसा कभी नही होगा कि मनुष्य कहे कि यह है जगत की सीमा, अब इसके आगे कुछ भी नही है। लेकिन 'आगे' तो होगा। इतना भी अगर रहा कि उसने कहा कि इसके 'आगे' कुछ नही पर 'आगे' तो होगा, फिर 'आगे' तो अभी जारी रहा, खत्म कहा हुआ। यानी आप विचार भी नही कर सकते ऐसा कि एक जगह ऐसी आ गई जिसके आगे 'आगे' भी नही है। ऐसी जगह कैसे आएगी ? इसलिए न तो अवधारणा हो सकती है और न सम्भावना। महावीर का दावा जारी रहेगा। वह दावा कभी भी खडित नही हो सकता। यानी अगर किसी दिन हमने पता भी लगा लिया कि इस दिन पृथ्वी का प्रारम्भ हुआ तो हम पाएगे कि उसके पहले कुछ है जिससे प्रारम्भ हुआ। फिर जब उसका पता लगा लिया तो पता चलेगा कि उसके पहले कुछ है जिससे प्रारम्भ हुआ। यानी प्रारम्भ शून्य से नही हो सकता है, और अगर शून्य से प्रारम्भ हो सके तो शून्य को शून्य कहना गल्त होगा। उसका मतलब होगा कि शून्य मे भी बीज की तरह कुछ छिपा है जो प्रकट होगा। फिर वह 'शून्य' न रहा। 'शून्य' का मतलब है जिसमे कुछ भी नही छिपा, जो है ही नही। इसका जो कारण है वह यह नही है कि मनुष्य का ज्ञान सीमित है। इसका कारण यह है कि ज्ञान कितना ही बढ़ जाए, प्रारम्भ की धारणा असम्भव है। प्रारम्भ कभी है ही नही। यानी उस प्रारम्भ होने की धारणा मे ही उसका विरोध छिपा हुआ है। वह कैसे होगा ? और जहां से भी होगा पूर्व स्थिति की जरूरत पड़ेगी। और वह पूर्वस्थितिया प्रारम्भ को खडित कर देती हैं।

प्रश्न : जीवन की भिन्न-भिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर की मानसिक स्थिति का विश्लेषण उपलब्ध नहीं होता। आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसके आधार पर उनकी अंतरंग स्थिति का स्पष्टीकरण क्या हो सकेगा ?

उत्तर : यह बहुत बढ़िया सवाल है। बढ़िया इसलिए है कि हम सबके

मन मे उठ सकता है कि भिन्न-भिन्न अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर जैसे व्यक्ति की चित्तदशा क्या होगी ? कोई उल्लेख नहीं है। तो कोई सोच सकता है कि उल्लेख इसलिए नही है कि महावीर ने कभी कुछ कहा न हो। मगर यह कारण नही है। उल्लेख न होने का कारण दूसरा है जोकि बहुत गहरा, बुनियादी है। महावीर जैसी चेतना की अभिव्यक्ति मे परिस्थितियों से कोई भेद नही पडता। इसलिए *भिन्न-भिन्न परिस्थिति कहने का कोई अर्थ नही* है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे प्रतिकूल, अनुकूल मे चित्त सदा समान है। जैसे कि किसी ने गाली दी तो हम क्रुद्ध होते हैं और किसी ने स्वागत किया तो हम आनन्दित होते हैं। प्रत्येक स्थिति मे हमारा चित्त रूपान्तरित होता है। जैसी स्थिति होती है वैसा चित्त हो जाता है। इसी को महावीर अन्धन की अवस्था कहते हैं। स्थिति जैसी होती है, वैसा चित्त को होना पडता है। फिर हम बधे हुए हैं। स्थिति दुख की होती है तो हमे दुखी होना पडता है। स्थिति सुख की होती है तो हमे सुखी होना पडता है। इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नही है। सिर्फ बाहर की स्थिति जो मौका दे देती है चित्त वैसा हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चेतना अभी उपलब्ध ही नही हुई। अभी हम उस जगह नही पहुचे हैं जहा स्थितिया कोई फर्क नही लाती हैं, जहा सुख आए, दुख आए तो प्रतिकूल और अनुकूल जैसी चीज ही नही होनी।

महावीर के अन्तरग चित्त मे क्या हो रहा है ? किसी दिन बहुत शिष्य इकट्ठे हुए होंगे तो महावीर का मन कैसा है ? किसी दिन कोई नही आया होगा गाव मे सुनने तो महावीर का मन कैसा है ? किसी दिन सम्राट् आए होंगे सुनने और चरणों मे लाखो रुपए रखे होंगे और किसी दिन कोई भिखारी आया होगा और उसने कुछ नही रखा होगा तो महावीर का मन कैसा हुआ होगा? किसी गांव मे स्वागत-समारम्भ हुए होगे, फूल-मालाए चढ़ी होंगी और किसी गाव मे पत्थर फेंके गए होगे, गालियां दी गई होगी और गांव के बाहर खदेड़ दिया गया होगा तो महावीर का मन कैसा हुआ होगा ? यानी इन स्थितियो मे महावीर के भीतर क्या होता है ? असल में महावीर होने का मतलब ही यह है कि भीतर अब कुछ भी नही होता। जो होता है वह सब बाहर होता है। यही महावीर होने का अर्थ है, यही क्राइस्ट होने का अर्थ है, यही बुद्ध होने का अर्थ है, यही कृष्ण होने का अर्थ है कि अब भीतर कुछ भी नहीं होता। भीतर बिल्कुल अछूता छूट जाता है। जैसे एक दर्पण है और उसके सामने से कोई निकलता है, जैसा व्यक्ति है—सुन्दर या कुरूप—वैसी तस्वीर बन जाती है।

व्यक्ति निकल गया, तस्वीर मिट गई, दर्पण रह जाता है। इसमें कोई फर्क नही पड़ता कि वह दर्पण सुन्दर व्यक्ति को कुछ ज्यादा रस से झलकाए, कुरूप को कम रस से झलकाए। सुन्दर है कि कुरूप है, कौन गुजरता है सामने से, इससे कोई मतलब नहीं है। दर्पण का काम है झलका देना। लेकिन एक फोटो-प्लेट है वह भी दर्पण का काम करती है लेकिन बस एक ही बार। क्योंकि जो भी उस पर अंकित हो जाता है उसे पकड़ लेती है, फिर उसे छोड़ नही पाती। इसका मतलब यह हुआ कि दर्पण की घटनाए सब बाहर ही घटती हैं, भीतर नही घटती। फोटो-प्लेट से भीतर घटना घट जाती है। बाहर से कोई निकलता है और भीतर घट जाता है। बाहर से तो निकल ही गया लेकिन फोटो-प्लेट फस गई। वह तो पकड़ गई भीतर से।

दो तरह के चित्त हैं जगत मे, फोटो-प्लेट की तरह या दर्पण की तरह काम करने वाले। फोटो-प्लेट की तरह जो काम कर रहे हैं उन्ही को राग-द्वेष ग्रस्त कहते हैं। असल मे फोटो-प्लेट बड़ा राग-द्वेष रखती है। राग-द्वेष का मतलब है जकड़ती है जल्दी, पकड़ती है जल्दी, फिर छोड़ती नहीं। राग भी पकड़ता है, द्वेष भी पकड़ता है। दोनो पकड़ते हैं। एक मित्र की तरह पकड़ता है, एक शत्रु की तरह पकडता है। दोनो पकड लेते हैं और चित्त की, जो दर्पण की निर्मलता है, वह खो जाती है। हम सब फोटो-प्लेट की तरह काम करते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत मे पडे होते हैं। एकदम चित्त भरता जाता है, खाली नही होता और फिर स्थिति पकड़ी जाती है। और कोई स्थिति ऐसी नही है जो हमारे पास से अस्पृष्ट निकल जाए। महावीर जैसे व्यक्ति दर्पण की तरह जीते हैं। समाधिस्थ व्यक्ति दर्पण की तरह जीता है। कोई गाली देता है तो वह सुनता है; कोई सम्मान करता है तो वह सुनता है। लेकिन जैसे सम्मान बिदा हो जाता है ऐसे गाली भी बिदा हो जाती है भीतर कुछ पकड़ा नही जाता। इसलिए महावीर के चित्त की अलग-अलग स्थितिया नही हैं जिनका वर्णन किया जाए। इसलिए वर्णन नही किया गया। कोई स्थिति ही नही है। अब क्या दर्पण का वर्णन करो बार-बार ? इतना कहना ही काफी है कि दर्पण है। जो भी आता है वह झलकता है, जो चला जाता है झलक बद हो जाती है। इसको रोज-रोज क्या लिखो ? इसको रोज-रोज क्या कहो ? इसे कहने का कोई अर्थ नही है। न महावीर की, न क्राइस्ट की, न बुद्ध की, न कृष्ण की—किन्ही की अन्तः परिस्थिति का कोई उल्लेख नहीं किया गया, नही किए जाने का कारण है। उल्लेख-

योग्य कुछ है ही नही। एक समता आ गई है चित्त की। वह वैसा ही रहता है। जैसे कि महावीर को कुछ लोग पत्थर मार रहे हैं या कान मे कीलें ठोंक रहे हैं, या गाव के बाहर खदेड रहे हैं तो महावीर को मानने वाले कहते हैं कि बडे क्षमावान हैं वह। महावीर ने गाली नही दी उन्हें, क्षमा कर दिया और आगे बढ़ गए। लेकिन वह भूल जाते हैं कि क्षमा तभी की जा सकती है जब मन मे क्रोध आ गया हो। क्षमा अकेली बेमानी है। वह क्रोध के साथ ही साथ आती है। नही तो उसका कोई अर्थ ही नही है। हम क्षमा कैसे करेंगे जो हम क्रुद्ध न हुए। और वह कहते हैं कि उन्होने लौटकर गाली न दी, क्षमा कर दी और आगे बढ गए। लेकिन लौटकर तभी कुछ दिया जा सकता है जब भीतर कुछ हुआ हो। नही तो लौट कर कुछ भी नहीं दिया जा सकता। तो मैं आपसे कहता हू कि महावीर क्षमावान् नही थे क्योंकि महावीर क्रोधी नहीं हैं। और महावीर ने क्षमा भी नही किया, चाहे देखने वालो को लगा हो कि हमने गाली दी, और इस आदमी ने गाली नही दी, बड़ा क्षमावान् है। बस इतना ही कहना चाहिए कि इस आदमी ने गाली नही दी। बडा क्षमावान् है, यह कहना भूल हो जायेगी। इस आदमी ने गाली सुनी जैसे एक शून्य भवन मे आवाज गूजे, चाहे गाली की, चाहे भजन की। आवाज गूजे और निकल जाए और भवन फिर शून्य हो जाए। इस तल पर इस चेतना में जीने वाले व्यक्ति शून्य भवन की तरह हैं। जिन मे जो भी आता है, वह गूजता जरूर है, हमसे ज्यादा गूजता है क्योंकि हमारी संवेदनशीलता इतनी तीव्र नही होती। क्योकि हमने इतनी चीजें पहले से भर रखी होती हैं। जैसे खाली कमरा है। खाली कमरे में आवाज गूजती है और बहुत फर्नीचर भरा हो तो फिर नही गूजती। हम फर्नीचर भरे लोग हैं जिनमे बहुत भरा हुआ है, फोटो-प्लेट ने बहुत इकट्ठा कर लिया है, आवाज गूजती ही नही, कई दफा तो सुनाई ही नही पडती कि क्या सुना, क्या देखा, कुछ पता ही नही चलता। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति की सवेदनशीलता बडी प्रगाढ़ है। सब गूजता है। जरासी आवाज होती है, सुई भी गिरती है तो गूंज जाती है। लेकिन बस गूंजती है। और जितनी देर गूज सकती है, गूंजती है और बिदा हो जाती है। महावीर उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नही करते—न क्षमा की, न क्रोध की। महावीर का सारा योग अप्रतिक्रियायोग है। प्रतिक्रिया मत करो, देखो, जानो, सुनो लेकिन प्रतिक्रिया मत करो।

प्रश्न : एक मन्दबुद्धि व्यक्ति भी तो प्रतिक्रिया नहीं करता ?

उत्तर : हां, वह इसलिए नहीं करता क्योंकि न वह सुनता है, न वह जानता है, न वह देखता है।

प्रश्न : मन्दबुद्धि भी एक आदमी है ?

उत्तर : हां, वह इसीलिए प्रतिक्रिया नहीं करता क्योंकि वह देख नहीं पाता, सुन नही पाता, समझ नही पाता। और वह मदबुद्धि, प्रतिक्रिया नहीं करता। परम स्थिति मे अक्सर यह जड़ जैसी अवस्था मालूम होने लगती है।

प्रश्न : तो मालूम कैसे पड़े ?

उत्तर : मालूम करने की जरूरत नहीं है। हां ! तुम अपनी फिक्र करो कि हम कहा है। परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति हमे जड़ जैसा मालूम पडेगा। क्योंकि हमने जड़ को ही जाना है। अगर आप एक जड़ को गाली दें तो हो सकता है कि वह बैठा हुआ सुनता रहे। इसलिए नही कि उसने गाली सुनी बल्कि सिर्फ इसलिए कि सुना ही नहीं उसने कि क्या हुआ। महावीर को गाली दो तो हो सकता है वह भी वैसे बैठे सुनते रहें, इसलिए नही कि उन्होंने गाली नही सुनी। गाली पूरी सुनी, जैसी किसी आदमी ने कभी न सुनी होगी। लेकिन कोई प्रतिक्रिया नही की क्योकि गाली की प्रतिक्रिया क्या होती ? प्रतिक्रिया का फल क्या है ? प्रतिक्रिया से लाभ क्या है, प्रयोजन क्या है ? अक्सर ऐसा होता है कि परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति ठीक जड़ जैसा मालूम पड़े क्योंकि हम जड़ को ही पहचानते हैं। लेकिन फर्क तो बहुत गहरे होंगे। वक्त लगेगा पहचानने मे और शायद हम ठीक से पहचान भी न सकें जब तक हमारे भीतर फर्क होना शुरू न हो जाए। यह कुछ अद्भुत सी बात है लेकिन दो विरोधी अतियां कभी-कभी बिल्कुल समान ही मालूम होती हैं। जैसे एक बच्चा है, वह सरल मालूम होता है, निर्दोष मालूम होता है। लेकिन अज्ञानी है, ज्ञान बिल्कुल नही। परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी बच्चे जैसा मालूम होने लगेगा। इतना ही सरल, इतना ही निर्दोष। शायद बच्चे जैसा व्यवहार भी करने लगेगा। शायद हमे तय करना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी ने बुद्धि खो दी, यह कैसा बच्चों जैसा व्यवहार कर रहा है, कैसी बालबुद्धि का हो गया है। लेकिन दोनों में बुनियादी फर्क है। बच्चा अभी निर्दोष दिखता है लेकिन कल निर्दोषता खोएगा ; अभी सरल दिखता है लेकिन कल जटिल होगा। यह आदमी जटिल हो चुका है। निर्दोषता खो चुका है। यह पूर्ण उपलब्धि है कि सरलता लौट आई है, फिर निर्दोष हो गया है। अब

खोने का सवाल नही है यह जानकर, जीकर लौट आया है। यह उन अनुभवो से गुजर गया है जिनसे बच्चे को गुजरना पडेगा। बच्चे की सरलता अज्ञान की है। एक सन्त की सरलता ज्ञान की है। लेकिन दोनों सरलताएं अक्सर एक सी मालूम पड़ेंगी। एक सन्त भी बच्चो जैसा सरल हो सकता है। और अगर सन्त बच्चो जैसा सरल न हो सके तो अभी वृत्त पूरा नही हुआ, अभी बात वापस नही लौटी, जटिलता शेष रह गई, कठिनाई शेष रह गई है। कही कोई चालाकी शेष रह गई है, इसीलिए कभी-कभी बहुत भूलें हो जाती हैं। जैसे मैं फकीर नसरूद्दीन की निरंतर बात करता हू। वह ऐसा ही आदमी था जो देखने मे परम जड मालूम पडे, जिसका व्यवहार परम जड का हो, लेकिन जो देख सके उसे वही परम ज्ञान दिख जाए। एक बात मैं बताना चाहूगा। फकीर नसरूद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। उसने देखा कि एक व्यक्ति तोता बेच रहा है और जोर से चिल्ला कर कह रहा है कि बडा कीमती तोता है यह, बडे सम्राट के घर का तोता है, इस-इस तरह की वाणिया जानता है, इस-इस भाषा को पहचानता है, इस-इस भाषा को बोलता है। और सैंकडो लोग इकट्ठे हुए हैं। नसरूद्दीन भी उस भीड मे खडा हो गया है। कई सौ रुपए मे वह तोता नीलाम हुआ और बिक गया। नसरूद्दीन ने लोगो से कहा कि ठहरो, मैं इससे भी बढिया तोता लेकर अभी आता हूं। भागा हुआ वह घर आया और अपने तोते के पिंजरे को लेकर बाजार मे खडा कर दिया और कहा वह क्या तोता था? अब दाम इसके बोलो। और जहा से उसकी बोली खत्म हुई वहा से शुरू करो। लोगो ने समझा कि उससे भी बढिया तोता आ गया है तो उन्होने बोली शुरू की लेकिन तब धीरे-धीरे किसी ने कहा कि वह जो तोता था, बार-बार बोलता था, जवाब देता था, कई दफा बोली भी बढाता था लेकिन यह तो कुछ बोलता ही नही है। नसरूद्दीन ने कहा कि बोलने वाले तोतों का क्या मूल्य? यह मौन तोता है, यह बिल्कुल परम स्थिति को पहुच गया है। उन्होने कहा हटाओ इसको। कोई एक पैसे मे भी नही खरीदेगा इसे। उसने कहा बड़े पागल लोग हो तुम। लोगो ने कहा अरे यह मूर्ख है नसरूद्दीन; इसकी बातो मे क्यो पड़ते हो। यह पागल है इसमे कुछ अकल नही है। तोते सहित इसको निकाल बाहर करो। लोगो ने नसरूद्दीन को तोते सहित बाहर निकाल दिया। रास्ते पर लोगो ने पूछा कहो नसरूद्दीन तोता बिका कि नही। उसने कहा कि क्या बिकता क्योकि वहा खरीददार केवल वाणी को समझ सकते थे, मौन को

कोई नही समझ सकता था। हम पिट गए क्योंकि वहां कोई मौन को समझने वाला न था। मैंने तो सोचा कि जब वाणी के इतने दाम लग रहे हैं तो मौन का तो मजा आ जाएगा। लेकिन लोगो को वह आदमी पागल लगता है। जो तोता बोलता नहीं उसको कौन खरीदेगा ?

यह आदमी नसरूद्दीन निरन्तर अपने गधे पर यात्राए करता है। गधे पर शक्कर भर कर जा रहा है। नदी पडी। गधा नदी मे बैठ गया। सारी शक्कर बह गई। नसरूद्दीन ने गधे से कहा है कि तू हमसे भी ज्यादा बुद्धिमानी दिखला रहा है। ठहर बेटे, तुझे भी आगे बतलाएगे। क्योकि हम कोई साधारण आदमी नही, हम भी तर्क जानते हैं। गधे को वापस लाया। उस पर रूई लादी। उसे नदी के पास ले गया। गधा फिर बैठा। रूई भारी हो गई। गधे का उठना मुश्किल हो गया। उसने आस-पास के लोगो को बुलाकर कहा. देखो! नसरूद्दीन जीत गया, गधा हार गया। लोगो ने कहा तुम बिल्कुल जड़ बुद्धि हो। तुम गधे से विवाद कर रहे हो। नसरूद्दीन ने कहा : विवाद गधे के सिवाय किससे करना पडता है। असल मे गधो से झगडा है। गधो से बकवास है। दोनो एक से हैं। उनकी बातो का कोई मतलब नही।

इस आदमी की जिन्दगी मे ऐसे बहुत मौके हैं जबकि एकदम समझना मुश्किल हो जाता है कि यह आदमी क्या पागलपन कर रहा है। लेकिन पीछे कही कोई बात छिपी रहती है। नसरूद्दीन जा रहा है एक रास्ते से। जोर की वर्षा हो रही है। एक मकान के पास बैठ गया है। गाव का मौलवी भाग रहा है वर्षा से। नसरूद्दीन चिल्लाता है अरे मौलवी, भाग रहे हो। मैं सारे गाव को बता दूगा। मौलवी ने कहा कि मैंने क्या अपराध किया है ? उसने कहा. पाप तुम कर रहे हो। भगवान् पानी गिरा रहा है और तुम भाग रहे हो। यह भगवान् का अपमान है। तो मौलवी धीरे-धीरे चला लेकिन सर्दी से बुखार हो गया। तीसरे दिन मौलवी अपने घर के दरवाजे पर परेशान बैठा था जबकि पानी गिरने लगा। नसरूद्दीन भागा जा रहा था। मौलवी ने कहा : ठहर नसरूद्दीन। मुझे तो तूने धीरे चलने को कहा था, अब तू क्यो भाग रहा है। उसने कहा. भगवान् के पानी पर कही मेरा पैर न पड़ जाए इसलिए मैं भाग रहा हू और वह भाग गया। दूसरे दिन यह मौलवी मिला तो कहा कि तू बड़ा बेईमान है मुझे उपदेश दे रहा था मगर खुद क्या कर रहा है। नसरूद्दीन ने कहा : सब समझदार लोग बेईमान पाए जाते हैं। ईमानदारी करो तो नासमझ हो जाते हैं। फिर व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल

करनी पड़ती है। शास्त्रों का क्या भरोसा ? अपने पर भरोसा रखना पड़ता है। तुम जब पानी में थे तो हमने वह व्याख्या की। जब हम पानी में हैं तो हमने यह व्याख्या की। सभी बुद्धिमान यही करते हैं। ऊपर से मन्द बुद्धि मालूम होता है यह आदमी लेकिन जो लोग परम प्रज्ञा को उपलब्ध होते हैं उनमे से एक है यह आदमी। मगर उसे पकड़ना मुश्किल है। और कई बार उसकी बातें बडी बेहूदी मालूम होती हैं। घर लौट रहा है। एक मित्र ने कुछ मांस भेंट दिया है और साथ मे एक किताब दी है जिसमें मास बनाने की तरकीब लिखी है। किताब बगल में दबाकर, मांस हाथ में लेकर बडी खुशी से भागा चला आ रहा है। चील ने झपटा मारा। चील मांस ले गई। नसरुद्दीन ने कहा : "अरे मूर्ख जा क्योंकि बनाने की तरकीब तो किताब मे लिखी है।" घर पहुचा। घर जाकर अपनी पत्नी से कहा ' सुनती हो। आज एक चील बड़ी बेवकूफ निकली। क्या हुआ ? मैं मांस लेकर आ रहा था। वह मास ले गई लेकिन मास बनाने की तरकीब तो किताब मे लिखी है। उसकी औरत ने कहा कि तुम बहुत बुद्धू हो, चील इतनी बुद्धू नही है। उसने कहा कि सभी बुद्धिमानो को मैंने किताब पर भरोसा करते पाया है। इसीलिए मैंने भी किताब पर भरोसा किया। यह आदमी एक बार तो दिखेगा कैसा पागल है ? जडबुद्धि है। लेकिन कहीं कोई गहरे मे उसकी भी अपनी समझ है और वह इतने बडे व्यंग्य भी कर रहा है और इतनी सरलता से कि किसी के ख्याल मे आए तो उसके प्राणो मे घुस जाए, न आए तो वह आदमी बुद्धू है। बहुत बार ऐसा हो सकता है कि हमे पकड मे ही न आए कि क्या बात है। लेकिन हमे पकड मे तभी आएगा जब हमारी समझ उतनी गहराई पर खड़ी हो।

प्रश्न : क्या महावीर की अहिंसा पूर्ण विकसित है ? क्या महावीर के बाद अहिंसा का उत्तरोत्तर विकास नहीं हुआ है ? क्या गीता और बाइबिल में महावीर से भी अधिक सूक्ष्म रूप हैं ?

उत्तर : पहली बात यह है कि कुछ ऐसी चीजें हैं जो कभी विकसित नही होती। विकसित हो ही नही सकतीं। वे चीजें हैं जहा हमारा विचार, हमारा मस्तिष्क, हमारी बुद्धि, सब शात हो जाते हैं। और वे तब हमारे अनुभव में आती हैं। जैसे कोई कहे कि बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुए पच्चीस सौ साल हो गए। अब जिन लोगों को ज्ञान उपलब्ध हुआ है वह आगे विकसित होता है या नही ? महावीर के बाद आज तक की अवधि में लोग विकसित हो गए हैं तो

ध्यान आगे विकसित होगा या नही, ध्यान है स्वय मे उतर जाना। स्वय में कोई चाहे लाख साल पहले उतरा हो और चाहे अब उतर जाए। स्वय मे उतरने का अनुभव एक है, स्वय मे उतरने की स्थिति एक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर को जो अहिंसा प्रकट हुई वह उनकी स्वानुभूति का ही बाह्य परिणाम है। भीतर उन्होने जाना जीवन की एकता को और बाहर उनके व्यवहार मे जीवन की एकता अहिंसा के रूप मे प्रतिफलित हुई। अहिंसा का मतलब है जीवन की एकता का सिद्धान्त, इस बात का सिद्धान्त कि जो जीवन मेरे भीतर है, वही तुम्हारे भीतर है। तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुचा सकता हू। मैं ही हू तुममे भी फैला हुआ। जिसे यह अनुभव हुआ हो कि मैं ही सब मे फैला हुआ हू, या सब मुझसे ही जुड़े हुए जीवन हैं उसके व्यवहार मे अहिंसा फलित होती है। इसमें क्राइस्ट को हो कि किसी और को हो जीवन की एकता का यह अनुभव कम ज्यादा कैसे हो सकता है ? यह थोडा समझने जैसा है। अक्सर हम सोचते हैं कि सब चीजें कम ज्यादा हो सकती हैं। समझ लें कि आपने एक वृत्त(सर्किल) खीचा। कभी आपने सोचा कि कोई वृत्त कम और कोई वृत्त ज्यादा हो सकता है। हो सकता है कि जो वृत्त आपने खीचा है कुछ कम हो, दूसरा वृत्त कुछ ज्यादा हो। यह नही हो सकता क्योंकि वृत्त का अर्थ ही यह है कि या तो वह वृत्त होगा, या नही होगा। कम ज्यादा नही हो सकता। जो वृत्त कम है, वह वृत्त ही नही है। जैसे प्रेम है। कोई आदमी कहे कि मुझे कम प्रेम है या ज्यादा प्रेम है तो शायद उस आदमी को प्रेम का पता ही नहीं है। प्रेम या तो होता है या नही होता है। उसके कोई टुकडे नही होते। और ऐसा भी नही कि प्रेम विकसित होता हो क्योंकि विकसित तभी हो सकता है जब थोडा-थोडा हो सकता हो। ऐसा नही होता। अक्सर हमारी पसद विकसित होती है इसलिए हम सोचते है कि प्रेम विकसित हो रहा है। पसद और प्रेम मे बहुत फर्क है। पसद कम हो सकती है, ज्यादा हो सकती है लेकिन प्रेम न कम होता है, न ज्यादा होता है। या तो होता है या नहीं होता है। ऐसा कोई नही कह सकता कि ऐसा वक्त आएगा जब लोग ज्यादा प्रेम करेगे। ऐसा नही हो सकता। जीवन के जो गहरे अनुभव हैं, वे होते हैं या नहीं होते। महावीर को जो जीवन की एकता का अनुभव हुआ वही जीसस को हो सकता है, बुद्ध को हो सकता है, लेकिन ऐसा नही हो सकता कि उसमे किसी को ज्यादा हो और किसी को कम हो। होगा तो होगा, नही होगा तो नहीं होगा। दुनिया मे कुछ चीजे हैं

ग्रान्तरिक जो कभी विकसित नही होतीं। जब वे उपलब्ध होती हैं, पूर्ण ही उपलब्ध होती हैं या उपलब्ध होती ही नही हैं। जैसे कि पानी भाप बन रहा है। निन्यानवे डिग्री पर गर्मी हो गई, ग्रभी भाप नही बना है। ग्रट्ठानवे डिग्री पर था, भाप नही बना, नब्बे डिग्री पर था, भाप नही बना, एक सौ डिग्री पर ग्राया कि भाप बन गया। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। ग्रस्सी डिग्री, नब्बे डिग्री, पचानवे डिग्री, निन्यानवे डिग्री। दस बर्तन रखे हैं, सबमें ग्रलग-ग्रलग डिग्री का पानी है। उनमे पानी ग्रभी भाप नही बन रहा है। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। कम होगी तो भाप नही बनेगी। जब पूरी होगी तभी भाप बनेगी। या तो भाप बनती है, या नही बनती है। इसके बीच में कोई डिग्री नही होती। भाप बनने की स्थिति ग्राने तक पानी की डिग्रियां हो सकती हैं।

ग्रज्ञान की डिग्रिया होती हैं, ज्ञान की कोई डिग्री नही होती हालाकि हम सब ज्ञान की डिग्रियां देते हैं। एक ग्रादमी कम ग्रज्ञानी, एक ग्रादमी ज्यादा ग्रज्ञानी, यह सार्थक है। लेकिन एक ग्रादमी कम ज्ञानी, एक ग्रादमी ज्यादा ज्ञानी—यह बिल्कुल ही ग्रसगत, निरर्थक बात है। कम-ज्यादा ज्ञान होता ही नही। हां, ग्रज्ञान कम-ज्यादा हो सकता है। दो ग्रज्ञानियो मे भी ज्ञान का फर्क नही होता सिर्फ सूचना का फर्क होता है। एक ग्रादमी यूनिवर्सिटी से लौटता है, सूचनाए इकट्ठी करता है। उसका ही एक भाई गाव मे, देहात मे रह गया था। सूचनाए इकट्ठी नही कर पाया। ये दोनो मिलते हैं तो एक ज्ञानी मालूम पड़ता है, दूसरा ग्रज्ञानी मालूम पडता है। ग्रसल मे दोनों ग्रज्ञानी हैं। एक के पास सूचनाग्रो का ढेर है, एक के पास सूचनाग्रो का ढेर नही है। एक ज्यादा ग्रज्ञानी है, यह कम ग्रज्ञानी है, मगर यह भी ज्ञान के हिसाब से नही है तोल। जब ज्ञान ग्राता है तो बस ग्राता है। जैसे ग्रांख खुल जाए ग्रौर प्रकाश दिख जाए, जैसे दिया जल जाए ग्रौर ग्रंधेरा मिट जाए। ज्ञानी कभी छोटे-बडे नही होते। लेकिन हम चूकि ग्रज्ञानी हैं सब ग्रौर छोटे-बड़े की भाषा में जीते हैं तो हम ज्ञानियो के भी छोटे-बडे होने का हिसाब लगाते रहते हैं। कोई कहता है कबीर बडा कि नानक, महावीर बडे कि बुद्ध, राम बडे कि कृष्ण, कृष्ण बडे कि मुहम्मद। इस तरह बडे-छोटे का हिसाब लगाते रहते हैं ग्रपने हिसाब से। कोई बडा-छोटा नहीं है वहां।

ग्राज से तीन सौ चार सौ साल पहले सारी दुनिया में एक ख्याल था कि ग्रगर हम छत पर खडे होकर एक छोटा ग्रौर एक बडा पत्थर गिरायें साथ-साथ तो बड़ा पत्थर पहले पहुंचेगा जमीन पर, छोटा पत्थर पीछे। यह बिल्कुल

ठीक गणित था। किसी ने गिरा कर देखा नहीं था। गणित बिल्कुल साफ ही दिखता था। क्योंकि बड़ा पत्थर है, पहले गिरना चाहिए। छोटा पत्थर है बाद में गिरना चाहिए। जिस पहले आदमी ने पिसा के टावर पर पहली दफा खड़े होकर पत्थर गिरा कर देखा कि दोनो पत्थर साथ-साथ गिरे तो उसने दो-चार बार गिरा कर देखा कि कही कुछ भूल जरूरी हो रही है क्योंकि बड़ा पत्थर छोटा पत्थर साथ-साथ कैसे गिरे। फिर जब उसने यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरो को कहा कि दोनो पत्थर साथ-साथ गिरते हैं तो उन्होने कहा : तुम पागल हो गए हो, ऐसा कभी हुआ है ? हालांकि ऐसा किसी ने कभी देखा नहीं था जाकर। फिर भी उसने कहा कि ऐसा हुआ है। प्रोफेसर बामुश्किल देखने गए क्योंकि पडितो से ज्यादा जड कोई भी नही होता। वह जो पकडे रखते हैं, उसको इतनी जड़ता से पकडते हैं कि उसको इच दो इच भी हिलने नही देते। जब पत्थर गिराकर देखा तो कहा इसमे जरूर कोई शरारत है, इसमे जरूर कोई तरकीब की बात है क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि बड़ा पत्थर और छोटा पत्थर दोनो साथ-साथ गिरे। इसमे कोई तरकीब है या शैतान का हाथ है। और तुम इस झझट में मत पडो। इसमे शैतान कुछ पीछे शरारत कर रहा है, भगवान के नियमो मे गडबड़ कर रहा है। असल मे बडे छोटे पत्थर बडे-छोटे होने के कारण नही गिरते। गिरते है जमीन की कशिश के कारण। और कशिश दोनो के लिए बराबर है। छत पर से गिर भर जाए फिर बडा और छोटा होने का कोई मूल्य नही है। मूल्य कशिश का है और वह सबके लिए बराबर है।

एक सीमा है मनुष्य की। उस सीमा से बाहर मनुष्य छलाग भर लगा जाए, फिर परमात्मा की कशिश उसे खीचती है। फिर उसे कुछ नही करना पडता। उस सीमा के बाद कोई छोटा-बडा नही रह जाता। फिर सब पर बराबर कशिश काम करती है। एक सीमा भर है। उस सीमा को मैं कहता हूं विचार। जिस दिन आदमी विचार से निर्विचार मे कूद जाता है उसके बाद फिर कोई छोटा बड़ा नही रहता, कोई कमजोर नही है, कोई ताकतवर नही है। कोई फर्क ही नहीं है। बस एक बार विचार से कूद जाए निर्विचार मे फिर जो जीवन की, अस्तित्व की परम शक्ति है, वह खीच लेती है एक साथ। तो हमारे सब फर्क कूदने के पहले के फर्क है। जब तक हम नही कूदे हैं तब तक के हमारे फर्क हैं। जिस दिन हम कूद गए उस दिन कोई फर्क नही है। महावीर ने जो छलांग लगाई है वही कृष्ण की है, वही क्राइस्ट की है। उसमे

कोई फर्क नही है। इसलिए कोई विकास अहिंसा मे कभी नही होगा। महावीर ने कोई विकास किया है, इस भूल में भी नही पड़ना चाहिए। महावीर ने जो छलांग लगाई है, वह अनुभव वही है। मगर उस अनुभव की अभिव्यक्ति मे भेद है। लेकिन ऐसा कुछ नही है कि महावीर ने पहली बार अहिंसा का अनुभव किया हो। लाखो लोगो ने पहले किया है। लाखो लोग पीछे करेंगे। यह अनुभव किसी की बपौती नही है। जैसे हम आंख खोलेंगे तो प्रकाश का अनुभव होगा। यह किसी की बपौती नहीं है। मेरे पहले लाखों, करोड़ों, अरबो लोगो ने आंख खोली और प्रकाश देखा। और मैं भी आख खोलूंगा तो प्रकाश देखूगा। मेरी इसमे कोई बपौती नही है कि मेरे पीछे आने वाले लोग आख खोलेंगे तो मुझसे कम देखेंगे या ज्यादा देखेंगे। आख खुलती है तो प्रकाश दिखता है। कोई विकास नहीं हुआ है, कोई विकास हो ही नही सकता। कुछ चीजें है जिनमे विकास होता है। परिवर्तनशील जगत मे विकास होता है शाश्वत, सनातन अन्तरात्मा के जगत मे कोई विकास नही होता। वहा जो जाता है, परम अन्तिम मे पहुंच जाता है। वहां कोई विकास नही, कोई आगे नही, कोई पीछे नही। वहा सब पूर्ण के निकट होने से, पूर्ण मे होने से कोई विकास नही होता। परमात्मा से मतलब समग्र जीवन के अस्तित्व का है। वहा विकास का कोई अर्थ ही नही। जैसे एक बैलगाडी जा रही है, चाक चल रहे हैं। बैलगाडी में बैठा हुआ मालिक भी चल रहा है, बैल-भी चल रहे हैं। बैलगाडी प्रतिपल आगे बढ़ रही है। विकास हो रहा है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि बढते हुए चाको के बीच मे एक कील है जो हिल भी नही रही है, जो वही की वही खड़ी है। चाक उसके ऊपर घूम रहा है। अगर कील भी चल जाए तो चाक गिर जाएगा। कील नही चलती है इसलिए चाक चल पाता है। कील भी चली कि अभी गाडी गई। फिर कोई विकास नहीं होगा। मेरा कहना है कि जो विकास हो रहा है वह किसी एक चीज के केन्द्र पर हो रहा है पूर्ण के चारो तरफ विकास का चक्र घूम रहा है और पूर्ण अपनी जगह खड़ा हुआ है। हो सकता है आपने कील पर ख्याल ही न किया हो, सिर्फ चाक के घूमने को ही देखा हो। लेकिन जिसने कील पर ख्याल कर लिया उसके लिए चाक का घूमना बेमानी हो जाता है। कबीर ने एक पक्ति लिखी है कि चलती हुई चक्की को देखकर कबीर रोने लगा। और उसने लौट कर अपने मित्रों से कहा कि बड़ा दुख मुझे हुआ क्योकि दो पाटों के बीच में जितने दाने मैंने पड़े देखे, सब चूर हो गए। और दो पाटों के बीच मे जो पड़ जाता है, वह चूर

हो जाता है। उसका लड़का कमाल हसने लगा। उसने कहा : ऐसा मत कहो। क्योंकि एक कील भी है दो चाको के बीच में और जो उसका सहारा पकड लेता है, वह कभी चूर होता ही नहीं।

इस पूरे अस्तित्व के विकासचक्र के बीच में भी एक कील है। उस कील को कोई परमात्मा कहे, धर्म कहे, आत्मा कहे, इससे कोई फर्क नही पड़ता। जो उस कील के निकट पहुंच जाता है वह उतना ही चाकों के बाहर हो जाता है। उस कील के तल पर कोई गति नही है। सब गति उसी के ऊपर ठहरी हुई है। महावीर जैसे व्यक्ति कील के निकट पहुंच गये हैं—जहा कोई लहर भी नहीं उठती, कोई तरग भी नही उठती, जहा कभी विकास नही होता, जहा कोई भी पहुंचे, अनुभव वही होगा। जहां गति नहीं, वहा कोई विकास नहीं। तो महावीर की अहिंसा मे कोई गति नही है, कोई प्रगति नही है, कोई विकास नही है।

चर्चा : चार
२६.६.६६ प्रातः

४

प्रश्न : महावीर के भी विरोधी थे। क्या उनके विरोध की चिन्ता महावीर को नहीं थी ? अहिंसक व्यक्ति के भी विरोधी पैदा होना अहिंसा के विषय में संदेह पैदा करता है।

उत्तर : ऐसी धारणा रही है कि जो अहिंसक है उसका कोई विरोधी नही होना चाहिए। क्योकि जिसके मन मे द्वेष, विरोध, घृणा, हिंसा नही है, उसके प्रति घृणा, हिंसा और द्वेष क्यो होना चाहिए ? ऊपर से देखे जाने पर यह बात बहुत सीधी और साफ मालूम पडती है। लेकिन जीवन ज्यादा जटिल है और जितने सरल सिद्धान्त होते हैं, जीवन उतना सरल नही है। सच तो यह है कि पूर्ण अहिंसक व्यक्ति के विरोधी पैदा होने की सम्भावना अधिक है। उसके कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हम सब हिंसक हैं तो हिंसक से हमारा ताल-मेल बैठ जाता है। अहिंसक व्यक्ति हमारे बीच एकदम अजनबी है उसे बरदाश्त करना भी मुश्किल है। बरदाश्त न करने के कई कारण हैं। पहली बात यह है कि अहिंसक व्यक्ति की मौजूदगी मे हम इतने ज्यादा निन्दित प्रतीत होने लगते हैं, इतने ज्यादा दीन-हीन, इतने ज्यादा क्षुद्र, कि हम निन्दित होने का बदला लिए बिना नहीं रह सकते। हम बदला लेंगे ही। पूर्ण अहिंसक व्यक्ति हिंसक व्यक्ति के मनो में अनजाने ही तीव्र बदले की भावना पैदा कर देता है। यह भावना हिंसा के कारण पैदा होती है। महावीर जैसे व्यक्ति को अनिवार्य है कि लाखों विरोधी मिल जाए। लेकिन इससे उनकी अहिंसा पर सन्देह नही होता। इससे खबर मिलती है कि आदमी इतना अजनबी था कि हम सब उसे स्वीकार नहीं कर सकते थे और जब हम उसे स्वीकार भी करेंगे तब हम उसे आदमी न रहने देंगे; हम उसे भगवान् बना देंगे। वह भी अस्वीकार की एक तरकीब है। पूजा कर सकते हैं उसकी। लेकिन चूंकि वह आदमी ही नही है इसलिए आदमियों को उससे अब क्या लेना-देना रह जाता है। पहले हम निन्दा करते हैं, विरोध करते हैं। अगर अहिंसक व्यक्ति भी हिंसा पर उतर आए तो हमारी और उसकी भाषा एक हो जाती है। तब तो

उपाय मिल जाता है। और अगर वह अपनी अहिंसा पर खड़ा रहे और हमारी हिंसा उसमें कोई फर्क न कर पाए तो फिर हमे कोई उपाय नहीं मिलता। हारे-थके, पराजित फिर हम उसे भगवान बना देते हैं। यह दूसरी तरकीब है आखिरी जिससे हम उसे मनुष्यजाति से बाहर निकाल देते हैं। फिर हमें उसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं रह जाती। फिर हम निश्चिन्त हो जाते हैं। यह भी समझना जरूरी है कि मैं कितने ही जोर से बोलू, और मेरे बोलने मे कितना ही प्रेम हो, कितनी ही आवाज हो, कितनी बड़ी ताकत हो लेकिन जो बहरा है उस तक मेरी आवाज नही पहुचेगी। यानी जब मैं बोलता हू तो दो बाते हैं: मेरा बोलना और आपका सुनना। अगर बहरे तक आवाज न पहुंचे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैं गूगा था। मेरे बोलने पर इसलिए शक नही किया जा सकता कि बहरे तक आवाज नहीं पहुची, इसलिए मैं गूगा था। महावीर के अहिंसक होने मे इसलिए शक नही हो सकता कि हिंसक चित्तो तक उनकी आवाज नही पहुच पाती। बहुत गहरे मे हम बहरे हैं। न हम सुनते हैं, न हम संवेदन करते हैं, न हम देखते हैं।

इसी सम्बन्ध मे एक प्रश्न और भी किसी ने पूछा है कि महावीर के प्रेम मे क्या कुछ कमी थी कि वह गोशाल को समझा न पाए। निश्चित ही, समझने मे प्रेम काम आता है और पूर्ण प्रेम समझाने की पूरी व्यवस्था करता है। लेकिन इससे यह सिद्ध नही होता कि पूर्ण प्रेमी समझा ही पाएगा। क्योंकि, दूसरी तरफ पूर्ण घृणा भी हो सकती है जो समझने को राजी ही न हो, पूर्ण बहरापन भी हो सकता है जो सुनने को राजी न हो। महावीर के प्रेम या अहिंसा पर इसलिए शक नही हो सकता कि वह दूसरे को नही समझा रहे हैं, या दूसरे को नही बदल पा रहे हैं, या दूसरे की हिंसा नही मिटा पा रहे हैं। इसके तो कई कारण हो सकते हैं। महावीर की अहिसा की जाच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जाच करना गलत है। सीधे महावीर को ही देखना उचित है। सूरज को जानना हो तो किसी अधे आदमी को माध्यम बनाकर जानना गलत है। हम अधे आदमी से जाकर पूछें कि सूरज है और वह कहे कि नही है तो हम कह सकते हैं कि कैसा सूरज है जो एक अंधे आदमी को भी दिखाई नही पड रहा है। अगर कोई अंधे से सूरज की जांच करने जाएगा तो सूरज के साथ अन्याय हो जाएगा। सूरज की जांच करनी हो तो सीधी करनी होगी, कोई मध्यस्थ बीच में लेना खतरनाक है क्योंकि तब जांच अधूरी हो जाएगी और मध्यस्थ महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। और मध्यस्थ के पास आखें

होगी तो सूरज हो जाएगा, धीमी आखें होंगी तो सूरज का प्रकाश धीमा हो जाएगा, अन्धा होगा तो सूरज नही होगा। सीधा ही देखना जरूरी है। महावीर को भी सीधा देखना जरूरी है। तभी हम पहचान सकते हैं कि उनकी अहिंसा और उनका प्रेम पूर्ण है या नही। लेकिन कई बार ऐसा होता है कि हमारी खुद की आखें इतनी कमजोर होती हैं कि सीधा देखना मुश्किल हो जाता है। तो हम परोक्ष देखते हैं, किसी और से पूछते हैं। खुद की आखो की इतनी ताकत भी नही कि सूरज के सामने सीधा देख लें। तो हम दूसरो से खबर जुटाने जाते हैं। और यही कारण है कि महावीर, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगो के सम्बन्ध मे हम सीधा देखने से बचते हैं। वहा भी प्रकाश बहुत गरिमा मे प्रकट होता है। वहा भी साधारण कमजोर आखें बद हो जाती हैं, देख नही पाती हैं। इसलिए हम बीच के गुरुओ को खोजते हैं, आचार्यों को खोजते हैं, टीकाकारो को खोजते हैं, व्याख्याकारो को खोजते हैं; उनके माध्यम से हम देखना चाहते है। गीता को हम सीधा नही देखना चाहते, टीकाकार से देखना चाहते हैं। हम आख को सीधा उठाने की कोशिश भी नही करते।

प्रश्न : महावीर ने जिन सिद्धान्तों की चर्चा की, जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकान्त—उनका प्रयोगात्मक रूप क्या हो सकता है ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में भी बड़ी भूल हुई है। पहली बात यह है कि सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य ये सिद्धान्त नही हैं। और इसलिए इनका सीधा प्रयोग करने की बात ही गलत है। इनका सीधा प्रयोग हो ही नही सकता। जैसे एक आदमी भूसा इकट्ठा करना चाहता हो तो उसे गेहू बोना पड़ता है खेत मे, भूसा नही। और अगर वह पागल आदमी भूसा पैदा करने के लिए भूसा ही बो दे तो जो पास का भूसा है वह भी खेत मे सड़ जाएगा, कुछ पैदा नहीं होगा। क्योंकि भूसा उप-उत्पत्ति (बाई प्रोडेक्ट) है, गेहूं के साथ पैदा होता है। गेहूं पैदा होता है तो उसके पीछे वह भी पैदा होता है। गेहू पैदा न हो तो अकेला भूसा पैदा करने का कोई उपाय ही नही है। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अस्तेय —ये सिद्धान्त नही हैं। यह उप-उत्पत्तिया है। जहा समाधि पैदा होती है वहां ये सब भूसे की तरह अपने आप पैदा हो जाते हैं और जो व्यक्ति इनको सीधा पैदा करने जाएगा वह भूसा की पैदावार करने में लगा हुआ है भूसे से। जो भूसा हमने डाला खेत में, वह भी सड़ जाएगा। भूसा तो पैदा होने वाला नहीं है। कई बार ऐसी भूल हो जाती है कि चूंकि गेहू और भूसा साथ-साथ पैदा होते हैं तो हम सोच सकते हैं कि गेहू को बोओ तो भूसा हो जाता है, भूसा

को बोम्रो तो गेहू हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं है। साथ-साथ वे जरूर दिखाई पडते हैं। लेकिन भूसा पीछे है, गेहू आगे है। गेहू आएगा तो भूसा आएगा। वह उसकी छाया की तरह आता है। अहिंसा, सत्य—सब छाया की तरह आते हैं समाधि के अनुभव मे। समाधि पहले है, ध्यान पहले है। ध्यान आया कि उसके पीछे छाया की तरह ये सब आते हैं। लेकिन हमे ध्यान दिखाई नही पडता। गेहू भी दिखाई नही पडता, दिखाई तो भूसा ही पडता है पहले। आखिर खेत मे भी गए तो गेहू छिपा है भूसे मे। दिखाई तो पडता है भूसा पहले, आता है भूसा पीछे। भूसे को उघाडें तो गेहू दिखाई पडेगा। भूसा गेहू की चारो तरफ से रक्षा करता है। समाधि आती है पहले, लेकिन दिखाई नही पडती पहले। महावीर के पास जाएगे तो सत्य, अहिंसा, अचौर्य दिखाई पड़ेंगे। समाधि दिखाई नहीं पडेगी। वह भूसा है। वह चारो तरफ से समाधि को घेरे हुए है। लेकिन समाधि आई है पहले। उसके पीछे छाया की तरह सब आया है। लेकिन हमको दिखाई पडेगा पहले। तो हमारे साथ एक मुश्किल हो जाएगी। हमे अहिंसा पहले दिखाई पडेगी। हम सोचेगे अहिंसा साधो, सत्य साधो, अस्तेय साधो, चोरी मत करो, ब्रह्मचर्य साधो, काम छोडो —हमे यह दिखाई पडेगा और हम भूसा बोने की दौड मे लग जाएगे। महावीर अहिंसा नही साध रहे हैं, क्योकि जो अहिंसा साधेगा वह करेगा क्या? वह सिर्फ हिंसा को दबाएगा और क्या कर सकता है? और दबी हुई हिंसा से कोई अहिंसक नहीं होता। दबी हुई हिसा से अगर कोई आदमी अहिंसा भी करेगा तो भी उसकी अहिंसा मे हिंसा के लक्षण होगे। हिंसा उसके पीछे खडी होगी। उसकी अहिंसा मे भी हिंसा का स्वर होगा, दबाव होगा। अगर किसी व्यक्ति ने काम को रोका और ब्रह्मचर्य साधा तो उसके ब्रह्मचर्य के भीतर अब्रह्मचर्य और व्यभिचार बैठा ही रहेगा। अब यह बडी उल्टी बात है। महावीर के भीतर है समाधि और बाहर है ब्रह्मचर्य। और अगर हमने ब्रह्मचर्य साधा तो ब्रह्मचर्य होगा बाहर और भीतर होगा व्यभिचार। समाधि भीतर होगी नही। तब हम चूक जाएगे, बिल्कुल ही चूक जाएगे। वह जो होने वाला था वह हमे कभी नही हो पाएगा बल्कि हम उल्टी स्थिति मे पहुच जाएगे। इसलिए मेरा जोर इस बात पर है कि महावीर जैसे व्यक्ति को अगर समझना हो तो बाहर से भीतर की तरफ समझना ही मत। भीतर से बाहर की तरफ समझना उसे। तो ही वह समझ मे आ सकता है, नही तो भूल हो जाएगी। तो मैं अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इनको सिद्धान्त नहीं कहता। इनका दो कौड़ी भी

मूल्य नहीं है समाधि के मुकाबले। उतना ही मूल्य है जितना भूसे का होता है। महावीर की जो उपलब्धि है, वह है समाधि। उपलब्धि की जो उप-उत्पत्तियां हैं, वे हैं सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। ये सिद्धान्त नहीं हैं। और न इनको सीधा प्रयोग करने की कोई जरूरत है। न कोई इनका सीधा प्रयोग कभी कर सकता है, न कभी किसी ने किया है। हा, करने की कोशिश की है बहुत लोगों ने। और कोशिश मे असफल हुए हैं, विकृत हुए हैं वे और कभी भी तट तक नही पहुचे हैं। इसलिए यह तो पूछो ही मत कि इनका प्रयोगात्मक रूप क्या है ? प्रयोगात्मक रूप तो ध्यान का है। प्रयोग तो करना है ध्यान का। ये आएगे छाया की तरह। आप यहां आए हैं तो मैं आपसे नही कहता कि आप अपनी छाया को भी साथ ले आए या आज आपकी छाया को भी निमत्रण दिया है वह भी आए। अगर मैं ऐसा कहूं तो आप कहेंगे : आप कैसी बातें करते हैं ? मैं आऊगा तो मेरी छाया आ ही जाएगी। उसे अलग से निमत्रण देने की कोई जरूरत नही है। लेकिन इससे उल्टा नही हो सकता कि आपकी छाया को मैं ले आऊ और उसके साथ आप आ जाएं। पहली बात तो यह है कि मैं आपकी छाया को ला ही नही सकता। और कोई धोखा खड़ा कर लू तो आप उससे नही आ जाएगे। इसलिए अहिंसा नही साधनी है, साधना है ध्यान। अहिंसा फलित होती है। वह ध्यान का सहज परिणाम है। जब ध्यान आता है तब आदमी हिंसक नही रह जाता। अहिंसा साधनी नहीं पड़ती, हिंसा तिरोहित हो जाती है, भीतर कुछ बचता नही। तो यह भी समझ लेने की जरूरत है कि अहिंसा, हिंसा का उल्टा नही, अहिंसा हिंसा का अभाव है। लेकिन हमे उल्टा दिखाई पडता है क्योकि हमारे भीतर होती है हिंसा, अहिंसा हम साधते हैं। तो वह उल्टी मालूम पड़ती है। अहिंसा साधनी है तो जो हिंसक करता है, वह हम न करें। ब्रह्मचर्य साधना है तो जो कामुक करता है, वह हम न करें ? बस उससे उल्टा करें। तो हमारे लिए काम से उल्टा होता है ब्रह्मचर्य, हिंसा से उल्टी होती है अहिंसा, चोरी से उल्टा होता है अचौर्य, असत्य से उल्टा होता है सत्य। जबकि ये बाते बिल्कुल गलत हैं। ये कोई उल्टे नही होते। ये अभाव हैं। अहिंसा उस दिन आती है जिस दिन हिंसा होती नही। हिंसा के न होने पर जो स्थिति रह जाती है, उसका नाम अहिंसा है। वह बिदाई है हिंसा की। जहां काम बिदा हो जाता है, वहां जो शेष रह जाता है उसका नाम है ब्रह्मचर्य। इसलिए ब्रह्मचर्य काम का उल्टा नहीं है। उल्टे में तो काम की मौजूदगी रहेगी ही। यह ध्यान में

रहे कि हर उल्टी चीज में अपने से विरोधी की मौजूदगी उपस्थित रहती है। वह कभी मिटती नही। अगर क्षमा क्रोध से उल्टी है तो क्रोध के भीतर क्षमा मौजूद है, क्षमा के भीतर क्रोध मौजूद है। अगर ब्रह्मचर्य काम से उल्टा है तो ऊपर ब्रह्मचर्य होगा भीतर काम होगा। क्योकि जो उल्टा है, विपरीत है, वह अपने दुश्मन के बिना जी नही सकता। वह उसके साथ ही जीता है। दोनो अनिवार्य रूप से जुडे हुए हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन के जो परम सत्य हैं, जो परम अनुभूतिया हैं, वे अभाव की अनुभूतिया है—विरोध की नही। जैसे ही समाधि फलित होती है वैसे ही कुछ चीजें बिदा हो जाती है। हिंसा बिदा हो जाती है क्योकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का सम्बन्ध नही जुडता। मेरे देखे ये लक्षण हैं। अगर एक आदमी हिंसक है, अब्रह्मचारी है तो वह इस बात का लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नही हुआ। इसलिए मैं अब्रह्मचर्य को, काम को, हिंसा को, चोरी को लक्षण मानता हू भीतर की स्थिति का। और जो व्यक्ति लक्षण को बदलने मे लगेगा, वह वैसे ही पागल है जैसे किसी को बुखार आ गया है, शरीर गर्म हुआ और हम उसका शरीर ठडा करने मे लग गए। गर्म होना सिर्फ लक्षण है कि भीतर कही कोई बीमारी है, जिस बीमारी मे शरीर के तत्त्व सघर्ष मे पड गए है, सघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है और अगर वैद्य इस गर्मी को ही ठडक देने मे लग गया, ठडे पानी से नहलाने मे लग गया तो बीमारी के मिटाने की सम्भावना कम है, बीमारी के बढ जाने की सम्भावना ज्यादा है। तो चिकित्सक गर्मी देखकर सिर्फ पहचानता है कि भीतर बीमारी है, बीमारी को मिटाने लगता है, गर्मी बिदा हो जाती है। इसी तरह हिंसक चित्तवृत्ति, कामुक चित्तवृत्ति भीतर मूर्च्छा की सूचक है, निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तन्द्रा की, नशे की। उस नशे की हालत को भीतर से तोड दे तो बाहर से हिंसा बिदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी। इसलिए इन सिद्धान्तो के सीधे प्रयोग की बात उचित नही है और जिन लोगो ने भी इन सिद्धान्तो के सीधे प्रयोग का विचार किया है, वे केवल दमन, आत्म-उत्पीडन और एक तरह की अपने को सताने की लम्बी प्रक्रिया मे उतर गए हैं जिसके परिणाम मे कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध होने से रही, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न : आत्मा परमात्मा से बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न परिवर्तन में कुछ है तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरों को साधु बनने

का उपदेश क्यों देते रहे ?

उत्तर : यह बात भी बहुत मजेदार है । अक्सर हमे लगता है कि महावीर साधु बने और दूसरो को भी साधु बनने के लिए कहते रहे । यह हमे इसलिए ऐसा लगता है क्योकि हम असाधु है । और अगर हमे साधु होना हो तो साधु बनना पड़ेगा । जबकि सच्चाई यह है कि साधुता आती है, बनना नही पड़ता । और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठ, मिथ्या, आडम्बर होगी ।

एक युवक एक फकीर के पास गया और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधुता उपलब्ध करू, मुझे बताए ? तो उस फकीर ने कहा कि दो तरह की साधुताए हैं। साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात । साधु बनना एक अभिनय की बात है । तुम जो हो, रहे आओ । कपडे बदलो, वेष बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदलो, तुम साधु बन जाओगे । साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है क्योकि तब वेष बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा तब तो तुम ही बदलोगे । महावीर साधु बने, यह अत्यन्त गल्त शब्दो का प्रयोग है । बनना होता है चेष्टा से । महावीर साधु हुए आत्म-परिवर्तन से । अगर महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो तो भी बात गल्त है । महावीर ने किसी को भी साधु बनने को नही कहा । महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई है । प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं लेकिन साधु नही बन सकते हैं । साधुता तो आत्मपरिवर्तन है पूरा का पूरा । तो साधुता कोई ऐसी चीज नही है कि कल एक आदमी असाधु था, आज साधु हो गया ; आज दीक्षा ले ली, वस्त्र बदले, मुहपट्टी बाधी और साधु हो गया । कल तक असाधु था, आज साधु हो गया । और कल फिर मुह-पट्टी फेक दी, वस्त्र बदल लिए फिर असाधु हो गया । यह मुह-पट्टी, वस्त्र और यह सब का सब जो बाह्य आडम्बर है, अगर किसी को साधु बनाता है तो बड़ी आसान बात है । कोई साधु बन सकता है, फिर असाधु बन सकता है । लेकिन कभी सुना है ऐसा कि कोई साधु हो गया हो, और फिर असाधु हो जाए । क्योकि जिसने साधुता का आनन्द जाना है, वह कैसे असाधु होने के दुख मे उतरेगा । असल मे वह साधु हुआ ही नही था, सिर्फ वस्त्र ही बदले थे, सिर्फ वेष ही बदला था, सिर्फ ढोग बदला था, सिर्फ अभिनय बदला था । अभिनय फिर बदला जा सकता है । जो हमारे ऊपर की बदलाहट है वह हमारे भीतर की बदलाहट नही है । महावीर साधु नही बने

क्योंकि जो साधु बना है, वह कल असाधु बन सकता है। शायद महावीर को पता ही नही चला होगा कि वह साधु हो गए हैं। होने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त धीमी, शान्त और मौन है। बनने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त घोषणापूर्ण है। बैंड-बाजे के साथ बनना होता है। बनने की प्रक्रिया भीड़-भाड़ के साथ है, जुलूस के साथ है। बनने की प्रक्रिया और है, होने की प्रक्रिया और है। रात मे कली खिल जाती है, फूल बन जाती है, शायद पौधे को भी पता न चलता होगा। कब एक छोटा-सा अकुर बड़ा पत्ता बन जाता है, शायद पत्ते को भी पता न चलता होगा। आप कब बच्चे थे और कब जवान हो गये, कब जवान थे और कब बूढे हो गए, कब जन्मे थे, और कब मर जाएगे, पता चलेगा क्या? यह सब चुपचाप हो रहा है। जीवन चुपचाप काम कर रहा है। ठीक ऐसे ही अगर कोई अपनी असाधुता को समझता चला जाए, तो वह एक दिन हैरान होगा कि कब वह साधु हो गया, किस क्षण बदल गया। वेष वही होता है, वस्त्र वही होते हैं, सब वही होता है। लेकिन यह घटना चुपचाप घट जाती है। महावीर न कभी साधु बने और न महावीर ने कभी किसी को कहा कि तुम साधु बनो। हा, महावीर को देखने वाले लोग साधु बने और उन्होने दूसरो को यह समझाया कि साधु बनो। बस देखने मे भूल हो जाती है। क्योकि देखने मेंह मे क्रमिक विकास दिखाई नही पडता, सिर्फ बाहर की घटनाए दिखाई पडती हैं कि बाहर कल आदमी ऐसा था आज ऐसा हो गया। भीतर का, बीच का सेतु छूट जाता है। वही मूल्यवान है।

कुछ वर्ष हुए एक मुसलमान वकील मुझे मिलने आए और उन्होने मुझे कहा – कई महीनो से आना चाहता था लेकिन नही आया। चित्त अशान्त था। पूछना चाहता था आपसे कि कैसे शात हो जाऊ। लेकिन यह डर लगता था कि आप कहेंगे कि मास खाना छोडो, चोरी करना छोडो, बेईमानी छोड़ो, शराब मत पिओ, जुआ मत खेलो—और ये सब मेरे पीछे लगे हैं। जब भी किसी साधु के पास गया उसने यही कहा कि यह सब छोडो तभी शात हो सकते हो। ये मुझसे छूटते नही, फिर मैंने साधुओ के पास जाना ही बद कर दिया। इसलिए मैं आपके पास नही आया। फिर मैंने कहा : आज आप कैसे आए? उसने कहा, आज किसी मित्र के घर खाना खाने गया था। उन्होने मुझसे कहा कि आप कहते हैं कि कुछ छोडो ही मत। तो मुझे लगा कि इस आदमी के पास जाना चाहिए। आप कुछ भी छोड़ने को नही कहते : शराब पी सकता हू, जुआ भी खेल सकता हूं। मैंने कहा मुझे तुम्हारे शराब और जुए से क्या

मतलब। यह तुम्हारा काम है, तुम जानो। तो उसने कहा कि फिर आपसे मेरा मेल पड़ सकता है। फिर मैं क्या करूं? अशांत हूं, दुखी हूं। मैंने कहा कि आप ध्यान का छोटा-सा प्रयोग करें। आत्म-स्मरण का प्रयोग शुरू करें। आधा घंटा रोज बैठकर अकेले स्वय ही रह जाए, सब भूल जाए। उतनी देर मन मे जुआ न खेलें। बाहर के जुए से मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मन मे शराब न पिए, बाहर की शराब से मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मांस न खाए, बस इतना बहुत है। उन्होने कहा कि यह हो सकता है। आधा घंटा बचा सकता हू। फिर छः महीनो के बाद वह आदमी वापस आया। उसकी चाल बदल गई थी। वह आदमी बदल गया था। उसने मुझे आकर कहा कि आपने मुझे धोखा दिया। मैं क्यो आपको धोखा दू? वह आधा घटा तो ठीक था लेकिन मेरे साढे तेईस घटे दिक्कत में पड जाते हैं। कल मैंने शराब पी और मुझे वमन हो गया उसी वक्त। क्योकि मेरा पूरा मन इन्कार कर रहा था। रिश्वत लेने मे एकदम हाथ खिंच गए पीछे जैसे कोई जोर से कह रहा हो कि तुम क्या कर रहे हो? क्योकि उस आधा घटा मे जो शांति और आनन्द मुझे मिल रहा है, वह अब मैं चाहता हू कि चौबीस घंटे मे फैल जाए। मैंने कहा वह तुम्हारा काम है। छः महीने बाद वह आदमी दुबारा आया और उसने कहा कि जो आनन्द मैंने उस आधे घटे मे पाया वह सारे जीवन मे नही पाया। अब मैं मास नही खा सकता। अब मुझे तकलीफ होती है यह सोचकर कि मैं इतने दिन कितना सवेदनहीन था कि मास खाता रहा। आज मैं सोच भी नही पाता कि मैं इतने वर्षों तक कैसे शराब पीता रहा? मैंने कहा अब क्या दिक्कत है शराब पीने मे? उसने मुझे कहा कि दिक्कत बहुत साफ हो गई है। पहले मैं अशात था शराब पीता था, अब मैं शात हू शराब नही पीता हू। फिर मैंने कहा कि यह तुम्हारी मर्जी है। अब जो तुम समझो करना।

महावीर का ध्यान ऐसा है कि जो उस ध्यान से गुजरेगा वह मांसाहार नही कर सकता है। महावीर कहते नही किसी को कि मासाहार मत करो। वह ध्यान ऐसा है कि आप उससे गुजरेंगे तो मासाहार नही कर सकते। इतने सवेदनशील हो जाएगे आप कि ये बात मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ेगी, जड़तापूर्ण मालूम पड़ेगी कि भोजन के लिए किसी का प्राण लिया जाए। महावीर कहते हैं कि जो ध्यान से गुजरेगा वह शराब नही पी सकता है क्योंकि वह ध्यान इतने जागरण में, इतने आनन्द मे ले जाता है कि शराब पीना उस सबको नष्ट करना होगा। लेकिन हमारी हालत उल्टी है। हम पकडे हुए हैं कि मांस

मत खाओ, शराब मत पियो, यह मत करो, वह मत करो, बस फिर जो महावीर को है, आपको हो जाएगा। मगर कभी नहीं होनेवाला है यह। क्योंकि आप गल्त दिशा की ओर चल पड़े हैं। आप भूसा बो रहे हैं, गेहूं का आपको पता ही नहीं है।

प्रश्न : महावीर समानता के समर्थक थे। फिर भी उनके संघ में साध्वी-संघ उपेक्षित क्यों रहा ?

उत्तर : यह बहुत विचारणीय बात है। महावीर के मन में स्त्री-पुरुष के बीच असमानता का कोई भाव नहीं है। समानता की पकड इतनी गहरी है कि मनुष्य और पशु मे भी, मनुष्य और पौधे मे भी वह असमानता का भाव नही रखते। लेकिन फिर भी स्त्री और पुरुष के बीच साधुसघ मे उन्होंने कुछ भेद किया है और उसके कुछ कारण है। और वह कारण अब तक नही समझे जा सके हैं। न समझे जाने का रहस्य आपको ख्याल मे आ सकता है। महावीर स्त्री के विरोध मे नहीं हैं, स्त्रैणता के विरोधी हैं। और इसको नही समझा जा सका। महावीर पुरुष के पक्ष मे नहीं हैं लेकिन पुरुष होने का एक गुण है, उसके पक्ष मे है। इन बातो को हम समझेंगे तो ख्याल मे आ जाएगा। कई पुरुष है जो स्त्रैण हैं, कई स्त्रिया है जो पुरुष हैं। स्त्रैणता का अर्थ है निष्क्रियता। पुरुषत्व का अर्थ है सक्रियता। पुरुष आक्रामक है। स्त्री अगर प्रेम भी करे तो भी आक्रमण नही करती। वह जाकर किसी को पकड़ नहीं लेती कि मुझे तुमसे प्रेम है। प्रेम भी करे तो चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करती है कि तुम आओ और उससे कहो कि 'मैं तुम्हे प्रेम करता हू।' स्त्री आक्रामक नही है। स्त्रैण चित्त आक्रामक नहीं है। इससे स्त्री का ही सम्बन्ध नही है। बहुत पुरुष ऐसे हैं जो इसी भाति प्रतीक्षा करेंगे। महावीर का कहना है—जैसा मैंने पीछे समझाया कि महावीर की पूरी साधना सकल्प की, श्रम की साधना है—कि जिसे सत्य पाना है उसे यात्रा पर निकलना होगा, उसे खोज मे जाना होगा, उसे जूझना पडेगा, उसे चुनौती, साहस, सघर्ष मे उतरना पडेगा। ऐसे बैठ कर सत्य नही मिल जाएगा। तो महावीर कहते हैं कि स्त्री को भी अगर सत्य पाना है तो पुरुष होना पडेगा। इस बात को बहुत गल्त समझा गया। ऐसा समझा गया कि स्त्री योनि से मोक्ष असम्भव है। स्त्री को भी एक जन्म लेना पडेगा पुरुष का, फिर पुरुषयोनि से मोक्ष हो सकेगा। बात बिल्कुल दूसरी है। पुरुषयोनि से ही मोक्ष हो सकता है महावीर के मार्ग पर। लेकिन पुरुष योनि का मतलब पुरुष हो जाना नही है शरीर से,

पुरुष योनि का मतलब है निष्क्रियता छोड़ देना। एक स्त्री है। उसके मन को सहज यही लगता है कि वह कृष्ण का गीत गाए और कहे तुम्ही ले चलो जहा ले चलना हो। तुम्ही हो मार्ग, तुम्ही हो सहारे, मैं तो कुछ भी नही हू, तुम्ही हो सब, अब जहां चाहो मुझे ले जाओ।' जितना भक्तिमार्ग है वह सब स्त्रैण की उत्पत्ति है—स्त्री की नही। जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के कधे पर हाथ रख ले, अपने प्रेमी के हाथ मे हाथ दे दे और प्रेमी जहा ले जाए, वहा चली जाए। स्त्रैण चित्त कह रहा है कि कोई ले जाए तो मैं जाऊ, कोई पहुचाए तो मैं पहुचू, मैं समर्पण कर सकती हू। जैसे, एक लता है। वह सीधी खड़ी नही हो पाती। किसी वृक्ष का सहारा मिल जाए तो वह खड़ी हो सकती है। लता को वृक्ष का सहारा चाहिए, स्त्री सहारा मागती है और महावीर सहारे के एकदम खिलाफ हैं। वह कहते हैं कि सहारा मागा कि तुम परतत्र हुए। सहारा मागो ही मत, बिल्कुल बेसहारा हो जाओ। तुमने सहारा मागा कि तुम पगु हुए। सहारा भगवान का भी मत मागना। सहारा मांगना ही दीन हो जाना है। तो महावीर कहते हैं कि सहारा मागना ही मत। यह अत्यन्त पुरुषमार्ग है। इस पुरुषमार्ग पर स्त्रैण चित्त की गति नही है। लेकिन शरीर से कोई स्त्री हो, किन्तु उसमे पौरुष हो तो गति हो सकती है। एक तीर्थंकर हैं जैनो के मल्लीबाई। वह स्त्री है और दिगम्बरो ने उसे मल्लीनाथ ही कहा है। उसे स्त्री कहना बेमानी है। क्योंकि वह ठीक पुरुष जैसी बेसहारा खडे होने की हिम्मत रख सकी। उसने कोई सहारा नही मागा। इसलिए स्त्री कैसी? मल्लीबाई कहा ही नही दिगम्बरो ने। उन्होने कहा मल्लीनाथ। पीछे झगडा खडा हो गया कि मल्लीबाई स्त्री थी कि पुरुष। दिगम्बर कहते हैं: पुरुष, श्वेताम्बर कहते हैं: 'स्त्री'। दोनो ठीक कहते है। मल्लीबाई स्त्री थी। लेकिन उसके चित्त की दशा स्त्रैण नही है। यहा काश्मीर मे एक स्त्री हुई . लल्ला। काश्मीर के लोग कहते हैं कि हम दो ही नाम पहचानते हैं अल्ला और लल्ला। मगर लल्ला को स्त्री कहना मुश्किल है। इतिहास मे वह अकेली ही स्त्री है जो नग्न रही। महावीर नग्न रहे वह ठीक है। पुरुष नग्न रह सकता है क्योकि वह दूसरे की फिक्र ही नही करता। स्त्री चौबीस घंटे दूसरे की फिक्र मे है। चाहे वह पति हो, चाहे प्रेमी हो, चाहे समाज हो। महावीर नग्न खड़े हो गए, यह कोई बड़ी बात न थी। लेकिन लल्ला नग्न खड़ी हो गई, यह बड़ी भारी बात है। उसके पास पुरुषचित्त है। वह जीवन भर नग्न रही।

गांधी जी ठहरे हुए थे रवीन्द्रनाथ के पास, शांतिनिकेतन मे। सांझ दोनो

घूमने जाने वाले थे। तो रवीन्द्रनाथ ने कहा रुकें दो मिनट, मैं जरा बाल सवार आऊं। वह भीतर गए। एक तो गांधीजी को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ कि बुढ़ापे मे, बाल सवारने की इतनी चिन्ता क्यो। पर रवीन्द्रनाथ थे। और कोई होता तो शायद गांधी जी उसको वही कुछ कहते भी। एकदम से कुछ कहा भी नही जा सका। रवीन्द्रनाथ भीतर चले गए। दो मिनट क्या, दस मिनट बीत गए। गांधी खिड़की से झाक रहे है। रवीन्द्र आइने के सामने खड़े हैं और बाल सवारे चले जा रहे है। वह खो ही गए हैं आइने मे। पन्द्रह मिनट बीत गये तब बरदाश्त के बाहर हो गया। गान्धी जी भीतर गए और कहा कि क्या कर रहे हैं आप। रवीन्द्र ने चौंक कर देखा और कहा अरे! मैं भूल गया। चलता हू। चलने लगे हैं तो रास्ते मे गांधीजी ने उनसे कहा कि मुझे बड़ी हैरानी होती है कि इस उम्र मे आप बाल सवारते हैं। रवीन्द्र ने कहा कि जब जवान था तब बिना सवारे भी चल जाता था। जब से बूढ़ा हुआ हू तब से बहुत संवारना पड़ता है। बड़ी चिन्ता मन मे लगती है कि किसी को देखकर कैसा लगूगा। और मुझे तो ऐसा भी लगता है कि अगर मैं कुरूप हू तो यह हिंसा है क्योंकि दूसरे की आख को दुख होता है तो मुझे सुन्दर होना चाहिए। मैं जितना हो सके सुन्दर बनने की कोशिश करता हू। रवीन्द्रनाथ पुरुष हैं मगर उनके पास एक स्त्रैण चित्त है। अगर कोई हिम्मत करे तो जैसा मल्लीबाई को मल्लीनाथ कहा है, ऐसा रवीन्द्रनाथ को रवीन्द्रबाई कहने लगे। वह जो चित्त है भीतर गहरे मे, वह एकदम स्त्री का है। शायद सभी कवियो के पास स्त्रैण चित्त होता है। असल मे शायद काव्य का जन्म ही नही हो सकता पुरुष-चित्त से। वह जो काव्य का जगत है, वही शायद स्त्रीचित्त का जन्म है। इसलिए दुनिया मे जितना विज्ञान बढ़ता जा रहा है, काव्य पीछे हटता जा रहा है। विज्ञान पुरुष चित्त की देन है और पुरुष जीतता चला जाएगा तो काव्य पीछे हटता चला जाएगा। स्त्री का पूरा चित्त काव्य का है, स्वप्न का है, कल्पना का है। वह निष्क्रिय है, कुछ कर नही सकता, सिर्फ कल्पना कर सकता है। असल मे कवि का मतलब है निष्क्रिय चित्त। वह कल्पना कर सकता है, और कुछ भी नही कर सकता। वह कई महल बना सकता है लेकिन कल्पना मे। जो बैठे-बैठे बन सकते हैं, वही महल बना सकता है। खड़े होकर और गिट्टी तोड़ कर और पत्थर जमा कर जो महल बनाने पड़ते हैं, वह उसके वश की बात नहीं है। वह बैठकर शब्दो के महल बना सकता है। रवीन्द्र कहते हैं कि मैंने क्या गाया? जब मैं नहीं होता हू तब परमात्मा ही उतर आता है और

मुझसे गाता है। अब यह जो निष्क्रिय चित्त है इसमें कुछ उतरता है, इससे बहता है। यह प्रतीक्षारत है, राह देखता है, अवसर खोजता है लेकिन अपनी जगह चुप और मौन है। तो सभी कविचित्त स्त्रीचित्त होंगे।

महावीर का यह जो जोर है, इसके पीछे कारण है। यह स्त्री और पुरुष के बीच नीचे-ऊंचे की बात नहीं है। यह स्त्रैण चित्त और पुरुषचित्त क्या कर सकते हैं, इस बात के सम्बन्ध मे विचार है। इसलिए महावीर कहते हैं स्त्री का मोक्ष नहीं है। इसका मतलब है स्त्रैण चित्त को मोक्ष नही है। स्त्री मोक्ष जा सकती है लेकिन चित्त पुरुष का होना चाहिए—महावीर के मार्ग से। अगर मीरा के मार्ग से कोई जाना चाहे तो मीरा कहेगी पुरुष को कोई मोक्ष नही है। मीरा के मार्ग से जाना हो तो स्त्रीचित्त ही चाहिए। उस मार्ग से पुरुष के लिए कोई मुक्ति नहीं है क्योंकि पुरुष इस तरह की बातें नही सोच सकता जैसा मीरा सोच सकती है। और अगर कभी पुरुष सोचता तो वह स्त्रैण हो जाता। जब कबीर या सूर कृष्ण के प्रेम मे पागल हो जाते हैं तो सोचते क्या हैं? फौरन स्त्रैण चित्त की बातें शुरू हो जाती हैं। कबीर कहते हैं "मैं तो राम की दुलहनिया"—मैं राम की दुलहन हू। वे कहेंगे कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हू सेज पर तुम्हारी, तुम कब आओगे? स्त्री का भाव शुरू हो जाएगा। जगत मे दो ही तरह के चित्त हैं—स्त्रीचित्त और पुरुषचित्त। इसलिए बहुत गहरे मे मुक्ति के दो ही मार्ग हैं। स्त्री का और पुरुष का। महावीर का मार्ग पुरुष का मार्ग है, इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

प्रश्न : ज्यादातर लोग तो मिश्रित होते हैं?

उत्तर : हा, उनके लिए बीच का कोई मार्ग होता है। मार्ग बहुत हैं लेकिन मौलिक रूप से दो ही मूल मार्ग होंगे क्योकि मनुष्य जीवन मे पुरुष और स्त्री दो अति छोर हैं, जहां दो तरह का अस्तित्व होता है। अधिक लोग बीच मे होते हैं, वे बीच का रास्ता पकड़ते हैं जिसमें वे ध्यान भी करते हैं और पूजा भी करते हैं। अब यह मजा है कि ध्यान पुरुषमार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री-मार्ग का हिस्सा है। दोनो के घोल-मेल से मुक्त होना बहुत मुश्किल है, क्योकि वहां कभी हम थोड़ा इस रास्ते पर जाते हैं, थोड़ा उस रास्ते पर जाते हैं। इसलिए चित्त का विश्लेषण जरूरी है कि किस व्यक्ति के लिए कौन-सा मार्ग उचित है? महावीर के मार्ग पर स्त्रियां उपेक्षित हैं, ऐसा नहीं है। बल्कि स्त्रीचित्त उपेक्षित है जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुषचित्त उपेक्षित है। एक

बार मीरा गई वृन्दावन। वहा एक बडा साधु है, पुजारी है, सन्त है। वह उसके दर्शन के लिए उसके द्वार पर खडी हो गई। उसने खबर भेजी कि मैं तो स्त्रियो को देखता नही, मिलता नही। मीरा ने उत्तर भिजवाया कि मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत मे और वह है कृष्ण। मुझे पता न था कि तुम दूसरे पुरुष भी हो। वह भी था कृष्ण का भक्त। वह पुजारी भागा हुआ आया और कहा कि माफ करना, भूल हो गई क्योकि कृष्ण के साथ सखियों के सिवाय और किसी का निर्वाह नही। वहा राधा जैसा स्त्री-चित्त चाहिए—पूर्ण समर्पित, और प्रतीक्षा करता हुआ।

वह भी एक मार्ग है। अगर कोई पूर्ण रूप से उस तरफ जाए तो उधर से भी उपलब्धि हो सकती है। लेकिन महावीर का वह मार्ग नहीं है। महावीर के मार्ग पर स्त्रीचित्त उपेक्षित होगा ही। मगर वह स्त्री की उपेक्षा नही है। एक साध्वी ने पूछा है कि महावीर के मार्ग पर यह बडी बेबूझ बात है कि एक दिन का दीक्षित साधु हो, सत्तर वर्ष की दीक्षित साध्वी हो, तो भी साध्वी साधु को प्रणाम करेगी। यह पुरुष के लिए इतना सम्मान और स्त्री के लिए इतना अपमान है जबकि महावीर समानता का ख्याल रखते हैं। एक तो जो मैंने पूरी बात कही वह ख्याल मे रहे। महावीर के मन मे स्त्रीचित्त यानी स्त्रैणता के लिए कोई जगह नही है। एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि वृद्धा साध्वी एक दिन के दीक्षित जवान साधु को नमस्कार करे। स्वभावत लगेगा कि पुरुष को बहुत सम्मान दे दिया गया, स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया। बात उल्टी है। स्त्रियो से संयम की सम्भावना ज्यादा है सदा पुरुषो के बजाय। क्योकि पुरुष आक्रामक है, उसका चित्त आक्रामक है। स्त्री को जब तक कोई असयम मे न ले जाए, वह अपने से जाने वाली नही है, चाहे मोक्ष की तरफ, चाहे नरक की तरफ। हर चीज में—चाहे पाप हो चाहे पुण्य, चाहे मोक्ष हो चाहे नरक, चाहे अधकार हो चाहे प्रकाश, पुरुष पहल करने वाला है। ऐसा बहुत कम मौका है कि कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को पाप मे ले गई हो। कभी ले जाए तो उसका कारण यही होगा कि उसके पास पुरुषचित्त है। महावीर यहा बहुत अद्भुत मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दे रहे हैं जो कि फ्रायड के पहले किसी आदमी ने कभी दिया ही नही था। लेकिन सूझ इतनी गहरी है कि एकदम से दिखाई नही पड़ती। चूंकि पुरुष ही पाप मे ले जा सकता है, स्त्री कभी नही, इसलिए महावीर ने बड़ा सुगम उपाय किया है कि स्त्री पुरुष को आदर दे। और स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है उसके अहकार को कठिनाई हो जाती है

उस स्त्री को पाप की ओर ले जाने में। एक स्त्री आपको आदर दे, पूज्य माने, सिर रख दे पैरों मे, तो आपके अहकार को कठिनाई हो जाती है अब इसको नीचे ले जाने मे। इसलिए महावीर ने कहा कि कितनी ही वृद्धा स्त्री हो, पुरुष को आदर दे, उसका पैर छू ले, ताकि उसके अहंकार को कठिनाई हो जाए कि वह किसी स्त्री को पाप मे ले जाने की कल्पना भी न कर सके। यहां अगर ध्यान से देखा जाए तो मालूम होगा झुकती तो स्त्री है किन्तु वस्तुतः पुरुष का अनादर हो गया है इस घटना मे और स्त्री का पूर्ण आदर हो गया है। लेकिन यह देखना जरा मुश्किल मामला है। यह भी ध्यान रखें कि महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्विया थी। यह अनुपात हमेशा ऐसा ही रहा है। और साध्विया जितनी साध्विया होती है साधु उतने साधु नही होते हैं। चूकि वे पहल नही करती किसी भी काम मे, इसलिए वे जहा हैं, वही रुक जाती हैं। अगर स्त्री को काम-वासना मे दीक्षित न किया जाए तो वह जीवन भर ब्रह्मचर्य मे रह सकती है। स्त्री के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। पुरुष के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। स्त्री को काम-वासना मे भी दीक्षित करना पडता है, धर्म-साधना मे भी दीक्षित करना पडता है, वह पहल लेती ही नही। इसलिए निर्दोष लड़किया मिल जाती है, निर्दोष लडके मिलना बहुत मुश्किल हैं। कुवारी लडकिया मिल जाती है, कुवारे लडके मुश्किल से होते हैं। लडकियो पर जो हमे इतने नियत्रण और बन्धन मालूम पडते हैं वे असल मे लड़कियो पर नहीं है। लडकियो को जो घर मे रोका गया है, लडको से नही मिलने दिया है, वह इसलिए नही कि लड़कियो पर अविश्वास है। उसका कारण यह है कि लड़को पर विश्वास नही है। वे पहल दे सकते हैं पाप की। और चूकि लडकिया कोई पहल नही दे सकती कभी भी, महावीर ने व्यवस्था की कि हर स्थिति मे साध्वी साधु को आदर दे। इसमे पुरुष के अहकार की भी बड़ी तृप्ति हुई। साधुओ ने समझा होगा हमारा बडा सम्मान हुआ। वे आज भी यही समझ रहे हैं।

प्रश्न : नमस्कार करने वाले का अहंकार टूटता है या जिसको नमस्कार किया जाता है, उसका अहंकार टूटता है ?

उत्तर : यहा अहंकार तोड़ने का मतलब नही है। यहां महावीर पुरुष का अहंकार पूरी तरह सुरक्षित कर रहे है। साध्वी पुरुष को नमस्कार करे इसमें साध्वी का अहकार टूटेगा, पुरुष का मजबूत होगा। और जब पुरुष को एक बार

पता चल जाए कि एक स्त्री ने मुझे आदर दिया तो वह उस स्त्री को पाप में नहीं ले जाएगा। अगर एक स्त्री आपके पैर छू ले तो आप इस स्त्री को काम की दिशा में ले जाने में एकदम असमर्थ हो जाएंगे। इसलिए कि आपके अहंकार को बड़ी बाधा हो जाएगी। अब आप आदर की रक्षा करेंगे। लेकिन स्त्री के मामले में उल्टी बात है। अगर यह कहा जाए कि स्त्री को पुरुष आदर दे, उसके पैर छुए, तो इसमे भी समझने जैसा मामला है। स्त्री का चाहे पैर छुओ, चाहे कोई शरीर का अंग छुओ, स्त्री की कामुकता उसके पूरे शरीर पर व्याप्त है। पुरुष की कामुकता सिर्फ उसके काम-केन्द्र के आस-पास है, इसलिए पुरुष को सिर्फ सम्भोग से आनन्द आता है, स्त्री को सिर्फ सम्भोग से आनन्द नहीं आता जब तक कि वह उसके पूरे शरीर के साथ न खेले, और उसके पूरे शरीर को न जगाए। अगर पुरुष स्त्री के पैर भी छू ले तो भी स्त्री मे काम की सम्भावना जागृत हो सकती है। उसका पूरा शरीर कामुक है। और यह शुरूआत आगे बढ़ सकती है। पुरुष को अगर पहले ही झुका दिया जाए तो उसको और झुकने मे डर नहीं रहा। अब वह स्त्री को किसी भी पाप-मार्ग मे दीक्षित कर सकता है। इसलिए महावीर की बात तो बहुत अद्भुत है, आमतौर से यही समझा जाता है कि स्त्री को अपमानित कर रहे हैं, पुरुष को सम्मानित कर रहे हैं। मामला बिल्कुल ही उल्टा है। पुरुष पूरी तरह अपमानित हुआ है इस घटना मे और स्त्री पूरी तरह सम्मानित हुई है।

प्रश्न : ऐसी व्याख्या किसी और ने भी की है क्या ?

उत्तर : नहीं, अब तक तो मुझे ख्याल मे नहीं है कि किसी ने की है।

प्रश्न अभी तक उन्होंने कैसी व्याख्या की है इसकी ?

उत्तर . अभी तक की व्याख्या यही है कि स्त्री नीच योनि है। पुरुष ऊंची योनि है, इसलिए पुरुषयोनि को वह नमस्कार करे। लेकिन मैं इस व्याख्या को बिल्कुल ही गल्त मानता हू।

प्रश्न : महावीर के जमाने में बहुत से लोग साधु और साध्वियां हो गये। ध्यान में तो पीछे गये होंगे। लेकिन पहले घर-बार छोड़कर उनके साथ क्यों हो गए ? आप तो ऐसी सलाह देते नहीं हैं ?

उत्तर : महावीर ने मनुष्य के चार वर्गीकरण किए है—श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। महावीर की साधना-पद्धति श्रावक से शुरू होती है या श्राविका से। एकदम से कोई साधु नहीं हो सकता। महावीर की साधना का पूरा व्यवस्थाक्रम है। पहले उसे श्रावक होना होगा। साधना, ध्यान और सामायिक

श्रावक की है। जब वह उससे गुजर जाए, जब उसकी उतनी उपलब्धि हो जाए फिर वह साधु के जीवन मे प्रवेश कर सकता है। महावीर सीधे उत्सुक नहीं हैं किसी को भी साधु की दीक्षा देने को। श्रावक वह भूमिका है जहां साधु का जन्म हो जाए तो फिर वह जा सकता है। और तब भी उनका आग्रह नही है कि वह जाए ही। वह श्रावक रहकर भी मोक्ष पा सकता है। सिर्फ महावीर ने ही यह कहने की हिम्मत की है। साधु होना अनिवार्य नही है बीच मे। मान लीजिए कि आप गहरे ध्यान मे गए और आप को वस्त्र पहनना ठीक मालूम पड़ता है तो आप जारी रखें। और कही आपको ऐसा भीतर लगने लगे कि छोड़ दें, कोई अर्थ नही है इनमे तो इसको भी क्यो रोकें, छोड दें। यानी महावीर की आस्था है कि एक सहज भाव मे अगर एक व्यक्ति को लगता है कि वह शान्त हुआ, ध्यानस्थ हुआ, घर मे रहकर ही तो ठीक है। अगर उसे लगता है कि यह व्यर्थ हो गया, वह इसे छोड़ दे। रुकावट नही है उनकी कोई, कोई आग्रह नही है।

प्रश्न : श्रावक होने से पहले साधु बनने को उन्होंने नहीं कहा क्या ?

उत्तर : नही, बनने का उपाय ही नही। श्रावक की व्यवस्था से उसे गुजरना पड़ेगा। या तो श्रावक होने मे ही साधु हो जाए और या वह जिसे हम साधु कहते हैं, वैसा हो जाए।

प्रश्न : परम्परा से प्रामाणिक एवं निर्णीत महावीर के जीवन का बौद्धिक एवं तथ्यपूर्ण आपका विश्लेषण क्या समाज को स्वीकृत होगा ?

उत्तर : समाज को स्वीकृत हो, ऐसी आवश्यकता भी नही। समाज को स्वीकृत हो इसका ध्यान भी नही। समाज को स्वीकृत होने से ही वह ठीक है, ऐसा कोई कारण भी नही।

समाज को जो स्वीकृत है, वह वही है कि जैसा समाज है उसको वह वैसा ही बनाये रखे। प्राथमिक रूप से जो मैं कह रहा हू उसकी अस्वीकृति की ही सम्भावना है समाज से। लेकिन अगर जो मैं कह रहा हू वह बुद्धिमत्तापूर्ण है, वैज्ञानिक है, तथ्यगत है, तात्त्विक है तो अस्वीकृति को टूटना पड़ेगा, अस्वीकृति जीत नहीं सकती है। और अगर यह तथ्यपूर्ण नहीं है, अवैज्ञानिक है, तात्त्विक नहीं है तो अस्वीकृति जीत जाएगी। सवाल यह नही कि कौन उसे स्वीकार करे, कौन अस्वीकार करे। मुझे जो सत्य मालूम पड़ता है, वह मुझे कह देना है। अगर वह सत्य होगा तो आज नहीं कल स्वीकार

करना ही पड़ेगा। लेकिन सत्य भी प्राथमिक रूप से अस्वीकार किया जाता है, क्योंकि हम जिस असत्य मे जीते हैं वह उससे विपरीत पडता है। इसलिए वह पहले अस्वीकृत होता है लेकिन अगर वह सत्य है तो टिक जाता है और स्वीकृति पाता है और अगर असत्य है तो मर जाता है, गिर जाता है।

एक अद्भुत व्यक्ति थे महात्मा भगवानदीन। वह जब किसी सभा मे बोलते और लोग ताली बजाते तो वह बहुत उदास हो जाते। मुझसे वह कहते थे कि जब कोई ताली बजाता है तो मुझे शक होता है कि मैंने कोई असत्य तो नहीं बोल दिया क्योकि इतनी भीड सत्य के लिए ताली बजाएगी एकदम से, इसकी सम्भावना नही है। वह कहते कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा करता हूं जब भीड़ एकदम से पत्थर मारेगी तो मैं समझूंगा कि जरूर कोई सत्य बोला गया है क्योकि भीड असत्य मे ही जीती है, समाज असत्य मे जीता है। और सत्य पर पहले तो पत्थर ही पडते हैं। मगर वह सत्य की पहली स्वीकृति है। और पत्थर पड गया और सत्य अगर सत्य है तो अस्वीकृति को आज नही, कल मर जाना होगा और निरन्तर कथा यही है। अधकार घना है, अज्ञान गहरा है। ज्ञान की पहली किरण उतरे, प्रकाश उतरे तो पहला काम हमारा यह होता है कि हमारी आखें एकदम बन्द हो जाती हैं क्योकि अधेरे में जाने वाला व्यक्ति प्रकाश को देखने की क्षमता भी नही जुटा पाता। लेकिन आंख कितनी देर तक बन्द रहेगी, वह तो खोलनी ही पडेगी और प्रकाश अगर सचमुच प्रकाश था तो पहचाना भी जा सकेगा। कभी हजार वर्ष लगेंगे, कभी दो हजार वर्ष। मेरी अपनी समझ यह है कि महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट या कृष्ण को जो दिखाई पडा वह आज भी कहा स्वीकृत हो सका है? सत्य अभी भी प्रतीक्षा कर रहा है कि वक्त आएगा। सत्य को अनन्त प्रतीक्षा करनी पडती है क्योकि हमारा असत्य बडा गहरा है।

एक पुरानी कहानी है कि असत्य के पास अपने कोई पैर नहीं होते। अगर उसे चलना भी है तो सत्य के पैर ही उधार लेने होते हैं। अपने पैर उसके पास नही हैं। यानी असत्य अपने पैर पर खडा ही नही हो सकता। आप सब की स्वीकृति मिल जाए तो वह खड़ा हो सकता है, सत्य जैसा भासने लगता है और सत्य को अस्वीकृति मिल जाए तो भी वह असत्य नही हो जाता, असत्य जैसा भासने लगता है। लेकिन सत्य सत्य है, असत्य असत्य है। असत्य करोड़ों वर्षों तक चले तो भी असत्य है। सत्य बिल्कुल न चल पाए तो भी सत्य है। गैलीलियो ने जब यह कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी सूरज

का चक्कर लगाती है तो ईसाई जगत में क्रोध पैदा हुआ क्योंकि बाइबल कहती है कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। तो क्या जीसस को पता नहीं था? क्या हमारे पैगम्बरों को पता नहीं था? सत्तर साल के बूढ़े गैलीलियो को जंजीरें डाल कर पोप की अदालत में लाया गया और उससे कहा गया कि तुम कहो कि जो तुमने कहा है वह असत्य है। कहो कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। गैलीलियो ने कहा जैसी आपकी मर्जी। उसने कागज पर लिख दिया कि आप कहते हैं तो मैं लिखे देता हूं कि सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का, पृथ्वी चक्कर नही लगाती। लेकिन मैं कुछ भी लिखू इससे फर्क नहीं पड़ता, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मैं क्या कर सकता हूं? यानी मैं चक्कर लगाना थोडे ही रोक सकता हू। गैलीलियो भी इन्कार कर दे तो क्या फर्क पडता है? गैलीलियो थोडे ही चक्कर लगवा रहा है। लेकिन बाइबल हार गई, गैलीलियो जीत गया। क्योंकि सत्य जीतता है। न बाइबल जीतती है, न गैलीलियो जीतता है, न क्राइस्ट जीतते हैं, न कृष्ण, न महावीर, न मुहम्मद। जीतता सत्य है, असत्य हारता है। लेकिन वक्त लग सकता है। असत्य अपने बचाने की सारी कोशिश करता है, अपनी सुरक्षा करता है और उसकी सबकी बडी सुरक्षा है स्वीकृति, लोगो में स्वीकृति पैदा कर देना। इसलिए असत्य स्वीकृति मे जीता है। सत्य स्वीकृति की चिन्ता भी नही करता। वह अस्वीकृति में जी लेगा क्योंकि उसके पास अपने पैर हैं, अपनी स्वांस है, अपने प्राण हैं और वह प्रतीक्षा करता है अनन्तकाल तक। कभी तो आखें खुलती हैं और चीजें दिखाई पड़ती हैं। मुझे चिन्ता नही है जरा भी कि जो मैं कह रहा हूं उसे कौन मानेगा। जिस व्यक्ति को यह चिन्ता होती है, वह कभी सत्य बोल ही नहीं सकता। क्योंकि तब वह पहले आपकी तरफ देख लेता है कि आप क्या मानोगे? उसको मान्यता ज्यादा मूल्यवान है। और मान्यता जिन लोगो से पानी है अगर वे सत्य को ही उपलब्ध होते तो बात करने की कोई जरूरत न थी। अंधेरे में खड़े लोगो से सूरज के लिए मान्यता लेनी है तो वे अंधेरे में खडे लोग कहते हैं कि सूरज से अंधेरा निकलता है। उनकी स्वीकृति लेनी हो तो कहो कि बहुत घना अंधेरा सूरज से निकलता है। वे ताली पीट देगें। या उनसे कहो कि सूरज से अंधेरा कभी निकला ही नहीं। सूरज तो अंधेरे को तोड़ता है तो इसका मतलब हुआ कि तुम अकेले, आंख वाले पैदा हुए हो, हम सब अंधे हैं। और यह बात बड़ी अपमानजनक है कि कोई आदमी कहे कि मेरे पास आंख है और सब अंधे हैं। इससे बड़ा

दुख होता है। फिर सब मिलकर आख वाले की आंख फोड़ने की कोशिश करें तो उसमे कुछ हर्जा भी नही है। वह ठीक ही प्रतिकार ले रहे हैं। वह उनको चोट पहुंची, उनके मन का अपमान हुआ, उनके अहकार को धक्का पहुंचा। लेकिन सत्य प्रतीक्षा करता है और प्रतीक्षा करने का धैर्य रखता है।

प्रश्न : आप कहते हैं कि समाज असत्य में जीता है तो क्या असत्य समाज के लिए अनिवार्य है, जीने के लिए ?

उत्तर : जैसा समाज है हमारा, उस समाज के जीने के लिए असत्य अनिवार्य है। जैसा हमारा समाज है दुख से भरा हुआ, पीडा से भरा हुआ, शोषण, अहकार, ईर्ष्या और द्वेष से भरा हुआ, इस समाज को जिलाना हो तो यह असत्य पर ही जी सकता है। अगर बदलना हो, नया बनाना हो, आनन्द से, प्रकाश से, प्रेम से भरा हुआ, जहा ईर्ष्या न हो, महत्त्वाकांक्षा न हो, घृणा न हो, द्वेष न हो, क्रोध न हो तो फिर सत्य लाना पडेगा ?

प्रश्न : यह तो सबकी इच्छा है ही ?

उत्तर : यह सबकी इच्छा है कि आनन्द मिले। लेकिन मैं जैसा हूं वैसा ही मिल जाए, मैं न बदलू। लेकिन आनन्द वैसी हालत मे नही मिलता और मैं बदलने की तैयारी मे नही हू। बदलने की तैयारी दिखाऊ तो आनन्द मिल सकता है। यानी मैं कहता हू कि प्रकाश तो मिले लेकिन मुझे आंख न खोलनी पडे। तो फिर मुश्किल है। सबकी इच्छा है कि आनन्द मिले। हर आदमी आनन्द की ही कोशिश मे लगा हुआ है और सिर्फ दुख पा रहा है। हर आदमी आनन्द पाना चाहता है, शाति पाना चाहता है लेकिन जो कर रहा है शाति पाने के लिए, आनन्द पाने के लिए, उस सबमे दुख पाता है, अशान्ति पाता है। लेकिन वह करने को नही बदलना चाहता है। अब जैसे एक आदमी महत्वाकाक्षी है और कहता है कि मुझे आनन्द चाहिए। लेकिन महत्वाकाक्षी चित्त कभी भी आनन्दित नही हो सकता क्योंकि जो भी मिल जाएगा उससे वह सन्तुष्ट नही होगा और जो नही मिलेगा उसके लिए पीडित हो जाएगा। कितना ही कुछ मिल जाए उसको, उसका महत्वाकाक्षी चित्त आगे के लिए पीडा मे भर जाएगा। वह कहता है कि मैं आनन्दित होना चाहता हू और वह यह भी कहता है कि मैं महत्वाकांक्षी सिर्फ इसलिए हू कि मुझे आनन्द चाहिए। अब महत्वाकाक्षा और आनन्द में विरोध है, यह देखने को वह राजी नही है। सिर्फ गैर महत्वाकाक्षी व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो सकता है। लेकिन महत्वाकाक्षा चलाए रखना चाहते हैं हम और आनन्दित होना भी

चाहते हैं। अब एक आदमी है जो कहता है कि मैं प्रेम चाहता हू और प्रेम कभी देता नही। और यह ऐसी हालत है जैसे एक गाव में सभी भिखमंगे हो; सभी एक दूसरे के सामने हाथ जोडे खड़े हो और सभी मांगना चाहते हों, देना कोई भी न चाहता हो। उस गांव की जो हालत हो जाए वैसी हम सबकी हालत होगी ? प्रेम देना कोई भी नही चाहता, प्रेम मांगना चाहता है। और यह भी ध्यान रहे जो आदमी प्रेम देने की कला सीख जाता है, वह कभी मांगता ही नही। मिलना शुरू हो जाता है, उसके मागने का सवाल ही नहीं रह जाता। मागता सिर्फ वही है जो दे नही पाता। अब बुनियाद यह है कि हम सब प्रेम चाहते हैं। ठीक है, इसमे कुछ बुरा भी नही है। लेकिन प्रेम सिर्फ उन्हे मिलता है जो चाहते नही और देते हैं। वह सूत्र है पाने का। और वह सूत्र हमारी समझ मे नही आता इसलिए भूल हो जाती है, भटकन हो जाती है।

हम आनन्द चाहते हैं, शान्ति चाहते हैं, प्रेम चाहते हैं। चाहते हम सब कुछ हैं लेकिन जैसे हम हैं वैसे मे चाहते हैं जोकि असम्भव है। हम सब चाहते हैं कि पहुच जाए आकाश मे लेकिन पृथ्वी से पांव न छोडना पडे। गडे रहना चाहते हैं जमीन मे, पहुचना चाहते हैं आकाश में। अगर कोई यह कहे कि आकाश मे जाना है तो मैं कहता हू कि आकाश का फिक्र छोड़ो, पहले जमीन छोडो। पर वह आदमी कहता है कि जमीन हम पीछे छोड़ेंगे, पहले हम आकाश पर पहुंच जाए। क्योकि आप हमसे जमीन भी छीन लो और आकाश भी न मिले, तो हम मुश्किल मे पड़ जाएगे। लेकिन बात यह है कि जमीन छोड़ने से आकाश मिल ही जाता है क्योकि जाओगे कहां ? यह हमारी कठि-नाई है कि हमेशा मे हम यही चाहते रहे हैं कि आनन्द हो, शांति हो, प्रेम हो, लेकिन जो हम करते रहे हैं वह एकदम उल्टा है। उससे न शांति हो सकती है, न प्रेम और न आनन्द। प्रत्येक व्यक्ति के साथ यह कठिनाई है, प्रत्येक व्यक्ति द्वेष में जी रहा है, ईर्ष्या मे जी रहा है, वह चाहता है कि आनन्द हो जाए। मगर ईर्ष्यालु चित्त कैसे आनन्द पायेगा ? ईर्ष्यालु चित्त सदा दुखी है। सड़क पर बड़ा मकान दिखता है, बगिया लगी दिखती है, कार दिखती है, किसी की स्त्री दिखती है, किसी के कपडे दिखते हैं तो वह दुखी है। हर चीज उसे दुख देती है। और ऐसा भी नहीं कि बड़ा मकान ही उसे दुख दे। कभी-कभी यह भी दुख देता है कि यह आदमी झोपड़ी में रह रहा है और खुश है। कभी एक भिखारी भी आनन्दित दिख जाता है तो वह दुखी

है कि मेरे पास सब है और मैं सुखी नही हू, यह भिखारी है और आनन्दित है। वह ईर्ष्या चित्त मे दुख पैदा करने की कीमिया है । ईर्ष्यालु चित्त दुख पैदा करता है और ईर्ष्यालु चित्त सुख चाहता है। अब बड़ी मुश्किल हो गई। इस विरोध को अगर न देखा जाए तो हम फस गए। हम फिर जी नही सकते, चाहते रहेगे सुख और पैदा करेगे दुख। और जितना दुख पैदा होगा उतना ज्यादा सुख चाहेगे। और जितना ज्यादा दुख पैदा होगा, सुख की माग बढ़ेगी उतने ही ज्यादा जोर से ईर्ष्यालु होते चले जाएगे और दुख होता चला जाएगा। ऐसा एक-एक व्यक्ति भीतरी विरोध मे फसा हुआ है। इस विरोध के प्रति सजग हो जाना ही साधना की शुरूआत है कि इस विरोध के प्रति मैं जो चाह रहा हू, मैं जो कर रहा हू वह सही है। मैं चाह तो रहा हू कि मकान के ऊपर चढ जाऊ लेकिन उतर रहा हू नीचे की तरफ, वह तो मैं उल्टा काम कर रहा हू। तो ईर्ष्या मुझे नीचे की तरफ ले जा रही है। ईर्ष्या मुझे दुख दे रही है। अगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या से मुझे मुक्त हो जाना चाहिए ताकि मुझे कोई भी दुख न दे सके, बडा मकान भी न दे सके, आनन्दित आदमी भी न दे सके, कार भी न दे सके, स्त्री भी न दे सके, कोई भी चीज दुख न दे सके क्योकि मेरे पास वह जो तरकीब थी दुख पैदा करने की, वह बिदा हो गई। अब मैं ईर्ष्यालु नही हू। और जब मैं ईर्ष्यालु नही हू तो मुझे हर चीज सुख द सकती है क्योकि अब तो दुख का कोई कारण नही रहा। वह व्यवस्था टूट गई, वह यत्र ही टूट गया जो दुख पैदा कर देता था। जीवन के विरोध के प्रति जाग जाना कि हम जो चाहते हैं, उससे उल्टा कर रहे है, साधना की शुरूआत है। और जब हमे यह दिखाई पड जाय तो हम उल्टा न कर सकेगे। हम कैसे उल्टा करेगे ? उदाहरण के लिए एक आदमी सोना चाहता है। नीद उसे आती नही। वह नीद लाने की तरकीबें करता है। पैर धोता है, आख धोता है, पानी पीता है, राम-नाम जपता है, माला फेरता है, करवट बदलता है, टहलता है, भेड-बकरिया गिनता है, हजार तरकीबे करता है कि किसी तरह उसे नीद आ जाए। लेकिन उसे पता नहीं कि जितनी तरकीबे वह कर रहा है, वह नीद न आने देने की हैं। क्योकि कोई भी प्रयास हो वह नीद को तोड़ने वाला है। वह कुछ भी न करे तो शायद नीद आ जाए। उसने कुछ भी किया तो फिर नींद नहीं आ सकती क्योकि करना नीद के बिल्कुल उल्टा है। नीद आती है न करने से। इसलिए एक बार एक आदमी की नीद गडबड हो गई फिर वह बुरे चक्कर

में पड़ गया क्योंकि अब वह नींद लाने के उपाय करेगा। उपाय नींद को तोड़ेंगे। जितनी नींद टूटेगी उतने ज्यादा उपाय करेगा; जितने ज्यादा उपाय करेगा उतनी ज्यादा नींद टूटेगी। और वह एक चक्कर मे पड़ जाएगा जिसके बाहर निकलना मुश्किल है। उसको यह विरोध दिखाई पड जाएगा किसी दिन कि प्रयास से नींद नहीं आ सकती है। नींद तो तब आती है जब कोई कुछ नही करता। चाहे वह मत्र पढ़े, चाहे माला फेरे, चाहे कुछ भी करे। करना मात्र नींद का उल्टा है। लेकिन हम पूरी जिन्दगी मे विरोधाभास मे जीते है। जैसे ही कोई इस बोध को उपलब्ध हो जाता है और अपने भीतर विरोध देखने लगता है, वैसे ही क्रान्ति शुरू हो जाती है क्योंकि विरोध दिख जाए तो फिर उसमे जीना मुश्किल है। फिर आप भी जी नही सकते। यह कैसे सम्भव है कि एक आदमी को जाना छत पर है और वह नीचे उतर आए और उसे दिख जाए कि उतर रहा हू नीचे की ओर, जाना है ऊपर तो क्या वह फिर नीचे उतर सकता है? बात खत्म हो गई। ऊपर जाएगा ही वह। और जब विरोध मिटता है तो योग पैदा होता है जीवन मे। हम जो करना चाहते हैं, वही करते है, जो होना चाहते हैं, वही होते है। तब एक सरलता, सहजता आ जाती है क्योंकि विरोध गए, चिन्ता गई। अपने ही भीतर खड-खड उल्टे-उल्टे जा रहे थे, वे बिदा हो गए। हमारी हालत ऐसी है जैसे कि किसी ने बैलगाडी मे दोनो ओर बैल जोड दिए हो और दोनो ओर से बैलगाड़ी चलने की कोशिश कर रही है। अब इसमे सिर्फ अस्थि-पजर बैलगाड़ी को खीचे चले जा रहे हैं। बैलगाडी कही जाती नही। कभी एक तरफ के बैल मजबूत हो जाते है तो दस कदम अपनी ओर खींच लेते है। जब तक वे दस कदम खीचते हैं तब तक थक जाते हैं। फिर उल्टी ओर के बैल मजबूत हो जाते हैं तो दस कदम दूसरी ओर खीच लेते हैं और ऐसा चल रहा है। एक चौराहे पर बैलगाड़ी है। दोनो तरफ बैल जुते है। यही-वही होती रहती है। करीब करीब हम उसी जगह मरते है, जहा हम पैदा होते है। कोई फर्क नही पड़ता, क्योंकि हमे विरोध ही दिखाई नही पड़ता कि चार बैल पास है तो एक ही तरफ जोत दें, दो तरफ क्यो जोते हुए हैं। विरोध दिख जाए तो एक नया जीवन शुरू हो जाता है जिसे हम पहचानते भी नही, जानते भी नही। तब आदमी वही करता है जो उसे करना चाहिए। वह उसी तरफ जाता है जहा जाना है। तब स्वभावतः शाति आ जाती है क्योंकि अशाति का कोई कारण नहीं रह जाता।

प्रश्न . आसक्ति अथवा राग जैसा कर्मबन्ध का कारण है वैसे द्वेष और घृणा भी। महावीर ने संसार, शरीर—इन सबके प्रति घृणा का भाव पैदा करके संसारत्याग का क्यों उपदेश दिया ?

उत्तर : राग, द्वेष—ये दोनो एक ही तरह के उपद्रव के कारण हैं। राग द्वेष ऐसे ही हैं जैसे एक आदमी सीधा खडा हो और एक आदमी शीर्षासन करता हुआ खड़ा हो। इन दोनो मे कोई फर्क नही है। एक सिर नीचा करके खडा है, एक सिर ऊचा करके खडा है। राग का ही उल्टा जो है, वह द्वेष है। राग शीर्षासन करता हुआ द्वेष है। दोनो फासते हैं। दोनो बाध लेते हैं क्योकि जिससे हम राग करते है, उससे भी हम बध जाते हैं। जिससे हम द्वेष करते हैं, उससे भी हम बध जाते हैं। मित्र भी बाधता है, शत्रु भी बाधता है। हम शत्रु को भी भूल नही पाते, मित्र को भी भूल नही पाते। वे दोनो हमे बाध लेते हैं। अगर हमारा एक मित्र मरता है तो भी हममे एक कमी हो जाती है। अगर हमारा एक शत्रु मरता है तो भी हममे एक कमी हो जाती है। और कई बार तो ऐसा होता है कि शत्रु के मरने से आपका बल ही खो जाए क्योकि बल उसके विरोध मे बनकर आता था। दोनो बाधते हैं, दोनो जिन्दगी को भरते हैं। और ऐसा भी नही है कि शत्रु ही दुख देते हैं। मित्र भी दुख देते हैं। फर्क थोडा-सा पड जाता है। मित्र भी दुख देते हैं, शत्रु भी सुख देते हैं। ढग अलग-अलग है लेकिन बाधते दोनो हैं। और जिसे बधन ही दुख हो गया, वह न मित्र बनाता है, न शत्रु बनाता है। वह न राग बाधता है, न द्वेष बाधता है। वह न किसी के पक्ष मे होता है, न किसी के विपक्ष मे होता है। वह प्रत्येक चीज के प्रति एक साक्षी का भाव लेता है। अपनी ही जिन्दगी को दूर खड़ा होकर देखने लगता है। खुद द्रष्टा हो जाता है और राग द्वेष के बाहर हो जाता है। जब तक कोई द्रष्टा नही तब तक वह राग-द्वेष के बाहर नहीं होता। कर्ता कभी राग-द्वेष के बाहर नही होता। क्योकि करेगा कुछ तो मित्र बनेंगे, शत्रु बनेंगे। किसी को बचाना होगा, किसी को मिटाना होगा। कर्ता हमेशा राग-द्वेष से घिरा है, अकर्ता साक्षी है। यह पूछा जा सकता है कि महावीर ऐसा तो कहते हैं कि राग-द्वेष बाध लेते हैं लेकिन शरीर और संसार के प्रति वह घृणा सिखाते हैं, शरीर असार है, ससार असार है, ऐसा सिखाते हैं। तो फिर यह द्वेष शुरू हो गया शरीर और ससार के प्रति। महावीर ससार के या शरीर के प्रति द्वेष नही सिखाते हैं : लेकिन जिन्होने महावीर को नही समझा है, वे जरूर ऐसा ही सिखा रहे हैं। शरीर को ऐसा प्रेम करने वाला आदमी मुश्किल से

पैदा हुआ होगा। न वह संसार के प्रति द्वेष सिखाते हैं न राग सिखाते हैं क्योंकि वह तो कहते ही यह हैं कि द्वेष बांध लेता है, प्रेम बांध लेता है। अगर हम राग से भरे हैं तो हम राग से ऊब जाते हैं। अगर हम द्वेष से भरे हैं तो हम द्वेष से ऊब जाते हैं। हर चीज ऊबा देती है। जब राग ऊब जाता है तो घड़ी का पेंडुलम दूसरी ओर शुरू हो जाता है। वह द्वेष की ओर चलना शुरू हो जाता है। जिस चीज से हम ऊब जाते हैं उससे हम द्वेष करने लगते हैं। राग खत्म हो जाता है। फिर उससे आप मुक्त होना चाहते हैं। कल तक उसको आप पकड़ना चाहते थे। आज आप हटना चाहते हैं। लेकिन कल तक जब आपने उसको पकड़ा था तो पकड़ने का अभ्यास हो गया। अब ऊब गए पकड़ने से तो अब हटना चाहते हैं। अभ्यास बाधा डाल रहा है। पकड़ने की आदत बन गई है। अब भागना चाहते हैं। द्वन्द्व खड़ा हो गया है। महावीर द्वेष नहीं सिखाते किसी के प्रति, न संसार के प्रति। क्योंकि महावीर द्वेष सिखा ही नहीं सकते। महावीर सिखाते हैं कि अपने द्वेष, अपने राग, अपनी घृणा, अपने प्रेम—इन सबके प्रति जाग जाओ। इन सबको जाग कर देख लो। जिस दिन पूरी तरह तुम देख लोगे उस दिन तुम पाओगे कि राग-विराग, मित्रता-शत्रुता एक ही चीज के दो छोर हैं। तब तुम समझ जाओगे कि जैसे एक सिक्का हो किसी के पास रुपए का और वह चाहता हो कि एक पहलू बचा ले और दूसरे को फेंक दे तो वह पागल है क्योंकि वह दोनों पहलू एक ही सिक्के के हैं। या तो वह दोनों फेंक सकता है, या दोनों बच जाएंगे। हां, फर्क हो सकता है कि कौन-सा पहलू आप ऊपर रखें। यह हो सकता है कि सिक्के का सिर वाला पहलू आप ऊपर रखें या पीठ वाला ऊपर रखें। सिर वाला ऊपर रखेंगे तो पीठ वाला नीचे रहेगा। तो जो आदमी प्रेम करता है उसके ठीक नीचे ही घृणा छिपी बैठी रहती है, मौके की तलाश में कि कब सिक्का पलटे। जब इससे ऊब जाते हैं तो आप सिक्के पलट लेते हैं, पीछे की ओर देखने लगते हैं। इसलिए मित्र के शत्रु हो जाने में देर नहीं लगती। असल में बात यह है कि अगर कोई मित्र न हो तो उसको शत्रु बनाना ही मुश्किल है। पहले उसका मित्र होना जरूरी है, तभी वह शत्रु बनाया जा सकता है। शत्रु के भी मित्र बनने में कोई कठिनाई नहीं है। ये दोनों बातें घट सकती हैं क्योंकि एक ही चीज के ये दो पहलू हैं। राग है किसी को, वह विराग बन जाता है और जिस चीज से विराग है, अगर आप विराग ही करते चले जाएं तो आप पाएंगे कि विराग शिथिल होने लगा और राग पकड़ने

लगा। असल में जैसे घड़ी का पेंडुलम बाईं ओर गया तो जब वह बाईं ओर जा रहा है तब आपको ख्याल भी नहीं है कि वह दाईं ओर जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। और जब वह दाईं ओर गया तो आंख देख रही है कि दाईं ओर गया। लेकिन जो गहरे मे देख रहे हैं, वे कह रहे हैं कि वह बाईं ओर जाने की तैयारी कर रहा है और वह फिर बाईं ओर जाएगा। ऐसे चित्त द्वन्द्व के बीच घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता रहता है। जिससे हम प्रेम करने जाते हैं, हमे ख्याल नही कि उससे हम घृणा करने की शक्ति अर्जित कर रहे हैं। इसलिए प्रेमी जल्दी घृणा करने वाले बन जाते हैं। कल तक जो प्रेयसी थी, परसो वही भारी पड जायेगी। कल तक हम कहते थे कि वह अगर न मिले तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा, आत्महत्या कर लेंगे। कल तक जिसके न मिलने से आत्म-हत्या कर रहे थे हो सकता है कि कल उसके मिलने से ही आत्म-हत्या करनी पड़े।

मैंने सुना है कि एक मनोवैज्ञानिक एक पागलखाने मे पागल देखने गया। डाक्टर एक कटघरे में एक आदमी दिखलाता है जो बिल्कुल पागल है। मनोवैज्ञानिक पूछता है 'इसको क्या हो गया है।' तो डाक्टर रजिस्टर मे उसकी केस हिस्ट्री निकालता है और कहता है कि यह आदमी एक लडकी को प्रेम करता था। वह लडकी इसको नही मिली इसलिए पागल हो गया। दूसरी कोठरी मे एक दूसरा आदमी बद है। मनोवैज्ञानिक पूछता है. "इसको क्या हो गया है।" वह डाक्टर केस हिस्ट्री उलटकर देखता है। वह कहता है इसको वह लडकी मिल गई जो इसको नही मिलनी चाहिए थी। तो एक न मिलने से पागल हो गया है, एक मिलने से पागल हो गया है। महावीर यह नही सिखा सकते। वे बाए जाना नही सिखा सकते क्योकि वे जानते हैं कि जो बाएं जाएगा, उसे दाएं जाना पडेगा। वह दाए जाना नही सिखा सकते क्योकि वह जानते हैं कि जो दाए जाएगा उसे बाए जाना पड़ेगा। एक ही बात सिखा सकते हैं कि न तुम दाए जाओ, न तुम बाए जाओ, तुम ठहर जाओ, बीच मे खड़े हो जाओ। न द्वेष रहे न घृणा, न राग न विराग। तो महावीर विरागी नही हैं और जो विरागी उनके पीछे पड़े हुए हैं, वह बिल्कुल गल्ती मे पडे हुए है। महावीर को कुछ लेना-देना नही है उन विरागियो से। क्योकि विरागी हुए कि उन्होने राग अर्जित करना शुरू कर दिया। महावीर कहते हैं, खड़े हो जाओ, ठहर जाओ। प्रेम, द्वेष दोनो को देख लो, जाओ कही मत, दोनो को पहचान लो, फिर तुम कही नहीं जाओगे. फिर तुम अपने मे आ जाओगे। तीन दिशाएं हैं।

एक प्रेम की ओर ले जाती है, एक घृणा की ओर। ये सारे द्वन्द्व हैं और जो द्वन्द्वों से बच जाता है वह त्रिकोण के तीसरे बिन्दु पर आ जाता है जहां जाना नहीं है, आना नहीं है, सिर्फ ठहर जाना है। वहां प्रज्ञा स्थिर हो जाती है। वहां ठहर कर हम देख पाते हैं। या जो देखने लगता है, वह ठहर जाता है क्योंकि देखने के लिए ठहरना अनिवार्य तत्त्व है। अगर राग और द्वेष को देखना है तो जाओ मत किसी की ओर। ठहर कर देख लो कि राग क्या है। द्वेष क्या है, क्रोध क्या है।

प्रश्न : यह केवल ध्यान की भूमिका है क्या ?

उत्तर : हां, यह केवल ध्यान की भूमिका है। जैसे ही कोई स्वयं में खड़ा हो जाता है, वह उस द्वार पर पहुंच जाता है जहा से ज्ञान की शुरूआत है। लेकिन स्वयं मे खडा होना पहला बिन्दु है। फिर वही से यात्रा भीतर की ओर हो सकती है। हम या तो राग मे होते हैं, या द्वेष मे होते हैं, स्वयं के बाहर होते हैं ? राग द्वेष मे होने का अर्थ है स्वय के बाहर होना, कही और होना। मित्र पर हों, चाहे शत्रु पर हो। लेकिन हमारी चेतना, कहीं और होगी—राग मे भी, द्वेष मे भी। जो आदमी धन इकट्ठा करने मे पागल है उसका ध्यान भी धन पर होगा, जो आदमी धन त्याग करने पर पागल है उसका ध्यान भी धन पर होगा। धन पर ही दृष्टि-बिन्दु होगी उन दोनो की। और सब द्वन्द्वों से जिसकी दृष्टि लौट आती है, अपने पर खडी हो जाती है वह चुपचाप देखने लगता है कि यह रहा त्याग, यह रहा क्रोध। न मैं भोग करता हू, न मैं त्याग करता हू। मैं खड़े होकर देखता हू। ऐसी स्थिति मे स्वय का द्वार खुल जाता है जहां से ज्ञान की परम भूमिका में जाया जा सके।

प्रश्न : निगोद का क्या अर्थ है ?

उत्तर : निगोद की धारणा महावीर की अपनी है, बड़ी मौलिक, बहुत जटिल। निगोद का अर्थ है : संसार है, मोक्ष है। दो शब्द हमारी समझ मे हैं। मोक्ष का मतलब है वे आत्माए जो सब बधनो के पार चली जाएं। संसार का अर्थ है वे आत्माए जो अभी बधनों मे हैं, पार जा सकती हैं। निगोद का अर्थ है वे आत्माएं जो बंधन मे प्रसुप्त हैं। निगोद प्रथम है, मोक्ष अन्त मे है, संसार मध्य में है। निगोद से आत्मा उठती है, संसार में आती है, संसार से उठती है मोक्ष में जाती है। मोक्ष है मुक्ति; निगोद है पूर्ण अमुक्ति जहा बिल्कुल अधकार है, जहां गहरी निद्रा है यानी वहां इसका भी होश नही है कि बन्धन है, जहां यह भी पता नहीं कि हाथ मे जंजीरे हैं, जो मूर्छित

आत्माओं का लोक है, जहां से धीरे-धीरे आत्माएं उठती हैं, इस मध्यम लोक में आती हैं, जहां, अर्द्ध मूर्छा, अर्द्ध अमूर्छा चलती है, कभी चित्त जागता है, कभी सो जाता है, कभी हम जगे लगते हैं, कभी सोए, कभी होश आती है, कभी बेहोशी, कभी विवेकपूर्ण होते हैं, कभी अविवेकपूर्ण, जहा निद्रा और जागृति के बीच हम डोलते रहते हैं। जैसे रात निद्रा है, दिन जागरण है और दोनो के बीच मे एक स्वप्न की अवस्था है, जहा न तो हम पूरी तरह सोए होते हैं, न पूरी तरह जागे होते हैं। स्वप्न का मतलब है, आधा जागना, आधा सोना। इतने जागे भी होते हैं कि सुबह याद रह जाती है कि सपना देखा। इतने सोए भी होते हैं कि पता भी नही चलता कि सपना चल रहा है। लगता है कि सब चल रहा है। ससार है स्वप्न, निगोद है निद्रा, मोक्ष है जागृति। ये तीन अवस्थाएं हैं। अब सवाल यह उठा कि सारी आत्माए कहा से आती हैं। महावीर नही मानते कि इनका सृजन होना है। आत्माएं सदा से हैं। प्रश्न उठता है कि वे आती कहा से हैं। महावीर कहते हैं कि अमूर्छित का एक लोक है, जहा अमूर्छित अनन्त असख्य आत्माए हैं। ध्यान मे रहे कि इस जगत मे ऐसा कुछ भी नही है जो अनन्त न हो। यह भी समझ लेना जरूरी है कि इसमे अनन्त (इनफाइनेट) होना अनिवार्य है। कोई भी चीज सख्या मे हो ही नही सकती। क्योंकि सख्या मे अगर चीजें हो तो फिर जगत असीम नही हो सकेगा, और जगत सीमित नही है। निगोद का अर्थ है अनन्त आत्माए जहा प्रसुप्त हैं अनन्त काल से। आत्माए एक-एक उठती हैं। उठनेवाली आत्माओ की सख्या है। ससार उनसे बनता है, फिर ससार से आत्माए मुक्त होती चली जाती है, दूसरे लोक में, जहां वह परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाती हैं। प्रश्न यह है कि क्या कभी ऐसा होगा कि सब आत्माए मुक्त हो जाए। ऐसा कभी नही होगा क्योंकि आत्माए अनन्त हैं। 'अनन्त' शब्द हमारे ख्याल मे नही आता। क्योंकि हमारा मस्तिष्क अनन्त की धारणा को नही पकड पाता। हम बडी से बडी सख्या सोच सकते हैं लेकिन अनन्त नहीं। क्योंकि अनन्त का मतलब है जहां सख्या होती हो नहीं। लेकिन असंख्य का मतलब अनन्त नहीं होता। असख्य का मतलब होता है जिसकी सख्या गिनी न जा सके; सख्या हम गिने तो थक जाए। जैसे कि कोई आपसे पूछे कि आपकी खोपड़ी पर कितने बाल हैं तो आप कहे असख्य यानी कोई गिनती नही। लेकिन तथ्य ऐसा नहीं है। बालों की गिनती है। गिनना कठिन हो सकता है थोड़ा बहुत लेकिन गिना जा सकता है। अनन्त का मतलब है कि जहा संख्या अर्थहीन है। जहा हम कितना ही गिनें तो भी

गिनने को शेष रह जाएगा। जहा शेष रहना अनिवार्य है। जहा कभी कोई चीज अशेष होती ही नही। तो निगोद है मूर्छित आत्माओ का लोक। संसार है अर्द्ध मूर्छित आत्माओं का लोक। मोक्ष है परम अमूर्छित आत्माओं का लोक। मोक्ष है पूर्ण जागृत आत्माओ का लोक। पर हमारा मन चूंकि सख्याओ मे ही सोचता है इसलिए सवाल निरन्तर उठता है कि कितनी अमूर्छित आत्माए हैं ? कितनी मुक्त हो गई हैं ? इसका भी कोई सवाल नही है क्योकि अनन्तकाल से आत्माए मुक्त हो रही हैं, अनन्त आत्माए मुक्त हो गई हैं। अनन्त के साथ एक मजा है कि उसमे से कितना ही निकालो, पीछे उतना ही शेष रहता है जितना था। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योकि वह जो हमारा आम गणित है वह कहता है कि इस कमरे मे कितने ही लोग हों लेकिन अगर दो आदमी बाहर निकल गए तो फिर पीछे उतने तो नही रहे जितने थे। हमारा गणित कहता है कि ऐसा कैसे हो सकता है कि पीछे उतने ही रह जाए जितने थे क्योकि दो निकल गए। और अगर हम यह मान लें कि दो के निकलने से पीछे कुछ कम हो गए तो फिर सख्या हो सकती है क्योकि कम होते चले जाएगे। एक वक्त आएगा, शून्य भी हो सकता है। यह गणित की बडी पहेलियो मे से एक है कि अनन्त मे से हम कुछ भी निकालें, अनन्त ही शेष रहता है। इसलिए निगोद उतने का ही उतना है जितना था; उतना ही रहेगा जितना था, और उतना ही सदा है, उतना ही सदा रहेगा। मुक्त आत्माएं रोज होती चली जाएगी, मोक्ष मे कोई भीड़ नही बढ जाएगी। इसमे भीड बढने का कोई सवाल नही है। लेकिन हमारा जो गणित है संख्या का उसे समझना बड़ा मुश्किल होता है। उदाहरण के लिए, हम एक सीधी रेखा खींचते हैं जमीन पर। दो बिन्दुओ के बीच निकटतम जो दूरी है, वह सीधी रेखा बन जाती है। लेकिन जो नयी ज्योमेट्री इसके खिलाफ मे विकसित हुई है, कहती है कि सीधी रेखा होती ही नही क्योकि जमीन गोल है। इसलिए कितनी ही सीधी रेखा खींचो, अगर तुम उसको दोनो तरफ बढ़ाते चले जाओ, तो अन्त में वह वृत्त बन जाएगी। इसलिए सब सीधी रेखाए किसी बड़े वृत्त के खंड हैं। और वृत्त के खड कभी सीधी रेखाएं नही हो सकते। इसका मतलब हुआ कि सीधी रेखा होती ही नही। वह हम को सीधी लगती है। अगर हम उसे फैलाते चले जाएं तो अन्ततः वह एक बड़ा सर्किल बन जाएगी। और जब वह बड़ा सर्किल बन सकती है तो वह बडे सर्किल का हिस्सा है। और सर्किल का हिस्सा, सीधा नही हो सकता। इसलिए कोई रेखा जगत में सीधी नही

है। यह हमारे ख्याल मे आना मुश्किल है कि कोई भी रेखा जगत में सीधी खीची ही नही जा सकती। क्योंकि जितना ही तुम खीचते चले जाओगे, अन्त मे वह मिल ही जाएगी। इसलिए कोई सीधी रेखा नही है, सब वृत्त हैं। सब वृत्त खड हैं। साधारण गणित कहता है कि बिन्दु वह है जिसमें लम्बाई चौडाई नही है मगर ज्योमेट्री कहती है कि जिसमे लम्बाई-चौडाई न हो वह तो हो ही नही सकता, इसलिए कोई बिन्दु नही है। सब रेखाओ के खड हैं—छोटे खड। रेखा है बड़े वृत्त का खड, और बिन्दु है रेखा का खड। सब बिन्दुओ मे लम्बाई-चौडाई है। लेकिन यह बात जब तक मानी जाती रही तब तक बिल्कुल ठीक लगती थी। अब एकदम गडबड हो गई। गणित की व्यवस्था है, जैसी कि हमारी संख्या की व्यवस्था। हम सब मानते हैं कि एक से नौ तक सख्या होती है। कोई कभी नही पूछता कि इससे ज्यादा क्यो नही होती, इससे कम मे क्यो नही होती। यह एक परम्परा है। किसी पहले आदमी को फतूर सवार हो गया। उसने नौ का हिसाब बना डाला। वह चल पडा। और चूकि गणित एक जगह पैदा हुआ फिर सारी दुनिया मे फैल गया इसलिए कभी किसी ने नही सोचा। लेकिन पीछे कई लोग पैदा हुए जिन्होंने कुछ बदला जैसे लीबनिस हुआ। लीबनिस ने तीन अकों मे काम चलाया। उसने कहा कि तीन से ज्यादा की जरूरत नहीं—एक, दो, तीन। फिर तीन के बाद आता है। १०-११-१२-१३, फिर बीस आ जाता है। बाकी सब बिदा कर दिये उसने। सब गणित हल कर ली उतने मे ही। आइस्टीन ने कहा कि तीन की भी क्या जरूरत है। दो से ही काम चल जाता है। १-२,१०-११-१२,२०,२१, २२ ऐसे चलता-चला जाता है। अगर हम पुराना गणित मानते हैं तो एक, दो, तीन, चार, पांच होते है। अगर आइस्टीन का गणित मान लेते है, १,२,१०, ११,१२ इस तरह का तो ये पांच हैं ही नही। यह पांच सिर्फ हमारा गणित का हिसाब है। गणित का हिसाब बदल दें तो ये सब बदल जाएगे। तो हमारा सख्या का हिसाब है जगत मे और हम सब चीजो को सख्या से तोलते है, जबकि सच्चाई यह है कि सख्या बिल्कुल ही झूठी बात है, आदमी की ईजाद है। क्योंकि यहा कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसकी सख्या हो। प्रत्येक चीज असंख्य है। और अगर असख्य का हम ख्याल करें तो गणित बेकार हो जाता है। फिर गणित का कोई मतलब ही नहीं रह जाता। जब असंख्य है, गिना ही नहीं जा सकता, गिनने योग्य ही नहीं है और कितना ही निकाल लो बाहर, उतना ही फिर पीछे रह जाता है तो जोड़ का क्या मतलब, घटाने

का क्या मतलब ? भाग का क्या मतलब ? गुणा का क्या मतलब ? अगर हम जगत की पूरी व्यवस्था को ख्याल मे लाए तो गणित एकदम गिर जाता है, क्योंकि गणित बना है काम चलाऊ हिसाब से कि हम उसमे गिनती करके काम चला लें। और उसी काम चलाऊ गणित से अगर हम जगत के सत्य को जानने जाए तो हम मुश्किल मे पड़ जाते हैं। तो महावीर की बात एकदम गणित मे उल्टी है और जो भी सत्य के खोजी हैं उनकी बातें निरन्तर गणित से उल्टी हैं। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि वह पूर्ण ऐसा है कि उससे अगर तुम पूर्ण को भी बाहर निकाल लो तो भी पूर्ण ही शेष रह जाता है। उससे जरा भी कमी नही पडती। मगर हमारे दिमाग मे मुश्किल हो जाती है कि हम जब भी कुछ निकालते है तो पीछे कमी पड़ जाती है। क्योंकि हमने सीमित से ही कुछ निकाला है सदा। अगर हमने असीमित मे से कुछ निकाला होता तो हमे पता चलता। असीमित का हमको कोई अनुभव नही है।

इसलिए निगोद अनन्त है। उसमे कमी कभी नहीं पडती, मोक्ष अनन्त है, वहा कभी भीड नही होती। दोनो के बीच का ससार एक अपना अनन्त है क्योकि दो अनन्तो को जोडने वाली चीज अनन्त हो सकती है। वह भी सख्या मे नही हो सकती क्योकि दो अनन्तो का जो सेतु बनता है, वह कैसे सीमित हो सकता है। अनन्तो को अनन्त ही जोड सकता है। उस तल पर जाकर गिनती का कोई मतलब नही है। मोक्ष की धारणा बहुत लोगों की है। काल मे निगोद की धारणा महावीर की अपनी है और मैं मानता हू कि बिना निगोद की धारणा के मोक्ष की धारणा बेमानी है क्योकि वहा आत्माएं चलती चली जाएगी। आएंगी कहा से ?

प्रश्न : निगोद से आत्मा मोक्ष तक नहीं पहुंच सकती क्या ?

उत्तर : नही, मूर्छित आत्मा मोक्ष तक कैसे पहुच सकती है? उसे अमूर्छा के रास्तो से गुजरना पडेगा। आप जब निद्रा से जगते हैं तो एकदम नही जग जाते। बीच मे तन्द्रा का एक काल है, जिससे आप गुजरते है। जैसे सुबह आप उठ गए हैं। आपको लगता है कि उठ गए लेकिन फिर करवट बदल कर आंखें बद कर ली हैं। फिर घडी की आवाज सुनाई पड़ी है। फिर किसी ने कहा उठिए, तो आप फिर उठ गए हैं। फिर आंख खोली है, फिर करवट बदलकर सो गए हैं। सोने और जागने के बीच में, चाहे कितना ही छोटा हो, तन्द्रा का एक काल है जब न तो आप ठीक जाग गए होते हैं, न ठीक सोए हुए होते हैं। सोने की तरफ भी झुकाव होता है, जागने की तरफ भी मन

होता है। इन दोनो के बीच एक तनाव होता है। निगोद से सीधा कोई मोक्ष मे नही जा सकता। ससार से गुजरना ही पडेगा। कितनी देर गुजरना है, यह दूसरी बात है। कोई पन्द्रह बीस मिनट बिस्तर पर करवट बदल कर उठता है, कोई पाच मिनट, कोई एक मिनट, कोई एक सैकेंड और जो बिल्कुल छलाग लगा कर उठ आता है वह भी सिर्फ हमको दिखाई पड़ता है। बिल्कुल, काल का कोई सूक्ष्म अंश उसको भी बिस्तर पर गुजारना पडता है जागने के बाद। ससार छोटा बडा हो सकता है। जीवन मे कोई मुक्त हो सकता है। लेकिन ससार से गुजरना ही पड़ेगा। वह अनिवार्य मार्ग है, जहा से मोक्ष का द्वार है।

प्रश्न : जैसे समुद्र है। समुद्र से बादल उठते हैं, उसका पानी बरसता है, बर्फ बनती है, लेकिन फिर वह समुद्र में चली जाती है तो एक चक्कर है। इस तरह मुक्त आत्मा निगोद मे किसी तरीके से जाती रहती होगी। ऐसा भी हो सकता है ?

उत्तर : नहीं, ऐसा चक्र नही है क्योकि पानी, भाप, समुद्र, तीन चीजे नही हैं। यह एक ही चीज का यात्रिक चक्र है। पानी के बीच से कोई बूद मुक्त होकर पानी के बाहर नही हो पाती। चक्र घूमता रहता है। जहा तक मोक्ष का सम्बन्ध है, वहा से लौटना मुश्किल है। क्योंकि यांत्रिकता छूट जाए, चित्त पूर्ण चेतन हो जाए, तो ही मोक्ष को जा सकता है। पूर्ण चेतना से लौटना असम्भव है। हा, संसार में कोई चक्कर लगा सकता है। एक मनुष्य, हजार बार मनुष्य होकर चक्कर लगा सकता है। वही-वही चक्कर लगा सकता है क्योकि सोया हुआ है। अगर जग जाए तो चक्कर लगाना बद कर दे, बाहर हो जाए चक्कर के। चूकि मोक्ष समस्त चक्कर के बाहर हो जाने का नाम है, इसलिए वापस चक्कर नही लगाया जा सकता। पानी की बूद मूर्छित है, उसमें जो आत्माए हैं, वे निगोद में ही हैं। पदार्थ का जगत निगोद मे ही है। वही तो पूरा चक्कर है, हम कह सकते हैं कि पानी गरम करेंगे तो भाप बनेगा। ऐसा पानी कभी नहीं देखा गया जो इन्कार कर दे कि मैं भाप नही बनता हू उसके पास कोई चेतना नहीं है। हम पूर्वसूचित कर सकते हैं पानी के बाबत। लेकिन आदमी के बाबत पूर्वसूचित करना मुश्किल है। ऐसा जरूरी नहीं कि प्रेम करेंगे तो वह प्रेम करेगा ही। बिल्कुल जरूरी नहीं, साधारणतः जरूरी है। लेकिन एकदम जरूरी नहीं है। और इसलिए आदमी प्रिडिक्शन के थोड़ा बाहर है क्योंकि उसमे चेतना है। उसका पक्का नहीं बताया जा सकता कि वह क्या करेगा ? पदार्थ के बाबत पक्का बताया जा सकता है। इसलिए पदार्थ

का विज्ञान बन गया है। और आदमी का विज्ञान अभी तक नहीं बन पा रहा है। न बनने का कारण यह है कि पदार्थ की सारी व्यवस्था यान्त्रिक है, नियम पक्का है। इतने पर गर्म करो पानी भाप बन जाएगा, इतने पर ठंडा करो बर्फ बन जाएगा। इसमे कोई सन्देह ही नही है—चाहे तिब्बत में करो, चाहे चीन मे करो, चाहे ईरान मे करो, कही भी करो। वह भाप बनेगा उतने पर, उतने पर ही बर्फ बनेगा। वह नियम पक्का है क्योकि यांत्रिक है पूरा। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर आते हैं यान्त्रिकता टूटती चली जाती है। आदमी मे आकर भी यान्त्रिकता बहुत शिथिल हो जाती है। आदमी के बाबत पक्का नही कहा जा सकता कि वह क्या करेगा ? आप ऐसा करोगे तो वह क्या करेगा ? बिल्कुल ही प्रिडिक्शन के बाहर काम करने वाला आदमी मिल सकता है। तरह-तरह के लोग हैं, और उनकी तरह-तरह की चेतना है। लेकिन मोक्ष मे तो प्रिडिक्शन बिल्कुल ही नही हो सकती। क्योकि वहा तो जितना पूर्ण मुक्त है, पूर्ण जागरण है, उसकी बाबत तुम कुछ भी नही कह सकते। क्योकि वहा कोई नियम का यत्रवत् व्यवहार नही है। मनुष्य मे इसलिए तकलीफ होती है क्योंकि मनुष्य का विज्ञान नही बन सका पूरी तरह। मनुष्य का पूर्ण विज्ञान बनाना मुश्किल भी है। किसी को हम गाली देंगे तो साधारणतः वह क्रोध करेगा लेकिन कोई महावीर मिल सकता है जिसे आप गाली दे तो वह चुपचाप खड़ा रहे और क्रोध न करे। आदमी जितना चेतन हो जाएगा उतना ही उसकी बाबत कुछ नही कहा जा सकता कि गणित के हिसाब से ऐसा होगा। यह प्रकृति चक्र है बिल्कुल। वर्षा आती है, सर्दी आती है, गर्मी आती है, चक्र घूम रहा है। नदिया हैं, पानी है, पर्वत है। बादल बने है लौट रहे है, चक्कर चल रहा है। जितने नीचे उतरेंगे, चक्कर उतना सुनिश्चित है। जितना ऊपर उठेंगे, चक्कर उतना शिथिल है। जितना ऊपर उठते चले जाएगे, चक्कर उतना शिथिल होता चला जाएगा। पूर्ण उठ जाने पर चक्कर नही है, सिर्फ आप रह जाते हैं, कोई दबाव नही है, कोई दमन नही है, कोई जबरदस्ती नही है। सिर्फ आपका होना है। यही मुक्ति, स्वतंत्रता का अर्थ है। अमुक्ति, बंधन, परतन्त्रता का यही अर्थ है कि बधे हुए चक्कर लगा रहे हैं, कुछ उपाय नही है। बटन दबाते हैं, पंखे को चलना पड़ता है, कोई उपाय नही है। पंखे की कोई इच्छा नही है। कोई स्वतन्त्रता नही है। बंधन से मोक्ष की ओर जो यात्रा है, वह अचेतन से चेतन की ओर यात्रा है।

चर्चा : पांच
२६.८.६८ रात्रि

५

प्रश्न—आपने कहा कि महावीर की आत्मा मुक्त होकर भी वापिस आ गयी थी—कृपया इसे स्पष्ट करें। क्या मुक्त आत्मा घूम कर फिर निगोद अवस्था में नहीं पहुंच जाती ?

उत्तर—महायान में एक बहुत मधुर कथा का उल्लेख है। बुद्ध का निर्वाण हुआ। वह मोक्ष के द्वार पर पहुच गए। द्वारपाल ने द्वार खोल दिया। बुद्ध को कहा : स्वागत है, आप भीतर आए। लेकिन बुद्ध उस द्वार की ओर पीठ करके खडे हो गए। और उन्होंने द्वारपाल से कहा : जब तक पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी अमुक्त है, तब तक मैं भीतर कैसे आ जाऊं। अशोभन है यह। लोग क्या कहेंगे ? अभी पृथ्वी पर बहुत लोग बंधे हैं, दुखी हैं, और बुद्ध आनन्द मे प्रवेश कर गए ! तो मैं रुकूंगा। मैं इस द्वार से सभी के बाद ही प्रवेश कर सकता हू।

यह कहानी महायान बौद्धो में प्रचलित है। इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति मुक्त भी हो सकता है, लेकिन मुक्त हो जाना ही मोक्ष मे प्रवेश नही है। इस बात को समझ लेना जरूरी है कि मुक्त होना मोक्ष का प्रवेश-द्वार है। मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति मोक्ष मे प्रवेश पा सकता है, मुक्त हुए बिना प्रवेश नही पा सकता है। लेकिन मुक्त हो जाना ही प्रवेश नही है। ठेठ द्वार पर भी खडे होकर कोई वापिस लौट सकता है और जैसा कि मैंने पीछे कहा कि एक बार वापिस लौटने का उपाय है। वह मैंने पीछे समझाया भी कि क्यो ऐसा उपाय है। जो उपलब्ध हुआ है वह अगर अभिव्यक्त नही हो पाया, जो पाया है अगर वह बांटा नही जा सका, जो मिला है अगर वह दिया नहीं जा सका तो एक जीवन की वापिस उपलब्धि की सम्भावना है। यह सम्भावना वैसी ही है जैसा मैंने कहा कि कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैंडल चलाता हो, फिर पैंडल चलाना बंद कर दे तो साइकिल उसी क्षण नहीं रुक जाती। एक प्रवाह है गति का कि पैंडल रुक जाने पर भी साइकिल थोड़ी दूर बिना पैंडल चलायी जा सकती है, लेकिन अन्तहीन नही जा सकती, बस

थोड़ी दूर जा सकती है। यह जो थोड़ी देर का वक्त है, जबकि पैंडल चलाना बन्द हो गया तब भी साइकिल चल जाती है, ठीक ऐसे ही वासना से मुक्ति हो जाए तो भी थोडी देर जीवन चल जाता है। वह अनन्तजीवन का मोमेंटम है पैंडल चलाना बन्द कर देने के बाद, कोई चाहे तो थोडी देर साइकिल पर सवार रह सकता है, कोई चाहे तो ब्रेक लगाकर नीचे उतर सकता है। सवार रहना पड़ेगा, ऐसी भी कोई अनिवार्यता नही है। पैंडल चलाना बंद हो गया है तो व्यक्ति उतर सकता है। लेकिन न उतरना चाहे तो थोडी देर चल सकता है, बहुत देर नही चल सकता। जैसा मैंने कहा कि जीवन की व्यवस्था मे एक जीवन समस्त वासना के क्षीण हो जाने पर भी चल सकता है। मगर यह जरूरी नही है। कोई व्यक्ति सीधा मोक्ष मे प्रवेश करना चाहे तो कर जाए लेकिन मुक्त व्यक्ति चाहे तो एक जीवन के लिए वापस लौट आता है। ऐसे जो व्यक्ति लौटते हैं इन्ही को मैं तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर, ईश्वरपुत्र कह रहा हू यानी ऐसा व्यक्ति जो स्वयं मुक्त हो गया है और अब सिर्फ खबर देने, वह जो उसे फलित हुआ है, घटित हुआ है उसे बाटने, उसे बताने चला आया है। हम भोगने आते हैं, वह बाटने आता है। इतना ही फर्क है। और जो स्वय न पा गया हो, वह न तो बाट सकता है, न इशारा कर सकता है। एक जीवन के लिए कोई भी मुक्त व्यक्ति रुक सकता है लेकिन जरूरी नही है। सभी मुक्त व्यक्ति रुकते हैं, ऐसा भी नही है। लेकिन जो व्यक्ति रुक जाते हैं इस भांति, वे हमे बिल्कुल ऐसे लगते हैं जैसे कि वे ईश्वर के भेजे गए दूत हो क्योंकि वे पृथ्वी पर हमारे बीच मे नही आते। वे उस दशा से लौटते हैं, जहा से साधारणतः कोई भी नही लौटता है। इसलिए अलग-अलग धर्मों मे अलग-अलग धारणा शुरू हो गई। हिन्दू मानते हैं कि वह अवतरण है परमात्मा का, ईश्वर स्वय उतर रहा है। क्योकि यह जो व्यक्ति है, इसे अब मनुष्य कहना किसी भी अर्थ मे सार्थक नही मालूम पडता। क्योकि न तो इसकी कोई वासना है, न इसकी कोई तृष्णा है, न इसकी कोई दौड़ है, न कोई महत्वाकाक्षा है। यह अपने लिए जीता भी नहीं मालूम पड़ता। अपने लिए श्वास भी नहीं लेता। तो सिवाय ईश्वर के यह कौन हो सकता है? और मुक्त व्यक्ति करीब-करीब ईश्वर हो गया है। तो हिन्दुओं ने उसे अवतरण कहा है, यानी ऊपर से उतरना जहा हम जाना चाहते हैं। स्वभावत: जिन्होंने भी अवतरण की यह धारणा बनाई, उन्हे वह ख्याल नहीं है कि यह व्यक्ति भी यात्रा करके ऊपर गया होगा तो ही यह वापस लौटा है। इस आधे हिस्से

पर उनकी दृष्टि नहीं है। इसलिए हिन्दुओं ने अवतरण कहा है। जैनों ने अवतरण की बात ही नही कही; उन्होंने तीर्थंकर कहा है। तीर्थंकर का मतलब है शिक्षक, गुरु। तीर्थंकर का अर्थ है जिसके मार्ग पर चलकर कोई पार जा सकता है, जिसके इशारे को समझकर कोई पार उतर सकता है। लेकिन पार उतरने का इशारा वही दे सकता है जो पार तक हो आया हो। अगर मैं इस किनारे पर खड़ा होकर बता सकू कि वह रहा दूसरा किनारा तो अगर इसी किनारे से वह किनारा दिखता हो तो आपको भी दिखता होगा। तब मुझे बताने की जरूरत नही है। किनारा कुछ ऐसा है कि दिखता नही है। और जब भी कोई इशारा कर सकता है कि वह रहा किनारा तो एक ही अर्थ है उसका कि वह उस किनारे से होकर लौटा हुआ व्यक्ति है, नही तो उसकी ओर इशारा कैसे कर सकता है। अगर सबको दिखाई पडता होता तो हमको भी दिखाई पड जाता। हम सब को दिखाई नही पडता। सिर्फ उस व्यक्ति का इशारा दिखाई पड़ता है, व्यक्ति की आखो की शाति दिखाई पड़ती है, उसके प्राणो के चारों ओर झरता हुआ आनन्द दिखाई पडता है, उसकी ज्योति दिखाई पड़ती है। किनारा नही दिखाई पडता लेकिन उसका इशारा दिखाई पडता है और वह आदमी आश्वासन देता हुआ दिखाई पडता है। उसका सारा व्यक्तित्व आश्वासन देता हुआ मालूम पडता है कि वह किसी दूसरे किनारे का अजनबी है, किसी और तल को छूकर लौटा है। कुछ उसने देखा है जो हमे दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन यह व्यक्ति भी उस किनारे की ओर इशारा कैसे कर सकता है जहां यह हो न आया हो ? तीर्थंकर का मतलब ही यह हुआ कि जो उस पार को छूकर लौट आया है इस पार खबर देने को। और मैं मानता हू कि उचित ही है कि जीवन मे ऐसी व्यवस्था हो कि जो उस पार जा सके, कम से कम एक बार तो लौट कर खबर दे सके। अगर यह व्यवस्था न हो, अगर जीवन के अन्तर्नियम का यह हिस्सा न हो तो शायद हमे कभी भी खबर न मिले। आज कोई व्यक्ति चांद से होकर लौट आया है तो चाद के सम्बन्ध में हमें बहुत सी खबर मिली है। चाद यहा से दिखाई भी पड़ता है। परमात्मा तो यहां से दिखाई भी नहीं पड़ता। उसकी खबर मिलने का तो कोई सवाल ही नहीं। लेकिन कभी कोई उसको छूकर लौट आए तो खबर दे सकता है। तीर्थंकर का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो छूकर लौट आया है शायद खबर देने ही; जो उसे मिला उसे बांटने, जो उसने पाया उसे बताने। जैनों ने अवतरण की बात नहीं की। क्योंकि ईश्वर की धारणा उन्होंने स्वीकार नहीं की। इसलिए एक ही

रास्ता था कि जो व्यक्ति गया हो उस किनारे तक वह वापस लौटकर खबर देने आ गया हो।

ईसाई हैं। वे न तीर्थंकर की कोई धारणा करते हैं, न अवतार की। वे तो सीधा ईश्वरपुत्र हैं—ईश्वर के बेटे। क्योंकि ईश्वर के सम्बन्ध में जो खबर देता हो वह ईश्वर के इतना निकट होना चाहिए जितना की बाप के निकट बेटा हो। बेटे का और कोई मतलब नहीं है। उसका मतलब इतना है कि जो उसके प्राणो का हिस्सा हो, उसका ही खून बहता हो जिसमें, वही तो खबर देगा। जगत मे इस तरह की अन्य धारणाए है। लेकिन उन सब मे एक बात सुनिश्चित है और वह यह कि जो जानता है, वही जना भी सकता है। जिसने जाना है, पहचाना है, देखा है, जिया है, वही खबर भी दे सकता है। उसकी खबर कुछ अर्थ भी रखती है। मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का कोई सवाल नहीं है। महावीर लौट चुके हैं। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। बुद्ध के एक अवतरण की बात है। मैत्रेय के नाम से कभी भविष्य मे उनका एक अवतरण होगा। क्योंकि बुद्ध को जो सत्य की उपलब्धि हुई है, वह इसी जीवन मे हुई है। इसके पहले जीवन मे नही। बुद्ध ने जो पाया है इसी जीवन मे पाया है। एक जीवन का उन्हे उपाय और मौका है और बहुत सदियो से, जब से बुद्ध गए तब से उनको प्रेम करने वाले, उन्हे जानने वाले प्रतीक्षा करते हैं उस अवसर की जबकि बुद्ध अवतरित होंगे। बुद्ध के आने की एक बार उम्मीद है। जीसस की भी एक बार आने की उम्मीद है। जीसस को भी जो उपलब्धि हुई वह इसी जन्म मे हुई। दुबारा जन्म हो सकता है। लेकिन एक ही लिया जा सकता है और प्रतीक्षा भी हो सकती है।

फिर हमे ऐसा कठिन मालूम पड़ता है कि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ वर्ष होते हैं। जीसस को मरे भी दो हजार वर्ष होते हैं। तो दो हजार वर्ष तक वह जन्म नहीं हुआ। हमारी समय की जो धारणा है उसकी वजह से हमको ऐसी कठिनाई है। तो थोडी-सी समय की धारणा भी समझ लेनी जरूरी है। आप रात सोए, रात में एक सपना देखा। सपने में सैकडों वर्ष बीत जाते है। नीद टूटती है और आप पाते हैं कि झपकी लग गई थी और घड़ी मे अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ है। सपने में वर्षों बीत गए। और अभी आख खुली है तो देखते हैं कि घड़ी में एक ही मिनट सरका है। झपकी लग गई थी कुर्सी पर और एक लम्बा सपना देख गए। तब सवाल उठता है कि इतना लम्बा सपना वर्षों

बीतने वाला, एक मिनट में कैसे देखा जा सका ? देखा जा सका इसलिए कि जागने के समय की धारणा अलग है, समय की गति अलग है। सोने के समय की गति अलग है। मुक्त व्यक्ति के लिए समय की गति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वहा समय की गति है ही नही। हमारे तल पर समय की गति है। हम ऐसा सोच सकते हैं कि अगर हम एक वृत्त खीचें और एक वृत्त पर, परिधि पर तीन बिन्दु बनाए, वे तीनो काफी दूरी पर हैं, फिर हम तीनो बिन्दुओं से वृत्त के केन्द्र की तरफ रेखाए खीचें। जैसे-जैसे केन्द्र के पास रेखाए पहुंचती जाती हैं, वैसे-वैसे करीब होती जाती हैं। परिधि पर इतना फासला था। केन्द्र के पास आते-आते फासला कम हो गया। केन्द्र पर आकर दोनो रेखाए मिल गईं। परिधि पर दूरी थी, केन्द्र पर एक ही बिन्दु पर आकर मिल गई हैं। केन्द्र पर परिधि से खीची गई सभी रेखाएं मिल जाती हे। और जैसे-जैसे पास आती जाती हे वैसे-वैसे मिलनी चली जाती हैं। समय का बड़ा विस्तार है जितना हम जीवनकेन्द्र से दूर हं, समय उतना बडा है। और जितना हम जीवन केन्द्र के करीब आते-जाते हं, उतना समय छोटा होता जाता है। इसलिए कभी शायद ख्याल नही किया होगा कि दुख मे समय बहुत लम्बा होता है, सुख मे बहुत छोटा होता है। किसी को अपना प्रियजन मिल गया है, रात बीत गई है और सुबह प्रियजन विदा हो गया है तो वह कहता है कि कितनी जल्दी रात बीत गई। इस घड़ी को क्या हो गया कि आज जल्दी चली जाती है। घडी अपनी चाल से चली जाती है। घड़ी को कुछ मतलब नही है कि किस का प्रियजन मिला है किसका नही मिला है, घर मे कोई बीमार है, उसकी खाट के किनारे बैठकर आप प्रतीक्षा कर रहे हे। चिकित्सक कहते हैं बचेगा नही। रात बड़ी लम्बी हो गई है। ऐसा कि घडी के कांटे चलते हुए भी मालूम नही पड़ते। ऐसा लगने लगता है कि घड़ी आज चलती ही नही, रात बडी लम्बी हो गई है। दुख समय को बहुत बना देता है, सुख समय को एकदम सिकोड देता है। उसका कारण है क्योंकि सुख भीतर के कुछ निकट है, दुख परिधि के दूर है, परिधि नही। आनन्द समय को बिल्कुल मिटा देता है। इसलिए आनन्द कालातीत (टाइमलैस) है, वहां समय है ही नहीं, साधारण से सुख में समय छोटा हो जाता है, साधारण से दुख मे समय बड़ा हो जाता है। आइंस्टीन से कोई पूछ रहा था कि आप सापेक्षता का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) हमे समझाएं। आइंस्टीन ने कहा कि बहुत मुश्किल है समझाना क्योंकि जमीन पर थोड़े से लोग हैं, जो सापेक्ष की बात समझ सके हैं क्योंकि सापेक्ष के लिए

समझना बहुत कठिन है। सापेक्ष का मतलब है कि जो प्रत्येक परिस्थिति में छोटा-बडा हो सकता है। लम्बा-नीचा हो सकता है, जिसका कोई स्थिर होना नहीं है। फिर उसने कहा कि उदाहरण के लिए मैं कहता हूं कि तुम अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो, आधा घटा बीत जाता है, कितना लगता है। तो उस आदमी ने कहा कि क्षण भर। तो आइस्टीन ने कहा : छोड़ो प्रेयसी को। तुम एक जलते हुए स्टोव पर बैठा दिये गये हो और आधा घटा रखे गए हो। उसने कहा कि आधा घटा, क्या आप कह रहे हैं? तब तक तो मैं मर ही चुकूगा। आधा घटा! जलते हुए स्टोव पर। अनन्त हो जाएगा समय का, एक-एक क्षण गुजारना मुश्किल हो जाएगा, बहुत लम्बा हो जाएगा। आधा घटा बहुत ज्यादा हो जाएगा। तो आइस्टीन ने कहा कि सापेक्ष से मेरा यही प्रयोजन है। समय वही है लेकिन तुम्हारी चित्त की अवस्था के अनुसार बडा-छोटा हो जाता है। स्वप्न मे एकदम छोटे समय मे कितनी लम्बी यात्रा हो जाती है। जागरण में नही हो पाती। जागने मे समय की परिधि पर हम खड़े हैं। सोने मे हम अपने भीतर आए हैं। तो स्वप्न भीतर की ओर है, जागृति बाहर की ओर है। स्वप्न मे हम अपने भीतर बद हैं, केन्द्र के ज्यादा निकट हैं। जागने मे ज्यादा दूर हैं। जब कोई व्यक्ति केन्द्र पर पहुंच जाता है, उसका नाम समाधि है। तब समय एकदम मिट जाता है, एकदम लीन हो जाता है। समय होता ही नही। सब ठहर गया होता है। फिर क्षण हो जाता है। यह समयरहित कालातीत क्षण है। इस क्षण मे ठहरे हुए पच्चीस सौ साल बीत गए कि पच्चीस हजार साल बीत गए, कोई फर्क नही होता। सब फर्क परिधि पर है, केन्द्र पर कोई फर्क नही है। वहां सब परिधि से खीची गई रेखाए सयुक्त हो गई हैं तो ऐसा व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है उस क्षण की जब यह सर्वाधिक उपयोगी हो सके और ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते-करते ही मोक्ष मे विदा ले लेते हो। शायद उनके योग्य पृथ्वी पर समय न बन पाता हो। बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते हुए विदा हो गए हैं क्योंकि वह बन नही पाई बात। और इसलिए इस तरह की चेष्टाएं चलती हैं कि शिक्षक के जन्म लेने के पहले कुछ और व्यक्ति जन्म लेते हैं, जो हवा और वातावरण तैयार करते हैं। जैसा जीसस के पहले एक व्यक्ति पैदा हुआ—सन्त जोन। उसने सारे यहूदी मुल्कों में, जेरूसलम में, इजरायल मे, सब ओर खबर पहुंचाई कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। उसने हजारों लोगों को दीक्षित किया कि कोई आ रहा है,

तैयार हो जाओ। लोग पूछते कि कौन आ रहा है तो वह कहता कि प्रतीक्षा करो, क्योंकि तुम उसे देखकर ही समझ सकोगे, मैं कुछ बता नहीं सकता। लेकिन कोई आ रहा है। उसकी उसने तैयारी की। उसने पूरी अपनी जिंदगी गांव-गांव घूमकर जीसस के लिए हवा तैयार की। और जब जीसस आ गए तो जोन ने जीसस को आशीर्वाद दिया और इसके बाद वह चुपचाप बिदा हो गया। फिर उसका कोई पता नहीं चला। फिर जोन कहां गए ? वह जो हवा उसने बनाई थी, जीसस ने उसका पूरा उपयोग किया। बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि जब कोई शिक्षक वापस लौटे तो वह कुछ प्राथमिक शिक्षकों को भेजे जो हवा पैदा कर दें। थियोसाफी ने अभी एक बहुत बड़ी मेहनत की थी लेकिन वह असफल हो गई। जैसा कि मैंने कहा था कि बुद्ध के एक जन्म की सम्भावना है। थियोसाफिस्टो ने मैत्रेय को लाने के लिए भारी प्रयास किया। यह प्रयास अपने किस्म का अनूठा था। इस प्रयास मे बड़ी साधना चली। इसमे कुछ लोगो ने प्राणों को सकट मे डालकर आमत्रण भेजा और कृष्णमूर्ति को तैयार किया कि मैत्रेय की आत्मा उसमे प्रविष्ट हो जाए। और कोई बीस-पच्चीस वर्ष कृष्णमूर्ति को तैयारी मे लगे। कृष्णमूर्ति की जैसी तैयारी हुई, दुनिया मे वैसी किसी आदमी की शायद ही हुई हो। अत्यन्त गूढ साधनाओं से कृष्णमूर्ति को गुजारा गया। ठीक वक्त पर तैयारिया पूरी हुई। सारी दुनिया मे कोई छ हजार लोग एक स्थान पर एकत्र हुए जहा कृष्णमूर्ति मे मैत्रेय की आत्मा के प्रविष्ट होने की घटना घटने वाली थी। लेकिन शायद भूल-चूक हो गई। वह घटना नही घटी। और कृष्णमूर्ति अत्यन्त ईमानदार आदमी हैं। अगर कोई बेईमान आदमी उनकी जगह होता तो वह शायद अभिनय करने लगता कि घटना घट गई है। कृष्णमूर्ति ने इन्कार कर दिया गुरु होने से। कृष्णमूर्ति का सवाल ही न था। सवाल तो किसी और आत्मा का था। आत्मा के लिए तैयारी थी उनके शरीर की। क्योंकि ऐसा अनुभव किया गया है कि मैत्रेय के उतरने मे बडी बाधा पड़ रही है। कोई शरीर इस योग्य नही मिल रहा है कि मैत्रेय उतर जाएं। और कोई गर्भ ऐसा निर्मित नही हो रहा है कि मैत्रेय के लिए अवसर बन जाए। तो हो सकता है कि दो चार हजार वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़े। हो सकता है कि प्रतीक्षा समाप्त हो जाए, और बस चेतना बिदा हो जाए। लेकिन आशा कम है। वह प्रतीक्षा जारी रहेगी। कृष्णमूर्ति के लिए किया गया प्रयोग असफल हो गया। और अब ऐसा कोई प्रयोग पृथ्वी पर नहीं किया जा रहा है। अब तक सदा आकस्मिक

शिक्षक ही उतरे थे, कभी-कभी तैयारियां भी हुई थीं। तो वह जो मैंने कहा एक बार लौटने का उपाय है मुक्त आत्मा को और यह उसका हक है, उसका अधिकार है क्योंकि जिसने जीवन मे इतना पाया उसे अगर बाटने का और खबर देने का अधिकार भी न मिलता हो तो वह जीवन बडा असगत और तर्कहीन है। उपलब्धि के बाद अभिव्यक्ति का मौका अत्यन्त जरूरी है। इस-लिए मैंने कहा कि महावीर पिछले जन्म मे उपलब्ध किये हैं, इस जन्म मे बाटे हैं, उनकी चेतना के लौटने का कोई सवाल नही है।

दूसरी एक बात आपने पूछी है कि हम प्रकृति मे तो चक्रीय गति देखते हैं। सब चीजे दौडती हैं, घूमती हैं। सब चीजें लौट कर फिर घूम जाती हैं। तो मन मे सम्भावना उठती है, कल्पना उठती है कि कही ऐसा तो नही है कि निगोद से आत्माए मोक्ष तक जाती हो, फिर वापस निगोद मे पहुंच जाती हो। क्योकि जहा सभी कुछ चक्र मे घूमता हो, वहा सिर्फ एक आत्मा की गति को चक्रीय न माना जाए यह कुछ नियम का खडन होता मालूम पडता है। सब चीजे लौट आती हे, बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष मे बीज आ जाते हे। फिर बीज वृक्ष बनते हे, फिर वृक्ष मे बीज आ जाते हे। सब लौटता चला जाता है। किसी वैज्ञानिक को कोई पूछ रहा था कि मुर्गी और अडे में कौन पहले है। बहुत जमाने से आदमियो ने यह बात पूछी है। उस वैज्ञानिक ने कहा कि पहले का तो सवाल ही नही है क्योकि मुर्गी और अडा दो चीजें नही हे। तो उस आदमी ने पूछा कि अगर दो चीजे नही हे तो मुर्गी क्या है? अडा क्या है? वैज्ञानिक ने फिर बहुत बढिया बात कही कि मुर्गी है अडे का रास्ता, अडे पैदा करने के लिए। या इससे उल्टा कह सकते हे कि अडा मुर्गी का रास्ता है, मुर्गी पैदा करने के लिए। सब चीजें घूम रही हैं। घडी के काटे की तरह सब घूम रहा है। फिर काटे बारह पर आ जाते हैं। सिर्फ आत्मा के लिए ही इस नियम को तोडना उचित नही मालूम पडता क्योकि विज्ञान बनता है निरपवाद नियमो से। अगर जीवन के सब पहलुओ पर यह सच है कि बच्चा जवान होता है, जवान बूढ़ा होता है, बूढ़ा मरता है, बच्चे पैदा होते है, फिर जवान होते हैं, फिर बूढे होते हैं, फिर मरते हैं। अगर जीवन की चक्रीय गति इस तरह चल रही है और आत्मा का पुनर्जन्म मानने वाले भी इस चक्रीय गति को स्वीकार करते हे कि जो अभी मरा वह फिर बच्चा होगा, वह फिर जवान होगा, फिर बूढ़ा होगा, फिर मरेगा, फिर बच्चा होगा, फिर वह चक्र घूमता रहेगा तो सिर्फ आत्मा को यह चक्र क्यों लागू नहीं

होगा। साधारणतः लागू नही होता। नियम यही है और ऐसे ही सब घूमता चलता है। मुक्त आत्मा एक अनूठी घटना है, सामान्य घटना नहीं है। सामान्य नियम लागू भी नही होते। असल मे चक्र के बाहर जो कूद जाता है, उसी को मुक्त आत्मा कहते है। नही तो मुक्त कहने का कोई मतलब नही है। ससार का मतलब है जो घूम रहा है, तो घूमता ही रहता है। मुक्त का मतलब है जो इस घूमने के बाहर छलाग लगा जाता है। मुक्त को अगर हम फिर चक्रीय गति में रख लेते है तो मुक्ति व्यर्थ हो गई। अगर मोक्ष से फिर निगोद मे आत्मा को आना है तो पागल है वे जो मुक्त होने की कोशिश कर रहे है। क्योकि इससे कोई मतलब ही नही। अगर काटे को बारह पर लौट ही आना है—वह कुछ भी करे, चाहे मुक्त हो, चाहे न हो—फिर तो मोक्ष अर्थहीन हो गया। अगर घूमते ही रहना है, हम घूमते रहेगे, अगर छलाग लगानी है तो हमे सजग होना पडेगा इस चक्र के प्रति। जैसे कि कल आपने क्रोध किया, फिर पश्चात्ताप किया। आज फिर आप क्रोध कर रहे है, फिर पश्चात्ताप कर रहे है। फिर क्रोध है, फिर पश्चात्ताप है। हर क्रोध के पीछे पश्चात्ताप, हर पश्चात्ताप के आगे फिर क्रोध है। एक चक्र मे आप घूम रहे है। और अगर इस चक्र मे आप खडे रहते है, तो घूमना जारी रहेगा। लेकिन यह भी हो सकता है कि आप चक्र के बाहर छलाग लगा जाए। छलाग लगाने का मतलब है कि एक आदमी न तो क्रोध करता है न पश्चात्ताप करता है। बाहर हो जाता है। तब उसे कोई गाली देता है तो न वह क्षमा करता है, न वह पश्चात्ताप करता है। वह कुछ करता ही नही, वह एकदम बाहर हो जाता है। यह जो बाहर हो जाना है, यह जो छिटक जाना है, चक्र के बाहर, यह तो चक्र मे नही गिना जा सकता। अगर इसे भी चक्र मे गिना जा सकता है तो महावीर नासमझ हैं, बड़ी भूल मे पड़े है। बुद्ध नासमझ है, नासमझी मे पडे है। क्राइस्ट भी गल्ती कर रहे हैं। असल मे तब मोक्ष की बात करने वाले सब पागल है। क्योकि अगर सबको घूमते ही रहना है तो सब बात व्यर्थ हो गई। अगर हम मोक्ष की धारणा को, जो सतत (कान्स्टेन्ट) है, समझ लें तो उसका मतलब ही कुल इतना है कि चक्र के बाहर कूदा जा सकता है और जो व्यक्ति इस चक्र के प्रति सचेत हो जाएगा, वह बिना कूदे नही रह सकता क्योकि चक्र बिल्कुल कोल्हू के बैल की तरह घूम रहा है। और कोल्हू के बैल में कौन जुता रहना चाहेगा।

जीवन की जो साधारण यात्रा है उसकी जो लोहपटरी है, उससे कोई

अगर छलांग लगा जाता है, तो वह मुक्त हो जाता है। उसको वापस चक्र में रखने का कोई उपाय नही है। हा, जैसा मैंने कहा, एक बार वह स्वयं, अपनी इच्छा से चाहे तो उस चक्र में लौट सकता है जिसमें अपने प्रियजनों को, अपने मित्रों को, उन सबको जिनके लिए वह आया है आनन्द में लाना चाहता है। एक बार फिर वापस आकर बैठ सकता है उस चक्र पर लेकिन चक्र पर बैठा हुआ भी वह घूमेगा नही। घूमेगा वह इसलिए नही कि अब घूमने का कोई मतलब न रहा। और इसलिए हम उसे पहचान भी पाएगे कि कुछ अजब तरह का आदमी है, कुछ भिन्न तरह की बात है, यह कुछ और अनुभव करके लौटा है। अब वह खडा भी होगा हमारे बाजार मे लेकिन हमारे बाजार का हिस्सा नही होगा। अब वह हमारे बीच भी खडा होगा लेकिन ठीक हमारे बीच नही होगा। कही हमसे दूर फासले पर होगा। उस व्यक्ति मे दोहरी घटना घट रही होगी। वह होगा हमारे बीच और हमसे बिल्कुल अलग होगा। यह हम प्रति-पल अनुभव कर पाएगे कि कही उससे हमारा मेल होता भी है, कही नही भी होता और कही बात बिल्कुल अलग हो जाती है। वह कुछ और ही तरह का आदमी है। यह जो वैज्ञानिक हैं, भौतिकवादी हैं, वह यही कह रहा है कि यहा तो सब नियम वही पहुच जाते हैं जहा से हम आते है। आपका जाने का कोई उपाय नही हैं। सागर का पानी सागर मे पहुच जाता है, पत्तो मे आई मिट्टी वापिस मिट्टी मे पहुच जाती है। पत्ते गिर कर फिर मिट्टी हो जाते हैं। वही वैज्ञानिक कहता है, वही भौतिकवादी कहता है लेकिन धार्मिक खोजी यह कह रहा है कि एक ऐसी भी जगह है जहा से हम नही आए हैं और जहा जा सकते हैं और जहा हम चले जाए तो फिर इस चक्कर मे गिर जाने का कोई उपाय नही है।

अगर यह सम्भव नही है तो धर्म की सम्भावना खत्म हो गई; साधना का प्रयोजन व्यर्थ हो गया। फिर कुछ बात ही नही। फिर तो चक्र मे हम घूमते रहेंगे। आवागमन से छूटने की जो कामना है, यह उन लोगों को उठी है जिन्हें इस घूमते हुए चक्र की व्यर्थता दिखाई पड़ गई कि जन्मो-जन्मो से एक-सा घूमना हो रहा है, हम घूमते चले जा रहे हैं और इससे छलाग लगाने का ख्याल नहीं आता। छलांग लग सकती है; छलांग बिल्कुल घटना है जिसके लिए फिर वे नियम लागू नहीं होते। जैसे आप छत पर खड़े हैं। दस आदमी छत पर खड़े हैं। कोई भी छत से नहीं गिर रहा है। एक आदमी छत पर से छलांग लगाता है। यह आदमी छत से बाहर हो गया। छत इसे जमीन की कशिश से बचा रही

थी। अब जमीन इसे खींचेगी अपनी तरफ जो कि छत पर खड़े हुए किन्ही लोगों को नही खींच सकती है। अभी जो हमने चाद पर आदमी भेजा इसके लिए सबसे भारी कठिनाई एक ही है। और वह यह कि जमीन की कशिश से कैसे छूटें। दो सौ मील तक जमीन के ऊपर चारो तरफ जमीन की कशिश का प्रभाव है। इसके बाद एक इंच बाहर हो गए कि जमीन का खींचना खत्म हो गया। तो जो सैकड़ों वर्षों से चिन्तना चलती थी कि चांद पर कैसे पहुंचे, उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जमीन से कैसे छूटें? क्योंकि जमीन का गुरुत्वाकर्षण इतनी जोर से खीचता है कि उसके बाहर कैसे हो जाएं? यह पहले सम्भव नही हो सकता था, अब सम्भव हो गया है। क्योंकि हम इतना बड़ा विस्फोट पैदा कर सके रोकेट के पीछे कि उस विस्फोट के धक्के मे यह रोकेट गुरुत्वाकर्षण के घेरे के बाहर हो गया। एक बार बाहर हो गया पृथ्वी की जकड़ के कि अब वह कही भी जा सकता है। अब कोई सवाल नही है कही जाने का। दूसरा डर चांद पर उतारने का था कि पता नही कितनी दूरी से चाद खींचेगा या नही खीचेगा। तो हर एक कशिश का क्षेत्र है एक, हर नियम का एक क्षेत्र है। और उस नियम के बाहर उठने का उपाय है। अपवाद के रूप मे बाहर जा सकते हैं उस क्षेत्र के। जीवन की जो गहरी परिधि है उसके केन्द्र मे पृथ्वी की कशिश है, ऐसे जीवन के चक्र का केन्द्र वासना है। अगर जीवन के बाहर छिटकना है तो किसी न किसी रूप मे वासना के बाहर निकलना होगा। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो तृष्णा है, जिसको बुद्ध तण्हा कहते हैं, वह जो वासना है, जो हमे स्थिर नही होने देती और कहती है, वह लाओ, वह पाओ, वह बन जाओ, हमें चक्कर में दौड़ाती रहती है। वह इशारे करती है चक्र के भीतर और कहती है कि धन कमाओ, यश कमाओ, स्वास्थ्य लाओ। वह कहती है और जियो, ज्यादा जियो, ज्यादा उम्र बनाओ। वह जो भी कहती है, वह सब उस चक्र के भीतर के पहलू हैं। जो व्यक्ति एक क्षण भी वासना के बाहर हो जाए, वह अन्तरिक्ष मे यात्रा कर गया—उस अन्तरिक्ष में, जो हमारे भीतर है। वह जीवन के चक्र के बाहर छलाग लगा गया। क्योंकि उसने कहा कि न मुझे यश चाहिए, न धन चाहिए, न कोई काम चाहिए, मुझे कुछ चाहिए ही नही? मैं जो हूं, हू। मैं कुछ होना नही चाहता। वासना का मतलब है कि मैं जैसा हूं वैसा नहीं, जो मेरे पास है वह काफी नही, कुछ और चाहिए। छोटा क्लर्क बड़ा होना चाह रहा है, छोटा मास्टर बड़ा मास्टर होना चाह रहा है। छोटा मिनिस्टर बड़ा मिनिस्टर होना चाह रहा है। तो सारे खोजियों की

खोज यह है कि एक क्षण के लिए भी वासनाओं के बाहर ठहर जाओ और वह क्षेत्र जो चक्कर लगवाता था, उसके आप बाहर हो जाओ। और एक क्षण भी आप बाहर हो गए तो आप हैरान हो जाएगे यह जानकर कि जिसे हम अनन्त जन्मों से पाने की आकाक्षा कर रहे हैं वह हमारे पास ही था, वह मिला ही हुआ था। वह हमें उपलब्ध ही था। अपने तरफ देखने भर की जरूरत थी। लेकिन अन्तर्यात्रा नही हो सकती। जैसे अन्तरिक्षयात्रा नही हो सकती जब तक कि जमीन की कशिश से छूट न जाए, वैसे ही अन्तर्यात्रा नही हो सकती जब तक हम वासना की कशिश से छूट जाए। और वासना की कशिश जमीन की कशिश से ज्यादा मजबूत है। क्योंकि जमीन की जो कशिश है वह एक जड शक्ति है खीचने की। वासना की जो कशिश है, वह एक सजग चेतनशक्ति है खीचने की। आप रास्ते पर चलते हैं, आपको कभी पता नही चलता कि जमीन आपको खीच रही है। यह जब पता चले तब हम कशिश से बाहर हो जाए। अभी अन्तरिक्ष मे जो यात्री गए उनको पता चला कि यह तो बडा मुश्किल मामला है। एक सैकेंड भी कुर्सी पर बिना बेल्ट बाधे नही बैठा जा सकता। बेल्ट छूटा कि आदमी उठा, छप्पर से लग गया एकदम। और उनको पहली दफा जाकर पता लगा कि वजन जैसी कोई चीज ही नही है। जमीन की कशिश है, जमीन का खिचाव है। चूंकि चाद पर जमीन की कशिश बहुत कम है, इसलिए कोई भी आदमी छलांग लगाकर निकल सकता है। चाद की कशिश आठ गुनी कम है। जो आदमी जमीन पर आठ फीट छलाग लगा सकता है वह वहा आठ गुनी छलाग लगा सकेगा क्योंकि उसका वजन कम हो गया है। लेकिन हमे पता ही नही है कि हमे पूरे वक्त, जमीन खीचे हुए है क्योंकि हम उसी मे पैदा होते हैं, उसी मे पड़े होते हैं और उसी मे हम निर्धारित हो जाते हैं। हमको यह भी पता नही है कि वासना हमे चौबीस घटे खीचे हुए हैं क्योंकि हम उसी मे पैदा होते हैं। पैदा हुआ बच्चा कि वासना की दौड़ शुरू हुई। वासना ने उसे पकड़ना शुरू किया। उसे यह चाहिए, उसे वह चाहिए। उसे यह बनना है, उसे वह बनना है—दौड शुरू हो गई और चक्र जोर से घूमने लगा। इस चक्र के बाहर, जिसे भी छलांग लगानी हो, उसे वासना के बाहर होना पडता है और साक्षी का भाव वासना के बाहर ले जाता है। जैसे कोई व्यक्ति साक्षी हो गया वह वासना के बाहर चला जाता है और हमारी कठिनाई यह है कि जीवन में साक्षी होना बहुत कठिन है। हम नाटक, फिल्म तक मे साक्षी नही हो सकते। फिल्म के परदे पर, जहां कुछ

भी नहीं है, जहां सिवाय प्रकाश के, कम ज्यादा फेंके गए किरण-जाल के और कुछ भी नहीं है, वहा हम कितने दुखी, सुखी, क्या-क्या नहीं हो जाते ? तीन आयामो (थ्री डायमेन्शन्स) में एक फिल्म बनी है। जब पहली बार उसका प्रदर्शन हुआ तो बडी हैरानी हुई क्योकि उसमें तो बिल्कुल ऐसा दिखाई पड़ा कि आदमी पूरा है। यह सब जो फिल्में हैं दो आयामों में बनी हैं, लम्बाई-चौड़ाई गहराई नही है इनमे। गहराई फिल्म में आ जाती है तो फिर सच्चे आदमी में और फिल्म के आदमी मे कोई फर्क नही रहता। पर्दे पर जो दिखाई पड़ रहा है, वह बिल्कुल सच्चा हो गया है। जब पहली बार यह फिल्म बनी, लंदन मे उसका प्रदर्शन हुआ। उसमें एक घोड़ा है, एक घुड़सवार है जो भागा चला आ रहा है। हाल के सारे लोग एकदम झुक गए कि वह घोड़ा एकदम हाल के अन्दर से निकल जाए। एक भाला फेंका उस घुडसवार ने और सब लोग अपनी खोपडी बचाने की फिक्र मे पड गए कि कही वह खोपडी मे न लग जाए। तब पता चला कि आदमी उस पल मे कितना भूल जाता है कि यह परदा है। और हम सब रोज भूलते है। हम साक्षी नही रह पाते। टालस्टाय ने लिखा है "मैं बडा हैरान हुआ। मेरी मां रोज थियेटर जाती थी। रूस की सर्दी! बाहर थियेटर के बग्घी खडी रहती, बग्घी पर दरबान खडा रहता क्योकि मेरी मां कब बाहर आ जाए, पता नही। मैं देखकर हैरान हुआ कि मेरी मा थियेटर मे इतना रोती कि उसके रूमाल भीग जाते। बाहर हम आते और अक्सर ऐसा होता कि कोचवान बर्फ की वजह से मर जाता, तो उसे बाहर फिंकवा दिया जाता और मां आसू पोछती रहती फिल्म के। मैं दग रह जाता, हैरान रह जाता यह देखकर कि एक जिन्दा आदमी मर जाय हमारी कोच पर बैठा हुआ सिर्फ इसलिए कि हम उसको छुट्टी नही कर सकते, न हटा सकते, उसको कोच रखनी पडती क्योकि मा किसी वक्त बाहर आ सकती है। तो कोचवान बर्फ की ठड मे मर गया है। मा के सामने उसकी लाश फिंकवा दी गई है और दूसरा कोचवान सडक से पकड़ कर बैठा दिया गया है और कोच घर की तरफ चली गई है। मा पूरे रास्ते रोती रही है उस फिल्म के लिए, या उस नाटक के लिए जहां कोई मर गया था, या जहां कोई प्रेमी बिछुड़ गया था, या जहा कोई और दुर्घटना घट गई थी।

कई बार ऐसा हो जाता है कि बाहर की जिन्दगी हमें उतनी ज्यादा नही पकड़ती जितनी चित्र की कहानी पकड़ लेती है क्योंकि बाहर की जिन्दगी बहुत अस्त-व्यस्त है और चित्र की कहानी बहुत व्यवस्थित है और आपके मन

को कितना डुबा सके, उसकी सारी व्यवस्था की गई है। बाहर की जिन्दगी में यह सब व्यवस्था नही है। तो नाटक तक मे, फिल्म तक मे, हम साक्षी नही रह पाते। बहुत गहरे मे हम खोज करेंगे तो फिल्म और जीवन में फर्क ज्यादा नही है। वह शरीर उसी तरह विद्युत कणों से बना है, जिस तरह फिल्म के परदे पर बना हुआ शरीर विद्युत कणो से बना है। फिल्म या नाटक की कहानी जितना अर्थ रखती है, उससे ज्यादा हमारे जीवन की कहानी अर्थ रखती है। हा, फर्क इतना ही है कि वह तीन घटे की मंच है; यह शायद सत्तर साल की, सौ साल की मच है। इसमे अभिनेता बदलते चले जाते हैं, आते हैं, चले जाते हैं; यह नाटक चलता ही रहता है। इस नाटक मे दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नही हैं।

अगर हमे स्मरण आ सके कि यह एक लम्बा नाटक खेला जा रहा है, तो शायद हम भी साक्षी हो सकें। और फिर शायद नाटक के इन पात्रों मे क्या मैं हो जाऊ यह ख्याल टूट जाए। जो हम हैं, शायद हम उसी को चुपचाप निभाकर बिदा हो जाए। ऐसी चित्त की दशा मे जहा वासना टूट जाती है, तृष्णा टूट जाती है, जहां हम दौड मे बाहर खड़े हो जाते हैं और दौड सिर्फ नाटक रह जाती है व्यक्ति छलाग लगा लेता है। फिर भी क्योंकि हम नाटक मे जो खोए हैं, नाटक में जो भटके हैं, अभिनय ही जीवन रहा है, तो हमे वास्तविक जीवन की खबर समझ मे नही आती। जैसे कि नाटक के मंच के पीछे ग्रीन रूम है जहां कोई राम बना था कोई रावण बना था, मच पर लड़ रहे थे, झगड रहे थे, मगर पीछे ग्रीन रूम मे जाकर एक दूसरे को चाय पिला रहे हैं और गपशप कर रहे हैं। जिस दिन कोई देख पाता है वास्तविक जिन्दगी को तब हैरान होता है कि असली जिन्दगी के नाटक में राम और रावण जब पर्दे के पीछे चले जाते है तब चाय पीते हैं और गपशप करते हैं। सब झगडे खत्म हो जाते हैं। लेकिन वह ग्रीन रूम जरा गहरे में छिपा है और पर्दा बहुत लम्बा है। और पर्दे के बाहर ही हम पूरे वक्त रहते हैं कि हमें पता ही नही है कि पीछे ग्रीन रूम भी है। तो हम एक बड़े नाटक के हिस्से हैं, कभी आपने सोचा, एक नाटक के पात्र की तरह कभी देखा, कभी सुबह उठकर ख्याल किया कि एक नाटक शुरू होता है—रोज सुबह। रात थक जाते हैं, एक नाटक का अन्त होजाता है, फिर सुबह उठते हैं, नाटक शुरू हो जाता है। और कभी आपने सोचा कि कई बार आपको ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक में भूल-चूक न हो जाए।

एक फ्रेंच चित्रकार अमेरिका जा रहा था। उसके भुलक्कड़ होने की बड़ी कहानियां हैं। उसकी पत्नी और उसकी नौकरानी, दोनों उसको विदा देने एयरपोर्ट आईं। उसने जल्दी में नौकरानी को चूम लिया और पत्नी को कहा कि खुश रहना, बच्चों का ख्याल रखना, और वे दोनों घबड़ा गईं। उसकी पत्नी ने कहा . यह क्या करते हैं। ख्याल नहीं करते कि वह नौकरानी है, उसको आप चूमते हैं और मुझे नौकरानी बनाते हैं, मैं आपकी पत्नी हू। उसने कहा : चलो, बदले देता हू। फिर पत्नी को चूम लिया और नौकरानी को कहा . बच्चो का ख्याल रखना और कहा कि कभी-कभी चूक जाता हूं, ख्याल नही रख पाता। तो कुछ लोग ख्याल रख पाते हैं, कुछ लोग चूक जाते हैं। ख्याल पैदा करें हम चौबीस घंटे . यह मेरा पिता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा बेटा है इसका हमें ख्याल रखना पड़ता है चौबीस घंटे और अगर न ख्याल रखें तो दूसरे हमें ख्याल दिला देते हैं कि वह तुम्हारे पिता हैं, या खुद आदमी ख्याल दिला देता है कि मैं तुम्हारा पिता हू। वह नाटक हमे पूरे वक्त याद रखना पड़ता है, कही भूल न जाए, कही चूक न हो जाए। और जो इस नाटक को जितना अच्छी तरह से निबाह लेता है उतना कर्त्तव्यनिष्ठ है। मैं यह नही कहता हूं कि नाटक न निभाए। नाटक निभाने के लिए ही है और बड़ा मजेदार भी है। इसमे कुछ ऐसी तकलीफ भी नही है। बस एक ख्याल न भूल जाएं, और चाहे सब भूल जाए कि यह सिर्फ नाटक है और कही भीतर हमारे एक बिन्दु है जहा हम सदा बाहर है।

स्वामी रामतीर्थ जी हुए हैं। उनकी बड़ी अजीब सी आदत थी। अमरीका मे लोगो को बड़ी मुश्किल हुई क्योंकि वह हमेशा अन्य पुरुष (थर्ड पर्सन) मे ही बोलते थे। यहा तो उनके मित्र उन्हे पहचानने लगे थे। वहा तो बड़ी कठिनाई हुई। और हम अजीब-अजीब तरह के लोगो के थोड़े आदी भी हैं। सारी दुनिया इतनी आदी नही है। यहा महावीर, बुद्ध जैसे अजीब-अजीब लोग हुए हैं। उन्होंने हमें बहुत सी बातो की आदत डलवा दी है जोकि दुनिया मे बहुत लोगों को नही है। राम जब वहां पहुचे तो लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि वह कहते कि राम को इस वक्त बहुत भूख लगी है। अब जो आदमी सामने बैठा है वह चारो ओर देखता है कि कौन है राम ? क्योंकि अगर मुझे भूख लगी है तो मैं कहूंगा कि मुझे भूख लगी है और राम कहते हैं कि राम को बड़ी भूख लगी है, देखते क्या हो, कुछ इन्तजाम करो, राम बड़ा परेशान हो रहा है। उन लोगो ने कहा : कौन राम ? तो उन्होंने कहा कि

यह राम। तो लोगो ने कहा कि आप ऐसा क्यों नहीं कहते कि "मैं"। उन्होंने कहा, वैसा मैं कैसे कह सकता हूं क्योकि मैं तो खुद ही देख रहा हू कि 'राम' को तकलीफ हो रही है, 'राम' को भूख लगी है। 'राम' को मुश्किल हो रही है। 'राम' को ठड लगी है। मैं देख रहा हू। कई दफा ऐसा होता है कि कई लोग 'राम' को खूब गाली देते हैं, हम बहुत हसते हैं। कहते हैं : देखो ! राम को कैसी पडी ? राम कैसी मुश्किल मे फसे ? आ गया न मजा ? अब यह जो ख्याल कि कही मैं अलग हू, सारे खेल से कही दूर हू, साक्षी बना देता है। वासना की दौड टूट जाती है। खेल फिर भी चलता है क्योकि आप अकेले खिलाडी नही। खेल फिर भी चलता है क्योकि खिलाडी बहुत हैं। और फिर खेलकर क्या बिगाडना है ? बडे-बूढे छोटे बच्चो के साथ गुडिया का खेल भी खेल लेते हैं।

एक मेरे मित्र जापान मे किसी के मेहमान थे। उनको पता न था। सुबह ही घर मे बडी सज-धज शुरू हो गई और घर के बडे बूढ़े भी बडे उत्तेजित मालूम पडे। उन्होने पूछा कि बात क्या है। तो उन्होंने कहा कि आज विवाह है। आप भी सम्मिलित हो। उन्होंने कहा : जरूर सम्मिलित हो जाऊगा। सांझ आ गई। घर मे बडी तैयारी चलती रही। बच्चो से लेकर बूढो तक सब तैयारी मे लगे हैं। वह भी बेचारे बहुत तैयार हो गए। जब देखा तो बहुत हैरान हुए। जो विवाह था, वह एक गुडिया और एक गुड्डे का था। पडोस के घर की एक लडकी ने गुडिया की शादी रचाई थी। और पडोस के दूसरे घर के एक लड़के ने अपने गुड्डे का विवाह रचाया था। उन दोनो का विवाह हो रहा था। गांव के बडे बूढे मौजूद थे। लेकिन मेरे मित्र ने कहा कि यह क्या पागलपन है। और इतना साज-सवार चल रहा था, इतने बैंड-बाजे बज रहे थे, तो मेरे मित्र ने उस घर के बूढे को कहा कि यह क्या पागलपन है कि आप लोग इस गुडिया के विवाह मे सम्मिलित हुए। तो उन्होंने कहा कि इस उम्र मे पता चल जाना चाहिए कि सभी विवाह गुड़ियो के हैं। उस बूढ़े ने कहा कि इसमे भी क्या फर्क है। उसमे और इसमे कोई फर्क नही है। अभी बच्चे खेल खेल रहे हैं, हम उसमे सम्मिलित होते हैं और हम उतनी गम्भीरता से ही सम्मिलित होते हैं जितनी गम्भीरता से हम असली विवाह मे सम्मिलित होते हैं ताकि बच्चे समझ लें कि असली विवाह भी गुड़ियों के खेल से ज्यादा नही है। बूढे दोनो मे एक ही गम्भीरता से सम्मिलित होते हैं। उस बूढे का ख्याल देखिए। वह कह रहा है कि बच्चों को अभी से पता चल जाए कि हमारी

गम्भीरता में कोई फर्क नहीं है। गुडियो के विवाह में भी हम उसी गम्भीरता से आते हैं जैसे हम असली विवाह में आते हैं। दोनो में कोई फर्क नही है। दोनों में हम कोई भेद भी नहीं करते हैं। ठीक है। वह एक तल की गुड़ियों का विवाह है, वह दूसरे तल की गुड़ियो का विवाह है। लेकिन विवाह हो रहा है। लोग मजा ले रहे हैं और हम भागीदार हो जाते हैं। हम क्यों नाहक लोगो के इस रस मे, इस राग-रग मे बाधा बन जाएं। जहा बुद्धिमत्ता आती है वहां जगत माया से अलग नही हो जाता, वहां जगत नाटक से अलग नही हो जाता। वहा नाटक और जगत एक ही हैं। कोई निन्दा नही आ जाती कि नाटक गलत है। ऐसा कुछ भी नही हो जाता। वहा सब बराबर है, जगत और नाटक एक हो जाते हैं। सिर्फ एक घटना घट जाती है कि साक्षी अलग खड़ा हो जाता है। जिस दिन साक्षी अलग खडा हो जाए जीवन से, उसी दिन दौड के बाहर हो जाता है। तो महावीर की साधना मौलिक रूप से साक्षी की साधना है। सभी साधनाए मौलिक रूप से साक्षी की साधनाए हैं कि हम किस भाति देखने वाले हो जाए, भोगने वाले न रह जाए, करने वाले न रह जाए, दर्शक, द्रष्टा, साक्षी हो जाए, किस भाति सिर्फ साक्षी रह जाएं।

एपीटेप्टस एक अद्भुत व्यक्ति हुआ है। बीमारी भी आती, दुख भी आता, चिन्ता भी आती तब भी लोग उसे वैसा ही पाते जैसा जब वह स्वस्थ था, निश्चिन्त था, शांत था, सुखी था। लोगो ने हर हालत मे उसे देखा लेकिन वैसा ही पाया जैसा वह था। उसमे कोई फर्क नही देखा कभी भी। कुछ लोग उसके पास गये और कहा कि एपीटेप्टस, अब तो मौत करीब आती है, तुम बूढे हो गए। तो उसने कहा . जरूर आए, देखेंगे। जब सब चीजें देखने की ताकत आ गई तो मौत को देखने की ताकत भी आ गई। जो जिन्दगी को नही देख पाते, वे मौत को भी नही देख पाते। जो जिन्दगी को देख लेता है, वह मौत को भी देख लेता है। लेकिन एपीटेप्टस ने कहा, देखेंगे। बडा मजा आया क्योकि बडे दिन हो गए, मौत को नही देखा। मौत आई है। बहुत से लोग इकट्ठे हो गए हैं। एपीटेप्टस मर रहा है लेकिन घर मे सगीत हो रहा है क्योकि उसने अपने मित्रो और शिष्यो को कहा है कि मरते क्षण में मुझे रोकर बिदा मत देना क्योकि रोकर हम उसको बिदा देते हैं जो जानता नही था। मुझे तुम हसकर बिदा देना क्योकि मैं जानता हूं, कि मैं मर नहीं रहा हूं। मैंने देखना सीख लिया है, हर स्थिति को देखना सीख लिया है और जिस स्थिति को मैंने देखना सीखा मैं उसके बाहर हो गया उसी वक्त। अगर मैंने दुख को देखा, मैं दुख के बाहर

हो गया। अगर मैंने सुख को देखा, मैं सुख के बाहर हो गया। अगर मैंने जीवन को देखा तो मैं जीवन के बाहर हो गया। तो तुमसे मैं कहता हूं कि मैं देखने की कला जानता हू। मैं मौत को देख लूंगा और मौत के बाहर हो जाऊंगा। तुम इसकी फिक्र ही मत करो, मैंने जिस चीज को देखा मैं उसके बाहर हो गया। यह मेरे जीवन भर का अनुभव है कि देखो और बाहर हो जाओ। मगर हम देख ही नही पाते। इसलिए इस देखने के तत्त्व-विचार को 'दर्शन' का नाम दिया है। दर्शन का मतलब है देखने की क्षमता। पश्चिम मे जो दर्शन है उसे मीमासा कहना चाहिए, तत्त्व-विचार कहना चाहिए। भारत में जिसे हम दर्शन कहते हैं—महावीर, बुद्ध पतञ्जलि, कपिल, कणाद का दर्शन, वह पश्चिम का दर्शन नही है। भारत का दर्शन है देखने की कला : देख लो और बाहर हो जाओ। सोचने का सवाल नही है यहा। और जिस चीज को आप देखोगे उसी के बाहर हो जाओगे। यह कभी सोचा आपने कि जिस चीज को आप देखने मे समर्थ हो जाते हैं, आप तत्काल उसके बाहर हो जाते हैं। हम यहा इतने लोग बैठे है और अगर आप गौर से देखेंगे, आप फौरन बाहर हो जाएगे। आप इतने लोगो को गौर से देखेंगे और आप पाएंगे कि भीड नही रही। आप अकेले रह गए। कभी कितनी ही भीड मे आप खडे हो और गौर से चारो तरफ देखे और जग जाए तो आप पाएगे कि भीड चली गई, आप अकेले ही रह गए; भीड है पर आप बिल्कुल अकेले रह गए हैं। जिस चीज को आप देखने की क्षमता जुटा लेंगे उसी के बाहर हो जाएंगे। तो इस चक्र से, जिस चक्र मे सब चीजें एक सी घूमती चली जाती हैं अगर द्रष्टा हो जाए तो हम तत्काल बाहर हो जाते हैं।

पाम्पई के शहर मे आग लगी क्योंकि पाम्पई का ज्वालामुखी फूट गया था। सारा गाव भागा। जिसके पास जो था बचाने को, बचा सकता था, भागा बचाकर। किसी ने धन, किसी ने किताबें, किसी ने बही खाते, फर्नीचर, कपडे मोती, जवाहर—जो जिसके पास था, लिया और भागा। फिर भी कोई पूरा नही बचा सका क्योंकि जब आग लगती हो तो पूरा बचाना मुश्किल है। और जब भागने का सवाल हो, जिन्दगी मुश्किल में पड़ी हो तो बहुत ज्यादा बचाने की चेष्टा मे खुद को अटकाया भी नहीं जा सकता। लोग भागे। आधी रात थी। एक सिपाही चौरास्ते पर खड़ा है जिसकी सुबह छः बजे ड्यूटी बदलेगी। तब दूसरा आदमी आएगा। रात दो बजे नगर जल उठा है। सारा नगर भाग रहा है। पुलिस वाला अपनी जगह पर खड़ा है। जो भी उसके करीब से

निकलता है उससे कहता है, भागो, यह कोई वक्त है खड़े रहने का ! वह कहता है लेकिन अभी छः कहां बजा है ? और अगर तुम भी खड़ा होना सीख जाओ तो भागने की जरूरत नहीं। आग लगी है, वह बाहर है। और कितनी ही आग लग जाए, अगर मैं खड़ा ही रहू और देखता ही रहू तो आग सदा ही बाहर रहेगी क्योंकि देखने वाला तो मैं पीछे ही, अलग ही, छूट जाऊंगा हर बार। आग करीब आ सकती है, शरीर मे लग सकती है लेकिन अगर मैं देखता ही गया तो मैं छूट जाऊगा बाहर। तुम व्यर्थ भाग रहे हो क्योकि जहा तुम भाग रहे हो आग वहां भी लग सकती है और कही भी भागोगे तो एक दिन आग लगेगी ही।

हम सब भाग रहे हैं और खडे नही हो पाते हैं। भागने की जो दौड़ है वह चक्रीय है। हम उसमे चक्कर लगाते चले जाते हैं। हर बार लगता है कि कही पहुच रहे है, मगर कही भी नही पहुंच पाते क्योकि चक्कर और आगे दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन कोई खडा भी हो जाता है कभी पटरी से नीचे उतर कर और देखने लगता है उस चक्कर को तब बहुत हमी आती है कि यह लोग व्यर्थ पागल की तरह दौडे चले जाते हैं। और जिस जगह को छोडकर वे भाग रहे हैं थोड़ी देर मे उसी जगह पर आ जाएगे क्योकि चक्कर गोल है और उसमे वे गोल घूम रहे हैं। कहीं कोई जा नही सकता, और सब भागे चले जा रहे हैं एक दूसरे के पीछे। जो व्यक्ति बाहर खड़ा हो जाता है, वह वैसा ही हो जाता है जैसे एक बडा नाटक चलता हो और कोई आदमी बाहर खड़ा होकर देखे। जीवन की कला, जीवन में खड़े हो जाने की कला ही है। धर्म का विज्ञान दर्शन बन जाने का ही विज्ञान है, और सारे शास्त्रो का सार है। और उन सारे व्यक्तियो की वाणी का अर्थ एक ही सत्य है और वह यह है कि खड़े हो जाओ, दौड़ो मत, देखो, डूबो मत। पास खड़े हो जाओ, दूर खड़े हो जाओ। अगर कोई अनडूबा खडा रह जाए एक क्षण भी तो आप जो पूछ रहे हैं कि क्या फिर लौटना नहीं हो जाएगा ? मैं कहता हू नहीं ! एक बार कोई खड़ा हो गया तो वहां से लौटने का सवाल ही नहीं है। मगर हम चूंकि दौड़ रहे हैं, लौटेंगे। बहुत बार लौट चुके हैं, लौटते रहेंगे और दौड़ते ही रहेंगे। और कई बार ऐसा होता है कि थोड़ा दौड़कर हम उपलब्ध नही हो पाते तो हम सोचते हैं कि और तेजी से दौड़ें।

छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात पूरी करूं। एक आदमी को अपनी छाया से डर पैदा हो गया। वह अपनी छाया से भयभीत होने लगा। वह

अपनी छाया से बचने के लिए भागा। वह जितनी तेजी से भागा, छाया उसके पीछे भागी। उसने देखा कि छाया बडी तेज भाग सकती है। इतनी तेजी से काम नही चलेगा और तेजी से भागना पडेगा। उसने अपनी सारी जान लगा दी। जितनी तेजी से वह भागा, छाया उतनी तेजी से भागी। क्योंकि छाया उसकी ही थी जिससे वह भाग रहा था। वह स्वय ही से भाग रहा था। पहुच कहा सकता था ? छाया से छूट कैसे सकता था ? अपने से ही छूटने का उपाय क्या था ? लेकिन गाव-गाव मे खबर फैल गई। और गाव-गाव मे लोग उसके दर्शन करने लगे और फूल फेकने लगे। उसको रुकने की फुरसत कहा थी ? क्योंकि रुकता है तो छाया और जोर मे पकड लेती है। रुके और छाया फिर पकड ले। तो वह गाव-गाव मे भागता रहता। उसकी पूजा होने लगी। उस पर फूल बरसाने लगे। उसके चरणो मे लाखो लोग झुकने लगे और जितने लोग ज्यादा झुकने लगे, जितने फूल गिरने लगे वह उतनी ही तेजी से भागने लगा। और गाव-गाव मे खबर हो गई कि ऐसा तपस्वी कभी नहीं देखा गया जो एक क्षण भी नही ठहरता, जो रुकता ही नही, जो रात बेहोश होकर गिर पडता और जब उसकी आख खुलती और छाया दिखती तो वह फिर भागना शुरू कर देता। आखिर ऐसे आदमी का क्या हाल हो सकता है ? वह आदमी मरा। वह छाया साथ ही रही और मरा। जब मरा तब उसकी लाश की भी छाया बन गई। फिर लोगो ने उसको दफना दिया, एक कब्र बना दी बड़े दरख्त के नीचे और एक फकीर के पास लोग पूछने गए कि हम उसकी कब्र पर क्या लिख दें। तो वह फकीर आया, उसने कब्र देखी दरख्त की छाया मे। कब्र की कोई छाया न थी। तो उस फकीर ने कब्र पर लिखा कि जो तू जी कर न पा सका, वह तेरी कब्र ने पा लिया है और पा लिया है इसलिए कि तू भागता था और कब्र तेरी खड़ी है। उसकी छाया खो गई है। तू भागता था धूप मे और तेजी से; छाया तेरा पीछा करती थी। अपनी कब्र मे तू सीख ले तो अच्छा है, नहीं तो ऐसी तेरी बहुत बार कब्र बनेंगी और तू कभी न सीखेगा, भागता ही रहेगा। खड़ा हो जाना सूत्र है, छाया में ठहर जाना सूत्र है। हम सब धूप मे दौड रहे हैं। वासना और तृष्णा की गहरी धूप है और हम सब की दौड है तो फिर हम चक्र के बाहर नहीं हो सकते।

चर्चा : छः
२८.९.६९ रात्रि

६

प्रश्न : भगवान महावीर ने इन्द्र को स्पष्ट कहा कि मुझे स्वयं कर्मों से युद्ध करना है। तो भी वह एक देवता को उनकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर गए। इस घटना में क्या कोई औचित्य है ?

उत्तर : इसमे दो बातें समझने योग्य हैं। एक तो कर्मों से युद्ध; दूसरा अज्ञान से युद्ध। महावीर इस बात की तैयारी मे नही थे कि कोई भी उनके सघर्ष मे सहयोगी बने। चाहे स्वय देवता ही सहयोग के लिए क्यों न कहे, महावीर सहयोग के लिए राजी नही। उनकी दृष्टि यह है कि खोज मे कोई सगी-साथी नही हो सकता। अगर खोज मे कोई सगी-साथी के लिए रुकेगा तो वह खोज से वंचित रह जाएगा। नितान्त अकेले की खोज है। और जिसे नितान्त अकेले होने का साहस है, वही इस खोज पर जा सकता है। मन तो हमारा चाहता है कि कोई साथ हो, कोई गुरु, कोई मित्र, कोई जानकार, कोई मार्गदर्शक, कोई सहयोगी साथ हो। अकेले होने के लिए हमारा मन नहीं करता है। लेकिन जब तक कोई अकेला नही हो सकता तब तक आत्मिक खोज की दिशा मे इच भर भी आगे नही बढ़ सकते। अकेले होने की शक्ति सबसे कीमती बात है। हम तो दूसरे को साथ लेना चाहेंगे। महावीर को कोई निमंत्रण देता है आकर कि मुझे साथ ले लो, मैं सहयोगी बन जाऊंगा तो वह सधन्यवाद निमंत्रण वापस लौटा देते हैं। देव इन्द्र कहता है आकर कि मैं सहयोगी बनू तो वह कहते हैं : क्षमा करिए ! यह खोज ऐसी नहीं है कि इसमे कोई साथी हो सके। यह खोज नितान्त अकेले की है। क्यो ? यह अकेले का इतना आग्रह क्यो ? अकेले के आग्रह मे बड़ी गहरी बातें हैं। पहली बात यह है कि जब हम दूसरे का साथ मागते हैं तभी हम कमजोर हो जाते हैं। असल मे साथ मांगना ही कमजोरी है। वह हमारा कमजोर चित्त ही है जो कहता है कि साथ चाहिए। और कमजोर चित्त क्या कर पाएगा जो पहले से ही साथ मांगने लगा। तो पहली जरूरत यह है कि हम साथ की कमजोरी छोड़ दें और पूरी तरह जो अकेला हो जाता है, जिसके चित्त से सग की मांग, सहयोग की इच्छा मिट जाती है सारा जगत उसे सग देने को उत्सुक हो

जाता है। कहानी का दूसरा मतलब है यह कि खुद देवता भी उत्सुक हैं उस व्यक्ति को सहारा देने के लिए जो अकेला खड़ा हो गया। दूसरी ओर जो साथ मांगता है उसे साथ मिलता नहीं—नाममात्र को लोग साथी हो जाते हैं। असल मे मांग से कोई साथ पा ही नहीं सकता। लेकिन जो मागता ही नही साथ, जो मिले हुए साथ को भी इन्कार कर देता है, उसके लिए सारे जगत की शुभ शक्तिया आतुर हो जाती हैं साथ देने को। कहानी तो काल्पनिक है, पुराण है, गाथा है किन्तु प्रबोध कथा है। वह कहती है कि जब कोई व्यक्ति नितान्त अकेला खडा हो जाता है तो जगत की सारी शुभ शक्तिया उसको साथ देने को आतुर हो जाती हैं। लेकिन अगर ऐसा व्यक्ति उनका साथ लेने को भी तैयार हो जाए तो वह भटक जाता है क्योंकि उसकी यह साथ लेने की बात इस तथ्य की खबर है कि मन के किसी अंधेरे के कोने मे, सग और साथ की इच्छा शेष रह गई है। इसलिए निमत्रण तो मिला है महावीर को कि हम साथ देते हैं लेकिन वह कहते हैं कि हम साथ लेते नही।

तो जब जगत की सारी शुभ शक्तिया भी साथ देने को तत्पर हो तब भी वैसा आदमी अकेला होने की हिम्मत कायम रखता है। यह बड़ी उत्प्रेरणा है कि भीतर कहीं छिपा हो कोई भाव, साथी का, सगी का, समाज का, तो वह प्रकट हो जाए। महावीर उसे भी इन्कार कर देते हैं। इस भांति वे अकेले खडे हो जाते हैं। और यह इतनी बडी घटना है मनोजगत में व्यक्ति का पूर्णतया अकेले खडे हो जाना, जिसके मन के किसी भी परत पर किसी तरह के साथ की कोई आकाक्षा नही रह गई। यह व्यक्ति एक अर्थ में अद्भुत रूप से मुक्त हो गया है क्योंकि जो हमारी साथ की इच्छा हमे बांधती है, गहरे मे वही हमारा बधन है। समाज को छोड़कर भागना बहुत आसान है। लेकिन समाज की इच्छा से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है। आदमी अकेला नही होना चाहता। कोई भी कारण खोज कर वह किसी के साथ होना चाहता है। अकेले मे बहुत भयभीत होता है कि कोई भी नहीं है, मैं बिल्कुल अकेला हू। हालांकि सच्चाई यह है कि जब सब हैं तब भी हम अकेले हैं। तब भी कौन साथ है किसका? आस-पास हो सकते हैं, निकट हो सकते हैं, साथ कैसे हो सकते हैं? हमारी यात्राएं अकेली हैं लेकिन हम एक साथ का भ्रम पैदा कर लेते हैं, पति-पत्नी, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य साथ का एक भ्रम पैदा कर लेते हैं। आदमी इसी भ्रम में है कि कोई मेरे साथ है, मैं अकेला नहीं हूं। दोनों इस भ्रम को पोस कर बड़े सुख में हैं कि कोई साथ है, कोई डर नही।

लेकिन साथ कौन किसके है? मैं मरूंगा तो बस मैं मरूंगा, मैं जिऊंगा तो बस मैं जिऊंगा और आज भी अपने मन की गहराइयों में वहा मैं अकेला हूं। वहा कौन साथ है मेरे? तो जब तक मैं साथ मांगता रहूगा तब तक मैं अपने मन की गहराइयो मे भी नहीं उतर सकता। क्योंकि साथ हो सकता है परिधि पर, केन्द्र पर साथ नही हो सकता। वहां तो मैं कभी अकेला ही जाऊंगा उस परिधि पर, जहां हमारे शरीर होते हैं, बस वहा, उतनी दूर तक हम साथ हो सकते हैं। और जो व्यक्ति साथ के लिए आतुर है, वह परिधि पर ही जिएगा, वह कभी केन्द्र पर नही सरक सकता। क्योंकि जैसे-जैसे भीतर गया, वैसे-वैसे साथ खोया और गया। अभी हम इतने लोग यहां बैठे हैं। हम सब आंख बद करके शात हो जाए और भीतर जाए तो यहां एक-एक आदमी ही रह जाता है। सब अकेले रह जाते हैं। यहा फिर कोई दूसरा साथ नही रह जाता। दो व्यक्ति एक साथ ध्यान मे थोडे ही जा सकते हैं। एक साथ बैठ सकते हैं जाने के लिए, जाएंगे तो अकेले-अकेले। और जैसे भीतर सरके कि वहा कोई भी नही है, फिर हम अकेले रह गए। जो व्यक्ति साथ के लिए बहुत आतुर है, वह आदमी परिधि के भीतर नही जा सकता। साथ को पूरी तरह कोई इन्कार कर दे, अस्वीकार कर दे तो ही वह अपने भीतर जा सकता है। क्योंकि तब परिधि पर होने का कोई रस नही रह जाता। यह थोड़ी समझने की बात है। हम अपनी परिधि पर जीते ही हैं इसलिए कि वहां दूसरो के होने की सुविधा है। हम अपने केन्द्र पर इसीलिए नहीं होते कि वहा हमारे अकेले होने का उपाय है, वहा कोई दूसरा साथ नहीं हो सकता। समाज का छोडने का जो मतलब है, वह यह नही है कि एक आदमी जगल में भाग जाए क्योकि हो सकता है। कि जगल में वह वृक्षों के साथ दोस्ती कर ले, पक्षियों के साथ दोस्ती कर ले, जानवरों के साथ दोस्ती कर ले, पहाड़ो के साथ दोस्ती कर ले। यह सवाल नही कि वह भाग जाए क्योंकि वहां भी वह संग खोज लेगा। वहा भी वह साथ खोज लेगा। सवाल गहरे में यह है कि कोई व्यक्ति परिधि से भीतर जाने का उपाय करे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि परिधि के सम्बन्धो की जो आकांक्षा है, वह छोड़ देनी पडेगी। इससे यह सवाल नहीं उठता है कि वह सम्बन्ध तोड देगा। सम्बन्ध रह सकते हैं, लेकिन अब उनकी कोई आकाक्षा उसके भीतर नही रह गई। अब वह परिधि के खेल हैं, और जो लोग परिधि पर जी रहे हैं, वह व्यक्ति उनके लिए परिधि पर खड़ा हुआ भी मालूम पड़ेगा, लेकिन अपने आप में वह

अकेला हो गया है, और अपने भीतर आना शुरू कर दिया है। महावीर की जो अन्तर्यात्रा है, उसमे चूंकि कोई संगी साथी नही हो सकता इसलिए वह सब सग को अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन जैसे ही कोई सब सग अस्वीकार करता है जीवन की सारी शक्तियाँ, उसका साथी होना चाहती हैं। जो अकेला है, जो असहाय है, जो असुरक्षित है, जीवन उसके लिए सुरक्षा भी बनता है, सहायता भी बनता है। जीवन के आन्तरिक नियम ऐसे हैं कि अगर पूर्णतया कोई असहाय है तो सारा जीवन उसका सहायक बन जाता है। यह जीवन के भीतरी नियम हैं। यह नियम वैसे ही हैं जैसे कि चुम्बक लोहे को खींच लेता है और हम कभी नही पूछते कि क्यों खींच लेता है। हम कहते हैं कि यह नियम है। चुम्बक मे ऐसी शक्ति है कि वह लोहे को खींच लेता है। यह भी नियम है कि जो व्यक्ति भीतर से पूर्णत. असहाय खडा हो गया, सारे जगत की सहायता उसकी तरफ चुम्बक की तरह खिचने लगती है। क्यो खिचने लगती है यह सवाल नही, यह नियम है। नियम का मतलब यह है कि असहाय होते ही, कोई व्यक्ति बेसहारे नही रह जाता, सब सहारे उसके हो जाते हैं। और जब तक कोई अपना सहारा खोज रहा है तब तक वह गहरे अर्थों मे असहाय होता है। तो हम ऐसा कुछ करे जिसमे सुरक्षा रहे, असुरक्षित न हो जाए क्योंकि असुरक्षित चित्त को ही परमात्मा की सुरक्षा उपलब्ध होती है। जो खुद ही अपनी सुरक्षा कर लेता है, उसे परमात्मा की कोई सुरक्षा उपलब्ध नही होती क्योंकि वह परमात्मा के लिए तो मौका ही नही दे रहा है। वह तो अपना इन्तजाम खुद कर रहा है।

एक कहानी है कि कृष्ण भोजन को बैठे हैं, दो चार कौर लिए हैं और भागे हैं थाली छोड कर। रुक्मिणी ने उनसे पूछा . आपको क्या हो गया है ? कहा जा रहे हैं ? लेकिन उन्होने सुना नहीं। वह द्वार पर चले गए हैं दौड़ कर जैसे कही आग लग गई हो। रुक्मिणी भी उठी है, उनके दो चार कदम पीछे गई है। फिर वह दरवाजे से ठिठक गए, वापस लौट आए। थाली पर बैठ कर चुपचाप भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने कहा कि मुझे बड़ी पहेली में डाल दिया आपने। एक तो आप ऐसे भागे कि मैंने पूछा : कहां जा रहे हैं तो उसका उत्तर देने तक की भी आपको सुविधा न थी। और फिर आप ऐसे दरवाजे से लौट आए कि जैसे कहीं भी न जाना था। हुआ क्या ? तो कृष्ण ने कहा कि मुझे प्रेम करने वाला, मेरा एक प्यारा एक रास्ते से गुजर रहा है। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं और वह मंजीरे बजाए चला आ रहा है, मेरा

ही गीत गाए चला जा रहा है। लोग पत्थर फेंक रहे हैं। उसने उत्तर भी नहीं दिया है उनका। मन में भी सिर्फ देख रहा है कि वे पत्थर फेंक रहे हैं। खून की धारा बह रही है। तो मेरे जाने की जरूरत पड़ गई थी। इतने बेसहारे के लिए अगर मैं न जाऊं तो फिर मेरा अर्थ क्या है? तो रुक्मिणी ने पूछा कि फिर लौट क्यों आए? उन्होंने कहा कि जब तक मैं दरवाजे पर गया, वह बेसहारा नहीं रह गया था। उसने मंजीरे नीचे फेंक दीं और पत्थर हाथ में उठा लिया। उसने अपना इन्तजाम खुद ही कर लिया। अब मेरी कोई जरूरत नहीं है। उसने मेरे लिए मौका नहीं छोड़ा है। जब व्यक्ति अपना इन्तजाम स्वयं कर लेता है तो जीवन की शक्तियों के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता। और हम सब अपना इन्तजाम स्वयं कर लेते हैं और इसीलिए वंचित रह जाते हैं। संन्यासी का मतलब ही सिर्फ इतना है कि जो अपने लिए इन्तजाम नहीं करता, छोड़ देता है सब इन्तजाम और असुरक्षा में खड़ा हो जाता है। बड़ी कठिन बात है मन को इस बात के लिए राजी करना कि 'असुरक्षा में खड़े हो जाओ, मत करो इन्तजाम।' मलूक ने कहा है कि पंछी काम नहीं करते, अजगर चाकरी नहीं करता, सबको देने वाले हैं राम। समझी नहीं गई बात। लोगों ने समझा कि बड़े आलस्य की बात सिखाई जा रही है। इसका मतलब हुआ कि कोई कुछ न करे और जैसे पक्षी और अजगर पड़े हैं, ऐसा पड़ा रह जाए। तब तो सब खत्म हो जाए। लेकिन मलूक कुछ आलस्य की बात नहीं कह रहा है। वह कह रहा है कि करो या न करो, भीतर से जैसा पक्षी असुरक्षित है, कि कल का कोई पता नहीं, सांझ का कोई भरोसा नहीं, जैसे अजगर असुरक्षित पड़ा है, कोई इन्तजाम नहीं, कोई सुरक्षा नहीं—ऐसा भी चित्त हो सकता है, और जब ऐसा चित्त हो जाता है तो फिर राम ही हो जाता है सहारा, फिर कोई सहारा नहीं खोजना पड़ता। यह आलस्य की शिक्षा नहीं है, बहुत गहरे में असुरक्षा के स्वीकार की शिक्षा है। और ऐसी असुरक्षा में महावीर असंग खड़े हो गए हैं। न कोई संगी है, न कोई साथी है क्योंकि वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है। एक स्त्री अकेली होने में डरती है। जगत भय देने वाला है। एक पति चाहिए जो उसकी सुरक्षा बन जाए। पति भी शायद असुरक्षित है क्योंकि स्त्रियां उसको आकर्षित करेंगी, स्त्रियां उसे खींचेंगी और तब बड़ी असुरक्षा पैदा हो सकती है। इसलिए एक स्त्री चाहिए जो उसे दूसरी स्त्रियों के खिंचाव से बचाने के लिए सुरक्षा बन जाए और जो दूसरे खिंचावों से रोक सके, और कोई खतरा, कोई उपद्रव जिन्दगी में न हो। जिन्दगी व्यवस्थित हो

जाए। जब अहंकार इंतजाम करता है तब परमात्मा का इन्तजाम छोड़ देना पड़ता है। जब अहकार व्यवस्था छोड देता है तो परमात्मा के हाथ व्यवस्था चली जाती है। महावीर इसमें किसी तरह के सहयोग, सग, साथ, सुरक्षा लेने को तैयार नही हैं। लेकिन फिर बिल्कुल अकेले, अकेले ही खोजेंगे, भटकेंगे, उसमे कुछ हर्ज नही है क्योंकि भटकना ही खोज में अनिवार्य हिस्सा है और भटकने मे ही वह प्राण, वह चेतना जगती है जो पहुंचाएगी। तो भटकने का कोई भय नही है। इसलिए वे सब तरह के सहारे को इन्कार करते हैं। लेकिन ध्यान रहे कि ऐसे व्यक्ति को सब तरह के सहारे स्वय आकर उपलब्ध होते हैं। जो भागते हैं चीजो के पीछे उन्ही को वे उपलब्ध नही कर पाते और जो ठहर जाते हैं या विपरीत चल पडते हैं, उनके पीछे चीजे चलने लगती हैं। जीवन की गहराइयो मे कही कोई बहुत शाश्वत नियमों की व्यवस्था भी है। उसमे एक नियम यह भी है कि जिसके पीछे आप भागेंगे, वह आपसे भागता चला जाएगा और जिसका मोह आप छोड़ेंगे और अपनी राह चल पड़ेंगे आप अचानक पाएगे कि वह आपके पीछे चला आया। धन को जो छोड़ते हैं उनके पास धन चला आता है। मान को जो छोड़ते हैं उनके पास मान की वर्षा होने लगती है। सुरक्षा जो छोडते हैं, उन्हें सुरक्षा उपलब्ध हो जाती है। सब जो छोड़ देते हैं, शायद उन्हं सब उपलब्ध हो जाता है। एक घर वे छोडते हैं, शायद सब घर उनके हो जाते हैं। जो एक प्रेमी की फिक्र छोड देते हैं, शायद सबका प्रेम उनका हो जाता है। और महावीर इसे बहुत देख रहे हैं। इसलिए वह कही बीच में कोई पड़ाव नही डालना चाहते और इन्द्र के निमन्त्रण को अस्वीकार करने मे उनकी यही भावना प्रकट हुई है।

प्रश्न : यह कथा है या फिर वास्तव में बातचीत हुई है इन्द्र और महावीर में ?

उत्तर : नही, यह बिल्कुल कथा है।

प्रश्न : तो फिर इसका उल्लेख क्यों आया है कि महावीर ने इन्द्र से बातचीत की।

उत्तर : हम कहानियां ही समझ पाते हैं और वह भी तब जब वे ऐतिहासिक हैं, ऐसा कहा जाए। अगर कोई कहानी ऐतिहासिक नही तो हम कहेगे कि बस यह कहानी है। फिर हम उसे समझ ही नहीं पाएंगे।

मैं एक शिविर मे एक पहाड पर था। एक दिन की बात है। पर्वत के

एक शिखिर पर सूर्यास्त देखने की इच्छा हुई। बडी धूप थी। सूर्य ढल रहा था। दो बहनें मेरे साथ थीं। एक बेंच पर उन्होंने बिठा दिया मुझे। फिर उन्हें चिंता हुई कि बहुत धूप में वे मुझे लाई हैं। दोनो मेरे सामने ग्राकर खड़ी हो गईं ग्रौर कहा कि हम ग्रापके लिए छाया बनी जाती हैं। मैंने कहा ठीक, मगर एक दिन यह बात ऐतिहासिक तथ्य बन जाएगी कि मैं धूप मे था ग्रौर दो बहनें मेरे लिए छतरी बन गईं। वे मेरे लिए छाया बन गईं। उन्होंने धूप झेली ग्रौर मैं छाया में बैठा रहा। लेकिन कभी यह उपद्रव की बात हो सकती है कि दो स्त्रियां छतरी बन गई थी।

तो हम काव्य को नही समझ पाते। बडी जड़ता से हम चीजो को पकड़ते हैं। जो भी ग्रद्भुत व्यक्ति पैदा होता है वह इतना ग्रद्भुत होता है कि उसके ग्रास-पास काव्य बन जाता है, कथाए बन जाती हैं। कथाए सच हैं, ऐसा नहीं है। व्यक्ति ऐसा था कि उसके ग्रास-पास कथाए पैदा होंगी। उसके व्यक्तित्व से ढेर काव्य पैदा होंगे। लेकिन बहुत जल्दी काव्य नहीं रह जाएगा ग्रौर जब हम उसे जोर से पकड लेंगे तब कविता मर जाएगी ग्रौर तथ्य निकालने की चेष्टा शुरू हो जाएगी। वही जाकर जीवन झूठे हो जाते हैं। महावीर का, बुद्ध का, मुहम्मद का, जीसस का—सारा जीवन झूठा हो गया। झूठा होने का कुल कारण इतना है कि जो काव्य था, जो कविता थी ग्रौर बडे प्रेम मे कही गई थी वह मर गई। ग्रौर बहुत बार ऐसा होता है कि इतनी ग्रनूठी हैं जीवन की घटनाए कि उन्हे शायद तथ्यो मे कहा ही नहीं जा सकता। उनके साथ हमे काव्य जोडना ही पडता है। ग्रौर जब हम काव्य जोड़ते हैं तभी कठिनाई हो जाती है। जैसा मैंने कहा ग्रभी। मुहम्मद के संबध मे कहानी है कि जहां भी मुहम्मद जाते, एक बदली सदा उनके ऊपर छाया किए रहती। ग्रब जिन लोगों ने भी मुहम्मद को जाना है, जो उनके पास जिए होंगे, उनको लगा होगा कि ऐसे ग्रादमी पर सूरज भी धूप करे, यह ठीक नही। ऐसे ग्रादमी पर बदली भी ख्याल रखे यह बिल्कुल ठीक है। यह बड़ा गहरा भाव है जो कवि ने, देखने वाले ने, प्रेम करने वाले ने बदली पर फैला दिया है जो उसके मन में था। कविता तो ठीक थी लेकिन फिर यह तथ्य की तरह हो गई। तो मैं मानता हूं कि सभी महापुरुषों के, सभी उन ग्रद्वितीय व्यक्तियो के, ग्रास-पास हजार तरह के काव्य को जन्म मिलता है। उस काव्य को बाद के लोग इतिहास समझ लेते हैं. ग्रौर तब उन व्यक्तियों का जीवन ही झूठा हो जाता है। ग्रौर ग्रगर हम सिर्फ तथ्य लिखें तो तथ्य रूखे मालूम पड़ते है। उन पर काव्य चढ़ाना ही

पड़ता है, नहीं तो वह बड़े रूखे-सूखे हो जाते हैं। जैसे समझें हम कि एक व्यक्ति किसी स्त्री को प्रेम करता हो तो प्रेम में वह ऐसी बातें कहे जो तथ्य नहीं है लेकिन फिर भी सत्य हैं। और जरूरी नहीं कि कोई चीज तथ्य न हो तो सत्य न हो। नहीं तो काव्य खत्म ही हो जाएगा, फिर काव्य का कोई सत्य ही नहीं रह जाएगा। और कुछ लोग ऐसे हैं जैसे प्लेटो। वह कहता है कि कवि नितान्त झूठे हैं और दुनिया से जब तक कविता नहीं मिटती तब तक झूठ नहीं मिटेगा। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि कविता नितान्त झूठी है। लेकिन उनसे विपरीत लोग भी हैं और उनकी पकड़ ज्यादा गहरी है। वे कहते हैं अगर कविता ही झूठी है तो फिर जीवन में कोई सच ही नहीं रह जाता फिर जीवन सब व्यर्थ है। अब एक युवक एक युवती को प्रेम करता हो तो वह कहता है तेरा चेहरा चांद की तरह है। अब यह बात बिल्कुल अतथ्य है, इससे झूठी कोई बात हो सकती है क्या ? किसी स्त्री का चेहरा चाद की तरह कैसे हो सकता है ? अगर आइंस्टीन से जाकर कहो कि हम ऐसा मानते हैं कि एक स्त्री का चेहरा चाद की तरह है तो वह कहेगा कि तुम पागल हो गए हो। चाद का इतना वजन है कि एक स्त्री क्या, पृथ्वी की सारी स्त्रियां इकट्ठी होकर उस वजन को नही झेल पाएगी। तो स्त्री का चेहरा चाद-सा कैसे हो सकता है। चाद पर बड़े खाई-खड्ड हैं। कहा का बेहूदा ख्याल तुम्हारे दिमाग मे आया है कि तुम एक स्त्री को चाद-सा बता रहे हो। लेकिन जिसने कहा है, वह फिर भी कहेगा कि नही ! चेहरा तो चाद ही है। असल मे वह कुछ और ही कह रहा है। वह कह रहा है कि चांद को देखकर जैसे मन मे छाया छू जाती है, चादी की धार छूट जाती है, किसी का चेहरा देख कर भी वैसा हो सकता है। इस कविता को अगर कभी गणित और विज्ञान की कसौटी पर कसने चले गए तो तुम गल्ती मे पड़ जाओगे। इसलिए मैं इन सारी बातो को रूपक कथाएं कहता हू जिनके माध्यम से कुछ बातें कही गई हैं जो कि शायद और माध्यम से कही नही जा सकती।

जीसस से किसी ने पूछा कि आप कहानिया क्यो कहते हैं, सीधा क्यों नही कह देते। तो जीसस ने कहा कि सीधी बात समझने वाले लोग अभी पैदा कहा हुए हैं ? तो कहानी कहनी पड़ती है। फिर जीसस ने कहा कि कहानी कहने में एक और फायदा है। जो नहीं समझ पाते उनका नुकसान नहीं होता क्योंकि सिर्फ एक कहानी उन्होंने सुनी है। लेकिन जो समझ पाते हैं वे कहानी में से निकाल लेते हैं जो निकालना था। और कभी-कभी सीधे सत्य नुकसान भी

पहुंचा सकते हैं ! अगर न समझ में आएं तो कठिनाई में डाल सकते हैं। क्योंकि उनको कहानी कह कर आप टाल नहीं सकते। तो वे आपकी जिन्दगी पर भारी भी हो सकते हैं। कहानी है तो आप टाल भी देते हैं। लेकिन जो देख सकता है वह खोज लेता है। कहानियां सत्य को कहने का एक ढंग हैं कि सत्य रूखा भी न रह जाए, मृत भी न हो जाए, जीवन्त हो जाए। लेकिन अगर नासमझ आदमी के हाथ मे कहानियां पड़ जाएं तो वह उनको सत्य बना लेता है। और सत्य बना कर सारे व्यक्तित्व को झूठ कर देता है। तो मैं उनको रूपक कथाएं, बोध कथाएं ही कहता हू। उनमे बड़ा बोध छिपा है लेकिन वे ऐतिहारि।क तथ्य नही हैं।

प्रश्न : महावीर ने किसी दूसरे का सहारा लेने से इन्कार कर दिया। सही बात है। लेकिन साथ ही साथ प्रश्न उठता है कि सहारा न लेना जितना महत्वपूर्ण है सहारा न देना भी उतना ही महत्वपूर्ण होना चाहिए। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति और उसके बाद फिर श्रावक, और श्रमण यह सब है—यह दूसरे को सहारा देने वाली बातें हैं। तो इस पहलू पर क्यों नहीं विचार किया गया कि मैं जब सहारा नहीं लेता हूं तो मैं सहारा देने वाला भी कौन हूं ?

उत्तर : इसे भी समझना चाहिए। यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। और साधारणत. ऐसा ही दिखाई पड़ेगा कि अगर कोई व्यक्ति सहारा नही ले रहा है तो बिल्कुल ठीक बात यह है कि वह किसी को सहारा भी न दे। यह बिल्कुल तर्कयुक्त मालूम पडेगा लेकिन यह तर्क एकदम भ्रान्त है। भ्रांति कहा है यह समझ लेना चाहिए। जब हम कहते हैं कि सहारा नही लेना है तो इसका कुल मतलब इतना है कि भीतर जाने मे मैं किसी को साथ नही ले सकता हू। भीतर मुझे अकेला ही जाना होगा। अकेले ही जाने का एकमात्र मार्ग है वहा पहुंचने का। इसलिए मैं सब सहारे इन्कार करता हूं। लेकिन अगर यह बात मैं किसी को कहने जाऊं कि सहारा लोगे तो भटक जाओगे तो एक अर्थ मे मैं उसको सहारा दे रहा हूं और एक अर्थ मे उसे सहारे से बचा रहा हूं। यह दोनों बातें हैं। महावीर जो सहारा दे रहे हैं वह इसी तरह का सहारा है। वह लोगो को कह रहे हैं कि मैं अकेला भीतर गया। जब तक मैंने सहारा पकड़ा तब तक मैं भीतर नही गया ; तुम भी तो कही सहारा नहीं पकड़ रहे हो ? अगर सहारा पकड़ रहे हो तो भीतर नहीं जा सकोगे। बेसहारे हो जाओ। मैं जो कहता हूं लोगों से कि किसी विधि से तुम न जा सकोगे यह केवल मैं खबर कर रहा हूं कि विधि के चक्कर में मत पड़ना, नहीं तो भटक जाओगे। मैं भटका हूं। यह

खबर मैं तुम्हे दे देता हूं। यह मुझे हक है कि मैं किसी को इतनी बात कह दूं कि विधि से कभी कोई नही पहुंचा है, इसलिए तुम विधि मत पकड़ना। और मेरी भी बात मत पकडना। इसकी भी तुम खोज-बीन करना क्योंकि इसको भी अगर तुमने पकडा तो यह तुम्हारी विधि हो जाएगी।

यूनान के नीचे सिसली एक छोटा सा द्वीप है। वहा सूफिस्ट विचारक हुए जो बडे अद्भुत थे एक अर्थ में और एक अर्थ मे बिल्कुल फिजूल थे। अद्भुत इस अर्थ मे थे कि जितना तर्क उन्होंने किया किसी ने भी नही किया और फिजूल इस अर्थ मे थे कि उन्होंने सिर्फ तर्क किया और कुछ भी नही किया। तो वे प्रत्येक चीज को खडित कर सकते थे और प्रत्येक चीज का समर्थन कर सकते थे। क्योंकि उनका कहना था कि कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो एक पहलू से खंडित न की जा सके और दूसरे पहलू से समर्थित न की जा सके। इसलिए वे कहते थे कि यह सवाल ही नहीं है कि सत्य क्या है। सवाल यह है कि तुम्हारा दिल क्या है, तुम्हारी मर्जी क्या है ? तो वे कहते थे कि हम पैसे पर भी सत्य को सिद्ध करते हैं। उनको कोई नौकरी पर रख ले तो वह जो कहेगा वे उसको सत्य सिद्ध कर देंगे और कल उससे विपरीत आदमी उनको नौकरी पर रख ले तो वह उसकी बात सिद्ध कर देंगे। उनका कहना था कि कोई चीज सिद्ध ही नहीं है। जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमे सब पहलू मौजूद हैं और तर्क देने वाला सिर्फ उस पहलू को जोर से ऊपर उठा लेता है जो पहलू वह सिद्ध करना चाहता है और शेष पहलुओ को पीछे हटा देता है और कुछ भी नहीं करता। लेकिन अगर हमें पूरी जिन्दगी देखनी हो तो हमें ख्याल रखना होगा कि यह बात सच है कि किसी का सहारा कभी मत लेना क्योंकि सहारा भटकाने वाला होगा। और यह बात तो फिर उसके साथ ही जुड़ गई कि मैं आपको सहारा दे रहा हू यह बात कह कर। अब आप क्या करेंगे ? सूफिस्ट एक उदाहरण देते थे कि सिसली से एक आदमी आया और उसने ऐथन्स में आकर कहा कि सिसली में सब लोग झूठ बोलने वाले हैं। तो एक आदमी ने खडे होकर उससे पूछा कि तुम कहां के रहने वाले हो। उसने कहा कि मैं सिसली का रहने वाला हू। तो उसने कहा : हम बड़ी मुश्किल में पड गए। तुम कहते हो सिसली में सब झूठ बोलने वाले हैं। तुम सिसली के रहने वाले हो। तुम एक झूठ बोलने वाले आदमी हो। अब हम तुम्हारी बात को क्या कहें ? अगर हम यह बात मान लें कि सिसली में कम से कम एक आदमी है जो सच बोलता है तो भी तुम्हारी बात गलत हो जाती है कि सिसली में सब

झूठ बोलने वाले लोग हैं। अगर हम तुम्हें झूठ मानते हैं तो भी मुश्किल हो जाती है। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि अब हम करें क्या ? अब उस आदमी को शायद कुछ भी नहीं सूझा कि अब वह क्या करे, क्या कहे ? जिन्दगी इतनी जटिल है कि दोनों बातें सही हो सकती हैं। सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग भी हो सकते हैं। इस आदमी का वक्तव्य भी सही हो सकता है। क्योंकि सब लोग सब समय झूठ न बोलते हों। बस मौके पर सिसली का यह आदमी झूठ न बोल रहा हो। जिन्दगी इतनी जटिल है कि हम जब कभी उसे एक कोने से पकड़ कर आग्रह करने लगते हैं तभी हमारा आग्रह झूठा हो जाता है।

परसों कोई पूछ रहा था अनेकान्त के लिए। तो इस सन्दर्भ में यह समझ लेना जरूरी है। महावीर कहते है कि जीवन के एक पहलू को पकडकर कोई दावा करे तो यह है एकान्त। एकान्तवादी वह है जिसने जीवन का एक ही कोना देखा है, एक ही कोने को देखकर पूरी जिन्दगी के निष्कर्ष निकाले हैं। इसन सब कोने अभी नहीं देखे हैं। और अगर यह सब कोने देख लेगा तो यह दावा छोड़ देगा। क्योंकि इसे ऐसे कोने मिलेंगे जो ठीक इससे विपरीत हैं और इतने ही सही हैं जितना यह सही है। और तब यह दावा नहीं करेगा। महावीर बड़े अद्भुत व्यक्ति हैं। वह कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी गलत है क्योंकि वह भी एकान्त है। क्योंकि सत्य के अनेक पहलू हैं और सत्य इतनी बड़ी बात है कि ठीक एक सत्य से विपरीत सत्य भी सही हो सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं अनेकान्तवादी हू यानी सब एकान्तों को स्वीकार करता हू। अगर एक आदमी आकर महावीर को पूछता है : आत्मा शाश्वत है कि अशाश्वत ? तो महावीर कहेंगे शाश्वत भी, अशाश्वत भी। वह आदमी कहेगा कि ये दोनों कैसे हो सकते हैं। तो महावीर कहेंगे : किस कोने से खड़े होकर तुम देखते हो। अगर तुम शरीर को ही आत्मा समझते हो जैसा कि नास्तिक समझता है तो अशाश्वत है। अगर तुम आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हो जैसा आत्मवादी समझता है तो आत्मा शाश्वत है और मैं कोई एक वक्तव्य न दूंगा। क्योंकि एक वक्तव्य एकान्त होगा। अनेकान्त का अर्थ है जीवन के सब पहलुओं की एकसाथ स्वीकृति।

हम सब कहानी जानते हैं कि एक हाथी के पास पांच अंधे खड़े हो गए। और जिसने हाथी का पैर छुआ उसने कहा : हाथी खम्भे की तरह है, केले के वृक्ष की तरह है। जिसने कान छुए उसने कहा कि हाथी गेहूं साफ करने वाले

सूप की तरह है और उन सबने अपने-अपने दावे किए हैं क्योंकि हाथी न तो खंभे की तरह है, न सूप की तरह है। और हाथी मे कुछ है जो सूप की तरह है और कुछ है जो खम्भे की तरह है। महावीर कहते हैं कि अगर कोई आदमी दिया जलाकर वहां पहुंच जाए और उन पाच अन्धो को विवाद करते देखे तो वह आदमी जिसने दिया जला लिया है वह क्या करे, वह किसका साथ दे। वह प्रत्येक अंधे से कहेगा कि तुम ठीक कहते हो लेकिन पूरा ठीक नही कहते हो। और वह प्रत्येक अधे से कहेगा कि तुम जिसे विरोधी समझ रहे हो वह तुम्हारा विरोधी नही है। वह भी हाथी के एक अग के बाबत बात कर रहा है। पूरा हाथी—तुम जो कहते हो उन सबका जोड और उससे ज्यादा भी है। अगर हर पाचो अन्धो के अनुभवो को भी हम जोड लें तो भी असली हाथी नही बनेगा। असली हाथी उन सबके अनुभव से ज्यादा भी है क्योंकि कुछ तो ऐसा है जो कि हाथी ही अनुभव कर सकता है कि वह क्या है, जिसको न अधा अनुभव कर सकता है, न दिया जलाने वाला अनुभव कर सकता है। यानी पूरी तरह देख लो हाथी को तो वह भी हाथी नही है। हाथी का एक अपना अनुभव है। और हो सकता है कि हाथी का वह अनुभव अगर हाथी कभी कह सके तो न पाच अधो से मेल खाए और न दिए जलाने वाले से मेल खाए।

महावीर कहते हैं कि अनुभव के अनन्त कोण हैं और प्रत्येक कोण पर खडा हुआ आदमी सही है। बस भूल यहा हो जाती है कि वह अपने कोण को सर्वग्राही बनाना चाहता है। वह कहता है कि जो मैंने जाना, वही ठीक है। और हम जल्दी करते हैं इस बात की कि अगर हमने एक ही कोना जान लिया और पूरी तरह से जान लिया तो हम सोचते हैं कि बस जानना पूरा हो गया। यहा समझ लें कि एक बिजली का बल्ब जला हुआ है। उस बिजली के बल्ब को बुझाना हो तो एक आदमी डडे से बल्ब को चोट कर दे तो बल्ब बुझ जाएगा। दूसरा आदमी कैंची लाए और वायर को काट दे तो भी बल्ब बुझ जाएगा। तीसरा आदमी बटन दबा दे तो भी बल्ब बुझ जाएगा। जिस आदमी ने वायर काटा वह कह सकता है कि बिजली वायर थी। जिस आदमी ने बल्ब फोडा वह आदमी कह सकता है कि बिजली बल्ब थी। तीसरा आदमी कह सकता है कि बटन बिजली थी और यह भी हो सकता है कि बटन भी न दबे, बल्ब भी न फूटे, तार भी कायम रहे और बिजली खो जाए। किसी ने यह भी देखा हो तो वह कहेगा कि इस सबमे कोई बिजली नहीं है। ये चारो आदमी अपनी-अपनी दृष्टि से बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं और प्रत्येक की दृष्टि ऐसी लगती

है कि दूसरे की दृष्टि के विरोध में है। लेकिन महावीर कहते हैं कि विरोधी दृष्टि ही नहीं है और सब एक दूसरे के परिपूरक हैं और सब एक ही सत्य के कोने हैं। सिर्फ हमारी सीमित दृष्टि के कारण ही यह सब विरोधी दिखाई पड़ रहा है। अगर हम पूरे को देख सकें तो वह भी एक सहयोगी दृष्टि है। महावीर कहते हैं कि हम सब दृष्टियां जोड़ लें तो भी सत्य पूरा नहीं हो जाता क्योंकि और दृष्टिया भी हो सकती हैं जो हमारे ख्याल में न हो। इसलिए महावीर अनेक की सम्भावना रखते हैं, एक का आग्रह नहीं करते। और उसी युग मे उनके कम से कम प्रभाव पड़ने का कारण यही था। बुद्ध की एक दृष्टि है। उनकी दृष्टि पक्की है। वह अपनी दृष्टि पर सख्ती से खड़े हैं। उस दृष्टि मे वह इच मात्र यहा-वहा नही हिलते। और जब कोई एक आदमी सख्ती से एक दृष्टि पर बात करता है तो लगता है कि वह आदमी कुछ जानता है; ढीला ढाला नही है दिमाग उसका, हर किसी बात मे 'हा' नही कह देता। बहुत साफ दृष्टि है उसकी। अब यह बड़े मजे की बात है कि साफ दृष्टिवाला हम जिसको कहते है वह एकान्तवादी होता है। क्योंकि वह बिल्कुल एक बात पक्की कह देता है कि सूप जैसा है हाथी, इसमे रत्ती भर गुजाइश नही रह जाती शक की। और जो इससे अन्यथा कहता है, वह पागल है, नासमझ है, अज्ञानी है, झूठ है। वह साफ कह देता है और वह बिलकुल पक्का है। उसने हाथी को सूप की तरह जाना है और बात खत्म हो गई है। लेकिन एक आदमी है जो कहता है : हाथी सूप की तरह भी है, हाथी सूप की तरह नही भी है; हाथी खम्भे की तरह भी है, हाथी खम्भे की तरह नही भी है। जो सब दृष्टियो मे कहता है कि ऐसा भी है, ऐसा नही भी है। मेरे पिता हैं। मुझे निरन्तर बचपन मे उनसे बड़ी परेशानी भी रही। मेरी समझ के ही बाहर था यह। मेरे घर मे सब तरह के लोग थे। नास्तिक भी थे घर में। कोई कम्युनिस्ट भी था, कोई सोशलिस्ट भी था। कोई कांग्रेसी भी था। बड़ा परिवार था। उसमे सब तरह के लोग थे। घर पूरी की पूरी एक तरह की जमात थी जिसमें अपनी-अपनी दृष्टि पर पक्के लोग थे, और जिसको ठीक समझते थे ठीक ही समझते थे, जिसको गल्त समझते थे, गल्त ही समझते थे। इसमें कोई समझौते का उपाय भी न था। और मैं बहुत हैरान था कि अगर मेरे पिता को जाकर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है तो वह कहते कि ठीक कहते हैं। और कोई कहे कि ईश्वर है तो वह कहते कि ठीक कहते हैं। यह मैंने बहुत बार सुना उनके मुख से। सब तरह की बात में स्वीकृति देखी। मैंने उनसे पूछा कि यह बात क्या

है? आप सब बातो को स्वीकार कर लेते हैं यह तो बड़ी मुश्किल बात है। सब ठीक कैसे हो सकती है। उन्होने कहा कि सत्य बहुत बड़ा है, इतना बड़ा कि वह सबको समा लेता है। उसमे आस्तिक भी समा जाता है, नास्तिक भी। और सत्य अगर इतना छोटा है कि उसमे सिर्फ आस्तिक समाता है तो ऐसे सत्य की कोई जरूरत नही। असत्य बहुत छोटा है, अत्यन्त सकीर्ण है। और सत्य सकीर्ण नही हो सकता है। सत्य होगा विराट। उसमे सब समा जाएगे। इसलिए सबके लिए 'हां' कहा जा सकता है। और कोई चाहे तो सब के लिए 'न' भी कह सकता है। 'न' इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे को नही घेरेगा। और 'हा' इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे सत्य का हिस्सा होगा। तो इसलिए जो जानता है वह बडी मुश्किल मे पड़ जाएगा कि वह क्या कहे, 'हा' कहे या 'न' कहे या दोनो कहे, या चुप रह जाए। तो महावीर साफ नही मालूम पडते। हर किसी बात मे 'हा' कहते हैं, हर किसी बात मे 'न' कहते हैं। इसका मतलब है कि या तो इन्हे पता नही या पता है तो साफ-साफ पता नही।

•

चर्चा : सात

२६.६.६६ प्रातः

७

प्रश्न—अन्तर्राष्ट्रीय विचारकों में बुद्ध या कनफ्युसियस का नाम लिया जाता है, महावीर का नाम नहीं लिया जाता है। करोड़ों लोग मिल जाएंगे पृथ्वी पर जिन्होंने महावीर के नाम को कभी नहीं सुना। इतना अद्भुत व्यक्ति और इतने कम लोगों तक उसकी खबर पहुंचे तो इसका क्या कारण हो सकता है?

उत्तर : ठीक पूछा आपने। इसका कारण है। महावीर वादी नही हैं। और जो वादी नही है उसकी बात हमारी समझ मे आनी बहुत मुश्किल है। जो वादी है वह सुबह कुछ, साझ कुछ, दुपहर कुछ कहेगा। उसका हर वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का विरोधी मालूम होगा। और हम चाहते हैं सुसगति कि वह एक बार जो बात कहे फिर वही कहता रहे। टालस्टाय ने कहा है कि जब मैं जवान था तो मैं सोचता था कि वही असली विचारक है जो सुसगत चीज कहता है। जब एक चीज कहता है तो उसके विरोध मे कभी दूसरी बात नही कहता है। लेकिन अब जब मैं बूढा हो गया हू तो मैं जानता हू कि जो सुसगत है, उसने विचार ही नही किया क्योकि जिन्दगी सारे विरोध से भरी है। जो विचार करेगा उसके विचार मे भी विरोध आजाएगे। वह ऐसा सत्य नहीं कह सकता जो एकांगी, पूर्ण और दावेदार हो। उसके प्रत्येक सत्य की घोषणा में भी झिझक होगी। लेकिन झिझक उसके अज्ञान की सूचक बन जाएगी जबकि झिझक उसके ज्ञान की सूचक है। अज्ञानी जितनी तीव्रता से दावा करता है उतना ज्ञानी के लिए करना मुश्किल है। असल में अज्ञानी सदा दावा करता है, दावा कर सकता है क्योकि समझ इतनी कम है, देखा इतना कम है, जाना इतना कम है, पहचाना इतना कम है कि उस कम मे वह व्यवस्था बना सकता है। लेकिन जिसने सारा जाना है और जिंदगी के सब रूप देखे हैं उसे व्यवस्था बनाना मुश्किल है। महावीर के अनेकान्त का यही अर्थ है कि कोई दृष्टि पूरी नही है, कोई दृष्टि विरोधी नहीं है; सब दृष्टियां सहयोगी हैं और सब दृष्टियां किसी बडे सत्य मे समाहित हो जाती हैं। जो विराट सत्य को जानता है, न वह किसी के पक्ष में होगा, न वह किसी के विपक्ष मे होगा। ऐसा व्यक्ति निष्पक्ष हो सकता

है। यह बड़े मजे की बात है कि सिर्फ वही व्यक्ति, अनेकान्त की जिसकी दृष्टि हो, निष्पक्ष हो सकता है और इसलिए मैं कहता हू कि जैनी अनेकान्त की दृष्टि वाले लोग नही हैं क्योकि वे पक्ष पर हैं, उनका पक्ष है। वे कहते हैं कि हम महावीर के पक्ष मे हैं। और महावीर का कोई पक्ष नही हो सकता क्योकि अनेकान्त जिसकी दृष्टि है, उसका पक्ष कहा? सब पक्ष उसके हैं, कोई पक्ष उसका नही। सब पक्षो से अनुस्यूत सत्य उसका है लेकिन किसी पक्ष का दावा नही। तो महावीर का पक्ष कैसे हो सकता है? महावीर को दोहरा नुकसान पहुचा। पहला नुकसान तो यह पहुचा कि बहुजन तक उनकी बात नही पहुच सकी। दूसरा नुकसान यह पहुचा कि जिन तक उनकी बात पहुंची, वे पक्षधर हो गए। कुछ मित्र न बन पाए और जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए। यह इतनी दुर्घटनापूर्ण बात है कि एक तो मित्र न बन पाए बहुत क्योकि बात ऐसी थी कि इतने मित्र खोजने मुश्किल थे। दूसरे, जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए क्योकि वे पक्षधर हो गए। और महावीर पक्षधरता के विपरीत हैं। अब यह बड़े मजे की बात है कि अनेकान्त को भी उनके अनुयायियों ने अनेकान्त-वाद बना दिया। अनेकान्त का मतलब है 'वाद' का विरोध क्योकि 'वाद' हमेशा पक्ष होगा, दृष्टि होगी, नय होगा, एक दावा होगा। वाद का मतलब ही होता है दावा। अनेकान्त को वाद के साथ जोड देना, फिर दावा शुरू हो गया। यानी फिर 'अनेकान्त' के पीछे चलने वाले लोगो ने एक नया दावा बनाया जबकि वह दावे का विरोधी था। इसी ख्याल मे यह भी समझ लेना चाहिए कि महावीर शायद हजार दो हजार वर्ष बाद पुन प्रभावी हो सकें, उनका विचार बहुत से लोगो के काम आ सके। क्योकि जैसे-जैसे दुनिया आगे बढ रही है एक बहुत अद्भुत घटना घट रही है। वह यह है कि 'वादी' चित्त नष्ट हो रहा है, पक्षधर बेमानी होता जा रहा है। जितनी बुद्धिमत्ता और विवेक बढ़ रहा है उतना आदमी निष्पक्ष होता चला जा रहा है। सम्प्रदाय जाएगा, वाद जाएगा। आज नही कल, ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है। जिस दिन 'वाद' चला जाएगा उस दिन हो सकता है कि आज जो नाम बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, कम महत्त्वपूर्ण हो जाए और जो नाम आज तक एकदम ही गैर महत्त्व का मालूम पड़ रहा है वह एकदम पुनः महत्त्व स्थापित कर ले। लेकिन जैन अगर महावीर के पीछे इसी तरह पड़े रहे तो महावीर के विचार की क्रान्ति सब लोगो तक कभी नहीं पहुंच सकती।

प्रश्न : आन्तरिक जीवन में असुरक्षा का भाव कठिन है लेकिन व्यावहारिक

जीवन में असुरक्षा का भाव कैसे प्रारम्भ किया जा सकता है ? यानी यह जो बाह्य जीवन है इसमें असुरक्षा का भाव कैसे प्रारम्भ कर सकते हैं ?

उत्तर : असल में सवाल बाहर और भीतर का नहीं है। सवाल इस सत्य को जानने का है कि हम क्या असुरक्षित हैं या सुरक्षित हैं, बाहर या भीतर या कहीं भी। सम्बन्ध सुरक्षित हैं ? नहीं। कल जो अपना था, वह आज भी अपना होगा ? नहीं। जो आज अपना है, वह कल सुबह अपना होगा ? नहीं। सम्मान सुरक्षित है ? नहीं। कल जिसके पीछे भीड़ थी, आज वह आदमी जिन्दा है या मर गया इसका भी कोई पता नहीं चल रहा। कौन सी चीज सुरक्षित है? कोई भी नहीं। तो असुरक्षा इस सत्य का बोध है कि जीवन असुरक्षित है। न जन्म का भरोसा, न जवानी का भरोसा, न शरीर का भरोसा, किसी भी चीज का कोई भरोसा नहीं है। इस सत्य का बोध और इस सत्य के बोध के साथ जीना, भीतर और बाहर दोनों तलों पर। मैं यह नहीं कहता हू कि एक आदमी मकान न बनाए। लेकिन मैं यह कहता हू कि मकान बनाते वक्त भी जान ले कि असुरक्षा खत्म नहीं होती। असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है। मकान रहे तो भी, मकान न रहे तो भी। ज्यादा से ज्यादा जो फर्क पड़ता है, वह इतना कि जिसके पास मकान नहीं है, उसे असुरक्षा प्रतीत होती है, और जिसके पास मकान है, उसे असुरक्षा प्रतीत नहीं होती लेकिन वह खड़ी अपनी जगह है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। गरीब भी असुरक्षित है, अमीर भी। लेकिन अमीर को सुरक्षा का भ्रम पैदा होता है। यह मैं नहीं कहता हू कि परिवार न बसाए, विवाह न करें, मित्र न बनाए। यह मैं नहीं कहता हू। यह जानते हुए कि सब असुरक्षित है आपकी पकड़ नहीं होगी। तब आप जो जान से नहीं पकड़ेंगे क्योंकि आप जानते हैं कि पकड़ो, या न पकड़ो, असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है। तब धन भी होगा, आप धनी नहीं हो पाएगे। क्योंकि धनी होने का कोई कारण नहीं है। तब धन भी होगा और आप दरिद्र बने रहेंगे। क्योंकि आप जानते हैं कि दरिद्रता अपनी जगह खड़ी है; वह धन से नहीं मिट जाती। तब जितना ही अच्छा स्वास्थ्य होगा तो भी मौत भूल नहीं जाएगी क्योंकि आप जानेंगे कि अच्छे या बुरे स्वास्थ्य का सवाल नहीं है। मौत है। वह खड़ी है। वह बीमार के लिए भी खड़ी है, स्वस्थ के लिए भी खड़ी है। असुरक्षा का बोध, असुरक्षा की भावना आपको करनी नहीं है। हम सुरक्षा की भावना कर-करके असुरक्षा के बोध को मिटाते हैं। लेकिन असुरक्षा सत्य है।

अभी मैं भावनगर में था। एक चित्रकार युवक मेरे पास आया। वह कई

वर्ष अमेरिका रह कर लौटा है और बडी प्रतिभा का युवक है। लेकिन परेशान हो गए हैं मां-बाप। पत्नी परेशान है। वे सब मेरे पास आए। पत्नी, मां, बाप, बूढे—और यह एक ही लडका है उनका। उसी पर सब लगा दिया है और अब बड़ी मुश्किल हो गई है। उन्होने मुझे आकर कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड गए हैं। हमारा लडका बिल्कुल ही व्यर्थ की असुरक्षाओ से परेशान है, व्यर्थ के भय से पीडित है। जो घटना कभी नहीं हो सकती उसके साथ वह मरा जा रहा है। यह लडका अगर बाहर जाए, किसी को अन्धा देख ले तो एकदम घर लौट आता है, बिस्तर पर लेट जाता है, कंपने लगता है और कहता है कि कही मैं अंधा न हो जाऊ। कोई मर जाए पड़ोस मे तो उसकी हमे फिक्र नही होती जितनी हमे इसकी फिक्र होती है कि इसको पता न चल जाए क्योकि इसे पता चला कि यह दो चार दिन के लिए बिल्कुल ठडा हो जाता है और कहता है कि मैं मर तो नही जाऊ गा। हम समझा-समझा कर परेशान हो गए। अमेरिका मे उसका मनोविश्लेषण भी करवाया है। उससे भी कुछ हित नही हुआ। हिन्दुस्तान के भी कुछ डाक्टरो को दिखा चुके हैं, उससे भी कुछ फायदा नही हुआ। जिसके पास ले जाते हैं वह कहता है कि ये फिजूल के भय हैं। अभी तुम पूरे जवान हो, कहा मर जाओगे, तुम्हारी आखे बिल्कुल ठीक है। हम परीक्षाए करवा देते हैं, आखें तुम्हारी बिल्कुल ठीक है। वह कहता है : यह सब तो ठीक है लेकिन क्या यह पक्का है कि आख ठीक हो तो अन्धा नही हो सकता आदमी। क्या यह बिल्कुल पक्का है कि आदमी जवान हो तो नही मरता। वह कहता है कि हम यह सब समझ जाते हैं लेकिन फिर भी भय पकडता है। एक आदमी लंगडा हो गया है तो मुझे डर लगता है कि मैं लंगडा तो नहीं हो जाऊंगा। वह युवक मेरे पास बैठा है। वह डरा हुआ है। मैंने उसके पिता को, उसकी मा को, उसकी पत्नी को कहा कि तुम सरासर झूठी बातें इस युवक को सिखा रहे हो। एकदम बिल्कुल झूठी बातें। वह युवक एक दम ठीक कह रहा है। मैंने इतना कहा कि वह युवक जो सिर झुकाए, रीढ़ नीचे किए बैठा था सीधा होकर बैठ गया। उसने सिर ऊंचा किया। उसने मुझे गौर मे देखा। उसने कहा, क्या कहते हैं आप कि मैं ठीक कह रहा हूं। मैंने कहा हां तुम ठीक कह रहे हो। आंख का कोई भरोसा नहीं, जिन्दगी का भी कोई भरोसा नही। तुम्हारे मां-बाप सरासर झूठी बातें करके तुम्हें एक भ्रम मे रखना चाहते हैं जबकि तुम सच ही कह रहे हो। लेकिन मैंने कहा कि तुम

इससे भागना क्यों चाहते हो ? भाग कहां सकते हो ? क्या तुम मरने से बच सकते हो ? कोई रास्ता है बचने का ? उसने कहा कि कैसे बच सकता हूं ? मैंने कहा कि मृत्यु की जो स्थिति है, इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। जिससे बच ही नहीं सकते हो वह मृत्यु है। फिर इसमे चिन्ता की क्या बात है ? उस युवक ने कहा कि नही, ऐसी चिन्ता की बात नहीं मालूम होती। लेकिन यह सब मुझे समझाते हैं कि यह बात ही झूठ है। तब मैं द्वन्द्व मे पड जाता हूं। उधर मुझे लगता है कि मौत होगी और ये लोग कहते हैं कि नहीं होगी। तो मैं द्वन्द्व मे पड जाता हू। आप कहते हैं मौत होगी। मैंने कहा बिल्कुल पक्का है। कल सुबह भी पक्का नही कि तुम जिन्दा उठोगे। इसलिए आज की रात मे ही ठीक से सो जाओ। कल सुबह का कोई भरोसा नही। मैंने उससे पूछा कि तुम्हे आख जाने का डर क्यो है। उसने कहा तो फिर मैं पेन्ट कैसे करूंगा ? अगर मेरी आख चली गई तो मैं पेन्ट कैसे करूंगा? मैंने कहा कि जब तक आख है तब तक पेन्ट करना। क्योकि आंख का कोई भरोसा नही। जब तुम्हारी आख नही होगी तब तुम पेन्ट नहीं कर सकोगे। अभी तुम्हारी आंख है तो भी तुम पेन्ट नही कर रहे हो। आंख नही होगी इस चिन्ता मे नष्ट किए दे रहे हो। आख खत्म हो सकती है अगर यह पक्का है तो तुम शीघ्रता से पेन्ट करो। मा-बाप लाए थे उसे मेरे पास कि मैं उसे आश्वासन दूं। वे बहुत घबड़ा गए और बोले कि यह आप क्या कह रहे हैं, हम तो और मुश्किल मे पड जाएंगे। मैंने कहा : मुश्किल में आप नही पड़ेंगे। वह युवक दूसरे दिन सुबह मेरे पास आया। उसने कहा कि चार साल बाद मैं पहली बार सो पाया। क्योकि जब मैंने कहा कि ऐसा है और ऐसा हो सकता है तो अब क्या सवाल है। अब ठीक है। बात खत्म हो गई। अगर मौत है और उसकी स्वीकृति है तो संघर्ष कहां है ? मौत है और स्वीकृति नहीं, तो हम मौत नहीं है ऐसे भाव पैदा करते हैं। और इस तरह की व्यवस्था करते हैं कि पता ही न चले कि मौत है। मरघट गांव के बाहर बनाते हैं कि पता ही न चले कि मौत जिन्दगी का कोई हिस्सा है। गांव में किसी को पता ही नही चलता कि कोई मरता है। मरघट होना चाहिए ठीक गांव के बीच में जहां से दिन में दस बार निकलना पड़े और दस बार खबर आए कि मौत खड़ी है। उसको बनाते हैं गांव के बाहर ताकि किसी को पता ही न चले कि मौत है। अगर कोई मर जाए तो उसको भेज आते हैं लेकिन जिन्दा आदमी को बचाते हैं। कोई मर जाए, रास्ते से अर्थी निकल रही हो तो बच्चे को मां भीतर घर में बुला लेती है, दरवाजा बन्द कर

लेती है कि अर्थी निकल रही है बेटा, भीतर आ जाओ। जबकि मां को थोड़ी समझ हो तो बच्चों को बाहर ले आना चाहिए कि बेटा अर्थी निकल रही है, इसको ठीक से देखो और समझो कि कल मैं मरूंगी, परसों तुम मरोगे। यह जीवन का सत्य है। इससे भागने का, बचने का कोई उपाय नहीं है। असुरक्षा के बोध का यह मतलब है कि उसके अन्दर पूरी चेतनता होनी चाहिए। वह अचेतन मे दबा न रह जाए। चेतन हमें ख्याल मे हो, हमारी जिन्दगी बिल्कुल दूसरी हो। जो कुछ चल रहा है उसमे कुछ भी फर्क नही होगा लेकिन आप बिल्कुल बदल जाएगे। आपकी पकड बदल जाएगी, आसक्ति बदल जाएगी, राग बदल जाएगा, द्वेष बदल जाएगा, आप दूसरे आदमी हो जाएगे, क्योंकि क्या राग करना, क्या द्वेष करना ? अगर जिन्दगी इतनी असुरक्षित है तो इस सब पागलपन का क्या अर्थ है ? क्यो ईर्ष्या करनी ? क्यो आकाक्षा करनी ? क्यो महत्वाकाक्षा ? वह बोध आपकी इन सारी चीजों को मिटा देगा। मेरा सारा जोर इस बात पर है कि अगर हम जीवन के तथ्य को देख लें तो हम सत्य की ओर अपने आप गति कर जाएंगे। हम क्या किये हैं कि तथ्य तक को झुठला दिया है और सब ओर से लीप पोतकर ऐसा कर दिया है कि वह तथ्य ही नही रहा है। और झूठ से सत्य की यात्रा नही हो सकती। तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है लेकिन तथ्य को छिपा कर, बदल कर, तोड़-मरोड़ कर, हम कभी सत्य तक नही जा सकते। महावीर भी उसी को सन्यास कहते हैं। लेकिन अब जिसको हम सन्यासी कहते हैं, वह हमारा बिल्कुल उल्टा आदमी है। सन्यासी हमारे गृहस्थ से ज्यादा सुरक्षित है। गृहस्थ का दिवाला निकल चुका है, सन्यासी का कोई दिवाला निकलने का सवाल ही नही उठता। तो गृहस्थ के ऊपर हजारो चिन्ताए और झझटे हैं। सन्यासी के ऊपर वे चिन्ताए और झझटें नही हैं। सन्यासी बिल्कुल सुरक्षित है। अगर आज सन्यासी को हम देखें तो आज जो उल्टी बात दिखाई पड़ती है वह यह कि सन्यासी ज्यादा सुरक्षित है। उसे न बाजार के भाव से कोई चिन्ता है, न किसी दूसरी बात से कोई चिन्ता है। उसे न कोई दिक्कत है, न कोई कठिनाई है। खाने-पीने का सब इन्तजाम है, वस्त्र है, समाज है, मन्दिर हैं, आश्रम हैं। सब इन्तजाम है। सन्यासी इस समय सबसे ज्यादा सुरक्षित है जबकि सन्यासी का मतलब यह है कि जिसने सुरक्षा का मोह छोड़ दिया, जो इस बोध के प्रति जाग गया कि सभी सुरक्षित हैं और जब सुरक्षा के ख्याल मे भी नही रहा, अब जो असुरक्षा में ही जीने लगा, कल की बात ही नही करता, भविष्य का विचार ही नहीं करता, योजना नहीं

बनाता, बस क्षण-क्षण जिए चला जाता है, जो होगा होगा, वह उसके लिए राजी है। मौत आए तो राजी है, जीवन हो तो राजी है, दुख हो तो राजी है, सुख हो तो राजी है। ऐसी चित्त-दशा का नाम संन्यास है और ऐसा व्यक्ति अगृही है। अगर बहुत गहरे में खोजने जाएं तो सुरक्षा 'गृह' है, असुरक्षा 'अगृह' है। सुरक्षा में जीने वाला, सुरक्षा में जीने की व्यवस्था करने वाला 'गृहस्थ' है। सुरक्षा में न जीने वाला, असुरक्षा की स्वीकृति में जीने वाला संन्यासी है, अगृही है।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न किसी ने पूछा है कि महावीर ने सन्यासियों से यह क्यों कहा कि तुम गृहस्थों को विनय मत देना, उनको तुम नमस्कार मत करना, उनका तुम आदर मत करना। यह बात महावीर ने क्यों कही ? इसे सन्यासी और गृहस्थ के बीच बना लेने से भूल हो जाती है। असल में अगर हम बहुत ध्यान से देखें तो जो असुरक्षित व्यक्ति है, वह ऐसे जी रहा है जैसे हवा-पानी जी रहा है। वह जो सुरक्षा के भ्रम में, सपने में और नींद में खोया है वह ऐसा ही है जैसे कोई कहे जागे हुए आदमी को कि तू सोए हुए आदमी को नमस्कार मत करना। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि आदर उसके सोए हुए होने को और बढ़ाए। लगता तो ऐसा है लेकिन महावीर के पीछे आने वाले साधुओं ने उसका दूसरा ही मतलब निकाला है। उन्होंने इसे बिल्कुल अहंकार की प्रतिष्ठा बना ली है। यानी वे कुछ ऊंचे हैं, अहंकार में प्रतिष्ठित हैं, सम्मानित हैं, पूज्य हैं, दूसरे को उनकी पूजा करनी है। लेकिन बड़े मजे की बात है कि महावीर ने यह कहीं नहीं कहा कि साधु गृहस्थ से पूजा ले, संन्यासी गृहस्थ से विनय मांगे। इतना ही कहा है कि गृहस्थ को अगृही विनय न दे। क्योंकि गृहस्थ से मतलब ही इतना है कि जो अज्ञान में घिरा हुआ खड़ा है इसके अज्ञान की तृप्ति को जगह-जगह से गिराना जरूरी है। इसके अहंकार को बढ़ाना उचित नहीं है। अहंकार न बढ़ जाए गृही का इसलिए महावीर कहते हैं कि साधु उसे विनय न दे। लेकिन उन्हें पता नहीं था शायद कि उनका साधु ही इसको अहंकार का पोषण बना लेगा और साधु ही इस अहंकार में जीने लगेगा कि उसे पूजा मिलनी चाहिए और वह अविनीत हो जाएगा। महावीर की कल्पना भी नहीं है कि साधु अविनीत हो सकता है, इसलिए वह कहते हैं कि साधुता का तो मतलब ही है पूर्ण विनम्रता में जीना चौबीस घंटे। यानी कोई न भी हो पास में तो भी विनम्रता में ही जीना। वह तो साधुता का मतलब ही है। क्योंकि साधुता का

मतलब है सरलता और सरलता अविनम्र कैसे होगी? महावीर को यह कल्पना ही नहीं कि साधु भी अविनम्र हो सकता है। हां गृहस्थ अविनम्र हो सकता है क्योंकि वह अहंकार मे जीता है, वहीं उसका घर है। उसे विनय मत देना। लेकिन भूल हो गई। मालूम होता है कि भूल ऐसी हो गई कि उन्हें पता नहीं कि साधु भी एक प्रकार का गृहस्थ हो सकता है। इसका कोई ख्याल नहीं है उन्हें कि साधु भी बदला हुआ गृहस्थ हो सकता है। सिर्फ कपडे बदल कर साधु हो सकता है और उसकी चित्तवृत्तियो की सारी माग वही हो सकती है जो गृहस्थ की है। असल बात यह है कि जिसे हम गृहस्थ कह रहे हैं वह तो गृहस्थ है लेकिन जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु नही है।

जापान के एक सम्राट ने एक बार अपने वजीरो को कहा कि तुम जाकर पता लगाओ कि अगर कही कोई साधु हो तो मै उससे मिलना चाहता हू। वजीरो ने कहा कि यह बहुत मुश्किल काम है। सम्राट ने कहा मुश्किल ? मैं तो रोज सड़क से भिक्षुओ को, साधुओ को निकलते देखता हू। वजीरो ने कहा कि यह बहुत कठिन है, वर्षों लग सकते हैं। फिर भी हम खोज करेगे। उन्होने बहुत खोज-बीन की। आखिर वह खबर लाए कि एक पहाड़ पर एक बूढा है। वह आदमी साधु है। सम्राट वहा गया। वह बूढ़ा एक वृक्ष के पास दोनो पैर फैलाए हुए आराम से बैठा था। सम्राट जाकर खडा हो गया। साधु ने न तो उठकर सम्राट को नमस्कार किया जैसा सम्राट की अपेक्षा थी, न उसने पैर सिकोडे। वह पैर फैलाए ही बैठा रहा। न उसने इसकी कोई फिक्र की कि सम्राट आया है। वह जैसा बैठा था, बैठा रहा। सम्राट ने कहा आप जाग तो रहे हैं न ? खडे होकर नमस्कार करने का शिष्टाचार भी नही निभाते हैं आप ! पैर फैलाकर अशिष्ट ग्रामीणो की तरह बैठे हैं ? मैं तो यह सुनकर आया कि मैं एक साधु के पास जा रहा हू। वह बूढा खूब खिलखिलाकर हसने लगा। उसने कहा कि कौन सम्राट और कौन साधु ? यह सब नीद के हिस्से हैं। कौन किसको आदर दे ? कौन किससे आदर ले ? अगर साधु के पास आना हो तो सम्राट होना छोडकर आओ। क्योंकि सम्राट और साधु का मेल कैसे होगा ? बड़ा मुश्किल हो जाएगा। तुम कही पहाड़ पर खड़े हो, हम कहीं गड्ढे मे विश्राम कर रहे हैं। मेल कहा होगा ? मुलाकात कैसे होगी ? साधु से मिलना है तो सम्राट होना छोड़ कर आओ। और रही पैर सिकोड़ने, फैलाने की बात। अगर शरीर पर ही नजर है तो यहा तक आने की कोशिश व्यर्थ हुई। अगर इसी पर ही दृष्टि अटकी है तो नाहक तुम यहां चढ़े, वापिस लौट

आओ। सम्राट को सुनकर लगा कि आदमी असाधारण है। उसके पास कुछ दिन रुका, उसके जीवन को देखा, परखा, पहचाना, बहुत आनन्दित हुआ। जाते वक्त एक बहुमूल्य मखमल का कोट, जिसमें लाखों रुपयों के हीरे जवाहरात जड़े थे, भेंट करना चाहा। उस साधु ने कहा कि तुम भेंट करो और मैं न लूं तो तुम दुखी होगे। लेकिन तुम तो भेंट करके चले जाओगे। इस जंगल के पशु-पक्षी ही यहां मेरे जान-पहचान के हैं। यह सब मुझ पर बहुत हंसेंगे कि बुढ़ापे में भी मुझे बचपन सूझा है। तुम सोचते हो कि करोड़ों की चीज दिए जा रहे हो, लेकिन वे आंखें कहां हैं जो इसको करोड़ों का समझती हैं। इधर मैं निपट अकेला हूं। यह पशु-पक्षी मेरे साथी हैं। ये इनको कंकड़-पत्थर समझेंगे और मुझको पागल समझेंगे। यह कोट तो ले जाओ। किसी दिन कोई बहुमूल्य चीज तुम्हें लगे तो ले आना जिसको यहां भी बहुमूल्य समझा जा सके। ये पक्षी, ये आकाश, ये चांद और तारे भी जिसे बहुमूल्य समझें।

सम्राट वापस लौटा। उसने अपने वजीरों से कहा कि उन्हें कुछ न कुछ तो भेंट देनी ही चाहिए। लेकिन ऐसी कौन सी बहुमूल्य चीज है जिसे मैं वहां ले जा सकूं। तो उन वजीरों ने कहा कि वह तो सिर्फ आप ही हो सकते हैं। लेकिन आपको बदल कर जाना पड़ेगा, साधु होकर जाना पड़ेगा क्योंकि वह बहुमूल्य चीज़ सिर्फ साधुता ही हो सकती है जो उस पहाड़ पर, उस एकान्त जंगल में भी पहचानी जा सके। आदमी के मूल्य तो राजधानी की सड़कों पर पहचाने जा सकते हैं। परमात्मा के मूल्य एकान्त में ही पहचाने जा सकते हैं। जहां कोई भी पारखी नहीं है वहीं वे परखे जा सकते हैं। साधुता का अर्थ ही खो गया है आजकल। तो साधु के नाम से जो बैठे हैं वे आमतौर से बदले हुए गृहस्थ हैं, जिन्होंने कपड़े बदल लिए हैं मगर गृहस्थी का ही काम कर रहे हैं।

एक साधु मुझसे मिलने आए। मैंने उनसे कहा कि आप मुंहपट्टी क्यों बांधे हुए हैं? यह सच में आपको लगती है कुछ बांधने जैसी? उन्होंने कहा: बिल्कुल नहीं लगती। मैंने कहा कि इसे छोड़ दें आप। उन्होंने कहा कि अगर छोड़ दें तो कल खाने, पीने का क्या होगा? कौन सम्मान देगा? यह मुंह-पट्टी की वजह से सब व्यवस्था है। यह गई कि सब व्यवस्था चली जाएगी।

अब यह मुंह-पट्टी की व्यवस्था का इन्तजाम है। हम मुंह-पट्टी बांधते हैं, हम गेरुआ वस्त्र पहनते हैं क्योंकि ये सब हमारी सुरक्षा के साधन हैं। जैसे हम कुछ इन्तजाम कर रहे हैं, ऐसा यह साधु भी इन्तजाम कर रहा है। यह भी हिम्मत करने को राजी नहीं है कि खड़ा हो जाए कि कोई दे देगा तो ठीक, नहीं

देगा तो ठीक ; रोटी मिलेगी तो ठीक, नही मिलेगी तो ठीक । इतनी हिम्मत जुटाकर खड़ा न हो जाए तो इसे गृहस्थ से भिन्न कहने का क्या कारण है ? सिर्फ एक ही कारण है कि गृहस्थ दूसरो का शोषण करता है, यह गृहस्थो का शोषण करता है । गृहस्थ शोषण करता है तो वह उसकी वजह से पापी हुआ जा रहा है । और यह उन पापियो का शोषण करता है तो उसकी वजह से पापी नही हो रहा है । यह किसी बन्धन मे नही है । इसने बंधन में न होने का भी इन्तजाम किया हुआ है । लेकिन इन्तजाम ही बधन है यह इसे ख्याल मे नही है ।

तो यह साधु की जो कल्पना महावीर के मन मे है, उस कल्पना का साधु इतना विनम्र होगा कि उसे विनीत होने की जरूरत ही नही है । विनीत होना पडता है सिर्फ अहकारियो को । वह इतना सरल होगा कि कौन साधु है, कौन गृहस्थ है इसकी पहचान मुश्किल हो जाएगी । लेकिन जो उन्होने कहा है, वह सिर्फ यह है कि मूर्छित व्यक्ति को, जागृत व्यक्ति सम्मान न दे । लेकिन मजा यह है कि बिना इसकी फिक्र किए कि हम जागृत हैं या नही, सम्मान न दिया जाए तो सब गडबड हो जाता है । उसमें आधी शर्त ख्याल मे रखी गई है कि जागृत व्यक्ति मूर्छित को सम्मान न दे । दूसरा व्यक्ति मूर्छित है, यह पक्का है । लेकिन हम जागृत हैं या नही, यह अगर पक्का नही है तो शर्त कहां पूरी हो रही है ? और दूसरा मूर्छित है यह पता भी हमे तभी चल सकता है जब हम जागृत हो । लेकिन पता ही नही चलता है कि आदमी सोया हुआ है । अब दस आदमी कमरे मे सोए हुए हैं तो सिर्फ जागे हुए आदमी को ही पता चल सकता है कि बाकी लोग सोए हुए हैं । सोए हुए को पता नहीं चल सकता कि कौन सोया हुआ है और जागृत व्यक्ति को कैसी विनम्रता, कैसा अविनय, यह सवाल ही नही है । पर ध्यान उनका यही है कि मूर्छित को सम्मान कम हो, अमूर्छित को सम्मान हो ताकि समाज अमूर्छा की ओर बढ़े और व्यक्ति अमूर्छित दिशा की तरफ अग्रसर हो । साधु के लिए सम्मान का बड़ा ध्यान उन्होने किया है सिर्फ इसीलिए कि साधु वह है जो सम्मान नहीं मांगता । जो समाज ऐसे व्यक्तियो को सम्मान देता है, वह समाज धीरे-धीरे निरहंकारिता की ओर बढ़ने का कदम उठा रहा है ।

चर्चा : पाठ
२६.६.६६ रात्रि

८

प्रश्न : महावीर प्राकृत भाषा में क्यों बोले ? संस्कृत में क्यों नहीं ?

उत्तर : यह प्रश्न सच मे गहरा है । सस्कृत कभी भी लोकभाषा नहीं थी । सदा से पडित की भाषा रही—दार्शनिक की, विचारक की । प्राकृत लोकभाषा थी—साधारण जन की, अशिक्षित की, ग्रामीण की । शब्द भी बड़े अद्भुत हैं । प्रकृति का मतलब है स्वाभाविक, संस्कृत का मतलब है परिष्कृत । प्रकृति से ही जो परिष्कृत रूप हुए थे, वे सस्कृत बने । प्राकृत मूलभाषा है । सस्कृत उसका परिष्कार है । इसलिए सस्कृत शब्द शुरू हुआ उस भाषा के लिए जो परिष्कृत थी ।

सस्कृत धीरे-धीरे इतनी परिष्कृत होती चली गई कि वह अत्यन्त थोडे से लोगो की भाषा रह गई । लेकिन पडित, पुरोहित के यह हित मे है कि जीवन मे जो कुछ भी मूल्यवान है वह सब ऐसी भाषा में हो जिसे साधारण जन न समझ सके । साधारण जन जिस भाषा को समझता हो, अगर वह उस भाषा मे होगा तो पडित, पुरोहित और गुरु बहुत गहरे अर्थों मे अनावश्यक हो जाएगे । उनकी आवश्यकता शास्त्र का अर्थ करने मे है । साधारण जन की भाषा मे ही अगर सारी बाते होगी तो पडित का क्या प्रयोजन ? वह किस बात का अर्थ करे ? पुराने जमाने मे विवाद को हम कहते थे शास्त्रार्थ । शास्त्रार्थ का मतलब है—शास्त्र का अर्थ । दो पडित लडते है । विवाद यह नही है कि सत्य क्या है । विवाद यह है कि शास्त्र का अर्थ क्या है ? पुराना सारा विवाद सत्य के लिए नही है, शास्त्र के अर्थ के लिए है कि व्याख्या क्या है शास्त्र की ? इतनी दुरूह और इतनी परिष्कृत शब्दावली विकसित की गई जो साधारण जन की हैसियत के बाहर है और जिस बात को साधारण. जन कम से कम समझ पाए, वह अनिवार्यरूपेण जनता का नेता और गुरु हो सकता है । इसलिए इस देश में दो परम्पराए चल पड़ीं । एक परम्परा थी जो सस्कृत में ही लिखती और सोचती थी । वह बहुत थोड़े से लोगो की थी । एक प्रतिशत लोगों का भी उसमे हाथ न था । बाकी सब दर्शक थे । ज्ञान का जो आन्दोलन चलता था वह बहुत थोड़े से अभिजातवर्गीय लोगों का था ।

जनता अनिवार्य रूप से अज्ञान में रहने को बाध्य थी। महावीर और बुद्ध— दोनों ने जनभाषाओं का उपयोग किया। जिस भाषा में लोग बोलते थे उसी भाषा में वे बोले। और शायद यह भी एक कारण है कि हिन्दू ग्रन्थों में महावीर के नाम का कोई उल्लेख नहीं है। न उल्लेख होने का कारण है क्योंकि संस्कृत में न उन्होंने कोई शास्त्रार्थ किए, न उन्होंने कोई दर्शन विकसित किया। न उनके ऊपर, उनके सम्बन्ध में, कोई शास्त्र निर्मित हुआ। आज भी हिन्दुस्तान में अंग्रेजी दो प्रतिशत लोगों की अभिजात भाषा है। हो सकता है कि मैं हिन्दी में ही बोलता चला जाऊं तो दो प्रतिशत लोगों को यह पता ही न चले कि मैं भी कुछ बोल रहा हूं। वे अंग्रेजी में पढ़ने और सुनने के आदी हैं। महावीर चूंकि अत्यन्त जन-भाषा में बोले, इन पंडितों का जो वर्ग था, उसने उनको बाहर ही रखा। जनसाधारण ग्राम्य ही थे, उनको उसने भीतर नहीं लिया। इसलिए किसी भी हिन्दू ग्रन्थ में महावीर का उल्लेख नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि महावीर जैसी प्रतिभा का व्यक्ति पैदा हो और देश की सबसे बड़ी परम्परा में, उसके शास्त्र में, उस समय के लिपिबद्ध ग्रन्थों में उसका कोई उल्लेख भी न हो, विरोध में भी नहीं। अगर कोई हिन्दू ग्रन्थों को पढ़े तो शक होगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी हुआ भी या नहीं। अकल्पनीय मालूम पड़ता है कि ऐसे व्यक्ति का नाम भी नहीं है। मैं उसके बुनियादी कारणों में एक कारण यह मानता हूं कि महावीर उस भाषा में बोल रहे हैं जो जनता की है। पंडितों से शायद उनका बहुत कम सम्पर्क बन पाया। हो सकता है कि हजारों पंडित अपरिचित ही रहे हों कि यह आदमी क्या बोलता है। क्योंकि पंडितों का अपना एक अभिजात भाव है। वे साधारण जन नहीं हैं। वे साधारण जन की भाषा में न बोलते हैं न सोचते हैं। वे असाधारण जन हैं। वे चुने हुए लोग हैं। उन चुने हुए लोगों की दुनिया का सब कुछ न्यारा है। साधारण जन से कुछ लेना-देना नहीं। साधारण जन तो भवन के बाहर हैं, मन्दिर के बाहर हैं। कभी-कभी दया करके, कृपा करके साधारण जन को भी वे कुछ बता देते हैं। लेकिन गहरी और गम्भीर चर्चा तो वहां मन्दिर के भीतर चल रही है जहां साधारण जन को प्रवेश निषिद्ध है। महावीर और बुद्ध की बड़ी से बड़ी क्रान्तियों में एक क्रान्ति यह भी है कि उन्होंने धर्म को ठेठ बाजार में लाकर खड़ा कर दिया, ठेठ गांव के बीच। वह किसी भवन के भीतर बंद चुने हुए लोगों की बात न रही, वह सबकी— जो सुन सकता है, जो समझ सकता है, बात हो गई।

इसलिए उन्होंने संस्कृत का उपयोग नहीं किया। और भी कई कारण हैं। असल में प्रत्येक भाषा जो किसी परम्परा से सम्बद्ध हो जाती है, उसके अपने सम्बन्ध हो जाते हैं। उसका प्रत्येक शब्द एक निहित अर्थ ले लेता है। और उसके किसी भी शब्द का प्रयोग खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि जब उस शब्द का प्रयोग करते हैं तो उस शब्द के साथ जुड़ी हुई परम्परा का सारा भाव पीछे खड़ा हो जाता है। इस अर्थ में जनता की जो सीधी-सादी भाषा है, वह अछूत है। वह काम करने की, व्यवहार करने की, जीवन की भाषा है। उसमें बहुत शब्द ऐसे हैं जिनको नए अर्थ दिए जा सकते हैं। और महावीर को जरूरी था कि वह जैसा सोच रहे थे, वैसे अर्थ के लिए नई शब्दावली लें। कठिन था कि वह संस्कृत शब्दावली को उपयोग में ला सकें। क्योंकि संस्कृत सैकड़ों वर्षों से, हजारों वर्षों से, परम्पराबद्ध विचार की एक विशेष दिशा में काम कर रही थी। उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित हो गया था। तो उचित यह था कि ठीक अनपढ़ जनता की भाषा को सीधा उठा लिया जाए। उसे नए अर्थ, नए तराश, नए कोने दिए जा सकते थे। तो उन्होंने सीधी जनता की भाषा उठा ली और उस जनता की भाषा में अद्भुत चमत्कारपूर्ण व्यवस्था दी। यह इस बात का भी प्रमाण हो सकता है कि महावीर का मन, शास्त्रीय नहीं है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनका मन शास्त्रीय होता है, जो सोचते हैं शास्त्र में, समझते हैं शास्त्र में, जीते हैं शास्त्र में। शास्त्र के बाहर उन्हें कोई जीवन लगता ही नहीं। अगर उनकी बातचीत सुनने जाएंगे तो पता चलेगा कि शास्त्र के बाहर कहीं कुछ है ही नहीं, और शास्त्र बड़ी संकीर्ण चीज है, जिन्दगी बड़ी विराट चीज है। उनके प्रश्न भी उठते हैं तो जिन्दगी से नहीं आते, किताब से आते हैं। वे अगर कुछ पूछेंगे भी तो वह इसलिए कि उन्होंने जो किताबें पढ़ी हैं उनकी सीधी जिन्दगी से कोई प्रश्न नहीं उठते। और इस लिहाज से यह बड़ी हैरानी की बात है कि कभी ग्रामीण से ग्रामीण व्यक्ति भी जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों की बात उठा देता है जबकि पंडित से वैसी आशा असम्भव है। पंडित प्रश्न भी उधार ही पूछता है यानी प्रश्न भी उसका अपना नहीं होता। उत्तर तो बहुत दूर की बात है। वह प्रश्न भी उसने किताब में पढ़ा होगा। और जब वह प्रश्न पूछता है तब उसके पास उत्तर तैयार होता है। यानी वह आपसे कोई बड़े प्रश्न के उत्तर की आकांक्षा नहीं कर रहा है। वह शायद आपका परीक्षण ही कर रहा है कि आपको भी यह उत्तर पता है या नहीं। उत्तर भी उसके पास है, प्रश्न भी उसके पास है। प्रश्न से भी पहले वह उत्तर

को पकड़कर बैठा हुआ है। और अब वह जो प्रश्न उठा रहा है, वह प्रामाणिक नहीं है, उत्तर प्राणों से नहीं आ रहे हैं। तो शास्त्रीय लोग भी हैं जिनकी सारी जिन्दगी किताबों के द्वन्द्व-फंदों के भीतर गुजरती है। महावीर खुली जिन्दगी के पक्षपाती हैं, खुले आकाश के नीचे नग्न खड़े हैं। खुली जिन्दगी, सच्ची जिन्दगी, जैसी है वह उसको छूना चाहते हैं, इसलिए शास्त्र को बिल्कुल हटा देते हैं, शास्त्रीयता को बिल्कुल हटा देते हैं, शास्त्रीय व्यवस्था को ही हटा देते हैं, और हमेशा ऐसी जरूरत पड़ जाती है कि कुछ लोग वापिस जिन्दगी का हमें स्मरण दिलाएं। नहीं तो किताबें बड़ी खतरनाक हैं। धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि जिन्दगी कुछ और है और किताब कुछ और है। एक घोड़ा वह है जो बाहर सड़क पर चल रहा है। एक घोड़ा वह है जो शब्दकोष में लिखा हुआ है। जिन्दगी भर जो किताब में उलझे रहते हैं, वे किताब के घोड़े को ही असली घोड़ा समझने लगें तो आश्चर्य नहीं है। हां, इतना जरूर है कि किताब के घोड़े पर चढ़ने की भूल कोई कभी नहीं करता। लेकिन किताब के परमात्मा पर प्रार्थना करने की भूल निरन्तर हो जाती है। किताब का परमात्मा इतना ही सही मालूम पड़ने लगता है जितना कि असली परमात्मा होगा। लेकिन किताब का परमात्मा बात ही और है। शब्द 'आग' आग नहीं है। किसी मकान पर 'आग' लिख देने से मकान नहीं जल जाता। 'आग' बात ही और है। 'आग' तो कुछ बात ऐसी है कि 'आग' शब्द भी जल जाएगा उसमें। वह भी नहीं बच सकेगा। लेकिन भूल होने का डर है कि शब्द 'आग' को कहीं हम 'आग' न समझ लें और शब्द 'परमात्मा' को कहीं हम परमात्मा न समझ लें। और जो शब्दों की दुनिया में जीते हैं, उनसे यह भूल होती ही है। उन्हें याद ही नहीं रह जाता कि कब जिन्दगी से वे खिसक गए हैं और एक शब्दों की दुनिया में भटक गए हैं। पंडित का अपना जगत है। महावीर उस शब्द-जाल से भी बाहर आ जाना चाहते हैं। इसलिए पंडित का शब्दजाल है संस्कृत का। ग्राम जनता की बातचीत तो सीधी-सादी है, उसमें जाल नहीं है। न व्याख्या है, न परिभाषा है। जिंदगी को इंगित करने वाले शब्द हैं। तो उन्होंने वे शब्द पकड़ लिए और सीधी जनता से बात शुरू कर दी। वह जनता के आदमी हैं। इन अर्थों में वे पंडित नहीं हैं। और उन्होंने यह भी न चाहा कि उनके शास्त्र निर्मित हों। किसी ने पूछा भी है एक सवाल कि महावीर के बहुत पूर्व काल से लिखने की कला विकसित हो गई थी और जैन कहते हैं कि खुद प्रथम तीर्थंकर ने लोगों को लिखने की कला सिखाई। प्रथम तीर्थंकर को हुए कितना

काल व्यतीत हो चुका था। लोग लिखना जानते थे, पढ़ना जानते थे, किताब बन सकती थी फिर महावीर के जीते जी महावीर ने जो कहा उसका शास्त्र क्यों नहीं बना ?

हमें ऐसा लगता है कि लिखने की कला न हो तो शास्त्र निर्मित होने में बाधा पड़ती है। लिखने की कला हो तो शास्त्र निर्मित होना ही चाहिए। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि महावीर चूंकि बुद्धिशास्त्रीय नहीं हैं, उन्होंने नहीं चाहा होगा कि उनका शास्त्र निर्मित हो और जब तक उनका बल चला शास्त्र न बन पाये। शास्त्रीय व्यक्ति की बुद्धि जीवन से पृथक् होकर शब्दों की दुनिया में प्रवेश कर जाती है और एक विचित्र काल्पनिक लोक में भटकने लगती है। तो महावीर ने सुनिश्चित रूप से, शास्त्र को रोकने की कोशिश की होगी। इसलिए मर जाने के दो-तीन चार सौ वर्षों तक, जब तक लोगों को उनका स्पष्ट स्मरण रहा होगा, कि शास्त्र नहीं लिखने हैं तब तक शास्त्र नहीं लिखा जा सका होगा। लेकिन हमारा मोह भारी है, हम प्रत्येक चीज को स्मृति में रख लेना चाहते हैं। तो कहीं ऐसा न हो कि महावीर का कहा हुआ विस्मरण हो जाए; कहीं ऐसा न हो कि महावीर विस्मरण हो जाएं, तो हमारे पास उपाय क्या है ? हम लिपिबद्ध कर लें, शास्त्रबद्ध कर लें, फिर नहीं खोएगा। महावीर खो जाएंगे लेकिन शास्त्र बचेगा। लेकिन कभी हमे सोचना चाहिए कि जब महावीर जैसा जीवन्त व्यक्ति भी खो जाता है तो शास्त्र को तुम बचा कर क्या महावीर को बचा सकोगे। महावीर जैसे व्यक्ति तो यही उचित समझेंगे कि जब व्यक्ति ही बिदा हो जाता है, और जहां चीजे परिवर्तनीय हैं, सभी आती हैं और चली जाती हैं वहां कुछ भी स्थिर न हो, वहां शब्द और शास्त्र भी स्थिर न हो, वह भी खो जाएं। क्योंकि जीवन का नियम जब यह है—जन्म लेना और मर जाना, होना और मिट जाना, और महावीर को भी जब वह जीवन का नियम नहीं छोड़ता है तो महावीर की वाणी पर भी यह क्यों न लागू हो ? हम क्यों आशा बांधें कि हम शब्दों को बचा कर महावीर को बचा लेंगे। क्या बचेगा हमारे हाथ में ? अंगारा कभी नहीं बचता। अंगारा तो बुझ ही जाता है। राख बच सकती है। अंगारे को आप सदा नहीं रख सकते; राख को आप सदा रख सकते हैं। राख बड़ी सुविधापूर्ण है। अंगारे को थोड़ी देर रखा जा सकता है। क्योंकि वह जीवन्त है इसलिए वह बुझेगा। असल में अंगारा जिस क्षण जलना शुरू हुआ है, उसी क्षण बुझना भी शुरू हो गया है। एक पर्त जल गई है, वह राख हो

गई है। दूसरी पर्त जल रही है, वह राख हो रही है। तीसरी पर्त जलेगी, वह राख हो जाएगी। अगार जो है वह थोडी देर में राख हो जाएगा। राख बचाई जा सकती है करोडो वर्षों तक क्योंकि राख मृत है। हम उसे बांध कर रख सकते हैं और खतरा यह है कि कभी हम राख को कहीं अंगार न समझ ले। कभी राख अंगार थी लेकिन राख बनी ही तब जब अगार 'न' हो गया। अब इसमें सोचने की दो बाते हैं। राख अगार थी और राख अंगार नही थी। राख अगार थी—इसका मतलब यह हुआ कि अंगार से ही राख आई है। अगार के जीने से ही राख का आना हुआ है। लेकिन एक अर्थ मे राख कभी भी अगार नही थी क्योंकि जहा-जहां राख हो गई थी, वहां-वहा अगार तिरोहित हो गया था। राख जो है वह जीवित अगार की छूटी हुई छाया है। अगार तो गया, राख हाथ मे रह गई। राख को सजोकर रखा जा सकता है। महावीर ने चाहा होगा कि राख को मत बचाना। क्योंकि असली सवाल अगार का है। वह तो बचेगा नही। उसे तो तुम सभाल नहीं सकोगे। राख सभाल कर रख लोगे। और कल यह धोखा होगा तुम्हारे मन को कि यही है अगार। और तब इतनी बडी भ्रान्ति पैदा होगी जितनी महावीर की सब वाणी खो जाए तो भी पैदा होने को नही है। हिम्मतवर आदमी रहे होंगे। अपनी स्मृति के लिए कोई व्यवस्था न करना बडे साहस की बात है। मृत्यु के विरोध मे हम सभी यह उपाय करते हैं कि किसी तरह तो मरेंगे—लेकिन किसी तरह स्मृति की एक रेखा हमारे पीछे रह जाए, बची ही रहे। फिर वह शब्द जो पत्थर पर लगा हुआ नाम है, शास्त्र है, रह जाए। हमारा मन न मरने की आकाक्षा करता है। न मरने के लिए हम कुछ व्यवस्था कर जाते हैं। महावीर ने जीते जी न मरने की कोई व्यवस्था नही की है। क्योंकि महावीर की दृष्टि मे जो मरने वाला है, वह मरेगा ही। जो नही मरने वाला है वह नही मरता है। और जो मरने वाले को बचाने की कोशिश करते हैं वे बड़ी भ्रान्ति मे पड जाते हैं। वह अक्सर राख को अंगार समझ लेते हे। शास्त्र में जो धर्म है, वह राख है। जीवन मे जो धर्म है, वह अंगार है। तो जीते जी उन्होंने शास्त्र निर्मित नही होने दिया। तीन चार सौ वर्षों तक, जब तक कि लोगो को ख्याल रहा होगा उस आदमी का, उसके निषेध का, उसके इन्कार का, तब तक उन्होने प्रलोभन को रोका होगा लेकिन जब वह स्मृति शिथिल पड़ गई होगी, धीरे-धीरे विस्मरण के गर्त में चली गई होगी, तब उनके सामने सबसे बड़ा सवाल यही रह गया होगा कि हम कैसे सुरक्षित कर

लें जो भी उन्होंने कहा यह ध्यान रखने की बात है कि आज तक जगत मे जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी सत्य है, जो भी सुन्दर है, वह लिखा नहीं गया है, वह कहा ही गया है। कहने मे एक बड़ी जीवन्त बात है, लिखने मे वह मुर्दा हो जाती है। क्योंकि जब हम कहते हैं तो कोई जीवन्त सामने होता है जिससे कहते हैं। अकेले मे तो कह नहीं सकते, लिखने वाले के समक्ष कोई भी मौजूद नही है, सिर्फ लिखने वाला मौजूद है। बोलने वाले के समक्ष, बोलने वाले से भी ज्यादा सुनने वाला मौजूद है। और एक जीवन्त सम्पर्क है। इस जीवन्त सम्पर्क के कारण न तो उन्होने शास्त्रो की भाषा उपयोग की, न शास्त्रीयता का उपयोग किया; न अपने पीछे शास्त्र की रेखा बनने दी। और लोकमानस का, सामान्य जन का बहुत पुराना सघर्ष है यह जोकि अभी पूर्ण नही हो पाया है। ऐसी धारणा रही है कि धर्म थोडे से चुने हुए लोगों की बात है। और सत्य थोडे से लोगो की समझ की बात है। मुझसे लोग आकर कहते हैं कि आप ऐसी बातें लोगो से मत कहिए। ये बातें तो थोडे लोगों के लिए है। सामान्य आदमी को मत कहिए। सामान्य आदमी इनसे भटक जाएगा। अब यह बडे मजे की बात है कि सामान्य आदमी को सत्य भटकाता है और असत्य मार्ग पर लाता है। और मेरी दृष्टि यह है कि वह बेचारा सामान्य ही इसीलिए है कि उसे सत्य की कोई खबर नही मिलती।

प्रश्न : क्या अनधिकारी को ज्ञान नहीं मिलना चाहिए ?

उत्तर : कोई भी अनधिकारी नही है ज्ञान की दृष्टि से। कौन निर्णायक है कि कौन अधिकारी है। निर्णय कौन करेगा? फूल नही कहता कि अधिकारी को सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा, अधिकारी को सुगध देंगे। सूरज नही कहता कि अधिकारी को प्रकाश मिलेगा। श्वांस नही कहती कि अधिकारी के हृदय में पलूंगी? खून नहीं कहता कि अधिकारी के भीतर बहूंगा। जगत अधिकारी की मांग नहीं करता। सिर्फ ज्ञान के सम्बन्ध मे पंडित कहता है कि अधिकारी पहले पक्का हो जाए। क्यों? सारा जीवन अनधिकारी को मिला हुआ है, सिर्फ ज्ञान भर अधिकारी को मिलेगा। तो भगवान बड़ा नासमझ है। अनधिकारियों को जीवन देता है और पंडित बडा समझदार है। वह अधिकारी को पक्का कर ले तब ज्ञान देगा। अधिकारी की बात ही अत्यन्त व्यापारिक और तरकीब की बात है। तब वह उसको देना चाह रहा है, जिससे उसे कुछ मिलता हो। वह मिलना किसी भी तल पर हो सकता है। इज्जत, आदर, श्रद्धा, धन, मान-सम्मान, किसी भी तरकीब से उसको देगा जिससे कुछ मिलने

का पक्का होगा। और उसको देगा, जो उसका अपना है। सबको नहीं देगा खुले हाथ। अपरिचित, अनजान, अजनबी ले जाए, ऐसा नहीं देगा। इसी वजह से ज्ञान को गुरु-शिष्य की परम्परा मे बांधने की तरकीब है। उस तरकीब मे कभी भी ज्ञान विस्तीर्ण नही हो सका।

एडीसन को अगर पता चल गया कि बिजली कैसे बनती है तो वह ज्ञान सबके लिए हो गया। और एडीसन ने नही पूछा कि अधिकारी कौन है जिसके घर मे बिजली जले। वह सबके लिए खुली किताब हो गई, जो भी उपयोग में लाना चाहे, ले आए। विज्ञान इसीलिए जीता है धर्म के खिलाफ कि धर्म था थोड़े से लोगों के हाथ में, और विज्ञान ने सत्य दे दिया सबके हाथ मे। विज्ञान की जीत का कारण यह है कि विज्ञान ने पहली दफा ज्ञान को सार्वलौकिक बना दिया। और धार्मिक लोगो ने ज्ञान को बना लिया बिल्कुल ही सीमित दायरे मे रहने वाला यानी सोच-विचार कर किसको देना, किसको नही देना। और कई बार ऐसा होता है कि जानने वाला आदमी पात्र को, अधिकारी को खोजते-खोजते ही मर जाता है और उसे अधिकारी नही मिल पाता है।

मैंने सुना है कि एक फकीर हिमालय की तराई पर रहता था और नब्बे वर्ष का हो गया था। कई बार लोगों ने आकर कहा कि हमे ज्ञान दो, पर उसने कहा कि अधिकारी के सिवाय ज्ञान तो किसी को नही मिल सकता। अधिकारी लाओ। शर्तें उसकी ऐसी थी कि वैसा आदमी पूरी पृथ्वी पर खोजना मुश्किल था। अधिकारी की शर्तें ऐसी थी। यानी ऐसा ही है कि जैसे कोई डाक्टर किसी से कहे कि हम बीमार को दवा नही देते, हम तो स्वस्थ आदमी को दवा देंगे। स्वस्थ आदमी ले आओ। अब मेरी अपनी समझ यह है कि स्वस्थ आदमी डाक्टर के पास जाएगा ही नही। अधिकारी जो हो गया है, वह किसी से लेने क्यों जाएगा? क्योंकि जिस दिन अधिकार उपलब्ध होता है उसी दिन अपनी उपलब्धि हो जाती है। जिस दिन पात्रता पूरी होती है उसी दिन परमात्मा खुद ही उतर आता है। अनधिकारी ही खोजता है। अधिकारी खोजेगा ही क्यो? अधिकारी का मतलब है कि जिसका अधिकार हो गया। अब तो ज्ञान उसे मिलेगा ही। वह सीधी मांग कर सकता है इस बात की। तो अधिकारी किसी के पास नहीं जाता है। तो लोग थक गए थे। फिर वह बूढ़ा हो गया, बहुत बूढ़ा। फिर एक दिन उसने एक आदमी को जो रास्ते से गुजर रहा था, कहा : सुनो! ज्यादा नहीं, मैं तीन दिन में मर जाऊंगा। गांव में जितने लोगों को खबर हो सके, पहुंचा

दो। जिसको भी ज्ञान चाहिए वह एकदम चला आए। उस आदमी ने कहा लेकिन मेरा गांव बहुत छोटा है, अधिकारी वहां कोई भी नहीं। फकीर ने कहा, अब अधिकारी, गैर अधिकारी का सवाल नहीं रहा। क्योंकि तीन दिन बाद मैं मर जाने को हूं। तुम कहते जाओ, जो भी आए, उसको ले आओ। वह आदमी गाव मे गया, और डोंडी पीट दी। उस बूढे से तो लोगों का कभी कुछ सम्बन्ध नहीं था। फिर भी किसी को दूकान पर आज काम नहीं था तो उसने कहा कि चलो, मैं आज चला चलता हू। किसी को नौकरी नही मिली थी तो उसने कहा कि चलो, मैं भी चल सकता हू। किसी की पत्नी मर गई थी तो उसने कहा कि चलो, हम भी चलते हैं। किसी को कुछ और हो गया था। कोई दस बारह लोग मिल गए और वे पहाड़ पर चढ़ कर वहां जा पहुंचे। लेकिन वह जो ले जा रहा था मन मे बड़ा चिन्तित था कि इन सबको वह फौरन ही बाहर निकाल देगा। इनमें कोई भी अधिकारी नही है, कोई भी पात्र नही है। उसने डरते-डरते जाकर कहा कि दस-बारह लोग आए हैं लेकिन मुझे शक है कि कोई आपके अधिकार के नियम में उतरेगा। फकीर ने कहा : वह बात ही मत करो। एक-एक को भीतर लाओ। तो उसने पूछा : आपने अब अधिकार की बात छोड़ दी। तो फकीर ने कहा कि सच बात यह है कि जब तक मेरे पास कुछ नही था, तब तक मैं इस भांति अपने को बचाता था कि अनधिकारी को कैसे दू? मेरे पास ही नही था देने को कुछ। लेकिन यह मानने की हिम्मत नही पड़ती थी कि मेरे पास कुछ नहीं है। तो मैंने यह तरकीब निकाली थी कि पात्र कहा है जिसको मैं दूं। लेकिन अब जब मुझे ज्ञान हो गया है, तब प्राण ऐसे आतुर हैं कि कोई अपात्र भी आ जाए तो उसको लेकर पात्र हो जाएगा क्योंकि अपात्र रह कैसे सकेगा? तो अब मेरी फिक्र नहीं है कि तुम किसको लाते हो। महावीर ने इस सम्बन्ध में बड़ी भारी क्रान्ति की। ठेठ बाजार में पहुंचा दी सारी बात। इससे क्रोध भी बहुत हुआ। रहस्य की बातें तो हैं ये। पंडित का धंधा चलता था कि बातें गुप्त थी। आप जानते हैं कि जब डाक्टर प्रिसक्रिप्शन लिखता है दवाई का तो लैटिन और ग्रीक उपयोग करता है, सीधी-सादी अंग्रेजी का भी उपयोग नहीं करता, हिंदी की तो बात दूर है। लैटिन और ग्रीक शब्दो का उपयोग दवाइयो के नाम के लिए किया जाता है। कारण कि अगर आपको उसका ठीक-ठीक नाम, पता चल जाए तो आप उसके लिए पांच रुपये देने को राजी नहीं होंगे। आपको वह दवा बाजार में दो पैसे में मिल सकती है। रहस्य यह है कि जो उसने लिखा

है, वह आपकी पकड़ के बाहर है। हो सकता है उसने लिखा हो आजवाइन। लेकिन लिखा है लैटिन मे। आजवाइन का सत तो हम घर में ही निकाल लेंगे। इसके लिए हम पांच या दस रुपए क्यो देंगे बाजार में? लेकिन आजवाइन का सत लिखा है ग्रीक मे। आपको पता चलता नही कि क्या मतलब है? आप दो पैसे की चीज को पाच या दस रुपए में खरीद कर लाते हैं। पूरा मेडिकल धन्धा बेईमानी का है। क्योकि अगर सीधी-सीधी बातें लिख दी जाए तो सब दवाई की दूकानें खत्म होने के करीब पहुच जाएं। क्योकि दवाइया बहुत सस्ती हैं और उन्ही चीजो से बनी हैं जो बाजार मे आम मिल रही हैं लेकिन एक तरकीब उपयोग की जारही है निरन्तर कि नाम अंग्रेजी मे भी नही हैं, लैटिन और ग्रीक मे है। अंग्रेजी पढ़ा लिखा आदमी भी नही समझ सकता। डाक्टर जिस ढग से लिखते हैं, वह ढग भी कारण है उसमे। यानी वह लैटिन और ग्रीक भी आप ठीक से नही समझ सकते कि वह क्या लिखा हुआ है। वह भी सिर्फ दूकानदार ही समझता है जो बेचता है दवा। वह भी शायद नही समझता है। बडे अज्ञान मे काम चलता है। मैंने सुना है कि एक आदमी को किसी डाक्टर की चिट्ठी आई थी। किसी डाक्टर ने चिट्ठी लिखी थी। घर पर उसने भोज बुलाया हुआ था और डाक्टर नही आ सकता था तो उसने क्षमा मांगी थी लेकिन निरन्तर आदत के बस उसने उसी ढग से लिखा दिया था, जैसा वह प्रिस्क्रिप्शन लिखता था। उस आदमी ने बहुत पढा। उसे समझ मे नही आया कि वह आ रहा है कि नही आ रहा है। तो उसने सोचा कि छोडो, मेरी समझ में नही आएगा, जरा चल कर केमिस्ट को दिखा लू। वह तो कम से कम डाक्टरों की भाषा समझता है। वह बता देगा कि क्या लिखा है। उसने जाकर वह चिट्ठी एक केमिस्ट को दी। केमिस्ट ने चिट्ठी देखी : कहा रुकिए, भीतर गया। दो बोतलें निकाल कर ले आया। उसने कहा . माफ करिए! बोतल का सवाल ही नहीं है। इसमें सिर्फ उसने क्षमा मागी है कि मैं आज भोज में आ सकूंगा, कि नही। यह मेरी समझ मे नहीं आ रहा है कि बात क्या है? यह जो सारा का सारा खेल चलता है, तो पडित ने एक तरकीब निकाली है बहुत पुराने दिन से। वह यह कि जनता की भाषा मे सीधी-सीधी बात मत कहना कभी भी। उसको ऐसी शब्दावली मे कहना कि वह रहस्य हो जाए, वह उसकी समझ से बाहर पड़ जाए और तब लोग तुमसे समझने आएँगे। इसलिए दुनिया में दो तरह के लोग हुए हैं। एक जो जीवन के रहस्य के लिए द्वार बनाना चाहते हैं ताकि प्रत्येक

के लिए द्वार खुल जाए और एक जीवन में जो रहस्य नहीं भी है, उसको जबर-दस्ती चारों तरफ से गोल-गोल करके उसे ऐसी स्थिति मे खड़ा कर देना चाहते हैं कि वह किसी के लिए सीधा-सरल तथ्य न रह जाए।

उमर खय्याम ने लिखा है कि जब मैं जवान था तो साधुओ के पास गया, ज्ञानियो के पास गया, पडितो के पास गया। और उसी दरवाजे से बाहर आया जिस दरवाजे मे भीतर गया था, क्योकि मेरी कुछ पकड मे ही नही पड़ा कि वहा क्या हो रहा है। वही का वही वापस लौटा जो मैं था क्योकि मेरी कुछ पकड मे नही पडा कि वहा क्या हो रहा है ? कौन शब्द वहां चल रहा है ? किन शब्दो की वे बाते कर रहे है ? किन लोगो की वे चर्चा कर रहे हैं ? जीवन से उनका कोई सम्पर्क नही है। महावीर की क्रान्तियो में एक क्रान्ति यह भी है कि उन्होने धर्म के गुह्य रूप को जो छिपा हुआ था, उखडा हुआ कर दिया। इसलिए पडित उन पर नाराज रहे हो तो कोई आश्चर्य नही। क्योकि उन्होंने वह काम किया जैसे कोई डाक्टर सीधी हिन्दी मे लिखने लगे कि अजवाइन का सत ले आओ तो दूसरे सारे डाक्टर उस पर नाराज हो जाएगे कि तुम क्या कर रहे हो, तुम सब धधा चौपट करवा दोगे। तो महावीर पर पडितो की नाराजगी बडी अर्थपूर्ण है। इसलिए उन्होंने सीधी-सीधी जनभाषा का उपयोग किया है, शास्त्रो की भाषा को एकदम छोड दिया है जैसे कि शास्त्र हो ही नहीं। महावीर इस तरह बोल रहे हैं कि जैसे शास्त्र रहे ही नही। उनका वह उल्लेख भी नही करते। ऐसा नहीं है कि उन शास्त्रो मे कुछ भी न था। उन शास्त्रों मे बहुत कुछ था। और महावीर जो कह रहे हैं वह यह है कि कोई खोज करेगा तो उसे शास्त्रो मे भी मिल जाएगा, लेकिन महावीर उन शास्त्रो को बीच मे लाना ही नहीं चाहते क्योंकि उन शास्त्रो को लाते ही शास्त्रीयता आती है, पाडित्य आता है, सारी दूकान आती है, सारी व्यवस्था आती है। वह ऐसे बोल रहे हैं जैसे कि कोई पहला आदमी जमीन पर खडा होकर बोल रहा हो जिसको किसी शास्त्र का कोई पता भी न हो।

प्रश्न : गोशालक की कथा का क्या महत्त्व है ? महावीर ने प्रथम दो मुनियों को न बचा कर तीसरे को ही क्यों बचाया ?

उत्तर : असल में कहानियों को समझना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि वे प्रतीक हैं। और उन प्रतीकों में बड़ी बातें हैं जो खोली जाएं तो ख्याल में

आ सकती हैं, न खोली जाएं तो बड़ी कठिनाइयां पैदा करती हैं। महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया है। वह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का, एक यौगिक का प्रयोग कर रहा है कि जिसमे कोई भी जल जाए और भस्म हो जाए। महावीर को बचाने के लिए एक साधु उठा वह नष्ट हो गया। दूसरा उठा वह मर गया। महावीर देखते रहे। तीसरा उठा उसको महावीर ने रोक लिया। क्या दो के समय महावीर तटस्थ रहे और तीसरे के समय तटस्थता छोड दी? यानी दो के समय उनमें कोई करुणा न आई। तीसरे के समय उन पर करुणा आ गई। अगर रोकना था तो पहली ही बार रोक देना था ताकि दो व्यक्ति न मर पाते। या नही रोकना था, तटस्थ ही रहना था तो तटस्थ ही रहना था। कोई मरता या जीता, इसकी चिन्ता न थी।

इसमे बहुत बातें हो सकती हैं। पहली बात यह कि व्यक्ति किसलिए उठा, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति उठा पहले, जरूरी नही कि महावीर को बचाने उठा हो। सिर्फ दिखाने उठा हो कि मैं बचा सकता हू, सिर्फ अहकार से उठा हो और अहकार को कोई भी नही बचा सकता, महावीर भी नही बचा सकते हैं। अहकार तो जलेगा और नष्ट होगा। कहानी तो सीधी-सीधी होती है लेकिन पीछे हमे उतरने की जरूरत होती है। पहला आदमी किसलिए उठा? क्या वह यह सोचता है कि क्या करेगा गोशालक मेरा? मैं उससे ज्यादा प्रबल हू; अभी उसे पछाड़ कर रख दूगा। तो महावीर चुपचाप बैठे रहे होंगे। क्योकि असल मे वहा एक महावीर का साधु और दूसरा गोशालक —ऐसा नही रहा होगा। वहां दो गोशालक थे। दो अहकार थे जो लड़ने को खड़े हो गए। महावीर चुप रह गए। चुप रहना ही पड़ा होगा और कोई उपाय न रहा होगा। तीसरे व्यक्ति के सम्बन्ध मे हो सकता है कि वह किसी अहकार से न उठा हो। विनम्र सीधा-साधा आदमी रहा हो, सिर्फ आहूति देने उठा हो। एक व्यक्ति और मरे, इतनी देर भी महावीर जी जाएं, इसलिए उठा हो। महावीर ने रोका उसे। असल में कहानी सब नहीं कह पाती और हजारो साल से चलने के बाद रूखे तथ्य हाथ में रह जाते हैं जिनके पीछे की सब व्यवस्था साथ में नही रह जाती। क्या कारण होगा? लेकिन अगर महावीर को हम समझ सकते हैं तो हमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। जिन दो व्यक्तियों को बचाने के लिए वे कुछ नहीं कहें हैं, वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे जिनको बचाने के लिए कुछ कहा ही नहीं जा सकता होगा। वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे जो महावीर के लिये खड़े ही नहीं हो रहे हैं, अपने लिए ही

खड़े हो रहे हैं जो गोशालक को भी कुछ दिखा देना चाहते हैं कि हम भी कुछ हैं। तो महावीर के पास सिवाय दर्शक होने के और कोई उपाय नहीं रहा होगा। तीसरे व्यक्ति को उन्होंने रोका, तो इसका मतलब यह हो सकता है कि तीसरा व्यक्ति अनहंकार से उठा हो, सिर्फ इसलिए कि जितनी देर तक मैं मरूंगा उतनी देर तक महावीर बचते हैं। वह इतनी विनम्रता से उठा हो कि महावीर को कुछ कहना पड़ा, रोकना पड़ा। महावीर के चित्त में क्या हुआ यह समझना हमे कठिन हो जाता है। क्योंकि हम ऊपर से तथ्य देखते हैं— कि दो को मर जाने दिया, एक को बचा लिया। हमें ख्याल में नहीं आता कि भीतर क्या कारण हो सकता है। भीतर से महावीर देखते खड़े होंगे तो सिवाय इसके कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा होगा। उन दोनों के प्रति भी करुणा रही हो क्योंकि महावीर के लिए करुणा कोई शर्तबद्ध चीज नहीं है कि इस व्यक्ति के लिए रहेगी और उसके लिए नहो रहेगी। लेकिन वे दोनों करुणा के लिए वहां रहे होंगे। महावीर यह भी जानते होंगे कि उन्हें रोकने से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि कुछ लोग हैं जो रोकने से और बढ़ते हैं। न रोके जाएं तो शायद रुक जाए। अहंकारी व्यक्ति ऐसा ही होता है। उसे रोको तो और तेज होता है। तो महावीर चुप रहे होंगे। एक घटना मैं तुम्हे समझाऊं। मैं जब पढ़ता था तो एक युवक मेरे साथ लड़ता था। उसका एक बंगाली लड़की से प्रेम था। इतना दीवाना था, इतना पागल था कि वह दो साल यूनिवर्सिटी छोड़ कर कलकत्ता जा कर रहा, ताकि ठीक बंगाली हावभाव, बंगाली भाषा, बंगाली कपड़ा, बंगाली उठना-बैठना, सब बंगाली हो जाए। वह दो साल बंगाली होकर लौटा और इतना बंगाली हो गया कि हिंदी भी बोलता तो ऐसे बोलता जैसे बंगाली हिंदी बोलता है। लेकिन ठीक वक्त पर उस लड़की ने इन्कार कर दिया। उस लड़की को मैंने पूछा कि क्या बात हो गई है? क्या इन्कारी का कारण है? तो उस लड़की ने कहा कि वह मेरे पीछे इतना पागल है और इतनी गुलाम वृत्ति से भरा हुआ है कि ऐसे गुलाम को पति बनाना मुझे पसद नहीं है। व्यक्ति ऐसा तो चाहिए जिसमें कुछ तो अपना हो, कुछ व्यक्तित्व तो हो? अब बड़ी मजेदार घटना घटी। वह बेचारा इस-लिए झुका चला आ रहा था और सब स्वीकार करता चला जाता था कि लड़की उसे पसन्द करे। वह लड़की कहे रात तो रात, दिन तो दिन—ऐसा सब भाव ले लिया था लेकिन यही कारण उस लड़की का विवाह से इन्कार करने का बना। उसने इन्कार कर दिया। एक रात मुझे खबर आई, नौ बजे

होंगे कि उसने कमरे मे अपने को बंद कर लिया है, ताला अन्दर से लगा लिया है और जो भी बाहर से कहे 'दरवाजा खोलो' तो वह कहता है कि मेरी लाश निकलेगी, अब मुझसे बात मत करो। अब जिन्दा मेरे निकलने की कोई जरूरत नही है। यह बात फैल गई। भीड इकट्ठी हो गई। सब प्रियजन इकट्टे हो गए। बूढ़ा बाप रोया। जितना रोया उतनी उसकी जिद् बढ़ती गई। मुझे खबर आई, मैं गया। मैंने देखा वहा बाहर का सब इन्तजाम। मैंने कहा : यह सब मिल कर उसको मार डालेंगे क्योकि उसका जोश बढ़ता चला जा रहा था। जितना वह समझाते थे कि अच्छी लडकी ला देंगे वह कहता : अच्छी लड़की ! मेरे लिए कोई लडकी ही नही है दूसरी। अच्छे बुरे का सवाल ही नही है। जितना वह समझाते कि ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे दरवाजा खोलो वह बढता चला जा रहा है, वह रुकता नही। मैंने उनसे कहा अगर आप उसे बचाना चाहते हैं तो कृपा करके दरवाजे से हट जाए, मुझे बात करने दें। मैं दरवाजे पर गया। मैंने उससे कहा अरुण ! अगर मरना है तो इतना शोर-गुल मचाने की जरूरत नही। मरने वाले इतना शोर-गुल नही मचाते। यह तो जीने वालो के ढग हैं। मरने वाले चुपचाप मर जाते हैं। तुम्हें तीन घटे हो गए। क्या तीन चार साल लगेंगे मरने मे ? तुम जल्दी मरो ताकि हम सब तुम्हे मरघट पर पहुचा कर निश्चिन्त हो जाएं। उसने चुपचाप सुना, वह कुछ नही बोला। अभी वह बडा चिल्ला-चिल्ला कर बोल रहा था। मैंने कहा . बोलते क्यो नही ? उसने कहा . हा ! मैं मर जाऊगा। मैंने कहा इसमे हमे कोई एतराज ही नही है। कौन किसको रोक सकता हैं ? आज रोकेंगे, कल मर जाओगे। इसलिए रोकें भी क्यो ? दरवाजा खोलो। मरने वाले क्या ऐसा दरवाजा बद करके भयभीत दिखाई पड़ते हैं ? एक ही तो भय है जिन्दगी मे कि मर न जाए, और तो कोई भय ही नही है। और तुमने जब वह भय भी त्याग दिया तो अब तुम किससे डर कर अन्दर बंद हो। दरवाजा खोलो। उसने दरवाजा खोला और मुझे नीचे से ऊपर तक ऐसा देखा जैसे मैं उसका दुश्मन हू। मैंने कहा . तुम मेरे साथ गाड़ी में बैठ जाओ, चलो। उसने कहा : कहां जाना है ? मैंने कहा . भेड़ाघाट जबलपुर में अच्छी जगह है मरने के लिए। समझदार आदमी कम से कम मरने के लिए अच्छी जगह तो चुन ले। नासमझ तो जिन्दा रहने के लिए भी अच्छी जगह नहीं चुनता। तो तू भेड़ाघाट मर। और मैं तेरा मित्र रहा इतने दिन तक तो मेरा कर्त्तव्य है कि तुझे आखिरी बिदा करने जाऊं। यानी मित्र का यही मतलब है कि जो हर

वक्त काम आए। इस वक्त कोई तेरे काम नहीं पड़ेगा, इस वक्त मैं ही तेरे काम पड़ सकता हूं। समझने लगा कि यह आदमी पागल हो गया है। लेकिन अब मुझसे कहने की कोई हिम्मत न रही। क्योंकि अब धमकी देने का कोई सवाल न था कि मर जाऊंगा। यह धमकी तो बेमानी थी। वह चुपचाप चला आया। रात हम सोए। दोनों तरफ बिस्तर लगा कर, एक बीच में अलार्म घड़ी रख कर मैंने कहा कि ठंडी रात है और हो सकता है कि मेरी नींद न खुले। और अलार्म बजे तो तुम कृपा करके मुझे उठा देना क्योंकि तीन बजे हमें निकल चलना है। एक घंटे का रास्ता है। तुम वहां कूद जाना। मैं अन्तिम नमस्कार करके लौट आऊंगा और मुझे फिर वापस भी आना है। और भोर होने के पहले आना चाहिये नहीं तो तुम मरोगे, फसूंगा मैं। तो तीन बजे ही ठीक होगा। सब बातें वह मेरी ऐसे सुनता रहा जैसे चौंक कर लेकिन वह मुझसे कुछ कहता नहीं था। रात हम सो गए। अलार्म बजा। उसने जल्दी से बंद किया। जब मैं हाथ ले गया तो वह अलार्म बंद कर रहा था। उसका हाथ मैंने अपने हाथ में ले लिया। मैंने कहा : ठीक है अब मेरी भी नींद खुल गई है। उसने कहा लेकिन अभी मुझे बहुत ठंड मालूम हो रही है। मैंने कहा : यह तो जीने वालों की भाषा है। ठंड मालूम होना, गरमी मालूम होना, यह कोई मरने वालों के ख्याल नहीं हैं। ठंड का क्या सवाल है? यह आखिरी ठंड है। घन्टे भर का सवाल है। सब खत्म। और मुझे वापस भी लौटना है। मैंने उससे कहा कि ठंड मुझे लगेगी क्योंकि तू जब डूब जाएगा तब मुझे वापस भी फिर आना है। तो वह एकदम गुस्से में बैठ गया और बोला कि आप मेरे दोस्त हो कि दुश्मन? आप मेरी जान लेना चाहते हो; मैंने आपका क्या बिगाड़ा है? मैंने कहा : मैं तुम्हारी जान नहीं लेना चाहता हूं और न तुमने मेरा कभी कुछ बिगाड़ा है। लेकिन अगर तुम जीना चाहते हो तो मैं जीने में साथी हो जाऊंगा। अगर तुम मरना चाहते हो तो मैं उसमें साथी हो जाऊंगा। मैं तुम्हारा साथी हूं। तुम्हारी क्या मर्जी है। उसने कहा : मैं जीना चाहता हूं। मैंने कहा तो इतना शोरगुल क्यों मचा रहे थे?

अब इस आदमी को क्या हुआ? देखिए। यह आदमी अब भी जी रहा है। और जब भी मुझे मिलता है तो कहता है : आपने मुझे बचाया है, नहीं तो मैं मर जाता। वे सारे बाहर के लोग मुझे मारने की तैयारी करवा रहे थे। वे जितना मुझे बचाने की बातें करते उतना मेरा जोश बढ़ता चला जाता। आदमी के मन को समझना बड़ा मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। और यह भी

समझना मुश्किल है कि किस भाँति आदमी का चित्त काम करता है। क्यो महावीर किसी को रोकते हैं, किसी को नही रोकते हैं, इसे एकदम ऊपर से नही पकड़ लेना है। इसे बहुत भीतर से देखना चाहिए कि महावीर के लिए क्या कारण हो सकता है। करुणा उनकी समान है। लेकिन व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। रोकना किसके लिए सार्थक होगा, किसके लिए नही सार्थक होगा, यह भी वह जानते हैं। कौन रोकने से रुकेगा, कौन रोकने से बढेगा यह भी वह जानते हैं। कौन किस कारण से बढ रहा है, यह भी वह जानते है। इसलिए हो सकता है कि दो व्यक्तियो को नहीं, दो सौ व्यक्तियो को भी न रोकते। एक एक व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। उसकी सारी व्यवस्था भिन्न-भिन्न है। और उस व्यक्ति को अगर हम गौर से देखेंगे तो उस व्यक्ति के साथ हमे भिन्न-भिन्न व्यवहार करना पडेगा। इसका यह मतलब नही है कि मैं भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के साथ भिन्न-भिन्न हो जाता हू। मैं न भी भिन्न-भिन्न होऊ तब भी प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है, और उसे देख कर मुझे कुछ करना जरूरी है। फिर और भी बहुत सी बाते महावीर देखते हैं, जो कि साधारणत नहीं देखी जा सकती। उनकी मैं इसलिए बात नही करता हू कि वह एकदम अदृश्य की बातें हैं। महावीर यह देख सकते हैं कि इस व्यक्ति की उम्र समाप्त हो गई है। यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का इसलिए चुप भी रह सकते हैं। और कोई कारण भी न हो, सिर्फ इतना ही दिखता हो कि इस आदमी की उम्र तो समाप्त हो गई है और यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का और निमित्त सुन्दर है तो इसे मर जाने दे। और एक व्यक्ति की उम्र समाप्त नही हुई है, और व्यर्थ उलझाव मे पड़ा है, व्यर्थ उपद्रव मे पड़ा है, सोच सकते हैं रोक लें तो वह उसे रोक लेते हैं। किन्हीं क्षणो में मरना भी हितकर है लेकिन उतने क्षण की अनुभूति और उतनी गहराई हमे ख्याल में नहीं आ सकती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हू तो कोई ऐसा भी क्षण हो सकता है जब मैं चाहूं कि वह मर ही जाए। हालांकि यह कैसी बात है क्योंकि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसे हम कभी भी मरने नही देना चाहते। चाहे जीना उसके मरने से ज्यादा दुखदाई हो जाए तो भी हम उसे जिन्दा रखना चाहते हैं किसी भी हालत में। एक बूढ़ा बाप है, नब्बे साल का हो गया है, बीमार है, दुखी है, आंख नहीं है, उठ नही सकता, बैठ नहीं सकता। फिर भी बेटे, बहू, बेटियां, प्रेम में उसको जिन्दा रखे चले जा रहे हैं, चेष्टा कर रहे हैं उसको जिन्दा रखने की। अब पता नही यह प्रेम है या बहुत गहरे में सताने की इच्छा है। कहना बहुत मुश्किल है।

अगर सब में यह प्रेम है तो बड़ा अजीब प्रेम मालूम पड़ता है कि मेरे सुख के लिए आप जिन्दा रहें। मैं आपको दुख में भी जिन्दा रखना चाहूं तो यह प्रेम नहीं है। मैं दुखी होना पसंद करूंगा। आप मर जाएंगे, मुझे दुख होगा, पीड़ा होगी। एक खाली घाव रह जाएगा। वह कभी नहीं भरेगा। वह मैं पसन्द करूंगा। लेकिन यह पीड़ा और दुख आपका नहीं सहूंगा। मगर ऐसे प्रेम का शायद पाना बहुत कठिन होगा कि कोई बेटा अपने बाप को जहर दे दे और कहे कि अब नहीं जीना है आपको क्योंकि मेरा प्रेम नहीं कहता है कि आपको जीना है। मुझे दुख होगा आपके मरने का। वह दुख मैं सहूंगा। लेकिन आप —मुझे दुख न हो—इसलिए जिएं यह तो ठीक नहीं। ऐसे क्षण हो सकते हैं मगर ऐसे बेटे का प्रेम समझ मे आना बहुत मुश्किल है। लेकिन कभी वह वक्त आएगा दुनिया में जब बेटे इतना प्रेम भी करेंगे, पत्नियां इतना प्रेम भी करेंगी, पति इतना प्रेम भी करेंगे। प्रेम का मतलब ही यह है कि हम दूसरे को दुख में न डाल सकें, उसे हम सुख मे ले जा सकें। तो इसलिए किसी भी घटना मे बहुत गहरे उतरने की जरूरत है। अब तक हमे ख्याल मे आ सकता है कि क्या प्रयोजन रहा होगा। और न भी ख्याल में आए तो भी जल्दी निष्कर्ष बहुत महंगी चीज है। और महावीर जैसे व्यक्तियो के प्रति तो जल्दी निष्कर्ष बहुत ही महंगा है क्योंकि उन्हें समझना बहुत कठिन है। जिस जगह हम खड़े होते है, वहां से जो हमे दिखाई पडता है, हम वही तक सोच सकते हैं। जिन्हे दूर तक दिखाई पड़ता होगा, वे क्या सोचते हैं, कैसे सोचते हैं, वे सोचते भी हैं कि नहीं सोचते हैं यह सब हमारे लिए विचार करना मुश्किल है। वे किस भांति जीते हैं, क्यों उस भांति जीते हैं, अन्यथा क्यों नही जीते यह भी हमें सोचना मुश्किल हो जाता है। हम ज्यादा से ज्यादा अपना ही रूप प्रोजेक्ट कर सकते हैं। हम यही सोच सकते हैं कि इस हालत मे हम होते तो क्या करते, दो आदमियों को न मरने देते, या फिर तीनो को ही मरने देते। ये दो ही उपाय थे हमारे सामने। पर हमें उस चेतनास्थिति का कोई अनुभव नहीं है, जो बहुत दूर तक देखती है, और जिसका हमे कोई ख्याल नही है।

महावीर—और गोशालक उनके साथ था—एक गांव से गुजर रहे थे। गोशालक ने कहा : जो होने वाला है वही होता है। महावीर कहते हैं : ऐसा ही है, जो होने वाला है वही होता है। पास में ही जिस खेत से वे गुजर रहे हैं, दो पंखुड़ियों वाला एक पौधा लगा हुआ है, जिसमें अभी कलियां हैं जोकि कल फूल बनेंगी। गोशालक उस पौधे को उखाड़ कर फेंक देता है और कहता

है कि यह पौधा फूल होने वाला था, और अब नही होगा। वे दोनों गाव से भिक्षा लेकर वापस लौटते हैं। इस बीच पानी गिर गया है, पानी गिरने से कीचड हो गया है और उस पौधे ने कीचड़ में फिर जड़ें पकड ली हैं, वह फिर खड़ा हो गया है। जब वह उसी जगह से वापस लौटते हैं, तो महावीर उससे कहते हैं कि देख ! वह कली फूल बनने लगी। वह पौधा लग गया है जमीन से और कली फूल बन गई है।

जिसे दूर तक दिखाई पडता है उसे बहुत सी बातें दिखाई पडती हैं जो हमारे ख्याल में भी नही आती और जिन्दगी बहुत लम्बा विस्तार है। जैसे कोई एक उपन्यास के पन्ने को फाड डाले और उस पन्ने को पढे तो क्या तुम सोचते हो कि उस पन्ने से पूरे उपन्यास के बाबत कोई नतीजा निकल सकता है। हो सकता है कि उपन्यास का बिल्कुल उल्टे नतीजो पर अन्त हो। जो उस पन्ने पर लिखा हो उससे भिन्न चला जाए क्योंकि यह पन्ना सिर्फ उस लम्बी पुस्तक का छोटा सा हिस्सा है। जिन्दगी मे हम भी क्या करते हैं। एक टुकडे को उठा लेते हैं और उस टुकडे को फैला कर पूरी जिन्दगी को जाचने चल पडते हैं। मुश्किल है; ऐसा नही जांचा जा सकता। पूरी जिन्दगी को देखना होगा और पूरी जिन्दगी को देखेंगे तो हम एक टुकडे को भी समझ सकते हैं। नही तो यह टुकडा भी हमारी समझ मे नही आ सकता।

प्रश्न : ध्यान के लिए शुद्धीकरण की आवश्यकता है और जब भी किसी का मन केन्द्र पर है, तो उसकी बाह्य क्रिया, उठना-बैठना अनायास स्वयं हो जाती है। जब महावीर ध्यान के लिए बैठते हैं तो कुकुरासन और गोदोहासन यह विचित्र बात क्यों ?

उत्तर : यह भी समझने जैसी बात है। महावीर को ज्ञान भी हुआ गोदोहासन मे। जैसे कोई गाय को दोहते वक्त बैठता है, ऐसे बैठे-बैठे महावीर को परम ज्ञान की उपलब्धि हुई। यह बडा अजीब आसन है। न तो वह गाय दोह रहे थे, गाय भी दोह रहे होते तो एक बात थी। वह गाय भी नही दोह रहे थे। बैठे थे ऐसे। क्यों बैठे थे ? ऐसे कोई साधारणत. बैठता नहीं। यह बडी विचित्र स्थिति मालूम पड़ती है। इसे समझना चाहिए। इसमें तीन बातें समझनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह कि गोदोहासन हमे असहज लगता है। लेकिन सहज और असहज हमारी आदतो की बाते हैं। पश्चिमी व्यक्ति को जमीन पर बैठना असहज है। पालथी मारकर बैठना तो ऐसी असहज बात है कि पश्चिमी व्यक्ति को सीखने मे छः महीने भी लग सकते हैं। और छः महीने

मालिश चले उसकी और वह बेचारा हाथ पैर भी मिकोडे तभी वह ठीक से पालथी मार सकता है और फिर भी वह सहज नही होने वाला। क्योंकि पश्चिम मे नीचे बैठता ही नहीं कोई। सब कुर्सी पर बैठते हैं। इसलिए नीचे बैठने की जो हमारी अत्यन्त सहज बात मालूम पडती है वह जो लोग नही बैठते उनके लिए अत्यन्त असहज है। जो अभ्यास में है, वही सहज मालूम पडता है। जिसका अभ्यास नही है, वह असहज मालूम होने लगता है। हो सकता है महावीर निरन्तर पहाड मे, जगल मे, वर्षा मे, धूप मे, ताप मे रहे—न कोई घर, न कोई द्वार, न बैठने के लिए कोई आसन, न कोई कुर्सी, न कोई गद्दी। कुछ भी नही है, तो यह बहुत कठिन नही है कि महावीर जगल मे रोज सहज उकडू ही बैठते रहे हो। यह बहुत कठिन नहीं है। फिर महावीर की एक धारणा और अद्भुत है। महावीर कहते हैं जितना कम से कम पृथ्वी पर दबाव डाला जाए उतना अच्छा है। क्योंकि उतनी कम हिंसा होने की सम्भावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नही बदलते क्योंकि जब एक ही करवट सोया जा सकता हो, तो दूसरी करवट विलासपूर्ण है। अकारण दूसरी करवट लेने मे कोई चीटी, कोई मकोड़ा मर सकता है। किसी वृक्ष के तले जगल मे वह सो रहे हैं। करवट बदली है। चीटिया मर सकती है। तो महावीर एक ही करवट सो लेते हैं। और दूसरी करवट बदलते नही रात भर। ऐसा जो व्यक्ति है, वह उकडू ही बैठता रहा होगा? जीवन मे उनकी जो दृष्टि है, वह यह है कि क्यो व्यर्थ किसी के जीवन को नुकसान पहुचाए। सारी पृथ्वी पर लोग अलग-अलग ढग से उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हैं। जो हमे बिल्कुल सहज लगता है, वह दूसरे को बिल्कुल असहज लगेगा। तुम हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हो, बिल्कुल सहज लगता है। कुछ लोग हैं जो जीभ निकाल कर नमस्कार करते हैं। दो आदमी मिलेंगे तो दोनो जीभ निकालेंगे। अब हम सोच भी नहीं सकते कि किसी को नमस्कार करो तो जीभ निकालो। लेकिन दो आदमी मिलें तो हाथ जोड़ें यह कौन सी बात है। अगर हाथ जोड़े जा सकते हैं तो जीभ भी निकाली जा सकती है। कुछ कौमों में जब आदमी मिलते हैं तो नाक से नाक रगड़ कर नमस्कार करते हैं। यह बिल्कुल उनके लिए सहज मालूम होगा। लेकिन हम दो आदमियों को सड़क पर नाक से नाक लगाते देखें तो हमे हैरानी होगी कि कुछ दिमाग खराब हो गया है। पश्चिम मे चुम्बन सहज-सरल सी बात है। हमारे लिये भारी ऊहापोह की बात है कि कोई आदमी सड़क पर दूसरे आदमी को चूम ले। जो अभ्यास में

हो जाता है वह सहज लगने लगता है। जो अभ्यास में नहीं है वह असहज लगने लगता है। महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पजों पर बैठते रहे होंगे। सर्वाधिक, न्यूनतम हिंसा उसमे है। दूसरा उनके लिए यह सहज भी हो सकता है। अगर दस आदमियो को रात सोते देखे तो आप उन्हे अलग-अलग ढंग से सोते देखेंगे। चूकि अभी अमेरिका मे एक प्रयोगशाला बनाई गई है जिसमें अब तक वे दस हजार लोगों को सुलाकर देख चुके हैं। कोई बीस साल से परीक्षण चलता है जिसमे अजीब-अजीब नतीजे निकाले गए हैं। कोई दो आदमी एक जैसे सोते नहीं। सोने का ढग, उठने का ढंग अपना-अपना है। दूसरी बात यह कि जगत मे सहज कुछ भी नही है। परिस्थिति अनुकूल प्रतिकूल, व्यक्ति के सोचने, समझने का ढग, जीने की व्यवस्था अलग-अलग स्थितिया ला सकती है। जैसे आम तौर पर महावीर खडे होकर ध्यान करते हैं। वह भी साधारण नहीं लगता क्योंकि साधारणतः लोग बैठ कर ध्यान करते हैं। शायद खडे होकर ध्यान करने मे ज्यादा सरल पड़ता हो क्योकि उसमें मूर्च्छा और तन्द्रा का कोई उपाय नहीं है और हो सकता है कि उकडू बैठने मे भी वही दृष्टि हो। उकडू बैठ कर भी आप सो नहीं सकते। महावीर कहते हैं . भीतर पूर्ण सजग रहना है। पूर्ण सजगता के लिए अथक श्रम जरूरी है। हो सकता है कि निरन्तर प्रयोग से उन्हे पता चला हो कि उकडू बैठ कर नींद आने का कोई उपाय नही तो वह उकडू बैठने लगे हो। फिर महावीर का मस्तिष्क परम्परागत नही है।

महावीर का मार्ग परम्परा-मुक्त है बल्कि एक अर्थ में परम्परानिरोधक है। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण नही करते। उन्हें जो सरल और आनन्दपूर्ण लगेगा, वह वैसा ही करेंगे। जगत में किसी ने किया हो या न किया हो, यह सवाल नहीं है। हम सब परम्परा के अनुयायी हैं। सब जैसे बैठते हैं, वैसे ही हम बैठते हैं। सब जैसे खडे होते हैं, वैसे ही हम खड़े होते हैं। सब जैसे वस्त्र पहनते हैं, वैसे ही हम वस्त्र पहनते हैं। सब जैसी बाते करते हैं, वैसी ही हम बातें करते हैं। क्योंकि सबके साथ हमें रहना है और सबसे भिन्न होकर खडे होना अत्यन्त कठिन है इसलिए सबके साथ चलना सरल मालूम पडता है। महावीर इस तरह के व्यक्ति नही हैं। वे कहते हैं : सब क्या करते हैं, यह सवाल नहीं है। मुझे क्या करने जैसा लगता है यह सवाल है। और हो सकता है कि मुझसे पहले किसी को भी करने जैसा न लगा हो और हो सकता है कि मेरे बाद भी किसी को करने जैसा न लगे, लेकिन जो मुझे करने जैसा लगता है, उसका मुझे अधिकार है।

मैं वैसा ही जिऊंगा ; वैसा ही करूंगा। इन अर्थों में वह निपट व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अपूर्व पक्षपाती हैं, ऐसी-ऐसी बातों में भी, जिनमें कि हम कहेंगे कि इनमें स्वातंत्र्य की क्या जरूरत है। यह भी समझ लेना जरूरी है इस प्रसंग में कि हमारे शरीर की, और हमारे मन की दशाओं के बीच मे एक तरह का तादात्म्य हो जाता है। जैसे आपने देखा होगा कि अगर कोई आदमी चिन्तित है तो वह सिर खुजलाने लगेगा। सभी नही खुजलाने लगते। कोई चिन्तित होगा तभी सिर खुजलायेगा। अगर यह आदमी बिना कारण भी सिर खुजलाने लगे तो आप पाएंगे कि वह चिन्तित हो जाएगा। प्रत्येक चीज जुड़ जाती है। आदमी की शारीरिक गतिविधि मे भी उसकी मानसिक गतिविधि जुड़ जाती है। अगर शरीर की गतिविधि बदल दी जाए तो उसके मन की पुरानी गतिविधि के तोड़ने मे सहायता मिलती है। तो कई बार साधक ऐसी व्यवस्था करता है जिसमे उसका पुराना मन अभिव्यक्ति न पा सके क्योंकि पुराने मन की जो-जो आदतें थीं, वह उनके बिल्कुल विपरीत चलने लगता है। वह उस पुराने मन को मौका नही देता सबल होने का। हमे यह ख्याल मे नही कि हमारी छोटी-छोटी बाते जुड़ी हैं। हमे यह भी ख्याल मे नही है कि हम जब खास तरह के कपड़े पहनते हैं तो खास तरह के आदमी हो जाते हैं। और दूसरी तरह के कपड़े पहनते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं। एक ढंग से बैठते है तो एक तरह के आदमी हो जाते हैं। दूसरे ढंग से बैठते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि हमारा जो मस्तिष्क है, वह इन छोटे-छोटे संकेतो पर जीता है और चलता है। बहुत छोटे-छोटे संकेत उसने पकड़ रखे हैं। अब हो सकता है कि महावीर का उकड़ू बैठना एक अजीब घटना है। साधारणत: कोई उकड़ू नहीं बैठता। उनका उकड़ू बैठना, गोदोहासन में ध्यान करना मेरी दृष्टि मे गहरे से गहरा अर्थ रखता है कि चित्त को इस तरह बैठने की कोई जोड़ नहीं है पुरानी। इस शरीर की स्थिति मे पुराना चित्त जोर नहीं डाल सकता।

एक झेन फकीर हुआ। उसकी मृत्यु करीब आई। सब मित्र और प्रियजन पास बैठे हैं। लोग उसे प्रेम करते हैं। उन तक खबर पहुंच गई है। झोंपड़े के चारों तरफ मेला लग गया है। निकटतम शिष्य खाट के पास खड़े हैं। वह खाट से उठ कर खड़ा हो गया है और उसने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूं कि कभी तुमने किसी आदमी के खड़े-खड़े मर जाने की खबर सुनी। उन्होंने कहा: 'खड़े, खड़े मर जाने की ? कोई खड़ा-खड़ा मरेगा ? लोग सोए-सोए ही

मरते हैं क्योंकि मरने के पहले ही लोग लेट जाते हैं। तब भीड़ में से एक आदमी ने कहा : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने एक फकीर के सम्बन्ध में सुना है कि वह खड़ा खड़ा ही मर गया था। तो उसने कहा : फिर जाने दो। तुमने कभी किसी आदमी के चलते-चलते मरने की खबर सुनी है। तो लोगों ने कहा : आप ये बातें क्यों पूछ रहे हैं ? चलते-चलते मरना ! कोई चलते-चलते किसलिए मरेगा ? असल में, चलना ही रुक जाता है इसीलिए तो मरता है। फिर भी भीड़ में से एक आदमी ने कहा : नहीं, नहीं, यह भी हमने सुना है कि कभी प्राचीन समय में एक आदमी हुआ है जो चलते-चलते मर गया। तो उस फकीर ने कहा यह भी जाने दो। मतलब कि अपने लिए कोई नया ढग खोजना पड़ेगा, उस फकीर ने कहा, जैसा कोई भी न मरा हो। तो लोगों ने कहा यह आप क्या बातें कर रहे हैं। उस फकीर ने कहा : अच्छा तो ऐसा करो, शीर्षासन करते हुए किसी के मरने की खबर सुनी है ? लोगों ने कहा कि यह तो नहीं सुना और न सोचा कभी कि कोई आदमी शीर्षासन करते हुए मर जाएगा। उस फकीर ने कहा तो चलो फिर यही ठीक रहेगा। क्योंकि दूसरों जैसा क्या मरना ? मरने में एक प्रामाणिकता चाहिए। दूसरे जैसा क्या मरना ? वह आदमी शीर्षासन के बल खड़ा हो गया और मर गया। लेकिन लोग बहुत डरे उसकी लाश को कौन उतारे, यह भी भय समा गया। आदमी मर ही गया सचमुच लेकिन शीर्षासन वह अब भी कर रहा है। मर तो गया है। सांस लोगों ने जाच ली, हृदय के पास जाकर देखा। धक-धक बद है। फिर भी लोगों को लगा कि आदमी अभी शीर्षासन कर रहा है। भीड़ में बड़ी शका फैल गई। तो लोगों ने कहा : अच्छा ठहरो थोड़ा। इसको कुछ मत करो। इसकी बहन पास में रहती है, वह भी भिक्षुणी है, पास के मन्दिर में है। उसको बुला लाओ। वह इसकी आदतों से परिचित है। बहन भागी आई। उसने आकर उसको जोर का धक्का दिया और कहा : अभी तक तुम शरारत नहीं छोड़ते हो। मरते वक्त भी कोई ऐसी बातें करनी पड़ती हैं। जिन्दगी भर अपने जैसे होने की दौड़ थी। मरने में भी उसको कायम रखोगे। तो वह आदमी खिलखिलाया, हंसा, गिर गया और मर गया। अभी तक वह मरा नहीं था। अभी तक वह मजाक कर रहा था मरने के लिए। एकदम से सोचोगे तो फौरन ख्याल में आ जाएगा कि क्या ऐसा भी आदमी अहंकारी हो सकता है ? हम अपनी जिन्दगी के साथ कभी मजाक नहीं कर सकते। असल में हम सदा दूसरे के साथ मजाक करते हैं। अहंकार सदा दूसरे के साथ

मजाक करता है। सिर्फ निरहंकारी अपने साथ भी मजाक कर सकता है। जिन्दगी की बात तो दूर रही, मरते वक्त भी मजाक करता है। अहंकारी सदा गम्भीर है। सब चीजें गम्भीर हैं वहां? मगर निरहंकारी आदमी कैसा बच्चों के खेल जैसा मरने को ले रहा है और उसमें भी खिलवाड़ कर रहा है। और जब वह गिर पड़ा हंसते हुए तो उस भीड़ मे हंसी का फव्वारा छूट गया कि क्या अद्भुत आदमी है यह जो मरते वक्त भी खिलखिला कर हंसा है।

अहंकार हमें जल्दी से ख्याल में आसकता है। जब भी कोई व्यक्ति, व्यक्ति होने की कोशिश करता है तो वह अहंकारी है। और जिस व्यक्ति के पास व्यक्तित्व नहीं होता उसी के पास अहंकार होता है। इसे ठीक से समझ लें। लेकिन जिसके पास व्यक्तित्व होता है, उसे अहंकार होता ही नहीं क्योंकि वह आदमी जैसा है वैसा ही होगा। वह इस दुनिया मे कोई फिक्र नही करेगा। लेकिन न फिक्र करना उसकी चिन्ता नहीं है, उसकी इच्छा नहीं है। वह तो जो होना चाहता है, वह है। अगर इसमे इन्कार हो जाता है सारे जगत को तो हो जाए। जब कोई व्यक्ति जो होने को पैदा हुआ है वही हो जाता है, तभी वह अहंकार से मुक्त होता है। और अहंकार है क्या असल मे? जो हमारे भीतर होना चाहिए और नहीं है उसकी जगह हम अहंकार को बनाए हुए हैं। अहंकार आत्मा को धोखा देने का काम कर रहा है। जैसा किसी आदमी के पास असली हीरे नहीं हैं तो उसने नकली हीरे की अगूठी पहन ली है। नकली हीरे की अगूठी जो है वह असली हीरे की झलक पैदा करती है दूसरो की आंखो मे। लेकिन जिसके पास असली हीरे की अगूठी है वह नकली हीरो की अगूठी किसलिए पहने? वह उसे फेंक देगा। वह दो कौड़ी की हो गई। जिसके पास आत्मा है, अहंकार से उसका सम्बन्ध ही क्या क्योंकि अहंकार की जरूरत ही इसलिए थी। और न वह किसी से हाथ जुड़वाने की चिन्ता रखेगा। वह जैसा चाहेगा वैसा जिएगा। और वैसा आदमी दुनिया को कहेगा कि तुम जैसा जीना चाहो, जियो। लेकिन ऐसे व्यक्ति को पहचानना मुश्किल हो जाएगा। बहुत बार ऐसा व्यक्ति हमें अहंकारी मालूम पड़ेगा क्योंकि ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी ही हमारे अहंकार को चोट पहुंचाएगी। और ऐसा व्यक्ति चूंकि विनम्रता ग्रहण नहीं करेगा, इसलिए अहंकार को ऐसे व्यक्ति से कोई तृप्ति नहीं मिलेगी। विनम्रता है क्या? दूसरे के अहंकार को तृप्ति देना। तो जो व्यक्ति दूसरे के अहंकार को तृप्ति देता है, हम कहते हैं कि यह बड़ा विनीत आदमी है, बहुत विनम्र आदमी है। लेकिन उसकी विनम्रता हम पहचानते कैसे हैं?

पहचानते इस तरह हैं कि वह झुककर हमे नमस्कार करता है। असल मे विनम्रता की भाषा अहंकारियो ने खोजी है। अब वे दूसरों को कहते हैं कि सब विनम्र हो जाओ, विनम्रता बडी ऊंची चीज है, क्योंकि अगर विनम्र हो जाओगे तो ही अहकार को खडा कर सकोगे, नहीं तो उनका अहकार कहा खड़ा होगा। सभी अविनम्र हो गए तो मुश्किल हो जाएगी। लेकिन जो व्यक्ति होने की खोज है, उसमें न कोई अहकार है न कोई विनम्रता है। वह यह कह रहा है कि 'मैं' 'मैं' 'हू', 'आप', आप रहें इसमें कोई झगडा नहीं है। वह न विनम्रता पाल रहा है, न अहंकार पाल रहा है। वह दोनो एक ही चीजें है। वह यह कह रहा है कि 'मैं' मैं हू, 'तुम' तुम हो। अब बीच मे झंझट क्या लेनी है ? 'तुम' तुम रहो, 'मुझे' मुझे रहने दो। लेकिन यह हमे बहुत कठिन मालूम पडेगा क्योकि यह आदमी कह रहा है कि हमारे अहकार से इसका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता है। हम चाहते हैं कि या तो हमारी गर्दन दबाए तो हम समझें कि यह कुछ है, या हम इसकी गर्दन दबाए तो यह समझे कि हम कुछ हैं। लेकिन वह कहता है कि कोई किसी की गर्दन मत दबाओ। 'तुम' तुम हो, 'मैं' मैं हू। कृपा करो। तुम्हें जैसा रहना है तुम रहो, मुझे जैसा रहना है मैं रहू। लेकिन न हम खुद रह सकते हैं न हम दूसरे को रहने देना चाहते हैं। और फिर जो आदमी अपने पर मजाक कर ले, वह आदमी बहुत अद्भुत है। अपने पर मजाक करना बहुत कठिन बात है। दूसरे पर मजाक हम करते हैं, मजाक एक शिष्ट तरकीब है दूसरे को अपमानित करने की। एक शिष्ट तरकीब है जिसमे दूसरा हम से झगड़ भी नही सकता, क्योंकि मजाक ही तो हम कर रहे हैं, और हम उसे गहरी चोट भी पहुंचा रहे हैं। तो हम दूसरे पर हस सकते हैं लेकिन अपने पर हसने वाला आदमी अपनी जिंदगी पर हंसने वाला आदमी और अपनी मौत पर हसने वाला आदमी बहुत अनूठा है। बहुत ही अनूठा है क्योंकि वह बुनियादी खबर दे रहा है कि अब दूसरे का तो सवाल ही नहीं रहा, अब हम खुद ही अपने पर हंसने जैसी हालत पा रहे हैं। यानी यह जो मेरा व्यक्तित्व है यह भी हसने योग्य है। इसमे कुछ ऐसी बात नही है। इसे गम्भीरता से लेने का सवाल नहीं है। लेकिन दुनिया में साधु सन्त बड़े गम्भीर होकर बैठे हैं। उनकी गम्भीरता का बुनियादी कारण यह है कि उन्होंने दूसरो का मजाक करना बंद कर दिया है और अपना मजाक करना वे सीख नही पाए। उनकी गम्भीरता का बहुत गहरे में कारण है 'हंसें कैसे ?' दूसरे की मजाक बंद कर दी क्योंकि वह ठीक

नहीं थी और अपनी मजाक का शुरू करना बहुत कठिन बात है। वह हो नहीं सकती। तो वे गम्भीर हो गए हैं। यह जो गम्भीरता दिखती है साधुओं की, उसका कारण यही है। मगर जो अपने पर हंस सकता है, वह अगर दूसरे पर हसता है तो चोट नही पहुंचाता। क्योंकि दूसरे को लगता है कि वह आदमी हमको भी अपना ही मानता है।

अद्भुत बात है इस फकीर की। वह उनमें से है जो मरने का भी अपना ढग खोजते है, जो मृत्यु को भी एक प्रामाणिकता और व्यक्तित्व देना चाहते है। और महावीर इन व्यक्तियों मे अद्भुत हैं। वह प्रत्येक चीज को अपना व्यक्तित्व देना चाहते है। यानी ससार के शास्त्र कहें कि गोदोहासन मे किसी को ज्ञान हुआ है तो महावीर गोदोहासन मे बैठकर ज्ञान पा लेंगे।

कबीर के मरने का वक्त आया। मरते वक्त तक कबीर काशी में रहा। काशी के पास थोडी दूर पर मगहर एक गांव है। कथा यह है कि काशी मे अगर गधा भी मरे तो देवता हो जाता है। मगहर में अगर देवता भी मरे तो गधा हो जाता है। मगहर के लोग काशी में मरने आते हैं क्योंकि मगहर मे तो बडा डर रहता है। दस-पांच दिन पहले मरने के करीब कोई हुआ तो उसे काशी मे ले आते हैं। कबीर जिन्दगी भर काशी रहे। मरने का वक्त आया तो कहा कि मुझे मगहर ले चलो। लोगो ने कहा कि आप पागल हो गये है क्या। मगहर से लोग मरने यहा आते हैं। जिन्दगी भर तो यहां जिये, अब मगहर जाते हो मरने। मगहर मे मरता है जो आदमी वह गधा हो जाता है। कबीर ने कहा : बहु ठीक है। अगर मगहर मे मरने से गधा हुए तो वह मगहर की वजह से हुए, अगर काशी मे मरने से कोई देवता हुआ तो वह काशी की वजह से हुआ। दोनों में कोई फर्क नही है क्योंकि किसी और ही वजह से बात हो गई। बात तो अपनी वजह से होनी चाहिए। तो मुझे पता कैसे चले कि अपनी ही वजह से देवता हुए हैं। तो कबीर मरे मगहर में।

महावीर कह रहे हैं कि यह कोई सवाल नही है कि इस आसन से ध्यान होगा कि उस आसन से ध्यान होगा। आसन से ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नहीं। तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं : आसन से ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि ध्यान है आन्तरिक घटना, आसन है बाहर शरीर की स्थिति। जो जिसको आसान हो वही आसन है। सभी को एक जैसा आसान नहीं भी होता तो म वीर यह भी सूचना देना चाह रहे हैं कि यह धारणा

भूल है कि पद्मासन मे, सिद्धासन में ही ध्यान होगा और ज्ञान की उपलब्धि होगी। क्योंकि इस भांति तो हम ज्ञान को शरीर की बैठक से बांध रहे हैं। असल मे शरीर से क्या लेना-देना है। भीतर जो है वह किसी आसन में हो सकता है।

महावीर के गोदोहासन की मूर्तियां जैनियो के मन्दिरो मे नही मिलती। मूर्तियां बनी हैं पद्मासन मे क्योंकि पुरानी धारणा है कि ज्ञानी को पद्मासन मे ज्ञान होता है। किन्तु महत्वपूर्ण घटना तो केवल ज्ञान की है। वह आदमी आसन मे बैठकर केवल ज्ञान को उपलब्ध हुआ इसकी नहीं है। निर्वाण वगैरह मूल्य की बातें नही हैं। अच्छे आदमी को हम, "मर गया है" ऐसा कहना ठीक नही समझते, इसलिए निर्वाण वगैरह कहते हैं। अच्छा आदमी मरता है तो मर गया, उसे कैसे कहे ? तो उसे निर्वाण कहते हैं ? निर्वाण सिर्फ शरीर का छूटना है। मगर उससे गहरे मे भी शरीर पहले छूट चुका है। मगर जैसे महावीर हमे जचना चाहिए, हम वैसा उनको बना लेते हैं। अब दिगम्बर महावीर के नग्न चित्र भी बनाएगे तो एक झाड के पास बनाएगे ताकि झाड़ की शाखाओ मे उनकी नग्नता छिप जाए। मगर उन्हें सीधा नग्न खड़ा न कर सकेंगे।

ये महावीर से ज्यादा होशियार लोग हैं। अगर झाड के पास ही महावीर खड़े रहते हो कि कही नगापन न दिख जाए तो फिर झंझट क्या है? उससे तो लगोटी अच्छी है कि कही जा भी तो सकते हैं उसको पहनकर। झाड़ के पास खड़े होना बहुत ही बेमानी है। मगर हमारा जो दिमाग है अत्यन्त क्षुद्र वह सब फौरन ढाल लेता है अपने हिसाब मे। फिर जो शक्ल हम बनाते हैं, व्यवस्था हम देते हैं, वह हमारी होती है। वह सच्ची नही होती। अब एक आदमी अगर नगा होने की हिम्मत करे तो उसके अनुयायी उसे नगा न होने देंगे। अगर वह हो ही जाए, न माने तो वे कई तरकीबें निकालेंगे, पीछे उसे लीप-पोतकर बराबर कर देंगे कि वह आदमी नगा नहीं था। इस तरह चलता है, क्रान्तियां पैदा होती हैं और मर जाती हैं। रोज-रोज क्रान्ति की जरूरत पड़ जाती है। रोज-रोज उन लोगो की जरूरत है जो फिर से आकर चीजो को तोड़ दें। और यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। लेकिन यही होता रहा है कि जितना बड़ा क्रान्तिकारी होगा उसको उतना ही ज्यादा लीप-पोत दिया जाएगा। यह ख्याल में रखना चाहिए कि दुनिया में जो क्रान्तिकारी नही हुए उनकी प्रामाणिक स्थिति हमे उपलब्ध है। वे जैसे थे हमें उपलब्ध हैं। लेकिन

दुनिया मे जो बड़े क्रान्तिकारी हुए उनको हमने लीप-पोत दिया। उनका हमे कोई पता नहीं कि वे कैसे थे। बिल्कुल और ही शक्ल उपलब्ध है जो कि वे कभी नही रहे होंगे। तो प्रश्न ठीक ही है। वह सब चीजें, वह सब जो उन्हें ठीक लगता है, वैसे ही करते हैं। वह किसी देवता से नहीं पूछेंगे, किसी गुरु से नही पूछेंगे, वे यह नहीं कहेंगे कि आसन मे नही होगा। अगर कोई पूछता है उनसे कि कैसे बैठे हो, ऐसे कही ज्ञान मिला है किसी को, तो वे कहेंगे : तुम अपने रास्ते जाओ, क्योंकि ज्ञान को अगर आना है तो मेरी शर्तों पर, मैं कोई ज्ञान की शर्तें मानने वाला नही हू। मेरी शर्तों पर, मैं जैसा हू, उसको वैसे मे आना है तो ठीक। अगर कोई व्यक्ति इतना हिम्मतवर और साहसी है तो परमात्मा को उसी की शर्तों पर आना होगा। कोई रुकावट उसमे नही पड सकती। यह अगर ख्याल मे आ जाए तो व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की धारणा स्पष्ट हो जाती है। अब मै कहता हू कि किसी भी आसन मे सोए, बैठे, लेटे, खड़े ध्यान हो सकता है। यह अपने-अपने चुनाव की बात है कि उसके लिए कैसा सरल हो सकता है। क्योंकि गोदोहासन तक मे एक व्यक्ति मोक्ष मे जा चुका है। इसलिए अब कोई चिंता की बात नही। अब किसी भी आसन में यह घटना घट सकती है। लेकिन शायद ही कोई जैन मुनि गोदोहासन मे बैठा मिल जाए क्योंकि आजकल का जैन मुनि परम्परागत ढग बाध कर बैठा है। उसको चलाए जाता है। महावीर का गोदोहासन परम्परा को तोड़ने का प्रतीक है सिर्फ। महावीर जैसा व्यक्ति छोटी-मोटी चीजो मे भी परम्परा को तोड़ देना चाहेगा। यानी ऐसी छोटी बातो मे भी वह कहेगा, नही, मैं जैसा हू वैसा हू। और प्रत्येक व्यक्ति मे इतना साहस आना चाहिए तो ही व्यक्ति साधक हो सकता है। और जिस दिन परम साहस प्रकट होता है उसी दिन सिद्ध होने मे क्षण भर की भी देर नही लगती।

प्रश्न : आपने पिछले दिनों महावीर के सम्बन्ध मे एकान्त की बात कही थी। तो क्या महावीर का आत्मदर्शन भी एकान्त ही था, सम्पूर्ण नहीं था?

उत्तर : इस सम्बन्ध मे दो बातें समझ लेनी चाहिए। एक शब्द है 'दृष्टि' और दूसरा शब्द है 'दर्शन'। दृष्टि एकागी, अधूरी और खड-खंड होगी। दृष्टि का मतलब है कि मैं एक जगह खड़ा हूं, वहां से जैसा दिखाई पड़ रहा है, जो दिखाई रहा है, वह महत्त्वपूर्ण है और जिस जगह मैं खड़ा हूं वह जगह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जहां से खड़े होकर मैं देख रहा हू, जैसा मुझे दिखाई पड़ेगा वह दृष्टि होगी और इसी के सम्बन्ध में दर्शन शब्द को समझना

बड़ा कीमती है। दर्शन का मतलब है जहां सब दृष्टियां मिट गईं, जहां मेरे खड़े होने की कोई जगह न रही, सच मे जहां मैं ही न रहा। वहां जो होगा, उसका नाम दर्शन है। दर्शन सदा ही समग्र होगा। दृष्टि सदा ही खंड होगी तो जिसे हम आत्मानुभूति कहे, जब दृष्टियां सब मिट गईं, असल में देखने वाला भी मिट गया, असल मे वह जगह भी मिट गई जहां हम खड़े थे, वह भी मिट गया जो खड़ा हो सकता है, सब मिट गया, मेरी तरफ से कुछ भी न बचा, अब जो मुझे प्रतीति होगी, अब जो अनुभव घटित होगा वह समग्र घटित होगा। तो महावीर का जो दर्शन है, या बुद्ध का या कृष्ण का या क्राइस्ट का या मुहम्मद का वह सदा ही समग्र होगा। दर्शन कभी भी अधूरा नही हो सकता क्योंकि अधूरा बनाने वाली जो भी बातें थी, वे सब समाप्त हो गईं। और एक तरह से समझें। जब तक मेरे चित्त में विचार हैं, तब तक मेरे पास दृष्टि होगी, दर्शन नहीं होगा। क्योकि मैं अपने विचार के चश्में से देखूंगा। मेरे विचार का जो रंग होगा, वही उस चीज पर भी पड़ जाएगा, जिसे मैं देखूंगा। और दर्शन होगा तब जब मैं निर्विचार हो जाऊंगा, जब कोई विचार मेरे पास नहीं होगा। जब विचार मात्र नही होगा, खाली जगह से मैं देखूंगा, जहा मेरा कोई पक्ष नही, कोई विचार नहीं, कोई शास्त्र नही, कोई सिद्धान्त नही, मैं हिन्दू नही, मुसलमान नहीं, ईसाई नही, जैन नही। जब मैं कोई भी नही, निपट खाली मन रह गया है वहां मे जब देखूंगा तो वह जो होगा दर्शन होगा। विचार, दृष्टि तक ले जाता है, निर्विचार, दर्शन तक। एक बात और भी समझनी उपयोगी है। दर्शन कितना ही समग्र हो—समग्र होगा ही—लेकिन जब दर्शन को कोई प्रकट करने आएगा तब फिर दृष्टि शुरू हो जाएगी। क्योंकि दर्शन को फिर प्रकट करने के लिए विचार का उपयोग करना पड़ेगा। और जैसे ही विचार का उपयोग किया कि समग्र नही हो सकता। असल में विचार की एक व्यवस्था है, वह कभी भी पूरी नहीं हो सकती। विचार चीजो को तोड़कर देखता है। और वस्तु मे, सत्य मे, सब चीजें जुड़ी हुई हैं। अगर हम विचार से देखने जाएंगे तो जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। जन्म और मृत्यु को विचार में जोड़ना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जन्म बिल्कुल उल्टी चीज है, मृत्यु बिल्कुल उल्टी चीज है। लेकिन वस्तुतः जीवन में जन्म और मृत्यु, एक ही चीज के दो छोर हैं। वहां जन्म अलग नहीं, मृत्यु अलग नहीं। जो जन्म पर शुरू होता है, वही मृत्यु पर विदा होता है। वह एक ही यात्रा के दो बिन्दु हैं। पहला बिन्दु जन्म है, अन्तिम बिन्दु मृत्यु है।

अगर हम जीवन को देखेंगे तो ये इकट्ठे हैं और अगर विचार में सोचने जाएंगे तो जन्म और मृत्यु अलग-अलग हो जाएंगे। अगर विचार में सोचेंगे तो काला और सफेद बिल्कुल अलग-अलग हैं। ठंडा और गर्म बिल्कुल अलग-अलग हैं। लेकिन अगर अनुभव मे सोचने जाएंगे तो ठंडा और गर्म एक ही चीज के दो रूप हैं, काला और सफेद भी एक ही नमूने के दो छोर हैं। लेकिन जब भी हम प्रकट करने चलेंगे तो हमे फिर विचार का उपयोग करना पड़ेगा।

मुहम्मद को, महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को जो अनुभूति हुई है वह तो समग्र है लेकिन जब वे उसे अभिव्यक्त करते हैं तो वह समग्र नही रह जाती। तब वह एक दृष्टि रह जाती है। और इसीलिए जो प्रकट दृष्टिया हैं, उनमे विरोध पड जाता है। दर्शन मे कोई विरोध नही है लेकिन प्रकट दृष्टि मे विरोध है। मैं और आप श्रीनगर आ रहे हैं। श्रीनगर तो एक ही है जिसमे मैं आऊंगा और आप आएगे। फिर हम दोनों श्रीनगर से गए। फिर कोई हमसे कहेगा कि क्या देखा? जो मैं कहूगा वह भिन्न होगा, जो आप कहेंगे उससे। श्रीनगर एक था। हम आए एक ही नगर से थे। लेकिन हो सकता है कि मुझे झील पसद हो और मैं झील की बात करूं, और आपको पहाड़ पसंद हो और आप पहाड़ की बात करें। और हो सकता है कि मुझे दिन पसंद हो मैं सूरज की बात करू और आपको रात पसद हो आप चांद की बात करें। और हमारी दोनो बातें ऐसी मालूम पड़ने लगे कि हम दो नगरो में गए होंगे। क्योंकि एक चाद की बात करता है एक सूरज की, एक अंधेरे की बात करता है एक उजाले की, एक सुबह की बात करता है एक साझ को, एक पहाड़ की बात करता है एक झील की। शायद सुनने वाले को मुश्किल हो जाए यह बात कि यह पहाड़ और झील, यह चाद और सूरज, यह रात और दिन—ये सब किसी एक ही नगर के हिस्से हैं। ये इतने विरोधी भी मालूम पड़ सकते हैं कि ताल-मेल बिठाना मुश्किल हो जाए। वे जो खबरें हम ले जाएगे, वे दृष्टिया होगी, वे विचार होंगे। लेकिन जो हमने जाना और जिया था, वह दर्शन था। उस दर्शन में श्रीनगर एक था। वहां रात और दिन जुड़े थे, पहाड़ और झील जुड़ी थी, वहा अच्छा-बुरा जुड़ा था, वहां सब इकट्ठा था। लेकिन जब हम बात करने गए, चुनाव हमने किया, छांटा तो हम खड़े हो गए। और हमने एक दृष्टि से चुनाव किया। जैसे ही कोई बात बोली जाएगी वैसे ही दृष्टि बन जाएगी। और यही बहुत खतरा रहा है कि दृष्टियो को दर्शन समझने की भूल होती रही है और इसलिए जैनो की एक

दृष्टि है, दर्शन नहीं; हिन्दुओं की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; मुसलमानों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं। अगर दर्शन की हम बात करते हैं तो हिन्दू, मुसलमान जैन—सब खो जाएंगे। वहां तो एक ही रह जाएगा। वहां कोई दृष्टि नहीं है, कोई विचार नहीं है। महावीर का जो अनुभव है, वह तो समग्र है लेकिन अभिव्यक्ति समग्र नहीं हो सकती। जब भी हम कहने जाते हैं, तभी समग्र को हम कह नहीं सकते। परमात्मा का अनुभव तो बहुत बड़ी बात है। छोटे से, सरल अनुभव भी समग्ररूपेण प्रकट नहीं होते। आपने फूल को देखा। यह बहुत सुन्दर है—ऐसा अनुभव किया। फिर आप कहने गए। फिर जब आप कहते हैं तो आपको लगता है कि कुछ बात अधूरी रह गई। यानी बहुत-बहुत सुन्दर है, ऐसा कहने पर भी पता नहीं चलता फूल जैसा था उसका। वह जो आपको अनुभव हुआ जीवन्त, वह जो आपका सम्पर्क हुआ फूल से, वह जो सौन्दर्य आप पर प्रकट हुआ, वह जो सुगन्ध आई, वह जो हवाओं ने फूल का नृत्य देखा, वह जो सूरज की किरणों ने फूल की खुशी देखी वह कितनी ही बार कहें कि बहुत-बहुत सुन्दर है तब भी लगता है कि बात कुछ अधूरी रह गई, कुछ बेस्वाद, बिना सुगन्ध की, मृत, मुर्दा रह गई। कुछ पता नहीं चलता। वह जो देखा था उसका कोई पता नहीं चलता। जब हम साधारण सी भी बात कहते हैं तो जो हमने अनुभव किया उसके वर्णनों में बहुत कमी पड़ जाती है। और जब कोई असाधारण अनुभव को कहने जाता है, तब इतनी कमी पड़ जाती है जिसका हिसाब लगाना कठिन है। और दुनिया मे जो सम्प्रदाय हैं, वह कही हुई बात पर निर्भर हैं—जानी हुई बात पर नहीं। जानी हुई बात पर कभी सम्प्रदाय निर्मित हो जाएं यह असम्भव है क्योंकि जो जाना गया है, वह भिन्न है ही नहीं।

एक बार ऐसा हुआ कि फरीद यात्रा कर रहा था। कुछ मित्र साथ थे। और कबीर का आश्रम निकट आया। फरीद के मित्रों ने कहा कि कितना अच्छा हो कि हम कबीर के पास दो दिन रुक जाएं। आप दोनों की बातें होगी तो हम धन्य हो जायेंगे। शायद ही जन्मों में ऐसा अवसर मिले कि कबीर और फरीद का मिलना हो और लोग सुन लें। फरीद ने कहा कि तुम कहते हो तो हम जरूर रुक जाएंगे, लेकिन बात शायद ही हो। उन्होंने कहा लेकिन बात क्यों नहीं होगी? फरीद ने कहा कि वह तो चलकर ठहरेंगे तो ही पता चल सकता है। कबीर के मित्रों को भी खबर लग गई और उन्होंने कहा कि फरीद निकलता है इधर से, रोक लें। प्रार्थना करें हमारे आश्रम में रुक जाएं

दो दिन। आप दोनों की बातें होंगी तो कितना आनन्द होगा! कबीर ने कहा: रोको जरूर, आनन्द बहुत होगा लेकिन बातें शायद ही हों। पर उन्होंने कहा: बातें क्यों न होंगी ? कबीर ने कहा कि वे तो फरीद आ जाए तो पता चले। फरीद को रोक लिया गया। वे दोनों गले मिले। वे दोनों हंसे। वे दोनों पास बैठे। दो दिन बीत गए लेकिन कोई बात नहीं हुई। सुनने वाले बहुत ऊब गए हैं, बहुत घबड़ा गए हैं। फिर विदाई भी हो गई। फिर कबीर गाव के बाहर आकर छोड़ भी आए। वे गले मिले, रोए भी लेकिन फिर भी नहीं बोले। छूटते ही कबीर के शिष्यों ने पूछा: यह क्या पागलपन है ? दो दिन आप बोले ही नहीं। कबीर के शिष्यों ने पूछा: यह क्या हुआ ? हम तो घबडा गए। दो दिन कैसे चुप रहे ? कबीर ने कहा: जो मैं जानता हूं, वही फरीद जानते हैं। अब बोलने का उपाय क्या है ? दो अज्ञानी बोल सकते हैं, एक ज्ञानी और एक अज्ञानी बोल सकता है। दो ज्ञानियो के बोलने का उपाय क्या है ? और जो बोलता है वह नाहक अज्ञानी बन जाता है क्योंकि वह जो बोल कर कहता है वह दूसरे ने जो जाना है उससे छोटा होता है। और एक बोल कर कहता है तो जानते हुए के सामने बोल कर कहना बहुत कठिन बात है। क्योंकि उसको लगता है कि उसका जाना हुआ तो अपार है और बोला हुआ छोटा है। तो जो बोलता है वह नासमझ होता है। फरीद के शिष्यो ने पूछा तो फरीद ने कहा क्या बोलते ? कबीर के सामने क्या बोलते ? बोलकर मैं फंसता। क्योंकि जो बोलता है वह बोलने से ही गल्त हो जाता है। जो जान गया है उसके सामने बोला हुआ सब गल्त है। तब न जाना गया हो तो तभी बोला हुआ सच मालूम पड़ता है। लेकिन जिसने जाना हो उसके सामने बोला हुआ इतना फीका है, जैसे मैंने आपको देखा हो निकट से, जाना हो, पहचाना हो और फिर मुझे कोई सिर्फ आपका नाम बता दे और नाम का ही परिचय बता दे तो नाम क्या परिचय बनेगा ? जिस व्यक्ति को मैं जानता हूं उसका नाम क्या परिचय बनेगा ? हां, जिसको हम नहीं जानते उसके लिए नाम भी परिचय बन जाता है। लेकिन जिसको हम जानते हैं उसके नाम से क्या फर्क पड़ता है? नाम कोई परिचय नहीं बनता। नाम कोई परिचय है क्या ? फरीद ने कहा कि जरूरी था कि मैं चुप रह जाऊं क्योंकि बोल कर जो मैं कहता, वह सिर्फ नाम होता। और उस आदमी ने जो जाना उसका नाम लेना एकदम बड़ी भूल होती।

तो जहां ज्ञान हो वहां भेद नहीं है और जहां शब्द है वहां भेद है। जैसे ही

शब्द का प्रयोग करना शुरू हुआ, भेद पड़ने शुरू हो गए। जैसे हम सूरज की किरण को देखें वहां कोई भेद नहीं है। सूरज की किरण सीधी और साफ है। लेकिन एक प्रिज्म लें और फिर सूरज की किरण को देखें तो प्रिज्म किरण को सात टुकड़ों में तोड़ देता है। प्रिज्म के इस पार सूरज की इकहरी किरण देखनी मुश्किल है। प्रिज्म के उस पार सूरज की सात खंडों में विभाजित किरण देखनी मुश्किल है। शब्द प्रिज्म का काम कर रहा है। जो जाना गया है वह शब्द के उस पार है, जो कहा गया है वह शब्द के इस पार है। शब्द के इस पार सब टूट जाता है खंड-खंड। शब्द के उस पार सब अखंड है।

इसलिए महावीर ने जो जाना है वह तो समग्र है लेकिन जो कहा है वह चाहे महावीर कहें, चाहे कोई भी कहे, समग्र नहीं हो सकता। वह एकान्त ही होगा, वह खंड ही होगा। और इसीलिए जैन खंडित होगा; वह एकाती होगा। क्योंकि महावीर ने जो कहा है, वह उसे पकड़ेगा। महावीर का समग्र उसकी पकड़ में नहीं आने वाला। इसलिए वह जैन होकर बैठ जाएगा। वह अनेकान्त को भी 'वाद' बना लेगा। वह महावीर के दर्शन को भी दृष्टि बना लेगा और उसको पकड़कर बैठ जाएगा। इसलिए सभी अनुयायी खंड सत्य को पकड़ने वाले होते हैं। और यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसने खंड सत्य को पकड़ा है, वह जाने-अनजाने अखंड-सत्य का दुश्मन हो जाता है क्योंकि उसका आग्रह होता है कि मेरा खंड ही समग्र है। और सभी खंडवालों का यही आग्रह होता है कि मेरा खंड समग्र है। सभी खंड मिलकर समग्र हो सकते हैं लेकिन प्रत्येक खंड का यह दावा है कि मैं समग्र हू, दूसरे खंड का भी यही दावा है कि मैं समग्र हू। यह दावे मिलकर समग्र नहीं हो सकते। यह दावे सारी मनुष्य जाति को खंड-खंड में बांट देते हैं। मनुष्य जोकि अखंड है, इसी तरह टुकड़ों में, सम्प्रदायों में बटकर टूट गया है। दृष्टि पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदाय होंगे। दर्शन पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदायों का कोई उपाय नहीं। मेरा सारा जोर दर्शन पर है, दृष्टि पर जरा भी नहीं। महावीर का भी जोर दर्शन पर है और यह बड़े मजे की बात है कि जितनी दृष्टियों से हम मुक्त होते चले जाते हैं उतना ही हम दर्शन के निकट पहुंच जाते हैं। आमतौर से शब्दों से ऐसा भ्रम होता है कि दृष्टि ही दर्शन देती है। लेकिन दृष्टि ही सबसे बड़ी बाधा है दर्शन में। अगर मेरी कोई भी दृष्टि है तो मैं सत्य को भी नहीं जान सकता हू। अगर मेरी कोई दृष्टि नहीं है, मैं दृष्टिमुक्त, दृष्टिशून्य होकर खड़ा हो गया हूं तो ही मैं पूर्ण को जान सकता हूं क्योंकि सब पूर्ण को मेरे

तक आने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न : दर्शन और अनुभूति एक ही बात है ?

उत्तर: हां, बिल्कुल ही एक बात है।

प्रश्न : महावीर ने घर में ही रहकर साधना क्यों नहीं की ? बाहर आने की क्या आवश्यकता थी ?

उत्तर : ये सवाल भी हमें उठते हैं। ये प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि घर और बाहर हमे दो विरोधी चीजें मालूम पड़ती हैं। हमें ऐसा लगता है कि घर एक अलग दुनिया है, और बाहर एक अलग दुनिया है। हमें कभी भी ख्याल नहीं आता कि घर और बाहर, एक ही विराट के दो हिस्से हैं। एक स्वास भीतर गई तो मैं कहता हू कि भीतर गई। और एक क्षण भीतर रही नही कि बाहर हो गई। जो एक क्षण पहले बाहर थी वह एक क्षण बाद भीतर हो जाती है। जो एक क्षण भीतर थी वह एक क्षण बाद बाहर हो जाती है। क्या बाहर है और क्या भीतर है ? कौन सा घर है, और कौन सा घर से अतिरिक्त अन्यथा है ? हमारी जो दृष्टि है वह हमने बडी सीमित बना रखी है। घर से हमारा मतलब है जो अपना है और बाहर से हमारा मतलब है जो अपना नहीं है। लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि किसी के लिए कुछ भी ऐसा न हो जो अपना नही है। और अगर किसी व्यक्ति के लिए ऐसा हो जाए कि कुछ भी ऐसा नही है जो अपना नही है तो घर और बाहर का सवाल समाप्त हो गया। तब घर ही रह गया, बाहर कुछ भी न रहा। या उल्टा भी कह सकते हैं कि बाहर ही रह गया, घर कुछ भी न रहा। एक बात तय है कि जिस व्यक्ति को दिखाई पडना शुरू होगा उसे बाहर और भीतर की जो भेदरेखा है, वह मिट जाएगी। वही बाहर है, वही भीतर है। ये हवाएं हमारे घर के भीतर भर गई हैं तो हम कह रहे हैं घर के भीतर। और हमें ख्याल नही है कि प्रतिपल ये हवाएं बाहर हुई चली जाती हैं और प्रतिपल जो बाहर थीं वे भीतर चली आती हैं। घर के भीतर हवाएं कुछ अलग हैं घर के बाहर से ? यह जो प्रकाश घर में आ गया है वह कुछ अलग है उस प्रकाश से जो बाहर है। हां, इतना ही फर्क है कि दीवालों ने इसकी प्रखरता छीन ली है। दीवालों ने इसे उतना ताजा और जीवन्त नहीं रहने दिया है जितना वह बाहर है। हवाएं भी जो घर के भीतर आ गई हैं थोड़ी गंदी हो गई हैं। दीवालों ने, सीमाओं ने उनकी स्वच्छता छीन ली है, ताजगी छीन ली है। और अगर कोई व्यक्ति घर के भीतर बैठे-बैठे पाता है कि अस्वच्छ

हो गया है सब और द्वार के बाहर जाकर आकाश खुले नीचे खड़ा हो जाता है तो हम नहीं कहते हैं कि उसने घर छोड़ दिया है, हम इतना ही कहते हैं कि घर के बाहर और बड़ा घर है जहां और स्वच्छ हवाएं हैं और स्वच्छ सूरज है, और साफ सुन्दर जगह है। आदमी की बनाई हुई दीवालें हैं और गौर से हम देखें तो हमारे मोह की दीवालें हैं जो हमारा घर बनाती हैं।

तो मकान बांधे हुए है या हमारा 'मेरा' बांधे हुए है ? इसे हम जरा ठीक से समझ लें तो हमे दिखाई पड़ेगा 'मेरा' हमारा घेरा है। बहुत गहरे में 'मेरे' का भाव ममत्व हमारा मकान है। और ध्यान रहे जो कहता है 'मेरा' वह अनिवार्य रूप से शेष को 'तेरे' में बदल देता है। जो कहता है 'मेरा' वह शेष को शत्रु बना लेता है। जो कहता है 'अपना' वह दूसरे को पराया बना देता है। गांधी जी के आश्रम मे एक भजन गाया जाता था। "वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने।" कोई मुझे पढ़कर सुना रहा था तो मैंने कहा कि इसमें थोड़ा सुधार कर लेना चाहिए। असल मे वैष्णव जन तो वह है जो पराए को ही नहीं जानता। पराई पीर तो बहुत दूसरी बात है। पराए की पीर को जानना हो तो पराए को मानना जरूरी है, और अपने को भी मानना जरूरी है। वैष्णव जन तो वह है जो जानता ही नहीं कि कोई पराया है, और तभी यह सम्भव भी है कि पराए की पीर उसे अपनी मालूम होने लगे, तभी जबकि पराया न रह जाए। तो जो एक हमारे 'मैं' का घेरा है, वही हमारा घर है— 'मेरा घर', 'मेरी पत्नी', 'मेरे पिता', 'मेरा बेटा', 'मेरा मित्र', एक 'मेरे' की हमने दुनिया बनाई हुई है। उस 'मेरे' की दुनिया में हमने कई तरह की दीवालें उठाई हुई हैं—पत्थर की भी उठाई हैं, प्रेम की भी उठाई हैं, घृणा की भी उठाई हैं, द्वेष की भी, राग की भी। और एक घर बनाया है। जबकि पूछा जाता है कि महावीर ने घर क्यों छोड़ दिया है। क्या घर में ही सम्भव नहीं था ? नहीं, घर ही सम्भव नहीं था। घर ही असम्भावना थी। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो वह जो 'मेरे' का भाव था वही तो असम्भावना थी। वही रोकता था, वही समस्त से नहीं जुड़ने देता था। लेकिन अगर किसी को दिखाई पड़ गया हो कि सब ही 'मेरा' है, या कुछ भी ऐसा नहीं जो 'मेरा' है और 'तेरा' है तो फिर कौन-सा घर है जो अपना है और कौन-सा घर है जो अपना नहीं है। हमें एक ही बात दिखाई पड़ती है कि महावीर ने घर छोड़ा। वह क्यों दिखाई पड़ती है क्योंकि हम घर को पकड़े हुए हैं। हमारे लिए जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है, वह यह कि इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा क्योंकि हम घर

को पकड़े हुए लोग हैं। घर को छोड़ने की बात ही असह्य है। यह कल्पना भी असह्य है कि घर छुड़ा लिया जाए। इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा? लेकिन हम समझ नहीं पा रहे कि घर की धारणा क्या है।

महावीर ने घर छोड़ा या कि घर मिट गया? जैसे ही जाना तो घर मिट गया। जैसे ही समझा तो मेरा और अपना कुछ भी न रहा। सबका सब हो गया। यह अगर हमें दिखाई पड़ जाए तो बड़ा फर्क पड़ जाता है। हम यहां बैठे हुए हैं। दस करोड़ मील दूर पर सूरज है। वह अगर ठंडा हो जाए तो हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह ठंडा हो गया क्योंकि उसी के साथ हम सब ठंडे हो जाएंगे। दस करोड़ मील जो सूरज है, वह भी हमारे प्राण के स्पन्दन को बांधे हुए है, वह भी हमारे घर का हिस्सा है। उसके बिना हम हो ही नहीं सकते। वह हमारे होने को भी सभाले हुए है। लेकिन कब हमने सूरज को घर का साथी समझा है? कब हमने माना है कि सूरज भी अपना है मित्र और अपने परिवार का है? लेकिन जिसे हमने कभी परिवार का नहीं समझा है उसके बिना हम कोई भी नहीं होंगे। न परिवार होगा न हम होंगे। वह दस करोड़ मील दूर बैठा हुआ सूरज भी हमारे हृदय की धड़कन का हिस्सा है। घर के भीतर है या बाहर अगर यह सवाल पूछा जाए तो क्या उत्तर होंगे? सूरज घर के भीतर है या घर के बाहर? अगरा सूरज को घर के बाहर करते हैं तो हम जीवित नहीं रहते। सूरज अगर हमारे घर के भीतर हो तो ही हम जीवित हैं। हवाएं, जो सारी पृथ्वी को घेरे हुए हैं, हमारे घर के भीतर हैं, अगर एक क्षण को न हो जाएं तो हम उसी क्षण 'न' हो जाएंगे। सूरज तो पास है। दूर के चांद तारे भी, दूर के ग्रह उपग्रह भी, दूर के सूरज और महासूरज भी—वे सब भी किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा हैं। पत्नी ने आपका खाना बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर है। लेकिन एक गाय ने घास चरी है और आपके लिए दूध बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर नहीं है। और घास को सीधा आप चर कर दूध नहीं बना सकते हैं। बीच में एक गाय चाहिए जो घास को उस स्थिति में बदल दे जहां से वह आपके योग्य हो जाए। लेकिन घास ने भी कुछ किया है। उसने भी मिट्टी को बदला है और घास बन गया है। घास आपके घर के भीतर है या बाहर? क्योंकि अगर घास न हो तो आपके होने की कोई सम्भावना नहीं है। और घास अगर न हो तो मिट्टी को खाकर गाय भी दूध नहीं बना सकती। और घास मिट्टी ही है लेकिन उस रूप में जहां से

गाय उसका दूध बना सकती है और जहा से दूध आपका भोजन बन सकता है। क्या हमारा घर है? क्या हमारे घर के बाहर है? अगर हम आंख खोल कर देखना शुरू करें तो हमें पता चलेगा कि सारा जीवन एक परिवार है, जिसमे एक कड़ी न हो तो कुछ भी नही होगा। जीवन मात्र एक परिवार है। एक सामने पड़ा हुआ पत्थर भी किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा है। अगर वह भी न हो तो हम नहीं कह सकते कि क्या होगा? सब बदल सकता है। तो जिसको जीवन की इतनी विराटता का दर्शन हो जाएगा, वह कहेगा कि सभी सब हैं, सभी मेरे हैं, सभी अपने हैं या कोई भी अपना नहीं है। ये दो भाषाएं रह जाएगी उसके पास। अगर वह विधायक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा : मेरा ही परिवार है सब और अगर वह निषेधात्मक ढग से बोलेगा तो वह कहेगा कि 'मैं ही नहीं हू, परिवार कैसा?' ये दो उपाय रह जाएगे और ये दोनो उपाय एक ही अर्थ रखते हैं। तो महावीर ने छोड़ा घर, परिवार यह बिल्कुल भून है। असल मे बड़े परिवार के दर्शन हुए, छोटा परिवार खो गया। और जिसको सागर मिल जाए, वह बूंद को कैसे पकडे बैठा रहेगा? बूद को तभी तक कोई पकड़ सकता है जब तक सागर न मिला हो और सागर मिल जाए तो हम कहेंगे कि बूंद को आपने छोड़ा। असल मे हमे सागर दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ बूद ही दिखाई पड़ती है। बूद को पकड़े हुए लोग, बूद को छोडते हुए लोग—ऐसे हमे दिखाई पड़ते हैं। हमे सागर नही दिखाई पडता। लेकिन जिसे सागर दिखाई पड़ जाए, वह कैसे बूंद को पकडे रहे। तो बूद को पकड़ना निपट अज्ञान हो जाएगा। ज्ञान विराट में ले जाता है, अज्ञान क्षुद्र को बाध कर पकडा देता है। अज्ञान क्षुद्र में ही रुक जाता है, ज्ञान निरन्तर विराट् से विराट् होता जाता है। महावीर ने घर नही छोड़ा, घर को पकड़ना असम्भव हो गया। और इन दोनों बातों में फर्क है। जब हम कहते हैं कि घर छोड़ा तो ऐसा लगता है कि घर से कोई दुश्मनी है। और जब मैं कहता हू कि घर को पकड़ना असम्भव हो गया तो ऐसा लगता है कि और बड़ा घर मिल गया, विराट् सा घर। उसमें पहला घर छूट नहीं गया, सिर्फ वह बड़े घर का हिस्सा हो गया। यह हमारे ख्याल में आ जाए तो त्याग का एक नया अर्थ ख्याल में आ जाएगा। त्याग का अर्थ कुछ छोड़ना नही, त्याग का बहुत गहरा अर्थ विराट् को पाना है। लेकिन त्याग शब्द में खतरा है। उसमें छोड़ना छिपा हुआ है। उसमें लगता है कि कुछ छोड़ा है। मेरी दृष्टि में, महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों को त्यागी कहने में बुनियादी भूल

है। इससे बड़ा भोगी खोजना असम्भव है। अगर अर्थ समझ लें तो त्याग का अर्थ है कुछ छोड़ना, भोग का अर्थ है कुछ पाना। महावीर से बड़ा कोई भोगी होना असम्भव है क्योंकि जगत में जो भी है सब उसका ही हो गया है; उसका भोग भी अनन्त हो गया है, उसका घर भी अनन्त हो गया है, उसकी श्वांस भी अनन्त हो गई है, उसका प्राण भी अनन्त हो गया है, उसका जीवन भी अनन्त हो गया है। इतने विराट् को भोगने की सामर्थ्य क्षुद्र चित्त में नहीं होती। क्षुद्र, क्षुद्र को ही भोग सकता है इसलिए वह क्षुद्र को पकड़ लेता है। लेकिन जब विराट् होने लगे तो? एक नदी है, वह चली है हिमालय से और सागर में गिर गई है। दो तरह से देखी जा सकती है यह बात। कोई नदी से पूछ सकता है : तूने पुराने किनारे क्यों छोड़ दिए? तूने पुराने किनारों का त्याग क्यों किया? ऐसे भी पूछा जा सकता है नदी से : किनारे क्यों छोड़े तूने? और नदी ऐसा भी कह सकती है कि किनारे मैंने छोड़े नहीं, किनारे अनन्त हो गए हैं। किनारे अब भी हैं। लेकिन अब उनकी कोई सीमा नहीं है। अब वे असीम हो गए हैं। अब जो छोटे-छोटे किनारे थे, एक छोटी सी धार बहती थी और रोज छोटे किनारे छोड़ती चली आई है इसलिए बड़ी होती चली गई। गंगोत्री पर बड़ा छोटा किनारा था गंगा का। फिर आकर सागर के पास बड़े-बड़े किनारे हो गए। लेकिन फिर भी किनारे थे। फिर सागर में उसने अपने को छोड़ दिया। सागर के बड़े किनारे हैं, लेकिन फिर भी किनारे हैं। कल वह भाप बनेगी और आकाश में उठ जाएगी और किनारे छोड़ देगी, कोई किनारा नहीं रह जाएगा। जीवन की खोज मूलतः किनारों को छोड़ने की या बड़े किनारे को पाने की खोज है। लेकिन जिसको असीम और अनन्त मिल जाता हो उससे जब हम पूछने जाते हैं कि तुमने किनारे क्यों छोड़े तो क्या उत्तर होगा उसके पास? वह सिर्फ हंसेगा और कहेगा कि तुम भी आओ और छोड़कर देखो क्योंकि जो मैंने पाया है वह बहुत ज्यादा है और उसमें वह पुराना मौजूद ही है। जो तुम कहते हो छोड़ दिया, वह कहीं छोड़ा नहीं। घर छूटा नहीं है महावीर का, सिर्फ बड़ा हो गया है। इतना बड़ा हो गया है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता क्योंकि हमें छोटे घर ही दिखाई पड़ सकते हैं। अगर घर बहुत बड़ा हो जाए तो फिर हमें दिखाई नहीं पड़ता। त्याग से हटा देनी चाहिए बात और विराट भोग पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए। और मेरी अपनी समझ है कि जो त्याग से हमने जोड़ लिया है हम सब महापुरुषों को इसलिए हम इनके निकट

नहीं पहुंच पाए क्योंकि त्याग बहुत गहरे में किसी व्यक्ति को भी अपील नहीं कर सकता है। बहुत गहरे में, त्याग की बात ही निषेध की बात है। यह छोड़ो वह छोड़ो, छोड़ने की भाषा ही मरने की भाषा है। छोड़ना आत्मघाती है। इसलिए अगर धर्म इस बात पर जोर देता हो कि छोड़ो, छोड़ो, तो बहुत थोड़े से लोग हैं जो उसमे उत्सुक हो सकते हैं। और अक्सर ऐसा होगा कि रुग्ण लोग उत्सुक हो जाएंगे और स्वस्थ लोग उत्सुक नहीं रह जाएंगे। स्वस्थ भोगना चाहता है, रुग्ण छोड़ना चाहता है क्योंकि वह भोग नहीं सकता। बीमार, आत्मघाती चित्त के लोग इकट्ठे हो जाएंगे धर्म के नाम पर। स्वस्थ, जीवन्त, जीवन जानने वाले अलग चले जाएंगे, कहेंगे धर्म हमारा नहीं है। इसलिए तो लोग कहते हैं . युवावस्था मे धर्म की क्या जरूरत ? वह तो वृद्धावस्था के लिए है। जबकि चीजें अपने से छूटने लगती हैं तो उन्हें छोड़ ही दो। फिर अब क्या दिक्कत है? छोड़ ही दो, छूट ही रहा है, छीना ही जा रहा है, लेकिन जब जीवन भोग रहा है, पा रहा है, उपलब्ध कर रहा है तब छोड़ने की भाषा समझ में नहीं आती। इसलिए मन्दिरो मे, मस्जिदों में, गिरजो में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं, जवान आदमी दिखाई नहीं पड़ते। वह जो छोड़ने पर जोर था उसने दिक्कत डाल दी है। मैं इस जोर को एकदम बदलना चाहता हू। मैं कहता हू : भोगो और ज्यादा भोगो ? परमात्मा को भोगो और उसका भोग बहुत अनन्त है, क्षुद्र पर मत रुक जाना। क्षुद्र को छोड़ना तो इसलिए कि विराट् को भोगना है। जितना हम विराट् होते चले जाएंगे, उतना हमारा अस्तित्व मिटता चला जाएगा। लेकिन असल में, 'अस्तित्व मिट जाता है,' ऐसा कहना भूल है। मेरा अस्तित्व मिट जाता है इतना ही कहना सही है। ईगो चली जाती है, अस्तित्व तो रहेगा।

प्रश्न : अभी नदी सागर में गई तो नदी का कैसे पता लगेगा ?

उत्तर : पता नहीं लगेगा लेकिन नदी है। अस्तित्व तो है। नदी में जो कण-कण था, वह खोया नहीं है, वह सब है। हां, नदी की तरह नहीं है, सागर की तरह है। और नदी की तरह अब नहीं खोजा जा सकता। नदी मर गई लेकिन नदी का जो अस्तित्व था वह पूरा का पूरा सुरक्षित है।

प्रश्न : फिर आप कहते हैं कि छोड़ना तो आत्मघाती है।

उत्तर : हां, बिल्कुल आत्मघाती है। छोड़ने की भाषा ही आत्मघाती है। नदी से मत कहो कि नदी होना छोड़ो। नदी से कहो कि सागर होना सीखो।

नदी से मत कहो कि छोड़ो, नदी से कहो कि भोगो। विराटता के सामने रुको मत। दौड़ो, कूद जाओ सागर में, भोगो, सागर को भोगो। मुझे लगता है कि जगत को ज्यादा धार्मिक जीवन दिया जा सकता है। क्योंकि जो हमारा सामान्य चित्त है और सामान्य चित्त का जो भाव है, वह भोगने का है, त्यागने का नहीं है। और सामान्य चित्त को अगर धर्म की ओर उठाना है तो उसे विराट् भोग का आमंत्रण बनाना चाहिए। अभी उल्टा हो गया है। जो छोटा-मोटा भोग चल रहा है उसके भी निषेध करने का आमंत्रण बना हुआ है। उसे भी इन्कार करो। और यह मैं मानता हूं कि अगर हम विराट् को भोगने जाएंगे तो क्षुद्र का निषेध करना पड़ेगा। नदी को सागर बनना है तो वह नदी नहीं रह जाएगी। यह कोई कहने की बात नहीं है। नदी को सागर बनना है तो उसे नदी होना छोड़ना ही होगा। लेकिन इस बात पर जोर मत दो। दो घटनाएं घट रही हैं। नदी मिट रही है—एक घटना। नदी सागर हो रही है—दूसरी घटना। किस पर जोर देते हैं आप? अगर सागर होने पर जोर देते हैं तो मैं मानता हूं कि ज्यादा नदियों को आप आकर्षित कर सकते हैं कि वे सागर बन जाएं। अगर आप कहते हैं कि नदी मिट जाओ, सागर की बात मत करो तो शायद ही कोई एक-आध नदी को आप तय्यार कर लें जो मिटने को राजी हो जाए, जो नदी होने से घबड़ा गई हो। बाकी नदियां तो रुक जाएंगी और कहेंगी : हम बहुत आनन्दित है। हमें नहीं मिटना है। हां मिटना तभी सार्थक है जब विराट् का मिलना सार्थक हो रहा हो, अर्थ दे रहा हो। तो मेरा जोर इस बात पर है कि धर्म का त्याग मत करो। धर्म को विराट् भोग बनाओ। त्याग आएगा, वह सीधा अपने आप होगा। अगर आपको आगे की सीढ़ी पर पैर रखना है तो पिछली सीढ़ी छूटेगी। लेकिन इस पर जोर मत दो कि पीछे की सीढ़ी छोड़नी है। जोर इस पर दो कि आगे की सीढ़ी पानी है।

प्रश्न : जैसे त्याग शब्द ने गल्ती की अब तक, वैसे आपका भोग शब्द भी गल्ती कर सकता है?

उत्तर : बिल्कुल कर सकता है। सब शब्द गल्ती करते हैं। शब्द कोई हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। सब शब्द गल्ती कर सकते हैं क्योंकि अन्ततः शब्द गल्ती नहीं करते, अन्ततः लोग गल्ती करते हैं। लेकिन त्याग शब्द व्यर्थ हो गया है। और त्याग के विपरीत कोई शब्द नहीं है सिवाय भोग के। लेकिन जो मैं कह रहा हूं अगर उसे ठीक से समझा जाय तो मेरा भोग त्याग

के विपरीत नहीं है। मेरा भोग त्याग मे से ही है क्योंकि मैं कह रहा हूं कि दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना है तो पहली सीढ़ी छोड़नी ही पड़ेगी। लेकिन मेरा जोर दूसरी सीढ़ी पर पैर रखने पर है। मेरा जोर आगे बढ़ने पर है। मेरा जोर पिछली सीढ़ी छोड़ने पर नही है। जोर इस बात पर है कि अगली सीढ़ी पाओ। इसे मैं भोग कह रहा हूं। पिछला जोर इस बात पर था कि जिस सीढ़ी पर खडे हो उसे छोड़ो। वह जोर छोड़ने पर था। पिछली सीढ़ी छोड़ो—इसके लिए बहुत कम लोगो को राजी किया जा सकता है क्योंकि जिस तरह हम खडे है, उसे भी छोड दे यह कठिन है। हा, जो उस सीढ़ी पर अत्यन्त दुख मे है, शायद वह छोडने को राजी हो जाए। वह कहे कि इसमे बुरा तो कुछ नहीं हो सकता, यह तो छोड़ ही देते हैं फिर जो होगा, होगा। रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेता है, स्वस्थ चित्त त्याग की भाषा को नही समझ सकता। वृद्ध चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, युवा चित्त त्याग की भाषा को नही समझ सकेगा। इसलिए मैं कह रहा हू कि पिछले पाच हजार वर्षों मे धर्म ने जो भी रूपरेखा ली है, वह रुग्ण, विक्षिप्त, वृद्ध, बीमार—इस तरह के लोगो को आकृष्ट करने का कारण बनी। 'त्याग' शब्द पर जोर देने का परिणाम यह हुआ कि जो स्वस्थ, जीवन्त, जीने के लिए लालायित है वह उस ओर नही गया है। उसने कहा . जब जीवन की लालसा चली जाएगी, तब देखेंगे, अभी तो हमे जीना है। मैं यह कह रहा हू कि यह जो जीवन्त धारा है, इसे आकृष्ट करो। और यह तभी आकृष्ट होगी जब विराट् जीवन का ख्याल इसके सामने होगा कि छोड़ना नहीं है, पाना है। और छोड़ना होगा ही इसमे क्योंकि बिना छोड़े कुछ भी पाया नही जा सकता है। असम्भव ही है कि हम बिना छोड़े कुछ भी पा लें। कुछ भी हम पाने चलेंगे तो कुछ छोड़ना पड़ेगा। और इस-लिए सवाल छोड़ने के विरोध का नही है। सवाल जोर का है, हम किस चीज पर जोर दें। भोग शब्द में बहुत निन्दा छिप गई है। वह त्यागियों ने पैदा की है। इसलिए मैं भोग का ही उपयोग करना चाहता हूं, जानबूझ कर। क्योंकि वह जो भोग की निन्दा है, वह इन त्यागियों ने ही पैदा की है। वे कहते हैं कि भोग की बात ही मत करो, रस की बात ही मत करो, सुख की बात ही मत करो, क्योंकि त्याग करना है। मेरा कहना है कि यह पूरी की पूरी भाषा गलत हो गई है। इसने गलत तरह के आदमी को आकृष्ट किया है, स्वस्थ आदमी को आकृष्ट नहीं किया है। जीवन को भोगना है उसकी गहराइयों में। जीवन को जीना है उसकी आत्यन्तिक उपलब्धियों में, उसके पूर्ण रस में, उसके

पूर्ण सौन्दर्य में। परमात्मा इन अर्थों में प्रकट होना चाहिए कि जो व्यक्ति जितना परमात्मा मे जा रहा है उतने जीवन की गहराइयों मे जा रहा है। अभी तक का जो त्यागवादी रुख था वह ऐसा था कि जो व्यक्ति परमात्मा की ओर जा रहा है, वह जीवन की ओर पीठ कर रहा है, वह जीवन को छोड़कर भाग रहा है, वह जीवन की गहराइयों मे नही जा रहा है, वह जीवन को इन्कार कर रहा है। वह कहता है कि जीवन हमें नही चाहिए, हमें मृत्यु चाहिए; इसलिए वह मोक्ष की बातें करता है।

दूसरी ओर अगर कोई जीवन को मानकर चलेगा तो भी सब छूट जाएगा लेकिन तब उस छूटने पर जोर नहीं होगा। यानी मेरा जोर यह है कि आपके हाथ मे पत्थर है तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप पत्थर फेंक दो। मैं आपसे कहता हूं : सामने हीरो की खदान है। मैं नही कहता कि पत्थर फेंको। मैं कहता हूं कि हीरे बडे पाने योग्य हैं और सामने चमक रहे हैं। मैं यह जानता हू कि हाथ खाली करने पड़ेंगे। क्योंकि बिना हाथ खाली किए हीरो से हाथ भरेंगे कैसे? पत्थर छूट जाएंगे, लेकिन यह छूटना बडा सहज होगा। आपको शायद पता भी नहीं चलेगा कि अब आपने हाथ से पत्थर गिरा दिए और हीरे हाथ मे भर लिए। शायद आपको ख्याल भी नहीं आएगा कि मैंने पत्थर छोड़े क्योकि जिसे हीरे मिल गए वह पत्थर छोड़ने की बात ही नही कर सकता। लेकिन पुराना जोर इस बात पर था कि पत्थर छोड़ो और इसलिए ऐसे लोग हैं जो पत्थर छोडने के आधार पर ही जिन्दगी भर जी रहे हैं कि हमने पत्थर छोड़े। उन्हे कुछ मिला कि नही, इसका कुछ पता नहीं, उन्हें आगे की सीढ़ी मिली कि नही, इसका कुछ पता नही क्योंकि मैं यह कहता हूं कि यह हो सकता है कि पत्थर छोड दिए जाए और हीरे न मिलें, लेकिन यह कभी नही हो सकता कि हीरे मिल जाएं और पत्थर न छोड़े जाएं। हाथ खाली भी रह सकते हैं। त्याग की भाषा ने बहुत से लोगो के हाथ खाली भी करवा दिए हैं। तो जिसके हाथ खाली हैं, वह उन लोगों पर क्रोध से भर जाता है जिनके हाथ भरे हैं। इसलिए हमारा साधु-संन्यासी बहुत गहरे में जीता है। वह चौबीस घंटे उनकी निंदा कर रहा है जिनके हाथ भरे हैं, जो भोग रहे हैं, जो जीवन में सुख पा रहे हैं। वह उन सब को गालियां दे रहा है; उनको नरक भेजने का इन्तजाम कर रहा है। उनको आग में जलवा डालेगा, वह इन्तजाम कर रहा है। यह उसकी मानसिक तृप्तियां हैं। वह खाली हाथ का आदमी उन लोगों से बदला ले रहा है, जिनके हाथ भरे हुए

हैं और जो राजी नहीं है खाली हाथ करने को। और जो लोग उनके आस-पास इकट्ठे हुए हैं उनको भी उसके हाथ खाली दिखाई पड़ते हैं, भरा हुआ कुछ दिखाई पड़ता नही। क्योंकि मेरा मानना यह है कि अगर भरा हुआ कुछ दिखाई पड़े तो स्वाभाविक होगा कि हम भी उसी यात्रा पर निकल जाएं जहा आदमी और भी भर गया है। आप एक संन्यासी के पास जाते हैं, एक त्यागी के पास जाते हैं तो आप भला कितनी ही प्रशसा करें उसके त्याग की, आप कितना ही कहे कि 'बड़े हिम्मत का आदमी है, इसने यह छोड़ा, वह छोड़ा,' लेकिन न तो उसकी आखों मे, न उसके व्यक्तित्व मे, न उसके जीवन में, यह सुगध दिखाई पड़ती है जो कुछ पाने की है। मेरा मानना है कि अगर उसके जीवन मे कुछ आ जाए तो वह भी त्याग की बातें बंद कर दे क्योंकि वह भूल जाएगा उन पत्थरों को जो छोड़े हैं। अब हीरो की चर्चा होगी जो पाए हैं। लेकिन जो भी त्याग की बातें वे करते चला जा रहा है, अभी भी पत्थर छोड़ने की बातें करते चला जा रहा है, निश्चित है कि उसके हाथ मे कुछ और नही आया है। पत्थर छूट गए हैं। अब एक ही रस रह गया है कि मैंने इतने पत्थर छोड़े, मैंने यह छोड़ा, वह छोड़ा। यही उसका रस रह गया है। और हम जो चारो ओर इकट्ठे लोग हैं, हमे भी और कुछ दिखाई नही पड़ता है उसमे। सिर्फ छोड़ना दिखाई पड़ता है। छोड़ना कभी भी चित्त के लिए आकर्षण नही बन सकता। असहज सहज नही है। पाना ही चित्त के लिए सहज आकर्षण है। तो अगर वह हमारे ख्याल में हो जाए, अगर वह साफ हो जाए तो महावीर ने घर छोड़ा—इस भाषा को हम नहीं बोलेंगे। महावीर ने घर छोड़ा यह तथ्य है। तथ्य इतना है कि महावीर घर मे नही रहे। लेकिन इसको हम किस तरह से देखें यह हम पर निर्भर है। यह महावीर पर निर्भर नहीं है अब। और मेरी दृष्टि यह है कि महावीर घर छोड़कर जितने आनन्दित दिखाई पड़ते हैं, जितने प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, उनके जीवन में जैसी सुगध मालूम पड़ती है, वह खबर देती है कि घर छोड़ा नहीं, बड़ा घर मिल गया है। अगर घर ही छूटता और बाहर रह गए होते सड़क पर तो यह हालत नहीं होने वाली थी। बड़ा घर मिल गया, महल मिल गया, झोंपड़ा ही छूटा है। इसलिए जो छूटा है, उसकी बात ही नहीं। जो मिल गया है, वह चारो ओर से उनको आनन्द से भर रहा है। लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधु को देखें। ऐसा लगता है कि वह सड़क पर खड़ा है, जो था वह खो दिया और जो मिलना था वह मिला नहीं। तो एक अधूरे में

भटक गया है। वह एक कष्ट में जी रहा है, वह एक परेशानी में जी रहा है। और हमें जरा यह सोच लेना चाहिए कि हम किसी को परेशानी में जीते देखकर आदर क्यों देते हैं ? असल में यह भी बड़ी गहरी हिंसा का भाव है। एक आदमी जब परेशानी में होता है तो हम उसको आदर देते हैं। और परेशानी अगर खुद ही स्वेच्छा से ली है तब हम और आदर देते हैं। लेकिन यह हमारा आदर भी रुग्ण है। असल में हम दूसरे को दुख देना चाहते हैं, भीतर से हमारे चित्त में यही होता है कि हम किसको कितना दुख दे दें। और जब कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो दुख खुद ही वरण करता है तो हम बड़े आदर से भर जाते हैं कि यह आदमी बिल्कुल ठीक है। यह हमारे भीतर की किसी बहुत गहरी आकांक्षा को तृप्त करता है। अगर एक आदमी सुखी हो जाए तो आप सुखी नहीं होते। एक आदमी ज्यादा से ज्यादा सुख मे जाने लगे तो आप दुख में जाने लगते हैं। किसी का सुख में जाना आपका दुख मे जाना बन जाता है लेकिन किसी का दुख मे जाना आपका दुख में जाना नही बनता। हालांकि कभी हो जाता है कि कोई आदमी दुख मे पड़ा हो तो आप बहुत सहानुभूति प्रकट करते हैं लेकिन अगर थोड़ा भीतर झाकेंगे तो आप पाएगे कि सहानुभूति मे भी रस आ रहा है। हो सकता है कोई आदमी बड़ा सुखी हो गया है, या बड़े मकान में जीने लगा है तो आप प्रशंसा भी करते हो और कहते हो कि बहुत अच्छा है, भगवान की कृपा है लेकिन इसमें भी भीतर ईर्ष्या घाव कर रही होगी लेकिन जब कोई आदमी स्वेच्छा से दुख में जाता है तब हम उसको बड़ा आदर देते हैं क्योंकि वह वही काम कर रहा है जो हम चाहते थे कि करे। इसलिए त्यागियों, तपस्वियों, तथाकथित छोड़ने वाले लोगों को जो इतना सम्मान मिला है उसका यही कारण है। आप किसी सुखी आदमी को कभी सम्मान नहीं दे सकते। दुखी हो, और दुख ओढा गया हो, तब हम उसके पैरो में सिर रख देंगे कि आदमी अद्भुत है। यह भी मेरा मानना है कि मनुष्य जाति भीतर से रुग्ण है, इसकी वजह से त्यागियों को सम्मान मिलता है। अगर मनुष्य जाति स्वस्थ होगी तो सुखी लोगों को सम्मान मिलेगा। जो स्वेच्छा से ज्यादा से ज्यादा सुखी हो गए हैं, उनका सम्मान होगा। और यह भी ध्यान रहे कि हम जिसको सम्मान देते हैं, धीरे-धीरे हम भी वैसे होते चले जाते हैं। दुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम दुखी होते चल जाएंगे; सुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम सुख की यात्रा पर कदम बढ़ाएंगे। लेकिन अब तक सुखी आदमियों को सम्मान नहीं

दिया गया। अब तक सिर्फ दुखी आदमियों को सम्मान दिया गया है। यह मनुष्य जाति के भीतर दूसरे को दुख देने की प्रबल आकांक्षा का हिस्सा है।

प्रश्न : क्या त्यागी आपस में एक दूसरे को सम्मान नहीं देंगे ?

उत्तर : सम्मान देंगे। अगर बड़ा त्यागी मिल जाए, अपने को ज्यादा दुख देने वाला मिल जाए तो सम्मान देंगे। कारण वही होगा। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा। क्योंकि छोटा त्यागी पन्द्रह दिन खाता है, बड़ा त्यागी महीने भर भूखा बैठा हुआ है। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा लेकिन बात वही है। दूसरे का दुख देख कर हमारे मन में सम्मान पैदा होने की बात ही एक भयकर भूल है।

चर्चा : नौ
३०.९.६९ प्रातः

९

यूरोप में ईसाइयों का एक पन्थ था जो जूतों में लोहे की कीलें लगा लेता था और उनके पैरों में घाव हो जाते थे। उनमे जो गुरु होते, वे सिर्फ जूतों में ही कीलें न लगाते, वे एक पट्टा बांधते कमर मे और उस पट्टे मे भी गहरे कील गडे रहते जो पूरे वक्त छिदते रहते। उठें, बैठें, हिलें और करवट लें, तो खून बहता रहता। तो जितना ज्यादा खून बहाता वह उतना परम गुरु हो जाता। यानी इस बात का नापजोख रखना पडता कि कितने घाव हुए हैं। तुम दस कीलें गडाए हुए हो कि पन्द्रह। तो दस वाला पन्द्रह वाले को आदर देता। एक दूसरा कोडे मारने वालो का सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय का साधु सुबह उठकर अपने शरीर को नगा करके कोड़े मारता था। इसकी चर्चा होती गांव भर मे कि फला आदमी एक सौ एक कोडे मारता है सुबह। हमको यह बात अजीब लगती है। लेकिन हम भी कहते हैं कि फलां साधु ने पन्द्रह दिन का उपवास किया, फला आदमी ने इक्कीस दिन का उपवास किया, फलां आदमी महीने भर से उपवास पर है। हम अखबार मे फोटो भी निकालते हैं, जुलूस भी निकालते हैं कि इस आदमी ने दो महीने उपवास किया है। यह बड़ा अद्भुत आदमी है। दो महीने भूखा मरा है। यह भी कोड़ा ही मारना है। यह भी कीलें ही ठोकना है। लेकिन हमें ख्याल भी नही है कि आज तक मनुष्य जाति क्यों खुद को दुख देने वाले लोगों को इतना आदर देती रही है। जरूर कहीं रुग्ण भाव काम कर रहा है।

चूंकि हमने त्याग के बाबत चिन्तन किया इसलिए ये ग्रेडेशन बन गए। अगर हम भोग के लिए चिन्तन करेंगे तो भी ग्रेडेशन बन जाएगे। भोग भी दिखता है; यह भी दिखता है कि कौन आदमी कितना आनन्दित है, कौन आदमी कितना शान्त है, कौन आदमी प्रत्येक चीज से कितना सुख लेता है। समझ लें कि एक आदमी फूल के पौधे के पास खड़ा हुआ है, गुलाब के पास खड़ा हुआ है तो दिखता है कि वह अपना हाथ कांटे में चुभो रहा है। वह आदमी हमें नहीं दिखेगा जो फूल की सुगध ले रहा है। वह भी दिख सकता है लेकिन हमने उसे देखा नहीं है। अब तक हमने उस आदमी को आदर

दिया है जिसने गुलाब के कांटे को हाथ में चुभो लिया है और खून बहा लिया है। हमने कहा कि यह आदमी अद्भुत है। हमने उस आदमी को आदर दिया। जिसने फूल की सुगंध ली है हमने कहा कि यह आदमी तो साधारण है, फूल की सुगंध कोई भी लेता है। असली सवाल तो कांटे चुभोने का है। मगर वास्तविक स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। कांटा चुभोने वाला भी बीमार है, रुग्ण है और कांटा चुभोने वाले को आदर देने वाला भी खतरनाक है, रुग्ण है। फूल सूंघने वाला भी स्वस्थ है और फूल सूंघने वाले को सम्मान देने वाला भी स्वस्थ है। एक ऐसा समाज चाहिए जहां सुख का समादर हो, दुख का अनादर हो। लेकिन हुआ उल्टा है और इस समाज ने इस तरह का धर्म पैदा कर लिया कि इस जगत में जो सबसे ज्यादा सुखी लोग थे उनको सबसे ज्यादा दुखी लोगों की श्रेणी में रख दिया। इसलिए महावीर जैसे व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी लोगों में से गिना जाना चाहिए। यानी इसके आनन्द की कोई सीमा लगानी मुश्किल है। यह आदमी चौबीस घंटे आनन्द में है। लेकिन हमारी त्याग की दृष्टि ने वह सारा आनन्द क्षीण कर दिया। हमने यह कहना शुरू किया कि यह आदमी इतने आनन्द में इसलिए है क्योंकि इसने इतना-इतना त्याग किया। जो इतना-इतना त्याग करेगा वह इतने आनन्द में हो सकता है लेकिन बात उल्टी है। यह आदमी इतने आनन्द में है इसलिए इससे इतना त्याग हो गया। यह त्याग हो जाना इतने आनन्द में होने का परिणाम है। कोई आदमी इतने आनन्द में होगा तो उससे इतने त्याग हो जाएंगे। लेकिन हमने उल्टा पकड़ा। हमने पकड़ा कि इतने-इतने त्याग किए तो महावीर इतने आनन्द में हुए। तुम भी इतने त्याग करोगे तो इतने आनन्द में हो जाओगे। बस बात एकदम गलत हो गई। त्याग करने से कोई आनन्द में नहीं हो जाता। हाथ के पत्थर छोड़ देने से हीरे नहीं आ जाते। लेकिन हीरे आ जाएं तो पत्थर छूट जाते हैं। त्याग पीछे है, पहले नहीं। और अगर महावीर को हम इस भाषा में देखें और मुझे लगता है कि यही सही भाषा है उनको देखने की, तो हमारा धर्म के प्रति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग होगा। महावीर ने घर नहीं छोड़ा, बड़ा घर पाया। मैं छोड़ने की भाषा के ही विरोध में हूं। बड़ा घर पाया, छोटा घर छूट गया। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह उसके दुश्मन हो गए। इसका मतलब सिर्फ यह है कि अब छोटे घर में रहना असम्भव हो गया है। अब बड़ा घर मिल गया है तो छोटा घर उसका हिस्सा हो गया है।

मैं मानता हूं कि प्रत्येक चीज भ्रान्ति ला सकती है। यह सवाल नहीं है। अगर इसमें भी चुनाव करना हो तो मैं कहता हूं कि भोग भी भ्रान्ति ला सकता है। अगर भोग या त्याग दोनों में ही चुनाव करना हो तो मैं कहता हूं कि फिर भोग ही ठीक है क्योंकि वह जीवन के स्वस्थ, सहज और सरल होने का प्रतीक है। और यह भी बड़े मजे की बात है कि जो आदमी भोगने चलेगा उससे त्याग धीरे-धीरे अनिवार्य हो जाएंगे। वह जैसे-जैसे भोग में उतरेगा वैसे-वैसे बड़े भोग की सम्भावनाएं प्रकट होंगी। और त्याग उससे अनिवार्य हो जाएंगे। लेकिन जो आदमी त्याग करने चलेगा, उससे पुराने भोग की सम्भावनाएं छिन जाएंगी और नये भोग की सम्भावनाएं प्रकट नहीं होंगी। वह आदमी सूखता चला जाएगा। यानी यह बात सच है कि ज्यादा खाना भी खतरनाक है, न खाना भी खतरनाक है। फिर भी अगर दोनों में चुनना हो तो मैं कहूंगा ज्यादा खाना चुन लेना क्योंकि न खाने वाला तो मर ही जाएगा। नाहक ज्यादा खाने वाला बीमार ही पड़ सकता है। और ज्यादा खाने वाला आज नहीं, कल इस अनुभव को पहुंच जाएगा कि कम खाना सुखद है। लेकिन न खाने वाला कभी इस अनुभव पर नहीं पहुंचेगा क्योंकि वह मर ही जाएगा। यानी मेरा कहना यह है कि अगर भूल भी चुननी हो तो सोच-समझकर चुननी चाहिए। भूल सब जगह सम्भव है क्योंकि आदमी अज्ञान में है। इसलिए कुछ भी पकड़ता है तो भ्रान्ति ला सकता है लेकिन फिर भी भ्रान्ति ऐसी चुननी चाहिए जिससे लौटने का उपाय हो। जैसे न खाने से लौटने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न ? ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है और ज्यादा खाना खुद दुख देगा फिर लौटना पड़ेगा। लेकिन न खाना दुख नहीं देगा, समाप्ति कर देगा, मिटा ही डालेगा। उससे लौटने की सम्भावना कम हो जाएगी। फिर यह बात तो ठीक ही है कि सभी शब्द हमें भरमा सकते हैं, भटका सकते हैं क्योंकि हम शब्दों से वही अर्थ निकाल लेना चाहते हैं, जो हम चाहते हैं कि निकलें। हम यह नहीं देखना चाहते कि जो कहा गया है वह हमेशा रहेगा। इसलिए जो आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उन शब्दों के लिए बहुत साफ दृष्टि साथ देनी चाहिए। मैं कह रहा हूं कि भोग अन्ततः त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अन्ततः भोग नहीं बनता। एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकती है लेकिन जो जबरदस्ती ब्रह्मचर्य थोप कर साध्वी बन गई है, उसका ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। एक

वेश्या का अनुभव निरंतर उसे ब्रह्मचर्य की दिशा मे गतिमान करता है। लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरन्तर वासना की दिशा मे गतिमान करता है।

प्रश्न : वे लोग जो खुद को कोड़े मारते हैं अथवा दूसरे को कोड़े मारते हैं, स्वय को दुख देते हैं अथवा दूसरों को दुख देते हैं वे सारे लोग कामशक्ति के विकृत रूप (सेक्स परवर्ट्स) हैं। इसी ढंग से इधर हम जिन्हें त्यागी कहते हैं वे कामशक्ति के विकृत रूप हैं और निर्माता हैं साधु के। दोनों सेक्स परवर्ट्स मे क्या अन्तर है? क्या हम दोनों को एक ही स्तर पर रख सकते हैं?

उत्तर : आपकी बात बहुत ठीक है। सारे पिछले सौ वर्षों के मनोविज्ञान की खोज यह है कि दूसरे को दुख देना या अपने को दुख देना या दुखियो को आदर देना या दुख की सम्भावना को सहारा देना किसी न किसी प्रकार की कामशक्ति का विकृत रूप है। यह बिल्कुल ही सत्य की बात है। इसे समझना जरूरी है। असल मे काम या सेक्स निम्नतम सम्भावना है सुख की। समझना चाहिए कि कामप्रकृति के द्वारा दिया गया जो सुख है इससे कोई ऊपर उठे, और बड़े सुख की खोज ले तो फिर काम के सुख की जरूरत नही रह जाती। धीरे-धीरे काम रूपान्तरित हो जाता है और अन्तत ब्रह्मचर्य बन सकता है लेकिन इससे बड़े सुख को न खोजे और इस सुख को भी इन्कार कर दे तो फिर दुख की सम्भावनाए शुरू हो जाती हैं। यह सीमारेखा है। कामवासना के नीचे दुख की सम्भावनाए हैं, कामवासना के ऊपर सुख की सम्भावनाए हैं। अगर कोई बड़े सुख को खोज ले तो कामवासना से मुक्त हो जाता है। अगर कोई बड़े सुख को न खोजे और कामवासना को इन्कार कर दे तो नीचे दुखों मे उतर आता है। तो कामवासना बीच की रेखा है जहा से हमारे सुख दुखो मे रूपान्तरित होते हैं। यह सीमारेखा है, जहां नीचे दुख है, ऊपर सुख है। इसलिए दुखी आदमी कामी हो जाता है। सुखी आदमी कामी नहीं होता। क्योंकि दुखी के लिए एक ही सुख है। जैसे दरिद्र समाज है, दीन समाज है, दुखी समाज है तो वह एकदम बच्चे पैदा करेगा। गरीब आदमी जितने बच्चे पैदा करता है, अमीर आदमी नही करता। अमीर आदमी को अक्सर गोद लेने पड़ते हैं। उसका कारण है कि गरीब आदमी के पास एक ही सुख है बाकी सब दुख ही दुख हैं। इस दुख से बचने के लिए एक ही मौका है उसके पास कि वह कामवासना में चला जाए। एकमात्र सुख का जो अनुभव उसे हो सकता है, वह वही है। अमीर आदमी को और भी बहुत सुख हैं। सुख बिखर जाता है तो कामवासना तीव्र नही रह जाती। उसकी तीव्रता कम हो जाती है।

सुख कई जगहों में फैल जाता है। वह बहुत तरह के सुख लेता है—संगीत का भी, साहित्य का भी, नृत्य का भी, विश्राम का भी। उसका सुख और तलों पर फैलता है। फैलने की वजह से काम की तीव्रता कम हो जाती है। गरीब और किसी तरह के सुख नहीं लेता। बस एक ही तरह का सुख रह जाता है। वह सेक्स भर उसको सुख देता है। बाकी सब दुख ही दुख हैं दिन भर। सिर्फ मेहनत, मिट्टी फोड़ना, तोड़ना—यही सब है। सेक्स है प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख। अगर कोई आदमी इसमे ही जीता चला जाए तो सामान्यतः जीवन दुख होगा, सेक्स सुख होगा। और आदमी सारे दुख सहेगा सिर्फ सेक्स के सुख के लिए। लेकिन अगर इससे ऊपर उठना शुरू हो जाए यानी और खोजें, वही धर्म का जगत है, सेक्स के ऊपर सुख खोजने का जगत है। जैसे-जैसे सेक्स के ऊपर सुख मिलना शुरू होता है वह शक्ति जो सेक्स से प्रकट होकर सुख पाती थी, नये द्वारों से झाक कर सुख पाने लगती है और धीरे-धीरे सेक्स के द्वार से बिदा लेने लगती है, ऊपर उठने लगती है। इसको कोई कुडलिनी कहे, कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मामला केवल इतना है कि सेक्स सेन्टर के पास सारी शक्ति इकट्ठी है। वह रैजरवायर है। अगर आप शक्ति को ऊपर ले जासकते हैं तो वह रैजरवायर नीचे की तरफ शक्ति को फेंकना बद कर देगा। और अगर आप ऊपर नहीं ले जा सकते तो वह रैजरवायर रिलीज करेगा। और बड़े मजे की बात है कि सेक्स का जो सुख है साधारणत. वह रिलीज का ही सुख है। इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है कि वह भारी हो जाती है तो वह उसको रिलीज कर देता है। अब समझ लो एक आदमी ऊपर भी नहीं गया और सेक्स के रैजरवायर को भी उसने रिलीज करना बद कर दिया तो अब उसकी शक्तियां नीचे उतरनी शुरू होंगी, सेक्स से भी नीचे क्योंकि सेक्स सुख की सीमा है। उसके नीचे दुख की सीमाएं हैं। और ये शक्तियां क्या करेंगी ? अब ये शक्तियां क्या करेंगी ? या तो ये खुद को सताएंगी या दूसरे को सताएंगी। और मजे की बात यह है कि जो मजा आएगा वह सेक्स्युअल जैसा ही है। यानी जो आदमी अपने को कोड़े मार रहा है, वह कोड़े मार कर उतनी शक्ति रिलीज कर देगा जितनी सेक्स से रिलीज होती तो सुख देती। उतनी शक्ति रिलीज होने पर वह थक कर विश्राम करेगा। उसको बड़ा आराम मिलेगा। हमको लगेगा कि उस आदमी ने बड़ा कष्ट दिया अपने को। उसके लिए एक तरह का आराम है क्योंकि वह शक्ति रिलीज हो गई।

ऐसा आदमी खुद को दुख देने में सुख पाने लगेगा। यह एक तरह का खुद

को दुख देने में सुख पाना है। जो आदमी खुद को दुख देने में सुख पाने लगेगा, वह दूसरों को दुख देने में भी सुख पाने लगेगा। वह दूसरों को भी सताएगा। वह दूसरों को भी परेशान करेगा। वह दूसरों को भी परेशान करने के कई उपाय खोजेगा। आपने पूछा है कि क्या धार्मिक विकृत(परवर्ट)व्यक्ति और साधारण विकृत व्यक्ति में कोई फर्क है। मेरा कहना है कि थोड़ा फर्क है। साधारण विकृत व्यक्ति उस धार्मिक विकृत व्यक्ति से अच्छी हालत में है। अच्छी हालत में इसलिए है कि उसको भी यह बोध निरन्तर होगा कि कुछ पागलपन हो रहा है, कुछ गल्ती हो रही है, कुछ भूल हो रही है, मैं कुछ बीमार हूं। धार्मिक विकृत को यह भी नहीं होता। वह समझता है कि उससे गल्ती हो ही नहीं रही। वह साधना कर रहा है। वह सही कर रहा है। और जो वह कर रहा है उसके लिए उसने न्याययुक्त कारण खोज रखे हैं। इसलिए वह कभी अपने को पागल, विक्षिप्त या रुग्ण नहीं समझेगा। दूसरी बात यह है कि साधारण विक्षिप्त आदमी अपनी विक्षिप्तता को छिपाएगा, प्रकट नहीं करेगा। हो सकता है कि वह रात में अपनी पत्नी की गर्दन दबाए, कांटे चुभोए। 'डी सादे' एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। उसके प्रेम करने का ढग ही यही था। उसी से दुखवादी सैडिस्ट शब्द बना। वह जब भी किसी स्त्री को प्रेम करता उसके लिए कोड़ा, चाकू, कांटे, अपने साथ रखता। एक ही बैग था उसके पास। जब वह किसी स्त्री को प्रेम करता तब वह दरवाजे बन्द कर देता। उसका पहला काम यह था कि वह उसको कोड़े मारता, उसको नग्न कर देता और उसको कोड़े मारना शुरू कर देता। वह भागती और चिल्लाती। वह जितनी चीखती और चिल्लाती उतना उसको आनन्द आने लगता। वह कांटे चुभोता। आम तौर से हमको ख्याल में नहीं आता है कि अगर प्रेम में कोई व्यक्ति किसी स्त्री को नाखून गपा रहा है, नोच रहा है तो किसी अंश में यह सैडिज्म है। अब एक आदमी जरा इसमें आगे चला गया, उसको नाखून काफी नहीं मालूम पड़ते, तो उसने कांटे बना रखे हैं। लेकिन मजे की बात यह है कि 'डी सादे' से सैकड़ों स्त्रियों का सम्बन्ध रहा। वह बहुत अद्भुत आदमी था। उसको न मालूम कितनी स्त्रियां प्रेम करती थीं—वह ऐसा आदमी था। वह बड़ा प्रतिभाशाली भी था। जिन स्त्रियों ने उसको प्रेम किया उनका भी कहना है कि जो आनन्द उसके साथ आया वह कभी किसी के साथ नहीं आया। अब यह बड़े मजे की बात है कि उसका कोड़ा मारना भी स्त्रियां पसंद करती थीं। कारण कि वह कोड़े मार कर इतनी बेचैनी पैदा कर देता कि वे चीख रही हैं,

वह कोड़े मार रहा है, कांटे चुभो रहा है, बाल खींच रहा है, नाखून चुभो रहा है, काट रहा है तो स्त्री के पूरे शरीर को वह इतना कम्पन से भर देता कि जब वह सेक्स में जाता उसके साथ तो स्त्री आनन्द की चरम सीमा को उपलब्ध होती जो कि साधारणतः स्त्रियां नहीं छू पातीं। सम्भोग में सौ में से निन्यानवें स्त्रियां आनन्द की चरम सीमा को कभी नहीं पहुंच पाती क्योंकि उनका पूरा शरीर ही नहीं जग पाता। तो इतना सताने के बाद भी वे उसको पसंद करती। वह आदमी अद्भुत था। और उसका कहना था कि जब तक मैं सता न लूं तब तक मुझे कुछ रस आता ही नहीं। मुझे कुछ आनन्द आता ही नहीं। ठीक डी सादे जैसा एक दूसरा आदमी था 'मैसोच' जिसके नाम पर 'मैसोचिज्म' चला है। वह अपने को सताता था। और सता कर बड़ा सुखी होता था। असल में हमारे पास जो शक्ति बच जाती है, या तो हम उसे सुख की दिशा में गतिमान कर सकते हैं या फिर दुख की दिशा में। दो ही दिशाएं हैं। तीसरी कोई दिशा नहीं। आप ठहर नहीं सकते बीच में। या तो आप सुख की दिशा में अपने को ले जाए, नहीं तो फिर शक्तियां दुख की दिशा में जाना शुरू हो जाएगी।

अब एक तीसरा आदमी भी है जो थोड़ा अपने को भी सताता है, थोड़ा दूसरे को भी सताता है। सताने के कई ढंग हो सकते हैं जो हमको ख्याल में नहीं आते। असल में आदमी कैसे-कैसे सताता है, वह हमें पता ही नहीं चलता। जब वह सीमा के बाहर हो जाता है तब पता चलना शुरू होता है कि मामला गड़बड़ हो गया, यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया। मैं यह कह रहा हूं कि दो ही दिशाएं हैं। अगर आप बीच में ठहरते हैं तो दोनों दिशाओं का गोलमेल आपके व्यक्तित्व में होगा। कभी आप सताएंगे, कभी न सताएंगे। इसलिए यह होता है कि पति कभी पत्नी को सताएगा भी, कभी प्रेम भी करेगा। सताएगा फिर प्रेम करेगा, प्रेम करेगा फिर सताएगा। पत्नी भी सताएगी। एक दिन प्रेम करती दिखाई पड़ेगी, दूसरे दिन सताती दिखाई पड़ेगी। सुबह उपद्रव मचाएगी, सांझ पैर दाबेगी। यह कुछ समझ में आना मुश्किल होता है कि यह दोनों बातें एक साथ क्यों चलती हैं। और ध्यान रहे कि जिससे हमने थोड़ी देर प्रेम किया, थोड़ी देर बाद हम उसको सताएंगे। अक्सर यह होता है कि पति-पत्नी लड़ते-लड़ते प्रेम में आ जाते हैं और प्रेम में आते-आते लड़ना शुरू कर देते हैं। यह तो रही साधारण व्यक्ति की बात लेकिन जो असाधारण (एबनार्मल) व्यक्ति है वह या तो सुख की दिशा में चला

जाता है या दुख की दिशा मे चला जाता है। लेकिन सुख की दिशा में जाने से शायद वह अन्ततः परमात्मा तक पहुंच जाता है क्योंकि परमात्मा परम सुख है। और दुख की दिशा मे जाने से शायद वह शैतान तक पहुंच जाता है क्योंकि शैतान होना अन्तिम दुख है। यहा एक और बात को भी समझ लेना जरूरी है कि धार्मिक आदमी इन कामो को प्रकट मे करेगा; अधार्मिक आदमी इनको अप्रकट मे करेगा। धार्मिक आदमी ज्यादा खतरनाक भी है क्योंकि वह प्रकट में करके उनको फैलाता भी है, उनका विस्तार भी करता है। वह लोगो मे यह भाव भी पैदा करता है कि जो वह काम कर रहा है वे कोई विक्षिप्तता के नही। वे काम बडी साधना के हैं और पागल आदमी को यह ख्याल मे आ जाए कि वह ऊची बात कर रहा है तो पागलपन के ठीक होने की सम्भावना ही नही रहती। हिन्दुस्तान मे पागलों की सख्या कम है, यूरोप मे पागलो की सख्या ज्यादा है। लेकिन अभी सन्यासी, साधुओ और अपने को सताने वालो की सख्या हिन्दुस्तान के पागलो से जोड दी जाए तो सख्या बराबर हो जाती है। वहा जो आदमी पागल है वह पागल है, जो आदमी पागल नही है वह पागल नही है। यहा पागल और गैर पागल के पीछे एक रास्ता दूसरा ही है। जबलपुर मे एक आदमी है जो एक सौ आठ बार बर्तन साफ करेगा तब पानी भर कर लाएगा। यह आदमी यूरोप मे हो तो पागल समझा जाएगा। यह आदमी हिन्दुस्तान मे है तो धार्मिक समझा जाता है। लोग कहते हैं कि परम धार्मिक आदमी है, शुद्धि का कैसा ख्याल है। यह आदमी एक सौ आठ बार बर्तन साफ करता है। और इसमे भी अगर कोई स्त्री निकल गई बीच में तो टूट गई पहली शृखला। वह फिर एक से शुरू करेगा। यह आदमी धार्मिक है। कई लोग इसके पैर छुएगे और कहेगे कि आदमी परम धार्मिक है। कभी-कभी उसका दिन-दिन लग जाएगा इसी मे क्योंकि वह नल पर बर्तन धो रहा है, और स्त्री फिर निकल गई, अशुद्ध हो गया बर्तन। अब वह फिर शुद्ध कर रहा है। अब यह आदमी अगर यूरोप मे हो तो फौरन पागलखाने मे भेज दिया जाएगा। मगर यहा वह मदिर मे बैठ जाएगा, पुजारी हो जाएगा, साधु हो जाएगा। इसको आदर मिलने लगेगा। तो धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक है।

महावीर के जीवन की एक घटना है। महावीर ने सब तरह के उपकरण बद कर दिए हैं। वह साथ में कोई सामान नहीं रखेंगे क्योंकि साधन भी एक बोझ हो जाता है। जिस व्यक्ति ने सारे जीवन को अपना ही मान लिया है वह

समझ गया है कि अब ठीक है, कल सुबह जो होगा, होगा। तो महावीर कुछ साथ न रखेंगे। कौन बोझ को ढोता फिरे? वह बाल बनाने का उस्तरा भी नहीं रखते। जब बाल बहुत बढ़ जाते हैं तो उनको उखाड़ देते हैं। महावीर के लिए यह बाल का उखाड़ना भी विक्षिप्तता का कारण नहीं है। यह अत्यन्त सहज बात है क्योंकि कुछ रखना नहीं है साथ। सरलतम यही है कि बाल उखाड़ दिए, साल-दो साल में बढ़ गए, फिर उखाड़ दिए, यात्रा चलती रही। इतना भी सामान साथ क्यों रखकर बांधना? क्यों बोझ लेना है? क्योंकि सामान का बोझ नहीं है गहरे में लेकिन सामान को पकड़ कर रखने में सुरक्षित होने की कामना है। और वह असुरक्षित ही पूरा जीते हैं। कोई सुरक्षा का भाव नहीं, कुछ रखने का भाव नहीं। जहां जो मिल गया वही हाथ में लेकर खा लेते हैं। कौन बर्तन का उपद्रव साथ में करे? लेकिन महावीर का यह बाल उखाड़ना कुछ पागलों के लिए बहुत आकर्षक मालूम पड़ा होगा। पागलों का एक वर्ग है जो बाल उखाड़ता है, जो बाल उखाड़ने में रस लेता है। वह भी एक तरह का सताना है अपने को। तो इसमें कठिनाई नहीं है कि महावीर का बाल उखाड़ना देख कर कुछ पागल बाल उखाड़ने में रस लेने लगे हों, महावीर के पीछे साधु हो गए होंगे इसलिए कि अब बाल उखाड़ने से कोई उनको पागल नहीं कह सकता। महावीर नग्न हो गए हैं क्योंकि अगर कोई व्यक्ति इतना सरल हो जाए, इतना निर्दोष हो जाए कि उसे नग्नता का बोध ही न रहे तो कोई बात नहीं। खुद की नग्नता का बोध हमें तभी तक होता है जब हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं। तब तक हमारा शरीर कोई नग्न देख ले इससे भयभीत होते हैं। यह दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक हम दूसरे के कपड़े उघाड़ना चाहते हैं तब तक हम खुद पर कपड़े ढाकना चाहते हैं। लेकिन जिस आदमी का दूसरे के शरीर को नग्न देखने का भाव चला गया हो वह खुद नग्न खड़ा हो सकता है। महावीर नग्न खड़े हो गए। लेकिन कुछ लोग हैं जो अपने को नगा दिखाना चाहते हैं। यह पागलों का वर्ग है। तो महावीर के पास-पास ऐसे सन्यासी हो गए हैं जो यह चाहते हैं कि कोई उन्हें नगा देखे यानी उनकी चाह बिल्कुल दूसरी है। लेकिन घटना एक सी मालूम होती है। अभी यूरोप में और कई मुल्कों में ऐसे लोग हैं जो रास्ते के किनारे पर खड़े रहेंगे। जब कोई अकेला निकल रहा है तो पेन्ट खोलकर, नंगा होकर एकदम भाग जाएंगे उसको दिखा कर। इन पर रोक है कि ये आदमी खतरनाक हैं। अब इनको क्या हो रहा है? इनको क्या रस आ रहा है?

दूसरा इनको नगा देख ले यह इनका रस है। और ये पागल हैं। ये निपट पागल हैं। लेकिन हिन्दुस्तान मे ये नगे साधु हो सकते हैं और तब इनका पागलपन हमको पता ही नही चलेगा। अब कठिनाई यह है कि जीवन मे दोनो घटनाएं घट सकती हैं। एक आदमी इसलिए नग्न हो सकता है कि अब उसके मन मे नग्नता को छिपाने, ढाकने, देखने का कोई भाव ही नहीं रहा। वह परम सरल हो गया है तो बच्चे की तरह नग्न हो सकता है। और एक आदमी पागल की तरह नग्न हो सकता है लेकिन नग्न होने मे उसे रस है कि लोग उसे नगा होते हुए देखें। और यह दोनो घटनाएं एक साथ घट सकती हैं। इसलिए बडी कठिनाई है जीवन को साफ-साफ समझने मे। लेकिन कठिनाई पहचानी जा सकती है, नियम बनाए जा सकते हैं। जो आदमी सरलता की वजह से नग्न हुआ है, वह जीवन के और हिस्सो मे भी सरल होगा। मगर जिसे नग्नता का आनन्द है उसके लिए यह भोग का ही हिस्सा है। उसके लिए, कपड़े छोडे, जोर इस पर नही, लेकिन नग्नता आई, जोर इस पर है। दूसरी ओर एक आदमी ऐसा है जिसका जीवन इतना सरल हो गया जैसे एक बच्चे का, एक पशु-पक्षी का, सरल और निर्दोष कि वह नग्न खड़ा हो गया। लेकिन यह आदमी जीवन के दूसरे हिस्सो मे एकदम सरल होगा, निष्कपट होगा, निर्दोष होगा। इसके जीवन के दूसरे हिस्सो में कही पागलपन के लक्षण नही होंगे। लेकिन जो आदमी सिर्फ इसलिए नग्न हुआ है कि दूसरे लोग उसको नगा देखें, यह उसकी बीमारी है। वह आदमी दूसरे हिस्सों मे सरल नही होगा। दूसरे हिस्सो मे भी उसकी विक्षिप्तता प्रकट होगी, उसका पागलपन प्रकट होगा। और इस देश मे निर्णय लेने की जरूरत पड़ गई है अब। क्योंकि यह कोई पाच हजार साल से उपद्रव चल रहा है। उस उपद्रव मे तय करना मुश्किल हो गया है कि कौन आदमी प्रामाणिक और कौन आदमी पागलपन की ओर झुक रहा है। ये दोनो ही हो सकते हैं, इसलिए बहुत साफ रेखा खीचना जरूरी है। जो आदमी कपडे छोड़ने पर जोर देगा वह आदमी एक नग्नता को उपलब्ध हो रहा है जो कि निर्दोष है। धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक चीज है क्योंकि उसमें धर्म भी जुड़ा हुआ है। पागलपन सीधा हो तो एक अर्थ में सरल होता है। क्योंकि पागल आदमी निरीह हो जाता है। धार्मिक पागल निरीह नही होता, दूसरो को निरीह करता है। खुद तो उनके ऊपर खड़ा हो जाता है। अब जैसे कि सेंट जोन आफ आर्क को एक पोप ने आग में जलाए जाने की सजा दी। आग मे जला

दी गई वह औरत। जलाई इसलिए गई कि वह धर्म के विपरीत बातें कर रही थी। पोप को पूरा मजा था इस बात का कि वह धार्मिक आदमी है और एक औरत को जला रहा है क्योंकि वह बहुत अधार्मिक बातें कर रही है और वह भगवान का काम कर रहा है। अब एक स्त्री को जलाना और जोन जैसी सरल स्त्री को जलाना एकदम अधार्मिक कृत्य था। लेकिन पोप को एक तृप्ति है। अगर कोई दूसरा आदमी ऐसा काम कर दे तो वह आदमी पागल सिद्ध होता है, अपराधी सिद्ध होता है। पोप अपराधी नहीं हुआ। सात साल बाद, दूसरे पोप जब सत्ता मे आए तो उन्होंने विचार किया और पाया कि यह तो ज्यादती हो गई; जोन तो बड़ी सरल औरत थी और उसे तो सन्त की पदवी दी जानी चाहिए। तो वह सेन्ट जोन बनी। जिस पोप ने आग लगवाई थी वह पोप अपराधी हो गया था लेकिन वह मर चुका था। अब क्या किया जाए ? तो इस पोप ने उसको सजा दी कि उसकी हड्डियों को निकाल कर जूते मारे जाएं और सड़क पर घसीटा जाए। उस मरे हुए पोप की हड्डियां निकाली गई, उसकी कब्र खोली गई, उसको जूते मारे गए, उसके ऊपर थूका गया और उसकी हड्डियों को सड़क पर घसीट कर अपमानित किया गया। अब यह आदमी उससे भी ज्यादा पागल है। लेकिन इसका पागलपन दिखाई नहीं पड़ता। इसका पागलपन एक धार्मिक परिभाषा ले रहा है। यह धार्मिक एक जाल पैदा करेगा शब्दों का जो कि बिल्कुल ठीक मालूम पड़ेगा। धर्म इसकी विक्षिप्तता को औचित्य दे रहा है। धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। पर इस औचित्य को तोड़ देने की जरूरत है और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए कि यह तभी टूटेगा जब हम दुख को धर्म से अलग करेंगे। नहीं तो वह टूटेगा नहीं। क्योंकि वह जो दुखवाद है, उसी के भीतर सारा औचित्य छिप जाता है। दूसरे को दुख देना भी, अपने को दुख देना भी सब उसमें छिप जाता है। इसलिए मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है, परम सुख की। और धार्मिक व्यक्ति वह है जो स्वयं भी आनन्द की ओर निरन्तर गति करता है और चारों ओर भी निरन्तर आनन्द बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दुख देता है, न वह दूसरे को दुख देने की आकांक्षा करता है। न उसके मन में दुख का कोई आदर है न कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर हम धार्मिक कहें तो धर्म परम आनन्द की दिशा बनता है। नहीं तो अब तक वह परम दुख की दिशा बना हुआ है।

प्रश्न : महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। क्या यह ध्यान की ही मुद्रा है ?

उत्तर : यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। नासाग्र दृष्टि का मतलब है—आंख आधी बंद, आधी खुली। अगर नाक के अग्रभाग को आप आंख से देखेंगे तो आधी आंख बंद हो जाएगी। आधी खुली रहेगी। न तो आंख बंद न आंख खुली। साधारणत. हम दो ही काम करते है। या तो आंख बंद होती है नीद मे या आंख खुली होती है जागरण मे। नासाग्र दृष्टि होती ही नही। इसका कोई कारण नही है। उसकी आंख या तो पूरी खुली होती है या पूरी बंद होती है। दोनो के बीच मे एक बिन्दु है जहा आंख आधी खुली है, आधी बंद है। अगर हम खडे होगे और नासाग्र दृष्टि होगी तो करीब चार फुट तक जमीन हमे दिखाई पडेगी। तो साधारणत कोई भी नासाग्र नहीं होता। इसमे दो तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि पूरी बंद आंख, आंखो के जो स्नायु हैं भीतर उनको निद्रा मे ले जाए। पूरी बंद आंख निद्रा मे ले जाती है। आंख जिसकी बंद होती है पूरी तो मस्तिष्क के जो स्नायु आंख से जुडे हैं, वे एकदम शिथिल हो जाते हैं और निद्रा हो जाती है। पूरी खुली आंख जागरण लाती है। ध्यान दोनो से अलग अवस्था है। न तो वह निद्रा है, न वह जागरण है। वह निद्रा जैसा शिथिल है, जागरण जैसा चेतन है। ध्यान तीसरी अवस्था है। नीद नही है वह और जागरण भी नही है वह। और नीद भी है और जागरण भी है। उसमे दोनो के तत्त्व हैं। नीद मे जितनी शिथिलता होती है उतनी ध्यान मे होनी चाहिए। और जागरण में जितना चैतन्य होता है उतना ध्यान मे होना चाहिए। तो ध्यान एक मध्य अवस्था है और नासाग्र दृष्टि आंख के पीछे के स्नायुओं को मध्य अवस्था में छोड देती है। उस हालत मे न तो स्नायु इतने तने होते हैं जितने कि जागरण मे तने होते हैं, न इतने शिथिल होते हैं जितने कि निद्रा मे शिथिल होते हैं और सो जाते हैं। मध्य मे होते हैं। एक मध्य बिन्दु, सम बिन्दु होती है। नासाग्र दृष्टि का यौगिक बहुमूल्य है, फिजियोलोजिकल बहुमूल्य है और ध्यान के लिए वह कीमती प्रभाव पैदा करती है।

दूसरी बात समझने की यह है कि पूरी आंख बंद कर लेनी चाहिए तो व्यक्ति सब ओर से बंद हो जाता है, जगत से टूट जाता है। पूरी आंख बंद है तो व्यक्ति का जगत से सब सम्बन्ध टूट गया। पूरी आंख खुली है तो व्यक्ति को बाहर के जगत से जोड़ देती है और वह अपने को भूल जाता है। उसे

अपना कोई पता ही नहीं रहता । बंद आंख में सब मिट जाता है, वही खुद रह जाता है । खुली आख मे सब सत्य हो जाता है और खुद ही मिट जाता है । आधी बंद, आधी खुली आख का यह भी अर्थ है कि न तो हम टूटे हुए हैं सब से और न जुड़े हुए हैं सबसे । और न ही यह बात सच है कि सब सच है और हम झूठे हैं और न ही यह बात कि सब झूठे हैं और हम सच हैं । हम भी हैं और सब भी है । महावीर का सारा जोर सम पर है निरन्तर । 'सम्यक्' शब्द उनका सर्वाधिक प्रयोग मे आने वाला शब्द है । प्रत्येक चीज मे सम, प्रत्येक बात मे मध्य, प्रत्येक बात मे वहा खडे हो जाना जहा अतियां न हो । आंख के मामले मे भी उनकी अनति है । न तो पूरी खुली आख और न पूरी बद । ससार भी सत्य है आधा । जितना हमे दिखाई पडता है उतना सत्य नही है। हम भी सत्य हैं लेकिन आधे । जितना बद आख मे मालूम पड़ते हैं उतने ही । शकर कहते हैं : सब जगत असत्य है, सत्य है ही नही । आख बद हो तो जगत एकदम असत्य हो जाता है । क्या सत्य है ? तो जो व्यक्ति आख बद करके ध्यानावस्थित होने की चेष्टा करेगा वह माया के किसी न किसी सिद्धान्त के करीब पहुच जाएगा । क्योंकि जब बद आख मे उसे आत्मा का अनुभव होगा तो जगत एकदम असत्य मालूम पडेगा । तो जिन लोगो ने कहा है कि जगत माया है, वह बद आख का अनुभव है । अगर बंद आख से ध्यान किया गया तो जगत असत्य ही हो जाएगा क्योंकि कुछ बचता ही नही वहां । सिर्फ स्वय बच जाता है । बद आख मे बाहर के जगत का कोई अनुभव नही रह जाता, स्वय की अनुभूति रह जाती है । वह इतनी प्रखर होती है कि कोई भी कह देगा कि बाहर जो था सब असत्य था । अगर कोई बाहर के जगत में पूरी आंख खुली करके जी रहा है जैसा चार्वाक तो वह कहता है : "भीतर कुछ भी नही है, आत्मा की सब झूठी बाते है, खाओ, पियो, मौज करो, यह बाहर पूरी खुली आंख का अनुभव है कि बाहर ही सब कुछ है । खाओ, पियो, मौज करो, भीतर कुछ भी नही है, भीतर गए कि मरे, भीतर है ही नही कुछ, आत्मा जैसी कोई चीज नही है, अगर कोई पूरी खुली आख के अनुभव से जिये तो इन्द्रियो के रस ही शेष रह जाते हैं, आत्मा विलीन हो जाती है, तब जगत सत्य होता है, आत्मा असत्य हो जाती है ।" और महावीर कहते हैं : "जगत भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है ।" जगत असत्य नही है और आत्मा भी असत्य नही है । यह एक दृष्टि है । आंख बंद करके अगर कोई अनुभव करेगा तो स्वयं सत्य मालूम पड़ेगा, जगत असत्य मालूम पड़ेगा । और अगर

कोई आदमी ध्यान में नहीं बैठेगा और बाहर के जगत में ही जिएगा तो वह कहेगा : आत्मा असत्य है, जगत ही सत्य है।

ये दो दृष्टियां हैं। यह दर्शन नहीं है। महावीर कहते हैं : जगत भी सत्य है, आत्मा भी सत्य है; पदार्थ भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। दोनों एक बड़े सत्य के हिस्से हैं। दोनों सत्य हैं। और प्रतीक है वह नासाग्र दृष्टि। यानी महावीर कभी पूरी आंख बंद करके ध्यान नहीं करेंगे, पूरी खुली आंख रखकर भी ध्यान नहीं करेंगे। आधी आंख खुली और आधी बंद ताकि बाहर और भीतर एक सम्बन्ध बना रहे। जागे भी, न जागे भी। बाहर और भीतर एक प्रवाह होता रहे चेतना का। ऐसी स्थिति में जो ध्यान को उपलब्ध होगा उस ध्यान में उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मैं ही सत्य हूं। ऐसा भी नहीं लगेगा कि बाहर असत्य है या बाहर ही सत्य है। ऐसा लगेगा कि सत्य दोनों में है। वह दोनों को जोड़ रहा है। वह आधी खुली आंख प्रतीकात्मक रूप से भी अर्थ रखती है और ध्यान के लिए सर्वोत्तम है लेकिन थोड़ी कठिन है। क्योंकि दो अनुभव हमें बहुत सरल हैं—खुली आंख, बंद आंख। लेकिन आधी खुली आंख थोड़ी कठिन है लेकिन सर्वोत्तम है।

प्रश्न : आप चार्वाक को भी उसी श्रेणी में लेते हैं जिस श्रेणी में शंकर हैं ?

उत्तर : नहीं, उससे बिल्कुल उल्टी श्रेणी है वह।

प्रश्न : स्तर दोनों का एक ही है ?

उत्तर : नहीं, स्तर भी एक नहीं है। दोनों अधूरे सत्यों को कह रहे हैं इस मामले भर में एक हैं।

प्रश्न : शंकर ने बंद आंख में ध्यान किया तो उसको दुनिया कैसी मालूम पड़ेगी ?

उत्तर : असत्य मालूम पड़ेगी।

प्रश्न : चार्वाक ने खुली आंख में ध्यान किया तो उसको दुनिया कैसी मालूम पड़ेगी ?

उत्तर : ध्यान किया नहीं, बस खुली आंख रखी। खुली आंख में ध्यान करने का उपाय नहीं है। खुली आंख में तो बाहर का जगत ही सब कुछ है। और उसी में लिया, पिया, मौज किया और कभी भीतर गया नहीं क्योंकि भीतर जाना पड़ता तो आंख बंद करनी पड़ती। अभी पश्चिम में एक था जोड़ नाम का विचारक। उससे कई बार लोगों ने कहा कि कभी ध्यान भी करो। गुर्जियफ

से वह मिलने गया। तो गुर्जियफ ने कहा कि कभी आंख भी बंद करो। उसने कहा : फुरसत कहां, लेकिन सुबह उठता हूं तो भाग दौड़ शुरू हो जाती है। सांझ जब सोता हूं तब तक भागता रहता हूं। ध्यान की फुरसत कहां? अलग वक्त कहां ? या मैं जागता हूं या सोता हूं। फुरसत कहां है ? और तीसरी बात यह कि उपाय कहा है ? तो या जागो या सोओ। सोओ तो तुम ही रह जाते हो, जागो तो सब रह जाते हैं, तुम नहीं रह जाते। जोड़ ने जो कहा, वह ठीक कहा। ऐसे अगर चार्वाक से कोई कहता तो वह कहता : कैसा ध्यान ! जब थक जाते हैं सो जाते हैं। जब थकान मिट जाती है फिर जग जाते हैं। जीते हैं इन्द्रियों मे इसलिए जीते हैं। अगर जाग सकते हो तो जिओ। जितनी देर जाग सकते हो जिओ। जितना जाग कर जी सको जिओ, जितना भोग सको भोगो। प्रत्येक चीज का रस लो। और भीतर क्या है ? भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर एक झूठ है। क्योंकि भीतर जो कभी गया नहीं है, भीतर झूठ ही हो जाएगा। तो चार्वाक बाहर ही जी रहा है। वही उसके लिए सत्य है। शंकर जैसे व्यक्ति भीतर ही जी रहे हैं। तो जो भीतर है वही सत्य है और बाहर का सब असत्य हो गया है। एक अर्थ मे ये दोनो समान हैं, इस अर्थ मे कि ये आधे सत्य को पूरा सत्य कह रहे हैं। फिर भी चुनाव करना हो तो शंकर चुनने योग्य है, चार्वाक चुनने योग्य नहीं है क्योंकि चार्वाक कह रहा है कि बस इतना ही जीवन है। खाओ, पियो। बस इतना ही जीवन है। महावीर कह रहे हैं कि दोनो बातें सत्य हैं।

प्रश्न : यह तो आप दोनों बातों को उल्टा कह रहे हैं ?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : आप कह रहे हैं कि चुनने योग्य हो तो चार्वाक को नहीं, शंकर को चुना जाए।

उत्तर : हां, हां ! बिल्कुल ही।

प्रश्न : तो क्या शंकर त्याग की ओर गया ?

उत्तर : नहीं। मैं कहता हूं कि वह ज्यादा गहरे योग की ओर गया क्योंकि भीतर मे जितना योग है, उतना बाहर नही है।

प्रश्न : क्या चार्वाक भोग की ओर गया ?

उत्तर : नही, यह मैं नही कह रहा हूं। ऐसी भूल हो जाती है मेरी निरन्तर बातों से। साधारणतः हम चार्वाक को भोगी कहेंगे। साधारणतः मैं चार्वाक को त्यागी कहूंगा। मैं कहूंगा कि वह, जो अन्तर्योग है, बडा योग है, उसको छोड़ रहा

है। चार्वाक कह रहा है कि घी भी ऋण लेकर पीना पड़े तो पियो। ऋण की चिन्ता मत करो। बस घी मिलना चाहिए। तो वह घी पर ही जी रहा है। लेकिन बहुत बाहर जी रहा है। खाने-पीने तक उसका योग है। लेकिन एक अन्तर्योग भी है। उस ओर कोई दृष्टि नहीं है। उस ओर कोई ध्यान नहीं है। शकर भी बड़े योगी हैं। क्योंकि शकर ज्यादा गहरे योग मे जा रहे हैं। और महावीर चूकि प्रत्येक चीज मे एक सन्तुलन और समता का ध्यान रखते हैं, कह रहे हैं चार्वाक को कि तुम बिल्कुल ठीक कहते हो कि बाहर सत्य है। लेकिन अगर तुम भीतर जाओगे तो तुम पाओगे कि वहा भी सत्य है। शकर को भी यही कहेगे कि तुम बिल्कुल ही ठीक कहते हो, एकदम ठीक ही बात है कि भीतर सत्य है। लेकिन तुम्हारे आख बद करने से बाहर असत्य नही हो जाता। सिर्फ इतना ही है कि तुम्हे पता चलना बद हो जाएगा। पूरा जीवन बाहर और भीतर से मिलकर बना है। एक को तोड देना दूसरे के हित मे अधूरा है। इस दृष्टि मे वे अनेकागी हैं। उस प्रत्येक पहलू पर क्या क्या विरोध है वह दोनो मे से सत्य को निचोड लेना चाहते है।

चर्चा : दस

३०.६.६६ रात्रि

प्रश्न जब चेतना आत्मा का स्वभाव है तो मूर्छा का क्या अर्थ है ?

उत्तर . मूर्छा का अर्थ है, जागृति का और कही उपस्थित होना । यह ख्याल मे आ जाए तो कठिनाई नही रह जाती । हमे ऐसा लगता है कि अगर स्वभाव जागृत है तो फिर मूर्छा कहा है? समझ लो कि एक टार्च हमारे पास है जिसका स्वभाव प्रकाश है और समझ लो कि टार्च जल रही है। फिर हम कहते हैं कि टार्च जल रही है और टार्च का स्वभाव प्रकाश है । फिर अधेरा कहा है ? लेकिन टार्च का एक फोकस है और जिस बिन्दु पर पडता है वहा तो प्रकाश है । शेष सब जगह अधेरा हो जाता है । और यह भी हो सकता है कि टार्च खुद अधेरे मे हो । इसमे कुछ विरोध नहीं है । टार्च का फोकस बाहर की तरफ पड रहा है । यद्यपि टार्च का स्वभाव प्रकाश है लेकिन टार्च खुद अधेरे मे खडी है । हमारा स्वभाव जागरण है लेकिन हमारी जागृति बाहर की तरफ फैली हुई है । हम तब भी जागृत है । एक आदमी सडक पर चल रहा है, चारो तरफ देखता है । दूकाने दिखाई पड रही है । लोग दिखाई पड रहे है । नही तो चलेगा कैसे अगर सोया हुआ हो ? सब दिखाई पड रहा है, केवल एक आदमी को छोडकर जो वह स्वय है । सब तरफ जागृति फैली हुई है, सब दिखाई पड रहा है—सडक, दूकान, मकान, तागा, कार, रिक्शा सब । सिर्फ एक बिन्दु भर दिखाई नही पड रहा है वह जो स्वय है । इसका मतलब यह हुआ कि जागृति दो तरह से हो सकती है बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी । अगर बहिर्मुखी जागृति होगी तो अन्तर्मुखता अन्धकारपूर्ण हो जाएगी । वहा मूर्छा हो जाएगी । मूर्छा का कुल मतलब इतना है कि प्रकाश की धारा उस तरफ नही बह रही है । अगर जागृति अन्तर्मुखी होगी तो बाहर की तरफ मूर्छा हो जाएगी । साधारणत: जागृति के दो ही रूप हो सकते हैं : अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता । अगर कोई बहिर्मुखी है तो अन्तर्मुखता मे बाधा पडेगी । अगर कोई अन्तर्मुखी है तो बहिर्मुखता मे बाधा पडेगी । लेकिन अन्तर्मुखता का अगर और विकास हो तो एक तीसरी स्थिति भी जागृति की उपलब्ध होती है जहां अन्तर् और बाह्य मिट जाता है, जहां सिर्फ प्रकाश रह जाता है । वह है पूर्ण जागृत स्थिति

जहां बाहर और भीतर का भेद मिट जाता है । लेकिन बहिर्मुखता से कभी कोई इस तीसरी स्थिति मे नही पहुच सकता है । पहली स्थिति है बहिर्मुखता, दूसरी स्थिति है अन्तर्मुखता । तीसरी स्थिति है दोनो के पार हो जाना । और इस पार हो जाने का जो बिन्दु है, वह अन्तर्मुखता है । इस पार हो जाने का बिन्दु बहिर्मुखता नही है । क्योकि जब हम बाहर हैं तब हम अपने पर भी नही है । अपने से और ऊपर जाने की कोई सम्भावना नही है । बाहर से लौट आना है अपने पर और फिर अपने से भी ऊपर चले जाना है । उस स्थिति मे बाहर-भीतर सब प्रकाशित हो जाते हैं । मूर्च्छा का अर्थ, अभी जिसे हम समझ ले, इतना ही है कि हम बाहर हैं । 'बाहर है' का मतलब है कि हमारा ध्यान बाहर है । और जहा हमारा ध्यान है वहा जागृति है और जहा हमारा ध्यान नही है वहा मूर्च्छा है । समझो कि तुम भागे चले जा रहे हो । मकान मे आग लग गई है । पैर मे काटा गड गया है लेकिन पता नही चलता कि पैर मे काटा गडा है । मकान मे आग लगी है तो पैर मे गड़े काटे का पता कैसे चले ? सारा ध्यान आग लगे हुए मकान पर अटक गया है। पैर तक जाने के लिए ध्यान की छोटी सी किरण भी नही है जो शरीर से पैर तक पहुच जाए यात्रा करके और पता लगा ले कि काटा गड गया है । फिर मकान की आग बुझ गई है, फिर सब ठीक हो गया है । और अचानक पैर का काटा दुखने लगा है । इतने देर तक पैर के काटे का कोई पता नही था क्योंकि ध्यान वहा नही था । ध्यान कही और था । जहा हमारा ध्यान है, वहा हम जागृत थे । जहा हमारा ध्यान नही था, वहां हम मूर्छित थे ।

काशी नरेश ने कोई पचास वर्ष पहले एक आपरेशन कराया । वह अपनी तरह का आपरेशन था क्योकि वह किसी तरह की मूर्च्छा की दवा लेने को तैयार न थे । और डाक्टर बिना मूर्च्छा की दवा दिए उतना बडा पेट का आपरेशन करने को तैयार न थे । लेकिन नरेश का कहना था कि मुझे गीता पढने दी जाए । जब मैं गीता पढूंगा तो फिर कोई खतरा नहीं होगा क्योकि तब फिर मेरा सारा चित्त वहा होगा । तो मूर्छित करने की अलग मे जरूरत क्या है । मैं वहा मूर्छित रहूगा ही पेट के प्रति । लेकिन डाक्टर मानने को राजी न थे । इसमे खतरा था । एक सैकेंड को भी अगर ध्यान पेट पर आ गया तो मृत्यु हो जाएगी । बडा आपरेशन था । तो पहले उन्होंने प्रयोग के लिए जाच-पडताल की और पाया कि जब वह गीता पढ़ते हैं तब वह कहीं भी नहीं रह जाते । बस वह गीता पर ही हो जाते हैं । तो यह पहला आपरेशन था अपनी

तरह का जो एक व्यक्ति के ध्यान को एक तरफ बहाने से किया गया। ग्राप-रेशन हुआ और सफल हुआ। वह अपनी गीता पढ़ते रहे और पेट का ग्राप-रेशन किया गया। किसी भी तरह की बेहोशी की कोई दवा नहीं दी गई। और जिन डाक्टरों ने किया वे चकित रह गए। अब हुआ इतना कि अगर किसी का चित्त गीता की तरफ प्रवाहित हो सके तो कोई कठिनाई नहीं है कि उसका एक अंग काट दिया जाए और उसे पता न चले। क्योंकि पता चलता है ध्यान की धारा को। ध्यान की धारा वहा तक जाए तो पता चलता है। नहीं तो पता नहीं चलता है। एक आदमी दो तीन वर्षों से पैरेलिसस से बीमार था। वह हिल भी नहीं सकता था। चिकित्सक परेशान थे। क्योंकि वस्तुत. उस आदमी को लकवा नहीं था, कोई शारीरिक कारण न थे। किसी न किसी तरह उसको मानसिक लकवा था। उसे ख्याल था कि लकवा लग गया है और ख्याल इतना मजबूत हो गया था कि वह हाथ पैर हिला-डुला भी नहीं सकता था और उठ भी नहीं सकता था। फिर तीन साल से निरन्तर पड़ा था बिस्तर पर और ध्यान निरन्तर लकवा पर ही रहा तीन वर्षों तक। वह लकवा मज-बूत हो हो चला था। तीन वर्ष बाद एक दिन आधी रात उसके मकान मे आग लग गई। और एक सैकेंड को उसका ध्यान लकवे से हटकर आग पर चला गया जो बिल्कुल स्वाभाविक था। वह आदमी निकल कर मकान के बाहर आ गया। जब बाहर आ गया और लोगो ने उसे देखा तो लोगो ने कहा 'अरे तुम !' तो उसने देखा। वह वापिस लकवा खा कर गिर पड़ा। हुआ क्या? यह आदमी बाहर आया कैसे ? अगर यह लकवा सच मे था तो यह आदमी मकान के बाहर नहीं आ सकता था। उसका पूरा ध्यान लकवे मे हट गया। इतने जोर से हट गया कि मकान मे आग लगी और उसे स्मरण भी न रहा कि मेरा शरीर भी है, शरीर को लकवा भी है। वह बाहर आ गया। लेकिन जैसे ही स्मरण दिलाया गया कि वह वापस गिर पड़ा। और वह खुद ही नहीं मान सकता कि यह कैसे हुआ ? यह गिर जाना क्या ? फिर पूरा का पूरा ध्यान लकवे पर आ गया। हमारा ध्यान जहा है, वहा हम जागृत हो जाते है। जहा से हमारा ध्यान हट जाता है, वहा हम मूर्छित हो जाते हैं। अगर हम ठीक से समझें तो मूर्छा हमारी जागृति की छाया है। जहां मूर्छा होती है वहां जागृति नहीं होती; जहा जागृति होती है वहा मूर्छा नहीं होती। लेकिन जिस ओर जागृति का रुख होगा उससे ठीक उल्टी तरफ मूर्छा का रुख होगा। तो एक तरफ से देखने मे प्रश्न ठीक मालूम

पड़ता है कि स्वभाव हमारा जागरण है, चेतना है। तो यह अचेतना कैसी, यह मूर्छा कैसी ? लेकिन इसी स्वभाव के कारण है वह भी। वह भी इसी की छाया है पीछे पड़ने वाली हम रास्ते पर चलते हैं। सूरज निकला हुआ है। हम पूरे प्रकाशित हैं। हमारे पीछे एक छाया बनती है सूरज के कारण। छाया बनने का कारण कोई दूसरा नहीं है और हमारे प्रकाशित होने का कारण भी कोई दूसरा नहीं है। लेकिन हम पूछ सकते हैं कि जो हम तक को प्रकाशित कर देता है, वह इतनी सी छाया को प्रकाशित नहीं करता। असल मे जितने हिस्से मे हम प्रकाश को रोक लेते हैं, उतने हिस्से मे पीछे छाया बन जाती है। वह छाया हमारे द्वारा रोका गया प्रकाश है। अगर हम काच के व्यक्ति हो तो फिर छाया नहीं बनेगी। क्योंकि फिर हमारे आर-पार किरणें निकल जाएगी। जितना पारदर्शी होगा उतनी छाया नहीं बनेगी। और अगर थोड़ा भी अपारदर्शी है तो उतनी छाया बन जाएगी। इसे इस तरह भी समझना चाहिए। हमारा स्वभाव तो प्रकाश है लेकिन अभी हमारा प्रकाश किन्हीं-किन्हीं केन्द्रो पर प्रवाहित होता है। वह दिए की भांति कम, बैटरी की भांति ज्यादा है। बैटरी भी दिया बन सकती है। सिर्फ उसके फोकस को अलग कर देने की बात है। ऊपर के फोकस को अलग करके अगर हम बैटरी को रख देंगे तो बैटरी दिया बन जाएगी। असल मे बैटरी दिया ही है, सिर्फ उस पर एक फोकस भी लगा हुआ है। अगर हम दिए पर भी एक फोकस लगा ले तो प्रकाश बच जाएगा और उस धारा म बहेगा। हमारा चित्त भी फोकस का काम कर रहा है पूरे वक्त। भीतर प्रकाश है, चित्त फोकस का काम कर रहा है। जितना बड़ा हमारा चित्त होता है, जैसा चित्त होता है, वैसा फोकस बनता है। जिस चीज पर हमारा चित्त अटक जाता है, सारे प्रकाश की धारा वहीं बहने लगती है। चित्त बाहर भी ले जा सकता है, चित्त भीतर भी ले जा सकता है। लेकिन अगर चित्त बिल्कुल मिट जाए तो फोकस टूट जाएगा। फिर भीतर-बाहर कुछ न रह जाएगा, सिर्फ प्रकाश रह जाएगा। तो चित्त को तोड़ने की साधना ही अन्तत लक्ष्य है क्योंकि चित्त बीच का माध्यम है। पूरे वक्त हमारी आंख की पुतली छोटी-बड़ी होती रहती है। जितने प्रकाश की जरूरत है, वह उस मात्रा मे छोटी या बड़ी हो जाती है। धूप मे तुम जाओ तो पुतली सिकुड कर छोटी हो गई क्योंकि उतनी रोशनी को भीतर ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। अंधेरे मे तुम आए तो पुतली बड़ी हो गई क्योंकि अब ज्यादा प्रकाश भीतर आए तो ही

दिखाई पड सकता है। तो पूरे वक्त, आख की जो पुतली है, उसका जो लेंस है वह छोटा हो रहा है, बड़ा हो रहा है—जैसी जरूरत है, वैसा हो रहा है। हमारा चित्त भी वैसा है। वह भी छोटा-बडा हो रहा है पूरे वक्त। और जैसी जरूरत है, वैसा उसका फोकस बन जाता है। अगर मकान में आग लगी है, तो फोकस एकदम छोटा हो जाता है। सब तरफ से प्रकाश को खीच कर मकान पर ही रोक देता है। अगर ध्यान जाए कि सिनेमा देखने जाना है, परीक्षा देनी है, किताब पढ़नी है तो फिर मकान की आग को कौन बचाएगा? तो चित्त सब चीजो को अलग कर देता है और फोकस बिल्कुल छोटा हो जाता है जो सिर्फ मकान को देखता है। बस मकान मे आग लगी है। तुम एक खतरे से गुजर रहे हो। नीचे खाई है, खड्ड है। एक पैर फिसल जाए, नीचे गिर जाओगे। चित्त का फोकस एकदम छोटा हो जाएगा। अब तुम्हे कुछ नही दिखाई पड़ेगा। अब रहा दो फुट का छोटा सा रास्ता, और तुम। सारा का सारा फोकस वही हो जाएगा। सब ओर से चित्त हट जाएगा। ऊपर चाद तारे भी होगे। चित्त के लिए इतनी जरूरत है अभी कि वह सजग रहे, छोटा फोकस हो, थोड़ी जगह पर ज्यादा प्रकाश पड़े। खतरे के बाहर हो। एक आदमी आराम कुर्सी पर बैठा हुआ है। अभी वह घोड़े पर सवार था और पहाड की एक पतली पग-डंडी से निकल रहा था जहा से गिरे तो प्राण निकल जाए। बस एक-एक कदम दिखाई पड रहा था। वह आदमी घर लौट आया। अब वह आराम कुर्सी पर बैठा हुआ है। चित्त का फोकस खूब बडा हो गया। अब वह जमाने भर की बातों को एक साथ सोच रहा है, घर की, दूकान की, मित्रो को। अब चित्त का पूरा फोकस बडा हो गया है। बडा परदा हो गया है जैसे फिल्म का जिसमे हजारो चीजे चल रही हैं एक साथ और कोई चिन्ता नही है। चित्त को जहां भागना है भागता है, दौडना है दौडता है। चित्त फोकस ले रहा है और इस चित्त को बाहर देखने की निरन्तर जरूरत है।

बहिर्मुखता जीवन की व्यर्थता मे उलझा देती है एकदम और भीतर से तोड़ देती है। दूसरी बात, अन्तर्मुखता जीवन से तोड देती है भीतर डुबो देती है कि सब तरफ से दरवाजे बद हो गए। पहली बात भी अधूरी है। दूसरी बात भी अधूरी है। असल मे एक तीसरी स्थिति है जबकि हम फोकस को तोड देते हैं। न हम भीतर देखते हैं न बाहर देखते हैं। सिर्फ देखना रह जाता है, न बाहर की तरफ बढ़ता हुआ, न भीतर की तरफ बढ़ता हुआ। सिर्फ प्रकाश रह जाता है जिसका कोई फोकस नही है। जैसे कि एक दिया जल रहा है।

सब ओर एक-सा प्रकाश फैलता है। पर दिए से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते। क्योंकि दिए का भी बहुत गहरे मे छोटा-सा फोकस है। इसलिए दिया छूट जाता है, अपने प्रकाश के बाहर छूट जाता है। यह तीसरी स्थिति है जहा न व्यक्ति अन्तर्मुखी है, न बहिर्मुखी है। जहा व्यक्ति सिर्फ है, न बाहर की ओर देख रहा है, न भीतर की ओर देख रहा है, बस है। यह बस होना मात्र का नाम है जागृति—पूर्ण जागृति। तो महावीर कहते हैं : ऐसा जो पूरी तरह जाग गया वह साधु है। जो सोया है वह असाधु है। असाधु दो तरह के हो सकते हैं एक जो बाहर की ओर सोया हुआ है, एक जो भीतर की ओर सोया हुआ है। साधु एक ही तरह का हो सकता है जो सोया हुआ ही नहीं है जिसकी मूर्छा कही भी नही है। और इसलिए एक छोटा सा फर्क ख्याल मे लेना चाहिए कि एकाग्रता और ध्यान मे बुनयादी फर्क है। एकाग्रता का मतलब है कि ध्यान किसी एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाए। लेकिन शेष सब जगह सो जाए। जैसा कि महाभारत मे कथा है कि द्रोण ने पूछा अपने शिष्यों से कि वृक्ष पर तुम्हे क्या दिखाई पडता है। तो किसी ने कहा पूरा वृक्ष। किसी ने कहा कि वृक्ष के पीछे सूरज भी दिखाई पडता है। किसी ने कहा दूर गाव भी दिखाई पड रहा है, पूरा आकाश दिखाई पडता है, बादल दिखाई पडते है, सब दिखाई पडता है। अर्जुन कहता है कि कुछ भी नही दिखाई पडता। सिर्फ वह जो पक्षी लटकाया हुआ है नकली, उसकी आख दिखलाई पडती है। तो द्रोण कहते है कि तू ही एकाग्र चित्त है। एकाग्र चित्त का मतलब यह हुआ कि जिस बिन्दु को हम देख रहे है, बस सारा ध्यान वही हो गया है, सिकुड कर एक जगह आ गया है, शेष के प्रति बद हो गया है, शेष के प्रति सो गया है। तो एकाग्रता एक बिन्दु के प्रति जागरण और शेष सब बिन्दुओ के प्रति सो जाना है। लेकिन चचलता और एकाग्रता मे थोडा फर्क है। एकाग्रता का बिन्दु बदलता नही, चचलता का बिन्दु बदलता चला जाता है। फर्क नही है दोनों मे। एकाग्रता मे एक बिन्दु रह गया है। शेष सब सो गया है। सब तरह मूर्छा है। बस एक बिन्दु की तरफ जागृति रह गई है। चंचलता मे भी यह है लेकिन फर्क इतना है कि चंचलता में एक बिन्दु तेजी से बदलता रहता है, अभी यह है, अभी वह है, और शेष के प्रति सोया रहता है। ध्यान का मतलब है ऐसा कोई बिन्दु ही नही है जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। तो ध्यान एकाग्रता नही है, ध्यान चचलता भी नही है। ध्यान बस जागरण है। इसे और गहराई मे समझें। अगर हम किसी के प्रति जागते हैं तो हम समय के प्रति नही जाग

सकते । अगर तुम मेरी बात सुन रहे हो तो शेष सारी आवाजें जो इस जगत मे चारो ओर हो रही हैं, तुम्हे सुनाई नही पड़ेंगी ।

मेरी तरफ एकाग्रता हो जाएगी तो बाहर कोई पक्षी चिल्लाया, कोई कुत्ता भौंका, कोई आदमी निकला, उसका तुम्हें पता नही चलेगा । यह एकाग्रता हुई । जागरूकता का अर्थ यह है कि एकसाथ जो भी हो रहा है, वह सब पता चल रहा है । हम किसी एक चीज के प्रति जागे हुए नही हैं । समस्त जो हो रहा है उसके प्रति जागे हुए हैं । मेरी बात भी सुनाई पड़ रही है, कौआ आवाज लगा रहा है वह भी सुनाई पड़ रहा है, कुत्ता भौंका वह भी सुनाई पड़ रहा है । और यह सब अलग-अलग नही क्योंकि काल मे ये सभी एक साथ घट रहे हैं । यानी अभी जब हम बैठ हैं तो हजार घटनाए घट रही हैं । इन सब के प्रति एक साथ जागा हुआ होने को महावीर अमूर्छा कहेगे, जागरण कहेंगे । और ऐसा जागरण इतना बड़ा हो जाए कि न केवल बाहर की आवाज सुनाई पड़े, बल्कि अपने श्वास की धड़कन भी सुनाई पड़े, अपनी आंख के पलक का हिलना भी पता चल रहा हो, भीतर चलते विचार भी पता चल रहे हो जो भी हो रहा है इस क्षण मे मेरी चेतना के दर्पण पर प्रतिफलित हो रहा है वह सब मुझे पता चल रहा हो, अगर वह समग्र मुझे पता चल रहा है—भीतर से लेकर बाहर तक तो फोकस टूट गया, तब जागरण रह गया । यह पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि हुई । यह पूर्ण स्वभाव सदा से हमारे पास है । हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं कि वह कभी पूर्ण नही हो पाता । बल्कि अपूर्ण बिन्दुओ पर हम पूरी ताकत लगा कर सीमित कर लेते हैं । जागरण हमारे पास है लेकिन हमने कभी जागरण समग्र के प्रति प्रयोग नहीं किया है । न प्रयोग करने के कारण शेष के प्रति मूर्छा है, कुछ के प्रति जागरूकता है और इसलिए यह सवाल पैदा हो जाता है कि मूर्छा कहा से आई? मूर्छा कहीं से भी नही आई । मूर्छा हमारे द्वारा निर्मित है । और निरन्तर अनुभव दिखाई पड़ जाएगा तो मूर्छा विसर्जित हो जाएगी । तब हम पारदर्शी हो जाएगे । तब सिर्फ जागरण होगा और उसकी कोई छाया नही बनेगी । कहीं भी कोई छाया नही बनेगी ।

प्रश्न : तीर्थंकरों के जीवन में हम पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा के आधार नहीं देखते । किन्तु महावीर के समय पारसनाथ की परम्परा के आधार थे । वह परम्परा बाद में भी चलती रही । इसका क्या कारण था ? नये तीर्थंकर का जन्म तो पुरातन परम्परा के लुप्तप्राय होने पर होता है । जब पारस-

साथ की परम्परा प्रचलित थी तब नवीन तीर्थंकर की स्थापना क्यों की गई और पुराने की कैसे चलती रही ?

उत्तर : पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि परम्परा बनती है तब जब जीवित खो जाता है। परम्परा जीवित की अनुपस्थिति पर रह गई सूखी रेखा है। परम्परा तो चल सकती है करोड़ों वर्षों तक। परम्परा बनती ही तब है जब हमारे हाथ में अतीत का मृत बोझ रह जाता है। मैंने सुना है कि एक घर में बूढ़ा बाप था। उसके छोटे बच्चे थे। बाप भी मर गया, मां भी मर गई। बच्चे बहुत ही छोटे थे। देर उम्र में बच्चे हुए थे। फिर वे बड़े हुए। उन बच्चों ने निरन्तर देखा था अपने पिता को कि रोज भोजन के बाद आले पर जाकर वह कुछ उठाता-रखता था। पिता के मर जाने पर उन्होंने सोचा कि यह काम रोज का था। यह कोई साधारण काम न होगा। जरूर कोई अनुष्ठान होगा। तो उन्होंने जाकर देखा तो वहां बाप ने दांत साफ करने के लिए एक छोटी सी लकड़ी रख छोड़ी थी। वह पिता रोज भोजन के बाद उठता, आले पर जाकर दांत साफ करता। उन बच्चों ने सोचा : इस लकड़ी का जरूरी कोई अर्थ है। यह तो उन्हें पता नहीं था कि अर्थ क्या हो सकता है। यह भी पता नहीं था कि पिता बूढ़ा था। उसे दांत साफ करने के लिए लकड़ी की जरूरत थी। तो बच्चे नियमित रूप से आले के पास जाते, लकड़ी को उठाकर देखते और रख देते। पिता का नियम रोज पालन करते रहे। फिर वे बड़े हुए। फिर उन्होंने बहुत कमाई की, फिर उन्होंने नया मकान बनाया तो उन्होंने सोचा कि इतनी छोटी सी लकड़ी भी क्या रखनी ? अब उन्हें कुछ भी पता न था कि वह लकड़ी किसलिए थी तो उन्होंने एक सुन्दर कारीगर से एक बड़ा लकड़ी का डंडा बनवाया, उस पर खुदाई करवाई। और उसी आले में उन्होंने उसे स्थापित कर दिया। बड़ा आला बनवाया, अब रोज उठाने की बात न रही। उनके भी बच्चे पैदा हो गए। उन बच्चों ने भी अपने पिता को बड़े आदर-भाव से उस आले के पास जाते देखा था। फिर उनके पिता भी चल बसे। फिर बच्चे वहां जाकर रोज नमस्कार कर लेते क्योंकि उनके पिता उस आले के पास भोजन के बाद जरूर ही जाते थे। यह नियमित कृत्य हो गया था। परम्परा बन गई थी। अब इसमें कुछ भी अर्थ न रह गया था। एक जड़ लीक पड़ जाती है जो पीछे चलती है। महावीर के समय में विचार की लीक छूट गई थी। आचार्य थे, साधु थे लेकिन मृत थी धारा। मृतधारा कितने समय तक चल सकती है ? और मृतधारा

जिद्दी हो जाती है। महावीर ने नयी विचार दृष्टि को जन्म दिया, नयी हवा फैली। नया सूरज निकला। लेकिन पुरानी लीक पर चलने वाले लोगों ने नये को स्वीकार नहीं किया। वह अपनी लीक को बांधे हुए चलते गए। ऐसा भी हुआ कि महावीर ने जो कहा था वह भी चला और जो पिछली परम्परा थी, वह भी चलती रही। एक मृतधारा की तरह उसकी थोड़ी सी रूपरेखा भी चलती रही। यह प्रश्न सार्थक दिखाई पड़ता है लेकिन सार्थक नहीं है। परम्परा मात्र होने से कोई जीवित नहीं होता। बल्कि उल्टी ही बात है। जब कोई चीज परम्परा बनती है तब मर गई होती है और आचार्यों का होना जरूरी नहीं है कि वे किसी जीवित परम्परा के वशधर हों। सच तो यह है कि उनका होना इसी बात की खबर है कि अब कोई जीवित अनुभवी व्यक्ति नहीं रह गया जो जानता हो। इसलिए जो जाना गया था उसको जानने वाले लोग गुरु का काम निबाहने लगते हैं। साधु भी हैं लेकिन न तो साधु से कुछ होता है, न शिक्षकों से कुछ होता है, न गुरुओं से कुछ होता है जब तक कि जीवित अनुभव को लिए हुए कोई व्यक्ति न हो। और वे व्यक्ति खो गए थे। वे व्यक्ति न रहे थे। इसलिए महावीर के मार्ग-दर्शन में इस बात से कोई अवरोध नहीं पड़ता है कि पिछले तीर्थंकर के लोग शेष थे। उनमें जो भी थोड़े समझदार जीवित साधक थे, वे महावीर के साथ आ गए। जो नहीं थे, जिद्दी थे, अन्धे थे, आग्रह रखते थे वे अपनी लीक को पकड़ कर चलते गए। फिर ऐसे व्यक्तियों का जन्म पिछले व्यक्तियों से नहीं जोड़ा जा सकता। जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जब भी जगत में जरूरत होती है, प्राण पुकार करते हैं, तब कोई न कोई उपलब्ध चेतना करुणावश वापस लौट जाती है। जरूरत पर निर्भर है, हमारी पुकार पर निर्भर है। जैसे इस युग में धीरे-धीरे पुकार कम होती चली गई है। एक वक्त था कि लोग ईश्वर को इन्कार करने का भी कष्ट करते थे। अब लोग ऐसे हैं जो इन्कार करने का कष्ट भी नहीं उठाना चाहते। ईश्वर को इन्कार करने में भी उत्सुकता थी। जो इन्कार करता था, वह रस लेता था। अब ऐसे लोग हैं जो कहेंगे 'बस छोड़ो, ठीक है। हो तो हो, न हो तो न हो। ईश्वर का अस्तित्व इन्कार करने की भी किसी को फुरसत नहीं है। स्वीकार करने की आशा तो बहुत दूर है। लेकिन इन्कार करने के लिए भी फुरसत नहीं है। नीत्से ने कहा है कि वह वक्त जल्दी आएगा जब ईश्वर को कोई इन्कार भी न करेगा। तुम उस दिन के लिए तैयार रहो। ठीक कहा उसने। पूरे युग की भावदृष्टि बताती है कि स्थिति क्या है। और जिसकी हमारे

गहरे प्राणों में आकांक्षा और प्यास होती है, वह आकाक्षा और प्यास ही उसका जन्म बनती है। एक गड्ढा है। पहाड पर पानी गिरता है। पहाड पर नही भरता पानी। गिरता पहाड पर है, भरता गड्ढे मे है। गड्ढा तैयार है, प्रतीक्षा कर रहा है। पानी भागा हुआ चला आता है, गड्ढे मे भर जाता है। शायद हम मे से कोई यह कहे कि पानी की बड़ी करुणा है कि वह गड्ढे मे भर गया, गड्ढे की बडी पुकार है। क्योंकि वह खाली है इसलिए पानी को आना पडा। बाकी गहरे मे दोनो बातें एक साथ सच हैं। जब भी जरूरत है, जब भी प्राण प्यासे हैं तब की कोई भी उपलब्ध चेतना, इस गड्ढे को भरने के लिए उतर आती है। महावीर के वक्त पुरानी परम्परा चलती थी, पुराने गुरु थे। पर वे मृत थे। कोई जीवन उनमे न था। इसलिए उनके आविर्भाव पर कोई असगति की बात नही कही जा सकती।

प्रश्न महावीर ने हमे नया क्या दिया ? प्रेम की चर्चा तो जब मे मनुष्य-जाति है तब से ही होती आई है ?

उत्तर . सत्य न तो नया है न पुराना। सत्य सदा है। जो सदा है वह न कभी पुराना होगा और न कभी नया हो सकता है। जो नया होता है, वह कल पुराना हो जाएगा। जो आज पुराना दीखता है, वह कल नया था। असल मे सत्य के सम्बन्ध मे नये और पुराने शब्द एकदम व्यर्थ है। नया वह होता है जो जन्मता है, पुराना वह होता है जो बूढा होता है। सत्य न जन्मता है, न बूढा होता है, न मरता है। लहर नयी हो सकती है, लहर पुरानी भी हो सकती है। लेकिन सागर न नया है, न पुराना है। बादल नये हो सकते हैं, पुराने भी हो सकते हैं। लेकिन आकाश न नया है न पुराना है। असल मे आकाश वह है जिसमें नया बनता पुराना होता, पुराना मिटता नया बनता है। लेकिन स्वय आकाश न तो नया है न पुराना है। सत्य भी नया और पुराना नहीं है। इसलिए जब भी कोई दावा करता है कि सत्य प्राचीन है या नया तब भी वह मूर्खतापूर्ण दावा करता है। नये-पुराने के दावे ही नासमझी से भरे हैं। दो ही तरह के दावे-दार दुनिया मे हुए हैं। एक वे हैं जो कहते हैं कि सत्य पुराना है, हमारी किताब मे लिखा हुआ है। हमारी किताब इतने हजार वर्ष पुरानी है। दूसरे दावेदार हैं जो कहते हैं कि सत्य बिल्कुल नया है क्योंकि किसी किताब में नही लिखा हुआ है। लेकिन सत्य के सम्बन्ध मे ऐसे कोई दावे नहीं किये जा सकते। फिर भी क्या कहा जा सकता है ? फिर यही कहा जा सकता है कि जो सत्य निरन्तर है उससे भी हमारा निरन्तर सम्बन्ध नहीं रहता। सम्बन्ध

कभी-कभी होता है। सत्य निरन्तर है। सत्य एक निरन्तरता है, शाश्वतता है, लेकिन जरूरी नही कि आकाश हमारे ऊपर निरन्तर है तो हम आकाश को देखते ही रहे। और अगर कोई ऐसा गाव हो जहा के सारे लोग जमीन की ओर देखते ही वक्त गुजारते हो और उस गाव मे किसी को पता ही न हो कि आकाश भी है और अगर एक आदमी आकाश की ओर आंख उठाए और चिल्ला कर लोगो को पुकारे कि देखते हो आकाश है, तुम क्यो जमीन की ओर आखें गडाये हुए मरे जा रहे हो तो शायद उनमे से कोई कहे कि इसने बडा नया सत्य बताया है या शायद उनमे से कोई कहे कि इसमे क्या नया है, हमारे बाप-दादो ने, आकाश की बाते किताबो मे लिखी हैं। लेकिन ये दोनों ही ठीक नही कह रहे। सवाल यह नहीं है कि आकाश के सम्बन्ध मे कुछ कहा गया है या नही कहा गया है। सवाल यह भी नही है कि आकाश के सम्बन्ध मे जो कहा गया है वह नया है या पुराना। सवाल यह है कि क्या उससे हमारा निरन्तर सम्बन्ध है। महावीर जो कहते हैं, बुद्ध जो कहते हैं, जीसस जो कहते हैं, कृष्ण जो कहते है वह शायद वही है जो निरन्तर मौजूद है। लेकिन उससे हमारा निरन्तर सम्बन्ध टूट जाता है। वह फिर चिल्ला-चिल्लाकर, पुकार-पुकार कर, उस ओर आखे उठवाते है। आखें उठ भी नही पाती कि हमारी आखें फिर वापिस लौट आती है। इस अर्थ मे अगर हम देखेंगे तो जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है तो कहना चाहिए नया ही उपलब्ध होता है। सत्य कोई नया पुराना नहीं है लेकिन व्यक्ति को जब भी उपलब्ध होता है तो वह नया है। इस अर्थ मे भी सत्य को नया कहा जा सकता है क्योंकि दूसरे का सत्य बासा हो जाता है और हमारे लिए कभी काम का नही होता। हमारे लिए तो तब काम का होगा जब वह फिर नया होगा। महावीर ने क्या नया दिया यह सवाल नही है क्योकि अगर नया दिया भी होगा तो अब एकदम पुराना हो गया। सवाल यह नही है कि महावीर ने क्या नया दिया? सवाल यह है कि सामान्य जन जैसा जीता है क्या महावीर उससे भिन्न जिए है। वह जीना बिल्कुल नया था। नया इस अर्थ मे नही कि वैसा पहले कभी कोई नही जिया होगा। कोई भी जिया हो, करोडो लोग जिए हो, तो भी फर्क नही पडता। जब मैं किसी को प्रेम करता हू तो वह प्रेम नया ही है। मुझसे पहले करोडो लोगो ने प्रेम किया है लेकिन कोई भी प्रेमी यह मानने को राजी नही होगा कि मैं जो प्रेम कर रहा हूं, वह बासा या पुराना है। वह नया है। उसके लिए बिल्कुल नया है। और दूसरे का प्रेम

किसी दूसरे के काम का नहीं है। वह अनुभूति अपने ही काम की है। तो महावीर बिल्कुल ही अपने सत्य को उपलब्ध होते हैं। जो उन्हें उपलब्ध हुआ है, वह बहुतो को उपलब्ध हुआ होगा, बहुतो को उपलब्ध होता रहेगा। लेकिन उस उपलब्धि पर किसी व्यक्ति की कोई सील-मोहर नहीं लग जाती। यानी मैं अगर कल सुबह उठकर सूरज को देखूं तो आप आकर मुझसे यह नहीं कह सकते हैं कि तुम बासी सूरज को देख रहे हो क्योंकि मैं भी इस सूरज को देख चुका हूं। इसे करोड़ो लोग देख चुके हों तब भी सूरज बासा नहीं हो जाता आपके देखने से। और जब मैं देखता हू तब नया ही देखता हूं। उतना ही ताजा, जितना ताजा आपने देखा होगा। सूरज पर कुछ बासे होने की छाप नही बन जाती। सत्य पर भी नही बन जाती।

ठीक है, प्रेम की चर्चा बहुत लोगो ने की है, बहुत लोग करते रहेंगे। लेकिन फिर भी जब कोई प्रेम को उपलब्ध होगा तब वह नया ही उपलब्ध होगा। महावीर जब प्रेम को उपलब्ध हुए हैं, जिसे अहिंसा कहते हैं, तो वे नये ही उपलब्ध हुए है। सत्य के सम्बन्ध मे तो नया पुराना नही होता लेकिन अनुभूति के सम्बन्ध मे नया पुराना होता है और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध मे तो बहुत नया पुराना होता है। महावीर ने जो अभिव्यक्ति दी है अहिंसा को वह एकदम अनूठी और नयी है। शायद वैसी किसी ने भी पहले नही दी थी। अभिव्यक्ति नयी हो सकती है क्योंकि अभिव्यक्ति पुरानी पड़ जाती है। अब महावीर की अभिव्यक्ति भी पुरानी पड़ गई है। आज अगर मैं कुछ कहूंगा कल पुराना पड़ जाएगा। कल तो बहुत दूर है। अभी मैंने कहा और वह अभी पुराना हो गया। अभिव्यक्ति नयी भी होती है, अभिव्यक्ति पुरानी भी पड़ जाती है। 'सत्य' न नया होता है और न पुराना पड़ता है। लेकिन फिर भी जब सत्य किसी व्यक्ति को उपलब्ध होता है तो एकदम नया ही उपलब्ध होता है—ताजा, युवा, अछूता, एकदम कुंवारा। इसलिए जिसको उपलब्ध होता है, वह अगर चिल्लाकर कहता है कि नया सत्य मिल गया तो उस पर नाराज भी नहीं होना है। क्योंकि उसे ऐसा ही लगा है। उसके जीवन में पहली बार ही यह सूरज निकला है। किसी और के जीवन में निकला हो, इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उसे बिल्कुल ही नया हुआ है। वह एकदम ताजा हो गया है उसके स्पर्श से कि वह चिल्लाकर कह सकता है कि यह बिल्कुल नया है।

शास्त्रो मे भी खोजी जा सकती है वह बात जो कही हुई है। और शास्त्र

का अधिकारी कह सकता है कि क्या नया है ? यह तो हमारी किताब में लिखा है। मगर सारी किताबों में भी लिखा हो तब भी जब व्यक्ति को सत्य मिलेगा तो उसकी प्रतीति ताजे की, नये की उपलब्धि की ही होगी। उसे हम यों भी कह सकते हैं कि सत्य सदा जीवन्त है, ताजा और नया है। यह हमारे कहने की दृष्टि पर निर्भर करता है कि हम क्या कहते हैं, मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य नया ही उपलब्ध होता है। सत्य सदा से है लेकिन जब वह व्यक्ति सत्य से सम्बन्धित होता है तब सत्य उसके लिए नया हो जाता है और प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति जिसे वह अभिव्यक्त करता है नयी होती है क्योकि वैसी अभिव्यक्ति कोई दूसरा नही दे सकता क्योकि वैसा कोई दूसरा व्यक्ति न हुआ है, न है, न हो सकता है। अब हम कितनी साधारण सी बात समझते हैं एक व्यक्ति का पैदा होना। मेरे पैदा होने में या आपके पैदा होने मे कितना बड़ा जगत सम्बन्धित है, इसका हमे कोई ख्याल नहीं है। मेरे पैदा होने में आज तक, इस समय के बिन्दु तक, विश्व की जो भी स्थिति थी, वह सबकी सब जिम्मेदार है और अगर मुझे फिर से पैदा करना हो तो ठीक इतनी ही विश्व की स्थिति पूरी की पूरी पुनरुक्त हो तो ही मैं पैदा हो सकता हू, नही तो पैदा नहीं हो सकता। मेरे पिता चाहिए, मेरी मां चाहिए। वे भी उन्ही पिताओ और माताओ से पैदा होने चाहिए जिनसे वे पैदा हुए। इस तरह हम पीछे लौटते चले जाएंगे तो हम पाएंगे कि पूरी विश्व की स्थिति एक छोटे से व्यक्ति के पैदा होने मे संयुक्त है, जुड़ी हुई है। और अगर इसमें एक इंच भी इधर-उधर हो जाए तो मैं पैदा नही हो सकूंगा। जो भी पैदा होगा, वह कोई दूसरा होगा। और अगर मुझे पैदा करना हो तो इतने जगत का पूरा का पूरा अतीत फिर से पुनरुक्त हो तभी मैं पैदा हो सकता हू। इसकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती। यह कैसे पुनरुक्त होगा ? तो एक व्यक्ति को दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। और इसलिए एक व्यक्ति के अनुभव को, उसकी अभिव्यक्ति को भी दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। इस अर्थ में अगर हम देखने चलें तो सत्य का अनुभव व्यक्तिगत है। वह एकदम एक ही अनुभव प्रत्येक को भिन्न-भिन्न होता है।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि एक बूढ़ा आदमी था जो मेरे पड़ोस में रहता था। पिता के दोस्तों में था तो अक्सर उनके पास आता और मुझे बहुत परेशान करता। जब मैं आत्मा, परमात्मा की कविताएं लिखता तो वह खूब हंसता और हाथ पकड़ कर हिला देता कि क्या ईश्वर का अनुभव हुआ है,

क्या ईश्वर को देखा है और इतना खिल-खिल कर हंसता कि उस आदमी से डर पैदा हो जाता। और वह कहीं सड़क पर मिल जाता तो बचकर निकल जाता क्योंकि वह वहीं पकड़ लेता। अनुभव हुआ है ईश्वर का? ईश्वर को देखा है? और मेरी हिम्मत न पड़ती कहने की कि सच में अनुभव क्या हुआ है। कविताएं लिख रहा था। वह आदमी बहुत ज्यादा परेशान करने लगा था। एक बार वर्षा के दिन मैं घर के बाहर समुद्र की तरफ गया। सूरज निकला है। सुबह का वक्त है। समुद्र के जल पर भी सूरज का प्रतिबिम्ब बना है। रास्ते के किनारे जो गन्दे पानी के गड्ढे बने हैं उनमे भी सूरज का प्रतिबिम्ब बना है। लौटते वक्त मुझे अचानक ऐसा लगा कि सागर का जो प्रतिबिम्ब है और इस गन्दे गड्ढे में जो प्रतिबिम्ब है इन दोनो मे कोई भेद नहीं है। मुझे लगा कि प्रतिबिम्ब को गंदा गड्ढा कैसे छू सकता है? प्रतिबिम्ब कैसे गंदा होगा? वह चाहे शुद्ध जल में बने, चाहे गंदे जल में वह तो वही है। लेकिन फिर भी सागर मे वह और दिखाई पड़ रहा है, गदे डबरे मे और दिखाई पड रहा है। उस दिन मैं इतनी खुशी से लौटा कि रास्ते पर जो भी मिला मैं आनन्द से भर गया। मैं उसे गले लगाता, आलिंगन करता। वह आदमी भी मिल गया जिससे मैं बचकर निकलता था। मुझे पहली बार लगा कि वह भी ईश्वर है। और आज मैंने उसे भी गले लगा लिया। उस आदमी ने कहा ठीक है, अब मैं पहचाना कि तुम्हे अनुभव हो गया है, अब नहीं पूछूंगा। क्योंकि जब मैं तेरे पास आता था तो तू ऐसे बचता था मुझसे कि मुझे लगता था कि इसको कैसे ईश्वर का अनुभव हुआ होगा। मैं भी तो ईश्वर ही हूं। अगर ईश्वर का अनुभव हो गया है तो अब किससे बचना है, किससे भागना है? अब तुम्हे अनुभव हो गया, अब ठीक है। अब मैं देखता हूं तेरी आंख मे। तीन दिन तक यह हालत रही। आदमी चुक गए तो गाय, भैंस, घोड़े जो भी मिल जाते, उनसे भी गले लगता। वे भी चुक जाते तो वृक्षों के गले लगता। तीन दिन यह अवस्था थी। उन तीन दिनों में जो जाना बस फिर वह जीवन भर के लिए सम्पदा बन गया। सब चीज में वही दिखाई पड़ने लगा।

यह एक छोटी सी घटना है। गंदे डबरे में बना हुआ प्रतिबिम्ब सागर में बने हुए प्रतिबिम्ब मे भिन्न थोड़े ही हो जाएगा। वह तो वही है। फिर भी, सागर का प्रतिबिम्ब सागर का ही है, गड्ढे का गड्ढे का है। महावीर में जो प्रतिबिम्ब बनेगा सत्य का, वह वही है जो मुझ में बने, आप में बने, किसी में बने। लेकिन फिर भी महावीर का महावीर का होगा, मेरा मेरा होगा, आपका

आपका होगा। चांद वही है, सूरज वही है, सत्य वही है, प्रतिबिम्ब भी वही है। लेकिन जिन-जिन में बनता है, वह अलग-अलग है। और फिर जब वे उसकी अभिव्यक्ति देने जाते हैं तब और अलग हो जाते हैं। महावीर के पहले भी चर्चा थी प्रेम की और बाद में भी रहेगी? लेकिन महावीर में जो प्रतिबिम्ब बना है, वह निपट महावीर का है। वैसा प्रतिबिम्ब न कभी बना था, न बन सकता है।

प्रश्न : क्या आप मत मतान्तरों के पक्षपाती हैं? क्या बुद्ध के बौद्ध, महावीर के जैन, ईसा के ईसाई आदि सम्प्रदाय समाप्त करके एक मानव धर्म की स्थापना नहीं की जा सकती?

उत्तर : मैं मत-मतान्तरो का तनिक भी पक्षपाती नहीं हूं। न कोई जैन है, न कोई बौद्ध है, न कोई हिन्दू है, न कोई ईसाई है, न कोई मुसलमान है।

दुनिया मे दो तरह के ही लोग हैं सिर्फ—धार्मिक और अधार्मिक। जो धार्मिक है, वह बुद्ध हो सकता है, महावीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है। लेकिन वह हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति वही हो पाता है जो बुद्ध और महावीर हो सकता है। अधार्मिक व्यक्ति न बुद्ध हो पाता है न महावीर हो पाता है। वह जैन हो जाता है और बौद्ध हो जाता है। अधार्मिक आदमियों के सम्प्रदाय हैं। धार्मिक आदमी का कोई सम्प्रदाय नही। इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म का कोई सम्प्रदाय नही है, सब सम्प्रदाय अधर्म के हैं। अधार्मिक आदमी महावीर होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, जीसस नहीं हो सकता, बुद्ध नहीं हो सकता, कृष्ण नहीं हो सकता। अधार्मिक आदमी क्या करे? अधार्मिक आदमी भी धार्मिक होने का मजा लेना चाहता है लेकिन धार्मिक नहीं हो सकता क्योंकि धार्मिक हो जाना एक बड़ी क्रान्ति से गुजरना है। तब वह एक सस्ता रास्ता निकाल लेता है। वह कहता है कि महावीर तो हम नहीं हो सकते लेकिन जैन तो हो सकते हैं। वह कहता है कि महावीर को हम मान तो सकते हैं, मगर महावीर नहीं हो सकते। मानने में तो कोई कठिनाई नहीं है। हम महावीर के अनुयायी तो हो सकते हैं। तो हम जैन हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि जिन हुए बिना कोई जैन कैसे हो सकता है? जिसने जीता नहीं सत्य को वह जैन कैसे हो सकता है? महावीर इसलिए जिन हैं क्योंकि उन्होंने सत्य को जीता है। यह इसलिए जैन है कि यह महावीर को मानता है। जागे बिना कोई बौद्ध कैसे हो सकता है? बुद्ध जागकर बुद्ध हुए हैं। बुद्ध का अर्थ है जागा

हुआ यानी जो जाग गया। बुद्ध को जागना पड़ा बुद्ध होने के लिए लेकिन हम जागने की हिम्मत नहीं जुटा पाते तो हम बुद्ध को मान लेते हैं और बौद्ध हो जाते हैं। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा था क्राइस्ट होने के लिए लेकिन सूली पर लटकना बहुत मुश्किल है। हम एक सूली बना लेते हैं लकड़ी की, चादी की, सोने की, गले मे लटका लेते हैं और क्रिश्चियन हो जाते हैं। ये तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की। सम्प्रदाय तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की। धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं है। धार्मिक आदमी का कोई पक्ष नहीं है। सब अधार्मिक आदमी के झगड़े हैं। मेरा तो कोई पक्ष नहीं, कोई मत नहीं। महावीर से मुझे प्रेम है, इसलिए मैं महावीर की बात करता हू; बुद्ध से मुझे प्रेम है, मैं बुद्ध की बात करता हूं; कृष्ण से मुझे प्रेम है, मैं कृष्ण की बात करता हू; क्राइस्ट से मुझे प्रेम है, मैं क्राइस्ट की बात करता हू। मैं किसी का अनुयायी नहीं हू। किसी का मत चलना चाहिए, इसका भी पक्षपाती नहीं हूं। इस बात का जरूर आग्रह मन मे है कि इन सबको समझा जाना चाहिए। क्योंकि इन्हे समझने से बहुत परोक्षरूप से हम अपने को समझने मे समर्थ होते चले जाते हैं। इनके पीछे चलने से कोई कहीं नहीं पहुच सकता। लेकिन इन्हे अगर कोई पूरी तरह से समझ ले तो स्वय को समझने के लिए बड़े गहरे आधार उपलब्ध हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि क्या मानव धर्म की स्थापना नहीं की जा सकती। यह सब नासमझी की बातें हैं। दुनिया में कभी एक धर्म स्थापित नहीं हो सकता। असल मे सभी धर्मों ने यह कोशिश की है। और इस कोशिश ने इतना पागलपन पैदा किया जिसका कोई हिसाब नहीं। इस्लाम भी यही चाहता है कि एक ही धर्म—इस्लाम—स्थापित हो जाए। ईसाई भी यही चाहते हैं कि उन्हीं का धर्म स्थापित हो जाए। बौद्ध भी यही चाहते हैं। जैन भी यही चाहेगे कि उन्हीं का धर्म रह जाए। मानव धर्म वही होगा जो उनका धर्म है। अपने धर्म को वह मानव मात्र का धर्म बना लेना चाहते हैं। यह कोशिश असफल होने को बनी हुई है। क्योंकि मनुष्य-मनुष्य इतना भिन्न है कि कभी एक धर्म होना असम्भव है। धार्मिकता हो सकती है एक धर्म में। इन दोनों बातों के भेद को भी समझ लीजिए। मैं किसी मानव धर्म के पक्ष मे नहीं हू। क्योंकि अगर मैं मानव धर्म की कोशिश में लगूं तो वह सिर्फ हजार धर्मों में एक हजार एक और होगा। इससे ज्यादा कुछ नहीं होगा। सभी धर्म मानव-धर्म की आवाज लेकर आए और मनुष्य का

एक धर्म स्थापित करने की चेष्टा की लेकिन उन्होंने एक की संख्या और बढ़ा दी और कोई अन्तर नहीं पड़ सका। मेरी दृष्टि यह है कि मानव धर्म एक हो यह बात ही बेमानी है। धार्मिकता हो जीवन में। धार्मिकता के लिए किसी संगठन की जरूरत नहीं कि सारे मनुष्य इकट्ठे हों, एक ही मस्जिद में, एक ही मन्दिर मे, एक ही झंडे के नीचे। यह सब पागलपन की बातें हैं। धर्म का इनसे कोई लेना-देना नहीं। हां पृथ्वी धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। मनुष्य धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। कोई एक मनुष्य धर्म निर्मित करता है तो फिर वहीं पागलपन शुरू होगा और फिर एक सम्प्रदाय खड़ा होकर नया उपद्रव करेगा और कुछ भी नहीं कर सकता है। तो मैं किसी मानव धर्म को स्थापित करने की चेष्टा मे नहीं हूं। मेरी चेष्टा कुल इतनी है कि धार्मिकता क्या है, धार्मिक होने का मतलब क्या है। यह साफ हो जाए और जगत में धार्मिक होने की आकांक्षा जग जाए। और फिर जिसको जिस ढंग से धार्मिक होना हो वह हो जाए। वह कैसी टोपी लगाए, वह चोटी रखे कि दाढ़ी रखे, वह कपड़े गेरुए पहने कि सफेद पहने, मन्दिर मे जाए कि मस्जिद मे, पूरब में हाथ जोड़े कि पश्चिम मे, यह एक-एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता होगी। इसके लिए कोई संगठन, कोई शास्त्र, कोई परम्परा आवश्यक नहीं है। मैं इस चेष्टा मे नहीं हूं कि एक मानव धर्म स्थापित हो, मैं इस चेष्टा मे हूं कि धर्मों के नाम से सम्प्रदाय विदा हो जाएं। बस वह जगह खाली कर दे। उनकी कोई जगह न रह जाए। आदमी हो, सम्प्रदाय न हो, और आदमी को धार्मिक होने की कामना पैदा हो, उसका प्रयास हो, फिर हर आदमी अपने ढंग से धार्मिक हो और जिसको जैसा ठीक लगे वैसा हो। सिर्फ धार्मिक होने की बात समझ मे आ जाए उतनी बात ख्याल में आ जाए तो दुनिया में धार्मिकता होगी, सम्प्रदाय नहीं होंगे। लेकिन कोई मानव धर्म नहीं बन जाएगा। धार्मिकता होगी। और एक-एक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से धार्मिक होगा। और जगत में दो तरह के लोग रह जाएंगे—धार्मिक और अधार्मिक। अधार्मिक होंगे वे जो धार्मिक होने के लिए राजी नहीं हैं। लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि अगर सम्प्रदाय मिट जाएं तो अधार्मिक आदमी बहुत कम रह जाएंगे क्योंकि बहुत से लोग इसलिए अधार्मिक हैं कि साम्प्रदायिक लोगों की मूर्खताएं देखकर वे धर्म के साथ खड़े होने को राजी नहीं हैं। कोई बुद्धिमान आदमी इनके साथ खड़ा नहीं हो सकता। ये बुद्धुओं की इतनी बड़ी जमातें हैं कि इनमें बुद्धिमान आदमी का खड़ा होना मुश्किल है। तो वह अन्ततः अधार्मिक दिखने लगता है। खोज-

खीज की जाए तो शायद पता चले कि उसके धार्मिक होने की अभिलाषा इतनी तीव्र थी कि इनमें से कोई उसे तृप्त नहीं कर सका। इसलिए वह अलग खड़ा हो गया। अगर सम्प्रदाय मिट जाए तो दुनिया में धार्मिक आदमी के प्रति विरोध भी विलीन हो जाएगा। और धार्मिकता इतने आनन्द की बात है कि असम्भव है ऐसा आदमी खोजना जो धार्मिक होना न चाहता हो। लेकिन धार्मिकता बननी चाहिए स्वतन्त्रता। धार्मिकता बननी चाहिए सहजता। धार्मिकता बननी चाहिए सद्विचार, विवेक। धार्मिकता न हो पाखंड, न हो दमन, न हो जबरदस्ती, न हो जन्म से, न हो क्रिया-काण्ड से। धार्मिकता हो मन से, समझ से, तो पृथ्वी पर धर्म होगा—लेकिन मानव धर्म नहीं। कोई आदमी अपने को क्या कहता है, इससे क्या प्रयोजन है यह सवाल है। वह कैसी प्रार्थनाएं करता है यह सवाल नहीं है। वह किससे प्रार्थना करता है यह सवाल नहीं है। वह प्रार्थनापूर्ण है यह सवाल है। वह आदमी किस शास्त्र को सत्य कहता है, किस परम्परा को सत्य कहता है यह बात व्यर्थ है। सार्थक बात यह है कि वह आदमी किस सत्य के अन्वेषण मे संलग्न है, किस प्रकार के प्रेम को, ईसाइयत के प्रेम को, जैनियों की अहिंसा को, बौद्धों की करुणा को ढूढने मे लगा है, किस का शोरगुल मचाता है, किसका नारा लगाता है यह सवाल नहीं है। सवाल यह है : क्या वह आदमी प्रेमपूर्ण है ? क्या वह आदमी अहिंसक है ? क्या उस आदमी मे करुणा है ? करुणा का कोई लेबल हो सकता है ? प्रेम पर कोई छाप हो सकती है ? कैसा प्रेम ? किताबें हैं ऐसी जिनके शीर्षक हैं : ईसाई प्रेम। अब ईसाई प्रेम क्या बला होगी ? क्या मतलब होगा ईसाई प्रेम का ? प्रेम हो सकता है। मगर ईसाई प्रेम क्या ?

मैं किसी मानव धर्म के लिए चेष्टारत नहीं हूं, पुरानी दो तरह की चेष्टाएं हैं, दोनों असफल हो गई हैं। एक चेष्टा यह है कि किसी एक धर्म ने कोशिश की कि वह सबका धर्म बन जाए। वह सफल नहीं हो सकी। उससे बहुत रक्त-पात हुआ, बहुत उपद्रव फैला। फिर उससे हार कर दूसरी चेष्टा हुई कि सब धर्मों में जो सारभूत है, उसको निकाल कर, निचोड़ कर इकट्ठा कर लिया जाए। थियोसाफी ने यह प्रयोग किया कि सब धर्मों में जो-जो महत्वपूर्ण है, सबको निकाल लो।

प्रश्न : अकबर ने भी किया था ?

उत्तर : हां, अकबर ने भी किया था। अकबर ने भी दीने इलाही की शक्ल में उसकी कोशिश की। अकबर भी असफल हुआ, थियोसाफी भी असफल हुई।

वह भी सम्भव नहीं हो सका। वह कोशिश भी इसलिए असफल हुई कि उसने भी सब सम्प्रदायों को मान्यता दे दी थी। यानी यह तो कहा नही कि साम्प्रदायिक होना भूल है, उसने कहा कि साम्प्रदायिक होने मे कोई भूल नही है। तुम्हारे पास भी सत्य है वह भी हम ले लेते हैं। कुरान से भी, बाइबल से भी, हिन्दू से भी, मुसलमान से भी सबसे ले लेते हैं। सबको जोड़कर हम एक मानव धर्म बना लेते हैं। उससे कोई सम्प्रदाय खडित न हुआ। सम्प्रदाय अपनी जगह खड़े रहे और थियोसाफी एक नया सम्प्रदाय बन गई। उससे कुछ फर्क नही पड़ा। थियोसोफिस्ट का अपना-अपना मन्दिर, अपनी व्यवस्था हो गई। थियोसोफिस्ट का अपनी पूजा का ढग, अपना हिसाब हो गया। एक नया धर्म खड़ा हो गया। उसका अपना तीर्थ बना, अपना सब हिसाब हुआ। लेकिन उससे किसी पुराने सम्प्रदाय को कोई चोट नही पहुची। दो कोशिशें की गई। एक, धर्म सर्वग्राही हो जाए, वह नहीं हुआ। दूसरा, सभी धर्मों मे जो सार है उसको इकट्ठा कर लिया जाए, वह भी नहीं हो सका। अब मैं आपको तीसरी दिशा सुझाना चाहता हू और वह यह कि सम्प्रदाय मात्र का विरोध किया जाए; सम्प्रदाय मात्र को विसर्जित किया जाए और धार्मिकता की स्थापना की जाए—धर्म की नही, धार्मिकता की। अगर वह सम्भव हो सका तो मानव धर्म तो नही बनेगा, कोई एक धर्म, एक चर्च नही होगा, एक पोप नहीं होगा, एक झडा नही होगा लेकिन फिर भी, बहुत गहरे अर्थों मे मानव धर्म स्थापित हो जाएगा। उस गहरे अर्थ पर ही मेरी दृष्टि है।

चर्चा : ग्यारह

१.१०.६६ प्रातः

११

प्रश्न : जब आत्मा अम्बर है, ज्ञानस्वरूप है, फिर वह कैसे अज्ञान में गिरती है, कैसे बन्धन में गिरती है, कैसे शरीर लेती है? जबकि शरीर छोड़ना है, शरीर से मुक्त होना है तो यह कैसे सम्भव हो पाता है ?

उत्तर : यह सवाल महत्त्वपूर्ण है और बहुत ऊपर से देखे जाने पर समझ मे नही आसकता। थोड़ा भीतर गहरे झांकने से बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसा क्यों होता है। जैसे इस कमरे में आप हैं और आप इस कमरे के बाहर कभी नहीं गए, बड़े आनन्द मे हैं, बड़े सुरक्षित हैं, न कोई भय, न कोई अंधकार, न कोई दुख। लेकिन इस कमरे के बाहर आप कभी नहीं गए। तो इस कमरे मे रहने की दो शर्तें हो सकती हैं। एक तो यह कि आपको इस कमरे से बाहर जाने की स्वतन्त्रता ही नहीं है। यानी आप जाना भी चाहें तो नही जा सकते। आप परतन्त्र हैं इस कमरे में रहने को। एक तो शर्त यह हो सकती है। दूसरी शर्त यह हो सकती है कि अगर आप परतन्त्र है बाहर जाने के लिए तो आपका सुख, आपकी शांति, आपकी सुरक्षा सभी थोड़े दिनों मे आपको कष्टदायी हो जाएगी क्योंकि परतन्त्रता से बड़ा कष्ट और कोई भी नही है। अगर आपको सुख में रहने के लिए बाध्य किया जाए तो सुख भी दुख हो जाएगा। एक आदमी को हम कहें कि हम तुम्हें सारे सुख देते हैं सिर्फ स्वतन्त्रता नही, यानी यह भी स्वतन्त्रता नही कि अगर तुम चाहो तो उन सुखो को भोगने से इन्कार कर सको, तुम्हें भोगना ही पड़ेगा तो वह सुख भी दुख मे बदल जाएगा। परतन्त्रता बड़ा दुख है। वह सारे सुखों को मिट्टी कर देती है। अगर यह शर्त हो इस कमरे के भीतर रहने की कि बाहर नहीं जा सकते, सुख नही छोड़ सकते तो यह सब सुख दुख हो जाएगे और बाहर निकलने की प्यास इतनी तीव्र हो जाएगी, दुख इतना गहरा हो जाएगा जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और यह शर्त कि बाहर नहीं जा सकोगे, अनिवार्य रूप से बाहर ले जाने का कारण बनेगी। यह भी हो सकता है कि फिर बाहर दुख हो, लेकिन फिर भी आप भीतर आना पसंद न करें। क्योंकि भीतर से बाहर जाने की कोई बाधा नहीं है। एक स्थिति यह है। दूसरी स्थिति यह है कि आप

को पूरी स्वतन्त्रता है कि आप बाहर जाएं, या भीतर रहें। लेकिन आप कभी बाहर नहीं गए हैं। आपने भीतर के सब सुख, सब शांति, सब ज्ञान जाना है। लेकिन बाहर अज्ञान है और आप बाहर जाते हैं और जाएंगे तभी आप जान सकेंगे कि बाहर क्या है। जाएगे जानने के लिए, यात्रा करेंगे, भटकेंगे, दुख भोगेंगे तो फिर वापस लौटेंगे। और जब आप वापस आएगे तो पहले का सुख आपको करोड गुना ज्यादा मालूम पडेगा क्योकि बीच मे दुख का एक अनुभव, अज्ञान का एक अनुभव है। पीड़ा से आप गुजरे हैं। हो सकता है कि पहले उस कमरे के भीतर के सुख आपको सुख भी न मालूम पड़े हों क्योकि आपको कोई दुख न था। और प्रकाश आपको प्रकाश न मालूम पड़ा हो क्योंकि आपने अधेरा ही नही देखा। अब जब आप बाहर के जगत से वापस लौटते हैं तो आप जानते हैं कि प्रकाश क्या है क्योंकि आपने अधेरा जाना है, क्योकि आपने पीडा जानी है, इसलिए आप अब आनन्द को पहचानते हैं तो पहले का सुख रहा भी होगा तो भी बोधपूर्वक न रहा होगा। जागृत नही हो सकते हैं उसके प्रति आप। आप मूर्छित ही रहे होगे। उस सुख मे भी मूर्छित रहे होगे। लेकिन जब बाहर के सारे दुखो को झेलकर, कठिनाइयो से वापिस कदम उठा-उठा कर अपने घर पर पहुचते हैं तो आप सचेतन पहुचते हैं। यानी मेरा कहना यह है कि आत्मा उसी अवस्था मे पुन· पहुचती है जिस अवस्था मे वह थी। इस ससार की पूरी यात्रा उसे किसी नयी जगह नही पहुचा देती। लेकिन इस यात्रा के बाद पहुचना अनुभव को सचेतन, गहरा अद्भुत बना देती है। यानी वही स्थिति अब मोक्ष मालूम होती है। वह स्थिति तब भी थी लेकिन तब वह मोक्ष न थी। हो सकता है कि तब वह बन्धन जैसी मालूम पड़ी हो क्योंकि आपको विपरीत कोई अनुभव न था। आत्मा स्वतन्त्र है, स्वय के बाहर जाने के लिए। इसके लिए कोई परतत्रता नहीं है। आत्मा स्वतन्त्र है भटकने के लिए और जहां भूल करने की स्वतंत्रता न हो वहां स्वतंत्रता नहीं। भूल करने की स्वतत्रता गहरी से गहरी स्वतंत्रता है। आत्मा स्वतत्र है पहली बात। यानी आत्मा अमर है, आत्मा ज्ञानपूर्ण है, उतना ही गहरा यह सत्य भी है कि आत्मा स्वतत्र है। उस पर कोई परतत्रता नहीं है। स्वतंत्रता का मतलब है कि वह चाहे तो सुख उठाए चाहे तो दुख उठाए, चाहे तो ज्ञान में जिए चाहे तो अंधकार में खो जाए, चाहे तो वासना में जिए और चाहे तो वासना से मुक्त हो जाए। स्वतंत्रता का मतलब है कि दोनों मार्ग उसके लिए बराबर खुले हैं। और इसलिए बहुत अनिवार्य है कि स्वतंत्रता की यह सम्भावना उसे उन

स्थितियों में ले जाएगी जो दुखदायी हैं। और तभी उस अनुभव से आप वापिस लौट सकते हैं। तो मैंने जैसा कहा कि निगोद वह स्थिति है जहां उन्होंने कोई विपरीत अनुभव नहीं किया है। निगोद वह स्थिति है जहां उन्होंने स्वतन्त्रता का उपयोग नहीं किया है। इसलिए निगोद एक परतन्त्रता की स्थिति है। संसार वह स्थिति है जहा आत्मा ने स्वतंत्रता का उपयोग करना शुरू किया है। वह भटकी है, उसने भूलें की हैं, उसने दुख पाए हैं, उसने शरीर ग्रहण किए हैं, उसने न मालूम कितने प्रकार के शरीर ग्रहण किए हैं। उसने हजारों तरह की वासनाएं पाली और पोसी हैं और प्रत्येक वासना के अनुकूल शरीरों को ग्रहण किया है —यह भी उसकी स्वतन्त्रता है। यानी मैंने शरीर ग्रहण किया है तो यह मेरा निर्णय है। इसमें कोई दुनिया मे धक्के नही दे रहा है कि तुम शरीर ग्रहण करो। यह मेरी परम स्वतन्त्रता की सम्भावना का ही एक हिस्सा है कि मैं शरीर ग्रहण करू। फिर मैं कौन-सा शरीर ग्रहण करू ? यह भी मेरी स्वतन्त्रता है कि मैं चीटी बनू, कि मैं हाथी बनू, कि मैं आदमी बनू, कि मैं देवता बनू, कि मैं प्रेत बनू—मैं क्या बनू ? यह भी सवाल मेरे ऊपर ही निर्भर है। इसके लिए भी कोई मुझे धक्के नही दे रहा है। लेकिन चूकि मेरी आत्मा स्वतन्त्र है, इसलिए मैं इन सारी चीजों का उपयोग कर सकता हू और उपयोग के बाद ही मैं इनसे मुक्त हो सकता हू। इसके पहले मुक्त भी नहीं हो सकता। इसलिए निगोद मे जो आत्मा है, वह अमुक्त है। अमुक्त का कुल मतलब इतना है कि उसने स्वतन्त्रता का उपयोग ही नही किया है। निगोद में आत्मा मूर्छित रहती है। मूर्छित का भी वही मतलब है। सचेतन वह मोक्ष मे होगी। और सचेतन वह तभी होगी जब दुख उठाएगी, पीडा उठाएगी, कष्ट भोगेगी, तभी सचेतन होगी। जब अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करेगी, तभी सचेतन होगी।

तो मैं कह रहा हू कि स्वतंत्रता आत्मा का मूलभूत हिस्सा है और स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है मैं जहां जाना चाहू, मेरे ऊपर कोई बन्धन नहीं है। अगर मैं वासना में उतरना चाहू, तो मैं गहरी से गहरी वासना में उतर सकता हूं। संसार की कोई शक्ति मुझे रोकने को नहीं है। बल्कि, चूंकि आत्मा स्वतंत्र है इसलिए संसार की प्रत्येक शक्ति मुझे साथ देगी। मैं वासना में उतरना चाहता हूं, संसार मुझे सीढ़ियां बना देगा। परमात्मा की सारी शक्तियां मेरे हाथ में मुझे उपलब्ध हो जाएंगी। मैं शरीर ग्रहण करूं, कैसा शरीर ग्रहण करूं, तो मेरी वासना जैसी होगी वैसा मैं शरीर ग्रहण कर लूगा। यह सारी की सारी स्वतंत्रता का ही हिस्सा है। लेकिन जब यह शरीर ग्रहण करना, यह

दुख, यह पीड़ा, यह परेशानी, यह भटकन, यह अनन्त यात्रा, यह आवागमन, यह पुनरुक्ति, बार-बार यह चक्कर जब जोर पकड़ने लगेगा, जब कष्ट गहरा होगा तो मुझे कुछ न कुछ याद पड़ना शुरू हो जाएगा। कोई घर जो मैंने कभी छोड़ दिया, यह जो हमें स्मृति है वह निगोद की है। यानी यह जो हमको स्मरण है कि कहीं कुछ भूल हो रही है, अशान्त नहीं होना, शान्त होना है, शांति अच्छी लगती है, अशांति बुरी लगती है, शांति में हम किसी क्षण में रह चुके हैं अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि दुख बुरा लगता है, आनन्द अच्छा लगता है, आनन्द की कोई गहरी स्मृति कहीं भीतर हैं जो कहती है कि वापस लौट चलो, वही अच्छा था। लेकिन उसको भी अनन्तकाल व्यतीत हो गया है इस यात्रा में गए हुए कि बहुत स्पष्ट चित्र नहीं है कि हम कहां लौट जाएं, क्या करें। लेकिन बार-बार ऐसा अनुभव होता है कि कहीं हम भूल में हैं, कहीं किसी विजातीय, किसी विदेशी जगत मे हैं। जहां हमें होना चाहिए, वहां हम नहीं हैं। कुछ न कुछ चीज कहीं और रखी गई है, ऐसा प्रतिपल प्रतीति होता रहता है। यह प्रतीति धर्म बनती है। इस प्रतीति की गहरी से गहरी जिज्ञासा फिर खोज बनती है उस जगह की जहां से हमने स्वतन्त्रता का उपयोग शुरू किया था, उस बिन्दु की जहां हम थे और जहां से हम चल पड़े और अब हम फिर वापस लौटे हैं। यह जो वापिस लौटना है, यह भी हमारा निर्णय है। यह उसी स्वतन्त्रता का सदुपयोग है। हम वापिस लौटते हैं। हम उसी बिन्दु को जब फिर उपलब्ध होंगे तो यह बिन्दु यद्यपि वही होगी लेकिन हम बदल गए होंगे। इसे समझ लेना जरूरी है। उसी जगह हम फिर वापिस पहुंच जाएंगे जहां से हमने यात्रा शुरू की थी। लेकिन जब हम पहुंचेंगे, जगह वही होगी, हम बदल गए होंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना है। वह एक गांव के बाहर बैठा हुआ है, अपने गांव के बाहर एक झाड़ के नीचे। चांदनी रात है। एक व्यक्ति उसके पास आया जिसने हजारों रुपयों से भरी थैली उसके सामने पटकी, और कहा : "नसरुद्दीन, मैं करोड़पति हूं। मेरे पास रुपयों के अम्बार हैं। लेकिन सुख नहीं है। तो मैं सारी पृथ्वी पर घूम रहा हूं कि सुख कैसे पाऊं, कहां पाऊं? और मुझे कहीं सुख नहीं मिला। हां, लोगों ने मुझे बारम्बार कहा कि नसरुद्दीन से मिलो, शायद वह तुम्हें सुख का कोई रास्ता बता दे। तो मैं कैसे सुख पाऊं? सब मेरे पास है लेकिन सुख नहीं है। मुझे कोई रास्ता बताओ।" नसरुद्दीन ने दो क्षण उसे देखा। आंख बंद की। फिर

एकदम से उठा और उसकी जो लाखों रुपयों की थैली थी, उसको लेकर भागा। वह आदमी चिल्लाकर उसके पीछे भागा कि नसरुद्दीन यह तुम क्या कर रहे हो? तुमसे ऐसी आशा न थी। यह तुम क्या कर रहे हो? तुम मेरा रुपया चुराकर भागे जा रहे हो। नसरुद्दीन तेजी से भागा। गाव उसका परिचित है। वह आदमी अपरिचित है। वह गली, कूचो मे चक्कर देने लगा। आधी रात का वक्त है। गाव सन्नाटे में है। वह आदमी चिल्लाता है। लोग उठते भी हैं तो भी किसी की समझ मे नही आता कि क्या हो गया है। पूरे गांव मे चक्कर देकर नसरुद्दीन ने उस आदमी को थका मारा है। वह चिल्ला रहा है कि हाय लुट गया! भगवान बचाओ। मैं मर गया! अब मेरा क्या होगा? और वह भागता हुआ पूरे गाव मे चक्कर लगवा रहा है। आखिर वह नसरुद्दीन उसी झाड के नीचे आकर थैली को पटक कर खड़ा हो गया। वह आदमी आया, उसने थैली को हाथ लगाया और कहा : धन्यवाद! नसरुद्दीन ने कहा कि यह भी एक तरकीब है सुख पाने की। उसने कहा कि देख, यह थैली तेरे पास पहले भी थी। लेकिन तूने इसे ऐसे पटक दिया जैसे कि यह कचरा हो। यह थैली अब भी है। लेकिन बीच के अनुभव हैं। यह भी सुख पाने की एक तरकीब है। नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी अपनी समझ यह है कि मोक्ष और निगोद मे इतना ही फर्क है। जो थैली थी वह खो भी गई। थैली थी—यह निगोद है। यह मोक्ष की यात्रा का पहला बिन्दु है जहां हम थे। थैली खो भी गई—यह ससार है। थैली वापिस पा लेते हैं—यह मोक्ष है। और यह खो जाना बहुत अनिवार्य है। नहीं तो इस थैली में क्या है, इसका अर्थ ही भूल जाएंगे। यह खो देना अनिवार्य हिस्सा है और खोकर जब आप दुबारा पाते हैं तब आपको पता चलता है कि आनन्द क्या है। निगोद में भी वही था, पर उसे खोना जरूरी था ताकि वह पाया जा सके। असल में जो मिला ही हुआ है, उसका हमें पता होना बद हो जाता है। जो हमे मिला ही हुआ है, धीरे-धीरे हम उसके प्रति अचेतन हो जाते हैं, मूर्छित हो जाते हैं क्योंकि उसे याद रखने की कोई जरूरत ही नहीं होती। ये सवाल ही मिट जाता है हमारे मन से कि वह है क्योंकि वह है ही। वह इतना है कि जब हम थे तब वह था। तो जरूरी है कि उसे फिर से सचेतन होने के लिए खो दिया जाए। संसार आत्मा की यात्रा में खोने का बिन्दु है। और यह भी हमारी स्वतंत्रता है। पर निगोद और मोक्ष में जमीन आसमान का फर्क है। बात बिल्कुल एक ही है। लेकिन निगोद बिल्कुल मूर्छित है, मोक्ष

बिल्कुल प्रमूर्छित है। और निगोद को मोक्ष बनाने की जो प्रक्रिया है, वह संसार है। यानी इस प्रक्रिया के बिना निगोद मोक्ष नहीं बन सकता। इसलिए अगर हम स्वतन्त्रता के तत्त्व को समझ लें तो हमे सब समझ में आ जाएगा कि यह सारी यात्रा हमारा निर्णय है, यह हमारा चुनाव है। हमने ऐसा चाहा है, इसलिए ऐसा हुआ है। हमने जो चाहा है, वही हो गया है। कल अगर हम न चाहेगे इसे तो यह होना बंद हो जाएगा। परसो अगर हम बिल्कुल न चाहेगे तब निर्णय छोड देंगे, तो वही सन्यास का अर्थ है। जब हम न चाहेंगे, हम छोड देंगे। हम नही चाहते हैं अब, हम वापिस लौटना शुरू हो जाएगे। वही बिन्दु हमे फिर उपलब्ध होगी लेकिन हम बदल गए होगे। इस खोने की यात्रा मे हमने विपरीत का अनुभव किया होगा, हमने दरिद्रता जानी होगी। अब सम्पत्ति हमे सम्पत्ति मालूम पड़ेगी, आनन्द हमें आनन्द मालूम पड़ेगा। इसलिए प्रत्येक आत्मा के जीवन मे यह अनिवार्य है कि वह ससार में घूमे और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि जो ससार में जितने गहरे उतर जाते हैं, जिनको हम पापी कहते हैं, वे उतनी ही तीव्रता से वापिस लौट आते हैं। और दूसरी ओर जो साधारण जन पाप भी नही करते, जो ससार में भी गहरे नही उतरते, वे शायद मोक्ष की ओर भी उतनी जल्दी नही लौटते क्योंकि लौटने मे तीव्रता तभी होगी जब दुख और पीड़ा भी तीव्र हो जाएगी। जब हम इतनी पीडा से गुजरेंगे कि लौटना जरूरी हो जाए—लेकिन अगर हम बहुत पीडा से नही गुजरे हैं तो शायद लौटना जरूरी न हो। जैसे वह थैली लेकर नसरुद्दीन भागा था—पूरी थैली लेकर भागा था। पीड़ा भारी थी। वह दो रुपये लेकर भागा होता तो हो सकता है कि उस आदमी ने थैली बांध ली होती और वह अपने घर चला गया होता कि ठीक है लेकिन तब इस थैली की उपलब्धि का वह रस नही हो सकता था क्योंकि थैली फिर वही की वही थी और आदमी फिर गाव-गाव मे पूछता कि आनन्द का रास्ता क्या है?

सुख कैसे मिले? नसरुद्दीन ने कहा कि 'सुख को खोओ तो सुख मिलेगा।' अब यह बड़ा अजीब मालूम पड़ता है। जिसे पाना है, उसे खोओ क्योंकि अगर वह पाया ही हुआ है तो उसका पता ही नही चलेगा। तो संसार में हम वही खोते हैं जो हमे मिला हुआ है। मोक्ष में हम वही पाते हैं जो हमें मिला हुआ है। और यह सारा का सारा चक्र स्वतंत्रता के केन्द्र पर घूमता है। जितना ज्ञान, जितना आनन्द, उससे भी गहरी स्वतंत्रता—इसलिए मुक्ति की हमारी इतनी आकांक्षा है, बंधन का इतना विरोध है और हम मुक्त होना

चाहते हैं लेकिन बंधन को अनुभव कर लेंगे तभी।

प्रश्न : आत्मा स्वतन्त्र है। लेकिन क्या वासना के कारण परतन्त्र हो रही है ?

उत्तर : वासना भी उसकी स्वतन्त्रता है। वासना को भी वही चुनती है, बंधन को भी वही चुनती है। यानी मैं स्वतन्त्र होकर चाहूं तो हथकड़ी अपने हाथ में बांध लूं। कोई मुझे रोकने वाला नहीं है। और इसके लिए भी स्वतन्त्र हूं कि चाबी से ताला लगाकर चाबी को फेंक दूं, कि उसको खोजना ही मुश्किल हो जाए। मैं इसके लिए भी स्वतन्त्र हूं कि अपनी हथकड़ी पर सोना चढ़ा लूं। लेकिन अन्तिम निर्णय मेरा ही है। यहां कोई किसी को परतन्त्र नहीं कर रहा है। हम होना चाहते हैं तो हो रहे हैं। हम नहीं होना चाहते तो नहीं होंगे। बहुत गहरे में जो वासना का बन्धन है वह भी हमारा चुनाव है। कौन तुमसे कहता है कि वासना करो। तुम्हें लगता है कि वासना को जानें, पहचानें, शायद उसमें भी सुख हो, तो उसे खोजें तो तुम यात्रा करो। यात्रा जरूरी है ताकि तुम जानो कि सुख वहां नहीं था और दुख ही था। और अगर वासना का दुख प्रकट हो जाएगा तो तुम वासना छोड़ दोगे। तब तुम्हें कोई रोकने नहीं आएगा कि क्यों वासना छोड़ी जा रही है। कोई तुम्हें कहने नहीं आएगा कभी कि क्यों तुम वासना पकड़ रहे हो। मनुष्य की स्वतन्त्रता परम है और स्वतन्त्रता तभी पूर्ण है जब बुरा करने का भी हक हो। अगर कोई कहे कि अच्छा करने की स्वतन्त्रता है, बुरा करने की नहीं तो स्वतन्त्रता कैसी है यह ? एक बाप अपने बेटे से कहे कि तुझे मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता है, वेश्यालय जाने की नहीं तो यह मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता कैसी स्वतन्त्रता हुई ? यह तो परतन्त्रता हुई। अगर आप कहें कि मन्दिर जाने की ही तुझे स्वतन्त्रता है बस तू मन्दिर ही जा सकता है, वेश्यालय जाने की स्वतन्त्रता नहीं है, वहां तू नहीं जा सकता तो यह स्वतन्त्रता कैसी हुई ? यह मन्दिर जाने की स्वतंत्रता को स्वतन्त्रता का नाम देना झूठा है। यह बाप परतन्त्रता को स्वतन्त्रता के नाम से लाद रहा है। लेकिन अगर बाप स्वतन्त्रता देता है तो वह कहता है कि तुझे हक है कि तू चाहे तो मधुशाला जा, चाहे तो मन्दिर जा। तू अनुभव कर, सोच, समझ, जो तुझे ठीक लगे, कर। परम स्वतन्त्रता का मतलब होता है सदा भूल करने की स्वतन्त्रता भी।

प्रश्न : और हमें स्वतन्त्रता के कारण ही भूल होती है ?

उत्तर : स्वतन्त्रता के कारण भूल नहीं होती।

प्रश्न : चुनाव बुरे का ही होता है ?

उत्तर : यह जरूरी नहीं है। क्योंकि बुरे का चुनाव करने के बाद जिन्होंने भले का चुनाव किया है, वह भी उन्हीं का है। यानी जो मोक्ष गए हैं, मोक्ष जाने मे वे उतना ही चुनाव कर रहे हैं जितना कि ससार मे आकर वे चुनाव कर रहे हैं। असल मे जो मन्दिर की ओर जा रहा है वह भी उसका चुनाव है; जो वेश्यालय की ओर जा रहा है वह भी उसका चुनाव है। जहां तक स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, दोनो बराबर हैं। स्वतन्त्रता का दोनो उपयोग कर रहे हैं। यह दूसरी बात है कि एक बन्धन बनाने के लिए उपयोग कर रहा है, एक बधन तोड़ने के लिए उपयोग कर रहा है। यह बिल्कुल दूसरी बात है। और इसके लिए भी हमें स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि अगर मैं बधन ही बनाना चाहता हू और हथकडिया ही डालना चाहता हू तो दुनिया में मुझे कोई रोक न सके। नहीं तो वह भी परतत्रता होगी। यानी मान लो कि मैं हथकड़ी डालकर बैठना चाहता हू, जजीरें बांधकर पैरो मे और दुनिया मुझे कहे कि यह हम न करने देंगे तो यह परतंत्रता हो जाएगी क्योंकि हथकड़ियां डालने की मुझे स्वतत्रता है। क्योंकि अन्तिम निर्णायक मैं हू और जो मैं कह रहा हू वह यह कि अगर सुख को जानना हो तो दुख की स्वतन्त्रता भोगनी ही पड़ेगी। उसकी ही पृष्ठभूमि में सुख की सफेद रेखाएं उभरेंगी। हम वहीं लौट जाते हैं जहा से हम आते हैं लेकिन न तो हम वही रह जाते हैं, न वही बिन्दु वही रह जाती है क्योंकि हमारी सब दृष्टि बदल जाती है। एक सन्त फिर बच्चा हो जाता है लेकिन एक बच्चा सन्त नहीं हो जाता।

प्रश्न . तो फिर मोक्ष की अवस्था में अगर वह वापिस आना चाहे—समझो करुणावश, फिर वह चुन सकता है, चुनाव तो फिर भी हो सकता है?

उत्तर : बिल्कुल चुनाव हो सकता है। लेकिन सिर्फ करुणावश ही। लेकिन फिर वह संसार में आता नहीं है। हमें दिखता भर है आया हुआ। यह भी समझ लेना जरूरी है कि हम जिस भांति संसार में आते हैं फिर वह उस भांति संसार में नहीं आता। मैंने पीछे कहीं एक वक्तव्य दिया है। जापान में एक फकीर था जो कुछ चोरी कर लेता और जेलखाने चला जाता। उसके घर के लोग परेशान थे। वे कहते थे कि हमारी बदनामी होती है तुम्हारे पीछे और तुम आदमी ऐसे हो कि तुम्हें प्रेम करना पड़ता है और तुम्हारे पीछे हम भी बदनाम होते हैं। अब तुम बूढ़े हो गए, अब तुम चोरी बंद करो। लेकिन

फिर वह कहता है कि वह जो जेल में बंद हैं, उनको खबर कौन देगा कि बाहर कैसा मजा है। मैं उन्हें खबर देने जाता हूं और कोई रास्ता नहीं इसलिए कुछ चोरी कर लेता हूं और जेल चला जाता हूं। और वहा जो बंद हैं उनको खबर देता हूं कि बाहर स्वतन्त्रता कैसी है। उनको कौन खबर देगा अगर वहां चोर ही चोर जाते रहेंगे? लेकिन इस फकीर का जाना भिन्न है। और यह फकीर एक अर्थ में वहां जाता ही नहीं। क्योंकि यह चोरी चोरी के लिए नहीं करता। जब इसके हथकड़ियां डाली जाती हैं तब भी यह कैदी नहीं है और जब यह जेल में बद किया जाता है तब भी यह कैदी नहीं है। यह कैद से बाहर का आदमी है बल्कि और कैदियो को भी मुक्त करने के ख्याल से आया हुआ है।

तो जब बुद्ध या महावीर या जीसस जैसा आदमी जमीन पर आता है तो हमें लगता है कि वह आया। सच मे वह आता नही है। यह संसार अब उसके लिए ससार नही है। अब यह उसके अनुभव की यात्रा नहीं है। अब इसमें उसकी कोई पकड़ नहीं है, कोई जकड़ नहीं है। अब इसमें कोई रस नहीं है। इसमें कुल करुणा इतनी है कि वे जो और भटक रहे हैं उनको वह खबर दे जाए कि एक और लोक है जहां पहुचना हो सकता है, जहां करुणावश उतरना हो सकता है। लेकिन यह करुणा अन्तिम वासना है क्योंकि अगर बहुत जोर से देखें तो करुणा में भी थोड़ा सा अज्ञान शेष है जिसको अज्ञान नहीं कह सकते लेकिन जिसको ज्ञान भी नही कहा जा सकता। बहुत बारीक अज्ञान की रेखा शेष है। वह यह है कि किसी को मुक्त किया जा सकता है क्योंकि जो अपनी स्वतन्त्रता से अमुक्त हुए हैं उनको तुम कैसे मुक्त करोगे? कोई दुख में है, यह भी अज्ञान है। क्योंकि वह दुख उसके स्वयं का निर्णय है। और किसी को उसके समय के पहले वापिस लौटाया जा सकता है यह भी सम्भव नहीं। उसका अनुभव तो पूरा होगा ही। यानी अगर इस शर्त पर हम गौर करें तो करुणा अन्तिम वासना है। पर उसे वासना कहने में, अज्ञान कहने में भी बुरा लगता है। इसलिए वह एक आध बार जन्म ले सकता है, इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि तब वह करुणा भी क्षीण हो जाएगी। वह भी चला जाएगी। वह भी विलीन हो जाएगी।

प्रश्न : यह बात आप कहते हैं कि समय के पहले नहीं लौटता है?

उत्तर : समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि किसी का समय कोई तय है। समय के पहले का मतलब यह है कि उसका पूरा भोग हो जाए। समय

के पहले का मतलब यह नहीं है कि एक तारीख तय है कि उस तारीख को तुम लौटोगे। तारीख तय नही है लेकिन तुम्हारा अनुभव तो पूरा हो जाए। उसके पहले तुम्हें नही लौटाया जा सकता।

प्रश्न : क्या मेरे पर ही निर्भर करता है कि कब लौटें ?

उत्तर : बिल्कुल तुम पर ही निर्भर करता है, नहीं तो परतन्त्र हो जाओगे तुम। फिर मुक्ति नही हो सकती तुम्हारी कभी भी। अगर किसी ने तुम्हें मुक्त कर दिया तो यह नयी तरह की परतंत्रता होगी। फिर तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते। और इसलिए मैं कहता हू कि परम स्वतन्त्रता है आत्मा को दुख भोगने की, नरको की यात्रा करने की, पीड़ाओ मे उतरने की, ईर्ष्याओं मे जलने की—सब मे उतर जाने की उसे पूरी स्वतन्त्रता है और कोई उसे लौटा नही सकता।

प्रश्न : उतरने की जरूरत क्या है वापिस ? जिन आत्माओं को करुणा की अन्तिम इच्छा रहती है वही उतरती हैं। सभी को उतरने की जरूरत नहीं है।

उत्तर : यही तो मै कह रहा हूं। उतरने की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यह कह रहा हूं कि करुणा अन्तिम वासना है और यह उसका चुनाव है। यानी यह जो मैं कह रहा हू कि स्वतंत्रता, परमस्वतंत्रता है हमें और अगर मैं आज मुक्त हो जाता हूं और फिर भी लौट आना चाहता हू तो दुनिया में मुझे कोई रोकने को नहीं है। यानी अगर मुझे ऐसा लगता है कि मैं आपके द्वार पर खटखटाऊं यह भी जानते हुए कि किसी को जगाया नहीं जा सकता उसके पहले। यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊं कि किसी को जागने के पहले जगाया नहीं जा सकता, सब की अपनी सुबह है और वक्त पर सबकी नींद पूरी होगी तभी वे जागेंगे और बीच में जगाना दुखद भी हो क्योंकि वे फिर सो जाएं, यानी नींद तो पूरी हो जानी चाहिए किसी की। मैं आकर पांच बजे उसका दरवाजा खट-खटा दूं और वह जाग भी जाए, करवट बदले और फिर सो जाए। और शायद पहले वह पांच बजे उठा था, अब वह आठ बजे उठे क्योंकि यह बीच का जो अन्तर पड़ा, वह नुकसान दे जाए उसे। यानी आप जगेंगे कि नहीं, सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि मैं जाग कर जो आनन्द अनुभव कर रहा हूं, वह मुझे परेशान किए जा रहा है। वह आनन्द मुझे कह रहा है : जाओ, किसी के द्वार खटखटा दो। यानी अब बहुत गहरे में हम समझें तो जाग नहीं है केवल

करुणा के। यानी आप जगेंगे कि नहीं यह विचारणीय नहीं है। लेकिन जो जग गया है, वह एक ऐसे आनन्द को अनुभव करता है कि अन्तिम वासना उसकी यह होगी कि वह अपने प्रियजनों को खबर कर दे, भले ही प्रियजन उसको गाली दें कि बेवक्त नींद तोड़ दी, दुश्मन दरवाजा खटखटा रहा है। बहुत गहरे में देखने पर पता चलेगा कि यह करुणा अपना चुनाव है। हमसे, आपसे कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है। वासना भी अपना चुनाव है। जैसे समझ लें कि मैं आपको प्रेम करने लगूं यह मेरा चुनाव है। जरूरी नहीं कि आप मुझसे प्रेम करें और जरूरी नहीं कि मेरे प्रेम से आपको आनन्द भी मिले। और हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको दुख दे और मेरा प्रेम आपको परेशानी में डाले। फिर भी मैं आपके लिए प्रेम से भरा हूं। वह मेरी भीतरी बात है। और मैं प्रेम करूंगा और यह प्रेम आपके लिए क्या लाएगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हालांकि मेरा प्रेम कोशिश करे कि आपके लिए हित आए, मंगल आए, लेकिन यह जरूरी नहीं। करुणा को मैं कह रहा हू अन्तिम वासना। जिसकी सारी वासनाएं क्षीण हो गईं, उस आदमी को आनन्द उपलब्ध हो गया। अन्तिम वासना एक रह जाती है कि यह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए। अब अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नहीं रहा। उसने आनन्द पा लिया। अब एक अन्तिम वासना शेष रह जाती है कि यह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए और वह भी एक तीव्र भाव है, हालांकि वह भी चुनाव है, तो जरूरी नहीं कि सभी शिक्षक वापिस लौटें। इसलिए मैंने कहा कि यह मौज की बात है कि कोई सीधा चुपचाप विलीन हो सकता है मोक्ष में, कोई ठिठक जाए, वापिस लौट आए। हालांकि वह भी एक जन्म, दो जन्म के बाद विलीन हो जाएगा कहीं लेकिन वह अन्तिम उपाय कर सकता है। यह भी अज्ञान का ही हिस्सा है बहुत गहरे में, क्योंकि अगर पूर्ण ज्ञान हो तो यह बात भी खत्म हो जाने वाली है। जो जा रहा है, अपनी-अपनी स्वतंत्रता है, अपनी-अपनी यात्रा है। लेकिन वैसा पूर्ण ज्ञानी हमें कठोर मालूम पड़ेगा। क्योंकि राह चलता अगर कोई प्यासा पड़ा है तो शायद उसको पानी भी न दे। क्योंकि वह कहेगा, अपनी-अपनी यात्रा है। हालांकि वह तुम्हें कठोर मालूम पड़ेगा। तो अपनी अपनी यात्रा है। त्याग भी तुम्हारा चुनाव है, तुमने जो पीछे किया, जैसे जो हुआ, जैसे तुम चले, वैसे तुम पहुंचे। जब तक जरा सी क्षीण आस्था है विशेष करुणा की जरूरत होगी और तब तक व्यक्तित्व रहेगा। पूर्ण वासना निषेध होने पर ही व्यक्तित्व विलीन हो जाता

है। तो पूर्ण जैसा व्यक्ति तुम्हें बहुत कठोर मालूम होगा। यानी शायद हम समझ ही न पाएं कि यह आदमी कैसा है? कोई आदमी कुएं में डूब कर मर रहा होगा तो वह खड़ा देखता रहेगा। अपनी-अपनी यात्रा है, अपना-अपना चुनाव है। इसको पकड़ना मुश्किल हो जाएगा, इसको पहचानना मुश्किल हो जाएगा। कोई आदमी आग मे हाथ डाल रहा होगा तो वह खड़ा देखता रहेगा कि अपना-अपना अनुभव है, अपना-अपना ज्ञान है; आग में हाथ डालोगे तो अनुभव होगा कि हाथ जलता है, तो मैं कह कर क्यों व्यर्थ बात करूं? मेरे कहने से कुछ होगा नहीं; तुम जब हाथ डालोगे, तभी तुम जानोगे। और अगर बिना हाथ डाले तुमने जान लिया तो हो सकता है कि और कष्ट में तुम पड़ जाओ। क्योंकि मैं तुम्हे कह दू कि आग में डालने से हाथ जलता है और तुम मान जाओ लेकिन तुम्हारा अनुभव न हो, कल तुम्हारे घर में आग लग जाए और तुम सोचो कि कौन जलता है तो जिम्मेदार कौन होगा? यानी मैं ही हूंगा? इससे तो अच्छा होता कि तुम हाथ डाल लेते और जल जाते, कल तुम्हारे घर मे आग लगती तो तुम निकल कर बाहर हो जाते क्योंकि तुम्हारा अनुभव काम करता। अपना अनुभव ही काम करता है। और इसलिए व्यक्तित्व के बिदा होने की जो अन्तिम वेला होगी उस वेला मे करुणा प्रकट होगी। यह ऐसे ही है जैसे सूर्यास्त की लालिमा है। कभी ख्याल ही नही किया कि सूर्यास्त की लालिमा का क्या मतलब है। सुबह भी लालिमा होती है। लेकिन वह उदय की लालिमा, वासना की लालिमा होती है। अभी सूरज बढ़ेगा और चढ़ेगा; अभी फैलेगा और विस्तीर्ण होगा, अभी जलेगा और तपेगा। अभी दोपहर पाएगा और जवान होगा। सुबह की लालिमा सिर्फ खबर है जन्म की। वह भी वासना है लेकिन विकासमान, फैलने वाली। सांझ को फिर आकाश लाल हो जाएगा। वह सूर्यास्त की लालिमा है लेकिन वह अन्तिम लालिमा है। लेकिन फलने की नहीं, सिकुड़ने की है। अब सब सिकुड़ता जा रहा है। सूरज सिकुड़ रहा है, किरणें वापस लौट रही हैं, सूरज डूबता चला जा रहा है। लेकिन लौटती किरणें भी लालिमा फेंकेंगी, उगती किरणों ने भी फेंकी थी और अगर किसी को पता न हो तो उगते और डूबते सूरज में भेद करना मुश्किल हो सकता है। अगर पता न रहा हो, एक आदमी दो चार दिन बेहोश रहा हो और एकदम होश में लाया जाए और उससे कहा जाए कि सूरज डूब रहा है कि उठ रहा है तो उसे थोड़ा वक्त लग जाएगा क्योंकि उगता और डूबता सूरज एक-सा लगता है। किरणों का जाल एक में फैलता होता

है, एक में सिकुड़ता होता है। एक में लालिमा घटती है, एक में बढ़ती है। लेकिन लालिमा दोनों में होती है, किरणें दोनों में होती हैं। थोड़ी देर लग सकती है उसको पहचानने में कि यह लालिमा सिकुड़ने की है या फैलने की है। तो व्यक्ति का पहला जन्म किरण होता है जहां से वासना फैलती है। वासना ही फैलती हुई इच्छाएं हैं—फैलता हुए सूर्योदय। जब सब इच्छाएं सिकुड़ जाती हैं और सूरज का सिर्फ गोल हिस्सा रह जाता है डूबता हुआ आखिरी—इसकी फिर भी लालिमा है। डूबते की है यह आखिरी लालिमा। यह करुणा है। यह डूब जाएगा। और कई बार चूक हो जाती है। हम समझते हैं कि सूरज उग रहा है और जब तक हम समझ पाते हैं तब तक वह डूब जाता है। और हम उससे कुछ लाभ नहीं ले पाते हैं। यह बहुत बार होता है। बुद्ध गांव में आते हैं, महावीर गाव में आते हैं, जीसस भी आते हैं, कृष्ण भी आते हैं। लेकिन हो सकता है कि अभी सूर्योदय हो रहा है। और तुम वासनाग्रस्त हो और तुम चूक गए हो और तब तक सूरज डूब गया। फिर रोते बैठे रहो। फिर कुछ भी नही हो सकता। तब जानने के लिए उपाय नहीं रह जाता। लेकिन उगता, डूबता सूरज एक जैसे मालूम पड़ते हैं। होसकता है कि बुद्ध जिस गांव में आए हो, लोगो ने सोचा हो कि यह भी सब वासना है। एक गांव मे बुद्ध तीन बार गुजरे जीवन में। तो गांव मे एक आदमी था जो अपनी दूकान पर बैठा रहा। लोगो ने उससे कहा कि बुद्ध आए हैं। उसने कहा कि अभी तो बहुत ग्राहक हैं, दुबारा जब आएंगे तब सुन लूंगा। बुद्ध तीन बार उस गांव से गुजरे। आखिर बुद्ध भी क्या कर सकते हैं, कितनी बार उस गाव से गुजर सकते हैं? बुद्ध की सीमा है और गाव भी बहुत हैं। और बुद्ध भी क्या कर सकते हैं? अगर ग्राहकी चलती ही रहे और वह कहे आज तो बहुत काम है, दुबारा जब आएंगे तब देखा जाएगा, फिर बुद्ध दुबारा उस गांव में नहीं आते। लेकिन एक दिन उस गाव से खबर आती है कि पड़ोस के गांव में बुद्ध का अन्तिम दिन है, लोग इकट्ठे हो रहे हैं। वे मरने के करीब हैं और उन्होंने कह दिया है कि जल्दी ही डूब जाएंगे, अस्त हो जाएंगे, जिन्हें जो पूछना हो, आओ। उस आदमी ने दूकान बन्द की, शायद दूकान भी बंद नहीं कर पाया। घर के लोगों ने कहा : क्या करते हो, अभी बहुत वक्त है, अभी काम है, अभी दूकान पर काफी लोग हैं। उसने कहा, वह तो ठीक है, फिर उस आदमी से मिलना नहीं हो पाएगा। वह आदमी भागता हुआ दूसरे गांव गया। वहां लोग इकट्ठे थे। बुद्ध ने उनसे पूछा : तुम्हें कुछ और पूछना है? उन सब ने

कहा कि हमने इतना पूछा और इतना जाना कि अब कुछ भी पूछने को नहीं है, अब तो करने को है कि हम कुछ करें। तो बुद्ध ने कहा कि फिर मैं बिदा लूं। तीन बार उन्होंने पूछा जैसी कि उनकी आदत थी। लोगों ने कहा : कुछ भी नहीं पूछना, अब क्या पूछने को है?

तब बुद्ध ने कहा कि मैं बिदा लूं और वृक्ष के पीछे चले गए। ध्यान में बैठे और डूबने लगे। तब वह आदमी भागा हुआ पहुंचा। तब उसने कहा कि बुद्ध कहां हैं? लोगो ने कहा चुप, अब बात मत करना। अब वह वृक्ष के पीछे चले गए हैं। अब वह शांति से अपने में उतर रहे हैं, वापिस डूब रहे हैं, व्यक्तित्व छोड़ रहे हैं, निर्वाण मे जा रहे हैं। उस आदमी ने कहा : मेरा क्या होगा? क्योंकि मैं चूक ही गया हूं, उनसे कुछ पूछना था। लोगों ने कहा, पागल हो गए हो। चालीस साल से इसी इलाके में वह चक्कर लगाते थे तब तुम कहां थे? उसने कहा तब दूकान पर बहुत भीड़ थी। भीड़ तो आज भी थी। लेकिन तब मैंने समझा था सूरज उग रहा है। तब मुझे यह ख्याल न था कि डूबने का वक्त भी आ जाएगा। पर मुझे पूछना है, देर मत करो क्योंकि सूरज तो डूबा जा रहा है। लेकिन लोगो ने कहा कि तुम जोर से आवाज मत करना, नहीं तो वह इतने करुणावान हैं कि वापिस लौट सकते हैं। लेकिन तभी बुद्ध बाहर आ गए वृक्ष के पीछे से और उन्होंने कहा कि ऐसा मत करो, नहीं तो सदियो तक लोग मेरा नाम धरेंगे कि बुद्ध जिन्दा थे और एक आदमी पूछने आया और द्वार से खाली हाथ लौट गया। अभी नहीं? क्या तुझे पूछना है? यह जो लौटना है यह उतना ही लौटना है जितना कि सच मे कोई मोक्ष से लौट आए। इसमे कुछ बहुत फर्क नहीं है। लेकिन यह अन्तिम वासना है और यह अन्तिम वासना भी अर्थपूर्ण है। इसलिए जगत में इतने ज्ञान की सम्भावना होती है, इतने विचार का जन्म होता है। अगर यह न हो तो जगत में प्रकाश की कोई खबर ही न आए। अगर कोई इतना करुणावान न हो कि इसलिए चोरी करे कि जेलखाने जाए तो हो सकता है कि जेलखाने के लोग भूल ही जाएं कि बाहर कोई जगत भी है। लेकिन एक बात पक्की है कि जगे हुए लोग हमारे मन में जगने की कोई न कोई सूक्ष्म वासना पैदा कर जाते हैं। जगे हुए लोगों की मौजूदगी, इनकी बात, इनका चलना, इनका उठना, इनका बैठना—हमारे भीतर कहीं कोई धक्का दे जाता है, शायद अपने घर की याद दिला जाता है। यह करुणा इसलिए अर्थपूर्ण है। मेरी दृष्टि में तो जगत में कुछ भी अर्थहीन नहीं है। वासना भी अर्थपूर्ण है, करुणा

भी अर्थपूर्ण है, निगोद भी अर्थपूर्ण है, मोक्ष भी अर्थपूर्ण है, संसार के सब काम अर्थपूर्ण हैं। लेकिन सबके पीछे जो परम सत्य है वह स्वतन्त्रता का है। वह हम स्वतन्त्रता के तत्त्व का प्रयोग कर रहे हैं। कैसा कर रहे हैं यह हम पर निर्भर है। हित के लिए कर रहे हैं, अहित के लिए कर रहे हैं यह हम पर निर्भर है। अपने सुख के लिए कर रहे हैं, दुख के लिए कर रहे हैं इसकी भी स्वतन्त्रता है। महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों ने ईश्वर को जो इन्कार किया उसमें एक कारण यह भी है। ईश्वर के इन्कार में, भगवान के इन्कार में भगवत्ता का इन्कार नहीं है। ईश्वर को इन्कार किया है लेकिन ईश्वरपन में पूर्ण स्वीकृति है। अगर ईश्वर को मानें तो स्वतन्त्रता फिर पूरी नहीं हो सकती और अगर उसके रहते स्वतन्त्रता पूरी हुई तो वह बेमानी है। यानी अगर वह है और उसको हम कहते हैं स्रष्टा, नियम और फिर कहते हैं कि आदमी पूर्ण स्वतन्त्र है तो महावीर कहते हैं कि दोनों में मेल नहीं है। उसकी मौजूदगी ही बाधा बनेगी। उसका नियमन भी किसी तरह की परतंत्रता होगी। इसलिए वे परमात्मा का इन्कार करते हैं ताकि परतंत्रता का कोई उपाय न रह जाए। इसका यह मतलब नहीं कि वह परमात्मा से इन्कार करते हैं। इसका मतलब है कि परमात्मा के व्यक्तित्व को इन्कार करते हैं और परमात्मा को सब में व्याप्त मानते हैं लेकिन नियामक नहीं। परमात्मा के ऊपर वह किसी को नहीं बिठाते हैं। फिर हो सकता है कि परतंत्रता परमात्मा की इच्छा हो जैसा कि साधारण आस्तिक मानता है कि उसकी इच्छा हुई तो उसने जगत बनाया। फिर हम बिल्कुल परतंत्र मालूम होते हैं। यानी हमारी इच्छा से हम जगत में नहीं हैं, उसकी इच्छा से हम जगत में हैं। फिर उसकी इच्छा होगी तो वह जगत मिटा देगा। हम मोक्ष में हो जाएंगे और जब तक उसकी इच्छा नहीं होगी तब तक कोई उपाय भी नहीं है। तब जगत बहुत बेमानी है, वह कठपुतलियों का खेल हो जाता है, जिसमें कोई अर्थ नहीं रह जाता। जहां स्वतन्त्रता नहीं है वहां कोई अर्थ नहीं है। जहां परम स्वतन्त्रता है वहां प्रत्येक चीज में अर्थ है और परम स्वतन्त्रता की घोषणा के लिए ईश्वर को इन्कार कर देना पड़ा कि उसको हम कोई जगह नहीं देंगे; वह है ही नहीं।

साधारण आस्तिक की दृष्टि में परमात्मा नियामक है, नियन्ता है, स्रष्टा है तो स्वतन्त्रता खत्म हो गई। मगर गहरे आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर स्वतन्त्रता है। वह जो परम स्वतन्त्रता का व्याप्त कण-कण है, उस सबका समग्र नाम

ही परमात्मा है। अगर इसको हम समझ पाए तो फिर पापी को दोष देने का कोई कारण नहीं। इतना ही कहना काफी है कि तूने स्वतन्त्रता को जिस ढंग से चुना है वह दुख लाएगी। इससे ज्यादा कुछ भी कहने को नहीं। लेकिन वह कह सकता है कि अभी मुझे दुख अनुभव करने हैं। निंदा का कोई कारण नहीं, कोई सवाल नहीं। मैं कहता हूं कि मुझे गड्ढे में उतरना है। आप कहते हैं गड्ढे मे प्रकाश नहीं होगा। सूरज की किरणें गड्ढे तक नहीं पहुचेगी। वहा अंधेरा है। मैं कहता हू लेकिन मुझे गड्ढे का अनुभव लेना है। तो अगर आपने अनुभव लिया हो गड्ढे का तो गड्ढे में जाने की सीढ़ियां मुझे बता दें। अगर आप गए हो गड्ढे मे, और आप जरूर गए होंगे क्योकि आप कहते हैं कि वहा सूरज की किरणे नही पहुचतीं तो मैं भी गड्ढे को जानना चाहता हू ताकि गड्ढे मे जाने की वासना विदा हो जाए। तो निंदा कहां है? मेरी दृष्टि मे पापी व्यक्ति की कोई निंदा नहीं है और पुण्यात्मा व्यक्ति की कोई प्रशसा नही है। क्योकि सवाल यह नही है कि वह अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है और तुम अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहे हो। और मजा यह है तुम तो सुख के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहे हो। प्रशसा की बात क्या है? प्रशसा करनी हो तो उसकी करो जो दुख के लिए अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है, जो अजीब आदमी है, हिम्मतवर भी है, साहसी भी है, क्योकि दुख उठाता है और दुख में जाने के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग भी कर रहा है। हो सकता है कि वह इतना दुख जानकर लौटे कि उसके लिए सुख की गहराइयो का अन्त न रहे। सभी को जाना पड़ेगा अंधकार में ताकि वे प्रकाश मे आ सकें और सभी को स्वयं को खोना पड़ेगा ताकि वे स्वय को पा सकें। यह बहुत अजीब बात मालूम पड़ती है लेकिन बात यही है और अगर कोई इसको भी पूछे कि ऐसा क्यों है तो वह बेमानी पूछता है। ऐसा है और इससे अन्यथा नहीं है। इसके सिवाय जानने का कोई उपाय नही है। आग जलाती है। कोई पूछे कि क्यों जलाती है तो हम कहेंगे बस आग जलाती है। बस एक ही उपाय है। न जलाना हो तो हाथ मत डालो आग मे। जलाना हो तो हाथ डाल दो आग में। आग जलाती है। और आग क्यो जलाती है, इसका कोई उपाय नहीं है। और बर्फ क्यो ठंडी है, इसका कोई उपाय नहीं है। बर्फ ठंडी है, आग आग है। चीजें जैसी हैं, वैसी हैं। स्वतन्त्रता जगत की मौलिक स्थिति है। इससे अन्यथा नही है। आगे जाने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि अगर कोई कहे किसने यह स्वतन्त्रता

दी, तो दी गई स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता नहीं होगी । किसी ने स्वतन्त्रता नहीं दी। अगर किसी ने स्वतन्त्रता ली तो स्वतन्त्रता तभी लेनी पड़ती है जब कि परतन्त्रता हो, नहीं तो स्वतन्त्रता लेने का कोई सवाल ही नहीं। अगर स्वतन्त्रता है तो उसे न कोई देता है न कोई लेता है। वह जगत का स्वरूप है, वह वस्तुस्थिति है, वह स्वभाव है। और उसके उपयोग की बात है। कोई उसको दुख के लिए उपयोग करता है, करे; कोई सुख के लिए उपयोग करता है, करे। सुख वाला चिल्ला कर कह सकता है भाई, देखा, उस तरफ जाकर दुख होगा। फिर भी दुख वाला कह सकता है कि आप गए तब मैं नहीं चिल्लाया। आप क्यों परेशान होते हैं ? मुझे जाने दें। तो बात खत्म हो जाती है। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है। इसलिए मुझे निरन्तर लोग पूछते हैं कि आप इतना लोगों को समझाते हैं, क्या हुआ ? तो मैं कहता हूं कि यह पूछना ही ठीक नहीं है। अगर हम पूछते हैं तो हम उनकी स्वतन्त्रता में बाधा डालते हैं। यानी मेरा काम था कि मैं चिल्ला दिया। मेरा काम था चिल्लाना। उन्होंने मुझे कहा भी नहीं था कि चिल्लाओ। यह मेरी मौज थी कि मैं चिल्लाया। यह मेरा चुनाव था। यह उनकी मौज थी कि उन्होंने सुना या उनकी मौज थी कि नहीं सुना। या उनकी मौज थी कि सुना और अनसुना कर दिया। इस बात में वे स्वतन्त्र थे। इससे आगे पूछने की कोई जरूरत ही नहीं। हम सब अपनी स्वतन्त्रता में जी रहे हैं और दुख या सुख हमारे निर्णय हैं। और इसलिए बड़ी मौज है, और जिन्दगी बड़ी रसपूर्ण है। कहीं कोई रोकने वाला नहीं है, कहीं कोई मालिक नहीं है। हम ही मालिक हैं। और इतना समझ में आ जाए तो फिर और क्या समझाने को शेष रह जाता है ?

कोई निर्णायक है ही नहीं सिवाय आपके। वह आपका निर्णय है। अब जैसे कि नसरुद्दीन थैला लेकर भाग गया। वह आदमी यह भी निर्णय कर सकता है कि ठीक है, ले जाओ, हम नहीं आते पीछे और कभी न लौटे। वह उसका निर्णय है कि वह पीछा करता है और तब तक पीछा करता है जब तक पा नहीं लेता। लेकिन वह कह सकता है कि ठीक है, ले जाओगे तो हो सकता है कि तुम्हें खोजना पड़े कि मैं कहां गया। हालत यह हो जाए कि तुम खोजते थक जाओ, दुखी हो जाओ, परेशान हो जाओ क्योंकि तुम कोई चोर तो थे नहीं। वह थैला तो लौटाना है।

प्रश्न : वह निर्णय करना कौन कराता है ? इसका कोई उत्तर नहीं ?

उत्तर : कोई नहीं कराता। आप करते हैं। स्वतंत्रता का मतलब ही यही

है कि आप निर्णायक हैं और आप ही निर्णय करते हैं।

प्रश्न : प्रारब्ध क्या है ?

उत्तर : प्रारब्ध कुछ भी नहीं। अपने किए हुए निर्णय प्रारब्ध बन जाते हैं। जैसे कि मैंने एक निर्णय किया कि मैं इस कमरे में बैठूंगा। तो एक ही बात हो सकती है कि या तो मैं इस कमरे में बैठूं, या बाहर बैठूं। निर्णय करते ही प्रारब्ध शुरू हो जाता है। निर्णय का मतलब है कि मैं प्रारब्ध निर्मित कर रहा हू। अब मैं एक ही काम कर सकता हू—बाहर बैठू कि भीतर। भीतर बैठता हू तो यह प्रारब्ध हो गया। मेरा निर्णय शुरू हो गया। अब मैं बाहर नही हो सकता एक ही साथ। अगर बाहर जाऊंगा तो भीतर नही होऊंगा। भीतर के सुख दुख भीतर मिलेंगे, बाहर के सुख दुख बाहर मिलेंगे। अब वह फिर मेरा प्रारब्ध हो गया क्योंकि जो मैंने निर्णय किया वह मैं भोगूंगा। अब एक आदमी ने निर्णय किया है कि मैं धूप में बैठूंगा। तो धूप का जो भी फल होने वाला है, वह उसे मिलने वाला है। इसमें धूप जिम्मेदार नहीं है। इसमे कोई जिम्मेदार नहीं है। धूप का काम धूप है। आपका काम है कि आपने निर्णय किया धूप मे बाहर बैठने का। आपका चेहरा काला हो जाएगा। वह जिम्मेदारी आपकी है। वह आपका प्रारब्ध हो जाएगा। लेकिन आज अगर चेहरा काला हो गया तो उसको ठीक करने में दस दिन लग जाएंगे। तो दस दिन तक प्रारब्ध पीछा करेगा क्योंकि वह जो हो गया उसका क्रम होगा तो हम जिसको प्रारब्ध कहते हैं वह हमारे अतीत में किए गए निर्णयों का इकट्ठा सारांश है। वह निर्णय हमने किए थे, उनकी व्यवस्था हो गई है। वे हमें करने पड़ रहे हैं।

प्रश्न : और अभी पुरुषार्थ करेंगे, सोचेंगे ?

उत्तर : बिल्कुल नहीं, वह तो सवाल ही नहीं, पुरुषार्थ और प्रारब्ध का। तुम स्वतंत्र हो आज भी। और आज तुम जो करोगे वह फिर निर्णय बनेगा और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उससे। बहुत गौर से देखें तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। जो आदमी स्वतंत्र होने का निर्णय करता है अन्त मे मुक्त हो जाता है। संसार भी एक प्रारब्ध है। प्रारब्ध का मतलब ही इतना होता है कि तुमने कुछ निर्णय किया फिर उस निर्णय का फल भोगा।

प्रश्न : शास्त्रों में पुरुषार्थ भारी हुई भवितव्यता बताई है। इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : शास्त्रों से मुझे कुछ मतलब ही नहीं। शास्त्रों से क्या लेना-देना

है। शास्त्र लिखने वाले की मौज थी। तुम्हारी मौज है पढ़ो या न पढ़ो। वह कहीं बांधता नहीं। उससे क्या लेना-देना? उससे क्या प्रयोजन?

प्रश्न : क्या वासना की उन्मत्तता के समय मुक्तात्मा स्वतंत्रता का उपयोग संसार में आने के लिए कर सकता है?

उत्तर : नहीं कर सकता क्योंकि एक आदमी आग में हाथ डालने के लिए पहली बार स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है। लेकिन जल जाने के बाद उपयोग करेगा, मुश्किल है। एक बच्चा है वह दिए पर हाथ रखकर लौ पकड़ सकता है। स्वतन्त्रता का उपयोग उसने किया, हाथ जल गया, अनुभव हुआ। अब दुबारा इस बच्चे से कम आशा है कि दिए की लौ पकड़े, क्योंकि इसका अनुभव भी इसके साथ खड़ा हो गया। अब स्वतन्त्रता का वैसा उपयोग करना मुश्किल है। तो जो मुक्त हो गया वह संसार का दुख झेलने के लिए वासना करे यह असम्भव है। चाहे तो आ जाए, कोई रोकनेवाला नहीं है उसको, लेकिन वह चाह नहीं सकता। महावीर अगर सिद्धशिला छोड़कर वापिस आना चाहें तो कोई उन्हें रोक नहीं सकता। कौन रोकने वाला है? लेकिन महावीर नहीं आ सकते क्योंकि अब अनुभव भी साथ है। यहां का अनुभव काफी भोग लिया, वह दुख काफी झेल लिया। वह अनुभव इतना गहरा हो गया कि उसका कोई अर्थ नहीं है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

चर्चा : बारह
१.१०.६६ रात्रि

१२

दुख, सुख, और आनन्द इन तीन शब्दों को समझना बहुत उपयोगी होगा। दुख और सुख भिन्न चीजें नहीं हैं बल्कि उन दोनो के बीच मे जो भेद है वह ज्यादा से ज्यादा मात्रा का, परिमाण का, डिग्री का है। और इसलिए दुख सुख बन सकता है और सुख दुख बन सकता है। जिसे हम सुख कहते हैं वह भी दुख बन सकता है और जिसे हम दुख कहते हैं वह भी सुख बन सकता है। इन दोनों के बीच का जो फासला है, भेद है, वह भेद विरोधी का नहीं है, वह भेद मात्रा का है। एक आदमी को हम गरीब कहते हैं; एक आदमी को हम अमीर कहते हैं। गरीब और अमीर मे भेद किस बात का है? विरोध है दोनों में? आमतौर से ऐसा दिखता है कि गरीब और अमीर विरोधी व्यवस्थाए हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि गरीबी-अमीरी एक ही चीज की मात्राए हैं। एक आदमी के पास एक रुपया है तो गरीब है, एक करोड़ रुपया है तो अमीर है। अगर एक रुपए मे गरीब है तो एक करोड में अमीर कैसे हो सकता है? इतना ही हम कह सकते हैं कि यह एक करोड गुना कम गरीब है। और एक करोड वाला अमीर है तो एक रुपए वाला गरीब कैसे? फिर इतना ही हम कह सकते हैं कि यह एक करोड़ गुना कम अमीर है। इन दोनो में जो भेद है, वह ऐसा नहीं है जैसा दो विरोधियो में होता है। वह भेद ऐसा है जैसे एक ही चीज की मात्रा में होता है। लेकिन गरीबी दुख हो सकती है और अमीरी सुख हो सकती है। गरीब दुखी है और अमीर होना चाहता है। तो दुख और सुख में जो भी भेद है, वह भेद सिर्फ मात्रा का ही है। इसी भांति हमारी सारी सुख की अनुभूतियां दुख मे जुड़ी हुई हैं और हमारी सारी दुख की अनुभूतियां भी सुख से जुड़ी हुई हैं। इन दोनो के बीच जो डोल रहा है वह ससार में है। संसार में होने का मतलब इतना ही नहीं है कि सिर्फ दुखानुभूति। अगर ससार में सिर्फ दुख की अनुभूति हो तो कोई भटके ही नहीं। फिर तो भटकने का उपाय ही न रहा। भटकता सिर्फ इसलिए है कि सुख की आशा होती है, अनुभूति दुख की होती है। और सुख मिल जाता है तो मिलते ही दुख में बदल जाता है।

संसार की अनुभूति को दो तीन तरह से देखना चाहिए। एक तो यह कि सुख सदा भविष्य मे होता है कि कल मिलेगा। और कल मिलने वाले सुख के लिए आज हम दुख झेलने को तैयार होते हैं। आज के दुख को हम इस आशा मे झेल लेते हैं कि कल सुख मिलेगा। अगर कल सुख की कोई आशा न हो तो आज के दुख को एक क्षण भी झेलना कठिन है। उमरख्याम ने एक गीत लिखा है और उस गीत मे वह कहता है कि मैं कई जन्मो से भटक रहा हूं और सबसे पूछ चुका हू कि आदमी भटकता क्यो है। लेकिन कोई उत्तर नही मिलता। और तब मैंने थक कर एक दिन आकाश से ही पूछा कि तूने तो सब भटकते लोगो को देखा है और उन सबको भी देखा है जो भटकने के बाहर हो गए, और उन सबको भी देखता रहेगा जो भटकन मे आएगे और उनको भी देखता रहेगा जो भटकन के बाहर होगे। तू ही मुझे बता दे कि आदमी भटकता क्यो है ? तो चारो ओर आकाश से, वह अपने गीत मे कहता है, मुझे आवाज सुनाई पडी : आशा के कारण। आदमी भटकता क्यो है ? आशा के कारण। और आशा क्या है ? इस बात की सम्भावना और आश्वासन कि कल सुख मिलेगा। आज दुख झेल लो, आज का दुख हम झेलते हैं कल के सुख की आशा मे। फिर जब कल सुख मिलता है तो बड़ी अजीब घटना घटती है। सुख मिलते ही फिर दुख हो जाता है। जो चीज उपलब्ध हो जाती है वह कुछ भी नहीं होती। कितनी कल्पना की थी कि उसके मिलने पर यह होगा, वह होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को थोडा जाचेगा तो हैरान होगा कि उसने कितने-कितने सपने सजोए हैं। फिर वह चीज मिल गई और पाया कि कुछ भी न हुआ। वह सबके सब सपने कहा खो गए, यह पता ही न चला। वह सब की सब कल्पनाए कैसे विलीन हो गईं, कुछ पता न चला। चीज हाथ मे आई कि जो-जो उसके मिलने की सम्भावना मे छिपा हुआ सुख था, वह एकदम तिरोहित हो गया। जब तक नही मिला था तब तक प्रतीक्षा में सुख था। जब मिल जाता है तब सब सुख समाप्त हो जाता है। फिर दौड़ शुरू हो जाती है क्योंकि जहा दुख है, वहा से हम भागेंगे। यह भी समझ लेना चाहिए कि जहा दुख है, वहां हम रुक नहीं सकते। वहा से हम भागेंगे क्योंकि जहां दुख है वहा कैसे रुका जा सकता है। दुख भगाता है, दुख से हम हट जाना चाहते हैं और दुख से हटने का उपाय क्या है ? एक ही उपाय दिखाई पड़ता है साधारणत: और वह यह है कि सुख की किसी आशा में हम आज के दुख को भुला दें, विस्मरण कर दें। तो फिर जैसे ही दुख शुरू होता है, हम नयी आशा में बंध

जाते हैं। इस तरह आदमी जीता दुख में है, होता दुख मे है लेकिन उसकी आंखें सुख मे लगी होती हैं। जैसे आदमी चलता पृथ्वी पर है, देखता आकाश को है। आकाश पर देखने मे सुविधा हो सकती है कि पृथ्वी पर होना भूल जाए। फिर भी होगा पृथ्वी पर। हम खड़े हुए दुख में हैं लेकिन आंखें सदा सुख में हैं। इससे हमे सुविधा हो जाती है कि हम दुख को भूल जाते हैं और दुख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं। अब अगर बहुत गहरे मे देखा जाए तो सुख सिर्फ सम्भावना है, सत्य कभी नही। दुख सदा सत्य है, तथ्य है, वास्तविक है लेकिन दुख कैसे झेला जाए ? तो हम उसे सुख की आशा में झेल लेते हैं। कल का सुख आज के दुख को सहनीय बना देता है। और वह सुख जो कल का है, कभी मिलता नही। और जिस दिन मिल जाता है भूल-चूक से उसी दिन हम पाते हैं कि भ्रान्ति टूट गई। वह जो आशा हमने बांधी थी, सही सिद्ध नहीं हुई। लेकिन इससे सिर्फ इतना ही हम समझ पाते है कि यह सुख सही नही था। दूसरे सुख सही होंगे। उनकी आशा मे आगे दौड़ते रहो। यह भूल थी लेकिन अब यह भूल भ्रान्ति सिद्ध हो गई, टूट गई, दुख आ गया तो अब फिर चित्त भागेगा। यानी हम एक आशा से उखड़ते हैं, आशा-मात्र से नही उखड़ते हैं। एक सुख की व्यर्थता को जानते हैं लेकिन सुखमात्र की व्यर्थता को नही जान पाते। इसलिए यह होड़ जारी रहती है। अगर दुख ही है जीवन में और सुख की कोई सम्भावना नही है तो एक व्यक्ति क्षणमात्र भी ससार मे नही रह सकता। एक क्षण भर रहना भी मुश्किल है। एक क्षण में ही वह मुक्त हो जाएगा। लेकिन आशा उसे आगे गतिमान रखती है। और उन्होंने कहा कि मुक्त व्यक्ति को जो मिलता है उसे सुख नही कहना चाहिए। उसे जो मिलता है, वह सुख और दुख दोनो से भिन्न है। इसलिए उसे आनन्द कहना चाहिए। अब यह बड़े मजे की बात है कि आनन्द मे विपरीत कोई शब्द नही है। सुख दुख एक दूसरे के विपरीत हैं लेकिन आनन्द के विपरीत कोई अवस्था ही नहीं। आनन्द सुख नही है। अगर उसे सुख बनाया तो फिर दुख की दुनिया शुरू हो गई। साधारणत हम कहते हैं कि वह व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध होता है जो दुख से मुक्त हो जाता है। लेकिन यह कहने मे थोड़ी भ्रान्ति है। कहना ऐसा चाहिए कि आनन्द को यह व्यक्ति उपलब्ध होता है, जो सुख दुख से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जो सुख दुख है, वे कोई दो चीजें नहीं हैं। इसलिए साधारण जन को निरन्तर यह भूल हो जाती है समझने में और वह आनन्द को सुख ही समझ लेता है। समझता है कि दुख से मुक्त हो

जाना ही सुख है। इसलिए बहुत से लोग सत्य की खोज में या मोक्ष की खोज में वस्तुत: सुख की ही खोज में होते हैं। इसलिए महावीर ने एक बहुत बढिया काम किया है। सुख के खोजी को उन्होंने कहा है कि वह स्वर्ग का खोजी है। आनन्द के खोजी को उन्होंने कहा है कि वह मोक्ष का खोजी है। दुख का खोजी नरक का खोजी है, सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी है। लेकिन दोनो से अलग जो मुक्ति का खोजी है, वह आनन्द का खोजी है। स्वर्ग मोक्ष नही है। महावीर के पहले बहुत व्यापक धारणा यही थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है। उसके आगे क्या उपलब्धि है? सब सुख मिल गया तो परम उपलब्धि हो गई। लेकिन मनोवैज्ञानिक रीति से समझना चाहिए कि जहां सुख होगा, वहा दुख अनिवार्य है। जैसे, जहां उष्णता होगी, वहा शीत अनिवार्य है। जहां प्रकाश होगा, वहा अंधकार अनिवार्य है। असल मे ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं और एक साथ ही जीते हैं। और इनमे से एक को बचाना और दूसरे को फेंक देना असम्भव है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि हम एक को ऊपर कर लें और दूसरा नीचे हो जाए। जब हम सुख के भ्रम में होते हैं तब दुख नीचे छिपा है और प्रतीक्षा करता है कि कब प्रकट हो जाऊं। और जब हम दुख मे होते हैं तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिपल आशा दिए जाता है कि अभी प्रकट होता हू, अभी प्रकट होता हू। लेकिन दोनो चीजें एक ही हैं और अगर यह समझ में आ जाए तो सुख का भ्रम टूट जाता है। सुख का भ्रम टूटे तो दुख का साक्षात् होता है। सुख का भ्रम बना रहे तो दुख का साक्षात् नही होता। क्योंकि उस भ्रम के कारण हम दुख को सहनीय बना लेते हैं। हम उसे झेल लेते हैं। सुख का भ्रम दुख का पूर्ण साक्षात् नही होने देता, जैसा दुख है उसे पूरा प्रकट नही होने देता। उसकी पूरी पैनी धार हमें छेद नही पाती। सुख, दुख की धार को खोखला कर देता है। असल में हम दुख की ओर देखते ही नही। हम सुख की ओर ही देखे चले जाते हैं। दुख इधर पैरों के नीचे से निकलता है लेकिन हम कभी आंख गड़ा कर दुख को नहीं देखते हैं। दुख से सुख की आशा में हम सदा आगे चले जाते हैं। वही व्यक्ति सुख के भ्रम से मुक्त होगा जिसे यह दिखाई पड़ेगा कि सुख जैसा कुछ भी नहीं है। लौटकर पीछे देखो तो ख्याल मे आ सके। लेकिन हम सदा देखते हैं आगे, इसलिए ख्याल में नहीं आता। लौटकर पीछे देखो : ऐसा कौन सा क्षण था जब सुख पाया। तो बड़ी हैरानी होगी पीछे लौटकर देखने से। एकदम मरुस्थल मालूम पड़ता है, जहा सुख का कोई फूल कभी नहीं खिला। हालांकि बहुत बार जब अतीत नहीं था,

भविष्य था तो हमने सोचा था कि सुख मिलेगा। फिर वह प्रतीत हो गया और हमारी आशा भविष्य में चली गई। कल जो भविष्य था, आज अतीत हो गया। आज जो भविष्य है, कल अतीत हो जाएगा। और अतीत को लौटकर देखो तो सुख कभी न था। हालांकि ठीक इतनी ही आशा तब भी थी—मिलने की, पाने की, उपलब्धि की। और इतनी ही धारणा अब भी है। और आगे भी हम वही कर रहे हैं जो हमने पीछे किया था। आज झेल रहे हैं कल की आशा मे। इसलिए आज को देख नही पाते। इस सूत्र को समझ लेना चाहिए कि जो व्यक्ति सुख के भ्रम मे है वह दुख का साक्षात्कार नही कर सकता है। सुख का भ्रम दुख का साक्षात्कार नही होने देता। बल्कि असलियत यह है कि हम सुख का भ्रम इसलिए पैदा करते हैं ताकि दुख का साक्षात्कार न हो सके।

एक आदमी भूखा पड़ा है। वह भूख का साक्षात्कार नहीं कर पाता क्योंकि वह उस वक्त कल जो भोजन बनेगा, मिलेगा उसके सपने देख रहा है। एक आदमी बीमार पड़ा है। वह बीमारी का साक्षात्कार नही कर पाता क्योंकि वह कल के उन सपनो मे सोया है जब वह स्वस्थ हो जाएगा।

हम पूरे समय चूक गए हैं उस जगह से जहा हम हैं। और जहा हम हैं वहा निरन्तर दुख है। शायद उस दुख को झेलना इतना कठिन है कि हमे चूकना पड़ता है, भागना पड़ता है। हम पलायन करते हैं। सुख का भ्रम टूट जाए तो भागोगे कहां, यह कभी सोचा है? हमें दुख मे जीना पड़ेगा, दुख भोगना पड़ेगा, दुख जानना पड़ेगा, दुख के साथ आंखें गड़ानी पड़ेंगी, क्योंकि कोई उपाय नही है कही और जाने का। हम हैं और दुख है। जो व्यक्ति दुख का साक्षात्कार कर लेता है वह उस तीव्रता पर पहुच जाता है, जहा से वह लौटता है। जब सब ओर दुख के काटे उसे छेद लेते हैं और भविष्य मे कोई आशा नहीं रह जाती और आगे कोई उपाय भी नही रह जाता तब वह जाएगा कहां? फिर वह अपने मे लौटता है। जिस दिन दुख का पूर्ण साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापिसी शुरू हो जाती है। उसी दिन व्यक्ति लौटने लगता है। इसे समझ लेना। दुख से भागोगे तो सुख मे पहुंच जाओगे। दुख में जागोगे तो आनन्द में पहुंच जाओगे। दुख से नहीं भागे, दुख मे खड़े हो गए, दुख को पूरा देखा और दुख को साक्षात् किया तो रूपान्तरण शुरू हुआ। क्योंकि जैसे ही दुख का पूर्ण साक्षात्कार हुआ, हम वही फिर कैसे कर सकेंगे जिससे दुख आए। फिर हम उन्हीं ढंगों से कैसे जी सकेंगे जिनसे दुख आता है। फिर हम उन्हीं वासनाओं, उन्हीं तृष्णाओं में कैसे फिरेंगे जिनका फल दुख है।

फिर हम वे बीज कैसे बोएंगे जिनके फलो मे दुख आता है। लेकिन दुख को हमने कभी देखा नही। दुख का साक्षात् आनन्द की यात्रा बन जाता है। बुद्ध कहते हैं यह किया तो इससे यह हुआ; यह मत करो, उससे यह नही होगा। ऐसा नियम है। मैंने गाली दी, गाली लौटी। मैंने दुख दिया, दुख आया। अब अगर इस दुख का पूरा पूरा बोध मुझे हो जाए तो कल मैं गाली नही दूगा, कल मैं दुख नही पहुचाऊगा क्योकि पहुचाया हुआ दुख वापिस लौट आता है और तब दुख की सम्भावना क्षीण हो जाती है। इसी तरह जीवन के प्रत्येक विकल्प पर कैसे-कैसे दुख पैदा होता है, वह मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो कोई आदमी दुख मे कभी नही उतरता। सब आदमी सुख की नाव पर सवार होते हैं, दुख की नाव पर कोई सवार नही होता। कौन दुख की नाव पर सवार होने को राजी होगा। अगर पक्का पता है कि यह नाव दुख के घाट उतार देगी तो इस पर कौन सवार होगा। हम दुख की नाव मे सवार होते हैं लेकिन घाट सदा सुख का होता है। नाव अगर राह मे कष्ट भी देती है, डूबने का डर भी है तो भी कोई फिक्र नही। घाट के उस पार सुख है। लेकिन दुख की नाव सुख के घाट पर कैसे पहुच सकती है ? असल मे दुख देने वाला साधन सुख का साथी कैसे बन सकता है ? असल मे प्रथम कदम पर जो हो रहा है, वही अन्तिम पर भी होगा। अगर मैंने ऐसा कदम उठाया है जो अभी दुख दे रहा है तो यह कैसे सम्भव है कि यही कदम कल और आगे चलकर सुख देगा। इतना ही सम्भव है कि कल और आगे बढकर दुख देगा। क्योंकि आज जो छोटा है, कल और बड़ा हो जाएगा। कल मैं दस कदम और उठा लूगा, परसो दस कदम और उठा लूगा और यह रोज बढता चला जाएगा। यह दुख का छोटा सा बीज रोज वृक्ष होता चला जाएगा। इसमे और शाखाए निकलेंगी, इसमे और फल लगेंगे, इसमे और फूल लगेंगे। और न केवल फूल बल्कि एक बीज बहुत जल्दी वृक्ष होकर करोड़ बीज हो जाएगा। बीज गिरेंगे और वृक्ष उठेंगे और यह अन्तहीन फैलाव है। यानी एक बीज कितने वृक्ष पैदा कर सकता है, कोई हिसाब लगाए। शायद पृथ्वी पर जितने वृक्ष हैं उन्हे एक ही बीज पैदा कर सकता है। शायद सारे ब्रह्माण्ड मे जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। एक बीज की कितनी फैलने की अनन्त सम्भावना है, इसको सोचने जाओगे तो एकदम घबरा जाओगे। अनन्त सम्भावना इसलिए है कि एक ही बीज करोड़ बीज हो सकता है। फिर प्रत्येक बीज करोड़ बीज होता चला जाता है, इसके फैलाव का कोई रुकाव

नहीं है। हम जो पहला कदम उठाते हैं वह बीज बन जाता है और अन्तिम फल उसकी सहज परिणति है। लेकिन हम बीज जहर के बो देते हैं, इस आशा में कि फल अमृत के होंगे। वे कभी अमृत के नहीं होते। बार-बार हमने यह अनुभव किया है। निरन्तर प्रतिपल हमने यह जाना है कि जो बीज बोए थे, वही फल आ गए। लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं और जब फल आते हैं तो हम कहते हैं जरूर कहीं कोई भूल हो गई है। जरूर परि-स्थितिया अनुकूल न थी। हवाएं ठीक न थी। सूरज वक्त पर न निकला, वर्षा ठीक समय पर न हुई, ठीक समय पर खाद नही डाला गया। इसलिए फल कड़वे आ गए। हम सब चीज पर दोष देते हैं। लेकिन हम एक चीज को छोड़ जाते है कि बीज जहरीला था। और मजे की बात यह है कि अगर वर्षा ठीक समय पर न हुई हो, अनुकूल परिस्थिति न मिली हो, माली ने ठीक वक्त पर खाद न दिया हो, सूरज न निकला हो तो हो सकता है कि फल जितना बड़ा हो सकता था, उतना बड़ा न हुआ हो। हो सकता है कि जितना जहरीला फल मिला वह छोटा ही रहा हो। इसे थोड़ा समझना चाहिए। जितना दुख हमें मिलता है, आम तौर से हम कह देते हैं कि यह परिस्थितियो के ऊपर निर्भर है। यह परिस्थितियां हमें दुख दे रही हैं। मैं तो ठीक हू लेकिन मित्र, पत्नी, पिता, पति ससार, परिस्थितिया अनुकूल नही है। ऐसे हम बीज को बचा रहे हैं। मैंने जो किया वह तो ठीक है, लेकिन साथ अनुकूल न मिला। हवाएं उल्टी बह गई, सूरज न निकला, सब गड़बड़ हो गया।

लेकिन ध्यान रहे कि अगर प्रतिकूल परिस्थिति मे इतना कड़ुवा फल आया तो अनुकूल परिस्थितियो मे कितना कड़ुवा फल आता है इसका कोई हिसाब नहीं। हम जो इच्छाएं करते हैं अगर वे पूरी की पूरी हो जाएं तो हम इतने बड़े दुख मे गिरेंगे जितने दुख मे हम कभी भी नही गिरे। इसे थोड़ा समझना चाहिए: आमतौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुखी हैं कि हमारी इच्छाएं पूरी नही होती हैं। हमारा तर्क यह है, हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह पूरी नही होती। जबकि सच्चाई यह है, हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह दुख का बीज है और वह बिना पूरा हुए इतना दुख दे जाती है तो अगर पूरी हो जाए तो कितना दुख दे जाएगी, बहुत मुश्किल है कहना। समझ लें कि एक व्यक्ति की अभी इच्छा पूरी नही हुई, वह बहुत दुखी रहता है। उससे पूछो तो वह कहेगा कि मैं इतना दुखी हू जिसका कोई हिसाब नहीं क्योंकि जिसे पाना है वह नही मिल रहा

है। हजार बाधाएं आ रही हैं। एक प्रेमी है जो अपनी प्रेयसी को पाने की खोज में लगा है। वह नहीं मिली है। एक प्रेयसी है जो अपने प्रेमी को पाने की खोज मे लगी है, वह नही मिला है। लेकिन प्रेयसी मिल जाए तो एक इच्छा पूरी हुई मिलने की और मिलते ही जो आशाएं हैं वे सब तत्काल क्षीण हो जाएगी : क्योंकि पाने का, जीतने का, सफल होने का जो भी सुख है वह सब चला गया। वह जो इतने दिन तक आशा थी कि पाने पर यह होगा, वह होगा, वह आशा चली गई क्योंकि वह सब आशा पाने से सम्बन्धित न थी। वह सब आशा हमारे ही सपने और काव्य थे, हमारी ही कल्पनाएं थीं जो हमने आरोपित की हुई थी। और एक प्रेयसी दूर से जैसी लगती है वैसी पास से नही। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। दूर की चीजें सुहावनी होती हैं। असल मे दूरी एक सुहावनापन पैदा करती है। जितनी दूरी उतनी सुखद क्योंकि दूर से हम चीजो को पूरा नही देख पाते। जो नही देख पाते है वह हम अपना सपना ही उसकी जगह रख देते हैं। दूर से एक व्यक्ति को हम देखते हैं। दिखती है एक रूप-रेखा लेकिन बहुत कुछ हम अपने सपने से उसमे जोड देते है। इसमे हमारे दूसरे व्यक्ति का कही कसूर नही है। लेकिन जो हमने जोड़ा था वह पिघलकर बहने लगे निकट आने पर, और जो हमने सपना जोड़ दिया था, काव्य जोड दिया था वह मिटने लगे, जैसा व्यक्ति था वैसा प्रकट हो जाए ऐसा हमने कभी नही सोचा। असल मे हम सोच भी कैसे सकते हैं कि दूसरा व्यक्ति कैसा है। हम सिर्फ कामना कर सकते है कि ऐसा हो। लेकिन हमारी कामनाओ के अनुकूल किसी व्यक्ति का जन्म नही हुआ है। व्यक्ति का जन्म उसकी अपनी कामनाओं के अनुकूल हुआ है। कोई किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल पैदा नही हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुकूल पैदा हुआ है। लेकिन हमने अपनी इच्छाएं आरोपित की थी। वे मिलते ही खंडित हो जाएगी और वह व्यक्ति प्रकट होगा जैसा हमने उसे कभी नहीं जाना था और जितने हमने सपने जोड़े थे वास्तविकता उन सबको तोड़ देगी, एक-एक चीज को तोड़ देगी। फिर मैंने चाहा था कि व्यक्ति पूरा मिल जाए। यानी मैं कहूं रात तो वह कहे रात, मैं कहू दिन तो वह कहे दिन। यह इच्छा कभी पूरी नहीं होगी। और मजे की बात यह है कि उसने भी यही कामनाएं की थीं कि मैं कहू रात तो वह कहे रात और मैं कहू दिन तो वह कहे दिन। दोनो के प्रेम की कसौटी यही थी। तब बड़ी मुश्किल हो गई बात क्योंकि आप भी उससे कहलवाना चाहते हैं, वह भी आपसे कहलवाना चाहती है। सोचा था शान्ति, होगा संघर्ष,

सोचा था सुख, और होगा विषाद । लेकिन मजे की बात यह है कि यह तो इसलिए हो रहा है कि मैंने जो चाहा था वह नहीं हो सका है । मैंने कहा था रात और चाहा था कि वह भी कहे रात । यह नहीं हो सका, इसलिए मैं दुखी हूं । इच्छा के कारण दुखी नही हूं । ठीक व्यक्ति नही मिला, इच्छा पूरी नहीं हुई, इसलिए मैं दुखी हू । पूरी हो जाए तो मैं सुखी हो जाऊ । लेकिन कोई दूसरा व्यक्ति मिल जाए जो तुम कहो रात तो वह भी कहे रात हालांकि दिन हो । तुमने उसके पैर मे जंजीरें बाधी तो भी तुमने कहा आभूषण, उसने कहा आभूषण । तुमने उस व्यक्ति को पाया कि वह तुम्हारे बिल्कुल ही अनुकूल है, तुम जैसे हो वैसा ही है—तुम्हारी छाया । और ऐसे व्यक्ति को पाकर तुम्हे जितना दुख होगा उसका अनुमान हम लगा ही नही सकते क्योंकि वह व्यक्ति ही नही होगा, वह एक मशीन होगा, वह एक यत्र होगा । उसमे कोई व्यक्तित्व नही होगा, उसमे कोई आत्मा नही होगी और जिस व्यक्ति मे कोई व्यक्तित्व नही होगा, कोई आत्मा नही होगी उससे क्या तुम प्रेम कर पाओगे ? उससे तुम एक क्षण प्रेम नही कर सकते । यह इच्छा पूरी हो जाए तो इतना दुख होगा जितना इच्छा के न पूरी होने से कभी भी नही हुआ है । कोई भी छाया नही खरीदना चाहता । हम व्यक्ति चाहते हैं लेकिन हमारी इच्छा बडी अनूठी है । हम ऐसा व्यक्ति चाहते हैं जो हमारी बात माने । इन दोनो बातो मे कोई मेल ही नहीं है । अगर वह व्यक्ति होगा तो अपने ढग से जिएगा । और अगर हमारी बात मानेगा तो व्यक्ति नही होगा, उसमे कोई आत्मा नही होगी । वह मरी हुई चीज होगी, वह फर्नीचर की तरह होगा जिसे कही भी उठाकर रख दिया, वह वही रखा रह गया ।

एक आदमी गरीब है और वह कहता है कि मैं इसलिए गरीब हूं कि जितना धन मैं चाहता हू, वह मुझको नही मिलता । अगर मुझे उतना धन मिल जाए तो मैं दुखी न रहूं । ठीक है तो उसे उतना धन दे दिया गया । पहली बात यह है कि उसे इतना धन मिलने पर उसकी इच्छा और आगे चली जाएगी । वह कहेगा : इतने से क्या होता है, यह तो कुछ भी नही है । समझ लीजिए कि उसकी इच्छा है कि सारे जगत का धन उसे मिल जाए और उसकी यह इच्छा पूरी हो जाय कि उसे सारी पृथ्वी का धन मिल जाए तो क्या आपको पता है कि वह कितना दुख झेलेगा ? आपको कल्पना भी नहीं है । धनी होने का मजा ही इसमे था कि दूसरे धनियो को पीछे छोड़ा । धनी होने का मजा ही यह था कि प्रतियोगिता थी, प्रतिस्पर्धा थी कि उसमे हम जीते । अगर एक

व्यक्ति को सारी दुनिया का धन मिल जाए उसकी इच्छा के अनुकूल तो वह बिल्कुल उदास हो जाएगा क्योकि न कोई प्रतिस्पर्धा है, न कोई प्रतिस्पर्धा का उपाय है। अगर सारी पृथ्वी का धन एक व्यक्ति को मिल जाए तो वह व्यक्ति आत्महत्या कर लेगा क्योकि वह कहेगा अब क्या करें ? और वह बहुत उदास हो जाएगा।

सिकन्दर के सम्बन्ध मे एक कथा है कि सिकन्दर से डायोजनीज ने कहा कि अगर तूने सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर सोचा है कि क्या होगा ? सिकन्दर ने कहा कि अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा कि समझ ले, जीत ही ली, फिर क्या होगा ? और कहानी है कि सिकन्दर एकदम उदास हो गया। उसने कहा कि यह मैंने कभी ख्याल नही किया। लेकिन सच ही अगर पूरी पृथ्वी जीत ली तो फिर ? वह डायोजनीज से पूछने लगा कि फिर क्या करूगा ? डायोजनीज ने कहा कि मान लो कि तूने सारी पृथ्वी जीत ली तब तू सुखी होगा कि दुखी होगा? यह भी दूर रहा। तू तो अभी दुखी हो गया यह बात सोचकर कि सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर ? फिर सवाल ही क्या रहा? हमारी इच्छाए पूरी नही होती तो हम दुख पाते हैं, हमारी इच्छाए पूरी हो जाए तो हम परम दुख पाएगे। लेकिन हम यही समझते हैं कि हम इसलिए दुख पाते हैं कि हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होती।

टालस्टाय ने एक कहानी लिखी है। एक बाप की तीन बेटिया हैं। तीनो की अलग-अलग जगह शादिया हो गई हैं। एक लड़की किसान के घर है, एक लडकी कुम्हार के घर है, एक लडकी जुलाहे के घर है। वर्षा आने के दिन हैं लेकिन वर्षा नही आई। कुम्हार बडा खुश है। उसकी पत्नी भगवान को धन्यवाद देती है कि भगवान तेरा धन्यवाद क्योकि हमारे सब घड़े बनाए हुए रखे थे। यदि वर्षा आती तो हम मर जाते। एक आठ दिन पानी रुक जाए तो हमारे सब घड़े पक जाए और बाजार चले जाए। लेकिन किसान की पत्नी बड़ी परेशान है क्योकि खेत तैयार हैं, पानी नहीं गिर रहा है। अगर आठ दिन की देरी हो गई तो फिर फसल बोने में देरी हो जाएगी और हमारे बच्चे भूखे मर जाएंगे। तीसरी लड़की जुलाहे के घर है। उसके कपडे तैयार हो गए हैं। उसने रग कर लिया है और वह भगवान से कहती है कि अब तेरी मर्जी। चाहे आज गिरा, चाहे कल गिरा; अब हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। कहानी कहती है कि भगवान अपने देवताओं से पूछता है कि बोलो : मैं क्या करू ? मैं किसकी इच्छा पूरी करूं। और ये तो सिर्फ तीन लोग हैं।

अगर सारी पृथ्वी के लोगों की इच्छाएं पूछी जाए और पूरी कर दी जाए इसी वक्त तो पृथ्वी समाप्त हो जाए। हमारी इच्छाए और हमारी इच्छाओ का दौर और हम उनसे क्या पाना चाह रहे हैं, हमें कुछ भी पता नही है लेकिन भ्रान्ति चलती चली जाती है क्योकि हमारा ख्याल यह होता है कि दुख मिल रहा है इसलिए कि इच्छा पूरी नही हुई। सुख मिलता अगर इच्छा पूरी हो जाती। लेकिन जो गहरे इस विचार मे उतरेगा उसे पता चल जाएगा कि कोई इच्छा की पूर्ति सुख नही लाती है बल्कि वह बडा दुख लाती है। अपूर्ति इतना दुख लाती है तो पूर्ति कितना दुख लाएगी। बीज को जब इतनी सुविधा मिली तो वह इतना जहरीला फल लाया है। पूरी सुविधा मिलती तो कितना जहरीला फल लाता। तो प्रत्येक इच्छा दुख मे ले जाती है लेकिन सुख मे ले जाने का आश्वासन देती है। प्रत्येक नाव दुख की है लेकिन सुख के घाट उतार देने का वचन है। और हजार बार हम नाव मे बैठते हैं रोज और हजार बार दुख की नाव दुख के घाट पर उतार देती है। लेकिन हम कहते हैं कि कही कोई भूल हो गई है अन्यथा ऐसा कैसे हो सकता है कि जो नाव सुख के घाट की ओर चली थी वह दुख के घाट पर पहुच जाए। लकिन हम यह कभी नही पूछते कि कही नाव ही तो दुख की नही है। सवाल घाट का नही है। सवाल यह नही है कि आप कहा पहुचेंगे। सवाल यह है कि आप कहा से चलते हैं, आप किस पर सवार हैं। यह सवाल ही नही कि फल कैसा होगा। सवाल यह है कि बीज कैसा बोया? जीसस कहते हैं कि जो बोओगे वही तुम काटोगे, लेकिन काटते वक्त पछताना मत। पछताना हो तो बोते वक्त। काटते वक्त पछताने का क्या सवाल? फिर तो काटना ही पडेगा, लेकिन हम सब काटना कुछ और चाहते हैं, बोते कुछ और है। और यह जो द्वन्द्व है चित्त का कि बोते कुछ और हैं और काटना कुछ और चाहते है, हमे भटका सकता है अनन्त काल तक, अनन्त जन्मो तक, और इस भ्रम को तोड़ देने की जरूरत है—इससे जाग जाने की जरूरत है और एक सूत्र समझ लेने की जरूरत है कि जो हम बोते हैं वही हम काटते है। हो सकता है कि बीज पहचान मे न आता हो। क्योकि बीज जाहिर नही है, अप्रकट है, अभी अभिव्यक्त नही हुआ है। यहां एक बीज रखा है। हो सकता है न पहचान सके कि इसका वृक्ष कैसा होगा? क्योकि बीज मे वृक्ष है लेकिन दिखाई नही पडता। जीसस कहते हैं कि जो तुम बोते हो वही तुम काटते हो। मै इससे उल्टी बात भी जोड़ देना चाहता हूं कि जो तुम काटो समझ लेना कि वही तुमने बोया था क्योंकि

हो सकता है कि बोते वक्त तुम न पहचान सके हो। बोते वक्त पहचानना जरा कठिन भी है क्योंकि बीज मे कुछ दिखाई नहीं पड़ता साफ-साफ। बीज क्या होगा? जहर होगा कि अमृत होगा? तो हो सकता है कि बोते वक्त भूल हो गई हो लेकिन काटते वक्त तो भूल नही हो सकती। हो सकता है कि नाव मे बैठते वक्त ठीक से न समझ पाए हो कि नाव क्या है, लेकिन घाट पर उतरते वक्त तो समझ पाओगे कि घाट कैसा है। नाव ने कहां पहुंचा दिया है, यह तो समझ मे आ जाएगा। तो काटते वक्त देख लेना। अगर दुख कटा हो तो जान लेना कि दुख बोया था और तब जरा समझने की कोशिश करना कि आगे दुख के बीज को तुम पहचान सको कि वह कौन-कौन से बीज हैं जो दुख ले आते हैं। कितनी बार ईर्ष्या दुख लाती है, कितनी बार घृणा दुख लाती है, कितनी बार क्रोध दुख लाता है। लेकिन हम हैं कि फिर उन्ही का बीज बोए चले जाते है। और बार बार हम पछताते हैं कि यह दुख क्यो? दुख हमे झेलना नही और बीज दुख के ही बोते हैं। और इस द्वन्द्व मे कितना समय हम व्यतीत करते हैं, कितने जन्म और कितने जीवन। लेकिन द्वन्द्व हमे दिखाई नही पड़ता क्योकि हमारी खूबी यह है, हमारा मजा यह है, हमारी आत्मवचना यह है कि हम सिर्फ जो कटता है उस वक्त नाराज होते हैं कि यह कैसी चीज कटी। लेकिन जो हमने बोया है, हम उसका ख्याल ही नही करते। अगर सही नही कटा है तो सही नही बोया था। और दोनो के तार-तम्य को समझ लेना जरूरी है ताकि कल हम सही बोएं। जिस घाट पर उतरे हैं, वहा खतरा है हमारी नाव को लेकिन हम कल फिर उसी नाव पर बैठ गये हैं और दूसरे घाट पर उतरने की घटना फिर घटती है। और हैरानी यह है कि आदमी रोज-रोज वही-वही भूल करता है, नयी भूलें नही करता। नयी भूल भी कोई करे तो कही पहुच जाए। भूल भी पुरानी ही करता है। लेकिन कुछ ऐसा है कि पीछे जो हमने किया उसे हम भूल जाते हैं और फिर से हम वही सोचने लगते हैं।

एक आदमी ने अमेरिका में आठ विवाह किए। उसने पहला विवाह किया बड़ी आशाओ से जैसा कि सभी लोग करते हैं। लेकिन सब आशाएं महीने मे मिट्टी मे मिल गई। तो उसने सोचा कि औरत ठीक नही मिली जैसा कि सभी आदमी समझते हैं। उसकी सभी आशाए धूमिल हो गई। तो उसने तलाक दे दिया। फिर साल भर लगाकर उसने दूसरी स्त्री बमुश्किल खोजी और वह अब बड़ा खुश था क्योकि अब पहले अनुभव के बाद उसने खोज-बीन की थी। फिर

उतनी आशाओं के साथ उसने पाया कि छः महीने में सब गड़बड़ हो गया है। तो उसने समझा कि फिर स्त्री ठीक नहीं मिली है। इस आदमी ने आठ शादियां की जीवन में और हर बार यही हुआ। आठवीं शादी के बाद वह एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं आठ विवाह कर चुका और जिन्दगी गवा चुका लेकिन हर बार वैसी की वैसी औरत मिली। तब वैज्ञानिक ने कहा कि वह तो ठीक है लेकिन तुम्हारी खोजबीन का मापदण्ड क्या था? अगर कसौटी वह थी जिससे तुमने पहली औरत को कसा था तो कसौटी फिर भी वही रही होगी जिससे तुमने दूसरी औरत को कसा। और हर बार तुम उस टाइप की स्त्री को खोज लाए जिस टाइप की स्त्री को तुम खोज सकते थे। तुम जिस तरह के आदमी हो उस तरह का आदमी जैसी स्त्री को खोज सकता था, तुम खोज लाए। हो सकता है कि बहुत पुराने दिनों मे इसी अनुभव के आधार पर एक ही विवाह की व्यवस्था कर ली गई हो। क्योंकि एक आदमी एक ही तरह की स्त्रिया खोज सकता है साधारणत: यानी इससे कोई फर्क नही पडता। हर बार नाप बदल जाएगा, शकल बदल जाएगी लेकिन स्त्री वह वैसी ही खोज लाएगा जैसा उसका दिमाग है। उस दिमाग से वह वैसी ही स्त्री फिर खोज लाएगा। फिर बार-बार फिजूल की परेशानी मे क्यो पडना। कुछ समझदार लोगो ने कहा हो कि एक ही विवाह काफी है, एक ही दफा खोज लो वही बहुत है। और यह भी हो सकता है कि उसी अनुभव के आधार पर व्यक्ति खोजेगा जो उसका पहला अनुभव होगा, इसलिए उसमे भूल होजाना निश्चित है। इसलिए मा बाप जिन्हें ये अनुभव हो चुके हैं उसके लिए खोजते हैं। जो इस अनुभव से गुजर चुके हैं और बेवकूफी भोग चुके हैं और नासमझी झेल चुके हैं, वे शायद ज्यादा ठीक से खोज सकें। और आदमी की जो पहली खोज होगी वह उसमें भूल करेगा। इसलिए हो सकता है कि वह मा-बाप पर छोड़ दिया गया हो। इधर निरन्तर अनुभव के बाद कुछ मनोवैज्ञानिक अमेरिका में यह कहने लगे हैं कि बाल-विवाह शुरू कर दो। यह बात भी दुखद है कि मां-बाप बच्चे का विवाह तय करें। लेकिन जैसी स्थिति है उससे यही सुखद मालूम पड़ता है। इससे भिन्न होना अभी कठिन है और यह हो सकता है कि जब हम दुख के बीजों को समझ लें तो हम जो खोज करें वह और तरह की हो। हम जिस नाव पर सवार हो वह और तरह की हो जीवन के सब मामलों में। सुख दुख को अलग मत समझना। सुख दुख को एक समझना। हां, जरा देरी लगती है दोनों को मिलने में। फासला है।

फासले की वजह से दो समझ लिए जाते हैं। दृष्टि छोटी है और फासला बड़ा है। हमको कमरे की दोनो दीवारे दिखाई पडती हैं। और हम जानते हैं कि दोनों दीवारे इसी कमरे की है और हम ऐसी भूल न करेंगे कि यह दीवार बचा ले और यह मिटा दें। क्योकि ऐसी भूल हम करेंगे तो दीवार भी गिरेगी और मकान भी गिरेगा। अगर दीवारें गिरानी हो तो दोनो को गिरा दो, न गिरानी हो तो दोनों को बचने दो क्योंकि दोनो दीवारें दिखाई पडती हैं। लेकिन कमरा इतना बडा हो सकता है कि जब भी हमे दिखाई पडती हो एक ही दीवार दिखाई पडती हो। दूसरी दीवार इतने फासले पर है कि हम कभी सोच ही न पाते हो कि यह कमरा और यह दीवार उसी दीवार से जुडे है और यह वही कमरा है। उसमे फासले बड़े हैं और आदमी की दृष्टि बडी छोटी है। ज्यादा देर तक वह देख नहीं पाता, उसे खबर नही हो पाती कि कब मैंने क्या बोया था, कब मैं क्या काट रहा हू। यह दूसरी दीवार है। और ये दोनो एक हैं। आदमी को ठीक मे दृष्टि मिल जाए दूर तक देखने की तो हम उसे अपने सुखो की आकाक्षा मे छिपा हुआ पाएगे। हमारे सब दुख हमारे सुख की आशाओ मे ही पैदा किए गए हैं। हमारे सब दुख हमने ही सुख की सम्भावनाओ मे बोए हैं। काटते वक्त दुख निकलें, सम्भावनाए सुख की हैं। बीज हमने दुख के ही बोए हैं। इसे हम देखे, अपनी जिन्दगी मे खोजें। अपने दुख को देखें और पीछे लौट कर देखे कि हम कैसे उनको बोते चले आए हैं। और कहीं ऐसा तो नही कि आज भी हम वही कर रहे हैं।

आखिर यह दिखाई पड जाए तो तुम सुख की आशा को छोड़ दोगे। सुख की आशा एक दुराशा है, असम्भावना है। अगर ऐसा दिखाई पड जाए कि जीवन मे सुख की सम्भावना ही नही है, दुख ही होगा चाहे तुम उसे कितना ही सुख कहो, आज नही कल वह दुख हो जाएगा। अगर जिन्दगी में दुख की ही सम्भावना है तो सुख की आशा छूट जाती है। और जिस व्यक्ति की आशा छूट जाती है वह दुख के साथ सीधा खडा हो जाता है। भागने का उपाय न रहा। यहा दुख है, और यहा मैं हू और हम आमने-सामने हैं। और मजे की बात यह है कि जो आदमी दुख के सामने खडा हो जाता है उसका दुख ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी था ही नहीं। तब दुख नहीं जीत पाता क्योंकि तब दुख के जीतने की तरकीब ही गई। तरकीब थी सुख की सम्भावनाओ मे। दुख के जीत की जो तरकीब थी, वह थी सुख की सम्भावना में। वह सुख की सम्भावना नहीं रही। दुख यहां सामने खड़ा है और मैं यहां खड़ा

हूं। और अब कोई उपाय नहीं है, न मेरे भागने का, न दुख के भागने का। दुख और हम हैं आमने-सामने। यह साक्षात्कार है। इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है वह यह है कि दुख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने मे वापिस लौट आता हू क्योकि सुख पर जाने की चेष्टा छोड देता हूं। सुख मे जाने का एक रास्ता था, वह रास्ता मैंने छोड दिया है। अब दुख के सामने सीधा खडा हो गया हू। अब यह एक ही रास्ता है कि मैं अपने मे लौट आऊं क्योकि दुख मे तो कोई रह ही नही सकता, या तो सुख की आशा मे भागेगा या अपने पर लौट आएगा; या आनन्द मे चला जाएगा या सुख मे चला जाएगा। सुख मे हम जाते रहे हैं। और आनन्द मे नही पहुच पाए। अगर दुख मे हम सीधे खडे हो जाए तो हम आनन्द मे पहुंच जाते हैं। आनन्द सुख में नही है। आनन्द सुख दुख का अभाव है। आनन्द मे न सुख है न दुख है। इसलिए बुद्ध ने आनन्द शब्द का प्रयोग नही किया है। बुद्ध ने बहुत समझ कर शब्दो का प्रयोग किया है। इतनी समझ किसी आदमी ने नही दिखाई क्योकि आनन्द मे कितना ही समझाओ सुख का भाव छुपा हुआ है। यानी कितना भी मैं समझाऊ कि आनन्द सुख नही है आप फिर भी कहेगे कि आनन्द कैसे मिले? और जब आप कहेगे तब आपके मन में यही होगा कि सुख कैसे मिले? शब्द बदल लेंगे लेकिन भाव सुख का ही रहेगा तो आप कहेग कि ठीक है, फिर तरकीब बताइए कि आनन्द कैसे पाया जाए। दुख है तो दुख से कैसे बचा जाए? कोई विधि बताइये कि हम आनन्द कैसे पा लें और आनन्द तो पाना जरूरी है। और अगर गहरे मे देखेंगे तो आप आनन्द शब्द का प्रयोग ठीक नही कर रहे हैं। आप कह रहे हैं कि सुख पाना जरूरी है। सुख कैसे पाया जाए? दुख से कैसे बचा जाए? बहुत कठिन है आदमी को समझाना कि आनन्द सुख नही है और आमतौर पर हम दोनो का पर्याय-वाची प्रयोग करते हैं कि आदमी सुखी है, बडे आनन्द मे है। बुद्ध ने इसलिए प्रयोग किया 'शांति'। वह आनन्द नही कहते हैं। आनन्द शब्द ठीक नही है, खतरनाक है। शांति मे भाव बिल्कुल दूसरा है। शांति का अर्थ है न सुख न दुख, सब शान्त। कोई तरग नही है न दुख की, न सुख की। न सुख का भाव है न दुख का भाव है। न कही जाना है, न कही आना है। ठहर गया है सब। रुक गए हैं, मौन हैं, चुप हैं। झील पर एक भी लहर नही है। इसलिए बुद्ध कहते हैं: मैं आनन्द का आश्वासन नहीं देता। क्योकि मैं तुम्हे आनन्द का आश्वासन दूंगा और तुम सुख का आश्वासन लोगे। कठिनाई यह है कि बात

आनन्द की की जाएगी, समझी सुख की जाएगी क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है ।

चर्चा : तेरह
२.१०.६६ प्रातः

१३

महावीर पर इतने दिनो तक आनन्दपूर्ण बात की। यह ऐसे ही था जैसे मैं अपने सम्बन्ध मे बात कर रहा हू। पराये के सम्बन्ध मे बात नहीं की जा सकती। दूसरे के सम्बन्ध मे कुछ कहा नही जा सकता। अपने सम्बन्ध में ही सत्य कहा जा सकता है। अब महावीर पर इस भांति मैंने बात नहीं की जैसे वे कोई दूसरे और पराये हैं। जैसे हम अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध मे ही बात कर रहे हो ऐसी ही मैंने उन पर बात की है। उन्हें केवल निमित्त माना है और उनके चारो ओर उन सारे प्रश्नो पर चर्चा की है जो प्रत्येक साधक के मार्ग पर अनिवार्य रूप से खड़े हो जाते हैं। महत्वपूर्ण भी यही है। महावीर उस दार्शनिक की भाति नही हैं। एक सिद्ध, एक महायोगी हैं। दार्शनिक तो बैठ कर विचार करता है जीवन के सम्बन्ध मे। योगी जीता है जीवन में। दार्शनिक पहुचता है सिद्धान्तो पर, योगी पहुचता है सिद्धावस्था पर। सिद्धान्त बातचीत है, सिद्धावस्था उपलब्धि है। महावीर पर ऐसी ही बात की है जैसे वे कोई मात्र कोरे विचारक नही हैं। और इसलिए भी बात की है कि जो इस बात को सुनेंगे, समझेंगे, वे भी जीवन मे कोरे विचारक न रह जाएं। विचार अद्भुत है लेकिन पर्याप्त नही। विचार कीमती हैं, लेकिन कहीं पहु-चाता नही। विचार से ऊपर उठे बिना कोई भी व्यक्ति आत्म-उपलब्धि तक नही पहुचता है। महावीर कैसे विचार से उठे, कैसे ध्यान से, कैसी समाधि से ये सब बातें हमने की, कैसे महावीर को परम जीवन उपलब्ध हुआ और कैसे परम जीवन की उपलब्धि के बाद भी वे अपनी उपलब्धि की खबर देने वापिस लौट आए—ऐसी करुणा की भी हमने बात की। जैसे कोई नदी सागर में गिरने के पहले लौट कर देखे एक क्षण को, ऐसे ही महावीर ने अपनी अनन्त जीवन की यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पीछे लौट कर देखा है। लेकिन उनके पीछे लौटकर देखने को केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अपने जीवन की अन्तिम यात्रा की ओर आगे देख रहे हैं। महावीर पीछे लौट कर उन्हें देखें लेकिन हम उन्हें तभी समझ सकते हैं जब हम भी अपने जीवन के आगे के पड़ाव की ओर देख रहे हों। अन्यथा महावीर को नही समझा जा सकता।

साधारणतः महावीर को दो हजार पांच सौ वर्ष हुए। वह अतीत की घटना है। इतिहास यही कहेगा। मैं यह नहीं कहूंगा। साधक के लिए महावीर भविष्य की घटना है। उसके जीवन मे आने वाले किसी क्षण में वह वहां पहुंचेगा जहा महावीर पहुंचे हैं। और जब तक हम उस जगह न पहुंच जाए तब तक महावीर को समझा नही जा सकता है। क्योंकि उस अनुभूति को हम कैसे समझेंगे जो अनुभूति हमे नही हुई है। अन्धा कैसे समझेगा प्रकाश के सम्बन्ध मे। और जिसने कभी प्रेम नही किया वह कैसे समझेगा प्रेम के सम्बन्ध मे। हम उतना ही समझ सकते हैं जितने हम हैं, जहा हम हैं। हमारे होने की स्थिति से हमारी समझ ज्यादा नही होती। इसलिए महापुरुष के प्रति अनिवार्य होता है कि हम नासमझी मे रहे। महापुरुष को समझना अत्यन्त कठिन है बिना स्वय महापुरुष हुए। जब तक कि कोई व्यक्ति उस स्थिति मे खड़ा न हो जाए जहा कृष्ण है, जहा क्राइस्ट है, जहा मुहम्मद है, जहा महावीर है तब तक हम समझ नही पाते। और जो हम समझते हैं वह अनिवार्यरूपेण भूल भरा होता है। इसलिए एक बात ध्यान मे रखनी चाहिए। महावीर को समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना सम्भव नहीं है। महावीर को समझना हो तो बहुत गहरे मे स्वय को समझना और रूपान्तरित करना ज्यादा जरूरी है। लेकिन हम तो शास्त्र से समझने जाते है और तब भूल हो जाती है। शब्द से, सिद्धान्त से, परम्परा से समझने जाते हैं तब भूल हो जाती है। हम तो स्वय के भीतर उतरेंगे तो उस जगह पहुचेंगे जहा महावीर कभी पहुंचे हो। तभी हम समझ पाएगे। मैंने जो बातें की इन दिनो मे, उन बातो का शास्त्रों से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए हो सकता है कि बहुतों को वे बातें कठिन भी मालूम पड़े, स्वीकारयोग्य भी न हों, जिनकी शास्त्रीय बुद्धि है, उन्हें अत्यन्त अजीब मालूम पड़ें और वे शायद पूछे कि शास्त्रो मे यह सब कहां है तो उनसे मैं पहले ही कह देना चाहता हू कि शास्त्रो मे हो या न हो, जो स्वयं में खोजेगा वह इनको पा लेगा और स्वय से बड़ा न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता है। वे मुझसे यह भी पूछ सकते हैं कि मैं किस अधिकार से कह रहा हू। तो उनसे पहले यह भी कह देना उचित है कि मेरा कोई शास्त्रीय अधिकार नही है। मैं शास्त्रो का विश्वासी नहीं हूं बल्कि जो शास्त्र में लिखा है, वह मुझे इसीलिए सदिग्ध हो जाता है कि शास्त्र में लिखा है। क्योंकि वह लिखने वाले के चित्त की खबर देता है। मगर जिसके सम्बन्ध में लिखा गया है, उसके चित्त की नही। फिर हजारो वर्षों की धूल उस पर जम जाती है। और शास्त्रो

पर जितनी धूल जम गई है उतनी किसी और चीज पर नहीं जमी है।

मुझे एक घटना स्मरण आती है। एक आदमी एक घर में 'शब्दकोष' बेचने गया। घर की गृहिणी ने उसे टालने के लिए उससे कहा कि 'शब्द कोष' हमारे घर मे है। वह सामने टेबिल पर रखा है। लेकिन उस आदमी ने कहा : देवी जी, क्षमा करे, वह कोई शब्दकोष नही है, वह कोई धर्मग्रन्थ मालूम होता है। स्त्री बडी परेशान हुई। वह धर्मग्रन्थ था। पर दूर से टेबिल पर रखी किताब को कैसे वह व्यक्ति पहचान गया। उस देवी ने पूछा कैसे आप जान गये कि वह धर्मग्रन्थ है। उसने कहा उस पर जमी हुई धूल बता रही है। शब्दकोष पर धूल नही जमती। उसे कोई रोज खोलता है, देखता है, पढ़ता है। उसका उपयोग होता है। उस पर इतनी धूल जमी है कि यह निश्चित ही धर्मग्रन्थ है। सब धर्मग्रन्थो पर धूल जम जाती है क्योंकि न तो हम उनमें जीते हैं, न जानते हैं। फिर धूल इकट्ठी होती चली जाती है। सदियो की धूल इकट्ठी होती चली जाती है। उस धूल मे से पहचानना मुश्किल हो जाता है कि क्या क्या है ? इसलिए मैंने महावीर और अपने बीच शास्त्र को नही लिया है। उसे अलग ही रखा है। महावीर को सीधा देखने की कोशिश की है। और सीधा हम उसे ही देख सकते हैं जिससे हमारा प्रेम हो। जिससे हमारा प्रेम न हो उसे हम कभी सीधा नही देख सकते। और वही हमारे सामने पूरी तरह प्रकट होता है जिससे हमारा प्रेम हो। जैसे सूरज के निकलने पर कली खिल जाती है और फूल बन जाती है। ऐसा ही जिससे भी हम आत्यन्तिक रूप से प्रेम कर सके, उसका जीवन बंद कली से खुले फूल का जीवन हो जाता है। जरूरत है कि हम प्रेम कर पाएं। ज्ञान की जरूरत कम है, ज्ञान तो दूर ही कर देता है और ज्ञान से शायद ही कोई किसी को जान पाता हो। सूचनाएं बाधा डाल देती हैं। सूचनाओं से शायद ही कोई कभी किसी से परिचित हो पाता हो। वे बीच मे खड़ी हो जाती हैं। वे पूर्वाग्रह बन जाती हैं, पक्षपात बन जाती हैं। हम पहले से ही जानते हुए होते हैं। जो हम जानते हुए होते हैं वही हम देख भी लेते हैं। जो महावीर को भगवान मान कर जाएगा उसे महावीर मे भगवान भी मिल जाएंगे। लेकिन वह उसके अपने आरोपित भगवान हैं। जो महावीर को नास्तिक, महानास्तिक मान कर जाएगा उसे नास्तिक, महानास्तिक भी मिल जाएगा। वह नास्तिकता उसकी अपनी रोपी हुई होगी। जो महावीर को मान कर जाएगा वही पा लेगा। क्योंकि गहरे में हम अन्ततः अपनी मान्यता को निर्मित कर लेते हैं और खोज लेते हैं, और व्यक्ति इतनी बड़ी घटना है कि

उसमें सब मिल सकता है। फिर हम चुनाव करते है। जो हम मानते जाते हैं, वह हम चुन लेते हैं। और तब जो हम जानते है वह जानते हुए लौटना नहीं है। वह हमारी ही मान्यता की प्रतिध्वनि है। प्रेम को जानने का रास्ता दूसरा है, ज्ञान को जानने का रास्ता दूसरा है। ज्ञान पहले जान लेता है, फिर खोज पर निकलता है। प्रेम जानता नही। खोज पर निकल जाता है। अज्ञान मे, अपरिचित में। प्रेम सिर्फ अपने हृदय को खोल लेता है, प्रेम सिर्फ दर्पण बन जाता है कि जो भी उसके सामने आएगा, जो भी जो है, वही उसमे प्रतिफलित हो जाएगा। इसलिए प्रेम के अतिरिक्त कोई कभी किसी को नही जान सका है। हम सब ज्ञान के मार्ग से ही जानते हैं, जीते हैं इसलिए नही जान पाते। महावीर को प्रेम करेंगे तो पहचान जाएंगे, कृष्ण को प्रेम करेंगे तो पहचान जाएगे। और भी एक मजे की बात है कि जो महावीर को प्रेम करेगा, वह कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को प्रेम करने से बच नही सकता। अगर महावीर को प्रेम करने वाला ऐसा कहता हो कि महावीर से मेरा प्रेम है, इसलिए मैं मुहम्मद से कैसे प्रेम करू, तो जानना चाहिए कि प्रेम उसके पास नही है। क्योंकि अगर महावीर से प्रेम होगा तो जो उसे महावीर मे दिखाई पडेगा वही बहुत गहरे मे मुहम्मद मे, कृष्ण मे, क्राइस्ट मे, कनफ्यूसियस मे भी दिखाई पड जाएगा, जरथुस्त मे भी दिखाई पड जाएगा। प्रेम प्रत्येक कली को खोल लेता है जैसे सूरज प्रत्येक कली को खोल लेता है। पखुड़िया खुल जाती हैं। और तब अन्त मे सिर्फ फूल का खिलना रह जाता है। पखुडिया गैर अर्थ की हो जाती हैं, सुगध बेमानी हो जाती है, रग भूल जाते है। और अन्ततः प्रत्येक फूल मे जो घटना गहरी रह जाती है, वह है उसका खिल जाना। महावीर खिलते हैं एक ढग से, कृष्ण खिलते हैं दूसरे ढग से। लेकिन जिसने इस फूल के खिलने को पहचान लिया वह इस खिलने को सारे जगत में सब जगह पहचान लेगा। इन व्यक्तियो मे से एक से भी कोई प्रेम कर सके तो वह सबके प्रेम मे उतर जाएगा, लेकिन दिखाई उल्टा पड़ता है। मुहम्मद को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करना तो दूर, घृणा करता है। बुद्ध को प्रेम करने वाला, क्राइस्ट को प्रेम नहीं करता है। तब हमारा प्रेम सदिग्ध हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि हमारा प्रेम, प्रेम नही है। शायद यह भी गहरे मे कोई स्वार्थ है, कोई सौदा है। शायद हम अपने प्रेम के द्वारा भी महावीर से कुछ पाना चाहते हैं। शायद हमारा प्रेम भी एक गहरे सौदे का निर्णय है कि हम इतना प्रेम तुम्हें देंगे, तुम हमे क्या दोगे। और तब हम अपने प्रेम में सकीर्ण होते चले जाते हैं और तब

प्रेम इतना सीमित हो जाता है कि घृणा में और प्रेम मे कोई फर्क नहीं रह जाता। क्योकि जो प्रेम एक पर प्रेम बनता हो, और शेष पर घृणा बन जाता हो वह एक पर भी कितने दिन प्रेम रहेगा। घृणा हो जाएगी बहुत। महावीर को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करेगा और शेष को अप्रेम करेगा। अप्रेम इतना ज्यादा हो जाएगा कि वह प्रेम का बिन्दु कब विलीन हो जाएगा, पता भी नहीं चलेगा। घृणा के बड़े सागर मे प्रेम की छोटी सी बूद को कैसे बचाया जा सकता है। वह तो प्रेम के बडे सागर मे ही प्रेम की बूद बच सकती है। घृणा के बडे सागर मे प्रेम की बूद नही बचाई जा सकती। लेकिन हम चाहते हैं कि हमारे प्रेम की बूद बच जाए और शेष घृणा का सागर हो।

एक मुसलमान फकीर औरत हुई राबिया। कुरान मे एक जगह वचन आता है. "शैतान को घृणा करो"। तो उसने उस वचन पर स्याही फेर दी। लेकिन कुरान में कोई सुधार करे, यह तो उचित नही है। हसन नाम का एक फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह उसने कुरान पढ़ने को उठाई तो देखा उसमे सुधार किया गया है। तो उसने कहा कि यह कौन नासमझ है जिसने कुरान मे सुधार किया है। कुरान मे तो सुधार नही किया जा सकता। राबिया ने कहा कि मुझ को ही सुधार करना पडा। हसन ने कहा कि तू नास्तिक मालूम होती है। कुरान और सुधार करने की तेरी हिम्मत ! यह तो बड़ा पाप है। राबिया ने कहा . पाप हो या नही, मुझे पता नही। उसमे एक वाक्य था। लिखा है कि शैतान को घृणा करो। लेकिन मेरे मन से तो घृणा चली गई। शैतान भी मेरे सामने खडा हो जाए तो मैं घृणा करने मे असमर्थ हू। मैं शैतान को भी प्रेम ही कर सकती हू। यह अब अनिवार्यता हो गई है क्योकि प्रेम के अतिरिक्त मेरे हृदय मे कुछ नही रहा है। शैतान के लिए भी घृणा कहा से लाऊ ? और राबिया ने कहा कि एक नई बात तुम्हे बताऊ कि जब तक मेरे मन मे घृणा थी तब तक परमात्मा के लिए भी प्रेम करने का उपाय न था। क्योकि हृदय में घृणा हो तो परमात्मा के लिए प्रेम कैसे लाओगे ? प्रेम आएगा कहां से, आसमान से तो नहीं आएगा, हृदय से आएगा। और एक ही हृदय में दोनो का अस्तित्व साथ-साथ नही होता। जिस हृदय में घृणा है वहा प्रेम का निवास नहीं और जिस हृदय मे प्रेम है वहा घृणा का निवास नहीं। वह ऐसे ही है कि जिस कमरे मे उजाला है वहा अंधकार नही, जिस कमरे में अंधेरा है वहां उजाला नहीं। तो राबिया ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। अगर शैतान को घृणा करनी है तो मैं चाहे मानूं या

न मानूं, परमात्मा को भी घृणा करती रहूंगी। नाम प्रेम के दूंगी लेकिन वे झूठे होंगे क्योंकि घृणा करने वाले चित्त में प्रेम कहां? और अगर मुझे परमात्मा को प्रेम करना है तो मुझे शैतान को भी प्रेम करना पड़ेगा। क्योंकि प्रेम करने वाले हृदय मे घृणा की सम्भावना कहां? इसलिए मुझे यह लकीर काट देनी पडी। भले इसके लिए कितना ही पाप लगे अब इसके लिए कोई उपाय नहीं। यह राबिया ने ठीक कहा। या तो हमारा हृदय प्रेमपूर्ण होगा या घृणापूर्ण होगा। यह असम्भव है कि एक व्यक्ति महावीर को प्रेम करता हो और बुद्ध को प्रेम न करे। महावीर की बात दूसरी है, सच तो यह है कि एक व्यक्ति प्रेम करता हो तो वह प्रेम ही कर सकता है। बुद्ध, महावीर का भी सवाल नहीं, साधारण जनों को भी प्रेम कर सकता है। यह प्रेम करना अब कोई सौदा नही है। अब यह उसका स्वभाव है। अब कोई उपाय ही नही है। अब वह प्रेम ही करेगा जैसे कि रास्ते के किनारे एक फूल खिला हो। फूल से सुगन्ध गिरती हो। रास्ते से कौन निकलता है यह फूल थोड़े ही पूछता है। अच्छा कि बुरा, अपना कि पराया, मित्र कि शत्रु—फूल नहीं पूछता। फूल की सुगन्ध रास्ते पर फैलती रहती है और जो भी रास्ते से निकलता है उसको सुगन्ध मिलती है। ऐसा भी नही कि फूल जब चाहे सुगन्ध को रोक ले, जब चाहे छोड़ दे। ऐसा भी नही है कि रास्ता खाली हो जाए तो फूल अपनी सुगन्ध को रोक ले। खाली रास्ते पर भी फूल की सुगन्ध गिरती रहती है क्योंकि सुगन्ध फूल का स्वभाव है। जिस दिन प्रेम स्वभाव हो जाता है, उस दिन हम प्रेम ही कर सकते हैं। इसलिए मैं यह कहना चाहता हू कि अगर प्रेम *सीमित और सकीर्ण हो तो जानना कि वह प्रेम नहीं है। वह घृणा का ही* एक रूप है। और इसलिए अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नहीं होता। अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नहीं होता क्योंकि जो प्रेमपूर्ण है, वह कैसे अनुयायी होगा? या तो वह सबका अनुयायी होगा या किसी का अनुयायी नहीं होगा। उसका प्रेम इतना विस्तीर्ण है कि वह किसके पीछे जाएगा? क्योंकि एक के पीछे जाने मे दूसरे को छोड़ना पड़ता है और एक के पीछे जाने में हजार को छोड़ना पड़ता है। और जिसका प्रेम इतना बड़ा है वह किसी को भी नहीं छोड़ सकता, वह किसी के भी पीछे नहीं जाता। वह अनुयायी नहीं रह जाता। इसलिए मैंने कहा कि मैं महावीर का अनुयायी नहीं हूं, न बुद्ध का, न कृष्ण का। क्योंकि किसी एक के पीछे जाने से सबको छोड़े बिना कोई रास्ता नहीं। इसलिए मैं किसी के पीछे नहीं गया हूं और न कहता हूं कि कोई किसी के पीछे जाए।

और भी एक मजे की बात है कि जो किसी के पीछे जाएगा, वह अपने भीतर नहीं आ सकता। क्योंकि पीछे जाने की दिशा होती है बाहर, और भीतर आने की दिशा होती है भीतर। तो जो किसी का भी अनुयायी है, वह आत्म-अनुभव को उपलब्ध नहीं हो सकता क्योंकि उसे जाना पड़ता है किसी के पीछे। और आत्म-अनुभव में सबको छोड़कर उसे आना है स्वयं के भीतर; इसलिए मैं कहता हूं कि जो सबको प्रेम करता है उसे किसी को पकड़ने का उपाय नहीं रहता। सब छूट जाते हैं और वह अपने भीतर आ सकता है। यह भी समझ लेने की बात है कि प्रेम अकेला मुक्त करता है। घृणा बांधती है और जो प्रेम भी बांधता हो, मैं कहता हूं, वह भी घृणा का ही रूप है। क्योंकि प्रेम बांधता ही नहीं; प्रेम एकदम मुक्त कर देता है। प्रेम का कोई बंधन नहीं है। प्रेम न किसी पर ठहरता है न किसी पर रुकता है, न किसी को रोकता है न किसी को ठहराता है। प्रेम की न कोई शर्त है, न कोई सौदा है? प्रेम तो परम मुक्ति है। एक को भी अगर हम प्रेम कर लें तो हम पाएंगे कि एक जो था वह द्वार बन गया अनेक का। और कब एक मिट गया और प्रेम अनेक पर पहुंच गया है, कहना कठिन है। पर हम एक को भी प्रेम नहीं कर पाते। क्योंकि हम प्रेमपूर्ण नहीं हैं। हम ज्ञानपूर्ण हैं किन्तु प्रेमपूर्ण बहुत कम हैं। कारण कि ज्ञान संग्रह करना पड़ता है और प्रेम बांटना पड़ता है। जो चीज संग्रह करनी पड़ती है वह हम कर लेते हैं क्योंकि उससे हमारे अहंकार की तृप्ति मिलती है। हम धन इकट्ठा कर लेते हैं, ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं, त्याग इकट्ठा कर लेते हैं, जो भी चीज हम इकट्ठी कर सकते हैं, कर लेते हैं। लेकिन प्रेम का मामला उल्टा है। प्रेम अकेली घटना है जिसे हम इकट्ठा नहीं कर पाते, जिसको बांटना पड़ता है। प्रेम को आप इकट्ठा नहीं कर सकते। एक आदमी धन को इकट्ठा करके धनी हो जाएगा। लेकिन ऐसे ही कोई आदमी प्रेम को इकट्ठा करके प्रेमी नहीं हो सकता। प्रेम की धारा ठीक उल्टी है। जितना बांटो, उतना प्रेम। जितना इकट्ठा करो उतना कम। जिसकी इकट्ठी करने की वृत्ति है, वह प्रेमी नहीं हो सकता। पंडित की प्रवृत्ति इकट्ठी करने की होती है। वह ज्ञान इकट्ठा कर लेता है। ज्ञान इकट्ठा किया जा सकता है और फिर वह महावीर को या बुद्ध को या कृष्ण को जानने में असमर्थ हो जाता है। सच बात तो यह है कि फिर वह कृष्ण या बुद्ध या महावीर को जानता नहीं बल्कि अपने ज्ञान के आधार पर पुनः निर्मित करता है। वह फिर एक नया आदमी खड़ा कर लेता है जो कि कभी था ही

नहीं। वह उसके ज्ञान के अनुकूल व्यक्ति बना लेता है। इसलिए सभी महा-पुरुषों का चित्र झूठा हो जाता है। उन सबकी जो पीछे स्मृति बनती है, वह झूठी हो जाती है। वह हमारे द्वारा बनाई गई होती है। ज्ञान से कोई द्वार नही है किसी को समझने का, प्रेम से द्वार है। क्योंकि प्रेम नही कहता कि तुम ऐसे हो तो ही मैं मानूगा। प्रेम कहता है तुम जैसे हो, उसको मैं प्रेम करने के लिए तैयार हू। प्रेम कहता ही नही कि तुम ऐसे हो तो मै प्रेम करूगा। अगर मैं महावीर को प्रेम करता हू तो वह मुझे कपडे पहने हुए भी मिल जाए तो भी मैं प्रेम करूगा और वह नगे भी मिल जाए तो भी मैं प्रेम करूगा। लेकिन एक अनुयायी है। वह कहता है कि महावीर अगर नग्न हैं तो ही मैं प्रेम करूंगा। अगर वह नग्न नही हैं तो प्रेम नही है।

एक घटना घटी। मेरी एक मित्र महिला हालेंड गई थी। वहा कृष्णमूर्ति का एक अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। कुल छः सात हजार लोग सारी दुनिया से इकट्ठे हुए थे कृष्णमूर्ति को सुनने। वह मेरी परिचित महिला एक दूकान पर साझ को गई और उसके साथ दो और यूरोपियन महिलाए थी। वे तीनो एक छोटी-सी दूकान पर कुछ खरीदने गई हैं, वहा वह देखकर हैरान रह गई है क्योकि कृष्णमूर्ति वहा टाई खरीद रहे हैं। तो केवल यही बात बडी अजीब मालूम पडी कि कृष्णमूर्ति जैसा ज्ञानी एक साधारण सी दूकान पर टाई खरीदता हो। ज्ञानी तो खत्म ही हो गया उसी क्षण। और फिर न केवल टाई खरीद रहे हैं बल्कि यह टाई लगाकर देखते हैं, वह टाई लगाकर देखते हैं, यह भी पसद नही पडती, वह भी पसद नही पडती। सारी दूकान की टाई फैला रखी हैं। तो वे तीनो महिलाओ के मन मे बडा सन्देह भर गया कि हम किस व्यक्ति को सुनने इतनी दूर से आई और वह व्यक्ति साधारण सी दूकान पर टाई खरीद रहा है। और वह भी टाई मे अभी रग मिला रहा है कि कौनसा मेल खाता है, कौन सा मेल नही खाता है। उन दो यूरोपियन महिलाओ ने मेरी परिचित महिला को कहा कि हम अब सुनने नहीं आएगी। बात खत्म हो गई है। एक साधारण आदमी को सुनने के लिए इतनी दूर से व्यर्थ परेशान हुई। जिसको अभी कपडो का भी ख्याल है इतना, उसको क्या ज्ञान मिला होगा। दोनो महिलाए सम्मेलन मे सम्मिलित हुए बिना लौट गईं। उस मेरी परिचित महिला ने जाकर कृष्णमूर्ति से कहा कि आपको पता नहीं है कि आपके टाई खरीदने मे कितना नुकसान हुआ। दो महिलाएं सम्मेलन छोड़कर चली गईं क्योकि वे यह नही मान सकती कि एक ज्ञानी व्यक्ति टाई खरीदता हो।

कृष्णमूर्ति ने कहा : चलो ! दो का मुझ से छुटकारा हुआ; दो का भ्रम टूटा, यह भी क्या कम है? कृष्णमूर्ति ने कहा कि क्या मैं टाई न खरीदू तो ज्ञानी हो जाऊंगा ? अगर ज्ञानी होने की इतनी सस्ती शर्त है तो कोई भी नासमझ उसे पूरी कर सकता है। अगर इतनी सस्ती शर्त से कोई ज्ञानी हो जाता तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता। लेकिन इतनी सस्ती शर्त पर मैं ज्ञानी नहीं होना चाहता। और इतनी सस्ती शर्त पर जो मुझे ज्ञानी मानने के लिए तैयार हैं, वे न माने यही अच्छा है, यही शुभ है।

लेकिन हम सब की ऐसी शर्तें होती हैं और शर्तें इसीलिए होती हैं कि हमारा कोई प्रेम नहीं है। हमारी अपनी धारणाएं हैं। इन धारणाओ पर हम कसने की कोशिश करते हैं आप ही को। और ध्यान रहे जितना अद्भुत व्यक्ति होगा उतना ही सारी धारणाओ को तोड देगा। वह किसी धारणा पर कसा नही जा सकता। असल में अद्भुत व्यक्ति का अर्थ ही यह है कि पुरानी कसौटिया उस पर काम नही करती। प्रतिभाशाली व्यक्ति न केवल खुद को निर्मित करता है बल्कि खुद को मापे जाने की कसौटियां भी निर्मित करता है। और इसलिए ऐसा हो जाता है कि महावीर जब पैदा होते हैं तो पुराने महापुरुषो के अनुयायी महावीर को पहचान नही पाते क्योंकि उनकी कसौटियां महावीर पर लागू नहीं पड़ती। पुराने महापुरुषो का जो अनुयायी है उसने धारणाए बना रखी हैं जिन्हे वह महावीर पर कसने की कोशिश करता है। महावीर उस पर नहीं उतर पाते इसलिए व्यर्थ हो जाता है। लेकिन महावीर का अनुयायी वही बातें बुद्ध पर कसने की कोशिश करता है और तब फिर मुश्किल हो जाती है। हमारा चित्त अगर पूर्वाग्रह से भरा है, महापुरुष तो दूर एक छोटे से व्यक्ति को भी हम प्रेम नही कर सकते। एक पत्नी पति को प्रेम नही कर पाती क्योंकि पति कैसा होना चाहिए, इसकी धारणा पक्की मजबूत है। एक पति पत्नी को प्रेम नही कर पाता क्योंकि पत्नी कैसी होनी चाहिए, शास्त्रों से सब उसने सीख कर तैयार कर लिया है और वही अपेक्षा कर रहा है। वह इस व्यक्ति को, जो सामने पत्नी या पति की तरह मौजूद है, देख ही नहीं रहा।

मैंने जो बातें महावीर के सम्बन्ध मे कही हैं, उन पर मेरा कोई पूर्वाग्रह नही है। किन्ही सूचनाओ के, किन्ही धारणाओ के, किन्ही मापदण्डों के आधार पर मैंने उन्हें नहीं कसा। मेरे प्रेम में वह जैसे दिखाई पड़ते हैं, वैसी मैंने बात की। और जरूरी नहीं है कि मेरे प्रेम में वे जैसे दिखाई पड़ते हैं वैसे आपके

प्रेम में भी दिखाई पड़ते हो। अगर वैसा भी मैं आग्रह करू तो मैं फिर आपसे धारणाओं की अपेक्षा कर रहा हूं। मैंने अपनी बात कही जैसा वे मुझे दिखाई पड़ते हैं, जैसा मैं उन्हे देख पाता हू। और इसलिए एक बात निरन्तर ध्यान मे रखनी जरूरी होगी कि महावीर के सम्बन्ध में जो भी मैंने कहा है, वह मैंने कहा है। और मैं उसमे अनिवार्य रूप से उतना ही मौजूद हू जितने महावीर मौजूद हैं। वह मेरे और महावीर के बीच हुआ लेन-देन है। उसमे अकेले महावीर नही हैं। उसमें अकेला मैं भी नही हू। उसमे हम दोनो हैं। और इसलिए बिल्कुल ही असम्भव है कि जो मैंने कहा है ठीक बिल्कुल वैसा ही किसी दूसरे को भी दिखाई पड़े। मैं किसी दूर वस्तु की तरह खड़े हुए व्यक्ति की बात नही कर रहा हू। मं तो उस महावीर की बात कर रहा हू जिसमे मं भी सम्मिलित हो गया हू, जो मेरे लिए एक आत्मगत अनुभूति बन गया है। जो मेरी बात को पढ़ेंगे उन्हें समझने मे बहुत कठिनाई और मुश्किल हो सकती है। सबसे बडी मुश्किल यह होगी कि वे उस जगह खडे नही हो सकते, जहा मैं खडे होकर देख रहा हू। लेकिन इतनी ही उनकी कृपा काफी होगी कि वे उसकी चिन्ता न करें। एक व्यक्ति ने एक जगह खडे होकर कैसे महावीर को देखा है, यह समझ भर लें। और फिर अपनी जगह से खडे होकर देखने की कोशिश करें। यह जरूरी नहीं कि उनका जो ख्याल होगा, वह मुझसे मेल खाए। मेल खाने की कोई जरूरत भी नहीं है। लेकिन अगर इतने निष्पक्ष भाव से मेरी बातों को समझा गया तो जो भी व्यक्ति इतने निष्पक्ष भाव से समझेगा, उसे महावीर को समझने की बड़ी अद्भुत कुशलता उपलब्ध होगी। अगर उसने बहुत गौर से समझा है तो वह महावीर को ही नही, बुद्ध को भी, मुहम्मद को भी, कृष्ण को भी समझने मे इतना ही समर्थ हो जाएगा।

इतिहास जो बाहर से दिखाई पडता है, लिखा जाता है। और जो बाहर से दिखाई पड़ता है, वह एक अत्यन्त छोटा पहलू होता है। इसलिए इतिहास बडी सच्ची बातें लिखते हुए भी बहुत बार असत्य हो जाता है। बर्क नाम का एक इतिहासज्ञ कोई पन्द्रह वर्षों से विश्व इतिहास लिख रहा था। दोपहर की बात है कि घर के पीछे शोर-गुल हुआ, दरवाजा खोलकर वह पीछे गया। उसके मकान के बगल से गुजरने वाली सड़क पर झगडा हो गया था। एक आदमी की हत्या कर दी गई थी। बड़ी भीड थी, सैकड़ों लोग इकट्ठे थे। आंखो देखे गवाह मौजूद थे और वह एक-एक आदमी से पूछने लगा कि क्या

हुआ। एक आदमी कुछ कहता है, दूसरा कुछ कहता है तीसरा कुछ कहता है। आंखों देखे गवाह मौजूद हैं। लाश सामने पड़ी है, खून सड़क पर पड़ा हुआ है। अभी पुलिस के आने में देर है। हत्यारा पकड लिया गया है। लेकिन हर आदमी अलग-अलग बात करता है। किन्हीं दो आदमियो की बातों में कोई ताल-मेल नहीं कि क्या हुआ? झगड़ा कैसे हुआ? कोई हत्यारे को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई मृतक को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई कुछ कह रहा है और कोई कुछ रहा है। वे सब आखों देखे गवाह हैं। बर्क खूब हसने लगा। लोगो ने पूछा, आप किसलिए हस रहे हैं। आदमी की हत्या हो गई है। उसने कहा कि मैं और किसी कारण से हस रहा हू। अन्दर आया और वह पन्द्रह वर्षों की जो मेहनत थी उसमे आग लगा दी और अपनी डायरी मे लिखा कि मैं हजारो साल पहले की घटनाओ पर इतिहास लिख रहा हूं। मेरे घर के पीछे एक घटना घट गई है जिसमे चश्मदीद गवाह मौजूद हैं। फिर भी किसी का वक्तव्य मेल नही खाता। हजार-हजार साल पहले जो घटनाएं घटीं उनके लिए किस हिसाब से हम मानें कि क्या हुआ, क्या नही हुआ, कौन सही है कौन सही नही। कहना मुश्किल है। बर्क ने लिखा है कि इतिहास भी एक कल्पना हो सकती है अगर हमने बहुत ऊपर से पकड़ने की कोशिश की। और कल्पना भी सत्य हो सकती है अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल वस्तुपरक नही है। सवाल आत्मपरक है। तो महावीर उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा जितना देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं? जैसे एक मां अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम जिसे प्रेम करते हैं उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं? उस जीने से जो निखर आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमे महावीर भी होते हैं, हम भी होते हैं। यह इतना ही गहरा है जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देखकर कहते हैं 'बहुत सुन्दर' तो आप सिर्फ फूल की बाबत ही नहीं कह रहे हैं, अपनी बाबत भी कह रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि पड़ोस से एक आदमी निकले, और कहे : "क्या सुन्दर है इसमे ! इसमे तो कुछ भी सुन्दर नहीं है। साधारण-सा फूल है, घास का फूल।" वह आदमी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के सम्बन्ध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है। आकाश की तरफ देखता है। चांद उसे रोटी की तरह मालूम पड़ता है। जैसे रोटी तैर रही हो आसमान में। हेनरिक हेन एक जर्मन कवि

था। वह तीन दिन तक भूखा भटक गया जंगल में। पूर्णिमा का चांद निकला तो उसने कहा, "आश्चर्य, अब तक मुझे चाद मे सदा स्त्रियो के चेहरे दिखाई पड़े थे और पहली दफा मुझे चांद रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि चांद भी रोटी जैसा दिखाई पड़ सकता है लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड सकता है। तीन दिन के भूखे आदमी को चांद ऐसा लगा जैसे रोटी आकाश मे तैर रही हो। आकाश में रोटी तैर रही है। चांद तो है ही, इसमे एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुन्दर है, इसमे फूल तो है ही, एक सौन्दर्य बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुन्दर नहीं है अकेले जितना आख उसे सुन्दर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुन्दर बना देता है और ऐसी चीजें खोल देता है उसमे जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी दिखाई न पडी हो। तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के सम्बन्ध मे ही कहा है। लेकिन मैं उसमें मौजूद हू और जो हम दोनो को समझने की कोशिश करेगा वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है वह नही समझ पाएगा। जो सिर्फ शास्त्र से महावीर को समझता है वह भी नहीं समझ पाएगा। यहा दो व्यक्ति, जैसे दो नदिया हैं, सगम पर आकर घुल-मिल जाए और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हू कि ऐसा मिलना हो तो ही नदी को पहचान पाता है, नही तो पहचान नही पाता। और इसलिए इस निवेदन के साथ महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दो से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने एक जीवित महावीर को पकड़ने की कोशिश की है और यह कोशिश तभी सम्भव है जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनर्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुंचेगा तब उसे ऐसे ही पहुचना पड़ेगा। उसे फिर से प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड़ सकेगा कि क्या है लेकिन फिर भी इस बात को निरन्तर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि वह और तरह से देख सके और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है और न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा उसके लिए शास्त्रों के सिवाय आधार भी

क्या हो सकता है ? और मैं शास्त्रों के आधार को पूर्णतः निषेध करता हू। फकीर था एक बोकोजू। बुद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उसने कहीं हैं जो शास्त्रों में नही हैं। और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं जिनका कही भी कोई उल्लेख नहीं है। पंडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहां हैं बुद्ध की ये बातें ? शास्त्रो में ये नही है। तो बोकोजू ने कहा, 'जोड़ लेना।' किन्तु उन्होंने कहा, 'बुद्ध ने यह कहा ही नहीं है।' तो बोकोजू ने कहा कि बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है। और न कहा हो तो कह देंगे। यह बोकोजू अद्भुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। यह कोई साधारण हिम्मत नहीं है। यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को सुधार करना पड़े। एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे और रोज शाम पढ़कर सुनाते थे। कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने के लिए। अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था लेकिन कथा इतनी रसपूर्ण हो रही थी कि हनुमान भी छिपकर उसे सुनते थे। वह जगह आई, जहा हनुमान अशोक वाटिका में गए सीता से मिलने। तो सन्त ने कहा हनुमान गए अशोक वाटिका मे, वहा सफेद फूल खिले थे। सुनकर हनुमान अपने से बाहर हो गए क्योंकि फूल सब लाल थे। हनुमान ने खुद देखा था। इस आदमी ने देखा भी नहीं था। हजारो साल बाद कहानी कह रहा था यह सन्त। हनुमान ने खड़े होकर कहा माफ करें—इसमें जरा सुधार कर लें। फूल सफेद नही, लाल थे। उस आदमी ने कहा कि फूल सफेद ही थे। हनुमान ने कहा कि मुझे स्पष्ट करना पड़ेगा कि मैं खुद हनुमान हू और मैं गया था। अब तो सुधार कर लो। तो उसने कहा, नहीं, तुम्हीं सुधार कर लेना। फूल सफेद ही थे।

हनुमान ने कहा, 'यह तो हद हो गई। हजारो साल बाद तुम कथा कह रहे हो और मैं मौजूद था, मैं खुद गया था। तुम मेरी कथा कह रहे हो और मुझे इन्कार कर रहे हो'। उस आदमी ने कहा, लेकिन फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना अपनी स्मृति में। हनुमान बहुत नाराज हुए। कथा कहती है कि उस संत को लेकर वे राम के पास गए। राम से उन्होंने कहा, 'हद हो गई है। इस आदमी की जिद देखो ! मुझ से सुधार करवाता है। मेरी स्मृति में फूल बिल्कुल लाल थे। राम से कहा कि यह सन्त ही ठीक कहते हैं। फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना। तो हनुमान ने कहा, हद हो गई। राम ने कहा

कि तुम इतने क्रोध मे थे कि तुम्हारी आंखें खून से भरी थीं, फूल लाल दिखाई पड़े होंगे। फूल सफेद थे।

बहुत बार देखा हो तो भी जरूरी नही कि सच हो। और बहुत बार न देखा हो तो भी हो सकता है कि सच हो। सच बड़ी रहस्यपूर्ण बात है। अभी मैं एक नगरी मे था। एक बौद्ध भिक्षु मिलने आए। कुछ बात चल रही थी तो मैंने कहा कि बुद्ध के सामने एक व्यक्ति बैठा हुआ था। वह पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध बोल रहे थे। बुद्ध ने उससे कहा कि 'मित्र, तेरे पैर का अंगूठा क्यो हिलता है ?' उस आदमी ने अपने पैर का अंगूठा हिलाना रोक लिया और कहा कि अपनी बात आप जारी रखिए, फिजूल की बातो से क्या मतलब ! बुद्ध ने कहा कि नही, मैं पीछे बात शुरू करूगा, पहले पता चल जाए कि पैर का अगूठा क्यो हिलता है ? उस आदमी ने कहा कि मुझे पता ही नही। मैं क्या बताऊं क्यो हिलता है। बुद्ध ने कहा कि तू बड़ा पागल आदमी है। तेरा अगूठा हिलता है और तुझे पता नही। जब शरीर की होश नही रखेगा तो आत्मा की होश बहुत दूर की बात है। तब बौद्ध भिक्षु ने कहा कि यह किस ग्रन्थ मे लिखा हुआ है। मैंने कहा : मुझे पता नही, हो सकता है न हो। लेकिन न भी हो तो घटना घटनी चाहिए। क्या फर्क पड़ता है कि घटी कि न घटी। यह भी बहुत मूल्य का नही है कि कौन सी घटना घटती है कि नही घटती। बहुत मूल्य का यह है कि वह घटना क्या कहती है। बुद्ध ने बहुत मौको पर यह बात लोगो को कही होगी कि जो शरीर के प्रति नही जगा हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जगेगा ? और बहुत बार उन्होंने लोगों को टोका होगा उनकी मूर्छा मे। घटना कैसी घटी होगी यह बहुत गौण बात है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बुद्ध जागरण के लिए निरन्तर आग्रह करते हैं। और जो शरीर के प्रति सोया हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जगेगा, और बहुत बार वे लोगो को मूर्छा में पकड़ लेते हैं और कहते हैं कि 'देखो ! तुम बिल्कुल सोए हो।' और सोए हुए आदमी को बताना पड़ता है कि 'यह रही नींद !' और नींद तभी टूट सकती है। घटना बिल्कुल सच है, ऐतिहासिक न हो तब भी। ऐतिहासिक होने से भी क्या होता है ? इतिहास भी क्या है ? जहां घटनाए पर्दे पर साकार हो जाती हैं, इतिहास बन जाता है। और घटनाएं अगर पर्दे के पीछे ही रह जाएं तो इतिहास नहीं बनता है। इस देश में और सारी दुनिया मे जो लोग जानते हैं, वे बड़े अद्भुत हैं।

कहानी है कि वाल्मीकि ने राम की कथा राम के होने के पहले लिखी।

यह बड़ी मधुर और बड़ी अद्भुत बात है। राम हुए नही तब वाल्मीकि ने कथा लिखी और फिर राम को कथा के हिसाब से होना पड़ा। फिर कोई उपाय न था क्योंकि वाल्मीकि ने लिख दी तो फिर राम को वैसा होना पड़ा। वह सब करना पड़ा जो वाल्मीकि ने लिख दिया था। यह बड़ी अद्भुत बात है, इतनी अद्भुत कि इसे सोचना भी हैरान करने वाला है। पहले राम हो जाए फिर कथा लिखी जाए, यह समझ मे आता है। लेकिन वाल्मीकि कथा लिख दें और फिर राम को होना पड़े और सब वैसा ही करना पड़े, जो वाल्मीकि ने लिख दिया था, मुश्किल है। वाल्मीकि ने लिख दिया है तो अब वैसा करना पड़ेगा। तो उस बोकूजो ने जो कहा कि कह देना बुद्ध को कि वह फिर यह कह दे, अगर न कहा हो तो कह दें तो वह उसी अधिकार से कह रहा है जिस अधिकार से वाल्मीकि कथा लिख गए हैं। इतिहास पीछे लिखा जाता है। सत्य पहले ही लिखा जा सकता है क्योंकि सत्य का मतलब है जिससे अन्यथा हो ही नही सकता। इतिहास का मतलब है, जैसा हुआ लेकिन इससे अन्यथा हो सकता था। सत्य का मतलब है जैसा हो सकता है, जिससे अन्यथा कोई उपाय नही है। महावीर, बुद्ध, जीसस इन जैसे लोगो के प्रति इतिहास की फिक्र नहीं करनी चाहिए। इतिहास इतनी मोटी बुद्धि की बात है कि ये बारीक लोग उससे निकल ही जाए, पकड मे ही न आए। उन्हें तो किसी और आख से देखने की जरूरत है, सत्य की आख से। और उस आख से देखने पर बहुत सी बातें उद्घाटित होगी जो शायद इतिहास नही पकड़ पाया है। और इसलिए मैंने जो कहा है और आगे भी कृष्ण, बुद्ध, कनफ्यूसियस, लाओत्से और क्राइस्ट के सम्बन्ध में जो कहूगा, उसका ऐतिहासिक होने से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए जिनकी ऐतिहासिक बुद्धि हो उनसे कोई झगडा ही नही है, उनसे कोई विवाद ही नही है। जगत को एक कवि की दृष्टि से भी देखा जा सकता है और तब जगत इतने रहस्य खोल देता है जितने इतिहास की दृष्टि से देखने वालो के सामने उसने कभी भी नहीं खोले हैं।

काव्य का अपना दर्शन है। चूंकि वह ज्यादा प्रेम से भरा है इसलिए ज्यादा सत्य के निकट है। शास्त्र उससे मेल भी पड़ सकते हैं, बेमेल भी पड़ सकते हैं। चूंकि हमें ख्याल में नहीं रहा है इसलिए जिन लोगो ने अतीत में इन सारे महापुरुषों की गाथाएं लिखी हैं उनको भी समझना मुश्किल हो गया। क्योंकि उन गाथाओं को लिखते वक्त भी सत्य पर दृष्टि ज्यादा थी, तथ्य पर बहुत कम। तथ्य तो रोज बदल जाते हैं; सत्य कभी नहीं बदलता।

इतिहास तथ्यो का लेखा-जोखा रखता है । सत्य का लेखा-जोखा कौन रखेगा ? इसलिए जिनको सत्य की बहुत फिक्र थी उन्होने इतिहास लिखा तक नही । यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब पैदा हुआ, किस तारीख मे, किस तिथि मे । यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब मरा । यह बात भी अर्थहीन थी कि कौन आदमी कब उठा, कब चला, कब क्या किया । महत्वपूर्ण तो वह अन्तर्घटना थी जिसने सत्य के निकट पहुचा दिया और सत्य उस घटना को प्रकट कर सके, ऐसी पूरी की पूरी व्यवस्था की । व्यवस्था बिल्कुल ही काल्पनिक हो सकती है तो भी कठिनाई नही है । इतिहास बिल्कुल ही वास्तविक है तो भी व्यर्थ हो सकता है। इतिहास यह है कि जीसस एक बढई के बेटे थे । और सत्य यह है कि वे ईश्वर के पुत्र है । इतिहास खोजने जाएगा तो बढई के बेटे से ज्यादा क्या खोज पाएगा ? लेकिन जिन्होने जीसस को देखा उन्होने जाना कि वे परमात्मा के बेटे हैं । यह किसी और आख से देखी गई बात है और इन दोनो बातो मे ताल-मेल नहीं हो सकता है क्योकि बढई के बेटे और ईश्वर के बेटे मे बहुत फर्क है । इससे ज्यादा फर्क क्या हो सकता है । फिर भी मैं कहूगा कि जिन्होने बढई का बेटा ही देखा वे पहचान नही पाए उस आदमी को जो बढई से आया था, लेकिन बढई का बेटा नही था । इसका आना और बड़े जगत मे था और वह नहीं पहचान पाया कोई भी, क्योकि जब जीसस ने कहा कि सारा राज्य मेरा है और जो मेरे साथ चलते है, वे साम्राज्य के मालिक हो जाएगे तो जो तथ्यों को जानने वाले थे वे चिन्तित हो गए । उन्होने कहा मालूम होता है कि जीसस कोई क्रान्ति, कोई बगावत करना चाहता है और जो सच मे राजा है उस पर हावी होना चाहता है । जब जीसस को पकडा गया और उसको काटे का ताज पहनाया गया और पूछा गया कि क्या तुम राजा हो तो उसने कहा, हा ! लेकिन फिर भी समझ मे नही आ सका कि वह आदमी क्या कह रहा है ? फिर उससे पूछा गया, क्या तुम सम्राट होने का दावा करते हो ? तो उसने कहा, 'हा, क्योकि मैं सम्राट् हूं ।' लेकिन यह बात बिल्कुल असत्य थी क्योकि जीसस सम्राट् नही थे । एक गरीब आदमी का बेटा था । उस लाख आदमियों की भीड़ मे जो सूली देने इकट्ठे हुए थे, दस-पांच ही थे जो पहचान पाए कि हां वह सम्राट है । बाकी ने कहा "खत्म करो, इस आदमी को । यह कैसी झूठी बातें बोल रहा है ।" और पायलट ने, जो गवर्नर था, जिसकी आज्ञा से सूली दी गई थी, मरते वक्त जीसस के पास खड़े होकर पूछा : सत्य क्या है ? जीसस चुप रह गए । कुछ उत्तर

नही दिया। सूली हो गई। प्रश्न वहीं खड़ा रह गया। जीसस ने उत्तर इसलिए नहीं दिया कि सत्य दिखाई पड़ता है या नही दिखाई पड़ता है पूछा नही जा सकता है। तथ्य पूछे जा सकते हैं। बताया जा सकता है कि यह तथ्य है। जो कोई पूछे सत्य क्या है तो बताया नहीं जा सकता। वह देखा जा सकता है। तो जीसस चुपचाप खड़े रह गए कि देख लो अगर दिखाई पड़ जाए तो तुम्हें पता चल जाएगा कि सत्य क्या है, यह आदमी सम्राट है या नही। और अगर तथ्य की बात पूछते हो तो फिर ठीक है, आदमी बढ़ई का लड़का है, सूली पर लटका देने योग्य है क्योंकि दिमाग खराब हो गया है और अपने को सम्राट घोषित कर रहा है।

इधर मैं निरन्तर इस सम्बन्ध मे चिन्तन करता रहा हूं कि तथ्य को पकडने वाली बुद्धि सत्य को पकड़ सकती है या नही। और मुझे लगता है कि नही पकड सकती। सत्य को पकड़ने के लिए और गहरी आख चाहिए जो तथ्यो के भीतर उतर जाती है और तब ऐसे सत्य हाथ लगते हैं जिनकी तथ्य कोई खबर नही दे पाता। इसी दृष्टि से यह सारी बात मैंने कही है।

परिशिष्ट (१)

अहिंसा[1]

अहिंसा एक अनुभव है, सिद्धान्त नही। और अनुभव के रास्ते बहुत भिन्न हैं, सिद्धान्त को समझने के रास्ते बहुत भिन्न हैं—अक्सर विपरीत। सिद्धान्त को समझना हो तो शास्त्र मे चले जाए, शब्द की यात्रा करें, तर्क का प्रयोग करें। अनुभव मे गुजरना हो तो शब्द से, तर्क से, शास्त्र से क्या प्रयोजन है? सिद्धान्त को शब्द से बिना नही जाना जा सकता और अनुभूति शब्द से कभी नही पाई गई। अनुभूति पाई जाती है निःशब्द मे और सिद्धान्त है शब्द मे। दोनो के बीच विरोध है। जैसे ही अहिंसा सिद्धान्त बन गई वैसे ही मर गई। फिर अहिंसा के अनुभव का क्या रास्ता हो सकता है? अब महावीर जैसा या बुद्ध जैसा कोई व्यक्ति है तो उसके चारो तरफ जीवन मे हमे बहुत कुछ दिखाई पड़ता है। जो हमे दिखाई पड़ता है, उसे हम पकड़ लेते हैं: महावीर कैसे चलते हैं, कैसे खाते हैं, क्या पहनते हैं, किस बात को हिंसा मानते है, किस बात को अहिंसा, महावीर के आचरण को देखकर हम निर्णय करते है और सोचते हैं कि वैसा। आचरण अगर हम भी बना लें तो शायद जो अनुभव है वह मिल जाए। लेकिन यहां भी बड़ी भूल हो जाती है। अनुभव मिले तो आचरण आता है, लेकिन आचरण बना लेने से अनुभव नही आता। अनुभव ही भीतर तो आचरण बदलता है, रूपान्तरित होता है। लेकिन आचरण को कोई बदल ले तो अभिनय से ज्यादा नही हो पाता। महावीर नग्न खड़े है तो हम भी नग्न खड़े हो सकते हैं। महावीर की नग्नता किसी निर्दोष तल पर नितान्त सरल हो जाने से आई है। हमारी नग्नता हिसाब से, गणित से, चालाकी से आएगी। हम सोचेंगे नग्न हुए बिना मोक्ष नही मिल सकता। तो फिर एक-एक बात को उतारते चले जाएगे। हम नग्नता का अभ्यास करेंगे। अभ्यास से कभी कोई सत्य आया है? अभ्यास से अभिनय आता है।

---

[1] दिल्ली-विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय अहिंसा-गोष्ठी मे दिया गया आचार्य जी का यह प्रवचन मूल पुस्तक के विषय से सम्बद्ध होने के कारण यहां दिया जा रहा है—सम्पादक।

एक गाव के पास से मैं गुजर रहा था। एक मित्र संन्यासी हो गए हैं। उनका झोपड़ा पड़ता था पास, तो मैं देखने गया। जंगल मे, एकान्त में झोपडा है। पास पहुंच कर देखा मैंने कि अपने कमरे मे वह नग्न टहल रहे हैं। दरवाजा खटखटाया तो देखा वह चादर लपेट कर आए हैं। मैंने उनसे पूछा . भूलता नही हू, खिड़की से मुझे लगा कि आप नगे टहल रहे थे। फिर चादर क्यो पहन ली है? उन्होने कहा . नग्नता का अभ्यास कर रहा हू। धीरे-धीरे एक-एक वस्त्र छोड़ता गया हू। अब अपने कमरे में नग्न रहता हू। फिर धीरे-धीरे मित्रो मे, प्रियजनो में, फिर गांव मे, फिर राजधानी में नग्न रहने का इरादा है, धीरे-धीरे नग्नता का अभ्यास कर रहा हू क्योकि नग्न हुए बिना मोक्ष नही है।

यह व्यक्ति भी नग्न खड़े हो जाएगे। महावीर की नग्नता से इनकी नग्नता का क्या सम्बन्ध होगा? मैंने उनसे कहा कि सन्यासी होने के बजाय सरकस मे भर्ती हो जाओ तो अच्छा है। ऐसे भी सन्यासियो मे अधिकतम सरकस मे भर्ती होने की योग्यता रखते हैं। अभ्यास से साधी हुई नग्नता का क्या मूल्य है? भीतर निर्दोषता का कोई अनुभव हो, कोई फूल खिले सरलता का और बाहर वस्त्र गिर जाएं और पता न चले तो यह समझ मे आ सकता है। लेकिन हमें तो दिखाई पड़ता है आचरण, अनुभव तो दिखाई नही पड़ता। महावीर को हमने देखा तो दिखाई पड़ा आचरण। अनुभव तो दिखाई नही पड सकता। लेकिन महावीर का आचरण सबको दिखाई पड़ सकता है। फिर हम उस आचरण को पकड कर नियम बनाते है, सयम का शास्त्र बनाते हैं, अहिंसा की व्यवस्था बनाते हैं और फिर उसे साधना शुरू कर देते हैं। फिर क्या खाना, क्या पीना, कब उठना, कब सोना, क्या करना, क्या नहीं करना—उस सबको व्यवस्थित कर लेते हैं, उसका एक अनुशासन थोप लेते हैं। अनुशासन पूरा हो आएगा और अहिंसा की कोई खबर न मिलेगी। अनुशासन से अहिंसा का क्या सम्बन्ध? सच तो यह है कि ऊपर से थोपा गया अनुशासन भीतर की आत्मा को उघाडता कम है, ढांकता ज्यादा है। जितना बुद्धिहीन आदमी हो उतना अनुशासन को सरलता से थोप सकता है। जितना बुद्धिमान आदमी हो उतना मुश्किल होगा, उतना वह उस स्रोत की खोज मे होगा जहां से आचरण आया छाया की भांति।

इसलिए पहली बात मैंने कही : अहिंसा अनुभव है। दूसरी बात आपसे कहता हूं कि अहिंसा आचरण नहीं है। आचरण अहिंसा बनता है लेकिन

अहिंसा स्वयं आचरण नहीं है। इस घर मे हम दिए को जलाएं तो खिड़कियों के बाहर भी रोशनी दिखाई पड़ती है। लेकिन दिया खिडकी के बाहर दिखाई पड़ती रोशनी का ही नाम नहीं है। दिया जलेगा तो खिड़की से रोशनी भी दिखाई पड़ेगी। वह उसके पीछे आने वाली घटना है जो अपने आप घट जाती है। एक आदमी गेहूं बोता है तो गेहूं के साथ भूसा अपने आप पैदा हो जाता है, उसे पैदा नहीं करना पड़ता। लेकिन किसी को भूसा पैदा करने का ख्याल हो और वह भूसा बोने लगे तो फिर कठिनाई शुरू हो जाएगी। बोया गया भूसा भी सड़ जाएगा, नष्ट हो जाएगा। उससे भूसा तो पैदा होने वाला ही नहीं। गेहूं बोया जाता है, भूसा पीछे से अपने-आप साथ-साथ आता है। अहिंसा वह अनुभव है, वह आचरण है जो पीछे से अपने आप आता है, लाना नहीं पड़ता। जिस आचरण को लाना पडे वह आचरण सच्चा नहीं है। जो आचरण आए, उतरे, प्रकट हो, फैले, पता भी न चले, सहज वही आचरण सत्य है। तो दूसरी बात यह है कि आचरण को साध कर हम अहिंसा को उपलब्ध न हो सकेंगे। अहिंसा आए तो आचरण भी आ सकता है। फिर अहिंसा कैसे आए ? हमे सीधा-सरल यही दिखाई देता है कि जीवन को एक व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा हो जाएगी। लेकिन असल मे जीवन को व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा नहीं होती। चित्त के रूपान्तरण से अहिंसा पैदा होती है। और यह रूपान्तरण कैसे आए, इसे समझने के लिए दो-तीन बातें समझनी उपयोगी होंगी।

पहला तो यह शब्द अहिंसा बहुत अद्भुत है। यह शब्द बिल्कुल नकारात्मक है। महावीर प्रेम शब्द का भी प्रयोग कर सकते थे, नहीं किया। जीसस तो प्रेम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद प्रेम शब्द का प्रयोग करने के कारण ही जीसस जल्दी समझ मे आते हैं बजाय महावीर के। महावीर निषेधात्मक शब्द का प्रयोग करते हैं। अहिंसा मे वह कहना चाहते हैं 'हिंसा नहीं है।' वह और कुछ भी नहीं कहना चाहते। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा, वह अहिंसा होगी। अहिंसा को लाने का सवाल ही नहीं है। वह उस शब्द में ही छिपा है। अहिंसा को विधायक रूप से लाने का कोई सवाल ही नहीं है, कोई उपाय ही नहीं है। इसे और एक तरह से देखना जरूरी है। हिंसा और अहिंसा विरोधी नहीं हैं, प्रकाश और अंधकार विरोधी नहीं हैं। अगर प्रकाश और अंधकार विरोधी हो तो हम अंधकार को लाकर दिए के ऊपर डाल सकते हैं; दिए को बुझना पड़ेगा। नहीं, अंधकार विरोधी नहीं है प्रकाश का, अंधकार

अभाव है प्रकाश का। अभाव और विरोध मे कुछ फर्क है। विरोधी का अस्तित्व होता है, अभाव का अस्तित्व नही होता। अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं होता। प्रकाश का अस्तित्व है। अगर अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो सीधा अंधेरे के साथ कुछ नही किया जा सकता। न तो अंधेरा लाया जा सकता है न निकाला जा सकता है। नहीं तो दुश्मन के घर मे हम अंधेरा फेंक आए। कुछ भी करना हो अंधेरे के साथ तो प्रकाश के साथ करना पड़ेगा। अंधेरा लाना हो तो प्रकाश बुझाना पड़ेगा। अंधेरा हटाना हो तो प्रकाश जलाना पड़ेगा। इसलिए जब यहां अंधेरा मिटता है तो प्रकाश हो जाता है। हम कहते हैं, अंधेरा मिट गया, इससे ऐसा लगता है जैसे अंधेरा था। लेकिन अंधेरा है सिर्फ प्रकाश का अभाव। प्रकाश आ गया—इतना सार्थक है। और प्रकाश आ गया तो अंधेरा कैसे रह सकता है? वह अब नहीं है। न वह कभी था। महावीर निषेधात्मक अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं। वह कहते हैं कि हिंसा है, हिंसा मे हम खड़े हुए हैं। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा उसका नाम अहिंसा है। लेकिन अगर किसी ने अहिंसा को विधायक बनाया तो वह हिंसक रहते हुए अहिंसा साधने की कोशिश करेगा। हिंसक रहेगा और अहिंसा साधेगा। हिंसक के द्वारा अहिंसा कभी नहीं साधी जा सकती। और अगर साध भी लेगा तो उसकी अहिंसा में हिंसा के सब तत्त्व मौजूद रहेंगे। वह अहिंसा से भी सताने का काम शुरू कर देगा। इसलिए मैं गांधीजी की अहिंसा को अहिंसा नही मानता हूं। गांधीजी की अहिंसा उस अर्थ मे अहिंसा नही है जिस अर्थ मे महावीर की अहिंसा है। गांधीजी की अहिंसा मे भी दूसरे को दबाने, दूसरे को बदलने, दूसरे को भिन्न करने का आग्रह है। उसमे हिंसा है। अगर हम ठीक से कहें तो गांधीजी की अहिंसा अहिंसात्मक हिंसा है। मैं आपकी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो मैं कहता हू वह ठीक है, आप उसे मानें तो यह हिंसा है। और मैं अपनी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो ठीक है वह माने नहीं तो मैं छुरी मार लूंगा यह अहिंसा कैसे हो जाएगी? अनशन कैसे अहिंसा हो सकता है? सत्याग्रह कैसे अहिंसा हो सकता है? उसमें दूसरे पर दबाव डालने का भाव पूरी तरह उपस्थित है। सिर्फ दबाव डालने का ढंग बदल गया है। एक आदमी छुरा बताकर दूसरे को बदलना चाहता था। एक आदमी कहता है कि मैं भूखा मर जाऊंगा अगर तुम नहीं बदले। अम्बेडकर के विरोध में गांधी जी ने अनशन किया। अम्बेडकर झुक गया। लेकिन बाद में अम्बेडकर

ने कहा कि गांधीजी इस भूल में न पड़ें कि मेरा हृदय बदल गया है। मैं सिर्फ यह सोचकर कि मेरे कारण गांधीजी जैसा आदमी न मर जाए, पीछे हट गया हूं। और गांधीजी अपने पूरे जीवन में एक आदमी का भी हृदय परिवर्तन नहीं कर पाए। असल मे, हिंसा से हृदयपरिवर्तन हो ही नहीं सकता। हिंसा दमन है, दबाव है, जबरदस्ती है। हां, जबरदस्ती दो ढंग की हो सकती है। मैं आपको मारने की धमकी दू, तब भी जबरदस्ती है और मैं अपने को मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है। और मेरी दृष्टि मे दूसरी जबरदस्ती ज्यादा खतरनाक है। पहली जबरदस्ती में आपके पास उपाय भी है सीधा सिर खड़ा करके लड़ने का। दूसरी जबरदस्ती में मैं आपको निःशस्त्र कर रहा हू, आपका नैतिक बल भी छीन रहा हू, आपको दबा भी रहा हू। अहिंसा अगर हिंसा के भीतर रहते साधी जाएगी तो ऊपर अहिंसा हो जाएगी, भीतर हिंसा मौजूद रहेगी। क्योंकि अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें नहीं हैं। गांधी जी के ख्याल में अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें हैं। अहिंसा को साधो तो हिंसा खत्म हो जाएगी। लेकिन कौन साधेगा अहिंसा को? हिंसक आदमी साधेगा तो अहिंसा भी साधन बनेगी उसकी हिंसा का। वह फिर अहिंसा से वही उपयोग लेना शुरू कर देगा जो उसने तलवार से लिया होगा।

पूछा जा सकता है कि महावीर ने जिन्दगी भर सत्याग्रह क्यों नहीं किया? पूछा जा सकता है कि महावीर ने किसी को बदलने का आग्रह क्यों नहीं किया? सच तो यह है कि सत्याग्रह शब्द ही बेहूदा है। सत्य का कोई आग्रह नहीं हो सकता क्योंकि जहां आग्रह है, वहां सत्य कैसे टिकेगा? आग्रह असत्य का ही होता है। सब सत्याग्रह असत्य आग्रह है। कैसे सत्य का आग्रह हो सकता है? महावीर कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी किया तो हिंसा शुरू हो गई क्योंकि अगर मैंने यह कहा कि जो मैं कहता हू वही सत्य है तो मैंने हिंसा करनी शुरू कर दी। मैंने दूसरे व्यक्ति को चोट पहुंचानी शुरू कर दी। इसलिए महावीर सत्य का आग्रह भी नहीं करते। इसी से उनके स्यात् की कल्पना है, इसी से उनके अनेकान्त की धारणा का जन्म हुआ है।

एक छोटी सी कहानी समझाना चाहूंगा। एक गांव में एक क्रोधी आदमी है जिसके क्रोध ने चरम स्थिति ले ली है। उसने अपने बच्चे को कुएं मे धक्का देकर मार डाला। उसने अपनी पत्नी को मकान के भीतर आग लगा दी। फिर पछताया है, दुखी हुआ है। गांव में एक मुनि आए हुए हैं। वह उनके पास गया और उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध को किस प्रकार मिटाऊं। मुझे

कुछ रास्ता बताए कि मैं इस क्रोध से मुक्त हो जाऊं। मुनि ने कहा कि सब त्याग कर दो, सन्यासी हो जाओ, सब छोड़ दो तभी क्रोध जाएगा। मुनि नग्न थे। उस व्यक्ति ने भी कपड़े फेंक दिए। वह वहीं नग्न खड़ा हो गया। मुनि ने कहा . अब तक मैंने बहुत लोग देखे सन्यास मांगने वाले लेकिन तुम जैसा तेजस्वी कोई भी नही दिखा। इतनी तीव्रता से तुमने वस्त्र फेंक दिए। लेकिन मुनि भी न समझ पाए कि जितनी तीव्रता से कुए मे धक्का दे सकता है, वह उतनी ही तीव्रता से वस्त्र भी फेंक सकता है। वह क्रोध का ही रूप है। असल मे क्रोध बहुत रूपो मे प्रकट होता है। क्रोध सन्यास भी लेता है। इसलिए सन्यासियो मे निन्यानवें प्रतिशत क्रोधी इकट्ठे मिल जाते हैं। उनके कारण हैं। उसने वस्त्र फेंक दिए हैं, वह नग्न हो गया है, वह संन्यासी हो गया है। दूसरे साधक पीछे पड गए हैं। उससे साधना मे कोई आगे नही निकल सकता। क्रोध किसी को भी आगे नही निकलने देता। क्रोध ही इसी बात का है कि कोई मुझ से आगे न हो जाए। वह साधना मे भी उतना ही क्रोधी है। लेकिन साधना की खबर फैलने लगी। जब दूसरे छाया मे बैठे रहते हैं वह धूप मे खडा रहता है। जब दूसरे भोजन करते हैं वह उपवास करता है। जब दूसरे शीत से बचते हैं वह शीत झेलता है। उसके महातपस्वी होने की खबर गाव-गाव मे फैल गई है। उसके क्रोध ने बहुत अद्भुत रूप ले लिया है। कोई नही पहचानता, वह खुद भी नहीं पहचानता कि यह क्रोध ही है जो नये-नये रूप ले रहा है। फिर वह देश की राजधानी मे आया। दूर-दूर से लोग उसे देखने आते हैं। देश की राजधानी मे उसका एक मित्र है बचपन का। वह बड़ा हैरान है कि वह क्रोधी व्यक्ति संन्यासी कैसे हो गया हालाकि नियम यही है। वह देखने गया उसे। सन्यासी मच पर बैठा है। वह मित्र सामने बैठ गया। सन्यासी की आंखों से मित्र को लगा है कि वह पहचान तो गया। लेकिन मच पर कोई भी बैठ जाए फिर वह नीचे मच वालो को कैसे पहचाने ? पहचानना बहुत मुश्किल है। फिर वह मंच कोई भी हो। चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे गुरु की हो। मित्र ने पूछा, आपका नाम ? सन्यासी ने कहा शान्तिनाथ। फिर परमात्मा की बात करते रहे। मित्र ने संन्यासी से फिर वही प्रश्न किया। संन्यासी का हाथ डंडे पर गया। उसने कहा बहरे तो नहीं हो, बुद्धिहीन तो नहीं हो? कितनी बार कहूं कि मेरा नाम है शांतिनाथ। मित्र थोड़ी देर चुप रहा। कुछ और बात चलती रही आत्मा-परमात्मा की। फिर उसने पूछा कि क्षमा करिए। आपका नाम क्या है ? फिर आप सोच

सकते हैं क्या हुआ ? वह डंडा उस मित्र के सिर पर पडा। उसने कहा कि तुझे समझ नहीं पड़ता कि मेरा नाम क्या है ? मित्र ने कहा कि अब मैं पूरी तरह समझ गया। यह पता लगाने के लिए तीन बार नाम पूछा है कि आदमी भीतर बदला है या नहीं बदला है।

अहिंसा काटों पर लेट सकती है, भूख सह सकती है, शीर्षासन कर सकती हैं, आत्म-पीडा बन सकती है अगर भीतर हिंसा मौजूद हो। दूसरों को भी दुख और पीड़ा का उपदेश दे सकती है। हिंसा भीतर होगी तो वह इस तरह के रूप लेगी, खुद को सताएगी, दूसरो को सताएगी और इस तरह के ढग खोजेगी कि ढग अहिंसक मालूम होंगे लेकिन भीतर सताने की प्रवृत्ति परिपूर्ण होगी। असल मे अगर एक व्यक्ति अपने अनुयायी इकट्ठा करता फिरता हो तो उसके अनुयायी इकट्ठा करने मे और हिटलर के लाखो लोगो को गोली मार देने मे कोई बुनियादी फर्क नही है। असल में गुरु भी मांग करता है अनुयायी से कि तुम पूरी तरह मिट जाओ, तुम बिल्कुल न रहो, तुम्हारा कोई व्यक्तित्व न बचे। समर्पित हो जाओ पूरे। अनुयायी की माग करने वाला गुरु भी व्यक्तित्व को मिटाता है सूक्ष्म ढंगो से, पोछ देता है व्यक्तियो को। फिर सैनिक रह जाते हैं जिनके भीतर आत्मा समाप्त कर दी गई है। हिटलर जैसा आदमी सीधा गोली मार कर शरीर को मार देता है। पूछना जरूरी है कि शरीर को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होते होंगे या फिर आत्मा को, व्यक्तित्व को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होते हैं ? कहना मुश्किल है। लेकिन दिखाई तो यही पड़ता है कि किसी के शरीर को मारा जा सकता है और हो सकता है कि व्यक्ति बच जाए। तब आपने कुछ भी नहीं मारा। और यह भी हो सकता है कि शरीर बच जाए और व्यक्ति भीतर मार डाला जाय तो आपने सब मार डाला। अगर भीतर हिंसा हो, ऊपर अहिंसा हो तो दूसरों को मारने की, दबाने की नई-नई तरकीबें खोजी जाएंगी और तरकीबें खोजी जाती हैं। यह भी हो सकता है कि एक आदमी सिर्फ इसीलिए एक तरह का चरित्र बनाने मे लग जाए कि उस चरित्र के माध्यम से वह किसी को दबा सकता है, गला घोट सकता है और मैं पवित्र हूं, मैं सन्त हू, मैं साधु हू—इसकी भावना से दूसरे की छाती पर बैठ सकता है, इस अहंकार को दूसरे की फांसी बना सकता है, इसकी पूरी सम्भावना है। इसलिए महावीर अहिंसा की विधायक साधना का कोई प्रश्न ही नहीं उठाते। बात बिल्कुल दूसरी है उनके हिसाब से। उनके हिसाब से बात यह है कि मैं हिंसक हूं; दूसरे को दुख देने में मुझे सुख मालूम होता है; दूसरे के सुख से भी दुख

मालूम होता है। यह हमारी स्थिति है, यहां हम खड़े हैं। अब क्या किया जा सकता है ? ऐसे आचरण को क्षीण किया जाए जो दूसरे का अहित करता हो, और ऐसे आचरण को प्रस्तावित किया जाए जो दूसरे का मंगल करता हो। एक रास्ता यह है। इस रास्ते को मैं नैतिक कहता हूं और नैतिक व्यक्ति कभी पूरे अर्थों मे अहिंसक नही हो सकता। गांधीजी को मैं नैतिक महापुरुष कहता हू, धार्मिक महापुरुष नहीं। शायद उन जैसा नैतिक व्यक्ति हुआ भी नही। लेकिन वह नैतिक ही हैं। उनकी अहिंसा नैतिक तल पर है। महावीर नैतिक व्यक्ति नही हैं। महावीर धार्मिक व्यक्ति हैं। और धार्मिक व्यक्ति से मेरा क्या प्रयोजन है ? धार्मिक व्यक्ति से मेरा प्रयोजन है ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी हिंसा को जाना-पहचाना और जिसने अपनी हिंसा के साथ कुछ भी नही किया, जो अपनी हिंसा के प्रति पूरी तरह ध्यानस्थ हुआ, जागृत हुआ, जिसने अपनी हिंसा की कुरूपता को पूरा-पूरा देखा और कुछ भी नही किया। तो मेरी दृष्टि ऐसी है कि अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर की हिंसा को पूरी तरह देखने मे समर्थ हो जाए और उसे पूरा पहचान ले, उसके अणु-परमाणुओ को पकड ले, उठने-बैठने चलने मे, मुद्रा मे जो हिंसा है उस सब को पहचान ले, जान ले, साक्षी हो जाए, विवेक से भर जाए तो वह व्यक्ति अचानक पाएगा कि जहां-जहा विवेक का प्रकाश पड़ता है हिंसा पर, वहां-वहा हिंसा बिदा हो जाती है, उसे बिदा नही करना होता। वह वहां से क्षीण हो जाती है, समाप्त हो जाती है। न उसे दबाना पड़ना है, न उसे बदलना पड़ता है। सिर्फ चेतना के समक्ष आते वह वैसे ही बिदा हो जाती है जैसे सुबह सूरज निकले और ओस बिदा होने लगे। वह ओसकण बिदा होते हैं सूरज के निकलते ही, उन्हें बिदा करना नही होता। उतने ताप को वह झेलने में असमर्थ हैं। चेतना का एक ताप है। महावीर जिसे तप कहते हैं वह चेतना का ताप है। अगर चेतना पूरी की पूरी व्यक्ति के प्रति जागरूक हो जाए तो व्यक्तित्व मे जो भी कुरूप है वह रूपान्तरित होना शुरू हो जाएगा। उसे रूपान्तरित करना नही होगा।

कुछ दिन पहले एक घटना घटी। मेरे एक मुसलमान मित्र हैं। हाई कोर्ट के वकील हैं। जिस गांव का मैं हूं वह उसी गांव के हैं। मेरे पास आए कोई साल भर हुआ। उन्होंने कहा कि बहुत वर्षों से सोचता हू कि आपसे आकर बात करू। लेकिन नही आया क्योकि जब भी मैं आप जैसे लोगों के पास जाता हू तो वे कहते हैं कि यह छोडो, वह छोड़ो। न मुझसे जुआ छूटता, न शराब छूटती, न मांस छूटता। बात वहीं अटक जाती है। कुछ भी नहीं छूटता। फिर

मैं वहीं का वहीं रह जाता हूं। फिर मैंने उनसे पूछा, 'आज आप कैसे आ गए ?' उन्होंने कहा कि किसी के घर भोजन पर गया था और उन्होंने कहा कि आप तो कुछ छोड़ने को कहते नहीं। तो मैं सीधा यहीं चला आया हू। मैंने उनसे कहा कि मैं छोड़ने को क्यों कहूगा ? छोड़ने से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आप छोड़ो मत, जागो। आप कुछ देखने की कोशिश करो भीतर, कुछ निरीक्षण करो, कुछ होश मे भरो, कुछ मूर्छा को तोड़ो। उन्होंने कहा : क्या किया जा सकता है ? क्या मुझे जुआ नहीं छोड़ना पड़ेगा ? शराब नहीं छोड़नी पड़ेगी ? मैंने उनसे कहा कि आप जिस चेतना की स्थिति मे हैं उसमें शराब अनिवार्य है। अगर एक शराब छोड़ेंगे दूसरी शराब पकड़ेंगे, दूसरी शराब छोड़ेंगे तीसरी शराब पकड़ेंगे। और इतनी किस्म-किस्म की शराबें हैं जिन का कोई हिसाब नहीं। अधार्मिक शराबें हैं, धार्मिक शराबें भी हैं। एक आदमी भजन कीर्तन कर रहा है दो घंटे से और मूर्छित हो गया है। वह उतना ही रस ले रहा है भजन-कीर्तन मे, वही रस मूर्छा का जो एक शराबी ले रहा है। मन्दिर में भी शराबी इकट्ठे होते हैं। वहां भी मूर्छित होने की तरकीबें खोजते हैं। एक आदमी नाच रहा है, ढोल-मंजीरा पीट रहा है। उस नाच में, ढोल-मंजीरा पीटने मे मूर्छित हो गया। अब वह शराब का ही मजा ले रहा है। बहुत किस्म की शराबें हैं। मैंने उनसे कहा लेकिन चेतना अगर शराब पीने वाली है तो आप शराब बदल सकते हैं, शराब नहीं छूट सकती। चेतना बदले तो कुछ हो सकता है। मैंने उन्हे महावीर का एक छोटा सा सूत्र कहा। महावीर कहते हैं : उठो तो विवेक से, चलो तो विवेक से, बैठो तो विवेक से, सोओ तो भी विवेक से। विवेक का मतलब है कि चलते समय पूरी चेतना हो कि मैं चल रहा हूं, बैठते समय पूरी चेतना हो कि मैं बैठ रहा हूं, उठते समय पूरी चेतना हो कि मैं उठ रहा हू। बेहोशी में कोई कृत्य न हो पाए, सोए-सोए कोई कृत्य न हो पाए। होशपूर्वक जीना हो तो धीरे-धीरे भीतर के समस्त चित्त के प्रति जागता है और जागते ही रूपान्तरण शुरू हो जाता है। जागकर रूपान्तरण करना नहीं पड़ता है। बुद्ध जिसे सम्यक् स्मृति कहते हैं महावीर उसे विवेक कहते हैं, जीसस ने उसे अवेयरनेस कहा है, गुरजियफ ने उसे सैल्फ रिमेम्बरिंग कहा है। कुछ भी नाम दिया जा सकता है। लेकिन एक ही बात है। हम सोए-सोए जागते हैं।

मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। एक मित्र से बात कर रहे हैं। एक मक्खी कंधे पर आकर बैठ गई है। बुद्ध ने बात करते हुए मक्खी उड़ा

दी है। बात जारी रखी है और मक्खी उड़ा दी है। फिर रुक गए। मक्खी तो उड़ गई है, फिर रुक गए हैं। फिर दुबारा हाथ ले गए वहां जहां मक्खी थी, अब वह वहा नही है। साथी मित्र ने पूछा : आप क्या कर रहे हैं? बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे बातचीत करने मे लीन था और मैंने मक्खी को बिल्कुल मूर्छित भाव से उड़ा दिया जैसे कोई बेहोश उड़ाता हो। अब मैं होशपूर्वक उड़ा रहा हू जैसे कि मुझे उड़ाना चाहिए था। तो मैंने अपने मित्र को कहा कि जीवन की क्रियाओ मे होशपूर्वक जीने का प्रयोग करो। छ: महीने बाद वह मेरे पास आए और मुझे कहा कि आपने मुझे धोखा दिया है। शराब पीनी मुश्किल होती चली जाती है क्योकि दो बाते एक साथ चलनी असम्भव हैं। अगर मुझे होशपूर्वक जीना है तो मै शराब नही पी सकता। और अगर होशपूर्वक नही जीना है तो मैं शराब पी सकता हू। लेकिन अब होशपूर्वक जीने मे जो आनन्द की अनुभूति शुरू हुई है वह शराब पीने से कभी नही मिली। एक और बात उन्होंने मुझे कही कि एक अद्भुत अनुभव मुझे हुआ है कि जब मैं दुखी था तो शराब दुख को भुला देती थी। इधर अभी महीनों निरंतर जागने की कोशिश से सुख की एक धार भीतर बहनी शुरू हुई है, एक झरना भीतर फूटना शुरू हुआ है। शराब पीता हू तो मैं भूल जाता हू। शराब सिर्फ भुलाती है। सुखी आदमी को सुख भुला देती है, दुखी आदमी को दुख भुला देती है और दुखी आदमी शराब खोजे, समझ में आता है। सुखी आदमी शराब कैसे खोज सकता है? तो उन्होने कहा कि मुश्किल हो गया है। मैंने कहा : मुश्किल हो जाए बात अलग, लेकिन मुझसे उसकी बात मत करना। आप जागने का, ध्यान का प्रयोग जारी रखें?

मेरी दृष्टि मे महावीर ने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया। महावीर ने तो ध्यान का एक उपदेश दिया। उस ध्यान से जो भी गुजरा, वह अहिंसक हो गया। उस ध्यान से गुजरने वाले को अहिंसक हो जाना पड़ा। उस ध्यान से जो गुजरेगा वह अहिंसक हो ही जाएगा। अहिंसा की अलग से शिक्षा देने की कोई जरूरत नही है। लेकिन अब महावीर के पीछे चलने वाले लोग हैं। वे 'अहिंसा परमो धर्मः' की तख्तियां लगाए हुए बैठे हैं। वे बैठे रहेंगे तख्तियां लगाए हुए और अहिंसा चलती रहेगी। और वे अपने बच्चो को अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। वे सारी दुनिया में शोर गुल मचा रहे हैं कि अहिंसक हो जाना चाहिए सब को। और उन्हें शायद मूल सूत्र का पता ही नहीं है कि अहिंसक कोई होगा कैसे? भीतर चित्त जागे तो जागे चित्त से हिंसा विसर्जित

होती है। जागे हुए चित्त में हिंसा नहीं रह जाती। जागा हुआ चित्त हिंसा से मुक्त हो जाता है; हिंसा से मुक्त होना नहीं पड़ता। और तब जो शेष रह जाता है, वह अहिंसा है। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। हिंसा चली जाती है, जो शेष रह जाती है, वह अहिंसा है। ब्रह्मचर्य, सत्य विधायक शब्द हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य नकारात्मक शब्द है। यह सोचने जैसा है। असल मे परिग्रह की वृत्ति विदा हो जाती है तो जो शेष रह जाता है वह अपरिग्रह है। अपरिग्रह को सीधा नहीं साधा जा सकता। और कोई अगर अपरिग्रह को सीधा साधेगा तो वह परिग्रही हो जाएगा, अपरिग्रही नहीं। अगर कोई धन छोड़ेगा तो जितनी पकड़ उसकी धन के साथ थी, उतनी अब धन छोड़ा इस बात के साथ शुरू हो जाएगी।

मैं एक संन्यासी के पास ठहरा था। वह दिन में दो-तीन बार मुझसे कहे कि मैंने लाखो रुपयो पर लात मार दी है। चलते वक्त सांझ को मैंने कहा : लात आपने कब मारी? उन्होंने कहा कोई तीस साल हुए। तो मैंने कहा कि जाते वक्त एक बात कह जाऊं। वह लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो तीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है? लात लग ही नहीं पाई, बिल्कुल चूक गई। लाखो रुपए मेरे पास थे, यह भी अहकार था। लाखो रुपए मैंने छोड़े, यह भी अहकार है। और पुराने अहकार से यह ज्यादा सूक्ष्म, ज्यादा जटिल और ज्यादा खतरनाक है। अगर कोई परिग्रह छोड़ेगा तो त्याग को पकड़ेगा। मैं महावीर को त्यागी नहीं कहता हू। महावीर ने कोई परिग्रह नहीं छोड़ा, इसलिए त्यागी का कोई सवाल नहीं है। महावीर का परिग्रह बिदा हो गया है। जो शेष रह गया है वह अपरिग्रह है। कोई चोरी छोड़ेगा तो सिर्फ छोड़ा हुआ चोर होगा। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। भीतर चोरी जारी रहेगी। हाथ-पांव बाध लेगा, रोक लेगा अपने को छाती पर पत्थर रखकर कि चोरी नहीं करनी लेकिन भीतर चोर होगा। कोई चोरी करने से थोड़े ही चोर होता है। लेकिन अगर कोई जागेगा और चोरी बिदा हो जाएगी तो अचौर्य शेष रह जाएगा। अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह नकारात्मक हैं। क्योंकि कुछ बिदा होगा तो कुछ शेष रह जाएगा। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर हिंसा बिदा हो जाए, परिग्रह बिदा हो जाए, चोरी बिदा हो जाए —अगर यह तीनों बिदा हो जाएं तो अहिंसा, अचौर्य और अपरिग्रह की जो चित्तदशा होगी उसमे सत्य का उदय होगा। इन तीन के बिदा होने पर सत्य का अनुभव होगा। ये द्वार बन जाएंगे और सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य को

कोई खोज नहीं सकता। हमें पता ही नहीं कि वह कहां है। हम उस स्थिति में आ जाएं जहां द्वार खुल जाए तो सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य होगा इस तीन के द्वार से उपलब्ध अनुभव और ब्रह्मचर्य होगा उसकी अभिव्यक्ति। वह जो सत्य मिल गया उस जीवन के सब हिस्सों में प्रकट होने लगेगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ये तीन बनेंगे द्वार और तीन में अहिंसा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि जिस आदमी की हिंसा विदा हो गई है, वह चोरी कैसे करेगा? क्योंकि चोरी करने में हिंसा है और जिस आदमी की हिंसा विदा हो गई है, वह कैसे संग्रह करेगा, क्योंकि सब संग्रह के भीतर चोरी है। इसलिए अगर हम बाकी दो को विदा भी कर दें तो तीन बातें रह जाती हैं अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य। अहिंसा के दो हिस्से हैं—अचौर्य, अपरिग्रह। अहिंसक चित्त में सत्य का अनुभव होगा और ब्रह्मचर्य उसका आचरण होगा। लेकिन यह अहिंसा समाधि से, ध्यान से उपलब्ध होती है। आप कह सकते हैं कि बहुत से ध्यानी लोग हुए हैं जो अहिंसक नहीं हैं। जैसे, रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी मांसाहारी है। रामकृष्ण मछली खाते हैं और विवेकानन्द भी। तो विचार होता है कि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी अगर ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होकर मछलियों से मुक्त नहीं होता है तो मामला क्या है? मेरी दृष्टि में महावीर का जो ध्यान है, उस ध्यान से गुजरने पर ही अहिंसा की उपलब्धि हो सकती है। वह जागने का ध्यान है। और रामकृष्ण का जो ध्यान है, वह जागने का नहीं, सो जाने का, मूर्छित हो जाने का ध्यान है। रामकृष्ण का ध्यान ठीक से समझा जाए तो वह सिर्फ मूर्छा है। इसलिए रामकृष्ण तीन-तीन, चार-चार दिन बेहोश पड़े रहते हैं। मुख से फेन गिर रहा है, आंखें बंद हैं, हाथ पैर अकड़ गए हैं। मेरी दृष्टि में उनकी चेतना भी खो गई है। वह उसी हालत में हैं जिस हालत में कोई हिस्टीरिया में हो। और इसलिए उनके व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं होगा। हिंसा जारी रहेगी। महावीर और बुद्ध की इस जगत को जो सबसे बड़ी देन है वह इस भांति के ध्यान का प्रयोग है जिस प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा होती है और जिस ध्यान के प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा न होती हो, उस ध्यान के प्रयोग का अन्तिम परिणाम ब्रह्मचर्य भी नहीं हो सकता है क्योंकि काम वासना भी बहुत गहरे में हिंसा का ही एक रूप है।

जिसके भीतर गाली उठती है वह गाली देता है, क्रोध आता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है, सहज है, जैसा है वैसा है। उसके बाहर और

भीतर में कोई फर्क नहीं है । परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नहीं होता । परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है । अज्ञानी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है । बीच में एक पाखण्डी व्यक्ति है जो भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है । पाखण्डी व्यक्ति बाहर ज्ञानी जैसा होता है, भीतर अज्ञानी जैसा होता है । पाखण्डी का मतलब है भीतर अज्ञानी जैसा । उसके भीतर भी गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है । और बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, अहिंसा परमो धर्मः की तख्ती लगाकर बैठता है, सच्चरित्रवान दिखाई पड़ता है, सब नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है । बाहर उसका कोई व्यक्तित्व नहीं । कोई अहिंसा का अनुयायी नहीं हो सकता । कोई उपाय नहीं है । अहिंसा को आचरण से साधने कोई जाएगा तो अभिनय, पाखण्ड मे पड़ जाएगा । सामने के द्वार से अहिंसक होगा, पीछे के द्वार से हिंसा जारी रहेगी । मिथ्या अहिंसा और भी खतरनाक है क्योंकि वह अहिंसा मालूम पड़ती है और अहिंसा नहीं है । फिर उपाय क्या है ? फिर उपाय सिर्फ एक है क्योंकि अहिसा है एक नकारात्मक स्थिति—अहिंसा जहा है ऐसी स्थिति । और हिंसा मे हम खड़े हैं । हम क्या करें ? दो ही उपाय हैं । या तो हम हिंसा से लड़ें या अहिंसक होने की कोशिश करें । कोशिश से साधी गई अहिंसा कभी भी अहिंसा नही हो सकती । क्योंकि कोशिश करने वाला हिंसक है । और हिंसक ने जो कोशिश की है उसमें हिंसा मौजूद है । और हिंसक ने जो भी कोशिश की है, उसमें हिंसा प्रविष्ट हो जाएगी । फिर क्या करें ? एक ही उपाय है अपनी हिंसा के साक्षी बन जाने का । कुछ भी न करें, करने की बात ही छोड़ दें । मैं जैसा हू—हिंसक, क्रोधी, अत्याचारी, अनाचारी, दुराचारी,—जैसा भी मैं हूं, मैं उसके प्रति जागा हुआ रह जाऊं और इस स्थिति मे रहने की कोशिश करूं कि मैं जानू जो भी हू, बदलने की फिक्र ही न करूं, सिर्फ जानूं । बदलने की फिक्र मे जान भी नही पाते हैं और अगर कोई जान ले तो बदल पाता है । ज्ञान ही रूपान्तरण है, ज्ञान ही क्रान्ति है । अपनी हिंसा को जान लेना अहिंसा को उपलब्ध हो जाना है । इससे यह मतलब मत समझ लेना कि आपको अहिंसा का जो अनुभव होगा, वह नकारात्मक होगा । एक अर्थ में अहिंसा की स्थिति नकारात्मक है । हिंसा चली जाएगी, जो शेष रह जाएगा वह अहिंसा है । इस अर्थ मे वह नकारात्मक है । लेकिन जब अहिंसा प्रकट होगी और सारे जीवन से उसकी किरणें फूट पड़ेंगी, उससे ज्यादा कोई विधायक अनुभूति नहीं है । इसलिए महावीर ने

परमात्मा की बात ही बद कर दी है। क्योंकि अहिंसा का अनुभव हो जाए तो परमात्मा का अनुभव हो गया। कोई जरूरत न समझी उस बात की। अहिंसा का पूर्ण अनुभव परमात्मा का अनुभव है। हिंसा विदा हो सकती है, विदा की नही जा सकती। दिया जल जाए तो अंधेरा विदा हो जाता है। ध्यान जग जाए तो हिंसा विदा हो जाती है। ये थोडी सी बातें मैंने कहीं। मै कोई पंडित नहीं हू, न होना चाहता हूं। भगवान की कृपा से उस झंझट में, भूल में पड़ने का कोई मौका नही आया। सौभाग्य है कि आप सब विद्वज्जनो ने शांति और प्रेम से मेरी बातें सुनीं। उसके लिए मै बहुत अनुगृहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हू। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रश्नोत्तर[1]

प्रश्न : आपने जो अहिंसा के सम्बन्ध मे महात्मा गांधी और महावीर की दृष्टि को प्रस्तुत किया है, आप स्वयं हिंसक हैं या अहिंसक—अपनी सम्मति कहें।

उत्तर : मेरे कहने से क्या फर्क पड़ेगा। मैं तो यही कहूगा कि मैं हिंसक हू। क्योंकि यह कहना भी कि मैं अहिंसक हूं हिंसा हो जाएगी। तो यही समझें कि मैं हिंसक हू। और मेरे कहने से क्या पता चलेगा कि मैं क्या हूं, क्या नही हू। इसे बातचीत के बाहर छोड़ा जा सकता है सहज ही और जितना बातचीत के बाहर छोड दें उतना आसान होगा। मुझे नही समझना है आपको, अहिंसा को समझना है। और अहिंसा को समझना हो तो 'मै' को बिल्कुल ही बाहर छोड़ देना चाहिए। न तो 'मै' समझा जा सकता है, न समझाया जा सकेगा। क्योकि 'मै' तो बडी हिंसा हो जाएगी। अभी-अभी दोपहर में मैं कह रहा था एक व्यक्ति ने जाकर पूछा एक झेन फकीर से कि क्या आपको ईश्वर की उपलब्धि हो गई है। तो उस फकीर ने कहा कि अगर मैं कहूं कि उपलब्धि हो गई है तो जो जानते हैं वे मुझ पर हंसेंगे क्योंकि जिसे कभी खोया ही नहीं था उसकी उपलब्धि कैसी। अगर मैं कहूं कि मुझे उपलब्धि नहीं हुई है तो तुम बिना कुछ जाने-समझे लौट जाओगे। और तब भी नुकसान होगा। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है कि मुझे उपलब्धि हुई है या नहीं हुई है। यह निपट मेरा मामला है। इससे क्या लेना-देना है। लेकिन अहिंसा के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कह रहा हूं उस सम्बन्ध में कुछ पूछेंगे तो अच्छा होगा।

१. प्रश्नोत्तर पहले दिये गये प्रवचन के बाद गोष्ठी में ही हुए थे—सम्पादक।

अगर मेरे सम्बन्ध में कुछ पूछना हो तो मैं दुबारा आऊं तब फिर मैं अपने सम्बन्ध में बोलूं तो ठीक होगा।

प्रश्न : क्या महावीर से पहले इतने ऋषि-महर्षि हुए उन्होंने अहिंसा को नहीं समझा ?

उत्तर : मुझे पता नहीं है। ऋषि-महर्षि कहीं मिल जाएं तो उनसे पूछना चाहिए। समझा होगा, बहुत लोगों ने समझा होगा क्योंकि महावीर कोई शुरूआत नहीं है जगत की और न महावीर कोई अन्त है। बहुत लोग उस दिशा मे गए होंगे। असल में जो भी कभी गया होगा वह अहिंसा से गया होगा। लेकिन शायद हमारे पास ऐतिहासिक रूप से जो निकटतम आदमी है, वह महावीर है जिनके बाबत ज्यादा से ज्यादा हमे पता है। महावीर के पहले भी अहिंसा को अनुभव करने वाले लोग रहे होंगे। लेकिन महावीर सबसे बड़े स्पष्ट व्याख्याता हैं। फिर यह भी होता है कई बार कि कोई आदमी जान ले तो जरूरी नहीं है कि बता सके। मैं जाऊं और चादनी रात देखूं, तारे देखूं और लौट कर आऊं और आप मुझसे कहें कि एक चित्र बनाकर बता दें जो सौन्दर्य आपने देखा है। हो सकता है कि मैं न बना सकू क्योंकि रात की चांदनी देखना एक बात है और चित्र बनाने की कला अलग बात है। बहुत लोगों ने अहिंसा देखी हो लेकिन महावीर ने जिस ढंग से, जिस साफ ढंग से बताई है, शायद किसी शिक्षक ने नहीं बताई है।

प्रश्न : आपने बताया कि जब भी अहिंसा को शब्द देते हैं वह वाद या सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है। वह अहिंसा हिंसा के रूप में परिणत हो जाती है। और आपने कहा कि विवेक द्वारा ही हम अपनी अनुभूति को जगा सकते हैं और कार्य का सम्पादन कर सकते हैं। तो मेरा प्रश्न यह है कि विश्व-विवेक का स्फुरण कैसे हो और जब आप बताएंगे कि विवेक के स्फुरण करने में यह पद्धति होगी, तो वह पद्धति शास्त्र का रूप धारण कर लेगी।

उत्तर : ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। आपने दो-तीन बातें पूछी जो कि महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि मैंने कहा कि अहिंसा को संगठित नहीं किया जा सकता। असल में सिर्फ घृणा के लिए संगठित होने की जरूरत है। शत्रुता के लिए संगठित होने की जरूरत है। प्रेम के लिए संगठित होने की जरूरत ही नहीं है। प्रेम अकेले ही काफी है। घृणा अकेले काफी नहीं है, इस-लिए घृणा संगठन बनाती है। दुनिया के सब संगठन घृणा के ही संगठन हैं,

हिंसा के ही संगठन हैं। और इसलिए जब घृणा का मौका आ जाता है तो लोग संगठित हो जाते है। जैसे भारत पर चीन का हमला हुआ तो लोग ज्यादा संगठित हो गए। पाकिस्तान का हमला होगा तो लोग ज्यादा संगठित हो जाएंगे। हमला चला जाएगा संगठन कम हो जाएगा, क्योंकि हमला घृणा को पैदा करेगा, हिंसा को पैदा करेगा। असल मे जो व्यक्ति प्रेम को उपलब्ध है वह अकेला ही काफी है। वह दूसरे को इकट्ठा करने नहीं जाता। दूसरे को इकट्ठा करने की कोई जरूरत ही नहीं। दूसरे को हम इकट्ठा तब करते हैं जब कुछ ऐसा करना हो जिसे अकेला करना कठिन हो जाए। प्रेम अकेले ही किया जा सकता है, अकेले ही बाटा जा सकता है। लेकिन संगठन की जरूरत है क्योंकि हमने बडी हिंसाएं करनी हैं, बडी हत्याएं करनी हैं राष्ट्रों के नाम पर, सम्प्रदायों के के नाम पर, धर्मों के नाम पर। तो जब भी संगठन होगा, उसके केन्द्र मे हिंसा होगी, घृणा होगी चाहे वह संगठन किसी का भी हो। हो सकता है कि अहिंसकों का हो हिंसकों के खिलाफ। तो फिर वह हिंसा ही होगी। वहां संगठन मात्र हिंसात्मक होंगे। अहिंसात्मक संगठन का कोई अर्थ नहीं होता। अहिंसात्मक व्यक्ति अकेला ही काफी है। दस अहिंसात्मक व्यक्ति भी मिलकर बैठ सकते हैं लेकिन वे एक-एक ही होंगे। संगठन का कोई अर्थ नहीं है, यह मैंने कहा। दूसरी बात आपने बहुत बढिया पूछी, वह यह कि स्फुरण कैसे हो विवेक का और साथ मे यह भी पूछा कि मैं बताऊंगा तो फिर वह शास्त्र हो जाएगा। बिल्कुल ठीक है। अगर मेरे बताने के कारण आप उस पर चलेंगे तो आप शास्त्र पर चले। लेकिन अपने विवेक के कारण अगर आप उस पर चले तो शास्त्र यहीं पडा रह गया। जैसे मुझसे कोई पूछे कि तैरना कैसे? क्या उपाय है? तो मैं कहूंगा कि तैरने का कोई उपाय नहीं होता सिवाय तैरने के। लेकिन एक आदमी अगर कहे कि मैं नदी मे तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख जाऊंगा क्योंकि बिना तैरना सीखे कैसे उतरूं तो वह तर्कयुक्त बात कह रहा है। बिना तैरना सीखे उसे नदी में उतारना खतरे से भरा है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नहीं तब तक तैर भी नहीं सकोगे। तैरना भी सीखना हो तो पानी मे उतरना होगा। लेकिन पहली बार पानी में उतरना तडफडाना ही होगा, तैरना नहीं हो सकता। असल में तैरना क्या है? तडफडाने का व्यवस्थित रूप है। पहले तडफडाएंगे, फिर तडफडाने में तकलीफ होगी तो व्यवस्थित हो जाएंगे। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि तैरना आ गया, तडफडाना चला गया। तैरना तडफडाने का ही व्यवस्थित रूप

है। आदमी पहले दिन पानी में पटकने से ही तैरता है। फिर बाद में जो विकास होता है, वह उसके अपने तैरने के अनुभव से होता है। तो मैं आपको क्या कहूं कि विवेक कैसे जगे? विवेक को जगाना हो तो विवेक करना होगा; तैरना सीखना है तो तैरना शुरू करना होगा। और कोई उपाय नहीं है। रास्ते पर चलते, खाना खाते, बात करते, सुनते, उठते, बैठते विवेकपूर्ण होना होगा। लेकिन ठीक आप पूछते हैं कि जो मैं यह कह रहा हूं और मेरी बात जब मैंने समझाई तो शास्त्र हो गई। मगर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बात समझाने से शास्त्र नहीं होती, बात आपके समझने से शास्त्र होती है। अगर मैंने कहा कि बात किसी तीर्थंकर ने कही है, किसी सर्वज्ञ ने कही है, और आपने कहा कि ऐसे व्यक्ति ने कही है जो जानता है और भूल नहीं करता तो फिर वह शास्त्र बन जाती है, नहीं तो किताब ही रह जाती है। किताब और शास्त्र में फर्क है। जो किताब पागल हो जाती है वह शास्त्र है। जो किताब दावा करने लगती है वह शास्त्र बन जाती है। मैं किताबों का दुश्मन नहीं हूं, शास्त्र का दुश्मन हूं। किताबें तो रहनी चाहिएं, बड़ी अद्भुत हैं, बड़ी जरूरी हैं। किताबों के बिना नुकसान हो जाएगा। लेकिन शास्त्र बड़े खतरनाक है। जब कोई किताब दावा करती है कि मैं परम सत्य हूं और जो मेरे रास्ते से चलेगा वही पहुंचेगा, और जो मैंने कहा है, ऐसा ही करेगा तो पहुंचेगा अन्यथा नरक है, अन्यथा नरक की अग्नि में सड़ना पड़ेगा तब किताब शास्त्र हो गई। और जब कोई इसे इस तरह मान लेता है तो वह बाधक हो जाती है। मैं जो कह रहा हूं वह कोई शास्त्र नहीं है। मैं कोई प्रमाण नहीं हूं। कोई आप्त वचन नहीं है मेरा। मैं कोई तीर्थंकर नहीं हूं। मैं कोई सर्वज्ञ नहीं हूं। मैं एक अति सामान्य व्यक्ति हूं। जो मुझे दिखता है वह आपसे निवेदन कर रहा हूं। यह सिर्फ संवाद है। आपने सुन लिया, बड़ी कृपा है। मानने का कोई आग्रह ही नहीं है। लेकिन सुनते वक्त अगर आपने विवेक से सुना, अगर जागे हुए सुना और कोई चीज उस जागरण में आपको दिखाई पड़ गई तो वह चीज आपकी है, वह मेरी नहीं है। कल मैं उस पर दावा नहीं कर सकता कि वह मेरी है। अगर आपने होशपूर्वक सुना, विचारपूर्वक सुना, समझा, सोचा, खोजा और कोई बात आपको मिल गई तो वह आपकी है। इसलिए सत्य कभी किसी को दिया नहीं जा सकता। मैं आपको कोई सत्य नहीं दे सकता। लेकिन मैं जो कह रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं, उस बात करने के वक्त आप इतने जागे हुए हो सकते हैं, विवेक से भरे हुए हो सकते हैं कि कोई सत्य आपको दिखाई पड़ जाए।

कई बार ऐसा भी होता है कि अज्ञानियों से भी सत्य मिल जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि ज्ञानी भी सत्य नहीं दे पाते।

मैंने सुना है कि बंगाल में एक फकीर हुआ, राजा बाबू उनका नाम था। वह हाइकोर्ट के मजिस्ट्रेट थे, जस्टिस थे, रिटायर्ड हुए थे, साठ साल के थे। सुबह के वक्त घूमने निकले हैं एक लकड़ी लेकर, रोज की आदत के अनुसार। एक मकान के सामने से निकले हैं। दरवाजा बन्द है। घर के भीतर कोई मां, कोई भाभी, किसी बेटे को, किसी देवर को उठा रही है। उसे पता भी नहीं कि कोई बाहर राजा बाबू नाम का बूढ़ा आदमी जा रहा है। उसने भीतर अपने बेटे को कहा : राजा बाबू, उठो, अब बहुत देर हो गई, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? और बाहर राजा बाबू चले जा रहे हैं, उन्हें एकदम सुनाई पड़ा : राजा बाबू उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया है, कब तक सोए रहोगे? वह छड़ी उन्होंने वहीं फेंक दी, दरवाजे पर नमस्कार किया उस स्त्री के लिए जिसको कि पता भी नहीं होगा क्योंकि वह तो घर के भीतर थी। घर वापिस लौट आए। आकर कहा कि अब मैं जा रहा हूं। तो घर के लोगों ने कहा कि कहां जाते हो। तो उन्होंने कहा . राजा बाबू, उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? उन लोगों ने कहा : पागल हो गए हैं। क्या बातें कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा कि आज कुछ सुनाई पड़ गया, कुछ मिल गया। अब मैं जाता हू।

मैंने यह भी सुना है कि एक फकीर अपने गुरु के निवास पर बीस वर्षों तक रहा। उसे कुछ भी न मिला। सब समझाना व्यर्थ हो गया। फिर गुरु ने कहा कि अब तू समझना भी छोड़ क्योंकि समझने से बीस साल में नहीं मिला तो अब तू समझना छोड दे। अब तेरा मन हो तो तू बैठ जा, न मन हो तो उठ जा। समझना हो तो समझ, न समझना हो तो न समझ, सोना हो तो सो जा। जो तुझे करना हो कर। अब तू समझना छोड दे। क्योंकि समझना भी एक दिक्कत दे रहा है, क्योंकि समझना भी तो एक तनाव ले आता है। किसी का नाम भूल गया हो, खोजते हैं, खो जाता है। फिर छोड़ देते हैं। फिर चाय पीने लगते हैं, गड्ढा खोदने लगते हैं बगीचे में और अचानक ही वह नाम याद आ जाता है। समझना भी तनाव पैदा कर देता है। उसने कहा : ठीक है, अब मैं समझना भी छोड़ता हू। उसी दिन वह दरवाजे के बाहर निकला, बाहर पीपल का वृक्ष है। सूखे पत्ते गिर रहे हैं। पतझड़ है। वह खड़ा हो गया, पत्ते गिर रहे हैं सूखे। वह वापिस लौट कर पहुंचा। गुरु

के पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं समझ गया। गुरु ने कहा कि मैं तो थक गया समझा-समझा कर। तू अब तक नहीं समझा। उसने कहा : आज मैं समझने का ख्याल छोड़कर बाहर द्वार पर जाकर खड़ा हुआ। पीपल के पत्ते गिर रहे हैं। पत्ते सूख गए हैं और गिर रहे हैं। मुझे वह सब दिख गया जो आपने बहुत बार समझाया। मुझे मृत्यु दिख गई और मैं मर गया उन पत्तों के साथ। अब मैं वह आदमी नहीं हूं जो रोज आया करता था। अब मैं एक सूखा पत्ता हूं। गुरु ने कहा कि अब तुझे मेरे पास आने की जरूरत भी नहीं है। अब बात खत्म हो गई है। पीपल ही तेरा गुरु है, उसी को नमस्कार कर और बिदा हो जा। अब पीपल को पता भी नहीं होगा। कैसे पता होगा ? मैं समझाऊं तो उससे आप नहीं समझ जाएंगे। आप खुद समझेंगे तो ही समझेंगे। और वह समझ सदा आपकी अपनी होगी, वह मेरी नहीं हो सकती। हां, मैं एक मौका, एक अवसर पैदा कर सकता हूं समझाने की कोशिश का। हो सकता है कोई उस वक्त जागा हुआ हो, उसे सुनाई पड़ जाए कि राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहेंगे। लेकिन यह शास्त्र नहीं बनता। महावीर की वाणी शास्त्र नहीं बनती अगर हम महावीर को सर्वज्ञ और तीर्थंकर न बनाते। बुद्ध की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम बुद्ध को भगवान न बनाते। कृष्ण की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम उन्हें भगवान न बनाते। लेकिन हम बिना भगवान बनाए रुक नहीं सकते क्योंकि बिना भगवान बनाए हमें समझना पड़ेगा, भगवान बनाने से झंझट उनकी तरफ हो जाती है। हमें समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। हम शास्त्र को पकड़ लेते हैं, और पक्का कर लेना चाहते हैं कि महावीर आप्त हैं, उपलब्ध हैं, उनको ज्ञान मिल गया है, वह सर्वज्ञ हैं। अगर संदिग्ध हों तो हम फिर किसी और को खोजें। जीसस भगवान के बेटे हैं, मुहम्मद पैगम्बर हैं, इस तरह हम पक्का विश्वास जुटा लेना चाहते हैं ताकि झंझट मिट जाए। फिर हम पकड़ लें। वह हमारा विवेक न जगाना पड़े। विवेक से बचने के लिए हम शास्त्र को पकड़ते हैं। विवेक को जगाना हो तो पीपल के पत्ते भी जगा सकते हैं, जगत की कोई घटना भी जगा सकती है, किताब भी जगा सकती है, किसी आदमी का बोलना भी जगा सकता है, किसी आदमी का चुप होना भी जगा सकता है। समझना हो तो चुप भी समझ में आती है, न समझना हो तो बोला हुआ सत्य भी समझ में नहीं आता। मैं कोई पद्धति की बात नहीं कर रहा हूं। विवेक कोई पद्धति नहीं हो सकती। विवेक का स्मरण आ सकता है। फिर आपको कूदना पड़ेगा, तैरना पड़ेगा,

तड़फड़ाना पड़ेगा। धीरे-धीरे आ जाएगा विवेक। जिस दिन आ जाएगा उस दिन आपको लगेगा कि किसी का दिया हुआ नहीं आया। किसी गुरु का दिया हुआ नहीं, किसी शास्त्र का दिया हुआ नहीं। उस दिन आपको लगेगा कि मेरे ही भीतर सोया था जग गया है, मेरे भीतर ही था आ गया है, जो उपलब्ध था वही पा लिया है, जिसे कभी नहीं खोया था वही मिल गया है।

प्रश्न : पहला प्रश्न यह है कि समाज का अहिंसा से क्या सम्बन्ध है। दूसरा प्रश्न यह है कि महावीर ने अहिंसा या सत्य की जो ढाई हजार वर्ष पहले बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है। तीसरा प्रश्न यह है कि जो आप कहते हैं कि नैतिक अहिंसा अलग है और धार्मिक अहिंसा अलग है, अगर आप दोनों में से अहिंसा को हटा दें तो इसका मतलब यह है कि जब आप धर्म की बात पर आ जाते हैं तो वह नष्ट हो जाती है।

उत्तर। जो प्रश्न आपने पूछे हैं उनका समाधान मैं करूंगा तो नहीं होगा। समाधान आप खोजेंगे तो मिल जाएगा। मैं कोशिश कर सकता हूं। पहली बात आप पूछते हैं कि आज के समाज के साथ अहिंसा का क्या सम्बन्ध है। समाज का अहिंसा से कभी सम्बन्ध नहीं था। समाज तो हिंसक है और हिंसा पर ही खड़ा है। अहिंसा का सम्बन्ध व्यक्तियों से है। अभी वह दिन दूर है जबकि सभी व्यक्ति अहिंसक हो जाएंगे और जो समाज होगा वह अहिंसक होगा। समाज का सम्बन्ध अभी अहिंसा से नहीं है, न अब तक कभी था। आगे सम्भावना है। कभी होगा, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन अगर व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध होते चले जाएं तो जो समाज उनसे निर्मित होगा, वह धीरे-धीरे अहिंसक होता चला जाएगा। अभी तक अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं, अहिंसक समाज पैदा नहीं हुआ है। महावीर अहिंसक होंगे, जैन थोड़े ही अहिंसक है? बुद्ध अहिंसक होंगे, बौद्ध थोड़े ही अहिंसक हैं? अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं अब तक, अहिंसक समाज नहीं पैदा हुआ। व्यक्ति बढ़ते चले जाएंगे और किसी दिन अहिंसक व्यक्तियों का पलड़ा भारी हो जाएगा। अहिंसक व्यक्तियों से एक अहिंसक की सम्भावना भी प्रकट होगी। अभी कोई आशा नहीं है जल्दी। दूसरी बात आप पूछते हैं कि ढाई हजार साल पहले महावीर ने अहिंसा की जो बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है? कहां बैलगाड़ी का जमाना और कहां जेट का जमाना? कहां महावीर को बिहार के बाहर जाना मुश्किल और कहां आदमी का चांद

पर चला जाना? बिल्कुल ठीक पूछते हैं आप। लेकिन इस बात का ख्याल नहीं है कि कुछ चीजें हैं जो न बैलगाड़ी पर यात्रा करती हैं और न जेट पर। कुछ चीजें हैं जिनका जेट से और बैलगाड़ी से कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्तर्यात्रा के लिए न तो बैलगाडी की जरूरत है और न जेट की। अगर अन्तर्यात्रा में बैल-गाड़ी की जरूरत होती तो महावीर की बात गलत हो जाती। अन्तर्यात्रा तो आज भी वैसी ही होगी जैसी ढाई हजार साल पहले होती थी और करोड़ वर्ष बाद भी जब कोई भीतर जाएगा तो वही विधि है बाहर को छोड़ने की और भीतर जाने की। भीतर जाने में कभी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। और जो भीतर है उसमे भी समय से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह समय के बाहर है। वह कालातीत है। इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म इसी अर्थ में सनातन है। धर्म का अनुभव सनातन है, सामयिक नहीं है। उसका काल से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होगा वह उसी सत्य को उपलब्ध होगा जिस सत्य को कभी कोई उपलब्ध हुआ या कोई कभी उपलब्ध होगा। दो सत्य नहीं हैं। सत्य न नया है, न पुराना है। सत्य चिरं-तन है, वही है। उसे पाने के लिए हमारा मन बड़े अधैर्य में है। हम चाहते हैं कोई सस्ती तरकीब, कोई ऐसी तरकीब कि एक गोली खा लें और आत्मज्ञान उपलब्ध हो जाए। कोई ऐसी तरकीब कि एक बटन दबाए और आत्मा उप-लब्ध हो जाए। हम इस फिराक में हैं। क्योंकि असल में शायद हमें आत्मा को उपलब्ध करने की कोई अभीप्सा ही नहीं है। सारी दुनिया में आदमी चाहता है कि सब कुछ अभी बन जाए, एकदम अभी हो जाए। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं जो अभी अगर करना चाहेंगे तो कभी न होंगी क्योंकि अभी करने वाला चित्त इतना तनावग्रस्त होता है कि अभी नहीं कर सकता?

एक छोटी सी कहानी से समझाऊं। कोरिया में भिक्षुओं की एक कहानी है। एक वृद्ध भिक्षु ने अपने जवान भिक्षु के साथ एक नदी को पार किया है। नाव से उतरे हैं, दोनों के ऊपर ग्रन्थों का बोझ है जैसा भिक्षुओं के ऊपर होता है। बोझ को लेकर उतरे हैं, जल्दी से केवट से पूछा है कि गांव कितनी दूर है क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढलने पर गांव के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। सूरज ढलने के करीब है। हम पहुंच पाएंगे या नहीं। रात तो न हो जाएगी। जंगल है, अंधेरा है, खतरा है। केवट ने नाव को बांधते हुए धीरज से कहा कि अगर धीरे-धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो। लेकिन अगर जल्दी गए तो कोई

पक्का नहीं है। उन दोनों ने जब यह बात सुनी तो कहा कि यह तो पागल आदमी है, इसकी बातों में पड़ना तो झंझट का काम है, भागो, क्योंकि यह कह रहा है कि धीरे-धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो, जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है। इस आदमी से क्या पूछना? दोनों भागे। सूरज ढलने लगा है और वे भाग रहे हैं। अंधेरा होने लगा है, अंधेरा रास्ता है, पहाड़ी रास्ता है, अनजान हैं। बूढ़ा आदमी जो है, वह गिर पड़ा है, घुटने टूट गए हैं। वह केवट नाव बांध कर पीछे आया है और कह रहा है कि मैंने कहा था, मेरा बहुत बार का अनुभव है, जो धीरे गए हैं वे पहुंच गए हैं, जो जल्दी गए हैं वे जल्दी के कारण नहीं पहुंच पाए हैं। एक चित्त की अवस्था है : जल्दी ! अभी ! यह विक्षिप्त चित्त की अवस्था है। पश्चिमी देशों में चित्त जल्दी में है, इतनी जल्दी में कि वह भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। भीतर प्रवेश के लिए चाहिए अत्यंत शांत धैर्य। वह अभी भी हो सकता है, ऐसा भी नहीं है कि जन्मों के बाद ही होगा। अगर जन्मों के बाद की प्रतीक्षा हो तो अभी हो सकता है। और अभी करना हो तो जन्मों तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है।

आखिरी बात आपने यह पूछी है कि नैतिक अहिंसा मिथ्या अहिंसा है, सच्ची अहिंसा नहीं है। नैतिक अहिंसा के पीछे हिंसा मौजूद रहेगी। और एक धार्मिक अहिंसा है जो अहिंसा है इस अर्थ में कि वहां से हिंसा विदा हो गई है। तो आपने कहा कि इसका मतलब तो यह हुआ कि धर्म अनैतिक है। हां, एक अर्थ में यही मतलब हुआ। अनैतिक के दो रूप हैं : एक तो नीति से नीचे और एक नीति से ऊपर। दोनों अनैतिक हैं। जो नीति से ऊपर उठते हैं वही धर्म को उपलब्ध होते हैं। नीचे भी उतरते हैं लोग। उनको हम अनैतिक कहते हैं। अनैतिक शब्द ठीक नहीं मालूम पड़ता। इसलिए कहना चाहिए अतिनैतिक। धर्म अतिनैतिक है, वह नैतिक नहीं है। पापी भी अनैतिक है, वह नीति से नीचे उतर आया, उसने खुलकर हिंसा करनी शुरू कर दी। वह पापी है। नैतिक वह है जिसने हिंसा भीतर दबा ली और अहिंसा का बाना पहन लिया। यह सज्जन है, यह नैतिक है। धार्मिक वह है जिसकी हिंसा विदा हो गई है और अहिंसा ही शेष रह गई है। यह अतिनैतिक है, यह भी अनैतिक है। यह भी नीति के पार चला गया। इसको भी नैतिक नहीं कहा जा सकता। इसलिए महावीर की, बुद्ध की या कृष्ण की वाणी नैतिक नहीं है, अतिनैतिक है और इसलिए जब पश्चिम में पहली बार भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद शुरू हुआ तो पश्चिम के विचारकों को तकलीफ मालूम पड़ी कि इनमें नीति का तो

कोई उपदेश ही नहीं है। उपनिषदों के पूरे के पूरे अनुवाद हो गए लेकिन उन्हें मालूम हुआ कि कहीं कोई नीति का उपदेश ही नहीं है। ऐसा होना ही चाहिए। धर्म तो नीति से बहुत ऊपर की बात है। सन्त सज्जन से बहुत भिन्न बात है। सज्जन थोपा हुआ दुर्जन है। भीतर मौजूद है दुर्जनता। ऊपर सज्जनता है। सन्त वह है जिसका सज्जन, दुर्जन दोनों बिदा हो गए हैं। वहां कोई भी नहीं है। न नीति है, न अनीति है। वहां सब शांति है।

प्रश्न : आपने कहा कि बाह्य आचरण से सब हिंसक हैं। इसके साथ-साथ आपने कहा कि चूंकि रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द मांस खाते थे, इसलिए वे अहिंसक नहीं थे। साथ ही साथ आपने कहा कि बुद्ध और महावीर अहिंसक थे। बुद्ध तो मांस खाते थे, वह अहिंसक कैसे थे ?

उत्तर : यह बात आपने अच्छी पूछी। मेरा मानना है कि आचरण से अहिंसा उपलब्ध नहीं होती। मैंने यह नहीं कहा कि अहिंसा से आचरण उपलब्ध नहीं होता। इसके फर्क को समझ लीजिए आप। हो सकता है कि मैं मछली न खाऊं। लेकिन इससे मैं महावीर नहीं हो जाऊंगा। लेकिन यह असम्भव है कि मैं महावीर हो जाऊं और मछली खाऊं। इस फर्क को आप समझ लें। आचरण को साधकर कोई अहिंसक नहीं हो सकता लेकिन अहिंसक हो जाए तो आचरण में अनिवार्य रूपान्तरण होगा। दूसरी बात यह कि मैंने बुद्ध और महावीर को अहिंसक कहा लेकिन बुद्ध मांस खाते थे। बुद्ध मरे हुए जानवर का मांस खाते थे। उसमें कोई भी हिंसा नहीं है। लेकिन महावीर ने उसे वर्जित किया किसी सम्भावना के कारण। जैसा कि आज जापान में है। सब होटलों के, दूकानों के ऊपर तख्ती लगी हुई है कि यहां मरे हुए जानवर का ही मांस मिलता है। अब इतने मरे हुए जानवर कहां से मिल जाते हैं, यह सोचने जैसा है। बुद्ध चूक गए, बुद्ध से भूल हो गई। हालांकि मरे हुए जानवर का मांस खाने में हिंसा नहीं है क्योंकि हिंसा का मतलब है कि मार कर खाना। मारा नहीं है तो हिंसा नहीं है। लेकिन यह कैसे तय होगा कि लोग फिर मरे हुए जानवर के नाम पर मारकर नहीं खाने लगेंगे। इसलिए बुद्ध से चूक हो गई है और उसका फल पूरा एशिया भोग रहा है। बुद्ध की बात तो बिल्कुल ठीक है लेकिन बात के ठीक होने से कुछ नहीं होता। किन लोगों से कह रहे हैं, यह भी सोचना जरूरी है। महावीर की समझ में भी आ सकती है यह बात कि मरे हुए जानवर का मांस खाने में क्या कठिनाई है। जब मर ही गया तो हिंसा का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जिन लोगों

के बीच हम यह बात कह रहे हैं, वह कल पीछे के दरवाजे से मारकर खाने लगेंगे। वह सब सज्जन लोग हैं, वह सब नैतिक लोग हैं, बड़े खतरनाक लोग हैं। वह रास्ता कोई न कोई निकाल ही लेंगे। वह पीछे का कोई दरवाजा खोल ही लेंगे। मैं बुद्ध और महावीर दोनो को पूर्ण अहिंसक मानता हूं। बुद्ध की अहिंसा में रत्ती भर कमी नहीं है लेकिन बुद्ध ने जो निर्देश दिया है, उसमें चूक हो गई है। वह चूक समाज के साथ हो गई है। अगर समझदारों की दुनिया हो तो चूक होने का कोई कारण नहीं है।

एक मित्र यह पूछते है कि विवेक के लिए विवेक के प्रति जागना क्या अपनी अविवेकबुद्धि के साथ प्रतिहिंसा न होगी। फिर आप मेरे विवेक का मतलब नही समझे। मै यह नही कह रहा हूं कि विवेक से अविवेक को काटें। अगर काटें तो हिंसा होगी। मैं तो यह कह रहा हू कि आप सिर्फ विवेक मे जागे। कुछ है जो कट जाएगा, कट जाएगा इस अर्थ मे कि वह था ही नहीं, आप सोए हुए थे इसीलिए था, अन्यथा वह गया। कटेगा भी कुछ नही, अंधेरा कटेगा थोडे ही दिए के जलाने से। इसलिए अंधेरे के साथ कभी भी हिंसा नही हुई है। वह नही रहेगा बस। विवेक जगेगा और अविवेक चला जाएगा। इसमे मै हिंसा नहीं देख पाता हू जरा भी। आप यह कहते हैं कि यह तो ठीक दिखाई पडता है कि दिए को जलाया और अंधेरा चला गया। इसको हम सच मान सकते हैं क्योकि यह हमारा अनुभव है। दूसरे को कैसे सच मानें ? मै कहता ही नही कि मानें। अनुभव हो जाएगा तो मान लेंगे। इसको मै कहता भी नही कि मानें। मै कहता हू कि आप प्रयोग करके देखें। यदि संशय सच मे ही जगा है तो प्रयोग करवा कर ही रहेगा। तभी सशय सच्चा है। तो प्रयोग करके देख लें। विवेक जग जाए और अगर हिंसा रह जाए तो समझना कि मै जो कहता था, सत्य नहीं कहता था। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हुआ है और न हो सकता है।

परिशिष्ट (२)

ध्यान

गहरे ध्यान की पहली जरूरत तो यह है कि उसका स्मरण जितने ज्यादा समय तक रह सके उतना ही गहरा हो सकता है। एक सरल सी प्रक्रिया पर रोज दिन भर ख्याल रखें। चलते उठते बैठते सोते जब तक ख्याल रहे श्वास पर ख्याल रहे, पूरे वक्त स्मृति श्वास पर रहे कि श्वास भीतर जा रहा है। तो हमारी स्मृति भी उसके साथ भीतर जाए, बोध भी कि श्वास भीतर गया। श्वास बाहर जारहा है तो बोध भी श्वास के साथ बाहर जाए। आप श्वास पर ही तैरने लगें, श्वास पर ही चेतना की नाव को लगा दें—बाहर जाए तो बाहर, भीतर जाए तो भीतर। श्वास के साथ ही आपका भी कम्पन होने लगे और इसे बिल्कुल न भूलें कभी। जब भी भूल जाएं और जब से याद आए, फौरन फिर शुरू कर दें। घूमने गए हैं, बगीचे में गए हैं, कहीं भी गए हैं, कार में बैठे हैं तो इसको नहीं छोड़ देना है। इसको सतत ही स्मरण रखें। तो एक तीन-चार दिन में स्मरण टिकने लगेगा और जैसे-जैसे स्मरण टिकने लगेगा वैसे-वैसे ही आपका चित्त शांत होने लगेगा। ऐसी शांति जो आपने कभी नहीं जानी होगी क्योंकि जब चित्त पूर्ण श्वास के साथ चलने लगता है तो विचार अपने आप बन्द होने लगते हैं। विचार का उपाय नहीं रहता क्योंकि ये दो बातें एक साथ नहीं हो सकती। श्वास पर चित्त होगा तो विचार बन्द होंगे और विचार पर चित्त जाएगा तो श्वास पर नहीं रहेगा। दोनो बातें एकसाथ नहीं हो सकती। यह असम्भव है। इसलिए मैं श्वास पर ध्यान रखने के लिए कह रहा हू ताकि विचार वहां से खो जाएं। और विचार सीधे हटाने तो बहुत कठिन हैं क्योंकि वह तो दबाना हो जाता है। यहां हम हटा नहीं रहे विचारों को। विचारो से कोई सम्बन्ध ही नहीं। हम तो अपनी पूरी चेतना को दूसरी जगह लिए जा रहे हैं और चूंकि चेतना वहां नहीं होती जहां विचार हैं इसलिए उनको हट जाना पड़ता है। यानी हम किसी आदमी को यह नहीं कह रहे कि तुम इस कमरे को छोड़ो, यह कमरा ठीक नहीं है। तुम भागो यहां से। और उस आदमी को कमरा अच्छा लग रहा है। सिर्फ हम उसको यह कहते हैं कि बाहर बगिया है, बड़े अच्छे फूल लगे हैं? आते हो क्या? हम

उससे कमरा छोड़ने की बात ही नहीं कर रहे। कह रहे हैं बाहर फूल हैं, बगिया है, सूरज निकला है, आते हो क्या ? हम बाहर आने का निमंत्रण दे रहे हैं। कमरा छोड़ने का आग्रह नहीं कर रहे। बाहर आ जाएगा तो कमरा छूट जाएगा। इसलिए कमरे की हमें चिन्ता नहीं करनी है। तो विचार छोड़ने का ख्याल ही नहीं करना है। श्वास पर ध्यान चला जाए तो विचार छूट जाते हैं क्योंकि श्वास बिल्कुल दूसरा तल है, जहां विचार नहीं है। और विचार एक दूसरा तल है जहां श्वास का स्मरण नहीं हो सकता। तो यह बिल्कुल ही विरोधी प्रक्रियाएं हैं। और अगर एक तल पर ले जाते हैं तो दूसरे से अपने-आप मुक्ति हो जाती है। तो पूरे समय, ऐसा नहीं कि कभी थोड़ी बहुत देर, क्योंकि तब फिर गहरा नहीं हो पाएगा तो पूरे समय श्वास पर ध्यान रखें। सुबह उठें तो पहला स्मरण श्वास का; रात सोए तो अन्तिम स्मरण श्वास का। तो अपने-आप आपका बोलना कम हो जाएगा। विचार तो कम होंगे, बोलना भी कम हो जाएगा। क्योंकि जैसे आप बोलेंगे, आपका ध्यान श्वास से हट जाएगा फौरन। इसलिए मैं मौन रहने के लिए भी नहीं कहता। क्योंकि ये दोनों बातें एकसाथ नहीं चल सकतीं। आप बोले कि श्वास से ध्यान गया। श्वास का ध्यान रखना है तो बोलना बंद करना होता है, अपने-आप हो जाता है। तो कम बोलना पड़ेगा। बहुत कम बोलिए। लेकिन अक्सर होता क्या है? इतनी शांत जगह में भी आकर जब हम बातें करते हैं तो शांत जगह विलीन हो जाती है और शांति का जो प्रभाव है वह हममें प्रवेश नहीं कर पाता। बातों की हम दीवार खड़ी रखते हैं। जैसे कि आप बैठ गए आकर कमरे में, बात करने लगे तो आप भूल जाएंगे कि आप श्रीनगर में हैं, कि यह डल लेक है, पहाड़ी है, सब गायब। वह जो बातों का तल है, वह आपको सब भुला देगा। तो जैसे आप बम्बई में होते हैं, दिल्ली में होते हैं वही हो जाएगा। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। तो बातचीत से बचें और ध्यान श्वास पर ले जाएं। बातचीत अपने आप क्षीण हो जाएगी। यदि हम चाहते हैं कि पन्द्रह दिन में धीरे-धीरे ऐसा हो जाए तो अकारण, व्यर्थ, फिजूल बातचीत न करें तभी ध्यान गहरा होगा। मैं यह नहीं कर रहा हूं कि बोलो मत लेकिन बोलो वही जो जरूरत का है, काम का है, बाकी चुप। और चुप इसलिए कि ध्यान श्वास पर रहे। थोड़ा एकान्त में भी जाएं जब मौका मिल जाए। साथ मत ले जाएं किसी को क्योंकि जब दूसरा साथ होता है तो ध्यान दूसरे पर होता है। बड़ी सूक्ष्म बात है। अगर ख्याल करें कि दूसरा मौजूद है तो आप उसको भूल नहीं सकते। इस कमरे में आप अकेले बैठे हैं और इस

कमरे में एक आदमी को और लाकर बिठा दिया और आपसे कहा कि आपको कोई मतलब नहीं, आपको जो करना हो करिए। आप चाहे किताब पढ़ो और चाहे आप कुछ भी करो। वह आदमी यहां मौजूद है। आप भूल नहीं सकते और आपकी चेतना सतत उसके होश से भरी रहेगी। और उसको अगर आप भूल जाओ तो वह भी बुरा मानता है। पत्नी के साथ हैं और अगर भूल गए हो तो पत्नी बहुत बुरा मानेगी। पति को अगर पत्नी भूल गई हो तो पति बुरा मानता है। असल में हम बुरा ही तब मानते हैं जब कोई हमारा हमें भूलता है। उसी सैकेंड हम बुरा मानते हैं। क्योंकि हमारी पूरी आकांक्षा दूसरे का ध्यान हम पर हो, यह बनी रहती है और जिसको हम प्रेम वगैरह कहते हैं, मित्रता वगैरह कहते हैं, वह कुछ नहीं है, वह एक दूसरे पर ध्यान देने का सुख है और कुछ नहीं सिवाय कि दूसरा मुझे याद रखे। इसके कारण हैं बहुत गहरे। कारण यह है कि हम को अपना तो कोई स्मरण नहीं। तो हम अपने अस्तित्व को दूसरे को स्मरण कराकर ही अनुभव कर पाते हैं। और कोई उपाय ही नहीं। अगर दूसरा भूल गया तो हम गए। समझ लीजिए कि आप यहां हैं और आपके सब मित्र भूल गए तो आपका दुनिया में क्या रह गया? आप गए। आपका अस्तित्व ही खत्म हो गया। आप हो ही नहीं फिर। दीपचंद पन्द्रह दिन से यहां हैं। और दीपचंद जी को सारे लोग भूल गए। दीपचंद कहीं जाता है, कोई नमस्कार नहीं करता। कोई नहीं कहता: कहो, कैसे हो! कोई नहीं पूछता, कोई फिक्र नहीं करता, कोई देखता ही नहीं उसकी तरफ, कोई ध्यान ही नहीं देता तो दीपचंद एकदम मिट गए। क्योंकि दीपचंद अपने भीतर तो कुछ हैं ही नहीं। एक ध्यान का ही जोर है जो कुछ है। इसलिए जो ध्यान देता है वह प्यारा मालूम पड़ता है; जो नहीं देता वह दुश्मन मालूम पड़ता है; जो मुंह फेर लेता है वह दुश्मन है; जो पास आ जाता है वह मित्र है और हमारा सारा सम्बन्ध उसी पर खड़ा है। पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसी, मित्र-मित्र, बाप-बेटे, सब उसी पर खड़े हैं कि ध्यान दो। अगर बाप को लगता है कि बेटा ध्यान नहीं दे रहा है उसकी तरफ तो वह नाखुश होता है। बेटे को लगता है कि बाप ध्यान नहीं दे रहा है तो वह नाखुश होता है। लोग बीमार पड़ते हैं इसलिए कि दूसरा ध्यान दे। क्योंकि अगर वैसे ध्यान नहीं मिलता तो पत्नी बीमार पड़ गई। अब तो पति को ध्यान देना पड़ेगा। अब तो बैठे रहो छुट्टी लेकर, दफ्तर छोड़ कर। स्त्रियों की तीस प्रतिशत से ज्यादा बीमारियां सिर्फ ध्यान की बीमारियां हैं। जैसे

इनको लगा कि ध्यान नहीं दिया जा रहा है, ये बीमार पड़ गई। बस और कोई उपाय नहीं है उनके पास। ये कैसे आपका ध्यान आकृष्ट करें ? जिन बच्चों को मां का प्रेम नहीं मिलता वे निरन्तर बीमार पड़ते हैं, बीमार पड़ने का और कोई कारण नहीं है। मां की कमी नहीं, ध्यान की कमी है। मां की कोई बात नहीं, मां से ज्यादा ध्यान कोई नहीं दे पाता। इसलिए फिर सब कमी हो गई। नर्स रख दो तो वह उनको दूध पिला देती है, ध्यान नहीं देती है। उसका ध्यान रहता है कि उसको पांच बजे जाना है। बच्चे को कपड़ा नहीं चाहिए, कपड़े से ज्यादा ध्यान चाहिए। ध्यान बोझिल है बहुत गहरा, वह न मिले तो चूक हो जाती है। इसलिए दूसरे को साथ न ले जाए क्योंकि वह मांग करता है पूरे वक्त कि आप ध्यान दो और आप भी माग करते हो कि वह ध्यान दे। और यह सौदा साथ मे चलता है, इसलिए ध्यान दोनो को देना पड़ता है। तो अकेले हो जाए थोड़ी देर को और जहा भी जाए ऐसा ख्याल करें कि अकेले हैं हम, जैसा कोई दूसरा है ही नहीं साथ। इसको थोड़ा ख्याल करेंगे तो ही आप श्वास पर ध्यान दे पाएंगे। नहीं तो दूसरा मिल गया तो गया मामला। श्वास पर पूरा वक्त ध्यान रखें और घंटा, आधा घंटा कभी भी एकान्त मे बैठ कर ध्यान रखें। आंखें बद कर लें और श्वास पर ही ध्यान रखें। क्योंकि बाहर चलते हैं, काम करते हैं, बार-बार चूक हो जाती है। पैर में कांटा गड गया है तो ध्यान कहा श्वास पर रहा ? ध्यान तो कांटे पर चला गया। प्यास लगी तो ध्यान पानी पर चला जाएगा। एक घटे के लिए कहीं एकान्त मिल जाए तो वहा बैठ जाए। रात बहुत बढ़िया होगी। कपड़े वगैरह पहनकर कही भी दीवार से टिक जाए और बैठ जाएं और पूरा घंटा श्वास मे ही बिता दें। तो इन पन्द्रह दिनो में उतना बड़ा काम हो जाएगा जो आप अकेले पन्द्रह वर्षों मे नहीं कर पाएंगे। हो सकता है कि इसमें दो चार घटनाएं घटें, उनकी चिन्ता नहीं करनी है। जैसे श्वास पर जितना ध्यान देंगे नीद कम हो जाएगी। उसकी जरा भी चिन्ता न करें। जितनी देर नींद खुली रहे बिस्तर पर ही श्वास पर ध्यान रहे। चार-पांच दिन श्वास पर ध्यान रखने से नीद उड़ भी जा सकती है। उस पर जरा भी चिन्ता न करें। क्योंकि श्वास पर ध्यान रखने से नींद से जो काम होता है, वह पूरा हो जाता है, विश्राम मिल जाता है। नीद दो तरह से खत्म होती है। तनाव से भी और विश्राम से भी। चिन्ता से भी नीद खत्म होती है क्योंकि चिन्ता इतना तनाव से भर देती है कि मस्तिष्क शिथिल ही नहीं हो पाता तो नींद खत्म हो जाती है।

और अगर कोई ध्यान का प्रयोग करे तो चित्त इतना शांत हो जाता है कि नींद से जो शांति की जरूरत थी वह पूरी हो जाती है। इसलिए नींद का कोई कारण नहीं रह जाता। वह बिदा हो जाती है। तो उसका ध्यान नहीं करेंगे, जरा भी फिक्र नहीं करेंगे। और कुछ अजीब-अजीब अनुभव हो सकते हैं तो उन पर भी चिन्ता नहीं करेंगे। वे अलग-अलग सबको हो सकते हैं। एक से होते भी नहीं। इसलिए एक घंटे का दोपहर को वक्त दिया है कि वैसा कोई अनुभव हो तो मुझसे अलग बात कर लें और उसकी बात किसी दूसरे से आप मत करें। क्योंकि दूसरा सिर्फ हंसेगा और आपको पागल समझेगा क्योंकि वैसा अनुभव उसको नहीं हो रहा है। इसलिए उसको दूसरे से कहना ही मत कभी। क्योंकि वह सबको अलग-अलग होता है। हो सकता है श्वास पर ध्यान देते समय किसी को एकदम ऐसा लगे कि उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया है और एकदम फैल गया है, विस्तार हो गया है उसके शरीर का और वह एकदम घबड़ा जाए कि यह क्या हो गया, अब उठ सकेंगे कि नहीं उठ सकेंगे। इतना भारी हो जाए कि एकदम पत्थर हो जाए, इतना हल्का हो जाए कि ऐसा लगे कि जमीन से ऊपर उठ गया है, जमीन और हमारे बीच फासला हो गया है, मैं ऊपर उठा जा रहा हूं, मैं लौट पाऊंगा या नहीं लौट पाऊंगा। कुछ भी लग सकता है। एकदम श्वास पर ध्यान देते-देते अचानक लग सकता है कि श्वास डूबी जा रही है और कहीं मैं मर तो नहीं जाऊंगा। गहन अंधकार का अनुभव हो सकता है, तेज चमकती बिजलियों का अनुभव हो सकता है। सुगन्ध अनुभव हो सकती है अजीब तरह की, दुर्गन्ध अनुभव हो सकती है, कुछ भी हो सकता है, बहुत तरह की बातें हो सकती हैं तो उनको चुपचाप खुद ही अपने भीतर रखें, किसी से कहें ही नहीं। जब मैं आपको अलग मिलूंगा दरवाजा बंद करके तो आप मुझको कहें। और मुझसे कहकर फिर आप दुबारा उसकी किसी से बात मत करें। उसके कई कारण हैं। एक तो दूसरा कभी उस पर विश्वास नहीं कर सकता, कभी नहीं करेगा क्योंकि वैसा उसको हो नहीं रहा है। और वह हंसेगा और उसकी हंसी आपको नुकसान पहुंचाएगी, बहुत गहरा नुकसान पहुंचाएगी।

दूसरी बात है कि हमें जो अनुभव होते हैं, अगर हम उनकी बात करें तो वह फिर दुबारा नहीं होते क्योंकि वे होते हैं अनायास और जब हम उनकी बात कर देते हैं तो फिर नहीं होते। और भी एक बड़े मजे की बात है कि ये जो गहरी अनुभूतियां हैं उनको बिल्कुल रहस्य की तरह छिपाना चाहिए। नहीं

तो ये बिखर जाती है। उनमे भी बडी ताकत है। जैसे कि हम तिजोरी में धन छिपा देते हैं और जैसे कि हम कपडे पहनते हैं और सूरज की गर्मी को भीतर रोक लेते हैं, सर्दी पड रही है तो हम कपडे पहने हुए हैं इसलिए कि सर्दी हमारी गर्मी को खीच लेगी बाहर और शरीर मुश्किल मे पड़ जाएगा। तो पूरे वक्त हमारा शरीर बाहर के सम्पर्क में अपनी गर्मी को खो रहा है, अपनी शक्ति खो रहा है। जब बहुत गहरी अनुभूतियां अन्दर होती हैं तो एक खास तरह की शक्ति पैदा होती है उन अनुभवो के साथ। अगर आपने बात की तो वह तत्काल बिखर जाती है, खो जाती है। तो उसकी बात ही नही करना। निकटतम शरीर की भी बात मत करना, पत्नी से भी नहीं कहना। उसको बिल्कुल अपने अन्दर छिपा लेना ताकि वह बढ़े, गहरी हो और गहरे अनुभवो मे ले जाए। इसलिए उसकी बात मत करना। और फिर एक-एक अलग-अलग के साथ बात करूंगा कि उसे कैसा लग रहा है। यह जो साधारण था वह मैंने कह दिया है।

लेकिन श्वास पर ध्यान केन्द्रित करना बहुत गहरा प्रयोग है। मै कौन हू भी बहुत गहरा प्रयोग है। लेकिन वह विचार की दिशा से निर्विचार मे जाने की कोशिश है। यह विचार ही है कि मै कौन हू और यह विचार की ही इतनी तीव्रता मे जाना है कि जाकर वह उतार दे आपको निर्विचार मे। तो मैं कौन हू मे कुछ लोगो को तनाव भी हो सकता है; परेशानी भी हो सकती है। लेकिन अभी जो मैंने प्रयोग बताया है इसमें किसी को कोई तनाव नही, कोई परेशानी नही। और मैं हर एक तरह की विधियो की बात करता हू, सिर्फ इस कारण कि बहुत तरह के लोग हैं, न जाने किस को कौन-सी विधि कब पकड मे आ जाए। तो जिसको जो पकड मे आ जाए, वह उस पर चला जाए। एक सौ बारह विधियां हैं ध्यान की। बहुत अच्छा होगा कि मै एक बार उन एक सौ बारह विधियो पर सात-आठ दिन बैठकर बात करू ताकि एक पूर्ण सकलन पूरी विधियों का अलग हो जाए।

आचार्य रजनीश का साहित्य

अज्ञात की ओर	२.००
अन्तर्यात्रा	शीघ्र
अमृतकण	०.६०
अहिंसादर्शन	०.५०
अस्वीकृति मे उठा हाथ (भारत, गाधी और मेरी चिन्ता)	५.००
कामयोग, धर्म और गांधी	३.००
क्रान्तिबीज	४.००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
गीतादर्शन पुष्प १,२,३,५,	१७.००
जीवन और मृत्यु	१.००
जिन खोजा तिन पाइया	२०.००
ज्यो की त्यो धर दीन्ही चदरिया	४.००
नए संकेत	२.००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०.७५
पथ के प्रदीप	शीघ्र
परिवारनियोजन	०.७५
प्रभु की पगडडियां	४.००
पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	०.५०
प्रेम के फूल	५.००
प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
मिट्टी के दिए	शीघ्र
मैं कौन हूं ?	शीघ्र
मन के पार	१.००
शान्ति की खोज	२.००
साधनापथ	शीघ्र

सत्य का सागर शून्य की नाव	३.००
सत्य की खोज	४.००
सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण	१.५०
सत्य की पहली किरण	६.००
समाजवाद से सावधान	४.००
सिंहनाद	१.५०
संभावनाओं की आहट	६.००
संभोग से समाधि की ओर	५ ००
सूर्य की ओर उड़ान	१.००
सारे फासले मिट गये	१.२५
ज्योतिशिखा—त्रैमासिक पत्रिका	१ २५
युक्रान्द—मासिक पत्रिका	१.००

आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण एव संसिद्धि
—डा० रामचन्द्र प्रसाद ७ ५०

AVAILABLE ENGLISH BOOKS OF ACHARYA RAJNEESH

I. TRANSLATED FROM THE ORIGINAL HINDI VERSION

	Pages	*Price*
1. Path of Self-Realization	198	4.00
2. Seeds of Revolutionary Thoughts	232	4.50
3. Philosophy of Non-Violence	34	0.80
4 Who am I ?	145	3.00
5. Earthen Lamps	247	4 50
6. Wings of Love and Random Thoughts	166	3.50
7. Towards the Unknown	54	1.50
8 From Sex to Superconsciousness	180	6.00
9 The Mysteries of Life and Death	70	4.00
II. ORIGINAL ENGLISH BOOKLETS :		
10. Meditation A New Dimension	36	2.00
11. Beyond and Beyond	32	2.00
12. Flight of the Alone to the Alone	36	2.50
13. LSD . A Short cut to False Samadhi	25	2.00
14. Yoga : As Spontaneous Happening	27	2.00
15. The Vital Balance	26	1.50
16. The Gateless Gate	48	2.00
17. The Silent Music		2.00
18. The Turning In		2.00
19. The Eternal Message		2.00
20. What is Meditation ?		3.00
21. The Dimensionless Dimension		2.00
III. CRITICAL STUDIES ON ACHARYA RAJNEESH		
22. *Acharya Rajneesh* : A Glimpse	24	1.25
23. *The Mystic of Feeling* · A Study in Rajneesh's Religion of Experience—Dr. R. C. Prasad	240	20.00
24. *Lifting the Veil* : The Essential Rajneesh —Dr R. C. Prasad		(In Press)